ॐ

तत्त्वदर्शन.

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।
बन्धाय वासना युक्तमबन्धायाप्यवासनम् ॥

प्रयोजक,

पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामीश्री आत्मानंदजी महाराज.

प्रकाशक,

शेठ श्री रणछोडदास भवानभाई.

प्रथमावृत्ति ५००. संवत १९७८.

परमार प्रीन्टींग प्रेस-राजकोट, (काठियावाड).

प्रकाशक पत्र.

इस तत्त्वदर्शन ग्रंथके प्रयोजक ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री आत्मानंदजी–तत्त्ववेत्ता (आर्यन फीलोसोफर) के साथ कइ दफा चर्चा होने पर ज्ञात हुआ कि, धर्म-मत पंथके विषयमें वे तटस्थ स्वतंत्र पुरुष हैं, उन्होंने अनेक मतोंका अवलोकन किया है, इनकी फीलोसोफी वेदांत तत्त्वको स्पर्श करती हुइ सिद्ध पदार्थविज्ञान, सृष्टिनियम, युक्ति और परीक्षाके उपर निर्भर है; आइडियल (भावना मात्र) किंवा शब्द प्रमाणके सरकलमें घिराइ हुइ नहीं है. (नमूनेमें उनका "कर्मयोग–सांख्ययोग" हिंदी, इंग्रेजी भाषाका ग्रंथ हे), इस वास्ते मेरी द्रष्टिमें पसंद करने योग्य और उपयोगी जान पडती है.

स्वामीजीका बनाया हुआ यह तत्त्वदर्शन ग्रंथ 'यथा नामा तथा गुणाः' इस कहावतको चरितार्थ करता है.' दार्शनिक और वैज्ञानिक द्रष्टिसे निर्मापित किया हुआ यह उच्च कोटिका ग्रंथ हे. जिसमें केवल कार्यवादकी विवक्षा न करते हुए मूल तत्त्वोंका (कारणवाद) निरूपण किया गया हे, इसके तीन अध्यायोंमें ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, मोक्ष, सृष्टि उत्पत्ति और लय-इतने विषयोंकी चर्चा और परीक्षा, विना संकोच छूटके साथ की गई है, अत एव (१) जो धर्ममतके स्वतंत्र शोधक हैं उनके लिये अत्युपयोगी हो, (२) शोधक उनके मूलतत्त्व शोधनेमें शक्तिमान हो यानि इसको सहकारी माने, (३) पाठकको धर्मके विषयमें अंधश्रद्धा न रहे, किन्तु विज्ञानपूर्वक श्रद्धा होवे, और (४) इसका अभ्यासी सत्य तत्त्वको खोज ले, एसी मैं आशा रखता हुं.

चोथे अध्यायके पूर्वार्द्धमें (१) जिन विषयोंको सर्व धर्म मानलें उनका संग्रह किया हे, (२) स्वधर्ममें रह कर भी धर्मद्वेष न हो, एसी रीति बताइ हे. (३) सब धर्मोंकी एकता होनेकी रीतिभी दर्शाइ हे. (४) नाना विध मतपंथोंसे उपेक्षा रखते हुए भी अशक्त जिज्ञासुको और स्वतंत्र सशक्त शोधकको भी शान्ति मिले ऐसे प्रकार बताये हैं, (५) व्यावहारिक सुधारणा और सामाजिकउन्नतिके तत्त्वभी दर्शाये हैं. (६) और कर्मयोग (प्रवृत्ति मार्ग) की प्रधानता सयुक्त सिद्ध की है. पूर्व सिद्ध तत्त्वका परीक्षापूर्वक अनुभव होजावे एसी रीति चोथे अध्यायके उत्तरार्द्धमें बतलाई है.

इस ग्रंथके प्रथमाध्यायोक्त अवांतर भागोंको छोडकर इसके मुख्य तीन भाग (३ वोल्यूम) हैं. अध्याय १, २ का पहिला, अध्याय ३ व चोथे अध्यायका पूर्वार्द्ध मिल कर दूसरा, और चौथे अध्यायका उत्तरार्द्ध तीसरे भागमें है, जो तैयार हो रहा हे.

उपरोक्त कारणोंको ले कर उपरोक्त दोनों भाग मैं छपवा कर प्रसिद्ध करता हुं. आशा है कि इस ग्रंथ संबंधी मेरा मनोरथ और ग्रंथकर्त्ताका परिश्रम भी सफल होगा.

प्रकाशक,

रणछोडदास भवानभाई. (फ्लॉर मिल, डंकन रोड–मुंबाई.)

तत्त्वदर्शन.

भाग २.

(अध्याय ३, ४ का पूर्वार्द्ध.)

दोहा.

बंध मोक्ष इन उभयका, कारण मन पहिछान;
युक्त वासना बंधका, रहित मोक्षका जान. ॥ १ ॥

तत्वदर्शन

अध्याय ३ की अनुक्रमणिका.

अध्याय ४ के पूर्वार्द्धकी अनुक्रमणिका.

पेज ८४५ से ९८३ तक.

अध्याय ४ के उत्तरार्द्धकी अनुक्रमणिका.

॥ ओ३म् ॥

*अथ तत्त्वदर्शन–विचाराध्याय ३.

अनुभूमिका.

संगति.—पहेले पक्षअध्यायमें इष्टविषे नानापक्ष दर्शन श्रवणसे सत्य जान्नेकी जिज्ञासा होना कहा ओर अध्यारोप अपवादकी रीतिसे तथा प्रचलित धर्म, मतके बयानसे नानापक्ष जाने गये; इसलिये दूसरे नियमाध्यायमें सत्य निर्णयार्थ नियमादि सामग्रीका उल्लेख हुवा. अब इस तीसरे विचाराध्यायमें—

उसके उपयोगसे निर्णय ॥ अ. ३ सू. १ ॥ **तिस विना यथार्थ ग्रहण न होनेसे** ॥ २ । २ ॥

अर्थ.—उपरोक्त नियमादि सामग्रीके उपयोगसे उपरोक्त तत्वादिका निर्णय होजाता हे, इसलिये (इस तीसरे अध्यायमें) उसके उपयोगसे निर्णय करनेमें प्रवृत्ति हे ॥ अध्याय ३ सूत्र १ ॥ **क्योंकि उक्त नियमादिके उपयोगके विना यथार्थ ग्रहण नहीं होता** ॥ अ. ३ । सू. २ ॥

यद्यपि शब्द वा व्यक्तिके विश्वासीको, स्वार्थमें उपरोक्त तमाम नियमोंकी ओर तत् संबंधी तमाम सामग्रीकी अपेक्षा नहींभी हो, तथापि किसी न किसी नियमकी वा कोई न कोई प्रकारकी तत्संबंधि सामग्रीकी उसकोभी अपेक्षा होही जाती हे (यह स्पष्ट हे) ओर पदार्थमें तो निर्णयार्थ नियमादिकी अत्यावश्यकता हेही, यह बात सुप्रसिद्ध हे–क्योंकि पक्षाध्यायमें अनेक पक्षोंके संस्कार होचुके हें इसलिये १, ओर अ. २ । ७३२ अनुसार निर्णयके नियम अनेक हें तोभी इस ग्रंथमें २ । ७३४ अनुसार निर्णय होसकता हे इसलिये २, ओर इस ग्रंथमें शब्दप्रमाणका ग्रहण नहीं हे इसलिये ३, यह कहा हे कि " पूर्वोक्त नियमादिके उपयो-

* कद ज्यादे होजानेसे **तत्त्वदर्शन**के १ पहले ओर २ दूसरे अध्यायकी पृष्ठ ५१२ तककी पूर्व बुक बनाइ गई. ओर शेप याने अध्याय तीसरे–३ ओर चोथे–४ की पृष्ठ ५१३ से यह उत्तर बुक हे, एसा जान्ना चाहिये.

६५

गके विना यथार्थ ग्रहण नहीं होता. " एतद्दृष्टि इस अ. ३ में निर्णयार्थ उसका उपयोग हे ॥ २ ॥

यहां दिग्दर्शन ॥ ३ ॥ तथा देशकाल वस्तु ओर परिस्थितिपर विचार ॥ ४ ॥ ओर शब्दावृत्ति सुगमता वास्ते ॥ ५ ॥ संज्ञा गणवत् ॥ ६ ॥ तथा प्रधानतासे ईश्वरादि विषय ॥ ७ ॥

अर्थ.—दूसरे अध्यायके उपयोगका संबंध अनेक व्यावहारिक ओर अनेक पारमार्थिक विषयोंके साथ हे ओर विस्तारवाला हे, परंतु इस तीसरे अध्यायमें तो उसके उपयोग करनेका दिगदर्शनमात्र याने उदाहरणमात्र लिखेंगे. ओर वोह एसे प्रकारमें होगा कि विचारशील शोधक जिज्ञासु, स्वतंत्र विस्तार करसके. (संक्षेपमें लिखनेका कारण अ. १ प्रस्तावनामें वांचचुके हो) ॥३॥ तथा देशकाल, वस्तु ओर स्थिति—परिस्थिति पर विचारका मंडान होता हे, वेसेही यहां विचार होगा ॥ ४ ॥ जेसे के संस्कारादि (२ । २१) से हरेक व्यक्ति, मानवमंडल (सोसाईटी) का परिणाम (रिजिल्ट) हे अर्थात जेसा देखा, सुना, जेसे संबंधमें आया, ओर जेसे उसको संस्कार (ईम्प्रेशन) हुये उस अनुसार आचार, उच्चार ओर विचार होते हें, उनके मथनसे कुछ विलक्षण परिणामभी निकल आता हे; जेसा के सृष्टि आरंभसे होता चला आया हे. वेसेही इस विचाराध्याय वास्ते जानलेना चाहिये ॥ ४ ॥ ओर यहां याने इस अध्यायमें नियमाध्याय गत सूत्रके शब्दोंकी आवृत्ति की गई हे, उसका कारण यह हे के पाठक—शोधक—परीक्षकको सुगमता प्राप्त हो ॥ ५ ॥ जेसे के संज्ञागण करनेमें सुगमताके वास्ते प्रवृत्ति हे, वेसेही शब्दकी आवृत्तिभी सुगमताकेलिये की जायगी ॥ ६ ॥

संज्ञागण (अ. ३ सू. ६).

गणसंज्ञा सुगमताके वास्ते होती हे. उसका उदाहरण नीचे लिखते हें. इस विचाराध्याय ३ में सूत्रोंमें जिन गणोंका नाम लिया हे उनकी संख्या ओर उपयोग तिन सूत्रोंकी वृत्ति वा विवेचनमें हे. गण ३ प्रकारके होते हें—(१) संज्ञागण (जेसे गुणादिमें ८ हें). (२) आकृतिगण (जेसे ईशभावनामें १४ हें). (३) पारिभाषिकगण (जेसे अ. २ गत त्रिपुटीमें १५ हें). अ. ३ में जिन गणोंका नाम लिया हे उनकी सूची यह हे—

गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.	गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.
अनुत्पत्यादि	१४	२७२ ।	न सदादि	१६	२७६ ।
		२७४			२७८
अधिष्ठानादि	१३	२९१ ।	निष्कामादि	२	५८६
		३९६	परमाण्वादि	५	२१५
अज्ञानादि	६	५१५	पूर्वजन्माभाव भावना	२	२००
आकर्षणादि	८	१९०	पश्चादि	३	४५७
आलातचक्रादि	२	४३५	प्रवाहादि	४	५१४
आरंभादि	४	२५०	प्रतिबिंबादि	४	५२०
ईशभावना (भावना-	१४	१९५	ब्रह्मादि ६।१०।१२	१०	५६०
मान्य ईश्वर)			भोक्तृत्वादि	४	४८१
ईश्वरादि	८	७ । ८२७	मुक्तिभावना २	१४	२२५
		में फोड	मतादि	५	३२२
ईशांशादि	८	२०७ ।	मायाभावना	८	२७३
		२०२में	यात्रादि	३	४६५
		फोड	रागादि	८	१५३
इदमादि	४	३२९ ।	रज्जुसर्पादि	३	४७६
		४८९	विकल्पादि	३८	३२४ ।
उत्पत्यादि	३	१०५			३६२
उपादानादि	१०	२७४ ।			४२५
		२७८ ।	वाक्यादि	२	४३८
		२८२	शब्दयंत्रादि	४	४९६
कर्तव्यादि	३	१४६	शब्दादि	३४	५५३
कल्पनादि	४	२८८	स्वरुपसंभावना	१२९	४० । (अ.
किरणादि	५	५०२	(१३ संज्ञा हैं)		२ । १२९
कनककुंडलादि	३	५०४			में फोड हे)
गुणादि	८	१०९			। ५५१
गुण्यादि	८	११२	सामान्यादि	४	१३६
जीवभावना	१५	२०२	स्वरूपादि	४	१५८
दृश्यपरिमाण	१	४९२	सदादि	१४	१६७ ।
नासदादि	१५	२८०			१२१ में
नियमादि	५	१३			फोड हे

गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.	गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.
सालोक्यादि	४	२४० । २२५ में फोड हे	संतानादि	५	४६८ । ४८६
साधनभावना	१३	२४२	सूक्ष्मा (शेषा) (हिरण्यगर्भ–ईश्वर)	०	१९०। (अ. २ । २६में विस्तार हे ॥) । ४३६
स्पर्शादि	४	३३०			
स्वशिरछेदनादि	५	४३७			
सफलादि	२७	४५० । ३२५ के विवेचनमें विगत हे	सृष्टिउत्पति, अनुत्पति भावना (आरंभादि)	४	२५०

इन ५३–२=५१ गणोंसे विषय सूचन ओर वर्णन तथा सूत्र रचनामें कितनी सुगमता हुई हे यह स्पष्ट हे. इसीप्रकारसे शब्दकी आवृत्तिमें सुगमता होती हे, इसलिये शब्दकी आवृत्ति की गई हे, सो सूत्रोंके वाक्योंमें स्पष्ट हे ॥ सूत्रोंमें शब्दकी आवृत्ति पक्षकारकी तरफसे विषयके बोधार्थ हे, सूत्रका अर्थ वृत्तिसे ज्ञात होजाता हे. कोनसा पक्ष कोनसे नियमसे असिद्ध वा सिद्ध होजाता हे, इस बातके जनाने वास्ते पुनः वोह सूत्र वा नियम लिखना न पडे इसप्रकारसे शब्दानुवृत्ति हे ओर वोह सूगमता वास्ते हे. यथा "मूल अमूल ओर अविकारी नहींभीही अमृतावत्" (अ. ३ । ४१) इस पक्षकारके बचनमें अ. २ । १३५ । १४५ गत शब्दकी आवृति हे. ओर यह मंतव्य असिद्ध हे, यह अ. ३ । १४ की आवृत्ति हे. ओर इस मंतव्यकी असिद्धि सू. २ । १३५, १४५ से होजाती हे. ईश्वरादि कितनेक विषयोंके सिवाय बहुत सूत्रोंमें एसे प्रकारसे शब्दावृति की गई हे ॥ ६॥ तथा यहां--इस अध्यायमें उद्देशित ईश्वरादि (सू. २८७ देखो) आठ विषयका प्रधानतासे वर्णन होगा ॥७॥ इस अध्यायमें पक्ष–मंतव्यके संबंधसे अध्याय २ वाले नियमादि विषयकीभी चर्चा होगी ओर उसके सिवाय ईश्वरादि विषयका बयान होगा, सोही मुख्य विषय हे; क्योंकि यदि अ. २ के सूत्रोंके विवेचनमें पक्षकारोंका नाम ओर उनका मंतव्य लिखके असिद्ध वा सिद्ध परिणाम पद लिखदेते तो इस अध्यायकी ईश्वरादि विषय सिवाय आवश्यकता न होती; परंतु यह शैली २ । ४० नियमके

विरुद्ध हे, इसलिये अ. २ के सूत्रोंके पद लियेगये हें. बाकी उद्देशित ईश्वरादि विषयमें नियमोंकी साक्षी हे, पदावृत्ति नहीं हे, क्योंकि वे मुख्य विषय हें ॥ ७ ॥

पक्षकारोंका मंतव्य पूर्व ज्ञात ॥ ८ ॥ उनका संबंध यथायोग्य ग्राह्य ॥ ९ ॥ पक्ष ओर साक्षी विवरणसे ॥ १० ॥ परंपरा ओर सुगमतामें विरोध आनेसे ॥ ११ ॥ शांति अर्थ ज्ञान विज्ञान ॥१२॥ नियमादिसे असिद्धि ओर सिद्धि ॥ १३ ॥

अर्थ.—जिन पक्षोंकी असिद्धि वा सिद्धि सूत्रमें लिखी हे वे पक्ष किसके हें, यह बात अर्थात पक्षकारोंका मंतव्य पहेले अध्यायसे जाना गया हे ॥ ८ ॥ उस मंतव्यका संबंध यथायोग्य ग्रहण करलेना चाहिये ॥ ९ ॥ अर्थात सूत्रकी वृत्तिमें फक्त उनका नामही लिया जायगा. जिज्ञासु, शोधकको स्वयं उनका संबंध उपस्थित करलेना चाहिये. ॥ ९ ॥ जो पक्ष (मंतव्य) हे, ओर वोह किसका पक्ष हे तथा वोह पक्ष कोनसे नियमसे असिद्ध वा सिद्ध होता हे, यह बात विवरणसे याने सूत्रकी वृत्ति ओर विवेचनसे ज्ञात होजाती हे ॥ १० ॥ जो सूत्रकी वृत्तिमें एसा न कियाजाता तो परंपरा ओर सूगमतासे विरोध होजाता ॥ ११ ॥ इसलिये सूत्रकी वृत्तिमें प्रथम असिद्ध वा सिद्ध हे एसा जनाया जायगा; उस पीछे किस नियमसे असिद्ध वा सिद्ध हे उस नियमका अंक वा नाम (सूत्र अ. २ के अंक वा उस सूत्रका नाम) लिख दिया जायगा. पीछे विवेचनमें पक्षका पृथक्करण होगा. जो एसा न करते तो उक्त कठिनता होजाती; क्योंकि जो सूत्र होते हें वे साध्य, हेतु वा दृष्टांतकी अनुक्रमणिका जेसे ओर अनेकार्थी होते हें; उनका यदि अर्थ होता हो तो परंपरासे होता हे. जो पूर्वकी परंपराके संस्कार न हों ओर अर्थ करने लगें तो आशयसे अन्यथा परिणाम आनेकी संभावना रहती हे; इसलिये परंपरा उसकी सहकारी हे, ओर इसीसे सूत्रके आशय ज्ञात होनेमें सुगमताकी उत्पत्ति होती हे. एतद्दृष्टि यहांभी वेसाही किया हे, ताके उद्देश्य पूरा हो. सूत्रोक्त पक्ष अनेक पक्षकारोंका हे; सबका नाम हरेक सूत्रमें लिखना सूत्रकी पद्धतिसे विरुद्ध हे, इसलियेभी सूत्रमें नाम देना ठीक नहीं जाना ॥ ११ ॥ शांतिप्राप्तिके वास्ते संशय ओर विपरीत भावना रहित ज्ञानकी ओर फेर उसअनुसार वर्तन (उपयोग) याने विज्ञानकी अपेक्षा होती हे, यह सुप्रसिद्ध बात हे ॥१२॥ यथा अ. २ । के सूत्र अपक्ष, अस्ति, संचित, कर्तव्य, नित्य, अनादि, प्रवाह, सफल, मूल, अविकार ओर संतोषके मननसे शांति प्राप्त होसकती हे, उसकी यथावत्

समझन इस अध्यायके विचारनेसेभी आसकती हे, उस पीछे अपनी योग्यता ओर विषयकी योग्यता अनुसार त्याग ग्रहण होसकता हे (२ । ६९० । ७१५). दृश्य क्या? ओर कैसा, में कोन ओर कैसा, मेरा इसका संबंध क्या ओर क्यों? मेरा परिणाम क्या? इत्यादिका ज्ञान होजाय तो उससे ओर उसअनुसार उपयोगसे शांति परिणाम आजाता हे; परंतु कथन मंतव्यमात्रसे शांति नहीं होती ॥१२॥ इस अध्यायमें दो प्रकरण हें. असिद्ध विषय ३३४ (सू. १५ से ३६४ तक) १, ओर सिद्ध विषय ६० (३६५ से सू. ५८४ तक) २, यह असिद्धि ओर सिद्धि उपरोक्त नियमादि (अ. २ । १)[1] सामग्रीसे होती हे; सो जिन नियमोंसे की गई हे उनके अंक वृत्तिमें लिख दिये हें. ॥ १३ ॥

निवेदन (अ. ३)

(१) इस अध्याय ३ में असिद्ध वा सिद्ध पक्षकी साक्षी वास्ते विषयप्रति नियमाध्यायके अनेक (नियम वा सूत्रके) अंक लगते हें ओर वेभी कोई साक्षातसे ओर कोई परंपरासे लगाये जाते हें; जेसे के उपर अपक्षादिका हवाला दिया हे, वे शांति प्राप्तिके सहकारी हें. इन सिवाय अन्य नियमांकभी हवाला देनेके योग्य हें. ओर इन अपक्षादिमें कोई अंक साक्षातसे लगता हे; यथा–अपक्ष (११७). ओर कोई परंपरासे लगता हे; यथा–संतोष (७३१) हे. यह उभय प्रकार अनेक प्रसंगोंमें हें. विषय प्रति अनेक नियमांकका विस्तार मूलमें हे. इस सारमें तो उदाहरणरुपसे नियमांकका हवाला दिया हे.

(२) जहां वृत्ति, विवेचनमें एक विषयकी असिद्धि वा सिद्धि वास्ते अ. २ के एकसे ज्यादा सूत्रांक दिये हों वहां जिस क्रमसे अंक लिखे हें उसी क्रमसे लगाना, एसा नियम नहीं हे; क्योंकि सूत्र लगानेका आधार शोधककी बुद्धि, रुची ओर रचनापर होता हे; इसलिये पूर्व उत्तर करके यथायोग्य लगालेना चाहिये; कारण के यह सारवृत्ति हे, कहीं सूत्रार्थ हे, कहीं सूत्रवृत्ति हे; परंतु सूत्रका भाष्य वा टीकारुप नहीं हे किंतु मार्गदर्शक संग्रहरुप हे. यदि रीति अनुसार विवेचन करें तो इस सारवृत्तिसे पांचगुना कद होजाता हे; इसलिये संग्रहित विषयका पृथक्-करण ओर उपयोग, पाठक–शोधक–परिक्षक ओर जिज्ञासुके उपर छोडा हे, क्यों-

[1] नैसर्गिक नियम (सृष्टिनियम) १, जीव सृष्टिनियम २, तद् हेतु उदाहरण दृष्टांतादि ३, तत्संबंधि ओर निर्णय उपयोगी विषय ४, ५॥

कि जिसने नियमाध्यायको समझके उसका अभ्यास करलिया होगा उसको दिये हुये सूत्रोंसे ज्यादे लेके लगाना, वा दिये हुयोंसे कमसेही विषय सिद्ध करदेना, साक्षात ओर परंपरासे सूत्र लगाना, ओर किस क्रमसे लगाना—यह सब आपही उपस्थित होजाता हे, कोई कठीनता आडे नहीं आती, इतनाही नहीं किंतु तीसरा नवीन अध्याय आप बनासकता हे.

(३) इस अध्यायमें जहां सूत्रांक देनेपर अध्याय (१, २, ३, ४) का अंक न दिया हो वहां अध्याय २ का सूत्रांक हे, एसा जानलेना चाहिये.

(४) इस तीसरे अध्यायमें अध्याय २ के तमाम विषयोंका पक्षकारोंकी दृष्टि लेके प्रतिपक्ष ओर उसकी असिद्धि नहीं लिखी हे, तद्वत् अध्याय २ के तमाम सिद्ध विषयोंका वर्णन पक्षकारोंकी दृष्टिसे सिद्ध रुपसे नहीं दरसाया हे, किंतु जरुरी जरुरी असिद्ध, सिद्ध विषयका बयान किया हे; तथापि जो असिद्ध, सिद्ध विषय लिखे हें उनमें रुपांतर करके नहीं लिखे हुये अनेक विषयोंकाभी समावेश होजाता हे, एसा प्रकार रखा हे; जिसको बुद्धिमान शोधक स्वयं विचारमें लेसकेगा. ओर जिनका समावेश रुपांतरसे नहीं होसकता हो, एसे शेष विषयोंका स्वयं निरिक्षण करसकेगा, एसी शैली हे. इन तीनों प्रकारकी विगत अ. ३ । ५८४ के विवेचनमें दी हे.

(५) असिद्ध प्रकरण (३ । १५ से ३६४ तक) में जिस सूत्रके अंत वा मध्यमें 'ही' पद आवे वोह वाक्य प्रतिपक्षीका हे, उस वाक्यके अंतमें सिद्धांतिकी तरफसे सू. १४ से असिद्ध (अ.) पदकी आवृत्ति करलेना चाहिये, जेसा के वृत्तिसे जानोगे. बाकी अर्थात जिन सूत्रोंमें 'ही' पद नहीं हे वे सिद्धांतिकी तरफके वाक्य हें, एसा जानना चाहिये. प्रतिपक्षीका वाक्य केवल साध्य वा हेतुबोधक वा साध्य हेतु उदाहरण दृष्टांत सहितभी होगा, परंतु एक विषयका एकही वाक्य होगा, उसी विषयका एकसे इतर वाक्य न होगा, ओर उसमें 'ही' पद अवश्य होगा एसी रचना वा संकेत हे. ही पदका अर्थ पक्षकारकी तरफसे निश्चयका वाचक हे, एसा जान्ना चाहिये अर्थात निरर्थक संकेत नहीं हे.

(८) असिद्ध वा सिद्ध प्रकरणमें जितने 'ही' पद विनाके वाक्य हें वे सिद्धांतीके तरफके हें, एसा जान्ना चाहिये. सिद्ध पक्षमें प्रतीपक्षीकी तुरफका एक वाक्यभी नहीं हे, एसा समझलेना चाहिये.

(९) ईश्वरादि मुख्य उद्देशित ८ विषयका विचार उपोद्घातादि पांच विचारोंके उत्तर (पश्चात) में इसलिये रखा हे कि नियमादिके विचारके विना उसकी सिद्धि वा असिद्धि समझना कठीन हे.

(१०) पहेली ओर दूसरी संस्कृतावृत्तिमें असिद्धपक्ष, नियमाध्यायके क्रमसे नहीं था ओर विषयभी थोडे लिये थे; परंतु इस सारमें उनको क्रमसे लिया हे. यथा उपोद्घातविचार, प्रमाणविचार, सृष्टिनियमविचार, जीवनियमविचार ओर सूचनाविचार; एसा क्रम हे, उस पीछे असिद्ध विषयोंका विचार हे, उस पीछे सिद्ध विषयोंका विचार हे.

(११) इस विचारअध्यायमें स्वप्न विकल्पादिरुप नहीं (३।३२४ से ३६४ तक) स्वप्नजाग्रतकी समानता (४२३ से ५३४ तक), यह दो विषय पूर्व मुद्रित अ. ४ मेंसे ओर आधेय आधार (अ. ३ । ३९३ से ४०४ तथा ५३५ से ५३८ तक) तथा मुक्ति (३ । २२५ से २४९ तक) यह दो विषय पूर्व मुद्रित अ. २ मेंसे निकालके इस अध्यायमें योजे हें ओर पूर्वकी आवृत्तिसे नवीनभी लिखे हें; इसलिये पूर्व आवृत्तियोंके अनुसार इसका ग्रहण नहीं हे. हां, आशयमें फेरफार नहीं हे; अर्थात यदि फेरफार हे तो शैली वा रचनामें हुवा हे. पूर्वावृत्तिमें २९४ सूत्र थे ओर इसमें ५८८ सूत्र हें-इत्यादि अंतर हे.

(१२) पूर्वकी आवृत्तियोंसे फेरफारका उदाहरण (क) अ. २ के नियमादिमेंसे अधिक विषयोंका प्रतिपक्ष किया हे. (ख) प्रथमावृत्तिके कितनेक सूत्रोंका दूसरे सूत्रोंमें समावेश किया हे. यथा नं. १८२ (देवताई), ४७ (अभिन्न निमित्तोपादानसे नवीन), ५१ (अनेकांतसे उत्पति), ११६ (गुणादिका असंयोग), २०७ (स्वरुप ज्ञानसे मोक्ष), २०६ (आकाश अनंत), इनका दूसरे सूत्रोंमें समावेश किया हे. ओर १०९ (असंग निरपेक्ष) इसका अ. २ । २७८ में प्रतिपक्षकरके उत्तर किया हे. ओर १९० । १९१ (परोपकार मान्य) इसकाभी अ. २ । ६०५ मेंही प्रतिपक्ष ओर उत्तर किया हे; इसलिये सू. १९० । २०९ अ. ३ मेंसे निकालडाले हें ओर १५१ (अधिष्ठान ओर १४७ (निरुप) भी अ. ३ मेंसे निकालडाले हें; क्योंकि अ. २ । ६५२ में जो लिखा हे सोही बस हे. तद्वत् १४७ वास्ते ज्ञातव्य हे. उपर अनुसार असिद्ध प्रकरणमें शोधन किया हे; परंतु पूर्वावृत्तिके सिद्धांत वा आशयमें अंतर नहीं हुवा हे. सिद्ध पक्षमें कोई कोई विषय अधिक किया हे अर्थात विशेष फेरफार नहीं हुवा हे. इस बारवें १२ क्रमांकके लिखनेका

आशय यह हे कि परीक्षकको पूर्व आवृत्तियोंमें दर्दसरी करना निरर्थक हे, एसा जानमें आजावे.

(१३) यदि नियमाध्याय २ भावार्थ सहित उपस्थित हो तो विचाराध्यायकी अपेक्षा नहीं हे अर्थात इतनी पुनरुक्ति हें; परंतु एसे किये विना नियमाध्यायके उपयोगकी शैली ध्यानमें न आवे अर्थात नियमाध्याय निरर्थक जेसा होजावे, इसलिये पक्ष लिखके उपयोग बताया हे; अतः खास पुनरुक्ति नहीं हे. ओर जहां पुनरुक्ति दोषका आभास मालूम पडे वहां पक्ष ओर प्रसंग तथा रुपांतरके विचारसे उसकी निवृत्ति होजाती हे. यथा—अ. ३। सू. २२०, ३८२ ओर १७०, ३७६ ओर ६८, ६९ ओर १९, २२, १५० ओर १९०, २९१, ३९४ ओर ९२ से ९७ तक तथा विशेष उत्पत्ति पक्ष (सू. २७१ से २८२ तक) ओर ९८, ९९, १०० ओर १०६, १०७ ओर १३९, १४१ ओर ११८, १२० ओर ५३९, ५४४ ओर ५६४, ५३५, ३९६ ओर ५८१—इनमें पुनरुक्तिका आभास जानपडता हे, परंतु पक्ष, प्रसंग ओर उपयोगपर जो ध्यान दोगे तो पुनरुक्ति नहीं हे ओर यदि हे तो उपयोगी तथा सफल हे ॥ १३ ॥

अ. ३—असिद्धप्रकरण विचार.—

अब प्रथम असिद्धपक्षका आरंभ करते हें.—

अथ असिद्ध ॥ १४ ॥

अर्थ.—अब सूत्र १५ से लेके सू. ३६४ तक वे विषय लिखेंगे जो पूर्वोक्त नियमादिसे असिद्ध हें अर्थात सू. ३६४ तक असिद्ध अधिकार हे ॥ १४ ॥ इन वक्ष्यमाण पक्षोक्त सूत्रके उत्तर (आगे) असिद्ध पद लगाके अर्थ करना चाहिये याने असिद्ध पदकी आवृत्ति चलेगी, एसा जान्ना चाहिये. असिद्ध पदका अर्थ असीमचीन, अयुक्त, त्याज्य, अमान्य, अग्राह्य, अलीक, अनुचित, अयोग्य, असंगत, भूल, अविवेक—होते हें; अतः वक्ष्यमाण प्रसंगमें यथायोग्य अर्थ करलेना चाहिये. जेसे के सू. १२२, १२३ में अविवेक वा भूल अर्थ होता हे. तथाहि जेसे कोई कहे कि यह दृश्य नाशवान हे, इसमें कार्य—फोर्म तो नाशवान वा परिवर्तन पानेवाले हें इतना अंश तो सत् हे, परंतु उसका मूल मेटरभी नाशवान हे इतना अंश असत् वा असिद्ध कहाजायगा, इसीप्रकार पक्षकारोक्त कहीं सर्वांश ओर कहीं अमुक भाग असमीचीनादिरुप हें, एसाभी वृत्तिसे ज्ञातव्य हे. यथा सू. १३५ से लेके सू. १८७ तकमें जो प्रतिपक्ष हें उनमेसे २६ प्रतिपक्षोंके तमाम अंश अ-

सिद्ध वा त्याज्य नहीं बताये हैं, किंतु उन प्रतिपक्षोंमें जो अंश असिद्ध वा अविवेकवाला हे उस अंशकी असिद्धिका वा विवेकका दर्शन कराया हे,[1] इसप्रकार असिद्ध पदका यथाप्रसंग यथायोग्य अर्थ करनेका हे. ओर जिस सूत्रमें 'ही' पद हो उस सूत्रके अंतमेंही 'असिद्ध' पदकी आवृत्ति होगी, अन्यमें नहीं, एसा जान्ना चाहिये; क्योंकि 'ही' पदवाला सूत्र प्रतिपक्षीका हे वा उसके मंतव्यका सूचक वाक्य हे ॥ १४ ॥

जब असिद्धप्रकरणके अंतरगत[2] प्रथम उपोद्घातप्रकरण (१)का विचार करते हैं.

सत्यजिज्ञासा निरर्थकही पक्ष वत् परिणाम आनेसे ([3]अ.) ॥१५॥

अर्थ.—पहेले अध्याय सू. १ में जो सत्यजिज्ञासा जनाई हे वोह व्यर्थही हे एसा निश्चय होता हे; क्योंकि जेसे दूसरे पक्षोंका परिणाम आया हे, वेसेही जो ग्रंथ सत्य बतावेगा वोहभी एसाही माना जायगा. अर्थात जेसे उत्तरमें पूर्व मंतव्यको असमीचीन वा दूषित मानागया हे एसेही तत्वदर्शनका कथन-मंतव्यभी असमीचीन माना जायगा. अ. २ सू. ४४१ । ६५१ अनुसारभी यही परिणाम आता हे. यह मंतव्य अनिश्चितवादिका हे; सो मंतव्य मति (५६२), मध्यस्थ (११९) १२५ ओर ४४१ । ६५१ से तथा अ. ३ । सू. १९७ से असमीचीन हे ॥ १५ ॥

जहांतक जो बाध न हो वहांतक वोह भ्रमका विषय (सू. ६५१ का विषय) नहीं होसकता. जबतक निर्णित विषय अन्यथा न निकले याने बाधका विषय न हो वहांतक उसे भ्रम नहीं कहसकते. इसलिये पक्षकारका यह (सू. ६५१ वाला) हेतु ठीक नहीं हे. ओर जब कि निर्णित विषय परिक्षा होने योग्य हो तो पक्षकारका यह कहना "कि उत्तरकालमें असत्य माना जायगा" सो भी अयोग्य हे. एसेही इस ग्रंथोक्त परिक्षायोग्य विषयके वास्ते जानलेना; क्योंकि परीक्षित विषयसे वि-

---

[1]सारांश पक्षकारके कथनमेंसे यदि अमुक अंशभी असमीचीन होगा तो उसकेलिये असिद्ध पदकी आवृत्ति होगी ओर वृत्तिमें उसका भाग त्याग तथा विवेक होगा, एसा जान्ना चाहिये.

[2]असिद्धप्रकरण गत आसरे ३३४ विषय हैं (उपो. के १२ । प्रमा. के १२ । सृ. नि. के ९३ । जी. नि. के ४२ । सूच. के १५ । अन्य २ । ईश १४ । जीव १५ । माया ७ । पू. ज. २ । मुक्ति १४ । साधन १३ । उत्पति अनुत्पति ४ । स्थिति १ । प्रलय ७ । विशेषोत्पति २४ । अन्य १९ । स्वप्न ३८ = ३३४) ओर सिद्ध विषय आसरे ६० के हैं. कुल ३९४ के आसरे हैं ॥

[3]असिद्ध पदकी सू. १४ से आवृत्ति उसका (अ.) चिन्ह हे.

परीतभावना ओर संशय दूर होके मनको शांति होजाती हे; इसलिये पक्षकारका मंतव्य ठीक नहीं. जो परिक्षा न होने योग्य अनुमानका विषय हो उसके उपयोग (गुण-कर्म) से उसका अनुमान माना जाता हे. "अनुप्रवृत्ति" ५६७ का विवेचन देखो. अर्थात जबतक उपयोग अन्यथा न निकले वहांतक उसको मान्ना योग्यही हे. उक्त दोनों कारणको न मानके हठसे अनिश्चित कहना यह दूसरी बात हे. इ.॥१५॥

अधिकारीका अभावही विषय प्रवृत्तिके स्वभावसे (अ.) ॥ १६ ॥

अर्थ.—तत्वदर्शन ग्रंथके विवेकादि संपन्न अधिकारी, एसे लक्षण लिखे हें वेसे अधिकारी मिलने वा होनेका अभाव हे, एसा निश्चय होजाता हे; क्योंकि मनुष्यकी विषय (शब्दादि विषय) मेंही प्रवृत्ति रहे यह उसका स्वभाव हे, इसलिये यह ग्रंथ निष्फल हे. यह मंतव्य प्रकृतिवादिका हे. सो अ. २ सू ४ । १० से अमान्य हे. सू. ५६२ । २१ भी देखिये ॥ १६ ॥

दुःखाभावही सुख (अ.) ॥ १७ ॥

अर्थ.—संसारमें सुख कोई वस्तु नहीं हे, किंतु दुःखका अभाव होजानाही (इसीका नाम) सुख कहाजाता हे. यह मंतव्य जडवादि ओर किसी नैयायककाभी हे; सो मंतव्य निर्दुःख (६) से असिद्ध हे ॥ १७ ॥ उदासीन ओर चेतना अवस्थाका जेसे अंतर हे वेसे दुःखाभाव (उदासीन) ओर सुखमें अंतर अनुभवसिद्ध हे. दुःखाभाव, अभावरुप हे, ओर सुख चित्तकी भावरुप अवस्था विशेष हे, भोग्य हे; अतः दुःख अभावही सुख, एसा मान्ना अयुक्त हे ॥ १७ ॥

विषयसेही सुख, दर्शनसे (अ.) ॥ १८ ॥

अर्थ.—विषय (शब्दादि) स्वयं सुखरुप हें वा विषयद्वारा सुख होता हे वा विषयमें सुख हे, इसलिये भोक्ताको विषयसेही सुख, एसा जगतमें प्रसिद्ध देखते हें; यह पक्ष जडवादियोंको संमत हे. सो पक्ष निर्विषय (सू. ८ । ९) से असिद्ध हे; क्योंकि विषय रहित सुषुप्ति ओर तुर्यामेंभी सुखका अनुभव होता हे ॥ १८ ॥

प्रयत्न निष्फलही भावी नियत होनेसे (अ.) ॥ १९ ॥

अर्थ.—जीव, यथेच्छा प्रयत्नद्वारा इष्ट फल प्राप्तिमें असमर्थ हे अथवा जीवके प्रयत्नसे कुछभी नहीं होता अर्थात जीवका प्रयत्न निष्फल हे, एसा निश्चय होता हे, क्योंकि जैसा पूर्वमें (कोई न कोई कारणसे) नियत होचुका हे वेसाही भविष्यमें होता हे. यह मंतव्य अनेकोंका हे. सो मंतव्य प्रयत्न (११), संस्कारी (३१), प्रारब्ध (५५२), विवेकी (५५५), असर्वज्ञ (४०६), संचित

(६५७), कर्तव्य (६५८), सफल (१२७) ओर प्रवाह (३६७) से मानीय नहीं हे ॥ ३९ ॥

इसमें ४ पक्ष हें—(१) जीवके पूर्वकर्म (प्रारब्ध) के अनुसार होता हे. (२) ईश्वरने जीवोंके पूर्व कर्मोनुसार जो नियत किया उस अनुसार होता हे. (३) ईश्वरने अपनी ईच्छासे जीवके कर्म ओर भोग जो नियत करदिये वेसाही जीव करता हे. (४) माता पिताके रजवीर्यसे गर्भमें जो योग्यता पेदा होगई हे उस अनुसार होता हे. इन चारों पक्षोमेंसे १, २ यह पौराणिक ओर अमुक वेदांतिकाभी हे. ३ विश्वासियों (ईरानी, याहुदी, क्रिरानी, कुरानी) का ओर अभिन्ननिमित्तोपादानवादिका हे, तथा 'ब्रह्मुकाभी हे ओर नं. ४ प्रकृतिवादिका हे. इनकी अमान्यता वास्ते प्रयत्नादि सूत्र साक्षात, परंपरासे लगते हें. उनका उदाहरण यह हे. (११) प्रयत्नसे प्राप्ति देखते हें. (१२) रजवीर्य संगसंबंधभी प्रयत्नमें हेतु हें. (३१) प्रारब्धमात्र मान्ना अज्ञान हे क्योंकि प्रारब्ध पुरुषार्थका परिणाम हे. (५५२) प्रारब्ध ओर पुरुषार्थ उभयकी अंधपंगु न्याय समान सिद्धि होती हे.—यह चार सूत्र इसप्रसंगमें साक्षातसे लगते हें. ओर (४०६) अकृत ४०४ नहीं जाना जाता, इसलिये वोह नियत नहीं होसकता. (६५७) जो होचुका उसकेलिये विकल्प व्यर्थ हे. (६५८) होने योग्य हुवा ओर होगा, इसलिये नियतत्वका अभाव हे. (१२७) मनुष्यकी योग्यता निष्फल नहीं, इसलिये नियतत्वकी अनुपपत्ति हे. (३६७) प्रवृत्ति निवृत्तिका प्रवाह हे; अतः भविष्यका नियत होना नहीं बनता. यह ५ नियम इस प्रसंगमें परंपरासे लगते हें. ईश्वरने जीव बनाके भविष्य नियत किया हो तो उसमें निर्दयता, विषमताका दोष आता हे, ओर अभावसे उत्पत्ति नहीं होती. अ. २ । ३१० ॥ अ. ३ । २२९, २३८ २४२ से यह दोनों बातें सिद्ध होती हें; इसलिये नियतत्व नहीं ॥ इसप्रकारके उदाहरण देनेमें यह हेतु हे कि शोधक महाशय इसीप्रकार विषयप्रति सूत्रोंको साक्षातसे, परंपरासे ओर प्रकरणकी प्राप्तिसे लगावे तथा अपनी बुद्धिसे उपस्थित करके उपयोग ले; क्योंकि सब जवे विस्तार करनेमें न आवेगा. मूलमें विस्तार हे. सार यह हे के प्रारब्ध अज्ञात ओर पुरुषार्थजन्य होनेसे पुरुषार्थही कर्तव्य रहता हे. प्रकृष यानें विशेष करके जिसका आरंभ होगया उसका नाम प्रारब्ध हे. यह

'ब्रह्मुलोक किसी ग्रंथको ईश्वरकृत स्वतःप्रमाण नहीं मानते, इतने अंशको छोडके उनका समावेशभी विश्वासियोंमें होसकता हे.

अर्थ उपरोक्त चारों पक्षोंमें लगसकता हे. रुढीमें पूर्वजन्मके वे कर्म कि जिनके फलका आरंभ होगया उन कर्मोंका नाम प्रारब्ध हे. यहां प्रसंगमें उक्त अर्थ जानलेना चाहिये ॥ १९ ॥

पुरुषार्थेही प्रारब्धाभावसे (अ.) ॥ २० ॥

अर्थ.—पूर्वजन्म न होनेसे प्रारब्ध नहीं ओर शरीरके पूर्व, जीव कोई भिन्न पदार्थ नहीं, इसलिये उसकेलिये नियतत्व नहीं; अतः पुरुष प्रयत्नही मानना चाहिये. अर्थात जीव अपनी योग्यताकी सीमामें कर्म करनेमें सर्वथा स्वतंत्र हे ओर फल भोगनेमें सृष्टि—प्रकृतिका परतंत्र हे. यह मंतव्य प्रकृतिवादिका हे. सो मंतव्य पूर्वोक्त संस्कारादि (अ. २ । ५३५) सूत्रोंसे समीचीन नहीं ठेरता; कारणके फलमें परतंत्र होता हे अर्थात किये कर्मका फल उसके स्वाधीन नहीं होता ॥ २० ॥

प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण (पुरुषार्थ) ओर प्रकृतिके नियम-इन चारोंके आधीन मनुष्यका जीवन हे. उनमेंसे प्रयत्नसे अन्य, तीनों मनुष्यके स्वाधीन नहीं ओर अज्ञातभी हें, इसलिये पुरुष प्रयत्नकोही प्रधानता हे. परंतु प्रारब्ध, संचित ओर प्रकृतिके नियम नहीं हें, एसाभी नहीं मानसकते अर्थात जीवको परतंत्रताभी हे ॥२०॥

अन्य साधनसेभीही सिद्धि, वचनद्वारा रोग निवृत्त होजानेसे (अ.) ॥ २१ ॥

अर्थ.—इष्ट (साध्य) की सिद्धि याने प्राप्ति वास्ते जो मुख्य साधन माने जाते हें उनसे इतर अन्य साधनसेभी इष्टकी प्राप्ति होजाती हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि औषधि विना वचनद्वारा शारीरिक रोग निवृत्त होजाना देखते हें, इसलिये अन्य साधनसेभी साध्यकी सिद्धि होजाना स्पष्ट होजाता हे. यह मंतव्य कितनेक पौराणि, थी. सो, ब्रह्म ओर विश्वासियोंको संमत हे. सो मंतव्य १२। ५११ । ७२०—इन सूत्रोंसे असमीचीन ठेरता हे ॥ २१ ॥

(पक्षकार) वचनद्वारा शारीरिक रोगकी निवृत्ति होजाती हे. भावना करनेसे जडमूर्तिमें देवत्व आजाता हे. कर्म उपासना--ज्ञानके विनाभी, अन्यथाकर्ता--ईश्वर-पापीकोभी मोक्ष वा स्वर्ग देदेता हे. विश्वासियोंमें विश्वास करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति मानी हे. मैथुन विना जडपसीनेसे चेतन जूं पेदा होजाती हे. उद्यम विना राज्यकी प्राप्ति होना देखते हें. (उत्तर) रोगनिवृत्ति वचनमात्रसे नहीं होती किंतु उसके रोग निवारक—तैजस प्राणके जानेसे होती हे. भावनासे जडमें दैवत आना दंतकथा वा रोचक वचन हे. ईश्वरको अन्यथाकर्ता माननेसे ईश्वर अन्याय दोष-

वाला ठेरता हे. जूंमें चेतन वस्तुकी आपत्ति हे (बस. में विस्तार हे). राज्य प्राप्तिमें संचित ओर आंतरिय परंपरा पुरुष प्रयत्न हे. अंधेरा प्रकाशके विना, अज्ञान ज्ञानके विना ओर विक्षेप उपासनाके विना नहीं जाता; अतः साध्ययोग्य साधनसेही साध्यकी प्राप्ति होती हे, यही सयुक्त हे ॥ २१ ॥

अधिकार संज्ञाकी अप्राप्तिही सर्वको सर्व शक्य होनेसे (अ.) ॥२२॥

अर्थ.-अमुक विषयका याने अमुक ज्ञातव्य, प्राप्तव्य वा कर्तव्यका अमुकही अधिकारी होता हे, एसी संज्ञाकी अप्राप्तिही हे; क्योंकि हरेक मनुष्यको हरकोई विषय संपादन होजाना शक्य हे. यह प्रकृतिवादिका पक्ष हे. यह पक्ष सू. ५२९ । ७३९ ओर साधन अधिकरणसे असिद्ध हे ॥ २२ ॥ सुख मिलनेके जिज्ञासु सब हें परंतु उसके प्राप्तियोग्यकोही मिलता हे. बालकके संतान नहीं होसकती. मान लो के पुरुषार्थसे सर्वको सर्वशक्य होसकता हे, परंतु यह मंतव्य कल्पनामात्र हे. गूंगा, बहेरा शब्द न बोलसकता हे ओर न सुन सकता हे. क्यों ? उसको कुदरतसे वेसे साधन नहीं मिले.

(पक्षवादि) जो एसा न मानोगे तो पुरुषार्थमें निराशा होगी उससे महान हानी होगी. अभ्यास बलवान हे; अतः यथेच्छा होसकता हे. बंदर भाषा सीखते हें, ओर मनुष्य जेसे बनगये हें ६७१ याद करो. स्त्रियोंके डाढी उगाई गई. ई. विशिष्ठ ऋषिनेभी तथा सुप्रसिद्ध नेपोलीयन बुनापार्टनेभी यही कहा हे के कुछभी अशक्य नहीं हे. (उ.) जिसमें जिस बातकी योग्यता होगी उसमेंही उसका पुरुषार्थ काम देगा; इसलिये निराशा नही. कितनाभी अभ्यास करें, खानपानके विना शरीर नहीं जीसकता, ओर शरीर अमर नहीं होसकता. अमुक जातिके बंदरोंमें वा वनमाणसोंमें मनुष्य जेसे होनेकी योग्यता हे, परंतु वोह कीडी वा चिडयामें नहीं हे. डाढी वगेरे वृक्षके तंतु समान हें, याने मूलमें औषधि डालनेसे वेसा होसकता हे. परंतु वीर्य विना अकेली स्त्रीसे संतानोत्पात्ति नहीं होसकती. विशिष्ट मुनिको अपने १०० पुत्रका मरण, ओर रामचंद्रजीका वनोवास क्यों देखना पडा ? नैपोलियन क्यों कैद होगया ? उसने अपनेको मोतसे क्यों न बचाया ? जो कहो के उभयकी कमजोरी वा भूल तो यही उत्तर अशक्य प्रसंगमें लगालेना चाहिये. अर्थात मनुष्य अल्प, अपूर्ण ओर परिच्छिन्न हे; इसलिये उसको सब शक्य नहीं हे. इ. यथार्थ निर्णय प्रसंगमें रोचक वा भयानक-वचनोंका आग्रह दिखाना उचित नहीं हे ॥

(शं.) अनेक सुखोंका साधन द्रव्य ओर सत्ता हे. जो अनधिकारिओंको अर्थात मूढ, मूर्ख, अविद्वान, अशक्त, बुद्धिहीन ओर रोगिओंकोभी प्राप्त हे ओर विद्वान–बुद्धिमानोंको अप्राप्त हे; अतः अधिकारसंज्ञाकी अप्राप्ति वा व्यभिचार हे. (उ.) अनधिकारीकोभी वारसा मिले यह रुढी पडगई हे, इसलिये एसा देखते हो. ओर विद्वान सत्ता विनाके निर्धन रहते हें. यदि एसा न होता तो मूढ, अशक्त, श्रीमंत वा सत्ताधारी न होते. तथा २१ पर ध्यान दीजे. विद्वान बुद्धिमान, उनसे विद्याको उत्तम मानते हें; यदि वे द्रव्य वा सत्ताके वास्ते प्रयत्न करें तो यथायोग्यता प्राप्त करसकते हें. तथा २१ को विचारो; अतः शंका व्यर्थ हे ॥ २२ ॥

उद्देश लक्षण कथन व्यर्थही फलके अभावसे (अ.) ॥ २३ ॥

अर्थ.—किसी विषयका उद्देश करके उसके लक्षणका कथन करना व्यर्थही हे, क्योंकि उसका फल नहीं होता. यह मंतव्य पक्षपाती वा अज्ञमंडलको संमत हे. सो मंतव्य सू. २२ । २७से अमान्य हे; क्योंकि अजानोंकी परोक्षमें प्रवृति ओर निर्दोष व्यवहारकी सफलता, लक्षण जाने विना नहीं होसकती ॥ २३ ॥ (पक्षकार) जिसको विषयका ज्ञान नहीं हे उसको नाम वा लक्षण बताने वा समझानेसे उसे कुछ लाभ नहीं होता, ओर जिसको विषयका ज्ञान हे उसको लक्षण जान्नेकी अपेक्षा नहीं हे; इसलिये उद्देशितके लक्षण कहनेकी अपेक्षा नहीं हे. (उ). लक्षणके बोधके विना शिक्षण, अनुकरण ओर व्यवहारही नहीं चलता. हीरा वा कनक बताने समयभी जो उसके लक्षण ओर परिक्षा न बताई जावे तोभी भविष्यमें हानी होनेकी संभावना हे. आप अपने वाक्य समझानेकेलिये लक्षणके लक्षण बतावेंगे तबही आपके वाक्यका उपयोग होगा; अतः लक्षण उपयोगी हें. ओर परिक्षापूर्वक अभ्यासके योग्य हें उनसे निर्णयरुप फल होता हे ओर असत्के ग्रहणसे बचजाते हें ॥ २३ ॥

अतिव्याप्तिका सर्वथा त्याज्यही (अ.) ॥ २४ ॥

अर्थ.—पूर्वोक्त (अ. २ । २३, २४) अतिव्याप्ति दोष हे; अतः उसका सर्वथा त्यागही हे. यह मंतव्य यौक्तिकों (न्याय वैशेषिकादि) का हे. सो अमुक अंशमें अमान्यभी हे. सू. २३ । २४ का व्याख्यान देखो ॥ २४ ॥

कुदरत (सृष्टि)में अतिव्याप्ति देखते हें ओर असाधारणभी देखते हें. व्यापकत्वकी सिद्धि अतिव्याप्ति विना नहीं होती. दृष्टांत–उदाहरणमें उपयोगी हे. निष्फलताका अभाव हे; अतः अतिव्याप्तिदोष नहींभी हे. तथापि जहांतक अति-

व्याप्ति, अव्याप्तदोषसे रहित असाधारण लक्षण मिले वहांतक इसका त्याज्य हे ॥२४॥

निर्णयकी अपेक्षा नहींही अस्ति नियमसे (अ.) ॥ २५ ॥

अर्थ.—ईश्वरादि पदार्थ–तत्व केसे, इस निर्णय करनेकी अपेक्षा नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि अस्ति (१८६) नियमके विरुद्ध हे. याने वे जेसे हें वेसे हेंही. यह मंतव्य अशक्त मंडलका हे, सो ११७ से निवारणीय हे; क्योंकि परंपरासे परीक्षा, अभ्यास होता आया हे, तबही उनका उपयोग होता हे ॥२५॥

नियमत्वकी अनुत्पत्तिही दोषापत्तिसे (अ.) ॥ २६ ॥

अर्थ.—पूर्वाध्याय २ में जिनको (सृष्टि) नियम माना हे उनमें नियमत्वकी अनुत्पत्ति हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि नियम माननेमें दोष आते हें. यह मंतव्य अनेक पक्षकारोंका हे अर्थात जिनके पक्षका नियमसे बाध होता हे, उन सबका यह मंतव्य हे, एसा जानलेना चाहिये. सो मंतव्य सू. २८ । २९ । ३० । ३१से असमीचीन ठेरता हे ॥ २६ ॥ क्योंकि नियमोंके निषेधमें जो हेतु दियाजाय वोह यदि साध्य हो ओर जो प्रमाण दियाजाय वोह यदि खंडित हो तो उससे (सू. ५७३ । १२२) सिद्ध नियमोंका खंडन नहीं होसकता. ओर मानवमंडलकी बुद्धिकी मर्यादा तकही उसका मंतव्य हे–अर्थात शंका समाधान उतनी मर्यादामेंही होते हें; नहीं के तमाम कुदरतकी दृष्टिसे; इसलिये मानवमंडलकी सीमातकमें मान्य हें. सू. ११४ । १२५ भी देखो ॥ २६ ॥

जो नियमोंके खंडन मंडनका विस्तार करें तो ग्रंथ बढजाय. इसलिये कितनेक उपयोगी शंका समाधान संक्षेपमें लिखते हें.–

(नोट)–हरकोई एक त्रिकोणकी दो भुजा मिलके तीसरीसे बडी होगी; हरकोई त्रिकोणके तीनों कोने मिलके दो काटकूनेकी बराबर होंगे; एक त्रिकोणमें दो काटकूने नहीं होते; यह सब स्वतःसिद्ध नियम हें-इनका खंडन नहीं होसकता. हम नहीं जानते कि एसा नियम क्यों हे, परंतु एसा हे, यह हम जानते हें ओर यह बात बाह्य वस्तु हें तोही उनद्वारा उनके नियम जानेजाते हें. अन्यथा नहीं.

(शं.) बाह्य (शरीरसे बाहिर)में पदार्थ न होनेसे नियमत्व नहीं. (उ.) बाह्यमें पदार्थोंका अंधकोभी उपयोग दर्शनसे एसा नहीं मानसकते ओर स्वप्नसृष्टिवत् अंदरमें बाह्यांतरका भेद माननेलेनेपेभी नियमत्वकी सिद्धि होजाती हे. (शं.) बाह्यपदार्थ अज्ञेय वा अगम्य उनके संबंध पानेपर मगज वा मनमें जेसा प्रभाव (ईम्प्रेशन) होता हे वेसी भावना होती हे, इसलिये बाह्यवस्तुके नियम नहीं कह-

सकते. (स.) बाह्यवस्तु अज्ञेय हे, उनके संबंधसे प्रभाव होते हैं, यह बात केसे जानी? बाह्यवस्तुके असरसे एसा ज्ञान होना असंभव. जो अपनी कल्पना मानी तो स्वमंतव्य त्याग होगा. जो व्याप्तिसे कहोगे तो नियम मान्नेकी आपत्ति होगी. दूसरेसे सुनके संस्कार होते हैं उससे अन्यभावना पेदा होती हे, तहां बाह्यवस्तुके असरका प्रसंग नहीं हे. ईम्प्रेशनोंके भेद ओर ईम्प्रेशन तथा वस्तुका भेद, बाह्यवस्तु नहीं बताती ओर न वेसा ईम्प्रेशन होनेका सबूत मिलता हे, तो फेर यह भेद केसे जानेजाते हैं? जो अन्य कोई साधनद्वारा इनका अनुभव होता हे तो वेसेही नियम वास्ते जान लो. (यहां बस. ९९, १०० ओर ३७२ । ३८६ भी देखो). किरणें सीधी काटकूना करके चलती हैं अन्यथा नहीं, अमुक परिमाणमें औक्षजन और, हाईड्रोजन मिले तब जल होता हे अन्यथा नहीं, इत्यादि नियम केसे जाने? अमुक बाह्यवस्तुके संबंधसे अमुकमें अमुक प्रकारका ईम्प्रेशन होता हे, सबमें सबसे सबप्रकारके ईम्प्रेशन नहीं होते, अमुक तंतुद्वारा, जब अमुक विषय हो तब अमुक प्रकारका ईम्प्रेशन होता हे; इत्यादि आपभी मानते हो, इसीका नाम नियम हे; क्योंकि उभयकी योग्यता ओर उनके परिणामकी हद हे; इसलिये जबतब नियमपदके वाच्य होजायँगे. २ । ४५१ का विवेचन देखो. (शं.) बाह्यवस्तु अर्थात ज्ञेय अनुसार ज्ञान होता हे, ज्ञान अनुसार ज्ञेय नहीं होता; परंतु बाह्यपदार्थोंका संपूर्ण ज्ञान नहीं होसकता, इसलिये नियम कहना भूल हे. (स.) मानवमंडलके ज्ञानशक्तिकी मर्यादासेही नियमोंका कथन हे; सब नियमोंका ज्ञान नहीं होता; इसलिये ज्ञेयवाली व्याप्तिजितने नियम, मानेजासकते हैं. (२ । ४५१ देखो). (शं.) ब्रह्मांडकी तमाम भूत, भविष्यितकी व्याप्तिका जब ज्ञान हो तब नियम पद लगासकते हैं, अन्यथा नहीं. (स.) मानवमंडलकी बुद्धिकी मर्यादातक व्याप्तिसे नियमका कथन हे; क्योंकि विपरीतभावना ओर संशयभी तो उसी मर्यादातक होसकते हैं ओर इसीलिये उन नियमोंसे उन (वि. सं.) की निवृत्ति होजाती हे; जो एसा न होता तो निवृत्तिभी न होती. इसप्रकार (बुद्धिकी मर्यादातक वि. सं. समा.) न मानें तो जीवन व्यवहारही न हो. अग्नि आपके अंगको जलाती हे, क्या यह व्याप्ति नहीं मानोगे? मान्नीही होगी. अन्यथा शरीरयात्राकाभी व्यवहार न होगा. तथाहि ‘ यह यूं नहीं हे ’ एसाभी सर्वज्ञ हुये विना नहीं कहसकोगे ओर जो कहोगे तो व्याप्ति वा परिक्षा देनी होगी. इसीप्रकार नियम, व्याप्तिके विरुद्ध जबतक नहीं बतासको तबतक आपकी शंका व्यर्थही हे—हठमात्र हे.

ओरभी सू. ३४ सर्वथा इत्थम कहनेको ना कहता हे अर्थात जो पूर्ववत् स्वतः-सिद्ध साबित न हों वे नियम नहीं हें, एसा कहसकते हें. (शं.) अप्रमेय-अज्ञेय पदार्थोंका निर्णय नहीं होसकता; अतः उनकेलिये नियम व्यर्थ हें. ओर ज्ञातपदार्थ प्रसिद्ध होनेसे उनकेलिये नियमोंकी अपेक्षा नहीं हे; अतः नियमोंकी कडाकूट व्यर्थ हे. (स.) अज्ञेय-अगम्यका तो आप नामभी नहीं लेसकते तो उसके लक्षण तथा निर्णय करनेकी तो बातही क्या करना. जो परोक्ष वा अपरोक्षरुपसे ज्ञात हें उनके स्वरुपसंबंधमें मतभेद हे; इसलिये भ्रांति, संशय ओर अविश्वासको अवसर मिलता हे; यथा शब्दादिमें मतभेद होनेसे संशय भ्रांति हे; इसलिये एसे याने जो निर्णय होनेके योग्य मानसकें उनके संबंधमें नियम ओर लक्षणोंकी अपेक्षा होती हे. यथा--बनावटी ओर सच्ची जेबीघडीके जान्नेमें घडीके लक्षण ओर उसके नियम जान्नेकी अपेक्षा हे. अब रहा अनुभव सो तो परिक्षा करनेपरही होगा. (शं.) जो विषय धी (बुद्धि) से परे हो उसमें बुद्धि ओर तर्क काममें नहीं आसकते; अतः उसके संबंधमें नियम व्यर्थ रहते हें. (स.) यह बात सत्य हे (उपर कहा हे); परंतु किसी वस्तुका उद्देशकरके उसके लक्षण कहना ओर जब उन लक्षणोंकी परिक्षाकरनेका समय आवे तब उसे 'धीसे पर' एसा कहके पीछा हटना यह शोधक परीक्षकोंका काम नहीं हे. (बस. २२३ ओर तद. २।१२५ देखो). किंवा जब आप अपने उद्देश, लक्ष्यको 'धीसे पर' कहो तब प्रतिपक्षी स्वसाध्य--मंतव्यकेलिये एसाही कहे तो उसका मंतव्यभी आपको मान्ना पडेगा. उसका परिणाम विरोधदोष वा अनिश्चित आवेगा. यथा जीव चेतन अणु ओर जीव चेतन मध्यम परिणामी, इन उभयको धी पर कहनेमें उभय दोष आते हें; इसलिये एसे प्रसंगोंमें नियमकी अपेक्षा हे. (शं.) जेसे द्रष्टा ओर दृश्य एक दूसरेसे भिन्न हें, एसा मान्ना उपरकी दृष्टिसे हे, वस्तुतः एसा नहीं हे; एसा योरोपके फिलोसोफर ओर अभेद (अद्वैत) वादि कहते हें. इसीप्रकार जिनको तुम नियम कहते हो वे उपरउपरकी स्थूलदृष्टिके विषय हें; वस्तुतः वैसा (नियमरुप) नहीं हे. (स.) अकेली व्याप्तिमात्रपरही आधार नहीं किंतु जो व्याप्ति ओर परिक्षा इन दोनोंको लेके अनुभवमें तोलोगे तो "द्रष्टा दृश्य भिन्न नहीं" एसा कथन मंतव्यही इस ज्ञेय नियमको ज्ञातासे भिन्न होना बतला देगा. भिन्न माने विना आपके मंतव्यकी सिद्धिही नहीं होसकती. इसीप्रकार दूसरे सिद्ध नियमोंके संबंधमें यथायोग्य योजलेना चाहिये. (शं.) एकही निर-

वयव निरंश शक्ति, अनेक रुपवाली होजाती हे (एसा योरोपका एक फिलोसोफर मानता हे). किंवा एक निरवयव निरंश सर्वशक्तिमानही, अपनी इच्छासे अनेक रुपवाला (ब्रह्मांडरुप) होजाता हे, क्योंकि सर्वशक्तिमान हे (एसा अभिन्ननिमित्तोपादानवाद कई आर्य फिलोसोफर मानते हैं). किंवा ईश्वर सर्वशक्तिमान होनेसे अन्यथा कर्ता हे (एसा कितनेक पौराणि ओर विश्वासी मानते हैं). किंवा ईश्वर सर्वशक्तिमान हे, इसलिये उसने अभावमेंसे भावरुप जगत, जीव बनाये हैं (एसा विश्वासी ओर ब्रह्म मानते हैं). किंवा जड प्रकृति अपने आपही नाना रुप होजाती हे (एसा सांख्य मतका कोइ पक्षकार ओर प्रकृतिवादि मानते हैं). जो उपरोक्त पक्षमेंसे एक पक्षभी सिद्ध हो याने हो तो तुम्हारा नियम निबंध (कारण, उपादान, उपादेय, निमित्त, विरुद्ध, अभेद, एक कार्य ओर गति इन ८ अधिकरणका कथन) कहां रहा. इसलिये स्वतः सिद्ध नियम मान्ना कल्पनामात्र हे. (स.) कदाचित जो किसी एसे सर्वशक्तिमान (हठ वा अंधश्रद्धा वा कुविश्वास नामके किसी) योगीने कि जिसको आप नहीं जानते वा नहीं जानसकते; आपके मनबुद्धिपर अनुवृति (मानसिकयोगमें इसका विस्तार लिख आये हैं) करके एसी वदतोव्याघातदोषवाली, विरुद्धधर्माश्रयवाली ओर असंभवदोष ग्रसित मान्यता वा शंका कराई हो तो फेर नियमनिबंध (पूर्वोक्त ८ अधिकरणका लेख) केसे भंग होसकता हे याने भंग नहीं हुवा. (ननु) यह कहना वा मान्ना असंभव वा झूठ हे क्योंकि में सावधान हुं, अनुवृत्तिमें नहीं हुं, मेरे भूत इतिहासकी मुझे स्मृति हे; अतः मेरेपर अनुवृत्ति नहीं हे. (नियमवादि) तो आपकी शंकाभी असंभव दोषवाली होनेसे मान्य नहीं होसकती; क्योंकि उसकी व्याप्ति ओर परिक्षा नहीं मिलती. व्याप्ति, परिक्षाके विना विश्वास वा हठसे मानो तो हमारा उक्त कथनभी स्वीकारना होगा. (विशेष आगे) ॥ (शं.) जो नियम स्वतःसिद्ध हों तो सूर्यके प्रकाश समान सर्वको ज्ञात होने चाहिये अर्थात साध्यमें मतभेद न होना चाहिये, परंतु मतभेद देखते हैं; अतः नियम स्वतःसिद्ध नहीं, किंतु कल्पित मान्नेपडते हैं. (स.) जेसे अंधेकेलिये सूर्यकी स्वप्रकाशता काममें नहीं आती परंतु इतना होनेसे सूर्यके प्रकाशका निषेध नहीं होसकता (४७७ । ४८२ याद करो) वेसेही जिनकी बुद्धि पराधीन रहनेमें मग्न रहती हो किंवा केवल स्वच्छंदि हो—सारांश जिनकी बुद्धिपर अविवेकका पटल हो उनको नियमोंकी स्वतःसिद्धता नहीं भासती याने सो उनके ध्यानमें आना

कठीन हे; परंतु इतना होनेसे नियमोंका निषेध नहीं होता. जो मतभेद होरहे हैं उनका निरीक्षण हो, इतने वास्तेही नियमोंका संग्रह हे. इसलिये आपकी शंका स्वतःसिद्धताकी बाधक नहीं होसकती. (शं.) जिनको नियम कहते हो वे तुम्हारी कल्पनामात्र हैं वा कमलावाले रोगीके समान वेसा तुमको भासनेका अध्यास होगया हे, एसा क्यों न मानाजाय? (स.) अग्नि त्वचाको जलारही हे उससे दुःख हो रहा हे, एसी स्थितिको कल्पना वा अध्यास क्यों न मानाजाय? किंवा आपकी शंकाको कल्पना वा अध्यास क्यों न मानाजाय? मतलब यह हे कि व्याप्तिसिद्ध ओर परीक्षितकेलिये एसीएसी शंका, कुतर्क कहानेसे उपेक्षणीय हें. तथापि उत्तर दियागया हे.

(शं.) विश्वासी लोक ईश्वरको अन्यथाकर्ता मानते हें; अतः नियम अटल नहीं. (उ.) ४०१ । ४०४ से अमान्य हे ओर न अन्यथाकर्तापनेकी व्याप्ति हे; अतः आपकी शंका नियमकी बाधक नहीं. (शं.) मरे हुयोंको जीवता किया गया हे एसा ग्रंथोंमें सुनते हें, एक महात्माने चंद्रके दो टुकडे किये, सूर्य नीचे उतारा इत्यादि अनेक बातें सुनते हें; अतः नियमत्वकी असिद्धि हे. (उ.) व्याप्ति रहित दंतकथा हें; अतः यह कथायें नियमत्वकी बाधक नहीं. (शं.) प्रागभाव अनादिसांत ओर प्रध्वंसाभाव सादिअनंत मानाजाता हे; अतः नियमत्व (१९० । १९२) की असिद्धि हे. (उ.) अभाव कोई वस्तु नहीं हे. देशाधिकरणके विलक्षणत्वका नाम अभाव हे ओर अभाव परिमाण रहित हे; अतः कोई वस्तु नहीं हे. इसलिये नियमत्वके बाधक नहीं. विशेष स्वरुपसंभावनाके उदाहरणमें वांचो. (शं.) द्दष्टा द्दश्यका भेद नहीं (२७५), एसे नवीन साईस मानती हे; अतः नियमत्व नहीं. (उ.) परिक्षाके विरुद्ध हे (उपर कहा हे), २७५ का विवेचन देखो; अतः सो मंतव्य नियमत्वका बाधक नहीं. (शं.) शक्तिमानद्वारा अभावसे भावरुप सृष्टि हुई हे; अतः नियममें अनादित्व नहीं (३१०). (उ.) अभावसे भाव मान्ना व्याप्ति रहित कल्पनामात्र हे; अतः सो अनादित्व ओर नियमत्वका बाधक नहीं. (शं) विभु ईश्वर, सक्रिय हे; अतः नियमत्व (१६८) नहीं. (उ.) व्याप्तिके अभावसे यह कल्पना मान्य नहीं; अतः नियमत्वकी बाधक नहीं. (शं.) जीवको अनादि ओर मध्यम मानागया हे; अतः नियमत्व (१७२) नहीं. (उ.) परिक्षामें एसा नहीं हे; अतः सो मंतव्य नियमत्वका बाधक नहीं. (शं.)अनिर्वचनीय भावरुप माया अनादिसांत मानीजाती हे; अतः नियमत्व नहीं. (उ.) बहुतसे बंध

जीव मुक्त होना सुनते हैं, परंतु माया अद्यापिसांत न हुई हे; ' इसलिये माया अनादिसांत न होनेसे नियमत्वका बाध नहीं. (शं.) माया अघटित घटना दिखाती हे, जेसे के स्वप्नमें स्वमस्तक छेदेहुयेका दर्शन, ओर योग्य देशकाल विना देशकालकी प्रतीति--इत्यादि; अतः नियमत्व नहीं. (उ.) संस्कारों अनुसार मायामेंसे स्वप्नसृष्टि होती हे. अर्थात जडमें यथेच्छा अन्यथा दिखासके, एसी योग्यता नहीं होती. स्वप्नसृष्टिमेंभी संस्कारादिके नियमपूर्वक सृष्टि होती हे; अतः दोष नहीं आता. (शं.) जेसे स्वप्नके जीव तद् द्रष्टाका ओर स्वप्नसृष्टिके उपादानका निर्णय वा नियम कथन नहीं करसकते, एसे जीव, ईश्वर ओर ब्रह्मांडके मूल उपादानका निर्णय वा नियम कथन नहीं करसकते; अतः नियमत्वके कथनकी अनुत्पत्ति हे. (उ.) स्वप्नगत जीव--शरीर आभासमात्र वा जडरुप हें किंवा माया-के परिणाम हें; अतः आपकी शंका ठीक हे-याने वे निर्णय वा नियमका कथन नहीं करसकते, क्योंकि फोनोग्राफ जेसे हें. जब यूं हे तो आपकी शंकाभी वेसीही होनी चाहिये ओर यदि आपकी शंका स्वप्न जैसी नहीं किंतु सचेत हे, एसा मानो तो आपको व्याघातदोष आडे आवेगा; उपरांत यह उत्तर हे कि जाग्रत स्वप्नमें द्रष्टाका अन्वय हे, सृष्टिका व्यतिरेक हे ओर यह अन्वय व्यतिरेक साक्षीमें स्वतः ग्रहण होता हे, उससे द्रष्टाकी स्वप्रकाशता दर्शनसे स्वप्नके मूल उपादानकी सिद्धि होजाती हे, इस व्याप्तिसे नियमका कथन होता हे. यथा--द्रष्टा साधक हे ओर उपादान विचित्र हे सो यथासंस्कार आकार धारलेता हे.-इत्यादि मानसकते हें वा अनुभव होता हे. इसीप्रकार इस दृश्यब्रह्मांडमें व्याप्तिद्वारा नियमादिका भान होता हे; अतः नियमत्वकी सिद्धि हे. (शं.) पूर्वोक्त नियम, बुद्धि अपेक्षित होनेसे पूर्वोक्त नियमोंमें नियमत्व नहीं मानसकते; क्योंकि बुद्धिकी मान्यता हे वा बुद्धि-वाद हे. (उ.) देश, काल ओर बुद्धिके विना कुछभी कथन, श्रवण, मंतव्य वा कल्पनाभी नहीं होसकती; आपकी शंकाभी वेसीही हे; अतः आपकी शंका नियमत्वकी बाधक नहीं; क्योंकि बुद्धिने वे नियम बनाये वा कल्पे नहीं हें किंतु उनका अभ्यास किया हे (इसके संबंधमें अ. २ गत नियमअधिकरणमेंभी लिख आये हें); अतः नियमत्वका बाध नहीं होता ॥ इसीप्रकार अन्य शंकाओंका समाधान होजाता हे ओर नियमोंकी सिद्धि (स्वतःसिद्धि) माननी पडती हे ॥ (शं.) यदि जगत मिथ्या तो उसमें नियमत्वकी अप्राप्ति हे. (उ.) यदि आपका

' अनादि सांत कहना, यह अनिर्वचनीयत्वमें अव्याप्ति हे.

यह कथन साध्यसम दोषसे ग्रस्त न हो तो नियमत्वकी आपति हे. ओर जो एसा नहीं हे तो शंकाही नहीं बनती; क्योंकि स्वप्नसृष्टिमेंभी नियमकी आपत्ति हे.

सार यह हे कि जीवमात्र (योगी, अयोगी, देव, अदेव) सर्वज्ञ न होसकनेसे उसे ब्रह्मांडका तमाम ज्ञान नहीं होसकता. प्रस्तुत इष्ट (निर्णय) ओर तत्संबंधी शंका समाधान यह सब मानवमंडलकी मर्यादामें हें; इसलिये अद्यापि मानवसृष्टिमें जो नियम स्वतःसिद्ध जनाये उनका कथन हे, नहीं के सर्वज्ञताका ठेका लिया हे; अतः जबतक उनके विरुद्ध परिक्षामें न आवे वहांतक वे अनियम नहीं कहेजासकते. केवल प्रत्यक्षानुमानादि आधार योग्य नहीं हें, इसलिये नियम ग्रहणमें अनुभवकोभी साथ लेना चाहिये तोही स्वतःसिद्ध रुपसे ग्रहण होसकेंगे. मध्यस्थ देखो. विशेष शंका समाधान मूल ग्रंथमेंभी हें ॥

हम इस प्रसंगको समाप्त करते हुये अपने शुद्ध निश्चयसे इतना अवश्य कह सकते हें कि जहांतक–(१) मूलमेटर (माया--प्रकृति--परमाणु–शक्ति) का मुख्य स्वरुप ज्ञात वा निश्चित न हो, (२) एक अमिश्रित निरवयव पदार्थ, नाना ओर विरोधि धर्मवाले फोर्म-रुप करसकता हे वा एकतत्वके अनेक रुप होसकते हें, (३) एक स्वरुप (जात्)में दूसरेका प्रवेश होसकता हे, (४) अभावसे भाव रुपकी उत्पत्ति होसकती हे, (५) दृष्टा दृश्य स्वरुपतः अभिन्न हें, वे भिन्न २ नहीं होते, (६) ओर देश विना गति. यह ६ वा इनमेंसे दो तीन, प्रयोगसे वा मध्यस्थद्वारा सिद्ध न होजायँ, वहांतक कितनाभी कुछभी कहो वा मानो, उक्त नियमोंपर ध्यान आये विना नहीं रहेगा.

हरकोई विद्वान जहांदीदा–बहुश्रुत यह कहसकता हे, " कि किसी विषयके संबंधमें जब कुछ कहाजाय तब वक्ता वा लेखककी कोई न कोई प्रकारकी दृष्टि वा कोई न कोई प्रकारका उद्देश जरुर होगा. यथा--धर्म, परमार्थ, देशहित, लोकहित, अपना मानाहुवा सत्य, दोष दर्शन–खंडन, अनुकूल होनेसे मंडन–इत्यादि दृष्टि वा उद्देश होता हे ओर इसीवास्ते परका विषय–आशय, उसकी दृष्टिमें वेसा नहीं भासता जैसा के परको भान होता हे, इतनाही नहीं किंतु उस विषयके संबंधमें, उसकी वृत्तिमें एसाही सूझेगा–एसाही स्फुरेगा जेसा के उसका उद्देश वा दृष्टि हे." जब यूं हो ओर विवेचक अपना उद्देश वा दृष्टि जनाये विना विषयकी निंदा स्तुतिके प्रवाहमें तनाता हो तो फेर उसके कथनको कितने दरज्जे वजनदार मानें यह शोधक--परीक्षकको स्वयं विचारने योग्य हे. धन्य हे उन महानुभाव पुरुषोंको

कि जो तटस्थ दृष्टिसे वा निष्काम उद्देशसे कहते हें. फेर वोह ठीक हो वा अठीक हो, यह जुदी बात हे ॥ २६ ॥ यहांतक उपोद्घात प्रकरण १ का विचार हुवा. अब आगे संक्षेपमें प्रमाणप्रकरण २ का विचार होगा.—

(२) प्रमाणप्रकरण–विचार.—

" नोट. "

शोधक परीक्षक महाशय! आगे पक्षकारोंके जिन मंतव्योंको असिद्ध कहा-जायगा वे मंतव्य उनके कपोलकल्पितमात्रही हें ओर यहां जो लिखा हे वोह यूंही हे, एसा नहीं जान्ना चाहिये, किंतु पक्षकार उस विषयकी सिद्धिमें हेतु, युक्ति ओर दृष्टांतभी देते हें, जैसा के सू. १५ से २६ तकमें कहा हे. परंतु वे हेतु, युक्ति, दृष्टांत या तो एक देशी (रोचक, भयानक) दृष्टिसे कल्पे हें (बस. ७८ देखो), वा तो विश्वाससे कहे जाते हें वा तो लूलेपांगले हें अथवा सदोष (बस. ७६ । ८८ देखो) होते हें; इसलिये उनका मंतव्य असिद्ध होजाता हे, एसा जान्ना चाहिये. ओर इसीवास्ते यहां सारप्रसंगमें उन हेत्वादिको नहीं लिखा हे; परंतु उनका पूर्वपक्ष ओर उसकी असमीचीनता मूलग्रंथमें हे; यहां तो वृत्तिमात्र लिखेंगे. तथापि नियमाध्यायमें संक्षेपमें एसे हेतु ओर उदाहरण लिखे गये हें कि उनको विचारनेसे शोधक, परीक्षक असिद्ध पक्षोंकी सिद्धिवास्ते पक्षकारकी तरफसे हेतु, युक्ति उपजाकेभी उनके अमान्य पक्षांशकी अर्थात उनके मंतव्यका जो अंश समीचीन नहीं हे उस अंशकी असमीचीनता जानसके; इसलिये अब आगे विस्तारसे नहीं लिखेंगे. विस्तार देखना हो तो मूलमें हे ॥

प्रमाका नित्यत्व नहींही पूर्वोत्तरमें न होनेसे (अ.) ॥ २७ ॥

अर्थ.—अ. २ । ७७ में ज्ञानस्वरुप प्रमाका अनिषेध कहा हे, परंतु सो-प्रमा नित्य नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि वोह अपनी उत्पत्तिके पूर्व ओर नाशके पीछे नहीं जान पडता. जेसे के व्यवहारमें ज्ञानकी उत्पत्ति-नाश देखते हें, ओर तदाश्रय शरीरका उत्पत्ति नाश होनेसे उसकी उत्पत्ति नाश प्रसिद्ध हे. यह मंतव्य, प्रकृति वादिको, किसी यूनानीको ओर ज्ञानगुणकी उत्पत्ति नाश, इस अंशमें नैयायकोंको संमत हे. इस मंतव्यकी असमीचीनता स्वतःप्रमाणअधिकरण (७७ से ८७ तक) ओर प्रकाशाधिकरण (३८८ से ४०० तक) से स्पष्ट होजाती हे. ओर अ. १ गत चिदचिदविवेकप्रकरणसेभी जानी जाती हे. ओर बस. में इसका विशेष विस्तार हे. ॥ २७ ॥

स्वतःप्रमाण नहींही परतःकी परंपरासे (अ.) ॥ २८ ॥

अर्थ.—स्वतःप्रमाणरुप कोई नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि परतः प्रमाणकी परंपरा देखते हैं. यह मंतव्य नैयायक, वैशेषिक ओर एक प्रकृतिवादिका हे; सो ८१ । ८३ से असिद्ध हे ॥ २८ ॥ ज्ञान यह स्वयं कोई तत्व हे वा जन्य गुण हे, वा जन्य अवस्था हे, इसमें फिलोसोफरोंका मतभेद हे. ज्ञानके साधन—मन ओर इंद्रियोंकी परतः याने अनुमानसे सिद्धि होती हे तो फेर अन्य तमाम परतःप्रमाणके विषय हों, इसमें क्या कहना हे. परंतु यह परत भी जिसमें ग्रहण होता हे सो स्वतःप्रमाण मान्ना पडता हे. ईश्वरवादिको तो स्वतःप्रमाण स्वीकारनाही होता हे. स्वतःप्रमाणकी सिद्धि बस. के उत्तरार्द्धमेंभी विस्तारके साथ की हे ॥ २८ ॥

प्रत्यक्ष अपनेमें प्रमाणही दर्शनसे (अ.) ॥ २९ ॥

अर्थ.—प्रत्यक्षप्रमाण अपनी प्रमाणतामें स्वतःप्रमाण हे, एसा निश्चित हे; क्योंकि एसा व्यवहारमें देखते हैं; यह पक्ष किसी पंथाई भाई ओर किसी यौक्तिक, जडवादिकोभी मान्य हे. परंतु सर्वांशमें यह मंतव्य समीचीन नहीं हे, यह वात-अनुभव (८९), अपूर्ण (९२), स्वयंप्रकाश (३९१) ओर द्विधा (४४१) से सिद्ध होजाती हे ॥ २९ ॥

जब प्रत्यक्षकी यह दशा तो अनुमानादिके वास्ते तो क्या कहना हे (९१ याद कीजे) यहां सू. १०० वगेरेभी ध्यानमें लेनाचाहिये. (विशेष बस. में).

गोचर आधार योग्यही (अ.) ॥ ३० ॥

अर्थ.—जो मन, वाणि, इंद्रियका गोचर हे, वोह आधारके योग्यही हे याने मान्य होता हे. अर्थात प्रतीतिमात्र आधार योग्य हे. यह पक्ष किसी जडवादि, किसी विश्वासी ओर कितनेक मिश्रित पक्षवालोंको संमत हे. परंतु इसपक्षका सर्वांश समीचीन नहीं हे उस अंशकी असमीचीनता ९२ । ९१ । ८९ । ६८३ । ६८७ इन सूत्रोंसे स्पष्ट हे; ओर यदि पक्षकार उदाहरण देवे तो ६०९ । ६१२ । ६१४ परभी ध्यान देनाचाहिये ॥ ३० ॥ रज्जुसर्पादिको सत्य मान्नेवाले, आत्मख्याति वा सत्यख्यातिको स्वीकारनेवाले होते हैं. इंद्रजाल वगेरेके तमाशे सत्यमान्नेवाला अज्ञमंडल होता हे. (विशेषमूलमें) ॥ ३० ॥

बहुमत मान्यही अन्यथा दुःख होनेसे (अ.) ॥ ३१ ॥

अर्थ.—जिस पक्ष वा विषयको ज्यादे मनुष्य स्वीकारते हों सो मान्नाही

चाहिये; क्योंकि जो एसा न कियाजाय तो इसके परिणाममें दुःख होता हे. यह पक्ष व्यवहारपक्षवादि ओर प्रकृतिवादिकोभी संमत हे (विकासवाद याद करो). परंतु सर्वांश (व्यवहारनय, निश्चयनय)में यह पक्ष समीचीन नहीं हे. इसके अ-योग्यांशकी असमीचीनता ६६ । ६८ । ९५ । ११९ । ६८९ । ५४६ । ७०२ सूत्रोंसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ३१ ॥ लोकव्यवहार ओर नेशन प्रसंगमें इस पक्षका अनादर नहींभी होता, क्योंकि सांसारिक सुखका आधार परिस्थिति ओर जनसमु-दायपरभी होता हे, परंतु परमार्थ (निश्चयनय) प्रसंगमें इस पक्षको आदर नहीं मिलता. परमार्थ प्रसंगमें इस पक्षका इसलिये सत्कार नहीं होता कि मानवमंडलमें हमेशे अज्ञ मंडलकी विशेषता होती आइ हे ओर ज्ञानवान विवेकी तो सिंहसमान विरलही होते आये हें ॥ ३१ ॥

परोक्षप्रमाण अमान्यही (अ.) ॥ ३२ ॥

अर्थ.—अनुमानप्रमाण, प्रमाणरुप न होनेसे प्रमाणरुपमें अमान्य हो एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष जडवादि (दहरिया, चार्वाक वगेरे)का हे; परंतु सर्वांशमें यह मंतव्य समीचीन नहीं हे. अनादरणीय अंशकी असमीचीनता ५६९ से ५७३ तकके सूत्रोंसे तथा ९१ । १०३ । ४८४ । से स्पष्ट हे. ओर यहां ४८२ । ६८३ । ४७७ परभी ध्यान देना चाहिये ॥ ३२ ॥

मानवप्रमाणकी पूर्णताभीही, सर्वज्ञके वचनमें उसकी साक्षी श्रवणसे (अ.) ॥ ३३ ॥

अर्थ.—मनुष्यमंडलमें अमुक पुरुषका प्रमाण पूर्ण–निर्भ्रांत–सत्यभी होता हे अर्थात आप्त–योगीका कथन प्रमाण हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि सर्वज्ञके वाक्यमें उस योग्य–मनुष्यकी साक्षी ली गई हे. यह मंतव्य ईश्वरीयग्रंथ मान्नेवा-लोंका हे, उसकी असमीचीनता मध्यस्थाधिकरण, असर्वज्ञाधिकरण, ओर सू. ९२ १०५, ८९ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ३३ ॥

एसा धीर पुरुषोंसे सुना हे १, जो दूत कहे सो मानो २, योगी (तिर्थंकर वगेरे) सर्वज्ञ होते हें ३, में ईश्वर मनुष्यरुपमें अवतार लेता हुं ४, इत्यादि वाक्य मान्यग्रंथोंमें हें. परंतु मान्यग्रंथोंमें ओर मानेहुये योग्यपुरुषोंके लेखमें मतभेद हे (यथा पुनर्जन्म, मोक्ष, अहिंसा, ओर सृष्टिउत्पत्तिमें मतभेद हे अ. २ में कहा हे), इसलिये मनुष्यके प्रमाणकी अपूर्णता हे. परिच्छिन्न–अल्पज्ञ मनुष्यकी साक्षी लेनाही वोह वाक्य सर्वज्ञका नहीं, एसा सिद्ध होता हे. अल्पज्ञकी साक्षी, सर्वज्ञ

नहीं लेसकता. विश्वास दिलाने वास्ते रोचक मिथ्यावाक्य, सर्वज्ञके नहीं होसकते (विशेष अद्वैतादर्शमें विस्तार हे) ॥ ३३ ॥

शब्द स्वतःप्रमाणही (अ.) ॥ ३४ ॥

अर्थ.—सर्वज्ञका शब्द स्वतःप्रमाणरुप हो इसमें तो क्या कहना हे, बल्के मनुष्यको किसी सर्वज्ञके विना विशेषज्ञान नहीं मिलसकता; इसलिये सर्वज्ञ सूचित आप्त पुरुषका वाक्य स्वतःप्रमाणही होता हे. इतने अंशमें शब्दप्रमाण, स्वतःप्रमाण हे. यह मंतव्य जडवादियोंसे इतर लगभग तमाम चेतनवादियोंका हे. इस बातकी असिद्धि १०५ । ११५ । ५९६ । ५३८ । ५३६ । ८९ । ९१ । ९२ । ९९ ओर असर्वज्ञाधिकरणसे होजाती हे ॥ ३४ ॥

मध्यस्थ आधार योग्य नहींभीही प्रत्यक्षमें
दोषके स्वीकारसे (अ.) ॥ ३५ ॥

अर्थ.—पूर्वोक्त निर्णायक मध्यस्थ (११४ । ११९) आधारके योग्यही हे, एसा नहींभी; क्योंकि अ. २ में प्रत्यक्षप्रमाणमेंभी दोषका स्विकार किया गया हे (८९) ओर मध्यस्थमें प्रत्यक्षको मिंबर माना हे. यह मंतव्य विश्वासिओंको वा जो शब्दको स्वतंत्रप्रमाण मान्नेवाले हें उनको संमत हे. इसकी असमीचीनता मध्यस्थाधिकरण, दृष्टांतअधिकरण ओर प्रत्यक्षादि (१०० वगेरे) सूत्रोंसे जानलीजाती हे. मानवमंडलकी जो ज्ञान मर्यादा हे उस मर्यादातकमें मध्यस्थका निषेध नहीं होसकता ॥ ३५ ॥

उससे शब्द बलवानही, सब सृष्टिनियम अज्ञात होनेसे (अ.) ॥ ३६ ॥

अर्थ.—मध्यस्थसे प्रसिद्ध आप्तोंका शब्द ज्यादा बलवान हे एसा निश्चय होता हे, क्योंकि मध्यस्थगत जो सृष्टिनियम सभासद हें वे याने सब सृष्टिनियम मनुष्यको अज्ञात हें (६९५) अर्थात मध्यस्थ नामकी सभा अपूर्ण हे. इस मंतव्यके मान्नेवाले नं. ३५ अनुसार हें. इसकी असमीचीनता मध्यस्थाधिकरण, दृष्टांताधिकरण, असर्वज्ञ अधिकरण ओर सू. १०५ से सिद्ध होजाती हे ॥ ३६ ॥

बोधक ओर उसके बोधकी परीक्षा नहींही
परीक्षक अल्पज्ञ होनेसे (अ.) ॥ ३७ ॥

अर्थ.—हरकोई सर्वज्ञ (ईश्वर वा योगी) वा उपदेशक (गुरु-आचार्य)का वाक्य (ग्रंथ) जो कुछ बोध करता हे उसको विश्वाससे मानलेना चाहिये; क्योंकि उसकी वा उसके बोधकी परिक्षा नहीं होसकती एसा निश्चय होता हे; कारणके

वोह विशेषज्ञानवाला वा सर्वज्ञ हे ओर परीक्षक अल्पज्ञ हे. यह मंतव्य उन सबका हे जो कि ईश्वरीय ग्रंथ मानते हें वा योगीमनुष्यको सर्वज्ञ मानते हें किंवा अपने मान्य ग्रंथ वा आचार्यके वाक्यमें दुराग्रह रखते हें. इसकी असमीचीनता असर्वज्ञाधिकरण, ओर सू. १०५। १०७। ५९६। से स्पष्ट होजाती हे. अर्थात सर्व अंशमें यह मान्यता मान्य नहीं होसकती ॥ ३७ ॥

डाकटरकी परिक्षा डाकटर करसकता हे अन्यको उसका कथन, विश्वाससेही मान्नापडता हे. गुरुकी परिक्षा शिष्य नहीं करसकता, अतः शिष्यको उसका बोध विश्वाससे मान्नापडता हे. इसीप्रकार मान्य ग्रंथोक्त परोक्ष स्वर्ग, नरक, मोक्ष, पुनर्जन्म वगेरेको विश्वाससे मानलेना चाहिये, उसपर तकरार वा तर्क करना मनुष्यका काम नहीं हे; तथा जो बोधक हे वोह सर्वज्ञ हे उसकी ज्ञानशक्ति ओर उसकी योग्यता तथा परोक्ष अदृष्ट सूक्ष्म पदार्थोंके ज्ञानका अनुभव अयोगी मनुष्य नहीं जानसकता; इसलिये उस सर्वज्ञके कथनको विश्वाससे मानलेना चाहिये. यह विश्वासियोंका मत हे. परंतु जोजो सर्वज्ञोंके ग्रंथ मानेजाते हें उनउन ग्रंथोंके मंतव्योंमें मतभेद हे; अतः परिक्षा करनेकी आपत्ति होती हे. अजाने विषयमें परके विश्वासकी अपेक्षा स्पष्ट हे (७२१देखिये). मातापिता वा गुरुका विश्वास न हो तो उसको शिक्षणही नहीं मिलसकता, ओर पीछे वही मातापिता वा गुरु होता हे, इसलिये पक्षमें अव्याप्ति होनेसे अग्राह्य हे. बोधके अनुसार न हो वा परिक्षाके अनुसार न हो वा उसबोधोक्त (३७) स्वरुपका अनुभव न होसके तो वोह बोध किस कामका? निष्फल हे. सफलत्वकी सिद्धिही परीक्षा हे.

जो एसा न मानें ओर सर्वथा पक्षकारके कहे अनुसार मानलेवें तो परीक्षककी योग्यताकी निष्फलता होगी, शिक्षक होनेकी परंपरा नष्ट होजायगी ओर अंधपरंपराकी प्रवृत्ति होजावेगी (जेसाके वर्तमानमें देख रहे हें); अतः अपनी योग्यता अनुसार आपद्वारा ओर परद्वारा परिक्षा होसकनेसे परिक्षा कर्तव्य हे. अन्यथा विश्वास करना पडेगा. ७२१ यादकरो ॥ व्यवहार ओर साधारण मंडलमें श्रद्धाविश्वासके विना काम नहीं चलता; क्योंकि ओरोनीजनल, फ्रिथिंकर, परीक्षक तथा इन्डीपेन्डन्ट तो विरलही होते हें; अतः यथाप्रसंग व्यवस्था की जाती हे ॥ ३७ ॥

पुनरुक्ति गौरव ओर विरोध सर्वथा अमान्यही दोष होनेसे (अ.) ॥३८॥

अर्थ.—एकहीका बारबार कथन, अनावश्यक विशेषका अपादान, ओर पू-

र्वापर विरुद्ध कथन—सर्वथा अमान्यही होता हे; क्योंकि पुनरुक्ति आदि दोष होते हें. यह मंतव्य सर्व साक्षरोंका हे. परंतु वे सर्वथा एसा नहीं मानते किंतु यथा प्रसंग इसको दूषित कहते हें; अतः सर्वांशमें सूत्रोक्त मंतव्य मान्य नहीं होसकता. यह बात ३३ । ३४ । ३५ । ३७ । ९७ से स्पष्ट होजाती हे अर्थात व्यर्थ हो तो पुनरुक्ति ओर गौरव दोष हें ओर असत् हो तो पूर्वापरविरोध, दोष होता हे, अन्यथा नहीं ॥ ३८ ॥

प्रमाण प्रसंगका विचार बहुत विस्तारवाला हे. यहां जितने अंशकी आवश्यकता जानी उसका उदाहरणरुपसे बयान हुवा हे ॥ अब आगे असिद्धप्रकरण गत सृष्टिनियमोंका विचार करेंगे.—

(३) सृष्टिनियमप्रकरण विचार.

निष्फलत्वभीही अवशेषाकाशवत् (अ.) ॥ ३९ ॥

अर्थ.—ब्रह्मांडमें निष्फल (अनुपयोगी) वस्तुभी हें एसा निश्चय होता हे. जेसे के अनंत आकाशमें जहांतक ग्रह उपग्रह वा परमाणु हें वहांसे आगे जो अवशेष आकाश हे वोह अनुपयोगी रहता हे. यह मंतव्य मोक्षसे अनावृत्ति मान्नेवालोंका हे. सो मंतव्य सफल (१२७) प्रवाह (३६७) अनुच्छेद (३६९) असांत (१९०) ओर ३७१ से असिद्ध हे ॥ ३९ ॥

स्वरुपसंभावनासे इतरकी संभावनाभीही काल, गत जितना न रहनेसे (अ.) ॥ ४० ॥

अर्थ.—पदार्थ किसप्रकारके होसकते हें सो १२९ सें १३४ तकमें याने स्वरुपसंभावनामें १२९ प्रकारके जनाये हें, उनसे इतर प्रकारकेभी होसकते हें एसा निश्चय होता हे जेसेके कालमेंसे जितना काल आजतक गया, शेष उतना न रहना चाहिये अर्थात अनादिसांत हे याने १९० के १३० के विरुद्ध हे. यह मंतव्य प्रकृतिवादिसे इतर अनेक विश्वासवादियोंका हे. ओर किसी किसी यौक्तिकोंकाभी हे. इसकी असिद्धि स्वरुपसंभावनाअधिकरण, दृष्टांताधिकरण, परिमाणाधिकरण, कारण, मूल ओर उपादानाधिकरणसे होजाती हे ॥ ४० ॥ काल गतिमान ओर नाशवान नहीं किंतु गतिकी उपाधिसे उसके भूतादि विभाग कल्पेजाते हें, इसलिये गत ओर शेष मान्ना कल्पनामात्र हे.[१] एक बौद्ध असत्कोभी पदार्थ कहता हे, जैन सदसद्,

[१] या तो कालस्वरुपतः वस्तु न होगा अर्थात सूत्रोक्त हेतु असिद्ध हेतु ठेरनेसे पक्ष असिद्ध रहेगा.

मैमांसिक भेदसहित अभेद, वेदांत मायाको भावरुप मानके उसे सावयव निरवयवसे विलक्षण ओर उसे अनादिसांत, ईश्वरवादि ईश्वरको विभु सक्रिय, विश्वासी जीवको सादिअनंत, वेदांति जीव मायाको अनादिसांत, नैयायक प्रागभावको अनादिसांत ओर प्रध्वंसको सादिअनंत ओर परिमाण रहित, पौराणिक ओर याहूदि ईश्वरको व्यापक ओर साकार (अवतारधारी-मूर्तिमान) ओर नैयायकादि व्यापकमें शब्दादि गुण वा इच्छा--प्रयत्न--कर्तृत्व मानते हैं. कोई नैयायक सत् , असत्, सदसद् , सदसद्से विलक्षण इन चारोंसे इतर प्रकारके (पंचम प्रकारके) पदार्थकी कल्पना करता हे. यह सब मंतव्य असंभव दोषसे ग्रसित हें ओर व्याप्ति रहित हें. मध्यस्थ द्वारा इनिकी असमीचीनता सिद्ध होजाती हे; अतः स्वरुपसंभावनाका निषेध नहीं ओर उससे अन्यथाकी व्याप्ति नहीं जानपडती, एसा मालूम होता हे. (शं.) मनुष्य अपूर्ण, अल्पज्ञ ओर ब्रह्मांड बुद्धिकी मर्यादासे बाहिर हे; अतः स्वरुपसंभावनासे इतर प्रकारके स्वरुपकी संभावना हे (उ.) यहां मानवमंडलकी बुद्धिकी सीमातकका ग्रहण हे. जिस समय इतर प्रकारके ज्ञात हों उस समय इतरप्रकार न मान्नेमें आग्रह नहीं हे. परंतु इतरप्रकार न होनेकी संभावना हे अर्थात न हों ओर मानलेवें तो असत्का ग्रहण होता हे; अतः ज्ञात न हो वहांतक इतरप्रकार मान्ना अयोग्य हे ॥ ४० ॥

मूल अमूल ओर अविकारी नहींभीही अमृतावत प्रवाह रहनेसे (अ.) ॥ ४१ ॥

अर्थ.—ब्रह्मांडमें सब मूल पदार्थ स्वरुपसे अमूल हें ओर अविकारी हें, एसे नहींभी हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे के गलेका कोई मूल स्वरुप नहीं हे किंतु प्रवाहसे पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर परिणाम होता आरहा हे अर्थात विकारीही हे. यह मंतव्य आर्यसमाजियोंसे इतर अनेक पक्षकारोंका हे. इसकी असमीचीनता मूल अधिकरण, अनुत्पत्ति (३०० । २८० । ३०७ से ३१४ तक) से स्पष्ट होजाती हे. अमृताके नाना स्वरुप अन्यके संयोग विना नहीं होते; अतः पूर्वपूर्वकाही उत्तर उत्तर परिणाम नहीं मानसकते; इसलिये मूल अमूलही हे, यह सिद्ध होजाता हे ॥ ४१ ॥

जीववादि ओर पुनर्जन्मवादि जीवको मूल तत्वमानके यथा शरीर उसका परिणाम पाना (विकारको पाना) मानते हें. उसी जीवमें रागादि गुण वा उसकी अवस्था उत्पन्न नाश होना कहते हें. जो जीवको विभु ओर दुःख सुख होना मा-

नते हैं वेभी तत्वमें विकार होनेको स्वीकार लेते हैं. इसीप्रकार जो जीवको अणु मानके उसको दुःखसुख होना मानते हैं वेभी तत्वमें विकार होना मानलेते हैं. पौराणि, मूल ईश्वरको वाराहादिरुपमें आना मानते हैं. बायबलमें ईश्वर अग्निरुपमें, मनुष्यरुपमें प्रकट होना कहा हे. वल्लभदेव मूलब्रह्मका अविकृतपरिणाम होना मानता हे. कोई औ. हाई. तत्वको विकार पाके जलरुप होना मानता हे. सांख्य मूल प्रकृतिको, वेदांत मूलमायाको विरुद्धधर्मवाली ओर परिणाम पाना (विकारी) मानते हैं. योरोपका एक फिलोसोफर पूर्वपूर्वसे उत्तर उत्तर परिणाम पाते रहना कहता हे याने प्रवाहसे विकृतपरिणाम मानता हे अर्थात मूलतत्व कोई नहीं एसा कहता हे. यह सब पक्ष निर्दोष सिद्ध नहीं होते; किंतु अनेकका समूह हुये उनके गुण उद्भव तिरोधित होनेपर अनेक रुप उत्पन्न नाश होना सिद्ध होता हे. नहींके मूलतत्वोंका परिवर्तन. (१९८ । २०५ । ३५० । ३५२ । विचारो) ॥ ४१ ॥

स्वरुपकी उत्पत्ति ओर नाशभीही घटवत् (अ.) ॥ ४२ ॥

अर्थ.—नवीन स्वरुप याने नवीन पदार्थकी उत्पत्ति ओर नाशभी होता हे एसा निश्चय होता हे; जेसा कि घटपूर्वमें न था नवीन उत्पन्न हुवा हे ओर उत्तरमें न रहेगा याने नाश होता हे. यह पक्ष नैयायक ओर नवीनसायंसकाभी हे. इसकी असिद्धि सू. १३७ । १३९ । ३०८ । ३१० । ३१२ । ३१४ । ३५२ । ३५३ । ३६१ । १८४ । १९६ । ६७२ । ६७३ से होजाती हे ॥ ४२ ॥

नवीनसायंस (दर्शन) एकसे अनेक मिलने पीछे नवीन स्वरुप उत्पन्न होना ओर पीछे उसका नाश होना मानती हे; जेसे के औ. हा. मिलके नवीन स्वरुप याने जल पेदा होता हे ओर उनके वियोग होनेपर उसका नाश होजाता हे एसा कहती हे. नैयायक प्रध्वंसाभावको नवीन उत्पन्न होना ओर अनादि प्रागभावका नाश होजाना ओर घटको नवीन पेदा होना ओर उसका नाश होना तथा साम्यकाभावकी उत्पत्ति ओर नाश मानते हैं. परंतु यह तमाम पक्ष सयुक्त नहीं हैं; क्योंकि अभाव कोई वस्तु नहीं हे (३८६ देखो) ओर घट, माटीसे इतर वस्तु नहीं हे; तथा जलभी उसके उपादानसे अन्य कुछभी नहीं हे. (शं.) प्यास बुझाना वगेरे गुण, औ. हा. में नहीं हे; उभय अमुक परिणाममें मिलें तब इस गुणवाला जल होता हे; इसलिये या तो नवीनगुण पेदा हुये, एसा मान्ना चाहिये; वा तो कोइ प्रकारभी होगा परंतु औ. हा. में तो वे गुण नहीं थे, एसा मान्नाही पडेगा; अतः नवीनोत्पत्ति मान्नी होगी. (उ.) फ्री होके यदि सृष्टिनियम विचारोगे तो अभा-

वसे भावरुप पदार्थकी उत्पत्ति मान्ना वा कहना हठमात्र हे, एसा जानलोगे. अनभाव (३१०) विचारो ॥ ४२ ॥

मिश्रणमें मूलका बदलभीही अन्यथा कार्य न होनेसे (अ.) ॥ ४३ ॥

अर्थ.—दूसरेके साथ जब तत्व संसर्गमें आवें एसे मिश्रण होनेपर तत्वोंका स्वरुप बदलभी जाता हे एसा निश्चित हे, जो एसा न मानें तो बीज वृक्षादि नाना विलक्षण कार्य न हों; अतः तत्वका बदलभी होता हे. यह मंतव्य नैयायक ओर नवीन पच्छमकी सायंसका हे; परंतु यह मंतव्य मूलाधिकरणसे असिद्ध ठेरता हे. किंतु विजातीय मिश्रण होनेपर तत्वोंके गुणादि उद्भव तिरोधित होनेसे नाना नवीन फोर्मे होते हें; नहीं कि तत्वोंके स्वरुपका बदल होता हे; अतः संसर्गकालमेंभी तत्व अपने स्वरुपको नहीं छोडते यही नियम सिद्ध हे. यदि उनका स्वरुप बदलता हो तो वे (बीजादि) सत रज तमके मिश्रण—कंपोंड—सावयव होंगे; क्योंकि एसा रुप हुये विना बदलना, यह कथनही नहीं बनता ॥ ४३ ॥

संख्यासे अनंतही अन्यथा अधिष्ठानमें सीमत्वकी आपति (अ.) ॥ ४४ ॥

अर्थ.—जितने परिच्छिनतत्व (जीव, परमाणु,) हें वे असंख्य याने संख्यामें अनंत हें. एसा निश्चय होता हे. अर्थात उनका अधिष्ठान ईश्वर देश—सीमासे अनंत हे; इसलिये उनमें रहे हुये परमाणुभी संख्यासे अनंत होने चाहिये. जो एसा नहीं मानें तो उनका अधिष्ठान ईश्वर वा देशभी ससीम मान्ना पडेगा; अतः मूल परमाणु ओर उनके गुण-शक्ति अनंत हें एसा सिद्ध होता हे. यह मंतव्य विश्वासी, यौक्तिक, मोक्षवादि ओर जीववादिओंको संमत हे. इसकी असमीचीनता १४७। १४९। १५३। १३७। १३९। १९०। १९२ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ४४ ॥

जीव ओर परमाणु अनादिसांत, अनादिअनंत, सादिअनंत वा सादिसांत मानो वा इनसे अन्य प्रकारके मानो, परंतु संख्यासे अनंत मान्ने चादिये, यह पक्ष हे.

विश्वासी, थी. सो, ओर सूफी, जीव परमाणुको सादिअनंत मानकेभी संख्यासे अनंत मानते हें. तद्वत पौराणि जीवको सादिअनंत ओर संख्यासे अनंत मानते हें. जैन, न्याय, वैशेषिक, मैमांसिक, यूनानी, रामानुज, सांख्य, योग, दयानंदिमेंसे एक पक्ष, जीव परमाणुओंको अनादिअनंत मानके संख्यासे अनंत

मानते हें. कितनेक नित्य गुणोंको संख्यासे अनंत ओर कितनेक अनित्य गुणोंको संख्यामें अनंत मानते हें. नैयायकादि, प्रागभावको अनादिसांत ओर प्रध्वंसाभावको सादिअनंत मानके संख्यासे अनंत मानते हें, तथा विशेष पदार्थको नित्य ओर संख्यामें अनंत मानते हें. जैन, जीव ओर पुदगल तथा उनके गुण शक्तिको नित्य मानके संख्यामें अनंताअनंत मानते हें. स्वीडनबोर्ग जीवोंको नित्य ओर संख्यासे अनंत मानता हे. ईश्वरवादि ईश्वरके गुण शक्तिको नित्य मानके उनको संख्यामें अनंत मानते हें ॥ परंतु यह सब-मंतव्य उक्त नियमोंसे असंगत जानपडते हें ॥ ४४ ॥

उन्नति अवनति अनंतही (अ.) ॥ ४५ ॥

अर्थ.—द्रव्योंके परस्परके मिश्रणसे पदार्थ उन्नतिपर हें इस उन्नतिके प्रवाहकी कालसे सीमा नहीं हे, जीवादिकी उन्नति हमेशे होती रहेगी, तद्वत् अवनतिका प्रवाह हे; एसा निश्चय होता हे. अनंत उन्नति, ब्रह्म ओर थी. सो. का मंतव्य हे ओर अनंत उन्नति अवनति एक जडवादिका पक्ष हे. मोक्ष (उन्नति) अवस्था सादिअनंत हे-कालसे उसका अंत नहीं हे, यह पक्ष आर्यसमाजी ओर एक मैमांसिकसे इतर तमाम मोक्षवादिओंको (विश्वासी, यौक्तिकोंको) संमत हे. तद्वत कालसे अनंत अवनति विश्वासियोंको संमत हे. इस पक्षकी असमीचीनता १२७ । ३६७ । १५१ । १९० । १९२ । १४५ । तथा प्रवाह अधिकरणसे स्पष्ट होजाती हे. ओर अ. ३ गत मुक्ति प्रसंगसे यह पक्ष असंगत रहता हे. अनंत उन्नति ओर अनंत अवनतिका विरोध हे, इसलिबेभी असिद्ध हे ॥ ४५ ॥

जडवादि परमाणुके अनंत टुकडे (अवनति) होना मानता हे. तथा जेसे पहेलेके फोर्मसे वर्तमानके फोर्म (मनुष्य प्राणि) उन्नतिपर हें एसे उन्नति होतीही रहेगी, एसा मानलेता हे ॥ ४५ ॥

बीज वृक्षवत् धाराका विषयभीही (अ.) ॥ ४६ ॥

अर्थ.—जेसे वृक्षसे बीज, बीजसे वृक्ष एसे पूर्वपूर्व अनवस्था चलती हे एसेही पदार्थोंकी धारा हे उनका कहीं मूल वा अंत नहीं होता; एसाभी निश्चय होता हे. यह मंतव्य पच्छमके एक फिलोसोफरका हे ओर अभाव प्रसंगमें नवीन नैयायककोभी संमत हे. परंतु इसकी असिद्धि १५४ ओर मूलाधिकरणसे होजाती हे; क्योंकि अन्यके संयोग वियोग याने मिश्रणके विना कार्यका प्रवाह नहीं होता; अतः धाराकाविषय तत्व नहीं होता; किंतु प्रवाहसे स्थिति--अवस्थाका बदल--परिवर्तन याने रुपांतर होता हे ओर अवस्था तत्व नहीं होती ॥ ४६ ॥

पदार्थ अपरिमाणभीही तम अभाव ओर स्वप्न दृश्यवत् (अ.) ॥ ४७ ॥

अर्थ.—प्रसिद्ध पदार्थ अणु, विभु ओर जन्य मध्यम इसप्रकार ३ परिमाणमेंसे हरकोई एक प्रकारमेंसे होते हें तथापि परिमाणरहितभी होते हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे कि तम, अभाव ओर स्वप्नसृष्टिके पदार्थ परिमाणरहित होते हें (तद्वतशक्तिभी). यह पक्ष अनेक पक्षकारोंका हे. इस मंतव्यकी असिद्धि परिमाण (१५९ से १७३ तक) ओर स्वरुपाधिकरण (१२९ से १३४ तक) से होजाती हे; क्योंकि परिक्षा करनेपर तम, अभाव ओर स्वप्नके पदार्थ परिच्छिन्नही सिद्ध होंगे ॥ ४७ ॥

अभाव कोई पदार्थ नहीं (३८६) ओर मानो तो परमाणुका देशके स्वरुपमें ओर देशका परमाणुमें अभाव होनेसे अभाव परिच्छिन्न ठेरा. तमका प्रकाशमें अभाव होनेसे तमभी परिच्छिन्न ठेरा. स्वप्नके पदार्थ स्वरुप मानो तो शरीरसे इतर देशमें न होनेसे परिच्छिन्न मान्ने पडेंगे. अथवा वहांके देशकी अपेक्षासे परिच्छिन्नही सिद्ध होंगे. तद्वत् गुण, गुरुत्वाकर्षण, धर्म, गति, विशेष, संबंध, शक्ति, शब्द, यदि स्वरुपतः पदार्थ हों तो तीन परिमाणमेंसे एक प्रकारके होंगे. जेसे के व्यापकके गुण, गुरुत्व, धर्म, संबंध, विशेष ओर शक्ति व्यापक, ओर परिच्छिन्नके परिच्छिन्न होंगे. काल, अक्रिय होनेसे उसको विभु परिमाण मान्ना होगा. वेदांति मायाको विलक्षण मानते हें; क्योंकि अनिर्वचनीय रहती हे; तथापि ब्रह्मकी अपेक्षा अविभु परिमाण हे. क्षणिकविज्ञानवादि परिमाण होना मानता हे अतः विज्ञान परिच्छिन्न हे. गुण ओर शक्तिके परिमाण बतानेमें जडवादि तथा चेतनवादि अटकते हें. विश्वासीभाई इस नियमको स्पर्शही नहीं करते. यौक्तिकोंके इसमें नाना पक्ष हें; वे एक निर्णयपर नहीं हें. मिश्रित पक्षवालोंकी इसमें चांच डूबना कठीन हे. अनेकांतवादि विरुद्धधर्म (अणु वा विभुभी, मध्यमभी) को ले दोडनेसे दूषित होजाते हें. अनिश्चितवादिपर सवाल नहीं होसकता. जो अज्ञेय कहे उसकोभी कुछ नहीं कहसकते. इसका उदाहरण स्वरुपसंभावनाके विवेचनमें हे. पदार्थके स्वरुप निर्णय करनेमें यह नियम (१५९) अत्युपयोगी हे. इस नियमानुसार सिद्ध करनेमें सबको मुशकली पडती हे ॥ ४७ ॥

परमाणुके प्रदेश नहींही (अ.) ॥ ४८ ॥

अर्थ.—जिसको एटम (अणु) कहते हें उसके प्रदेश (चारों तरफ संयोग स्थान) नहीं होसकता अर्थात अमिश्रित, प्रदेश शून्य परमाणुकी असिद्धि हे, किंतु

जिसको परमाणु (मूल अणु) कहते हो उसके टुकडेही होते रहेंगे, एसा निश्चय होता हे; अतः परमाणुको अखंड–निरवयव–नहीं मानसकते. यह पक्ष योरोपके एक फिलोसोफर–प्रकृतिवादीका हे (दर्शनसंग्रहमें वांचोगे). यह पक्ष १६१ से १६७ तकके सूत्रोंसे असिद्ध हे ॥ ४८ ॥

वेदांत, बौद्ध, योग, सांख्य ओर विश्वासी परमाणुवादको नहीं मानते. संयोग अव्याप्यवृत्ति (२४२) के भयसे परमाणुके प्रदेश (सावयव) कहते हें; इसलिये सत्व-रज-तम् मिश्रित सब अणु हें अथवा अमिश्रित मध्यम (१७२ । १७३) मानलेते हें. अ. २ सू. १६१ से १६७ तकका आशय यह हे कि यदि हों तो परमाणु, अणु अखंड होसकते हें–ओर उनको संयोगी मानसकते हें ॥४८॥

विभु सक्रिय ओर परिणामीभीही काल ईश्वरवत् (अ.) ॥ ४९ ॥

अर्थ.—जो अपरिच्छिन्न असीम होता हे उसमेंभी गति होती हे ओर वोह परिणामीभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के अपरिच्छिन्न ईश्वर जगत करता हे; अवतार लेता हे. ओर काल विभु हुयेभी क्षणिक (सक्रिय वा परिणामी) हे. यह मंतव्य अनेकोंका हे. इस पक्षकी असिद्धि निरवयवाधिकरण ओर सू. १६८। ६६६ । २१९ से होजाती हे ॥ ४९ ॥

पौराणी ईश्वरको विभु कहके शरीरधारी (अवतार) मूर्त्त, मानते हें. विश्वासी ईश्वरको अग्नि ओर मनुष्यरुप धरना कहते हें ओर मनुष्यके साथ बात करना मानते हें. पारसीलोक ईश्वरको सूर्यादिरुपभी मानते हें. आर्यसमाजी, थीओसोफी ओर ब्रह्मु, विभु ईश्वरको सक्रिय मानते हें. शुद्धाद्वैत ओर थीओसोफी अपरिच्छिन्न ब्रह्मको परिणामी कहते हें. परंतु यह सब पक्ष भावनावश कल्पनामात्र हें. कोई ईश्वरको साकार एकस्थानी मानके जगतमें व्यापक होना मानलेता हे, यह भी निरवयवाधिकरणसे असिद्ध हे. पक्षका विस्तार मूलमें हे ॥ ४९ ॥

मध्यम जन्यभीही प्रागभाववत् (अ.) ॥ ५० ॥

अर्थ.—अणु, विभु परिमाणसे इतर मध्यमपरिमाणवाला जन्य होता हे, परंतु अजन्यभी होता हे एसा निश्चिय होता हे; जेसे के प्रागभाव अजन्य (अनादि) हे ओर मध्यमपरिमाणवाला हे. यह पक्ष नैयायक ओर जैन तथा बौद्धोंका हे. इसकी असमीचीनता १७२ । १७३ । १७४ । १७६ । १८४ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ५० ॥

नैयायक कितनेक अभावोंको अजन्य मध्यम मानते हें, कोई अभावको परिमाण रहित कहता हे. क्षणिकवादि विज्ञानको परिणामी अजन्य अर्थात मध्यम

अजन्य मानता हे. जैन जीवको निरवयव, अजन्य ओर यथाशरीर परिणामी (मध्यम) स्वीकारता हे. प्रकृतिवादि शक्तिको अजन्य परिणामी (मध्यम) मानता हे. इत्यादि ओरभी पक्ष हें; परंतु असिद्ध हें वा कल्पनामात्र हें ॥ ५० ॥

(मध्यम) अनंतभीही जीववत् (अ.) ॥ ५१ ॥

अर्थ.—मध्यम परिमाणवाली वस्तु अजन्य हो वा जन्य हो परंतु अविनाशी (कालसे अनंत) भी होती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के जीव हे. यह मंतव्य जैन वगेरे अनेकोंका हे. इस पक्षकी असमीचीनता १७२ । १४५ । ३५० से ३५५ तकसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ५१ ॥

विश्वासी ओर कोई पुराणी जीवको सादिमध्यम ओर अनंत मानते हें. कोई ईश्वरका अंशादिरुप अर्थात मध्यम नित्य मानते हें. क्षणिकवादि विज्ञानको परिणामी (मध्यम) मानके नित्य कहता हे. जैन जीवको मध्यम कहके नित्य मानता हे. एसेही यूनानका कोई फिलोसोफर मानता हे. वेदांति अंतःकरणविशिष्टचेतन वा चिदाभासको जीव कहते हें—याने अंतःकरण वा आभास मध्यम हें तोभी जीवको अनादि मानते हें. मेमांसिक जीवको जडचेतनात्मक अर्थात मध्यम ओर नित्य कहते हें. जीव जबके सगुण हे ओर उसके गुण वा शक्ति चेतन नहीं हें तो सगुण—सशक्त जीव, मध्यम ठेरा तोभी उसे नित्य मानते हें. परंतु यह सब पक्ष असिद्ध हें.

अन्योऽन्याभाव, तम, गुण, स्वभाव, धर्म, संबंध, गुरुत्वाकर्षण, शक्ति, जाति, विशेष, शब्द, इन सर्वको वा इनमेंसे अमुकको कोई अणु विभुसे विलक्षण मानके अनादिअनंत, वा सादिअनंत मानलेता हे. गतिको सब सादिसांत कहते हें. परंतु किसीको मध्यम मानके नित्य कहना यह उपरोक्त सूत्रोंसे असिद्ध हे.

एक पक्ष मध्यम—परिच्छिन्न जीवको मुक्तिमें सारुप्य (ईश्वरवत् विभु) होना मानता हे याने देशसे अनंत होजाना कहता हे, सो १८२ । २५० से असिद्ध हे. सारांश मध्यम जन्य ओर सांतही होता हे ॥ ५१ ॥

अमूर्त्त परिच्छिन्नभीही मनवत् (अ.) ॥ ५२ ॥

अर्थ.—जो गोचर न हो, जिनको एकत्र करें तोभी स्थूल वा दृश्य न हों, जो देशको न रोके ओर जिसके रंग ओर आकार न हो उसे अमूर्त कहते हें-सो असीम-विभुही होता हे, एसा नहीं किंतु परिच्छिन्नभी अमूर्त्त होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के मन परिच्छिन्न अमूर्त्त द्रव्य हे. यह पक्ष बहुत पक्षकारोंका

हे, उसकी असमीचीनता २१९ । ६८ । ३८२ । से स्पष्ट होजाती हे. ॥ ५२ ॥ यदि अमूर्त्तके प्रस्तुत लक्षण मानें तो दो परमाणुओंके संयोगमेंभी अमूर्त्त होगा क्योंके देश नहीं रोकता; परमाणुओंके पुंजमेंभी अस्पर्श रहेगा. एसा हुये यह दोष आवेगा कि अमूर्त्त जीव वा मनपर प्रकृतिका ओर प्रकृतिपर जीव वा मनका असर-प्रभाव न होनेसे कर्तृत्व, भोक्तृत्वही न होगा, ओर देशके विना गति होसकेगी; परंतु एसा नहीं होसकता; अतः जिसके आसपास देश हो वोह साकार-मूर्त्त-परिच्छिन्न हे, एसा जान्ना चाहिये. अब यदि वोह गोचर न होसकता हो तो अगोचर मूर्त्त (यथा मन) ओर जो गोचर होता हो तो गोचर मूर्त्त (यथा विजली, घटादि) कहाजाता हे; क्योंकि मूर्त्त ससीमका ओर अमूर्त्त, असीम–निराकारका नाम हे.

यदि जीव अणु परिमाणवाला हो तो अणु जीव अगोचर मूर्त्त हे. अभाव ओर गुणको परिमाण रहित मानते हें, परंतु अभाव कोई वस्तु नहीं हे; विलक्षणत्वका नाम अभाव हे. ओर गुणादि यदि वस्तु हों तो परिच्छिन्नही होंगे ॥ ५२ ॥

अविभु गुरुत्व रहितभीही प्रकाशवत् (अ.) ॥ ५३ ॥

अर्थ.—विभु, गुरुत्व शक्तिरहित होता हे; अविभुमें गुरुत्व शक्ति होती हे; परंतु परिच्छिन्न गुरुत्वरहितभी होता हे एसा निश्चय होता हे; जेसे के अविभु प्रकाश (अग्नि, विजली) गुरुत्वरहित हे. यह मंतव्य पच्छमकी सायंसका हे. इसकी असमीचीनता १७० । २६५से सिद्ध होजाती हे. बस. में इसका विस्तार हे ॥५३॥

सूर्यकी गुरुत्वशक्ति (गुरुत्वाकर्षण) पृथ्वीको ओर पृथ्वीकी तदस्थ अन्यको खेंचती हे, इसीका नाम वजन हे. यदि उभय जुत्थको जुदाजुदा करें तो गुरुत्व शक्तिकेभी विभाग होंगे. याने विभागोंमें न्यून होगी, इससे स्पष्ट हुवा कि अणु-अणुमें गुरुत्वशक्ति हे. वायुके अणुमेंभी हे. तद्वत् प्रकाशादिमेंभी होनीचाहिये; क्योंकि विशेष प्रकाश आवरक होजाता हे. बस. गत परिणामवादके आकर्षण प्रसंगमें विस्तार हे. इसलिये कोईभी (गरमी, ईथर वगेरे) परिच्छिन्न हो सबमें कुछ न कुछ गुरुत्व होनाचाहिये (५६८ से ५७३ तक देखो) ॥ ५३ ॥

निरवयवका परिणामभीही स्वप्नाकाशवत् (अ.) ॥ ५४ ॥

अर्थ.—निरवयव वस्तुकाभी परिणाम होजाता हे एसा निश्चय होता हे; जेसे के स्वप्नसृष्टिका आकाश निरवयव होता हे, उसका विकास ओर अविकास होता हे वेसे. यह पक्ष अनेकोंका हे. यह मंतव्य, निरवयव (१७४ से १८२

तक) ओर अभेद (१९८ से २०५ तक) अधिकरणऐसे तथा सू. १६८ से असमीचीन ज्ञात होता हे (भूगर्भ, बीजके अणु त्रिगुणात्मक--मिश्रित हें) ॥ ५४ ॥

शुद्धाद्वैत, थीओसोफी, कितनेक पौराणी, सूफी ओर कोइ वेदांति एसा मानते हें कि ब्रह्मकी शक्ति अचिंत्य हे, तद्विशिष्टब्रह्म सर्वशक्तिमान होनेसे आप जगतरुप परिणाम धारता हे. याने विभु निरवयव हुयेभी नाना रुप होजाता हे. अभाववादि ओर शून्यवादि, निरवयव अभाव वा शून्यसे जगतकी उत्पत्ति मानते हें. जैन ओर क्षणिकवादि बौद्ध, जीव ओर विज्ञानको निरवयव मानते हुये परिणामी मानते हें. जितने पक्षकार जीवको तत्व ओर मध्यम मानते हें उन सबको यही पक्ष मान्य हे. जीव ईश्वरांशादि (अ. ३ । २०७ में संज्ञा देखो) रुप माननेवालोंकोभी यही पक्ष संमत होता हे. श्री हेगल फिलोसोफरभी यह दृश्य, एक शक्तिका परिणाम मानता हे ओर विरुद्धधर्माश्रयको भूषण कहता हे. परंतु उक्त पक्ष उक्त सूत्रोंसे असमीचीन होते हें. दृश्य ब्रह्मसे विलक्षण किसी अन्य (प्रकृति-माया) का परिणाम सिद्ध होता हे (४२६ देखो) ओर विरुद्धधर्माश्रय दोष हे (३४० देखो). जीव यदि परिणामी हो तो सावयवही होगा, यह अ. १ दर्शनसंग्रह गत जैन प्रसंगमेंभी स्पष्ट हुवा हे. सूत्रमें आकाशका दृष्टांत हे, तहां जेसे काच वा जल गत आकाशका प्रतिबिंब किरणोंका परिणाम हे वेसे स्वप्नगत आकाश माया (सूक्ष्मा) का परिणाम हे; अतः विषम दृष्टांत हे. तथाहि देशकाल साध्य हें, इसलिये सू. ६१२ के अनुसार अग्राह्यभी हें. शेष वक्ष्यमाण स्वप्न प्रसंगमें वांचोगे.

(शं.) समुद्रके अंतरगत लेहेरें उठती हें. जहां अग्नि पूर्ण हो वहां उसमें चिंगारियें उठती हें वे उसीके अंतरगत होती हें. इसप्रकार जो पूर्ण भरपूर हे उसमें जो इधरउधर होता हे सो जुदा न होनेसे निरवयवका परिणाम मानसकते हें. समूद्रमेंसे बादलद्वारा जल निकले वा नदियोंद्वारा आवे तोभी वोह उतनेका उतना रहता हे, क्योंकि पूर्ण हे. इसीप्रकार किसी एक निरवयव--पूर्ण--ब्रह्मके नानारुप परिणाम होना संभवता हे. (उ.) समुद्र सावयव हे, उसमें न्यूनाधिकता होती रहती हे; ओर सावयव होनेसेही लेहेरें उठती हें. जो आकाशवत निरवयव होता तो लेहेर न उठती. वा तो निरवयवमें लहर उठती तो आकाशके भागका तकिया बनजाता, परंतु एसा नहीं होता; अतः आपका दृष्टांत विषम हे. ओर गरमी अग्निका समूहभी सावयव हे, इसलिये उसके भागमेंसे चिंगारियें उठती हें, वे विरुद्ध देशमें गति करती हें; इसलिये निरवयवका परिणाम सिद्ध नहीं हुवा. मानो कि

जीव, चिंगारीवत ब्रह्मका अंश हे, परंतु यह अयुक्तबात हे; क्योंकि चिंगारी गतिमान ओर ब्रह्म अक्रिय हे. जो चिंगारीवत मानें तोभी ब्रह्म ओर जीव दो दृष्टा ठेरे; अतः जुदाजुदाही मानेंजायँगे. ओर जो जीव दृश्य तो ब्रह्मका अंश न ठेरेगा; क्योंकि चिंगारीभी प्रकाशती हे ओर अग्निभी प्रकाशती हे; अतः दो प्रकाशक होनेसे जुदाजुदा ठेरे. यदि अग्नि प्रकाशक ओर चिंगारी प्रकाश्य हे तोभी जुदाजुदा ठेरे. निदान ब्रह्मके अवयवमें गति मानी के वोह सावयव-स्वगत भेदवाला होगया ॥५४॥

अणु परिणामीभीही औषजन ओर उद्जनवत् (अ.) ॥ ५५ ॥

अर्थ.—जिनको परमाणु कहते हें वेभी परिणामी होते हें. एसा निश्चय होता हे; जेसे के ओक्षजन ओर हाइड्रोजनके परमाणु मिलके जलरुप ओर भूगर्भके परमाणु बीजवृक्षके अनुरुप परिणामको पाते हें. यह पक्ष एक नवीन सायंसवादिका हे. सू. १७४ । १७६ । १६२ से यह पक्ष असमीचीन ठेरता हे ॥ ५५ ॥

औ. उद. के, त्रिगुणात्मक भूगर्भके अनेक परमाणु मिलके तथा उनके गुण उद्भव तिरोधित हुये जल ओर वृक्ष बनते हें ओर पृथक्करण करनेपर वे पूर्वजेसे निकलते हें; अतः अणुका परिणाम न हुवा. सांख्यमतमें हरेक अणु सत्व-रज-तम मिश्रित माना हे; अतः उन अणुओंके समूहका परिणाम होना बनता हे ॥ ५५ ॥

विभु परिच्छिन्नभीही स्वप्नाकाश वत् (अ.) ॥ ५६ ॥

अर्थ.—विभु परिमाणवाला परिच्छिन्नभी होता हे एसा निश्चय होता हे, जेसे के स्वप्नका आकाश परिच्छिन्न होता हे ॥ यह पक्ष अवतारवादियोंका हे. इसकी असमीचीनता; १७८ । १७४ । २५० । १६८ । से स्पष्ट होजाती हे ओर आकाश प्रसंगमें अ. ३ । ५४ अनुसार ज्ञातव्य हे; क्योंकि अन्यथा दर्शन हे ॥५६॥

ईश्वरका अवतार मान्नेवाले, अभिन्ननिमित्तोपादानवादि ओर जगतको ब्रह्मका परिणाम मान्नेवाले इस मंतव्यके भगत हें; परंतु यह मंतव्य असंगत हे. ॥ ५६ ॥

अणु विभुभीही (अ.) ॥ ५७ ॥

अर्थ.—जो अणु (परिच्छिन्न) परिमाण होता हे वोह विभुभी होजाता हे. यह पक्ष सारुप्य मुक्तिवादि ओर किसी योगीकाभी हे. इसकी असमीचीनता १८२ । १७३ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ५७ ॥

जीव परिच्छिन्न हे, परंतु ईश्वरकी भक्ति करके ईश्वर जेसा बिभु होजाता हे, यह सारुप्यमोक्षवादिका मत हे. जीव ब्रह्मकी एकता मान्नेवालोंका यह पक्ष नहीं

हे; क्योंकि वे परिच्छिन्न अंतःकरणको त्यागके तदवच्छिन्न चेतनको विभु (ब्रह्म) मानते हें ॥ ५७ ॥

विभु उपादानभीही ब्रह्मवत् (अ.) ॥ ५८ ॥

अर्थ.—विभु परिमाणवाला पदार्थ उपादानभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के ब्रह्मको जगतका उपादान (परिणामी) मानाजाता हे. यह पक्ष महोदय हेगल, थीओसोफी ओर किसी वेदांती तथा शुद्धाद्वैतको संमत हे. इसकी असमीचीनता १७६ । १८० । ३०२ । ३४० से स्पष्ट हे ओर अ. ३ । ५४ । ५६ भी याद करिये ॥ ५८ ॥

असत्का भावभीही स्वप्नवत् (अ.) ॥ ५९ ॥

अर्थ.—असत्का कभी भाव नहीं होता एसा नहींभी हे- अर्थात असत्का भाव होताभी हे; जेसे के स्वप्नसृष्टि पूर्व उत्तरमें असत्–शून्य हे ओर वर्तमानमें भावरुप प्रतीत होती हे. यह मंतव्य अनेकांतवादि ओर भ्रमवादिको संमत हे. इसकी असमीचीनता २८५ । २८७ । ३०० । ३०७ । ३०८ । ३१० । ३१४ । १८४ । १९६ । २८० । २७० ओर २७५ से स्पष्ट होजाती हे; क्योंकि स्वप्नका उपादान उससे पूर्वमें होना चाहिये ॥ ५९ ॥

सत्का अभावभीही तमवत् (अ.) ॥ ६० ॥

अर्थ.—जिसे सत् कहते हें उसकाभी अभाव होजाता हे एसा निश्चय होता हे; जेसे के पदार्थका आवरण करनेवाला तम भावरुप सत् हे परंतु दीपक आनेपर उसी कोठडीमें उसका अभाव (नाश) होजाता हे. यह पक्ष नवीनकार्यउत्पत्तिवादियोंका हे. इसकी असमीचीनता उक्त २८५ वगेरे सूत्रोंसे जानपडती हे ॥६०॥

सत्रुप घट पट नवीन उत्पन्न नाश होते हें, एसा नैयायक मानते हें. भावरुप सत् जल, नवीन उत्पन्न नाश होता हे, एसा नवीन सायंस मानती हे. परंतु वस्तुतः सू. ३५० । ३५२ । ३५५ नवीनोत्पत्तिनाशको असंगत बताता हे ॥६०॥

स्वप्नवत् सदसद् रुपभीही (अ.) ॥ ६१ ॥

अर्थ.—पदार्थ सत् ओर असत् इन उभयरुपभी देखते हें; जेसे के स्वप्नसृष्टि हे. यह पक्ष सदसद्ख्यातिवादि याने अनेकांतवादको संमत हे. अनेकांतवाद जैनमतको स्वीकार हे[1] ओर उसका दूसरारुप विविधवादिको संमत हे. इसपक्षकी असिद्धि ३४० । १८६ । १८४ । १३० से होजाती हे ॥ ६१ ॥

[1] अनेकांतवाद--स्याद्वाद--मध्यस्थवाद--अपेक्षावाद यह चारों पद जैनदृष्टिसे

स्वप्न भावरुप भोग्य हे; अतः सत् ओर पूर्व उत्तरमें नहीं हे; अतः असत् हे. घटादि पदार्थ-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वपर्याय भावसे सत् हें ओर परद्रव्य क्षेत्र-काल ओर पर्यायभावसे असत् हें. इसप्रकार हरेक वस्तु अपेक्षासे सदसद्रुप हे; इसप्रकार सप्तभंगी (स्यादवाद) उनकी थीयरी हे. परंतु असमीचीन हे. भू. में इसका निषेध दरसाया हे. एक सर्वज्ञ मुक्तजीव दूसरे सर्वज्ञमुक्त जीवकी दृष्टिमें असद् मान्ना हास्यास्पद हे. दूसरा अनेकांतवाद याने एककोही अनेकरुप मान्ना व्याघात हे. स्वप्न सदसद्रुप नहीं; किंतु पिंडवत् किरण समूह उसका मूल सूक्ष्म हे ओर उसका परिणाम स्वप्न हे; जेसे के किरणका परिणाम प्रतिबिंब. इसलिये सदसद्रुप नहीं (६७२ । ६७३ देखो.) किंतु अन्यप्रकारका हे. (आगे वांचोगे) ॥ ६१ ॥

माया, अंत नियमका विषय नहींही देशकाल उसके कार्य होनेसे (अ.) ॥ ६२ ॥

अर्थ.—नियम १८८ (अंत)में जिसका कालसे अंत उसका देशसे अंत, एसा कहा हे. माया देशकालसे सांत नहीं मानीजासकती; क्योंकि देशकाल तो उसके कार्य हें ओर विना देशकालके कोई वस्तु नहीं होती; अतः मायावाद सत् नहीं. यह पक्ष द्वैतवादिको संमत हे. इसका विवेक ६७२ । ६७३ से होजाता हे; क्योंकि देशकाल रहित देशकालवाला स्वप्न होता हे याने देशकालके विना प्रतीत नहीं होता. माया यदि अनादि तो सांत नहीं कहसकोगे. विशेष आगे ॥ ६२ ॥

प्रागभाववत् अनादि सांत ओर प्रध्वंसाभाववत् सादि अनंतभीही (अ.) ॥ ६३ ॥

अर्थ.—जो अनादि बोह अनंतही ओर जो सादि सो सांतही होता हे अर्थात अनादिसांत ओर सादिअनंत नहींही होता, एसा नहींभी हे; जेसे के घटादिकोंका प्रागभाव अनादि हे ओर घटादिकोंकी उत्पत्ति हुये उसका अभाव होजाता हे. ओर घटादिके ध्वंस हुये प्रध्वंसाभाव उत्पन्न (सादि) होता हे ओर हमेशे (अनंत) रहता हे. यह पक्ष आर्यसमाजी ओर प्रकृतिवादिको छोडके अनेक

पर्याय हें. पदार्थके स्थिरांश-स्वरुपको द्रव्य कहते हें ओर अस्थिरांश (क्षणिक) को पर्याय कहते हें; इसप्रकार द्रव्य, द्रव्यरुपसे नित्य-सद्, ओर पर्यायरुपसे अनित्य, असद् कहते हें. एसे अपेक्षासे नित्यानित्य, सदसद्रुप याने अनेकांत मानते हें. परकी अपेक्षा-दृष्टिको लेके एककोही सदसद् कहते हें.

पक्षकारोंको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. १३७ । १९० । १३९ । १८४ । १३४ । १३० ओर २९५ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ६३ ॥

नैयायक प्रागभावको अनादिसांत, प्रध्वंसाभावको ओर मोक्षको सादिअनंत मानते हें. विश्वासी, जीव ओर सृष्टिको तथा मोक्षको सादिअनंत स्वीकारते हें तद्वत् सादिकर्मका फल अनंत कहते हें. वेदांती जीव, मायाको अनादिसांत, मोक्षको सादिअनंत मानते हें. आर्यसमाजी ओर एक मैमांसिकसे इतर जो मोक्षवादि हें वे सब मुक्तिको सादिअनंत मानते हें. परंतु यह उभयपक्ष असमीचीन हें; क्योंकि पदार्थोंकी अवस्था सादिसांत ही होती हे; अभाव कोइ वस्तु नहीं हे किंतु ३८६ अनुसार विलक्षणत्वका नाम अभाव रखछोडा हे; अतः कोई दृष्टांत नहीं हे ॥६३॥

अनादि सादिअनंत ओर सांतसे अन्यथाभीही (अ.) ॥ ६४ ॥

अर्थ.—जिसे अनादि वा सादि वा अनंत वा सांत न कहाजाय किंतु इनसे विलक्षण प्रकारकी वस्तुभी हो, एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष दृष्टिसृष्टिवादीका हे. इसकी असमीचीनता १९० । १९२ ओर स्वरुपविवेक (१३४) तथा १३० से स्पष्ट होजाती हे ॥ ६४ ॥

दृश्य, मृगजलवत् वा नीलतावत् वा स्वप्नसृष्टिवत्--प्रतीतकालमें प्रतीतरुप हे, अप्रतीतकालमें अप्रतीतरुप हे याने कहींभी नहीं होता; इसलिये उसको अनादि वगेरे नहीं कहसकते. याने एसे माया ओर उसके परिणाम हें. सादि हें; अतः अनादि नहीं. मूल अनादि नहीं; अतः सादिभी नहीं (२८५ देखो). जब अनादि नहीं तो अनंत कहांसे ओर जब सादि नहीं तो सांत केसे मानाजाय; अतः इन स्थितिसे विलक्षण हे. परंतु यह मंतव्य•कल्पनामात्र हे अथवा अनिर्वचनीय हे. ६७२ । ६७३ देखो. विशेष आगे वांचोगे ॥ ६४ ॥

सदुत्पत्तिभीही सत्के संयोगजन्य होनेसे (अ.) ॥ ६५ ॥

अर्थ.—सद्कीभी उत्पत्ति होती हे एसा निश्चय होता हे; क्योंकि उस वस्तुके मूल सत्य हें उन सत्यके संयोग वियोगजन्य वा उसके परिणामसे जन्य होती हे. यह पक्ष तमाम द्वैतवादियोंको संमत हे. इसकी असमीचीनता, १९६ । ३०८ । ३१० । ३१२ । ३१४ । ३५२ । ३६१ । ३५५ । ५७२ । ५७३ से सिद्ध हे. अर्थात जिसे सत् कहते हें वोह वस्तु नहीं हे किंतु अवस्था–रचना हे; अतः सत् वस्तुकी उत्पत्ति वा नाश कहना व्याघात दोष हे. यथा--घट, सद् परमाणुकी रचना–अवस्था विशेष हे. नहीं के वोह स्वयं कोई वस्तु हे; इसलिये घट सत् उत्पन्न हुवा, यह

कथनमात्र हे. यदि परमाणु उनमेंसे निकाल लें तो घटकी अप्राप्ति हे. जो घट सत्‌रुप होता तो परमाणु निकालने पीछेभी रहता, परंतु एसा नहीं होता; अतः सत्‌की उत्पति वा नाश कहना वदतोव्याघात हे ॥ ६५ ॥

दो एक ओर एक दोभीही सक्रियाकाशवत् (अ.)॥ ६६ ॥

अर्थ.—दो वस्तु एकरुप ओर एक वस्तु कभी दो रुप नहीं होती एसा नियम नहींभी हे याने दो एक ओर एक दोभी होजाते हें; जेसे के क्रियावाला आकाश अक्रिय आकाश स्वरुप होजाता हे ओर अक्रिय आकाश सक्रिय ओर अक्रिय एसे दो रुप होजाता हे. यह मंतव्य तमाम अद्वैतवादि (क्षणिकवादि, वेदांती, सूफी, थीओसोफी, शुद्धाद्वैत, वगेरे)को संमत हे. इसकी असिद्धि १९८ । ३७२। ५८२ । ३७२ । ३५२ । ३७६ । से स्पष्ट हे ॥ ६६ ॥

आकाशमें क्रिया नहीं होती, घटादिकी उपाधिसे वोह सक्रिय जानपडता हे, इसलिये एक आकाशसे इतर दो नहीं हें. दीपकदीपक ओर प्रकाशप्रकाश यह परमाणुओंके समूह हें, जुदाजुदा हें, मिलनेपरभी उनके अवयव जुदाजुदाही रहते हें, जलजल मिलनेपर उनके अवयव (औ. उद.) जुदाजुदाही रहते हें. जलबरफ, कनककुंडल दो वस्तु नहीं. जीवगत चेतन ओर ब्रह्मचेतन दो नहीं, उपासक ओर कर्ता-भोक्ता जीव कभीभी ब्रह्म नहीं होसकता; क्योंकि ब्रह्म कभीभी कर्ता-भोक्ता न हुवा न होगा. उपासक उपास्य भिन्नही होते हें (३७५ देखो). ब्रह्म एक हो तो वोह कभी दो वा अनेक रुप नहीं होसकता. यहां अ. ३ के ५४।५६।५८।४९। ५२ । कोभी विचारिये. यदि आकाशको मन वा मगजकी कंडीशन मानके उसे सक्रिय मानें तोभी सो आकाशरुप कंडीशन दूसरी कंडीशनरुप याने एक नहीं होती ओर दो कंडीशन समकालमें एक नहीं होती. उत्तरकालमें जो कंडीशन–अवस्था होती हे वोह जल बरफ जलके समान पूर्वकाही रुपांतर होता हे; इसलिये दो एक नहीं ॥ ६६ ॥

एक अनेकभीही, अन्यकी असिद्धिसे (अ.) ॥ ६७ ॥

अर्थ.—जो स्वरुपतः एक वस्तु हे वोह अनेक रुपभी होजाती हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि ब्रह्मांडमें एकसे इतरकी असिद्धि हे, यह पक्ष तमाम अद्वैतवादियोंको (अ. ३।६६) संमत हे. इस पक्षकी असमीचीनता सू. १४५।३७२। १७४ । २०४ । २०५ । १९८ । २०० । २७२ । ३२० । ३२८ । ३७५ । २०७ । ८६ ओर ३४० से स्पष्ट होजाती हे ॥ ६७ ॥

(पक्षकार) २६१ (आधेय), २६८ (आधार), ४१३ (ब्रह्म), भेद (३८२) इन नियम--सूत्रोंसे ब्रह्मेतरकी असिद्धि हे ओर नानारुप दृश्य विद्यमान हे; इसकी अर्थापत्तिसे एक ब्रह्मही अनेक रुप हुवा एसा मान्नाही पडता हे. (उ.) ४२६ (अवतिष्ठत) ओर ४२७ में इसका उत्तर हे अर्थात जगत अनिर्वचनीय प्रकृतिका परिणाम हे; ब्रह्मका वा क्षणिकविज्ञानका परिणाम नहीं हे. (शं.) ओ. हा. मिलके पानी हुवा, पानीकाही बरफरुप होगया, पानीही वरालरुप होगया ओर फेर ओ. हा. अपने मूल रुपमें आगये. एसेही ब्रह्म वा मूल--शक्तिके गरमी, शीत, तम, प्रकाश, जल, अग्नि, इत्यादि दृष्ट विरुद्धरुपवाले परिणाम होते हें, एसेही एक अनेक रुप होसकता हे. (उ.) जल सावयव ओर विजातीय कंपोंड, तद्वत् बरफभी ओर गरमी मिश्रित वरालभी; अतः नानारुप होना संभव हे (२०५ याद कीजे). यदि यह जगत माया–प्रकृतिका परिणाम हो तो वोहभी विजातीय अनिर्वचनीय कंपोंड होना मान्ना पडेगा, किंवा उस कंपोंडका यथासंस्कार उसका परिणाम (नामरुप धरना) कहना होगा, परंतु जो स्वरुपतः एक–तत्वरुप हो उसका नानारुप होना नहीं बनता, एसी व्याप्ति नहीं मिलती; अतः आपकी शंका निर्मूल हे ॥ ६७ ॥

एकके समकालमें दो कार्यभीही जीव ओर प्रकाशवत् (अ.) ॥ ६८ ॥

अर्थ.—एक स्वरुपसे एककालमें दो (अनेक) कार्य होतेभी हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे के; जीव एककालमें लिखता, देखता ओर संकल्प करता हे तथा प्रकाश, गति करता ओर अन्यको वा अपनेको प्रकाशताभी हे. यह मंतव्य उनको संमत हे कि जो ईश्वरको अन्यथाकर्ता वा किसीको सर्वज्ञ मानते हें ओर जीव शरीरसे भिन्न स्वेच्छासे गति ज्ञान करनेवाला मानते हें. अर्थात लगभग सब चिद् पक्षकारोंको संमत हे. कोई जडवादिभी एसा मानलेता हे. इस पक्षकी असमीचीनता २०७ से २१५ तक। ४०१ से ४१० तक, ओर ३७५। ८९। ३७२। ३८२। इन सूत्रोंसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ६८ ॥

एकके एककालमें अनेक क्रिया वा अनेक ज्ञान वा क्रिया ज्ञान होते हें (वा अनेक परिणाम वा एकमेंसे समकालमें अनेककी उत्पत्ति होती हे); यह सूत्रका आशय हे.

क्षणिकवादि क्षणिकपरिणाम ओर उसका प्रकाश समकाल मानता हे. ईश्वर

वादि ईश्वरको एक अभिमानी मानते हुयेभी एक क्षणमें असंख्य ज्ञान होना मानते हें; तद्वत योगी सर्वज्ञके वास्ते कहते हें. जीव परिच्छिन्न एककालमें अनेक क्रिया अनेक ज्ञान वा क्रिया ज्ञान-उभय करता हे, एसा विश्वासी, थिओसोफी, मैमांसिक, जैन, यूनानी, आर्यसमाजी वगेरे मानते हें. ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान समकालीन हे, एसा शुद्धाद्वैत, सूफी ओर एक वेदांती मानता हे. स्वप्नमें एक मन एककालमें अनेकरुप धरलेता हे तथा माया एक क्षणमें अनेक परिणाम धारती हे, एसा वेदांतका पक्ष हे. परंतु यह सब पक्ष असमीचीन रहते हें. अर्थात जो सावयव होगा उसीसे (प्रकाश, सर्प, मन, माया, इत्यादिसे) समकालमें दो परिणाम, दोकी उत्पत्ति वा क्रिया ज्ञान--उभय होसकते हें, परंतु जो स्वरुपतः एक हे उससे एसा नहीं होसकता. वेदांतपक्ष गति ओर उसका ज्ञान, गतिवान ओर उसका ज्ञान, यह जुदाजुदाही मानता हे. चेतन अक्रिय व्यापक ओर तिससे इतर सब सक्रिय, एसा कहता हे; इसलिये इस पक्षमें उक्त दोष नहीं आता ॥ ६८ ॥

(एकके समकालमें) दो परिणामभीही सर्पवत् (अ.) ॥ ६९ ॥

अर्थ.—एक कालमें एक स्वरुपके दो (वा अनेक) परिणामभी होते हें, जेसे के सांप समकालमें गोल ओर लंबा होजाता हे. यह पक्ष शुद्धाद्वैत, वा एक शक्तिवादियोंको संमत हे; इसकी असमीचीनता २११ । २१२ । १७४ । १७६ से स्पष्ट होजाती हे ॥ सर्प सावयव हे इसलिये दो फोर्म होजाते हें (शेष अ. ३ ६८ वत्) ॥ ६९ ॥

एकमेंसे समकाल दोकी उत्पत्तिभीही
मनज स्वप्नवत् (अ.) ॥ ७० ॥

अर्थ.—एक कालमें एक स्वरुपसे दो वस्तुकीभी उत्पत्ति होजाती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के स्वप्नमें एक मनसे एक कालमें देश सूर्य वगेरे होजाते हें. यह पक्ष एक वेदांति ओर पौराणिकोंको संमत हे. इसकी असमीचीनता २१३। २१५से स्पष्ट होजाती हे ॥ ७० ॥

स्वप्नसृष्टिका उपादान सावयव हिरण्यगर्भ (मायाका अंश) हे, मन नहीं; अतः समकालमें अनेक रुप बन्ना संभव हे. यदि उसे मन वा मगजका परिणाम मानो तोभी मन ओर मगज सावयव हें, एक स्वरुप याने तत्वरुप नहीं हें; अतः संभव हे. शेष उपरोक्त ६८ वत् ॥ ७० ॥

जडमें स्वयंगति स्थितिभीही चंबुकी विद्युतवत् (अ.) ॥ ७१ ॥

अर्थ.—जडवस्तुमें दूसरेके हलाये, ठेराये विना अपने आपही गति ओर स्थितिभी होती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के चंबुक स्थित विजलीमें लोहा सन्मुख होनेपर स्वयं गति होती हे ओर लोहा मिलनेपर आपही विद्युत स्थित होजाती हे. यह पक्ष प्रकृतिवादिको संमत हे. इसके अयुक्त अंशकी असमीचीनता २१६।२२४।२३३। से जानपडती हे ॥ ७१ ॥

लोहा सन्मुख हो तबही विजलीमें गति हो, अन्यथा नहीं; इससे स्पष्ट होगया कि अन्य--अमुक कारणको लेके गति होती हे. उसकारण मान्नेमें कई पक्ष हें. (१) विजलीके दो किनारे हें.—पोजीटीव (मुसबित) ओर नेगिटिव (मनफी); इसीको कशिशइत्तसाल (स्नेहाकर्षण) ओर मुनफसल (अस्नेहाकर्षण) कहते हें; अतः चंबुक गत विजलीकी मर्यादामें लोहा आवे तो विजलीकी किरणोंको निकलना पडता हे ओर उससे लोहेको खिंचाना पडता हे. (२) समुद्र समान विद्युत भरी हुई हे, चंबुकमें ज्यादे चुंसाई हुई हे (पृथ्वीके ध्रुमें विशेष हे), अमुक सीमामें लोहा आवे तब विजलीका धक्का लगनेसे लोहेमें गति होती हे. (३) अमुक मर्यादामें लोहा आनेसे चंबुककी विजलीपर हिरण्यगर्भकी लहरोंका असर होता हे ॥ इत्यादि पक्ष हें. निश्चित कारण क्या हे उसका फेसला अभीतक नहीं हुवा हे. तथापि विजलीमें अबुद्धा गति होती हे ओर वोह अमुक कारणसे होती हे, यह बात सर्वको मान्य हे. जेसे मुखमें रवाई हुई दवाई लोहीद्वारा जाके रोग स्थानपर चुसा जाती (रोकाती) हे, एसेही विद्युतकी गति अगतिमें ईथर वा स्नेह वगेरे कोईभी कारण हे. ओर गति बुद्धा तथा अबुद्धा दोप्रकारकी होती हे. जडमें अमुक संयोगोंसे गती होजाती हे; परंतु योजना, रचना करनेवाली तथा यथायोग्य संयोग करने करानेवाली बुद्धागति होती हे; सो जडमें स्वयं नहीं होती। ७४ में वांचोगे ॥ ७१ ॥

गति देशविनाभीही स्वप्नवत् (अ.) ॥ ७२ ॥

अर्थ.—गतिको देशकी अपेक्षा हे तथापि देशके विनाभी गति होती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के स्वप्नमें हाथी घोडे दोडें इतना देश नहीं हे, क्योंकि स्वप्नसृष्टि शरीरके अंतरगतही हे; तोभी वहां हाथी घोडोंकी दोडादोडी देखते हें; अतः देश विना गति होती हे; यह बात ठीक हे. यह पक्ष वेदांत, क्षणिकवादि बौद्ध, सांख्य, योग, यूरोपके फिलोसोफर ओर विश्वासिओंकोभी संमत हे. इसकी असमीचीनता २१९। २७२ । गतिअधिकरण ओर ३८२से स्पष्ट होजाती हे ॥७२॥

वेदांतका एक पक्ष देशकी उत्पत्ति मानता हे, तिसके पूर्व ब्रह्ममें गति–परिणाम मानता हे तथा देश, मायाका परिणाम हे याने माया देश विना गतिवान हे, एसे कहता हे. शुद्धाद्वैतभी ब्रह्मका परिणाम देश विना मानता हें. बौद्धभी क्षणिकपरिणाम देशकेविना कहता हे. सांख्य (ओर योग) देशको प्रकृतिका कार्य मानता हे अर्थात प्रकृतिमें देश विना गति होना कहता हे. हर्बर्टस्पेंसरश्री परिच्छिन्न द्रव्योंकी गति मानता हे ओर देशको वस्तु नहीं मानता. अन्यप्रकृतिवादि देशको वस्तु नहीं मानते ओर परमाणुओंकी गतिको मानते हें. विश्वासीभाइ देशकालादिकी ईश्वरद्वारा उत्पत्ति मानते हें ओर ईश्वरमें देश विना गति होना कहते हें.

परंतु यह सब मंतव्य दृष्ट व्याप्तिके विरुद्ध हें. इन पक्षोंकी व्याप्ति नहीं मिलती. स्वप्नसृष्टिमें पदार्थ सदेशकाल जानपडते हें ओर गतिमें देशकालकी कारणता जान पडती हे; अतः गति सदेश हे. जेसे काचगत प्रतिबिंबमें ओर दृश्यपरिमाण (अ. ३। ४९२में वांचोगे) में देश जानपडता हे वेसे स्वप्नमेंभी हे. स्वप्नका उपादान जो माया उसमें देश विना केसे गति होती होगी, इस विषयको आगे वांचोगे. असीम देशरहित ब्रह्ममें गति होना वा मान्ना नहीं बनता, यह उपर कई जघे कहा गया हे ॥ ७२ ॥

(गति) निमित्त विनाभीही, वायु शून्यमें दोडनेसे (अ.) ॥ ७३ ॥

अर्थ.—जड पदार्थोंमें गति किसी निमित्तके विनाभी होती हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंके जघे खाली होनेपर वायु वहां निमित्तकेविना दोड आती हे याने जघे भरनेके वास्ते उसको आना पडता हे, एसा देखते हें. यह पक्ष प्रकृतिवादिओंको संमत हे. इसकी असमीचीनता २२४ । २३२ से सिद्ध होजाती हे ॥७३॥

खाली जघे वास्ते वायु स्वयं दोडे ओर अन्यप्रसंगमें वायुमें गरमी-प्रकाशादिके निमित्तोंसे गति हो, यह मान्ना अव्याप्ति दोषसे ग्रस्त हे । खाली जघे भरनेके लिये जब गति होती हे तब हिरण्यगर्भकी लहरें ओर गरमी, वायुको गति होनेमें निमित्त होती हें; क्योंकि वोह जलसमान समानता होनेमें निमित्त होता हे ॥ ७३ ॥

असाम्य तीनों गुणोंमें गतिही स्वभावसे (अ.) ॥ ७४ ॥

अर्थ.—सत्व, रज ओर तम यह तीनों सबमें हें याने अणुभी इन तीनोंसे मिश्रित हें. जब वे तीनों समान अवस्थामें हों तब उनकी गतिका निरोध होजाता हे याने ठेरजाते हें ओर साम्य न हों तो उनमें (साम्य होनेके लिये) गति हुवा करती हे, एसे गतिमें रहनेका उनका स्वभाव हे. उससे यह दृश्य बना हे. यह

पक्ष सांख्यमतको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. २१६ । २१९ । २२४ । २३१ ओर २३३ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ७४ ॥

वायु, गरमी, शरीरके अवयव ओर सूर्य, चंद्र वगेरेमें अन्य निमित्तके विना गति नहीं देखते; एसेही उनके मूलप्रकृति–महततत्व–प्रधानके संबंधमेंभी ज्ञातव्य हे. उनका स्वभाव यदि गतिमें रहनेका हो तोभी वोह गति अबुद्धा होगी, सनियम बुद्धिपूर्वक न होगी ओर ठेरने पीछे स्वतः न होसकेगी; क्योंकि प्रकृति जड हे. परंतु जगतमें कार्य रचना ओर योजना सनियम तथा सबुद्धा गति देखते हें; इसलिये मूल प्रकृतिके प्रयोजकी गति होनेमें कोई स्वतंत्र निमित्त हो, एसा मान्ना पडता हे॥७४॥

दृश्य एक शक्तिकी गतिके भेदसेही आलात चक्रवत् (अ.) ॥ ७५ ॥

अर्थ.—यह दृश्य ब्रह्मांड, किसी एक शक्तिके गतिके भेदसेही नाना रुपात्मक जानपडता हे; जेसे के आलातका चक्र गतिके भेदसे जानपडता हे वेसे. यह पक्ष योरोपके एक फिलोसोफरको संमत हे. इसकी असिद्धि गतिअधिकरण ओर आधेयाधारअधिकरणसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ७५ ॥

एक लकडीके किनारेपर अग्नि लगावें ओर उसे फेरें तो अग्निका चक्र ज्ञात होगा, इसे आलातका चक्र कहते हें. वोह चक्र स्वरुपतः नहीं हे परंतु गति करके जानपडता हे. एसेही यह दृश्य ब्रह्मांड एक शक्तिकी अनेक प्रकारकी गतिसे नाम-रुपवाला (फोर्म) जानपडता हे. जेसे ईथरकी मंद गतिसे अनहुवा नीलतारुप फोर्म जानपडता हे वेसे. परंतु यह मंतव्य सयुक्त नहीं जानपडता; क्योंकि गति-मानको आधारकी अपेक्षा; जडमें स्वयंगति नहीं; गति सब समान होती हें उनमें वैधर्म्य (नीला-पीला-विजली-तम-प्रकाश वगेरे रुप होना) नहीं हे; ओर जो मानें तो आलातचक्र तथा नीलता समान दृश्य भ्रांतिरुप मान्ना चाहिये, जोकि शक्ति-वादिको असंमत हे. मायावादि मायाके परिणाम मानके जगतको मायाका परिणाम मानता हे, ओर मायाको अधिष्ठान ब्रह्मवत सत् नहीं मानता किंतु रज्जुसर्पवत् मानता हे; शक्तिवादीको यह मंतव्य संमत नहीं हे; इतना उभयमें अंतर हे ॥

संयोग गति विनाभीही ब्रह्म आकाशवत् (अ.) ॥ ७६ ॥

अर्थ.—गतिके विना संयोग नहीं होता परंतु गतिके विनाभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के अधिष्ठानरुप ब्रह्म ओर आकाशका हे. यह मंतव्य नैयायकोंको संमत हे. इसकी असिद्धि संयोगाधिकरण ओर सू. ३८२ । ३७८ ।

३८० । ४१८ । ४२६ से होजाती हे अर्थात ब्रह्म ओर आकाश समसत्तावाले नहीं ओर उनका संयोगभी समसत्तारुप नहीं बनसकता ॥ ७६ ॥

(संयोग) एक अधिकरणमें अनेकभीही देश प्रकाश ओर तम वत् (अ.) ॥ ७७ ॥

अर्थ.—संयोग एक अधिकरणमें एकही हो एसाही नहीं हे, किंतु एक अकिधरणमें अनेकभी होते हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे के दोके संयोगमें आकाश, प्रकाश वा तम होनेसे उनकाभी संयोग होता हे. यह पक्ष उनको संमत हे जोकि नाना विभु, नाना परिच्छिन्न, किंवा एक विभु, नाना परिच्छिन्न पदार्थ मानते हें; किंवा एक परिच्छिन्नमें नाना गुण वा शक्ति मानते हें. संक्षेपमें एक अणुवादि ओर एक क्षणिकवादि बोद्ध ओर एक निर्गुण चिन्मात्र केवलाद्वैतवादिसे इतर सबको यह पक्ष संमत हे. इस पक्षकी असमीचीनता २४२ । ३३८ । ३३९ । ३७२ । ३८२ । ३८४ से सिद्ध होजाती हे ॥ ७७ ॥

जैन---धर्मास्ति, अधर्मास्ति काय तथा आकाशको व्यापक मानके दोके संयोगमें उसे मानता हे. परमाणुओंके संयोगमें उनके गुण-शक्तिको हरकोई मानता हे. ईश्वरवादि दोके संयोगमें आकाश ओर ईश्वरका अस्तित्व स्वीकारता हे ॥७७॥

(संयोग) अपना आपमेंभीही शरीरवत् (अ.) ॥ ७८ ॥

अर्थ.—एक पदार्थका संयोग दूसरेके साथही होता हे अर्थात संयोग दोकाही होता हे; परंतु अपना आपमेंभी संयोग होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के शरीरमें शरीरका संयोग हे. यह पक्ष अभिन्ननिमित्तोपादान वादियोंको संमत हे; इसकी असमीचीनता २४३ । २४२ । २४५ । १७२ । १७६ से सिद्ध होजाती हे ॥ ७८ ॥

सावयवोंका खंड होनेसे उनके भागोंका संयोग होता हे. जेसे के सर्प वगेरे ओर शरीरके मुख पूंछ हाथ पांव वगेरेका संयोग होता हे. परंतु तत्व पदार्थका अपने आपमें नहीं होता. ब्रह्म यदि तत्व हे तो अपने आपमें संयोगी ओर यह दृश्य उसका अंश वा परिणाम--नहीं मानाजासकता ॥ ७८ ॥

निर्बल भोग्यही नहीं प्रकृतिमें समानतासे (अ.) ॥ ७९ ॥

अर्थ.—निर्बल बलवानका भोग्यही रहे, एसा नहीं हे; क्योंकि प्रकृति समानता इच्छती हे याने समानतामें आनेका उसका स्वभाव हे. यह पक्ष चेतन-

वादिको संमत हे; परंतु सर्वांशमें यह पक्ष सिद्ध नहीं होता; सो २४६ । २४८से स्पष्ट हे ॥ ७९ ॥

साम्यावस्था हो तो सृष्टि याने विचित्र कार्योंका प्रवाह न हो किंतु असाम्यतासेही सृष्टिव्यवहार होता हे. समान पोजीटीव (ध्रुव) अथडाके नष्ट होजायँगे वा एकको नेगीटिव (रण) होना पडेगा. जब पूर्ण माइट (बलवान) होता हे तब उसका बल दूसरोंको नियममें रखनेवाला होगा; नहीं तो वोहभी नष्ट होजायगा, एसा प्रकृतिका प्रवाह हे ॥ ७९ ॥

पूर्ववत् देशापेक्षा, नहींभीही प्रकाश निरोध वत (अ.) ॥ ८० ॥

अर्थ.—हरकोई पदार्थ जब देशांतरमें जाता हे वा परिणामको पाता हे तब जितना देश (क्षेत्र) पूर्वमें लिया था उतनाही देश (क्षेत्रफल) लेगाही; एसा नियम नहींभी हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के एक मकानमें दीपकका प्रकाश पसरा हो उस दीपकको एक घटमें रखें तो वोह प्रकाश पूर्व जितना देश नहीं लेता. यह पक्ष जीववादि, चेतनवादि ओर जडवादिकोभी संमत हे; परंतु असंगत हे. इसकी असमीचीनता २५० । २५३ । २१९ । ३७२। ३८२ । २३९ । २४२ । २४५ । ३७८ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ८० ॥

जो परिच्छिन्न हे वोह गतिमान हे (२६१), गति देश विना नहीं (२१९), इसलिये मन, विजली, प्रकाश, जीव वगेरे गति करने समय एक दूसरेको हटाये विना गति नहीं करसकते. एक बिंदुमें १०० जीव हों ओर देशको न रोकते हों तो गतिभी देशके विना करसकेंगे, परंतु एसा नहीं होता; इसलिये उन १०० का परस्परमें संयोग ओर क्षेत्र मान्नाही पडेगा. प्रकाश मोटा पतला होता हे अर्थात सावयव–मध्यम होनेसे संकोच–विकासवाला हे; अतः पूर्ववत देश लेता हे यह स्पष्ट हे, परंतु सूक्ष्म होनेसे बुद्धिमें ग्रहण नहीं होता हे. अधिक प्रकाश हो तो तदगत पदार्थ (अक्षर वगेरे) नहीं दीख पडते, इसलिये देश निरोध उसमें मान्नाही पडेगा. एवं अन्य पदार्थ वास्तेभी यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ८० ॥

अन्योऽन्याश्रयही अनादि होनेसे (अ.) ॥ ८१ ॥

अर्थ.—दृश्यगत, ग्रह उपग्रह किसीके आधेय नहीं हें किंतु अन्योऽन्याश्रयही हें, क्योंकि अनादिसे स्वाभाविक एसाही हे; इसलिये अन्योऽन्याश्रय मान्नेमें दोषका अभाव हे. यह पक्ष जडवादि, योरोपके आकर्षणवादि, जैन, मैमांसिक ओर किसी

यूनानीकोभी संमत हे. इसकी असिद्धि २५६ से लेके १६८ तकसे ओर ६६८ से होजाती हे. ओर कुछ आगे वांचोगे ॥ ८१ ॥

ग्रह उपग्रह संयोगज हें; अतः उनमें अनादित्व नहीं बनता (३५० से ३५५ तक देखो) ओर जो अजन्य हें उनमें अन्योऽन्याश्रयत्वकी व्याप्ति नहीं मिलती. जैन, मैमांसिक, पृथ्वी वगेरेको स्वभावतः अनादिसे स्थिर ओर गतिमान (उपचयापचय होना) भी मानते हें ओर योरोपनिवासी वर्तमानके फिलोसोफर आकर्षण द्वारा अन्योऽन्याश्रय मानते हें. कोई जडवादि स्वभावतः अन्योऽन्याश्रय मानता हे; परंतु यह पक्ष सिद्ध नहीं होते ॥ ८१ ॥

मूलउपादान एक स्वरुपही (अ.) ॥ ८२ ॥

अर्थ.— इस सृष्टिका उपादान एक तत्वही हे, नाना समूहात्मक नहीं; एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष तमाम अद्वैतवादियोंको संमत हे; इसकी असिद्धि निरवयव तथा अभेद अधिकरण ओर सू. १६८ । ३४० । ३०२ । ३०३ । १६३ । १६४ । ५६८ । ५६९ ओर ५७१ से होजाती हे ॥ ८२ ॥

वेदांतका एक पक्ष, शुद्धाद्वैत, सूफी, क्षणिकबौद्ध ओर हेगलश्री इस दृश्यको एकका उपादेय वा परिणाम मानते हें, परंतु सिद्ध नहीं होता ॥८२॥

(मूलउपादान) **असीमही** (अ.) ॥ ८३ ॥

अर्थ.—इस दृश्यका मूलउपादान असीम (निराकार–विभु) हे, एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष अभिन्ननिमित्तोपादानवादि अद्वैतपक्षवालोंका हे. इसकी असमीचीनता, निरवयव ओर अभेदाधिकरणसे ओर सू. ३०२ । ३०३ । १६३ तथा १६४ से सिद्ध होजाती हे ॥ ८३ ॥

(मूलउपादान) **सादीही** (अ.)॥ ८४ ॥

अर्थ.—दृश्यका उपादान अनादिसे नहीं हे, किंतु सादि हे; एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष विश्वासिओंको, अभाववादिको तथा शून्यवादिको संमत हे. इसकी असमीचीनता कारण, उपादान ओर उपादेयाधिकरण तथा सू. १३७ । १८४ । १९० । १९२ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ८४ ॥

विश्वासी एसा मानते हें के ईश्वरने अनुपादान अभावसे पंचतत्व वा जीव ओर जगत बनाये हें. अभाववादि अभावसे होना मानता हे; परंतु यह पक्ष समीचीन नहीं. इस मंतव्यके ५ भेद आगे वांचोगे ॥ ८४ ॥

ओर बिनाशीही (अ.) ॥ ८५ ॥

अर्थ.—जिससे यह जगत बना हे सो मूलउपादान नाशवान (सांत) हे, एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष मायावादि ओर विश्वासियोंका हे; इसकी असमीचीनता सू. १३७। १३८। १९०। १९२। १९५। १८४। १८६ ओर २९५ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ८५ ॥

मायावादि, मायाको अनादिसांत मानता हे. विश्वासवादि कहते हें कि जगतकी सामग्री ईश्वरने अभावसे पेदा की ओर सो नाश होजायगी; इस मंतव्यके ४ भेद हें सो आगे वांचोगे. पूर्वोत्तर न होनेसे माया सादिसांत हे; उत्पत्ति नहीं ओर नाश देखते हें, अतः अनादिसांत हे; असत्की प्रतीति नहीं होती, ओर इसकी होती हे; अतः असत् नहीं. सतका बाध नहीं होता, इसका ज्ञानसे बाध होता हे; अतः सत् नहीं. अर्थात माया–प्रकृति अनिर्वचनीय–विलक्षण हे; अतः अनादिसांत कहसकते हें. मायावादिके यह दो पक्ष हें. परंतु उक्त ५क्ष सिद्ध नहीं होते ॥ ८५ ॥

उपादेय, उपादानसे इतर प्रकारकाभीही जलवत् (अ.) ॥ ८६ ॥

अर्थ.—उपादेय, अपने उपादानसे इतर प्रकारकाभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के जल–उपादेय अपने उपादान औषजन ओर उद्जनसे अन्य प्रकारका होता हे; यह पक्ष प्रकृतिवादि तथा नैयायकोंकाभी हे; इसकी असमीचीनता २८५। २८७। ३०२। ३०३। ३१० से स्पष्ट होजाती हे ॥ ८६ ॥

जलमें जो योग्यता हे वोह औ. हा. में नहीं हे, इसलिये नवीन (अभावजन्य) उत्पन्न हे, एसा मानना पडता हे. इस पक्षको लेके शक्तिवादि, एक शक्तिसे नाना विरुद्धधर्मवाले पदार्थ होना मानलेता हे; परंतु यह पक्ष असंगत रहता हे ॥८६॥

कार्यका नाश कारण पश्चातभीही पटतंतु वत् (अ.) ॥ ८७ ॥

अर्थ.—कार्यका नाश उसके उपादान कारणके नाश पीछेभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के पटरुप कार्यका नाश उसके उपादान तंतुके नाशके आरंभ पीछे होता हे. यह पक्ष नैयायक ओर किसी वेदांतीकोभी संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ३०२। ३०३। ३०५। २९५। ३१६। ३५२। ओर ३६१ से सिद्ध होजाती हे ॥ ८७ ॥

मायावाद शरीरको अज्ञानजन्य प्रारब्धका कार्य मानता हे. अज्ञानका ज्ञानसे नाश होजाना ओर प्रारब्ध शेष रहना (अविद्यालेस रहना) कहता हे. घट

नाश होनेके पूर्व उसके कारण प्रागभावका नाश होता हे ओर तंतु नाशके उत्तर क्षणमें पटका नाश होता हे, एसा नैयायक मानते हें. परंतु यह पक्ष असंगत हें. जो अधिष्ठान (स्वरुप) के अज्ञानसे जन्ममरण–शरीरादिकी प्राप्ति वा भ्रांति हे, तो जबतक शरीरादिकी प्रतीति हे वहांतक अधिष्ठानका यथावत् ज्ञान होना नहीं मानाजायगा, ओर यदि कोई ओर कारणसे हे तो दूसरी बात हे. वेदांतका एक पक्षकार आत्मवित्की विदेहमुक्ति मानता हे, जीवतेही मुक्ति नहीं मानता, उसका यही कारण हे; क्योंकि भ्रमनिवृत्तिका शेष अधिष्ठान होता हे (६५२), नहींके अविद्यालेस. वेदांतसंप्रदायमें इस विषे अनेक शंका समाधान हें; वृत्ति-प्रभाकर भाषाका ग्रंथ देखो (प्रसिद्ध हे) ॥ ८७ ॥

कार्य स्वकारणके नाशमें निमितभीही,
अग्निपटसंयोग वत् (अ.) ॥ ८८ ॥

अर्थ.—कार्य अपने कारणके नाश होनेमें निमित्त होभी जाता हे, एसा निश्चित देखते हें; जेसे के तंतुके नाश होनेमें उसके कार्य पटका अग्निके साथ जो संयोग सो निमित्त होजाता हे; यह पक्ष नैयायकोंको संमत हे ओर एक वेदांती-कोभी मान्य हे. इसकी असिद्धि सू. ३०५। २९४ । २९५। ३१६ । ३५२। ओर ३६१। से स्पष्ट होजाती ॥ ८८ ॥

वेदांतका एक पक्षकारका यूं कहना हे कि माया वा अज्ञानकी दो वृत्ति हें अविद्या ओर विद्या. विद्या याने ज्ञानको माया वा अज्ञानके नाश होनेमें निमित्त मानता हे. जेसे के स्वप्नजन्य सिंह उपादान सहित स्वप्नके नाश होनेमें निमित्त हे, एसा कहता हे. परंतु सूक्ष्म विचार करके देखोगे तो यह मंतव्य सिद्ध न होगा ॥ ८८ ॥

कारण स्वकार्यका विषयभीही जन्य जनक वत् (अ.) ॥ ८९ ॥

अर्थ.—कारण अपने कार्यका विषय होताभी हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के संतान अपने जनकको विषय करती हे; यह पक्ष बौद्ध, न्याय ओर जड-वादिको संमत हे; इसकी असमीचीनता सू. २९८। ४४५ से स्पष्ट हे ॥ ८९ ॥

क्षणिकविज्ञानकी सिद्धिमें विज्ञानके परिणामकोही मानना पडता हे. आत्मा ओर मनके संयोगसे उत्पन्न हुवा जो ज्ञानगुण उसका विषय आत्मा हे एसे न्याय मानता हे. विच्छु उत्पन्न होके अपनी माकेही डंक मारता हे. पुत्र अपने माबापको विषय करता हे वा मारताभी हे. वेदांतपक्षमें ब्रह्म वाणि रहित-निर्विकल्प हे; जीव

अविद्या वा अंतःकरणविशिष्टचेतन, वा अविद्या-वा अंतःकरणउपहितचेतन, वा साधिष्ठानचेतनका आभास मानाजाता हे; सो कार्यरुप जीव, ब्रह्मसत्यं जगतमिथ्या वा अहंब्रह्मादि कहता हे ओर लक्षणा करता हे. इस प्रसंगमें कारण जो ब्रह्म ओर माया उसको विषय करता हे, उसका स्वरुप वर्णन करता हे, एसा मान्ना पडता हे; परंतु जीव अपनेकोही विषय नहीं करसकता (३७५ । ४४५) तो अपने कारणके विषय करनेकी तो बातही क्या करना.

विच्छु वा पुत्रका उपादान-जननी, जनकसे भिन्न होके अन्य हे; अतः विषम दृष्टांत हे. आत्मा वा मन वा इन उभयका संबंध ओर भेद यह जन्य--ज्ञानगुणके विषय नहीं हें, किंतु इससे अन्य प्रकार हे.

उपरोक्त अकथ्य–अनिर्वाच्य विषय हे, जेसे मानाजाता हे वेसे नहीं हे; किंतु स्वतोग्रह–स्वप्रकाश–स्वतःप्रमाणरुप हे. अनुभवकाही विषय हे. अ. ४ में वांचोगे.

पदार्थकी उत्पत्ति ओर नाशभीही (अ.) ॥ ९० ॥

अर्थ.—सृष्टिमें नवीन पदार्थोंकी उत्पत्ति ओर उनका नाशभी हे, एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष विश्वासी, यौक्तिक ओर अमुकरुपमें जडवादिकोभी संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. १३७ । १३९ । १८४ । १९६ । ३०७ से लेके ३१४ तकसे ओर ३५० से लेके ३५५ तकसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ९० ॥

विश्वासी अभावसे नवीन उत्पत्ति ओर कोई उसका नाश, कोई अनाश मानता हे, नैयायिक घटादिको नवीन उत्पन्न होना ओर उनका नाश मानते हें तद्वत् साम्यकअभावको. जडवादि दो पदार्थ मिलके उनसे अन्य प्रकारका तीसरा उत्पन्न नाश होना मानते हें, जेसे के जल. परंतु यह सब मंतव्य असंगत हें ॥ ९० ॥

उत्पत्ति नाश अनिश्चितही (अ.) ॥ ९१ ॥

अर्थ.—पदार्थोंकी उत्पत्ति ओर नाशके संबंधमें जितने पक्ष हें उन सबमें दोष आनेसे उत्पत्ति नाशका प्रकार निश्चित नहीं होता; इसलिये पदार्थोंकी उत्पत्ति नाश, यह विषय अनिश्चितही हे. यह मंतव्य अशोधकको संमत होसकता हे. इसकी असमीचीनता १३७ । १३९ । ३५० । ३५२ । ३५३ । ३५५ । ५६९ । ३६१ ओर ३६३ से स्पष्ट हे; क्योंकि पूर्ववत् एकांत हे. ४७७ । ४८४ भी देखो. (विशेष आगे) ॥ ९१ ॥

कार्य, निमित्त विनाभीही (अ.) ॥ ९२ ॥

अर्थ.—हरकोई कार्य निमित्तकारणके विना न हो एसा नहींभी हे, एसा निश्चय होता हे; यह मंतव्य स्वभाववादि, प्रवाहवादि, बौद्ध, जैन, मैमांसिक, ओर जडवादिको संमत हे; इस मंतव्यकी असिद्धि निमित्ताधिकरण २७२।२२४। २१९। २३३। २७०। ३३७। ३५२। २१६। ११३। उत्पत्तिप्रकरण ओर आधारअधिकरणसे होजाती हे ॥९२॥ जड हवा खाली जघेमें निमित्त विना आपही दोड आती हे; इसप्रकार निमित्तविना कार्य होते हें यह सायंसको संमत हे.

बीज, शरीर, सूर्य–चंद्रादि (सृष्टि) स्वभावतः उत्पन्न स्थित ओर नाश होते रहते हें, उनका कोई प्रयोजक–निमित्त नहीं हे, यह मत स्वभाववादि ओर प्रवाहवादिका हे. सृष्टि अनादिसे एसीही हे, इसके बनेका निमित्तकारण कोईभी नहीं हे, ग्रह वगेरे वहांकेवहांही उपचयापचय होते रहते हें; यह जैन ओर मैमांसिकको संमत हे. वासनिकविज्ञान स्वभावतः क्षणिकपरिणामी हे सो पदार्थाकार होता हे, उसका प्रेरक वा प्रयोजक–निमित्त अन्य नहीं हे, यह क्षणिक बोद्धका पक्ष हे. सांख्यका एक पक्ष कहता हे कि प्रकृति स्वतंत्र याने अपने आप पदार्थरुप परिणामको पाती हे. एक जडवादिका यह मंतव्य हे कि परमाणुओंमें स्नेह, अस्नेह, गुण वा शक्ति रही हुई हे, सजातीय मिलना चाहते हें, बीचमें विजातीयभी बंधाजाते हें, गरमी गतिमें होती हे ओर पदार्थोंमें चुसाती हे उसके साथभी परमाणुओंका मिश्रण होता हे, इसप्रकार ग्रहादि बनते बिगडते हें ओर ग्रहोंके अंतरगत बीज, वनस्पति, प्राणी, शरीर वगेरेभी इसीप्रकार उत्पन्न नाश होते हें, कोई संयोग वियोग करनेवाला वा सृष्टिकर्ता नहीं हे. परंतु यह पक्ष असंगत हे, सर्वाधार ओर निमित्तकारण मानेविना छुटकारा नहीं होता ॥ ९२ ॥

(कार्य) **अनुपादानभीही, जडजन्य चिद् वत्** (अ.) ॥ ९६ ॥

अर्थ.—कार्य, उपादान विनाभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के अमुक जडसमूह हुये चेतनत्व उत्पन्न होजाता हे, जो कि जडमें नहीं था; यह पक्ष विश्वासी, अभाववादि, शून्यवादि, स्वभाववादि, प्रकृतिवादि ओर योरोपके कोई फिलोसोफरको संमत हे; इस पक्षकी असमीचीनता सू. २७०। २७५। २८०। २८५। २८७। २९६। ३०२। ३०३। १३७ ओर १३९से स्पष्ट होजाती हे; तथा अ. १ चिदचिद् विवेकमें इसका निषेध हे ॥ ९३ ॥

ईश्वरने अनुपादान (अभावमेंसे) जीव-जगत बनाया, एसा विश्वासी मानते कोई पुराणीभी एसा मानलेता हे. बीजमें वृक्ष न था ओर हुवा एसे अभाव हें, ओर

यादि वा स्वभावसे सृष्टि हुई हे, एसा स्वभाववादि मानता हे. वृक्षादि पूर्वोत्तरमें नहीं; अतः शून्यसे सृष्टि एसा शून्यवादि मानता हे. औक्षजन हाईड्रोजन जलकी योग्यतावाले (शीत, स्वाद, द्रवत्वबाले) नहीं हें, उनके मिश्रणसे नवीन (अनुपादान) जल बनता हे, दोकी रगडसे अनुपादान नवीन अग्नि (गरमी) उत्पन्न होती हे, एसे पश्चिमके नवीन फिलोसोफर मानते हें. तथा अमुक परमाणुओंमें चेतनशक्ति वा गुण रहा हे, जब उस प्रकारके अनेक परमाणु मिलजाते हें, तब उन चेतनशक्तिका समूह वा उन चेतनगुणोंकासमूह होके उन (चेतनशक्ति वा चेतनगुणों) का उपयोग होता हे; मानो कोई एक चेतनशक्ति वा एक चेतनगुण होय नहीं, एसे रुपमें उपयोग होता हे (यथा प्रोटोपलाजम-सेलूस-एमीबा वा ब्रेमेटर-मगज वगेरेका उपयोग होता हे-जिसे जीव याने सोलभी कहते हें); एसे योरोपके कइ पक्षकार मानते हें. परंतु उक्त तमाम पक्ष-सृष्टिनियम, युक्ति, परिक्षा ओर अनुभवको नहीं सहारते हें ॥ ९३ ॥

(कार्य) **निमित्त मात्रसेभीही** (अ.) ॥ ९४ ॥

अर्थ.—उपादानकारणकेविना निमित्तकारण मात्रसेभी कार्य होते हें अर्थात नवीन पदार्थ बनते हें. यह पक्ष विश्वासिओंको संमत्त हे. इसकी असमीचीनता सू. २७० । २७२ । २८२ । ३२० । २८५ । ३१० । ३०८ । ३०२ ओर ३०३ से स्पष्ट होजाती हे. ॥ ९४ ॥

विश्वासी एसा मानते हें कि पूर्वोत्तर ईश्वरही रहता हे, उस निमित्तमात्रसे अनुपादान जीव जगत हुवा हे, सो ईश्वरका परिणाम नहीं हे. ॥ ९४ ॥

(कार्य) **और उपादानमात्रसेभीही मलकमीवत्** (अ.) ॥ ९५ ॥

अर्थ.—निमित्तकारणके विना केवल यथायोग्य उपादानमात्रसेभी स्वयं यथायोग्य उपादेय (कार्य) होते हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे के मलमेंसे स्वयं प्राणी पेदा होजाते हें. यह पक्ष जडवादि ओर एक सांख्यानुयायीकाभी हे; इसकी असमीचीनता सू. २८२ । २७२ । २८० । ३२० । २१६ । २२४ ओर २९१ । से स्पष्ट होती हे ॥ ९५ ॥

अमुक प्रकारके मल-मेटरसे अमुक प्रकारकाही फोर्म बने अन्य नहीं, एसा होनेमें कोई न कोई अन्य निमित्त हे. विकासवादके प्रोटोपलाजम ओर एमीबा (अ. १ विकासवाद देखो) में ओर बीजोंमें जो उत्पादक, वर्धक तथा अनुरुपकरण शक्ति हे उसमें कोई न कोई अदृष्ट निमित्त हे. उपर कहे जेसे शक्ति-गुण-

वाले बीजोंकी अद्भुत् योजना स्वयं नहीं होसकती. जडमलजन्यकृमीमें ज्ञानशक्ति नहीं होसकती; अतः उपादानमात्रसे कार्यकी अनुत्पत्ति हे ॥ ९५ ॥

निराकारका निमित साकारभीही तत् सिद्धि वत् (अ.) ॥ ९६ ॥

अर्थ.—निराकार याने असीम वस्तुकेलिये साकारभी निमित होजाता हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के निराकारकी सिद्धिका निमित्त साकार होता हे. यह पक्ष जीववादिको संमत हे; इसकी असमीचीनता सू. ३२६से स्पष्ट होजाती हे ॥ ९६ ॥

जो जीव (ससीम—साकार) न हो तो ईश्वर (निराकार)की सिद्धि न हो १, एकपक्ष परिच्छिन्न जीवको निराकार मानता हे इस निराकारके कर्तृत्व-भोक्तृत्वमें साकार प्रकृति निमित्त हे २, सांख्य ओर योगका जीव असीम विभु हे इसके कर्तृत्व भोक्तृत्वमें प्रकृति निमित्तकारण हे ३, इसप्रकार जीववादि मानते हें.—परंतु जेसे प्रकाश स्वयंप्रकाश हे, चक्षु उसकी सिद्धिमें निमित्त हे, एसा कहना स्थूलदृष्टिसे हे; कारणके अंध हो तोभी प्रकाश स्वतः सिद्ध हे. तद्वत ईश्वरादि निराकार हों तो वे स्वतःसिद्ध हें. विभुमें कर्तृत्व-भोक्तृत्वासंभव हे; क्योंकि विभु, आकाशवत् सम होता हे. परिच्छिन्नको निराकार कहना हांसी उपजावक बात हे, इसका निषेध उपर (अ. ३ । ५२में) आचुका हे ॥ ९६ ॥

निमित्तउपादान भिन्न नहींभीही मकडीतंतुवत् (अ.) ॥ ९७ ॥

अर्थ.—एकही उपादेय-परिणामका निमित्तकारण ओर उपादानकारण भिन्नही हों, एसा नियम नहीं हे; किंतु एकही अभिन्ननिमित्तोपादानभी होता हे; जेसे के मकडीका शरीर उसके तंतुका उपादानभी हे ओर निमित्तभी हे; यह पक्ष अद्वैतवादियों (क्षणिकबोद्ध, एकवेदांती, परिणामवादि, सूफी, थीओसोफी, शुद्धाद्वैत, हेगल, वगेरे)का हे; इसकी असमीचीनता सू. ३२८ । २७६ । २७२ । ३२० । १०५ । ३४० । ३५० । ३५२ । ३७५ । २४३ । २६१ । १८० । १७६ । १७८ । १७९ । १९८ । २०० । २०२ । २०५ । २०७ । १६८ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३१६। ओर ३१८ से स्पष्ट होजाती हे; ओर मकडीका शरीरांश तंतुका उपादान हे ओर इच्छावाला जीव निमित्तकारण हे, अतः उपादान निमित्त जुदाजुदा हें ॥ ९७ ॥

क्षणिकविज्ञानवादि, निमित्त ओर उपादान एक निरवयव विज्ञानकोही मानता हे. अनीश्वरवादिसांख्य, प्रकृतिकोही निमित्तोपादान कहता हे. सर्वंखल्विदं

ब्रह्म–एसे शुद्धाद्वैत, थीओसोफी, वेदांती ओर सूफी कहते हैं--याने ब्रह्मको अभिन्ननिमित्तोपादान मानते हैं. हेगलश्री एक शक्तिकोही अभिन्ननिमित्तोपादान कहता हे. वेदांतका एकपक्ष मायाविशिष्टचेतन–ईश्वरको अभिन्ननिमित्तोपादान बताता हे, तहां मायाभाग उपादान ओर चेतनभाग निमित्त हे एसे मानता हे. इन सब पक्षोंमें उत्तर पक्षसे इतर सब असिद्ध ठेरते हैं ॥ ९७ ॥

गुण, गुणीसे अन्यभीही पुष्पगंध वत् (अ.) ॥ ९८ ॥

अर्थ.—गुण, अपने गुणीसे जुदा देशमेंभी जाता हे–याने गुणमें गति होतीभी हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे कि पुष्पकी गंध पुष्पसे दूर जाती हे; यह पक्ष जडवादि, किसी विश्वासी ओर किसी यौक्तिककोभी संमत हे; इसकी असिद्धि सू. ३३२ । ३३४ ओर ३३० से स्पष्ट होजाती हे; क्योंकि गुणका गमन गुणी विना नहीं होसकता ॥ ९८ ॥

चंदनका शीतत्व तमाम शरीरमें १, दीपकका प्रकाश दीपकसे अन्यत्र २, अणु जीव चेतनका ज्ञानगुण तमाम शरीरमें ३, मातापिता वा गुरुके गुण संतान वा शिष्यमें ४, ईश्वरकी अर्थबोधकशक्ति पदमें ५, ईश्वरकी शक्ति वा ज्ञान जीवमें ६ जाते हैं, एसा मान्नेमें आता हे. तहां नं. १, २, ३ यह जीव अणुवादियोंका नं. १, २, ४ जडवादियोंका, नं. ५ नैयायकोंका, ओर नं. ६ किसी विश्वासीका पक्ष हे. सो उपर लिखे अनुसार असंगत हैं ॥ ९८ ॥

शक्तिका परमें विनिमयभीही संतानवत् (अ.) ॥ ९९ ॥

अर्थ.—एककी शक्ति अपने शक्तिवानको छोडके दूसरेमें नहीं जाती हे, एसा नहींभी हे; अर्थात जातीभी हे; जेसे के माताकी शक्तिका संतानमें विनिमय होजाता हे; यह पक्ष उपरोक्त प्रकृतिवादि वगेरेका हे; इसकी असिद्धिभी ३३२ । ३३४ । ३३० । ३२८ से होजाती हे ॥ ९९ ॥

मनुष्य, गेंद वा बाण फेंकता हे उसमें मनुष्यकी शक्तिका बदल होता हे, एसा जडवादि कहते हैं. तद्वत् संतानमें शक्ति जाना मानते हैं, परंतु एसा नहीं हे. उपरोक्त सूत्रोंका व्याख्यान वांचो. ग्रहोंमें गुरुत्वशक्ति यदि हो तो वोह दूसरे ग्रहके पास गयेविना (संयोग संबंध हुये विना) दूसरे ग्रहको केसे खेंचसकती हे? नहीं, एसा इससे सिद्ध होजाता हे ॥ ९९ ॥

परिच्छिन्नकी सत्ता व्यापकभीही दीपक प्रकाश वत् (अ.) ॥ १०० ॥

अर्थ.—परिच्छिन्न पदार्थकी शक्ति शक्तिमानसे इतर देशमेंभी व्यापक होती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे कि परिच्छिन्न सूर्य वा दीपकका प्रकाश इतर देशमेंभी व्यापक होता हे. यह पक्ष विलक्षणवादसे इतर अनेकोंका हे; इसकी असमीचीनता सू. ३३२ । २६५ । १७२ । १७३ । २५३ । ३७८ ओर १७६ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १०० ॥

प्रकृतिवादि, आकर्षणका स्वाश्रयसे इतर देशमेंभी उपयोग होना ओर शक्तिको द्रव्यमें संकुचित होजाना वा चुमाना मानते हें. सूर्य उपासक सूर्यके प्रकाशको उससे अभिन्न मानके अन्यत्र व्यापक होना कहते हें. शक्तिवादि अग्निके प्रकाशको सूर्य प्रकाशवत् मानते हें. देवतावादि एक देवकी शक्ति एककालविषे अनेक मूर्त्तिओंमें आना कहते हें. जैनीभाई मुक्त जीवको परिच्छिन्न मानकेभी उसकी ज्ञानशक्तिको व्यापक मानते हें. दयानंदश्री ओर दूसरे द्वैतवादि* अणुचेतन जीवको शरीरमें एक देशस्थ मानके उसकी ज्ञानशक्ति (वा ज्ञानगुण)को शरीरके तमाम प्रदेशोंमें व्यापक मानते हें. सगुणवादि ईश्वरको परिच्छिन्न एक देशस्थ मानकेभी उसकी सत्ता (ओर ज्ञानगुण)को सर्व ब्रह्मांडमें व्यापक स्वीकारते हें. तद्वत् विश्वासियोंमेंसे कितनेक भाविक-भक्त एसाही कहते हें. नैयायक एसा मानते हें कि विभु आत्माके बिंदु प्रदेशके साथ जब मनका संयोग हो तब जीवमें ज्ञान ओर रागादि उत्पन्न होते हें सो आत्माके सब प्रदेशवर्ती होजाते हें. परंतु यह सब पक्ष असमीचीन हें ॥ १०० ॥

एकमें विरोधिधर्मभीहें। पृथ्वी वत् (अ.) ॥ १०१ ॥

अर्थ.—एक वस्तुमें विरोधी धर्म होतेभी हें अर्थात विरुद्धधर्माश्रयत्व निश्चय होता हे; जेसे कि एक कूंडेमें माटी डालके कटु, मिष्ट, दुर्गंधि, सुगंधिवाले बीज बोवें तो वेसेही फल होते हें अर्थात मिट्टी कटु, मिष्ट, दुर्गंध, सुगंधवाले विरोधीधर्मवाली जान पडती हे. यह पक्ष अभिन्ननिमितोपादान-अद्वैतवादि ओर अनेकोंको संमत हे. इसकी असिद्धि सू. ३४० । ३४२ । १३० । ९५ से स्पष्ट होजाती हे; ओर अ. ३ का सू. ६७ भी वांचो-उसके विवेचनको विचारो ॥ १०१ ॥

जीववादि जीवमें रागद्वेष विरोधीगुण वा धर्म मानता हे, परंतु समकालीन नहीं, ओर आगमापाई कहता हे. शुद्धाद्वैत, थीओसोफी, हेगल ओर वेदांतका एकपक्ष तथा पौराणि ब्रह्मको विरुद्धधर्माश्रय मानते हें; क्योंकि सब जगत (तम, प्रकाश, उष्ण, शीतादि) उसका परिणाम कहते हें. ईश्वरका अवतार सद् असद् गु-

णवाला हुवा था, एसा पौराणि मानते हैं. जैनी हरेक वस्तुको सदसद्काभी वाच्य मानते हैं. मैमांसिक जीवको जडचेतनात्मक कहते हैं ओर जाति व्यक्तिको भेदाभेद संबंधवाली बताते हैं. शून्यवादि वस्तुको भावअभावरुप मानता हे. एक नैयायक प्रागभावको भावरुप (घट) कहता हे. विश्वासियोंके ईश्वरने मनुष्य (जीव) को यथेच्छा बनाया, यथेच्छा योग्यता, बुद्धि दी ओर फेर जीवको जवाबदार बनाता हे; ईश्वर अन्यथाकर्ता हे (फेरभी जीवको स्वर्ग नरक देता हे) अर्थात न्याय, अन्याय इन विरोधीधर्मवाला हे. तद्वत् कई पौराणियोंका ईश्वर अन्यथाकर्ता होनेसे विरुद्ध धर्मवाला हे. सांख्यकी प्रकृति तम, प्रकाश, आकाश, परमाणुकी उत्पादक विरुद्ध धर्मवाली हे. तद्वत् वेदांतियोंकी माया विरुद्धधर्मवाली हे. इत्यादि मंतव्य (पक्ष) हैं; परंतु सिद्ध नहीं होते. पृथ्वी सावयव हे, एक स्वरुप–तत्व वस्तु नहीं; अतः सूत्रोक्त दृष्टांत विषम हे. किसी अधिष्ठानके आश्रय दो विरोधी वस्तु रहना वा दो विरोधीका संयोग होना दूसरी बात हे; परंतु एक द्रव्यमें दो विरोधीगुण-धर्म एक देशकालमें नहीं होते, यह नियम हे. (राग–द्वेष, मध्यम (अतत्व)की असमकालीन अवस्थाका नाम हे). एक वस्तु (ब्रह्म)से दो विरोधीगुणधर्म उत्पन्न नहीं होसकते (३०२ । ३०३ देखो), एसा आशय हे ॥ १०१ ॥

विरोधिसे निवृत्ति नहींभीहीं, व्यापक तम प्रकाश वत् (अ.) ॥ १०२ ॥

अर्थ.—दो विरोधियोंकी उनमेंसे एक द्वारा अन्यकी निवृत्ति होती हो एसा नियम नहींभी; एसा निश्चय होता हे. जेसे के एक मठमें तम प्रकाश व्यापक हुये रहते हैं; यह पक्ष विरुद्धधर्माश्रयवादि ओर किसी प्रकृतिवादिकाभी हे; उसकी असमीचीनता सू. ३४४ । ३४६ । ३४८ से सिद्ध होजाती हे ॥ १०२ ॥

उष्णताका अभाव यही शीत ओर प्रकाशका अभाव यही तम, एसा मानें तोभी प्रतियोगीका उसके अभावसे विरोध हे, एसा मान्नाही होगा. विजलीके एक किनारेका लोहेसे अविरोध ओर दक्षणवाले किनारेसे विरोध हे; क्योंकि विजली सावयव हे. विशेषज्ञानसे अज्ञानका विरोधही हे, इसलिये उससे अज्ञानकी निवृत्ति होजाती हे ॥ १०२ ॥

मूलप्रकृतिका परिणाम नवीन पदार्थही (अ.) ॥ १०३ ॥

अर्थ.—मूलप्रकृतिका जो परिणाम होता हे वोह नवीन पदार्थ हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि पूर्वमें न था ओर पीछे हुवा हे; यह मंतव्य यौक्तिकोंका

है; इसकी असिद्धि सू. ३६१ । २७५ । २१५ । ३५२ । १३७ । १३९ और १९६ से होजाती है; क्योंकि परिणाम किसी पुंजकी अवस्था है. नहींके नवीन पदार्थ ॥ १०३ ॥

त्रिगुणात्मक होनेसे संयोग वियोग नहींही (अ.) ॥ १०४ ॥

अर्थ.—तमाम पदार्थ तीन गुण पुंज प्रकृतिके परिणाम हैं, इसलिये संयोग वियोगजन्य नहीं हैं; एसा निश्चय होता है; यह पक्ष सांख्य–प्रकृतिवादि वा मायापरिणामवादिका है; इसकी असमीचीनता सू. ३५० । ३५२ । ३५३ और ३४५ से होजाती है; क्योंकि तीनों गुणका पुंजभी संयोग वियोग संबंधसेही मान्ना पडेगा (३८२ देखो). और मायावादिको अभेद तथा विरोधअधिकरणवश समूहात्मक कहना होगा अथवा अनिर्वचनीय कहके पीछा छुडाना पडेगा ॥१०४॥

उत्पत्यादि क्षणिकही स्वप्न दृश्य वत् (अ.) ॥ १०५ ॥

अर्थ.—पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश क्षणिक हैं, इन तीनों कार्य होनेकी एकसे अधिक क्षण नहीं है; एसा निश्चय होता है; जेसे के स्वप्नमें दृश्य क्षणिक होते हैं वेसे. यह पक्ष क्षणिकवादि बौद्धको संमत है और शब्द अनित्यवादिभी एसाही मानता है. इसकी असिद्धि ३५७ । २१३ । ३५८ और ३५९ से होजाती है ॥ १०५ ॥

कोई तीनोंकी एकक्षण दीपककी शिखाके अंतिम भाग समान, कोई उत्पत्ति और लय यह दो क्षण कहता है, स्थिति (प्रतीति) उभयके अंतरगत मानता है, शब्दवत् ॥ और कोई तीन क्षण कहता है जेसे के कुहाडेसे लकडीकी फाड कीजाती है, तद्वत् ॥ इनमें अंतिम पक्षही सिद्ध होता है ॥ १०५ ॥

सृष्टिका प्रवाह नहींही पक्ष दर्शनसे (अ.) ॥ १०६ ॥

अर्थ.—इस सृष्टिकी उत्पत्ति नाशका प्रवाह नहीं हैं, एसा निश्चय होता है; क्योंकि इस विषयमें नाना कल्पना हैं; यह पक्ष विश्वासी और जैन तथा मैमांसिक और वेदांतके एक पक्षकारका है; इसकी असिद्धि सू. ३६७ । ३६९ । ३७० । १२७ । १३५ । १३७ । १३९ और १९० से स्पष्ट होजाती है ॥ १०६ ॥

सृष्टि, पूर्वमें कभीभी नहीं थी, यह ईश्वरने अभावसे पेदा की, एसे विश्वासी मानते हैं. जैन और मैमांसिक कहते हैं कि न पेदा हुई और न नाश है; अतः प्रवाह नहीं. वेदांतपक्ष मायाको अनादिसांत मानता है; अतः सृष्टिका नित्य प्रवाह नहीं किंतु सृष्टिका उच्छेद कहते हैं. विश्वासियोंमेंसे एक यूं मानता है कि सृष्टिका

अत्यंतअभाव (उच्छेद) होजायगा. जीवोंकी मोक्षसे अनावृत्ति जो मानते हैं उनको सृष्टिका उच्छेद स्वीकारनाही होगा. इन पक्षोंकी दृष्टिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति ओर लयका प्रवाह नहीं माना जासकता. परंतु यह सबपक्ष असमीचीन रहते हैं, सृष्टिका सर्वथा उच्छेद अथवा नित्यत्व सिद्ध नहीं होता किंतु प्रवाह (सब ब्रह्मांडकी उत्पत्ति, स्थिति, लयका प्रवाह अथवा ग्रहोंकी उत्पत्ति, स्थिति, लयका प्रवाह) सिद्ध होता हे ॥ १०६ ॥

उपयोगकाभी नहींही मुक्त होनेसे (अ.) ॥ १०७ ॥

अर्थ.—सृष्टिका हमेशे उपयोग होता रहेगा, एसाभी प्रवाह नहीं हे, यह निश्चय होता हे; क्योंकि इसके भोक्ता तमाम जीव जब मुक्त होजायँगे तब उसके उपयोगका अभाव होजायगा. यह मंतव्य मोक्षसे अनावृत्तिवादियोंको स्वीकारना पडता हे; इसकी असिद्धि सू. ३६७ । ३६९ । ३७० । १२७ । १४७ । १४९ । १५१।१५३से सिद्ध होजाती हे; ओर अ. ३ सू. ४४।४५भी याद कीजिये॥१०७॥

स्वरुप इतरेतर नहींही एकका स्वरुप होनेसे (अ.)॥ १०८ ॥

अर्थ.—सर्व दृष्टश्रुत, परिच्छिन्न-नाना नहीं हैं किंतु एक स्वरुपही हैं, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि इन सबका उपादान एकही हे ओर उपादान उपादेय एक स्वरुप होते हैं. सू. ३०६ । ३०२ देखो; अतः दृश्य एकका स्वरुप होनेसे इतरेतर (भेद) का अभाव हे; यह पक्ष सर्व अद्वैतवादि वा माया (प्रकृति)वादियोंको संमत हे; इसकी असमीचीनता सू. ३७२ । ३७४ । ३७५ । ३८४ । ३८६।३४०।१७४।१७८।१८०।३०२ ओर ३०३से स्पष्ट होजाती हे॥१०८॥

सांख्य ओर योग दृश्यको एक प्रकृतिका, वेदांत एक मायाका, क्षणिकवादि एक विज्ञानका, शुद्धाद्वैत ओर थीओसोफी एक ब्रह्मका, सूफी ओर एक वेदांती एक ब्रह्मका ओर हेगलश्री एक शक्तिका परिणाम मानते हैं; अतः इतरेतरत्वका अभाव हे. परंतु यह पक्ष समीचीन नहीं हे; क्योंकि (१) संसारमें विरुद्धगति देखते हैं परंतु एककी विरुद्ध दिशामें अनेक गति नहीं होसकती, (२) ओर एकके विरोधी परिणाम नहीं होते, परंतु इस पक्षमें विरोधीपरिणाम होनाभी माना हे; अतः दृश्य एक स्वरुपका उपादेय नहीं होनेसे इतरेतरकी प्रसिद्ध सिद्धि होती हे[1] ॥ १०८ ॥

---

[1] यह पक्ष विचारणीय हे. इसका संतोषकारक खुलासा अध्यस्तवादही कर-सकता हे. ब्रह्मसिद्धांतगत उत्तरफिलोसोफीमें इसका विस्तार हे, कुछ आगेभी वांचोगे.

गुणादि गुण्यादि इतरेतर नहींही संयोग अदर्शनसे (अ.) ॥ १०९ ॥

अर्थ.—गुण–गुणी, गति–गतिवान, शक्ति–शक्तिमान, प्रभाव–प्रभाववान, अवस्था–अवस्थावान, स्वभाव–स्वभाववान, धर्म–धर्मी और संबंध–संबंधि, यह (१६) स्वरुपसे जुदाजुदा वस्तु नहीं हैं. यथा गुण और गुणी यह स्वरुपतः जुदाजुदा दो वस्तु नहीं हैं, एवं शक्ति शक्तिवानादि जुदाजुदा वस्तु नहीं हैं; क्योंकि इन उभय उभयमें परस्परका संयोग नहीं देखते (नहीं सिद्ध होता). यह मंतव्य सर्वको संमत होता हे. परंतु एक निर्गुण निर्विकल्पवादि (कैवल्याद्वैतवादि) को अंगीकार नहीं हे, इस मंतव्यकी असमीचीनता इतरेतर (भेदअधिकरण) आदि सूत्रोंसे स्पष्ट होजाती हे ॥ १०९ ॥[1]

गुणहीन वा शक्तिहीनसे कार्य नहीं होते, धर्मी धर्मके विना व्यवहार नहीं होता और कर्मीसे क्रियाके विना पदार्थ नहीं बनते; अतः गुण--गुण्यादि स्वरुपतः जुदाजुदा सिद्ध होते हैं. परंतु जो गुण्यादिको गुणादिमेंसे वा गुण्यादिमेंसे गुणि-आदिको निकाललें तो कुछ शेष नहीं रहता. यह एसा अनिर्वचनीय विषय हे कि जिसके भेद (इतरेतर) होते हुयेभी प्रयोगसे सिद्ध नहीं कियाजाता. एसी मूल-त्रिगुणात्मक अनिर्वचनीय प्रकृति हे. गति, प्रभाव, अवस्था और संबंध यह स्वरुपतः

---

[1] जाति (धर्म), व्यक्ति (धर्मी) इतरेतर पदार्थ नहीं हैं किंतु व्यक्तिमात्रही सिद्ध होती हे; कारणके जाति (सामान्य प्रत्यय) बुद्धिकी कल्पना हे, एसा सिद्ध होता हे. यदि जातिको पदार्थ मानें तो व्यक्तिकी उत्पत्ति नाशके साथ उसकीभी उत्पत्ति नाश मान्ना पडता हे; यथा घटादिके साथमें घटत्वादिका उत्पत्ति नाश मान्ना होगा; यहां घटादिका उपादान तो मृतिकादि हैं, परंतु जातिका कोई प्रकारका उपादान सिद्ध नहीं होता. इसलिये उसको नित्य मानें तो सजातीय रहित जो एक आकाश, एक ईश्वर, एक सूर्य, उनमें सिद्ध न होगी; क्योंकि अनेकोंमें जो एक सामान्यधर्म, उसे जाति कहते हैं; आकाशादि अनेक नहीं; अतः जाति रहित मान्नेसे अव्याप्ति दोष आवेगा. इत्यादि. विशेष अ. २ गत स्वरुपसंभावनाके विवेचनमें इस विषयका विस्तार किया गया हे ॥ और गति, प्रभाव, अवस्था और संबंधका भाव स्पष्ट हे.—याने वे स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं हैं; किंतु द्रव्य-पदार्थोंकी अवस्था विशेष हैं ॥ गुण तथा शक्ति वास्ते विवेचनमें कहाही हे ॥

कोई वस्तु नहीं हें किंतु द्रव्योंकी स्थिति–अवस्था हें, इस भावमें वे इतरेइतर नहीं हें; परंतु जो उनको वस्तु मानो तो गतिवानादिसे जुदाही कहने पडेंगे ॥१०९॥

द्दष्टा दृश्य भिन्न नहींही एककी अवस्था होनेसे (अ.) ॥ ११० ॥

अर्थ.—दृष्टा ओर दृश्य उभय स्वरुपसे भिन्न नहींही, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि दोनों एककी अवस्था होती हें. यह मंतव्य ईम्प्रेशनवादि ओर अद्वैतवादिको संमत हे; इसकी असिद्धि सू. ३७५ से होजाती हे ॥ ११० ॥

क्षणिकविज्ञानवादि उभयको एक विज्ञानका पूर्वोत्तर परिणाम मानता हे. ईम्प्रेशनवादि मगजकाही परिणाम कहता हे, उससे इतर दृष्टा-दृश्य नहीं मानता. ब्रह्मवादि ब्रह्मकोही दृष्टा–दृश्यरुप कहता हे, किंतु त्रिपुटीही उसका परिणाम मानता हे; परंतु उभय भिन्न न हों तो व्यवहारही असिद्ध रहता हे. ओर एक तत्वकी अवस्थाही नहीं होती; अतः उभय एकके रुप नहीं. दृष्टा-दृश्य समकालीन होनेसे सावयवोंका भिन्न २ भाग मानसकते हें; परंतु एकका परिणाम नहीं मानसकते. इम्प्रेशनका दृष्टा वा सिद्धकर्ता उससे भिन्नही मान्ना होगा, अन्यथा ईम्प्रेशनकीही सिद्धि न होगी. जेसे दृष्टा-दृश्य भिन्न हें, वेसे ज्ञाता-ज्ञेय, प्रकाश-प्रकाश्य, भोक्ता-भोग्य ओर कर्ता-कर्मभी जुदाजुदा होते हें एसे जानके आत्मा, अनात्माका विवेक कर्तव्य हे ॥ ११० ॥

उपादान उपादेय भिन्नही उपयोगके भेद होनेसे (अ.) ॥ १११॥

अर्थ.—उपादान ओर उपादेयके उपयोगमें भेद होनेसे वे दोनों एक स्वरुप नहीं, किंतु भिन्न स्वरुप हें, एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष नैयायक, जडवादि, किसी यूनानी ओर पच्छमी सायंसको संमत हे. इसकी असिद्धि सू. १३७।१३९। ३०२ से ३१० तक। २९४ ओर ३५२ से स्पष्ट हे. (३१६। ३१८ भी देखो याने परिणामी-परिणाम ओर अवयव-अवयवीभी भिन्न नहीं हें, एसा जानलोगे) ॥ १११ ॥

नैयायक घटादिकोंको नवीनउत्पन्न होना मानते हें; क्योंकि मिट्टी ओर घटके उपयोगमें अंतर हे, ओर घटादि पूर्वमें नहीं थे. जडवादि जीवको शरीरका परिणाम शरीरसे जुदा भाग मानते हें, ओर मगजके नाशसे उसका अभाव कहते हें. यूनानके लुकमान वगेरे हकीमभी एसाही मानते हें. औ. हाइड्रोजनसे जो जल बनता हे वोह औ. हाइ. से नवीन भिन्न हे; क्योंकि उसकी योग्यता ओर उप-

योगमें उनसे अंतर हे, एसा पच्छमकी सार्यंस मानती हे. जडअवयवोंके मिश्रणसे तद्भिन्न योग्यतावाला चेतन (चिद्शक्ति) उत्पन्न होता हे, एसा जडवादि मानता हे. परंतु यह सब मंतव्य समीचीन नहीं हें ॥ १११ ॥

संयोगसे इतर साक्षात संबंधभीही गुणगुण्यादि वत् (अ.) ॥ ११२ ॥

अर्थ.—नित्य वा अनित्य-संयोगसंबंध प्रसिद्ध हे, उससे इतर साक्षातसंबंध नहींही, एसा नहीं हे. जेसे के अ. ३ । १०९ गत गुणगुणी, शक्तिशक्तिवान (३७४। ३३० देखो) आदि १६का संयोगसंबंध नहीं हे, तोभी साक्षातसंबंध हे. अर्थात संयोगसंबंधसे इतर व्याप्यव्यापक. तादात्म्य, भेदाभेद, ओर समवाय यहभी साक्षातसंबंध हें. यह मंतव्य बहुत पक्षकारोंका हे. इसकी असमीचीनता सू. ३७८। २५०। ३८२। ३८४। ६८९। ४९३। ९२। १५४। ३३८। २४२। ३७२ । ९५ ओर २४५ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ११२ ॥

गुणादि ओर गुण्यादि क्या? उनका परस्परमें संबंध क्या? वोह संबंध नित्य वा अनित्य? इत्यादिका विचार करनेपर यही परिणाम आवेगा के संयोगसे इतर साक्षातसंबंध नहीं ओर इससे इतर मानें तो स्वप्नवत् अनिर्वचनीय-कल्पित-संबंध (३८० देखो) मान्ना पडेगा; जेसा के वेदांतपक्ष (श्री शंकर) मानता हे.

न्याय, वैशेषिक नित्य-समवाय, मैमांसिक भेदाभेद, जैनभी सदसद् वा भेदाभेद, आर्यसमाजी व्याप्यव्यापक, सांख्य ओर योग तादात्म्य, विश्वासी तादात्म्य, मिश्रित थी. सो. वगेरे अनेकधा ओर अनिश्चितवादि अनिश्चितसंबंध-मानते हें; परंतु यह तमाम संबंध सयुक्त, संशय रहित ओर संतोषकारक सिद्ध नहीं होते. प्रस्तुत प्रसंगमें (गुणादि-गुण्यादि इन १६में) गुणगुणी ओर शक्तिशक्तिवान इन ४से इतर अन्य १२ बाबत इस विवादकी विषय नहीं हें; क्योंकि उनउनके दो रुप नहीं हें. चर्चाके विषय उक्त ४ हीं हे. अर्थात गुणगुणी ओर शक्तिशक्तिमानका क्या संबंध मान्ना, यही निर्णयका विषय हे.

निरावरण ओर सूक्ष्मस्वरुपोंका प्रवेशही स्थूल भिन्न विरोधि न होनेसे, आकाश परमाणु वत् (अ.) ॥ ११३ ॥

अर्थ.—जो पदार्थनिरावरण (पारदर्शक) सूक्ष्म-अमूर्त हें उनके स्वरुपोंका परस्परमें ओर मूर्त्त-स्थूलके स्वरुपोंमें प्रवेश होताही हे; क्योंकि जितने स्थूलपदार्थ हें उनका परस्परमें प्रवेश नहीं होता--वे अपने देश वा स्वरुपाधिकरणमें दूसरेके

स्वरुपका प्रवेश नहीं होने देते; कारणके देशके निरोधक होते हें; उनसे भिन्न प्रकारके याने जो निरावण, सूक्ष्म स्वरुप हें वे देशसे वा स्वरुपसे दूसरेके विरोधी नहीं होते अर्थात उनके स्वरुपोंका उन परस्परमें ओर स्थूलोंका उनके स्वरुपमें ओर उनके स्वरुपोंका स्थूलमें प्रवेश होता हे याने वे ओत प्रोत-तादात्म्य संबंधसे रहते हें; एसा निश्चय होता हे. जेसे के आकाश ओर परमाणु ओत प्रोत–तादात्म्य रहते हें याने एक दूसरेके स्वरुपका एक दूसरेमें प्रवेश हे, वेसे सब सूक्ष्मोंका स्वरुप हे. यह पक्ष केवलाद्वैतवादिसे इतर सबको संमत हे. इस पक्षकी असिद्धि, भेद (इतरेतर) अधिकरण ओर सू. २५०।६८९।९२।९५ ओर ४४१ से होजाती हे ॥ ११३ ॥

जो दो प्रकारके सत् पदार्थ (समसत्तावाले पदार्थ) मानते हें--अर्थात विभु-परिच्छिन्नवाद, नानाविभुवाद, अनेक गुणशक्तिवाले नानापरिच्छिन्नपदार्थवाद जो मानते हें, उन सब द्वैतवादियोंको यह पक्ष मान्ना पडता हे.

ईश्वर, जीव, गुण, शक्ति, स्वभाव, धर्म, गति, संबंध, सामान्य, विशेष, अभाव, काल, प्रकाश, तम, विजली, गरमी, शब्द, ईथर, मन वगेरे सूक्ष्म पदार्थ हें वे समसत्तावाले हें तोभी देशको नहीं रोकते, उनके स्वरुपोंका परस्परमें ओर स्थूलमें प्रवेश होता हे; एसे अनेक पक्षकार मानते हें.

जैन, धर्मास्तिकाय--देश तथा परमाणुओंका स्वरुपप्रवेश कहता हे, ४५ लाख जोजनकी मोक्षसिलामें अनंताअनंत जीवोंका रहना मानता हे, ओर द्रव्यमें असंख्यात शक्ति होना स्वीकारता हे. दूसरे जो स्वर्ग वा नरकको मानते हें उनकोभी एसाही मान्नापडता हे. आर्यसमाजी, नैयायकादि–अनेक जीववादि जीवमें रागादि गुण ओत प्रोत रहना कहते हें. जीव ओर मन, देशको नहीं रोकके एक बिंदुमें असंख्य समाजाना मानते हें. न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य अनेक जीव विभु (व्याप्य व्यापक) हें, एसा बताते हें. कितनेक पक्षकार, गुणादि पदार्थोंमेंसे कितनोंकको विभु (याने गुणिआदि विभु तो तद्गत गुणादिभी विभु), कितनोंकको परिच्छिन्न (याने गुणिआदि परिच्छिन्न तो तद् गुणादिभी परिच्छिन्न) मानकेभी देशविना गुणीआदिमें ओतप्रोत रहना कहते हें. एसेही कोई यूनानीफिलोसोफरभी मानता हे. ईश्वरवादि ईश्वरको विभु मानके उसमें गुण–शक्तिका प्रवेश ओर गति मानते हें. विश्वासी आकाशकी उत्पत्ति स्वीकारते हें अर्थात ईश्वर ओर जगत देशके विना ओतप्रोत रहना कहते हें--याने जगत ओर ईश्वरका व्याप्य व्यापकभाव संबंध बताते हें. मैमांसिक गुण गुण्यादिका भेदाभेद संबंध ओर नैयायक स-

मवाय (नित्य) संबंध मानते हैं. बौद्धोंमेंसे एक पक्ष पदार्थोंको देशविना होना कहता हे. नवीन सायंस-गुण, शक्ति, विजली, गरमी ओर प्रकाश-यह सर्व देशको नहीं रोकतेहुये ओतप्रोत रहना मानती हे ओर विजलीमें विरोधीगुणभी कहती हे. परंतु यह सब मंतव्य असंगत ठेरते हैं. वेदांतके कैवल्याद्वैत पक्षमें यह दोष नहीं आता; क्योंकि इस पक्षमें सत्सतावाला एक ब्रह्मही माना हे; दो पदार्थ समसत्तावाले नहीं माने हैं. अभिन्ननिमित्तोपादानवादमें[1] ब्रह्मको परिणामी मान्नेसे सावयव याने समसत्तावाले अनेक अवयव मान्ने पडनेसे उपरोक्त दोष आजाते हैं; परंतु मायाअनिर्वचनीय-विलक्षण, इस वेदांत पक्षमें स्वरुपप्रवेश दोष नहीं आता.

काचकी कोटडीमें वायु वा शब्दका प्रवेश नहीं होता, ओर गरमी प्रकाशका होता हे, अमुक पदार्थमें गरमी प्रवेश नहीं करती (नहीं चुसाती), प्रकाशका जुत्थ अधिक होनेसे अक्षर नहीं दिखाते, तम आवरक होता हे, गरमी ज्यादे होनेसे पानी वगेरेका पृथक्करण होजाता हे, प्रकाश ओर तमके भिन्न २ अधिकरण हैं, एक फोटो (प्रतिबिंब) पर दूसरा फोटो नहीं होता याने किरणेंभी परस्परमें प्रवेश नहीं करती, दूर गया हुवा पक्षी वायुआदिकी आडमें आनेसे नहीं दीखपडता, अनेक काच नीचे उपर हों तो किरणें, प्रकाश ओर गरमीभी एकदम प्रवेश नहीं करेंगे अर्थात प्रवेश करेंगे तो आडे टेढेहुये छिद्रोंमेंसे जायँगे; इत्यादि स्थूल बातोंकोभी जो ध्यानमें लेलोगे तो एक स्वरुपका दूसरेके स्वरुपमें प्रवेश नहीं होता, यह बात समझनेमें आने लगजायगी.

(शं.) लोहतप्तपिंडमें अग्निका प्रवेश हे, एवं ब्रह्मके स्वरुपमें जगतका वा जगतके स्वरुपमें ब्रह्मका प्रवेश होता हे; अतः स्वरुपप्रवेश बनता हे. (उ.) लोहेमें छिद्र हैं, अग्निके सूक्ष्म परमाणु उसमें घुसजाते हैं ओर समीप सूक्ष्म होनेसे लोहपिंड अग्निकापिंड जान पडता हे, एसा प्रकार होनेसे अग्निका प्रवेश हे; अतः विषमदृष्टांत हे. ओर इससे ज्यादा सूक्ष्मोंका वर्णन अ. २ सू. ३८२ के विवेचनमें हे; अतः स्वरुपप्रवेश सिद्ध नहीं होता.

(विभुपरिच्छिन्नवादका फेसला याने स्वरुपाप्रवेशका निर्णय अ. २ । ४२६॥ अ. ३ ओर अ. ४ तथा बस. गत उत्तरफिलोसोफीमें हे) ॥ ११३ ॥

भेद पदार्थही विशेष वत् (अ.) ॥ ११४ ॥

अर्थ.—परस्परका जो भेद (अन्योऽन्याभाव) यह पदार्थही हे; जेसे के

---

[1] शुद्धाद्वैत, थीओसोफी, सूफी, शक्तिवादि, श्रीहेगल.

वैशेषिक मतमें विशेष पदार्थ हे वेसे. यह पक्ष नैयायकादि भेदवादिओंको संमत हे. इसकी असिद्धि सू. ३८६।४९४।४९६।१५४ ओर १५९से होजाती हे ॥११४॥

भेद यदि पदार्थ मानें तो अनवस्थादोष, ओर परिमाणशून्यदोष आता हे; अतः अधिकरण, देश वा स्वरुपके वैलक्षण्यका नामही भेद हे. वैशेषिक मत हरेकमें 'विशेष' एक पदार्थ मानता हे--यथा यदि दो सजातियसमकनककी गोली योगीको आगे पीछे देवें तो योगी उनके विशेषत्वसे उनको जुदाजुदा बतावेगा. परंतु यह विशेषत्वभी देश, काल, वस्तु ओर संबंधका वैलक्षण्यही हे, पदार्थ नहीं हे. बस. में इसका विस्तार हे. एवं भेद (अन्योऽभाव) भी कोई पदार्थ नहीं हे, स्वरुपसंभावनाके विवेचनमें इसका विस्तार हे ॥ ११४ ॥

चेतन प्रकाश नहींही चित्तका प्रभाव होनेसे (अ.) ॥ ११५ ॥

अर्थ.--कोई चिद्प्रकाश (ज्ञानप्रकाश--चेतन) वस्तु नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि जिसे ज्ञान वा चेतन कहते हें सो प्रकृतिके कार्य चित्त (मन--बुद्धि) अथवा ब्रह्मरंध्रगत ब्रेमेटर (मगजका भाग सेंटर) की सूक्ष्मावस्था रुप प्रभाव अर्थात ईम्प्रेशन हे, यह पक्ष विज्ञानवादि, वर्तमान पश्चमीयशारीरिक शास्त्र (फीजकलसायंस) ओर जडवादिकाभी हे. इसकी असमीचीनता प्रकाशाधिकरण ओर सू. ७७। ७८ से सिद्ध होजाती हे. अ. १ गत चिदचिद् विवेकमेंभी इसकी असिद्धि कही हे. नैयायक चित् (ज्ञान) को आत्माका गुण मानते हें ओर उसकी उत्पत्ति--नाश बताते हें, सोभी एसाही असमीचीन पक्ष हे ॥ ११५ ॥

सर्वज्ञत्व ओर सर्वशक्तिमानत्वकी सिद्धिही सर्वमान्य होनेसे (अ.) ॥ ११६ ॥

अर्थ.--कोई ईश्वर वा योगी सर्वज्ञ हे वा कोई ईश्वरादि एक व्यक्ति सर्व शक्तिमान हे वा होसकती हे, इस विषयकी सिद्धि हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि किसी जडवादिसे इतर सब (मानवमंडल) इस बातको मानते आये हें ओर मानते हें. इस अविवेकरुप मंतव्यकी असमीनचीनता ओर उसका विवेक, असर्वज्ञअधिकरण ओर अशक्तिअधिकरणसे ओर सू. ४६९। ४७०। ६३ तथा ९५ ओर ४१०। ४११ तथा प्रकाशअधिकरणसे सिद्ध होजाते हें. ओर अ. १ अचिद्वादमेंभी इसकी असमीचीनता तथा इसके विवेकका विस्तार हे ॥ ११६ ॥

जितने ईश्वरवादि हें वे सब, ईश्वरको सर्वज्ञ--सर्वशक्तिमान मानते हें. जैनमत ऋषभदेवादि तिर्थंकरोंको सर्वज्ञ कहता हे. संतमतवाले योगीको सर्वज्ञ ओर सर्व-

शक्तिमान मानते हें. बौद्ध बुद्धोंको सर्वज्ञ कहते हें. पौराणि विष्नु, महादेव, शक्ति, राम, कृष्ण तथा व्यासको सर्वज्ञ कहते हें. संप्रदायी भाई-श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुज, श्रीवल्लभ वगेरेकोभी सर्वज्ञ मानते हें. विश्वासीमंडल ईश्वर सिवाय अन्यको सर्वज्ञ वा सर्वशक्तिमान नहीं मानता. ओर जडवादि किसी ईश्वरादिको सर्वज्ञ वा सर्वशक्तिमान नहीं स्वीकारते. मैमांसिक वेदको ओर सांख्य सिद्धको सर्वज्ञ मानता हे. वेदीसंसार, जैनसंसार, पारसी-याहूदी-ख्रिस्ति ओर मुसलमीन संसार, सर्वज्ञोंके ग्रंथभी मानती हें जो उनउनकी संप्रदायमें मान्य हें. थीओसोफी सीक्रेटडाकटरनको सर्वज्ञ महात्माद्वारा होना बताती हे, ओर ध्यानचोहानोंको सर्वज्ञ कहती हे तथा लोगोसको सर्वशक्तिमान ओर सर्वज्ञभी मानती हे. परंतु यह सब पक्ष असिद्ध रहते हें[१]. जिसप्रकार सर्वज्ञता ओर सर्वशक्तिमानत्व मान्ना चाहिये वा सिद्ध होता हे, वोहभी उक्त अधिकरण ओर सूत्रोंसे जानसकोगे ॥ ११६ ॥

सत्ताका भेद कल्पितही अस्तित्व समान होनेसे (अ.)॥११७॥

अर्थ.—पदार्थोंके अस्तित्वप्रकारमें जो भेद मानाजाता हे (अ. २, ४२१। ४२३ याद करो) सो बुद्धिकी कल्पना मात्रही हे; क्योंकि अस्तिमात्र अस्तित्वविशिष्ट होनेसे समान होता हे. यह पक्ष कैवल्याद्वैतवादि (मायावाद–विवर्तवाद–विलक्षणवाद–अध्यासवाद–बाधवाद–दृष्टिसृष्टिवाद)से इतर सबको संमत हे. इसकी असमीचीनता ओर सत्ताके भेदकी सिद्धि सत्ताअधिकरणसे स्पष्ट होजाती हे; विस्तार भू. ओर बस. में हे ॥ ११७ ॥

स्वप्नगत दृश्य ओर दृष्टाका विलक्षणत्व, स्वप्नदृष्टि तथा जाग्रतदृष्टिसे अनुभव कीजिये. ओर अध्यासअधिकरणकोभी विचारिये. विशेष आगे वांचोगे ॥ ११७ ॥

जाग्रत ओर स्वप्नका अस्तित्व समान नहींही स्वप्न बाधित होनेसे (अ.) ॥ ११८ ॥

अर्थ.—जाग्रतसृष्टि ओर स्वप्नसृष्टिका अस्तित्वप्रकार (सत्ता) समान नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि स्वप्नसृष्टिका अस्तित्व बाध होजाता हे--उसके अभावहुये पीछे वोह कहींभी नहीं होता ओर जाग्रतके पदार्थोंका अस्तित्व पूर्व-

---

[१]वेदांतका एक पक्ष मायाको अघटित घटना करनेवाली मानते हें, याने सर्वशक्तिमान ठेरी; परंतु वोह जड ओर चेतनशक्तिकी परतंत्र हे, एसा कहते हें; अतः सर्वशक्तिमान नहीं. वोह ब्रह्मका नाश नही करसकती, दूसरा ब्रह्म चेतन नहीं बनासक्ती, इत्यादि कारणसेभी सर्वशक्तिमान नहीं हे.

वर्त् वर्तमान होता हे--याने अबाधित हे. यह पक्ष ओर उसकी असमीचीनता अ. १ अध्यासप्रसंग ओर अ. ३ उभयसमान इसप्रसंगके अनुसार जानलेना चाहिये ॥ ११८ ॥

ब्रह्मांडमें मूलउपादान समसत्तावाले हें, विषमसत्तावाले नहीं; अतः स्वप्नके उपादान ओर उसके उपादेयकी तथा जाग्रतके उपादान ओर उसके उपादेयकी समसत्ता होना स्पष्ट हे. सू. ४३४ । ४३७ कोभी विचारो. विशेष आगे वांचोगे ॥ ११८ ॥

अधिष्ठानाध्यस्तका (अस्तित्व) विलक्षण नहींही अव्याप्तिसे (अ.) ॥ ११९ ॥

अर्थ.—जो जिसके आश्रय होता हे उस अध्यस्तका ओर उसके अधिष्ठानका अस्तित्व प्रकार समान (समसत्तावाला) होता हे, परस्परमें विलक्षण नहीं होता; एसा निश्चय होता हे; क्योंकि इनकी विलक्षणताकी व्याप्ति नहीं मिलती. इस पक्षकी मान्यता ओर उसके निषेधके संबंधमें अ. ३ सू. ४०४ । ५३५ समान योजलेना चाहिये. ओर आधाराधेयअधिकरण तथा सू. ३८२ को विचारें ॥ ११९ ॥

विषमसत्ता बाधकही स्वप्न जाग्रत वत् (अ.) ॥ १२० ॥

अर्थ.—जिन पदार्थोंकी विषमसत्ता हे वे आपसमें बाधकही होते हें, साधक नहीं होते; जेसे के जाग्रत ओर स्वप्न परस्परमें विषमसत्तावाले हें वे एक दूसरेके बाधक होते हें. यह मंतव्य जडवादिको संमत हे. इसकी असमीचीनता सत्ताअधिकरणसे सिद्ध होजाती हे ॥ १२० ॥

अनहुयेकी प्रतीतिभीही रज्जुसर्प वत् (अ.) ॥ १२१ ॥

अर्थ.—जब कुछ अस्तित्व प्रकार हो तबही प्रतीति हो, एसाही नहीं हे; किंतु न हो उसकी याने स्वअभावअधिकरणमेंभी प्रतीति होती हे. जेसे के डोरीमें सर्प न था, वर्तमानमें नहीं ओर उत्तरमेंभी नहीं-तोभी अनहुवा प्रतीत होता हे. यह पक्ष वेदांतके एक पक्षका हे. अजातवादि ओर शून्यवादिकोभी संमत हे. इस अविवेकका विवेक सत्ताअधिकरण ओर अध्यासअधिकरणसे होजाता हे ॥ १२१ ॥

रज्जुसर्पादि–तमाम अध्यास प्रसंगमें सत्ता हे याने इदंत्व अधिष्ठानकाही प्रतीत होता हे ओर सर्पादिका नाम कल्पन होता हे, अथवा वे सर्पादि शरीरस्थ शेषा (अविद्या) के परिणाम होते हें. अ. १ गत अध्यासप्रसंगमेंभी विवेचन हे.

भ्रमप्रसंगमें अनेक मत वा ख्याति हें उनके नाम यह हें. (विस्तार मूलमें हे).

१–सत्ख्याति (प्रकृतिवादि). सर्प सत्य हे.

२–असत्ख्याति (शून्यवादि). सर्प असत् हे.

३–सदसद्ख्याति (अनेकांतवादि). एक दृष्टिसे सर्प सत् हे, परदृष्टिसे असत् हे.

४--आत्मख्याति (बौद्ध क्षणिकविज्ञानवादि). सर्पविज्ञानका परिणाम हे.

५--अन्यथाख्याति (न्याय, वैशेषिक, एक आर्यसमाजी). इसके चार भेद हें. (१) अन्यका धर्म अन्यमें प्रतीत होना. (२) अन्य देशस्थ अन्यमें प्रतीत होना. (३) वोह (अधिष्ठान) ही अन्यरुपसे प्रतीत होना. (४) वोहही अन्यरुप होके प्रतीत होना (परमाणुवादि वा ब्रह्मवादि). इसको अन्यख्याति वा परिणामख्याति कहते हें.

९--अख्यातिख्याति (सांख्य, योग) याने इदं ओर स्मृतिका अविवेक.

१०--अनिर्वचनीयख्याति (कैवल्याद्वैतवादि--विवर्तवादि--मायावादि). सर्प ओर उसका ज्ञान अविद्याका परिणाम हे; सत् असत्से विलक्षण हे.

११--विलक्षणख्याति (ब्रह्मसिद्धांतकार). सर्प मायाके कार्यका परिणाम हे, अधिष्ठानसे विलक्षणसत्तावाला होनेसे विलक्षण हे. अनिर्वचनीय जैसा पक्ष हे.

१२–अनिश्चितख्याति (अनिश्चितवादि). भ्रम भ्रमकालमें भ्रमरुपसे ग्रहण नहीं होता, इसलिये वोह (सर्पादि) क्या था, इसका निश्चय नहीं होसकता.

१३–अनेकांतख्याति (एक पक्ष). सर्व एकांत नहीं किंतु जितने पक्ष कहें वेभी ओर उनसे अन्यप्रकारकाभी हो; क्योंकि मूलवस्तु कोई नहीं हे-पूर्वसे उत्तरोत्तर नानाप्रकारके परिणाम होते आते हें. याने रज्जुसर्प भ्रमप्रसंगमें सर्पभी हे, जलधाराभी हे, लकडीभी हे, डोरीभी हे. इत्यादि.

१४–संशयख्याति-(शोधक). रज्जुसर्पादि वा जगतके पदार्थ केसे हें यह नहीं कहा जाता, इसविषयमें संशयही रहता हे; क्योंकि मनुष्यका ज्ञान परिच्छिन्न, अल्प ओर अपूर्ण हे.

१५–कल्पितख्याति (परवश अज्ञानादिसे नामही कल्पन होजाना. अर्थशून्य).

१६–इत्यादि (कदाचित इनसे अन्य ओर प्रकारभी हो.)[१]

इसप्रकार १५ पक्ष हें. इनमेंसे अनिर्वचनीय-विलक्षणपक्ष टिकता हे, अन्य सब सदोष होजाते हें. इन सबपक्षोंसे उनउनकी रीतिसे जगतके स्वरुपका निश्चय

[१]यथा–अभावख्याति, विकासख्याति, विकासअविकासख्याति अ. १ में जनाइ हें.

होता हे. सो प्रकार मूलमें हे. विषय गहन हे. विस्तार देखना हो तो ख्यातिवाद ओर वृत्तिप्रभाकर ग्रंथमें देखो. अ. १ मेंभी बयान होचुका हे[1] ॥ १२१ ॥

यह भ्रमही अग्रहण होनेसे स्वप्नवत् (अ.) ॥ १२२ ॥

अर्थ.—यह दृश्य ब्रह्मांड याने त्रिपुटीमात्र भ्रम (अर्थशून्य--नाममात्र) ही हे, क्योंकि यथावत् ग्रहण नहीं होता; जेसे के स्वप्नकालमें स्वप्न भ्रमरुप हुयेभी स्वप्नरुपसे ग्रहण नहीं होता, वेसे यह दृश्य हे. यह पक्ष भ्रमवादिओंको संमत हे. इस गत अविवेकका विवेक सू. ४४१ । ४४२ । ६५१ । ४२६ ओर ४६० से होजाता हे ॥ १२२ ॥

भ्रम वा अध्यास, भ्रम वा अध्यासकालमें भ्रम वा अध्यासरुपसे विषय नहीं होता; अतः उसकी हयाती तक उसको भ्रम कहना भूल हे, विश्वाससे मानलेना दूसरी वात हे; क्योंकि विश्वासभी भ्रम कहाजायगा. सारांश जितना कुछ मान रहे हो सो सब भ्रम कहाजायगा ओर जो भाविष्यमें मानाजायगा सोभी भ्रम कहाजायगा. उक्त नियमभी भ्रम क्यों न हों? ब्रह्मभी भ्रमका विषय क्यों न हो? जीवन व्यवहारभी भ्रमरुप क्यों न हो? जब एसा मानें तो जीवनही न होगा; प्रश्न उत्तरमेंभी ओर उसकी सिद्धि असिद्धिमेंभी चुप रहना पडेगा. याने कुछ परिणाम न आया.

इसलिये जहांतक उसका बाध न हो वहांतक भ्रमकथन ओर मंतव्यकी अव्याप्ति हे; एसा मान्ना पडता हे; जेसे के स्वप्नमें व्यवहार होता हे. इसीप्रकार जगतका सर्वथा बाध न हो वहांतक उसका ज्ञाता उसको भ्रम नहीं कहसकता, नहीं मानसकता, क्योंकि साक्षीमें ग्रहण नहीं होता ओर भ्रमका प्रकाशक भ्रमरुप नहीं होसकता. यहही विवेक हे. विस्तार बस. गत उतरफिलोसोफीमें हे. ओर अ. १ अध्यास प्रसंगमेंभी हे. इसलिये दृश्यको भ्रम नहीं कहसकते (विशेष आगे अ. ३ । ४०० के विवेचनमें वांचोगे) ॥ १२२ ॥

विषय अविषयभीही ज्ञानवत् (अ.) ॥ १२३ ॥

अर्थ.—सब विषय किसी न किसीके विषय हों एसा नहींभी हे किंतु विषय

---

[1] नं. १२ ओर १४ समीप समीप हें. अ. १ में नं. १४ ओर १५ यह दो प्रकार जुदा नहीं जनाये हें; क्योंकि उनका समावेश उपरकी ख्यातिओंमें होजाता हे. इसलिये अ. १ में १३ (पृष्ठ १८८ से २१३ तकमें १३) ओर यहां १५ अंक लिखें हें ॥

विषय न हो एसाभी होता हे; जेसे के ज्ञानप्रकाश किसीकाभी विषय नहीं होता. यह मंतव्य स्वतः प्रामाण्यवादियोंका हे परंतु इस अविवेकका विवेक (सत्यासत्यका निर्णय) सू. ४४३। ४४४। ३९१ ओर ३९४ से होजाता हे; क्योंकि वोह स्वप्रकाशरुप न हो तो ज्ञान इस शब्दका कथन वा कल्पनभी नहीं होता ॥१२३॥

परतोग्रहवादि (न्याय-जडवादि) ज्ञानको अनुमानका विषय मानता हे. स्वतः, परतः इन उभयपक्षकी अर्थापतिसे ज्ञानको लक्ष्यालक्ष्य कहते हें. उससे इतरको ज्ञेय सूत्रके अनुसार मानते हें. (विस्तार बस. में हे) ॥ १२३ ॥

अपना आप विषयभीही प्रकाशवत् (अ.) ॥ १२४ ॥

अर्थ.—हरकोई पदार्थ (जीव, ईश्वर वगेरे) अपना आप द्रष्टा-ज्ञाता-भोक्ता कर्ता अथवा अपना आपदृश्य, ज्ञेय, भोग्य, वा कर्मभी होता हे, एसा निश्चय होता हे. जेसे के प्रकाश, परको जेसे प्रकाशता हे वेसे अपने आपकाभी प्रकाशक ओर आपही प्रकाश्य हे, वेसे चेतनपदार्थभी अपना आप विषय ओर विषयी हे. यह पक्ष एक जडवादि ओर अभिन्ननिमित्तोपादानवादि तथा एक शक्तिवादिका हे. इस अविवेकका विवेक सू. ४४६। ओर ३७५ से होजाता हे; क्योंकि प्रकाश अपना प्रकाशक नहीं हे किंतु प्रकाश स्वरुप हे. तद्वत ज्ञानप्रकाश, ज्ञानप्रकाश स्वरुप हे; इसलिये ज्ञानकोज्ञानकी, ज्ञानकेज्ञानकी ओर ज्ञानमेंज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती. ओर जड अपना आप विषय न हो यह तो स्पष्टही हे ॥ १२४ ॥

विषयकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा नहींभीही
शक्तिवत् (अ.) ॥ १२५ ॥

अर्थ.—मनुष्य जिस विषयको नहीं जानसकता याने जो मनुष्यका अज्ञेय हे उस विषयकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा नहीं हे, एसा निश्चय होता हे. जेसे के पदार्थोंकी शक्तिको मनुष्य नहीं जानसकता; अतः उसकी सिद्धिमें ज्ञानकी अपेक्षा नहीं हे. यह पक्ष अज्ञेयवादका हे; इसकी अयुक्तता सू. ४४७। ४७७ ओर ५६२ से सिद्ध होजाती हे ॥ १२५ ॥

मूक्ति वगेरे मनुष्यसे इतर किसी अन्यके ज्ञात क्यों नहीं? यदि सर्वथा अज्ञेय तो शक्ति नाम कथनभी दंभ वा असत् हे; क्योंकि जिसे शक्ति मानते हो उसे व्याप्तिद्वारा अनुमितिज्ञानका विषय मानते हो; अतः विषयकी सिद्धि, ज्ञान (प्रत्यक्ष, व्याप्तिज्ञान वगेरे) के विना नहीं होती, यह स्पष्ट हे. अपरोक्ष (विषय होना)

ओर किसीकी परतः द्वारा सिद्धि होना, यह एक बात नहीं हे, किंतु जुदाजुदा विषय हें, यही सूत्रमें रहस्य हे; चक्षु श्रोत्र जिव्हादि उसमें उदाहरण हें ॥१२५॥

ज्ञेयानुसारी ज्ञान नहींही बाह्य अज्ञेय होनेसे (अ.) ॥ १२६ ॥

अर्थ.—मनुष्यको जितने ज्ञान होते हें वे ज्ञेयके अनुसारही होते हें, एसा नहीं हे; क्योंके जो इससे इतर बाह्यपदार्थ हें वे उससे अज्ञेय हें, उनका उसको ज्ञान नहीं होता हे. यह पक्ष योरोपके प्रकृतिवादिओंका हे; ओर बाह्यानुमानवादि बौद्धकाभी हे. इसका असमीचीन भाग ओर विवेक सू. ४५१ से ४५५ तक--इन द्वारा जानलियाजाता हे ॥ १२६ ॥

मिथ्यासे सत्यकी सिद्धिभीही माया ब्रह्म वत् (अ.) ॥ १२७ ॥

अर्थ.—मिथ्यावस्तुसे सत्यकी सिद्धिभी होजाती हे, एसा निश्चय होता हे; जेसे के सत्ब्रह्मकी सिद्धि मायाका कार्य जो विद्या उससे होती हे. यह पक्ष किसी मिथ्यावादिका हे. इसकी असिद्धि सू. ४६० । ३९१ । ७७से होजाती हे ॥१२७॥

अद्वैतज्ञानस्वरुप सद्ब्रह्मकी सिद्धि ओर उससे इतर द्वैतका मिथ्यात्व, मिथ्यात्वका सत्यत्व ओर द्वैतका अभाव--यह सब बुद्धिकी अपेक्षासे हें. स्वप्नजाग्रतके अन्वयव्यतिरेकका लक्ष्य स्वप्रकाशमें स्वतोग्रह होनेसे संस्कारीवृत्तिके यह परिणाम हें. अन्यथा जडमाया ओर उसके कार्य जो बुद्धि-वाणी इनका विषय ब्रह्म नहीं हे. अतः यदि ब्रह्म हे ओर सत् हे तथा उससे इतर सब यदि सत् नहीं तो यह उसकी सिद्धिमें क्या उसके नामकल्पनमेंभी असमर्थ हें; क्योंकि स्वकार्य सहित माया जड (अनिर्वचनीय) होनेसे अपनेको ओर ब्रह्मको विषय नहीं करसकती ओर ब्रह्म, ज्ञानस्वरुप स्वप्रकाश होनेसे किसीका विषय नहीं तथा मनवाणिरहित निर्विकल्प हे तो फेर माया ओर ब्रह्मकी सिद्धि केसे हो; तथापि लक्ष्यालक्ष्यरुप सिद्धांत होता तो हे; सो पूर्वमें कहे अनुसार स्वतोग्रह हे; परंतु यह भेद स्ववेद्य, स्वतः प्रमाण, अवर्णीय ओर अकथ कहानी जैसा हे, जीवभी जिसे नहीं जानता फेरभी लक्ष्यालक्ष्य हे; इसलिये ब्रह्मकी सिद्धि, उससे इतर क्या ओर केसा, इनविषयमें ज्यादा कहनेका अवसरही नहीं हे. जिसदिन कपडेका शुक, काष्टकी पूतली, फोनोग्राफ ओर स्थाणुका पुरुष स्वयं सवालका उत्तर देंगे उसदिन शायद इन विषयोंकाभी उत्तर होसके. बस. में इसका विस्तार हे ॥ १२७ ॥

सत् स्वतःसिद्ध नहींही सबका रुपांतर होनेसे (अ.) ॥ १२८ ॥

अर्थ.—कोई सत् पदार्थ वा विषय स्वतःसिद्ध नहीं हे, एसा निश्चय होता

हे; क्योंकि पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर सबका रुपांतर होता रहता हे. यह पक्ष विकृत परिणामवादि याने योरोपके जडवादिका हे; इस पक्षकी असमीचीनता सू. ४५६। ४५७। मूल अधिकरण, स्वरुपजअधिकरण ओर सू. ३१२ । ३१४ से होजाती हे ॥ १२८ ॥

(पक्षकार) जेसे माटीसे बीज, बीजसे वृक्ष, उससे फल, उससे अन्य बीज वा मल, उससे वनस्पती, उससे लोही, उससे वीर्य, उससे शरीर–इत्यादि क्रमसे रुपांतर होता हे वेसे मिट्टीभी उसके पूर्वका रुपांतर हे, एसे पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तर विकृतपरिणाम होते आये हें, होरहे हें ओर होंगे; इसलिये इनमें किसीको अबाध्य (सत्) नहीं कहाजासकता. जिसे एक सत् मानता हे उसे दूसरा सत् नहीं कहता; यथा शब्दादि विषयमें मतभेद हें. जिसे व्यवहारमें सत् वचन कहते हो वोहभी सत् नहीं हे; जेसे के **में** को **तू** ओर **तू** को **में** मानते हें. में काना, मेरी आंख, मेरा शरीर में दुबलापतला इत्यादि वदतोव्याघात हे (५१६ देखो). इस अविवेकरुप मंतव्यका विवेक उपरोक्त सूत्रोंसे होजाता हे. मूलस्वरुप, अध्यास, रुढी, कुदरती-सत्य--इन चारोंके विवेकसे इस विषयका खुलासा होजाता हे ॥ १२८ ॥

किरणोंका स्पर्शा वत् रुप असंभवही तत्व होनेसे (अ.) ॥ १२९ ॥

अर्थ.—किरणें जिसको स्पर्श करें वेसाही आकार ओर रंग करलेती हें, यह बात असंभव हे; क्योंकि वे तत्वरुप होती हें (४६३ देखो); यह पक्ष शोधकका हे, इसका विवेक सू. ४६३ । ४६४ से होजाता हे.–अर्थात वे परमाणुरुप हें; अतः जुत्थ मिलनेसे स्पर्शावत् आकार होजाता हे ओर रंगके समुद्रमेंसे रंग ग्रहण होनेसे स्पर्शावत् रंग धारण करलेती हें ॥ १२९ ॥

प्रतिबिंबका प्रतिबिंब नहींही अनवस्थासे (अ.) ॥ १३० ॥

अर्थ.—अ. २ सू. ४६६ में सबका प्रतिबिंब होना माना हे, परंतु प्रतिबिंबका प्रतिबिंब नहीं होसकता; क्योंकि अनवस्थादोष आता हे. यह पक्ष अशोधकोंको मान्य हे. इस अविवेकका विवेक सू. ४६६ । ४६७ । ४६८ से होजाता हे ॥ १३० ॥

जेसे जलका प्रवाह चलता हे वेसे किरणोंकाभी प्रवाह हे. एक कांचमें सूर्यका प्रतिबिंब वा प्रकाशका प्रतिबिंब डालें तो काच दर काच होता जायगा. जिस जलमें झाडका प्रतिबिंव हो उसका यदि फोटो लें तो तिस फोटो सहित फोटो

होगा. एसे प्रसंगोंमें फोटोका फोटो नहीं हे किंतु स्वच्छ पदार्थोंपर किरणोंका प्रवाह हे सोही फोटोरुप जानपडता हे. स्वप्नभी यथासंस्कार किरणोंके मूल-ईथरका प्रवाह हे.-अर्थात बिंब विनाका प्रतिबिंब जैसा हे. ईथरमें योग्यताविशेष होनेसे प्रतिबिंबसे विलक्षणरुप होता हे याने शब्दादि सर्व विषयका रुप धारण होजाता हे. प्रतिबिंबके मूलउपादानका प्रतिबिंब नहीं होसकता; क्योंकि उसके प्रतिबिंब होने वास्ते वेसा अन्य उपादान (सामग्री) नहीं हे. सूर्यका फोटो लियाजाता हे ॥ १३० ॥

परअपरसे पर कोई नहींही असिद्धिसे (अ.) ॥ १३१ ॥

अर्थ.—दृश्य याने मनबुद्धिका विषय जो अपर (गोचर) ओर दृश्य तथा मनबुद्धिका मूल ओर मनबुद्धिसे जो पर (मूल अव्यक्त), इन उभयसे कोई अन्य पर नहीं हे. यह पक्ष प्रकृतिवादिको संमत हे; इसकी असिद्धि ७४७ से होजाती हे अ-र्थात उक्त पर अपर-मनबुद्धिका प्रकाशक-अनुभवीही उससे पर हे ॥ १३१ ॥

उपसंहार.

यहांतक उक्त नियमोंके प्रतिपक्ष ओर उनसे जो विषय सिद्ध होसकें उनका प्रति-पक्ष तथा इन प्रतिपक्षोंकी किन सूत्रोंसे असिद्धि होसके उनका उदाहरणमात्रका दिग-दर्शन कराया. बीचबीचमें कितनेही नियम छोडदिये हें उनमेंसे कितनोंकका प्रति-पक्ष ओर उस प्रतिपक्षकी असिद्धि ऊपर कहेहुयेके अंतरगत आजाती हे, ओर जिन जिनका प्रतिपक्ष तथा उसकी असिद्धि न आई हे उनको शोधक आप उप-स्थित करसकता हे, एसा प्रकार हे; क्योंकि यहां नियम ओर विषय दोनोंकी दृष्टि रखके उपयोग दिखायां गया हे. ओर खास विषयकी दृष्टिसे आगे (सूचनाप्रकरण विचारके उत्तर) वर्णन करेंगे. अथवा मूल अ. २ में प्रतिपक्ष ओर उनका निषेध हे, उसे देखलेना चाहिये ॥ ३९ से १३१ तक ॥

अब आगे जीवनियमप्रकरणपर विचार करेंगे.—

जीवनियमप्रकरण विचार.

जीव सर्वज्ञभीही प्रसिद्धिसे (अ.) ॥ १३२ ॥

अर्थ.—कोईभी जीव सर्वज्ञ नहीं होता एसा नहीं हे किंतु कोई सर्वज्ञभी होता हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि लोकमें सर्वज्ञ हुये एसा सुनते आते हें. यह पक्ष जडवादिओंसे इतर अनेकोंका हे. इसकी असमीचीनता सू. ४७०।४०६ ४०८ से होजाती हे ॥ १३२ ॥

अ. ३ । ११६ को याद करिये. अनेक मत-संप्रदायवाले अपने अपने रीफा-रमर, आचार्यको सर्वज्ञ मानलेते हें. जिसको रागादि होते हें वोह यहां जीव पदका वाच्य हे, एसा जानना चाहिये. जेसे जीव मात्र (एमीबाजंतुसे लेके हाथी, मनुष्य पर्यंत) अज्ञ नहीं हे (४६९ देखो) वेसे सर्वज्ञभी नहीं हे, एसा सिद्ध होता हे ॥ १३२ ॥

विशेषज्ञान अपेक्षाविनाही (अ.) ॥ १३३ ॥

अर्थ.—पद, पदार्थ ओर इनके संबंधके ज्ञानका नाम विशेषज्ञान कहाता हे. सो ज्ञान मनुष्यको दूसरेके सिखायेविना आपही प्राप्त हुवा हे, एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष जडवादियोंको संमत हे. यह मंतव्य ४७१ ४७२ से असिद्ध हे ॥ १३३ ॥

विज्ञानवादि बौद्ध, मैमांसिक ओर जैन यह पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तरमें विशेषज्ञानकी परंपरा मानते हें. ईश्वरवादि (विश्वासिं, थी. सो. वेदि वगेरे) सृष्टिके आरंभमें ईश्वरद्वारा विशेषज्ञान मिलना बताते हें. कोई ब्रह्मादि देवता वा ध्यानचोहानोंद्वारा मिलना कहते हें. विलक्षणवादि सृष्टिआरंभमें पूर्वसंस्कारी जीवोंमें पूर्ववत् उद्भवना मानता हे. विकासवादि सृष्टिके पदार्थदर्शनसे कुदरतद्वारा ओर अपनी योग्यतासे क्रमशः शनैः २ विशेषज्ञान प्राप्त हुवा हे, कोई आद्यशिक्षक नहीं हे एसा कहता हे.

परंतु इतना निश्चित हे के जीवको विशेषज्ञान मिलनेमें कुदरत वा आद्यशिक्षककी अपेक्षा होती हे, अपेक्षा विना नहीं जानसकता, वा संकेत नहीं बना सकता. (विशेष मूलमें ओर भू. में) ॥ १३३ ॥

क्षणिकमें स्मृतिका अभाव नहींभीहै. (अ.) ॥ १३४ ॥

अर्थ.—जो क्षणिकपरिणामी विज्ञान हे, उसमें स्मृति होनेका अभावही हे, एसा नहीं हे; किंतु उसका स्मृतिरुपभी परिणाम होता हे. यह पक्ष विज्ञानवादि बौद्धको संमत हे; ओर एक जडवादिकोभी स्वीकार हे. इसकी असमीचीनता सू. २७४ । २७६ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १३४ ॥

शरीर, मगजके परमाणु क्षण क्षणमें बदलते रहते हें, पूर्ववाले परमाणु अपनी संतान (संस्कार) स्मृति केंद्रमें छोडके जाते हें; इसलिये क्षणिकमेंभी स्मृति होती हे, एसा जडवादिका मंतव्य हे. अर्थ, क्रिया ओर उसका ज्ञान सम ओर क्षणिक हें; वेसे क्षणिकमें स्मृतिभी होती हे यह बोद्ध पक्ष हे. सो अयुक्त हे ॥ १३४ ॥

प्रवृत्ति संशयभावमेंभीही दर्शनसे (अ.) ॥ १३५ ॥

अर्थ.—सब प्रवृत्ति संशयाभावमेंही होती हैं एसा नहीं हे किंतु संशयका भाव हुयेभी प्रवृत्ति होती हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि एसा लोकमें देखते हैं. यह मंतव्य अशोधकपक्ष ओर व्यावहारिकोंका हे. इसका विवेक सू. ४७९ से होजाता हे ॥ १३५ ॥

सामान्यादि कल्पित नहींही मान्य होनेसे (अ.) ॥ १३६ ॥

अर्थ.—सामान्य[१] (जाति-धर्म) विशेष, अभाव ओर संबंध यह ४ बुद्धिके कल्पित पदार्थ नहीं हैं किंतु स्वरुपतः वस्तु हैं, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि लोकशास्त्रमें मान्य देखते हैं. न्याय, वैशेषिकशास्त्र इनको स्वीकारता हे. लोकमें उनका उपयोग होता हे. इस पक्षका विवेक सू. ४९४ । ४९६ से होजाता हे. सामान्यादि स्वरुपतः पदार्थ नहीं, इसका विस्तार स्वरुपसंभावना (१२९ । १३४) के विवेचनमें स्पष्ट कियागया हे[२] ॥ १३६ ॥

सामान्यादि स्वरुपसंभावनाकी १३ संज्ञामें नहीं तुलते. बस. मेंभी इनका वर्णन हे--तद्गत सू. १३५ से १४२ तक देखो ॥ १३६ ॥

अध्यारोप अनादरणीयही दोषकी आपत्ति होनेसे (अ.) ॥ १३७ ॥

अर्थ.—कल्पनासे अध्यारोप करना सो आदरकरनेके योग्य नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि उसमें दोषकी आपत्ति होजाती हे. यह पक्ष नवीन सायंस ओर साक्षरोंको संमत हे. इस पक्षके अविवेकअशंका विवेक कल्पनाअधिकरणसे होजाता हे ॥ १३७ ॥

अध्याय १ अवतारादिप्रकरण (सू. ८१) मेंभी इसका वर्णन हे तथा उसी अध्यायमें अध्यारोपअपवादकी शैलीका उपयोगभी लियागया हे. सार यह हे कि योग्य (हितकारी) कल्पनाका व्यवहारमें स्वीकार हे; अन्यथा नहीं ॥ १३७ ॥

---

[१] सामान्यप्रत्ययके संबंधमें ग्रीसके प्राचीन फिलोसोफरोंमें भारी विवाद हो पडाथा, यह बात दर्शनसंग्रहमें जनाई हे.

[२] कर्म (गति) संयोगादिअष्ट, रागादिअष्ट, स्पर्शादि ४ परिमाण, पृथक्त्व, भेद यहभी कोई पदार्थ नहीं हें किंतु द्रव्योंकी अवस्था हें, यह बस. में स्पष्ट कियागया हे (बस. सू. १३५ से १४३ तक देखो).

संस्कारकी असिद्धिही असंख्य न होनेसे (अ.) ॥ १३८ ॥

अर्थ.—संस्कार यह कोई अदृष्ट वस्तु हे, इस बातकी असिद्धि हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि एकही परिमित मन, बुद्धि वा जीवमें असंख्य संस्कार नहीं होसकते वा नहीं रहसकते ओर एक परिमित मगजमें सब प्रकारके ईम्प्रेशन नहीं होसकते. यह पक्ष योरोपके एक फिलोसोफरका हे. इस गत अविवेकांशका विवेक संस्काराधिकरणसे होजाता हे ॥ १३८ ॥

उस फिलोसोफर ओर जडवादिका यह आशय हे के मगज परिमित हे उसमें ब्रह्मांडके सर्वप्रकारके ईम्प्रेशन नहीं होसकते. यह मंतव्य सत्यही हे, परंतु शरीर मगजसे इतर किसी जीववृत्तिमें असंख्य नहीं किंतु अनेक अभ्यास होसकते हें, एसी उसमें पूर्व पूर्वसे योग्यता होती रहती हे; क्योंकि संस्कार किसी छाप, फोटो, वा लकीरका नाम नहीं हे. लक्षण उपर कहे हें. जो संस्कार न हों तो पूर्व दृष्टश्रुतकी स्मृति ओर प्रत्यभिज्ञा न हो; इसलिये संस्कारकी सिद्धि स्पष्ट हे. परंतु सो स्वरुपतः कोई भिन्न वस्तु नहीं हे किंतु अभ्यास ओर अवस्थाविशेष हे ॥१३८॥

सिद्धि विश्वासमात्रसेभीही (अ.) ॥ १३९ ॥

अर्थ.—किसीसे अमुक कार्यकी सिद्धि होजायगी एसा विश्वास करलियाजाय तो इतने विश्वासमात्रसेभी उस इष्टविषयकी प्राप्ति (सिद्धि) होजाती हे; एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष विश्वासवादि ओर भोलेजनोंको संमत हे. इसका विवेक सू. ५११ । ७१९ । ७२१ से होजाता हे ॥ १३९ ॥

विश्वासीलोक अपने पेगंबरमें विश्वास लानेसे स्वर्ग (मोक्ष) को पावेंगे, एसा मानते हें. भोलेलोक किसी देवमें विश्वास द्रढ करलेनेसे इष्टकार्यकी सिद्धि होजाना मान लेते हें. व्यवहार विश्वाससेही चलता हे. सार यह हे कि श्रद्धा विश्वासका निषेध नहीं होसकता परंतु योग्यमें योग्यका, योग्यको योग्य विश्वास होना चाहिये. अन्यथा हानी होजाती हे. रोचक, भयानक वाक्योंको तोलना चाहिये. यथा--भीलने द्रोणके माटीकी मूर्तिमें यह द्रोण हे, एसा विश्वास--भावना करनेसे उसद्वारा धनुर्विद्या सीख ली, यह रोचकबचन हे; यथार्थ नहीं हे. खोटे वा अनुचित विश्वाससे वा विश्वासमात्रसे इष्ट सिद्धि नहीं होसकती ॥ १३९ ॥

विश्वास अमान्यही हानीप्रद होजानेसे (अ.) ॥ १४० ॥

अर्थ.—किसीमें विश्वास रखना यह मान्यविषय नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि विश्वास हानीप्रदभी होजाता हे अर्थात परमें विश्वास रखनेसे हानी

होजाती हे. यह पक्ष संशयवादियोंको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ५६३। ५११। ७१९ ओर ७२१ से होजाती हे ॥ १४० ॥

कुविश्वास, अंधविश्वास अमान्य हे. जो विश्वासमात्र त्याज्य हो तो गुरुशिष्य, मातापितासंतान, ओर पतिपत्निका तथा वैद्य ओर रोगीका ओर जगतका व्यवहार ही न होगा अर्थात जीवन ही न हो. अमुक योग्य अमुक अयोग्य, अमुक सृष्टि-नियम अमुक नहीं, अमुक सत्य अमुक असत्य, इन प्रसंगोंमेंमी-तो श्रद्धा-भावना ओरविश्वास (बुद्धिविश्वास) का प्रवेश हे. तुम्हारे निषेधमेंमी तो यही हे. परंतु अग्निदाहके अदाहमें यह काम नहीं देता; इसलिये उपर कहे अनुसार योग्यमें योग्यको योग्य श्रद्धा विश्वास होनाचाहिये. अन्यथा अमान्य हे; हानीकारक हे॥१४०॥

सिद्धि यथाभावनाभीही (अ.) ॥ १४१ ॥

अर्थ.—यादृशीभावना तादृशिसिद्धि अर्थात जेसी भावना हो उसअनुसारभी सिद्धि होती हे; एसा निश्चय होता हे. यह मंतव्य भोले विश्वासी लोकोंका हे. इस गत जो अविवेकांश हे उसका विवेक सू. ५०९। ५११। ७१९। ७२१। १४१। १४२। १४५। १७४ ओर ५६३ से होजाता हे ॥ १४१ ॥

भावनामय तमाम जीवन हे, मनुष्यमात्र भावनाके अनुकूल प्रवृत होता हे ओर भावना, विश्वासका मूल हे. परंतु यथाभावना इष्टकी सिद्धि होजाय, एसा नियम नहीं हे किंतु योग्यमें योग्यकी योग्य भावना हो ओर प्रयत्न हो तब इष्टकी सिद्धि होती हे. में ब्रह्म, में मुक्त, में सिद्ध, में अयोग्य, अग्नि नहीं जलावेगी, अमुक देव हमारा काम करजायगा, विभु साकार होके दर्शन देगा, इत्यादि कु-भावना-खोटीभावना वा अंधभावनासे भावनाअनुकूल इष्टकी सिद्धि नहीं होसकती. सोमलमें बालककी मिसरीरुप भावना, जसतके रुपैयेमें चांदीका रुपैया एसी भावना, अग्नि पूज्यदेव नहीं जलावेगी एसी भावना, सोमनाथमहादेव वा काशीविश्वेश्वर महादेव यवनोंसे बचावेगा एसी भावना, अमुक पेगंबर अपराध क्षमा कराके स्वर्ग दिलावेगा एसी भावना, आशीर्वादसे वंध्याके पुत्र होजायगा एसी भावना, अमुक शत्रु मरजाओ एसी भावना, वा हमारी विलपावर-इच्छाशक्तिके अनुसार होही जायगा एसी भावना काममें नहीं आती; क्योंकि अयोग्यमें अयोग्य भावना हे.

आशय यह हे के आरंभमें जेसे धर्म, मत, पंथके संस्कार होजाते हें, उसी अनुसार भावना बंधाके वेसाही उसके मनमें जान पडता हे ओर इष्ट वा अनिष्ट मानलेता हे; परंतु उसअनुसार हेही वा उसअनुसार इष्ट सिद्ध होगाही, एसा नहीं

माना जासकता. धर्म, मत, पंथोंकी विरोधी ओर अनेकांतरुपभी भावना हें.–यथा हिंसा–अहिंसा, मूर्तिपूजन–मूर्तिखंडन, पुनर्जन्म–अपुनर्जन्म; इससे सिद्ध होगया के दो विरोधीभावनाका फल या तो न होगा या तो अनिष्टफल होगा. इसलिये भावनामात्रसे यथाभावना सिद्धि मान्ना कल्पनामात्र हे, ओर योग्यमें योग्यभावना इष्टप्रद होती हे, यदि योग्यकी योग्यभावना न हो तो इष्ट सिद्धि होना कठिन हे; अतः योग्यकी योग्यमें योग्यभावना इष्टसिद्धिका बडा साधन हे; क्योंकि जो सच्ची, अच्छी, सृष्टिनियमके अनुकूल, ओर यथाअधिकार होने योग्य भावना–श्रद्धा हो ओर उसके साथ विलपावर (मानसिक–इच्छाशक्ति) हो तथा इष्ट प्राप्तिके योग्य प्रयत्न हो तो इष्टसिद्धि सहजमें होनेकी संभावना हे (किंतु अवश्य हो) ॥१४१॥

उत्तमता अधमताही दर्शनसे (अ.) ॥ १४२ ॥

अर्थ.—अमुक पदार्थ अच्छा ओर अमुक बुरा हे, इसप्रकारकी उत्तमता अधमता सृष्टिनियमके अनुकूल हे; एसा निश्चय होता हे; क्योंकि व्यवहारमें एसा देखते हें. यह मंतव्य ईश्वरवादि, कर्मफलवादि ओर मनुष्यमंडलके अधिक भागको संमत हे. परंतु इसमंतव्यमें जितना अविवेक हे उसकी असमीचीनता सू. ५१६ से जानीजाती हे. अर्थात यह सृष्टिनियम नहीं हे किंतु जीवसृष्टिको मान्य व्यावहारिक बुद्धिका नियम हे ॥ १४२ ॥

चिदविकासवाद ओर अचिदविकासवादमें इसका यह आशय हे कि अमुक, (प्राणी), अमुक डिगरीपर हे; नहींके बुरा वा भला. ईश्वरीयग्रंथ मान्नेवाले उसग्रंथमें जो विधि सो अच्छा ओर जो निषेध सो बुरा, एसामानते हें. व्यावहारिक मंडल एसा कहता हे कि जिससे परिणाममें स्वपरको दुःख हो सो बुरा ओर जिससे सुख हो सो अच्छा. इसप्रकार मतभेद हें, तथापि कितनीक एसी वातें हें कि जो निश्चित ओर सर्वमंडलको मान्य हें. यथा-सत्यादि उत्तम, असत्यादि निकृष्ट. इसप्रकार व्यवहारद्रष्टिसे सिद्धांत होजाता हे; परंतु जो कुदरतकी दृष्टि लें तो किसीको बुरा वा भला कहना नहीं बनता ॥ ४४२ ॥

योग ओर तंत्रके सबचमत्कार मान्यही (अ.) ॥ १४३ ॥

अर्थ.—लोकमंडल वा ग्रंथोंमें योग ओर तंत्रशास्त्रके जितने प्रयोग--चमत्कार कहे सुने वा मानेजाते हें वे सर्वमान्नेही चाहिये. यह पक्ष योगी ओर तांत्रिकोंको संमत हे. इसगत अविवेकअंशका विवेक सू. ५२१ । ७१९ ओर ७२१ । से होजाते हे ॥ १४३ ॥

सूत्रोक्त उभय विषयके संबंधमे दंतकथा विश्वासपात्र नहीं, ओर लिखे अनुसार प्रयोग सिद्धिकी व्याप्ति नहीं मिलती ओर सर्वथा निषेध करना हठमात्र हे (योरोपके विमानादिको विचारो);[१] इसलिये परीक्षा हुयेविना ओर उपयोगका फल देखेविना मान्ना उचित नहीं हे. जो कथन श्रवणमात्रसेही मानलियाजाय ओर परीक्षा न की जाय तो उसका फल आलस्य, दीर्घसूत्रीपना, झूठी आशा, ओर पुरुषार्थहीणता निकलता हे; अतः त्याज्य हे. (शं.) सब परीक्षा नही करसकते. (उ.) टेलीग्रामकी सायंस, विधि, प्रकार सब नही जानते परंतु उसके फलकी सबको परीक्षा हे अर्थात तुर्त समाचार देतेलेते हें. इसप्रकार योग, तंत्रके फलकी प्रसिद्ध परीक्षा हुयेविना मान्नेमें लाभ नहीं किंतु उक्त हानीकी संभावना हे ॥ १४३ ॥

प्रत्येक दंतकथा स्वीकारणीयही (अ.) ॥ १४४ ॥

अर्थ.—लोकमें जो अनेक प्रकारकी दंतकथा चलरही हें वा ग्रंथोंमें हें वे सर्वमान्नेके योग्यही हें, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि कुछभी होगा तबही उसका प्रचार वा कथाका कथन हुवा हे. यह मंतव्य विशेषतः विश्वासी वा असाक्षर मंडलको संमत हे. इसपक्षकी असमीचीनता प्रमाण ओर दृष्टांत—अधिकरण तथा सू. । ९२ । ६६२ से स्पष्ट होजाती हे; किंतु तमाम नियमाध्याय इसके तोलनेमें उपयोगी हे ॥ १४४ ॥

खुदा वा ग्रहोंका बातें करना, आसमानमेंसे रोटी आना, खुदाका आदमी होना, मुरदे जिलाना, चांदके दोटुकडे करना, सूर्य नीचे उतारना, अमावशको नया चांद आकाशपर चढाके दिखाना, १०० कोस लंबा मनुष्यका शरीर होना, सिला ओर वृक्षको आदमी बनाना, इत्यादि असंभवदंतकथा वा असंभवगाथा चलरही हें, उनकी सिद्धि नहीं होती हे. जो हठसे वे मानो तो निषेधकका कथनभी मान्ना पडेगा; नहीतो व्याप्ति देनी होगी. परंतु व्याप्ति नही मिलती; अतः आधार योग्य

---

[१] धनुर्वेद ओर महाभारत तथा रामायणमें ओर रावणकृत तंत्रशास्त्रमें जो अस्त्रोंके प्रयोग, उपयोग तथा वायु, विजली ओर औषधिके जो प्रयोग ओर उपयोग लिखे हें वे नवलकथा वा कवित्वरुपमें माने जाते थे, परंतु वर्तमान कैसरीजंगमें जर्मनके (केमिस्तरी--सायंसविद्याके ज्ञाता) तंत्रशास्त्रीओंने लडाईमें जो प्रयोग करदिखाये उनउनको देखके, सुनके उक्त लेखोंपर ध्यान खिंचाने लगा हे. जर्मनके अद्भुत प्रयोग वर्तमानपत्रोंमें प्रसिद्ध हें.

नहीं. जिस दंतकथाकी सिद्धि वा व्याप्ति मिलती हो उसके न मान्नेमें आग्रहभी करना उचित नहीं हे ॥ १४४ ॥

मान्योक्त सब विधि निषेध सर्व देशकालमें संमाननीयही (अ.) ॥ १४५ ॥

अर्थ.—अपने अपने पूज्य--मान्यग्रंथ वा आचार्यने जो कुछ विधि निषेध कहा हे सो हरेक मनुष्यके लिये सब देश ओर सब कालमें सम्यकप्रकारसे माननीयही हे- याने सर्वको हमेशे मान्य करके तद्अनुसार वर्तना चाहिये. यह मंतव्य जडवादिसे इतर तमाम शब्दविश्वासिओंको संमत हे. इस पक्षगत जो अयुक्तता हे वोह आज्ञा (५२५), अधिकार (५२९), वर्णाश्रम (५३५), रुढी (५३३) चल (३७०), स्वीकार (५४२), शब्द (१०५), अत्याग (१०८), आदर (५३६), असर्वज्ञ (४०६) ओर अमान्य (६८७) सूत्रोंसे ज्ञात होजाती हे ॥ १४५ ॥

हरेकके मान्यग्रंथ जुदा जुदा हें १, अनेक विषयोंमें उनका मतभेद हे (यथा बलिदान, मूर्तिखंडन वा पूजन, पुनर्जन्म, मोक्ष, ईश्वर, जीव, सृष्टि उत्पत्ति, भक्ष्याभक्ष्य, जन्म, मरण, विवाह, कर्म, उपासना, ज्ञान, इत्यादिमें मतभेद हे) २, देशप्रति जुदा जुदा कर्तव्य होता हे ३, काल प्रतिभी कर्तव्यादिका भेद हे ४, एकही विषय एकको कर्तव्य अन्यको अकर्तव्य ५, एक विषय एकको कभी धर्म कभी अधर्म ६, आपतकाल ७, रुढीका बल ८, रुढीका परिवर्तन ९, आज्ञा यथार्थ हे वा नहीं १०, योग्यता ११, परिस्थितिका बलाबल १२, इत्यादि अनेक एसे कारण हें कि किसी एकका विधि निषेध कहा हुवा सर्वको, सर्वदेशमें, सर्वकालमें लागु नहीं होसकता. बर्फस्तान वा दरियास्थानमें मांस विधि अमुकस्थानमें निषेध. अर्बदेशमें जलादिका अभेद कर्तव्य हे. नियोग, पशुयज्ञ, बाललग्न, चचाकी पुत्री साथ लग्न, सर्ददेशमें सप्ताहिकस्नान, मूर्तिभंगसे स्वर्ग, मूर्तिपूजासे स्वर्ग यह भेद रहे हें; इसलिये विधिनिषेध देशकाल, स्थिति, परिस्थिति परत्वे होता हे. जो सर्वतंत्र हो उसे वेसा मान्नाचाहिये यथा सत्यादिसर्वको मान्य ओर यथाशक्ति कर्तव्य हें ॥ १४५ ॥

कर्तव्यादि वीर्यपरही रुढी बलवान होनेसे (अ.) ॥ १४६ ॥

अर्थ.—मनुष्यका कर्तव्य, ज्ञातव्य ओर प्राप्तव्य उसके वीर्यपरही मान्ना चाहिये; क्योंकि मानवमंडलमें रुढी बलवान होती हे. यह मंतव्य पौराणि ओर

मैमांसिकोंका हे. इसकी असमीचीनता विधिनिषेधाधिकरणके विचारनेसे स्पष्ट होजाती हे ॥ १४६ ॥

वर्तमान विषे आर्यप्रजामें ब्राह्मणादि वर्ण (जाती) वीर्यकी अपेक्षासे विभक्त हें, उसी अनुसार रोटी बेटीका व्यवहार ओर कर्तव्यादि विभक्त हें. वेसेही ब्रह्मचर्यादि चारआश्रमभी वीर्यकी अपेक्षापर मानेजाते हें. अर्थात व्यक्तिकी योग्यता याने गुण कर्मपर जाती, आश्रम नहीं मानेजाते. विद्वान सदाचारी न हो तोभी जिसको रुढीमें ब्राह्मण कहते हें सोही ब्राह्मण कहाजाय याने ब्राह्मणकी मूरख संतान हो तोभी ब्राह्मणही मानीजाय, एसे जन्मसे जाति मानीजाती हे. उसी रीतिसे आश्रम व्यवहार हे याने दंडधारी संन्यासी, ब्राह्मणकाही पुत्र होना चाहिये वोह चाहे विद्वान हो वा मूर्ख हो इसपर दृष्टि नहीं होती. शूद्रको वा स्त्रीको वेद पढनेका अधिकार नहीं; इत्यादि. इस प्रकार कर्तव्यादि जाति वा रुढीपर हें. रुढी, शास्त्रसेभी बलवान होजाती हे. जेसे के पूर्वकालमें गुण कर्मपर वर्णाश्रमका व्यवहार था ओर अब जातीपर हे; परंतु यह रीत उचित नहीं हे; इसमें मनुष्यकी योग्यताका खून होजाता हे; ओर यह रीति सामाजिक अवनतिकी सामग्री हे. विस्तार कर्मविवेक ओर भप. में हे. परंतु सोसाईटीकी संमति ओर लाभ हानी देखके इस जातिबंधनकी शनै २ सुधारना कर्तव्य हे. एकदम हठ करनेसे लाभके बदले हानी होनेकी संभावना हे. एक पक्षकार यूं कहता हे कि वीर्यका विश्वास नहीं; अतः रज याने माताकी जाति अनुसार वर्णाश्रमका कर्तव्य मान्ना चाहिये, परंतु यह पक्ष निर्बल ओर अव्यवस्था उपजावक हे. जहांतक हिंदु धर्मशास्त्रके अनुसार दायभाग (विरसा) हे वहांतक ओर बापकी जायदाद परसे संतानका (दावा)हक न उडजाय वहांतक तथा बहुपक्ष संमत न हो वहांतक वर्तमानकी रुढी नहीं टूटसकती ओर जो तोडना चाहते हें वे नेशन—जाति, कुटंबकी हानी करते हें, एसा मानाजासकता हे क्योंकि स्वभावज प्राप्तका वर्तन—उपयोग होना हे ॥ १४६ ॥

सत्यकी अपेक्षा नहींभीही व्यवहारमें अनिष्ट होजानेसे (अ.) ॥ १४७ ॥

अर्थ.—सर्वत्र सत्यकाही बोध हे तथापि कहीं सत्यकी अपेक्षा नहींभी रहती, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि कभी सत्यसे व्यवहारमें हानीभी होजाती हे. यह मंतव्य विषयासक्त, आपस्वार्थी वा निर्बलोंका हे. इसका खंडन सत्याधिकरणसे होजाता हे ॥ १४७ ॥

असत्यवादि, छली, कपटी, रिशवत लेनेवाले, ओर अनीतिबाजोंको सुखी देखके निर्धन, गरीब, निर्बल, वा विद्या-हुनरहीनको एसे विचार होते हैं; उनका दृष्टांत त्याज्य हे. विचारके देखोगे तो सत्यवादि ओर नीतिवानही सुखी होता हे (५४८ । ५५० देखो) ॥ १४७ ॥

भय यथार्थमेंभीही लोकव्यवहारसे (अ.) ॥ १४८ ॥

अर्थ.—यथार्थकथनमेंभी भय होजाता हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि लोकका व्यवहार इसीप्रकारका हे; यथार्थवर्तनका उसमें नियम नहीं हे. यह मंतव्य उन व्यावहारिकजनोंका हे के जो विषयासक्त, आपस्वार्थी, कायर, अशक्त, विश्वासी वा आलसी हैं वा तो उन साक्षरोंका हे कि जो असंभूति-संभूति (प्रकृति ओर उसके कार्य) के उपासक हैं. इसकी असिद्धि--खंडन सू. ५४६।५४७ ५४८ । ५५० से होजाती हे ॥ १४८ ॥

सोसाइटी, जाति, न्याति ओर राज्यभयसे वा स्वार्थवश वा आपतकालमेंभी अयथार्थका निषेध हे. जो संशयात्मक हैं, जो संप्रदाय-सोसाइटी वा लोकएषणाके दास हैं, जो अयुक्तग्रंथोंके अनुयायी हैं वा अन्यायीसत्ताके आधीन हैं, उनको अयथार्थमें फंसना पडता हे. यथा विलायतमें न जाना, संन्यासी हुयेभी ब्राह्मणकाही खाना, मूर्ति, हिंसा वगेरे वा अयोग्य विषयकाभी विवेक न कहना, इत्यादि लोकेषणाका फंद हे. कितनेक निपुण देशहितैषिकी यह पोलीसी होती हे के प्रजाके ओर रुढीके अनुकूल होके धीरेधीरे उनको सुधारते हैं; इसका नाम भय नहीं हे किंतु निपुणता, समयसूचकता हे ओर उचित हे ॥ १४८ ॥

प्रेम दया ओर न्याय विरोधीही (अ.) ॥ १४९ ॥

अर्थ.—प्रेम, दया ओर न्याय यहतीनों परस्परमें विरोधी हैं, एसा निश्चय होता हे. यह मंतव्य मुख्यतः विश्वासियोंका हे ओर गौणदृष्टिसे अनेकोंका हे. इसका विवेक प्रेम (५४४) सूत्रसे होजाता हे ॥ १४९ ॥

ईश्वर यदि न्यायकारी हे तो दयालु, प्रेमी नहीं. यदि दयालु, प्रेमी हे तो न्यायकारी नहीं हे. यदि दयालु हे तो निरपराधियोंका घातक होगा. यदि प्रेमी हे तो लोकोंके दुःखदर्शनसे एसा जानपडता हे के न्यायीभी न होगा. न्यायकारीको पापियोंपर दया नहीं आती, क्षमा नही करता, दंडही देगा. जो दयालु होता हे, वोह पापीको क्षमा करता हे. परंतु यह विवेक अयुक्त हे (विस्तारमूलमें हे)॥ १४९॥

प्रारब्ध वा ईश्वर प्रतिबंधभीही (अ.) ॥ १५० ॥

अर्थ.—यदि बलवान प्रारब्ध (पूर्वके कर्म) प्रतिकूल हों तो किंवा अपने बनाये हुये जीवोंके नसीबमें ईश्वरने दुःख भोग नियत किया हो तो अथवा ईश्वर (वा कुदरत) हमारी इच्छाके प्रतिकूल हो तो पुरुषप्रयत्न शिथल बल्के व्यर्थ होजाता हे; इसलिये यह कहाजाता हे कि प्रारब्ध वा ईश्वर प्रतिबंधभी होजाते हैं, एसा निश्चय होता हे (इसलिये प्रारब्ध वा ईश्वरेच्छापरही आधार रखनाचाहिये; क्योंके पुरुष प्रयत्न बलवान नहीं हे). यह मंतव्य विश्वासी वा आलसियोंका हे. इसका विवेक सू. ५५२ । ५५४ । ११ । १२ । २१ । ५३५ । ५६४ । ५६५ । ओर अ. ३ सू. १९ । २० से होजाता हे ॥ १५० ॥

प्रारब्ध, पुरुषार्थका परिणाम हे, यदि हो तो ईश्वर अपनी तरफसे किसीकोभी दुःखदेनेका निमित्त नहीं होता, प्रारब्ध वा ईश्वरेच्छा वा भावी (चांस) हमको अज्ञात हें, ओर मनुष्य कर्म कियेविना नही जी सकता; इसलिये पुरुषप्रयत्नही मुख्य हे, यह सिद्ध होता हे. यदि पूर्व उत्तर जन्म ओर ईश्वरको न मानें तोभी पुरुषप्रयत्नको मुख्य मान्नापडता हे (विशेषमूलमें) ॥ १५० ॥

लोकनीति मान्य नहींभीही कल्पित ओर व्यभिचारी होनेसे (अ.) ॥ १५१ ॥

अर्थ.—लोक मंडलमें जो नीतियें चल रही हें वे मान्यही हें एसा नहींभी मानसकते हें; क्योंकि मनुष्यकी घडित हें ओर सोसाइटी, जाति, राज्य, धर्म, ओर देशकालप्रति जुदा जुदा तथा एक दूसरेसे विरुद्धभी होती हें. यह मंतव्य जडवादि वा अज्ञ स्वार्थिओंको संमत होसकता हे. इसकी असिद्धि अनार्य (५४८), आर्य (५५०) सूत्रसे होजाती हे. ओर अ. ३ सू. १४८ भी यादीमें लीजिये ॥१५१॥

जो जीवजीवकी नीति ओर सृष्टिनियम तथा प्रकृति जीवकी नीतिका विवेक करें ओर नीति क्या ? शुद्धनीति क्या, व्यवस्थापिका (प्रवर्तका) नीति क्या ? यह विचारें तथा संतान–माता पिताकी, गुरु–शिष्यकी, पति-पत्निकी, कुटंब कुटंबकी, राज्यकी, मित्रकी, शत्रुकी, सोसाइटीकी, राजा-प्रजाकी, स्वामी-सेवककी-इत्यादि नीतिओंका अभ्यास करोगे तो स्वयं जान लोगे कि कल्पित, व्यभिचारी नीतिभी लाभकारी–सुखप्रद होती हे. प्रकृति (कुदरत), सोसाइटी, राज्यसत्ता, धर्म ओर विद्या यह पांच अंकुश वा नीति मनुष्यके रक्षक, उपदेशक, ओर शिक्षक हें. पारलौकिक नीतिका धर्ममें समावेश होजाता हे. निदान नीतिवश वा लोकअवश

नीतिवानही सुखी होता हे. इनसे विमुख दुःखी होता हे (विस्तार नीतिमीमांसामें किया गया हे) ॥ १५१ ॥

परलोककी असिद्धिही (अ.) ॥ १५२ ॥

अर्थ.—ईश्वर कोइ दंडदाता हे, यथाकर्म पुनर्जन्म होगा, यथाकर्म स्वर्ग वा नरक मिलेगा, मरने पीछे सुज्ञ जीवकी मोक्ष होती हे, इनको परलोक कहते हें; एसे परलोककी असिद्धिही हे; अतः उसके भयकी अपेक्षा नहीं हे. यह मंतव्य जडवादि (चारवाक–प्रकृतिवादि) का हे. इसकी असिद्धि इसी अध्यायमें आगे ईश्वरादि प्रसंगमें वांचोगे. ॥ १५२ ॥ अध्याय १ में पुनर्जन्मकी, जीव शरीरसे भिन्नकी तथा ईश्वरकी सिद्धि कह आयेभी हें ॥ १५२ ॥

ज्ञानीको रागादि नहींही (अ.) ॥ १५३ ॥

अर्थ.—जो ब्रह्मवित हें वा ईश्वरके भक्त हें वा विवेकी हें उनको संसारमें राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, संस्कार ओर बुद्धिनिष्ठा, नहीं होते; एसा निश्चय होता हे. यह मंतव्य अनभ्यासियोंका हे. इसमें जितना अविवेकांश हे उसका विवेक ५५६ से होजाता हे ॥ १५३ ॥

जो व्यवहारके साथ संबंध नहीं रखते तो उनको राग-द्वेष होनेको अवसरही नहीं मिलता. तथापि शारीरिक दुःख सुख ओर कुदरतगत दृश्यके संस्कार तो होहींगे; परंतु उससे उनको हर्ष शोक नहीं होगा ॥ १५३ ॥

मन अस्थिरही (अ.) ॥ १५४ ॥

अर्थ.—मन (चित्त) कभीभी थिर नहीं होता, हरसमय चलायमानही रहता हे. यह पक्ष क्षणिकविज्ञानवादि–बौद्ध ओर प्रकृतिवादियोंका हे. इसकी असिद्धि सू. ५५८ से होजाती हे. याने वैराग्य अभ्याससे कुछ काल स्थिरभी होता हे, यह बात परिक्षासे सिद्ध होजाती हे ॥ १५४ ॥

ज्ञानीका व्यवहार प्रिय नियमसे अन्यथाही आत्मवत् सर्व दर्शनसे (अ.) ॥ १५५ ॥

अर्थ.—जो अद्वैतज्ञानके विश्वासी हें, उनका व्यवहार प्रियनियम (५६०) जेसा नहीं होता अर्थात परमें प्रियता सकाम नहीं किंतु ओरप्रकारकी हे; क्योंकि वे सब भूतोंमें आत्मा समान देखते हें.—अपने ओर परके आत्मामें भेद नहीं देखते किंतु आत्मा एकही हे, एसा मानते हें. यह मंतव्य अद्वैतवादिको संमत हे. इसका

विवेक ५६० से होजाता हे अर्थात आत्मामें कामना वा व्यवहारके अभावसे प्रकृतिका व्यवहार, प्रकृतिके अनुकूल होनाही सिद्ध होता हे (विशेष अ.४में)॥१५५॥

अगम्यमें प्रवृत्तिका निषेधही निष्फल होनेसे (अ.) ॥ १५६ ॥

अर्थ.—अगम्य याने जो जीव, मन, वा बुद्धिका विषय नहीं हे, एसे विषयमें प्रवृत्ति करनेका निषेधही हे अर्थात नहीं करनाचाहिये, क्योंकि वोह प्रवृत्ति सफल नहीं होती किंतु व्यर्थ होती हे. यह पक्ष योरोपके कान्टादि कोईकोई फिलोसोफरोंका, प्रवृत्तिवादिका, जडवादिका ओर अनिश्चितवादिका हे, ओर अनेक साक्षरोंकोभी संमत हे. इसपक्षगत अविवेकांशका विवेक सू. ५६२ । ५०१ । ५०४ । १४७ । १२५ ओर ४७७ से होजाता हे[1] ॥ १५६ ॥

अगम्यमें प्रवृत्ति किये विना जीवन व्यवहार होता हे अर्थात ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, मोक्ष, सृष्टि उत्पात्तिलय, पुनर्जन्म इनविषयोंसे उपेक्षा करें तोभी जीवनव्यवहार होता हे; जेसे के अज्ञमंडलका देखते हें; ओर इनमें प्रवृत्ति करें तो यह अज्ञात रहते हें वा इनको अनिर्वचनीय, अगम्य कहके वहांसे निवृत्त होनापडता हे,

[1] जडवादमें शृंगारभी हे ओर वोह विषयासक्तोंको अनुकूलभी हे, तथापि खरा जडवाद बारीक हे ओर अंतमें सत्‌रुपसे सिद्ध नहीं होता; इसलिये आजतक उसकी प्रवृति नहीं हुई; क्योंकि एसी भावनावाले यदि दसलाख मनुष्योंमें १ हो तो इस हिसाबसे दो अर्बुदमें २००० निकलें; परंतु जनमंडलमें एसी भावनावाले हजारभी नहीं होंगे. ओर तत्वविद्या (फिलोसोफी) खुश्क हे, व्यवहारमें विशेष उपयोगी नहीं ओर बारीक हे इसलिये इसकी प्रवृति बिलकुल नहीं होनीचाहिये, परंतु इसमें सत्य हे; अतः उसकी प्रवृति होती हे; तथापि इसके अधिकारी स्वतंत्र मगजवाले (ओरीजनल, इन्डीपेन्डंट) विरल होते हें—यहांतक कि जडवादिकी सरेरासमे वे कम निकलेंगे; इसलिये इसकी विशेषरुपमें प्रवृत्ति नहीं होती. ओर सायंसमें शृंगारभी हे ओर वोह जीवनकी उपयोगी हे तथा सर्वको उसकी अपेक्षा हे; अतः सुगमतासे उसकी प्रवृत्ति बढती हे. ओर संप्रदाय (रीलीजीयन—पंथ)में यथा देशकाल शृंगार होता हे ओर उसमें मगजकी ज्यादे जरुरत नहीं होती तथा मनुष्यमंडलमें भावना, श्रद्धा ओर विश्वासका अधिक खमीर हे ओर संप्रदायोंमें भावनादिपर आधार होता हे; इसलिये सर्व साधारणमंडलमें संप्रदायोंकी प्रवृत्ति ज्यादा होजाती हे. इतना लिखनेका आशय यह हे कि गम्यागम्य विषे प्रवृत्ति सर्वांशमें निरर्थक नहीं हे, किंतु अमुकके वास्तेही उपयोगी हे ॥

एसा हे. यह मंतव्य ठीकही हे; तथापि उक्त सूत्रोंसे इसमें विवेक कर्तव्य हे; क्योंकि सर्वांशमें एसा नहीं हे; जेसा के सूत्रोंसे सिद्ध हे. तथाहि एसे मनुष्य विरल होते हें, यह बात इतिहास ओर वर्तमानसे सिद्ध हे. इन विषयोंका योग्यजिज्ञासु--शोधक लाखोंमेंसे कोई एक निकलता हे उनलाखोंमेंसे कोई एक जानके संशय भ्रांति रहित होता हे. इससे यह जान पडता हे कि इसका समावेशभी जीवनियममें हे ओर सर्वथा व्यर्थभी नहीं हे. यद्यपि फिलोसोफी वा तत्वविद्याका व्यवहारमें विशेष उपयोग नहीं हे तथापि उसका असर व्यवहारपर होता हे. यथा ईश्वरवाद, पुनर्जन्मवाद, इनकी सिद्धि वा असिद्धिकी असर संसारव्यवहारमें काम करती हे. ई. बसु.में इसका वर्णन हे ॥ १५६ ॥

प्रचलित मंतव्य आधारयोग्यही संशयाभावमें प्रवृत्ति होनेसे (अ.) ॥ १५७ ॥

अर्थ.—जितने मंतव्य लोकमें प्रचलित हें (अथवा जितनी प्रवृत्ति हें) वे सब आधारके योग्य हें याने माननीय हें, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि जो प्रवृत्ति होती हे वोह संशयके अभाव हुयेही होती हे. यह सर्व साधारणोंका वा निरक्षरोंका मंतव्य हे. इसकी असमीचीनता सू. ४७९ । ६८५ । ६८७ । ६८९ । ६९० । ओर ५६३ से स्पष्ट हे ॥ १५७ ॥

मतभेद दर्शनसे, मोह वा विश्वासबस प्रवृत्ति होनेसे, ओर अनेकांतकी प्राप्तिसे यह मंतव्य सर्वांशमें मान्य नहीं होसकता. यद्यपि व्यवहारमें संशयके विषयमें भी प्रवृत्ति देखते हें, तथापि यहां उस विषयका प्रसंग नहीं हे (७०२ । ७०४ देखो). बालक बालकिओंको जेसा सिखा देते हें वा वे जेसा आरंभमें देखते सुनते हें, वेसाही वे मानलेते हें, वेसाही उनकी भावनामें भान होता हे अर्थात संस्कारोंकी महिमा हे; नहीं के विवेकजन्य मंतव्य वा अमंतव्य हे, अतः पक्षकारकी मान्यता समीचीन नहीं जानपडती ॥ १५७ ॥

चारमें एक कृपासेही सिद्धि (अ.) ॥ १५८ ॥

अर्थ.—स्वकृपा, दैवकृपा, विद्याबुद्धिकीकृपा ओर गुरु (शिक्षककी) कृपा इनचार (सू. ५६४) मेंसे एकही कृपासे इष्टकी सिद्धि होजाती हे अर्थात एकसे अधिक प्राप्तकरनेकी अपेक्षा नहीं हे. इनमेंसे (१) स्वकृपासे सिद्धि यह भावनावादिका पक्ष हे, (२) ईश्वरकृपासे सिद्धि यह विश्वासियोंका मत हे, (२) पूर्वसंस्कारसे सिद्धि यह कर्मवादियोंका पक्ष हे, (३) विद्याबुद्धिसे सिद्धि यह पुरु-

पार्थवादियोंका पक्ष हे, (४) ओर अकेली गुरुकृपासे सिद्धि यह संत मत हे. इन पक्षोंमें जितना अविवेकांश हे उसकी असिद्धि सू. ५६४ । २१ । २३ । १८ । ५६५ ओर ११ से होजाती हे अर्थात चारोंकीही अपेक्षा हे ॥ १५८ ॥

स्वकृपा (दृढ जिज्ञासा) न हो तो अन्य तीनों नाकाम. पूर्वसंस्कार अनुकूल न हों तो अन्य तीनों नाकाम. विद्या, बुद्धि न हों तो अन्य तीनों नाकाम. शिक्षक—मार्ग दर्शक न हो तो अन्य तीनों नाकाम. तन--मन अशक्त रोगी हों तो अन्य तीनों नाकाम. मातापिताके निकृष्टसंस्कारोंका बल हो तो अन्य तीनों नाकाम. मूर्ख वा जडबुद्धि हो तो अन्य तीनों नाकाम. शिक्षक मुर्ख वा कुटिल हो तो अन्य तीनों नाकाम. इसप्रकार परमार्थ ओर व्यवहारमें चारोंकी अपेक्षा हे. जो केवल-भावनासे इष्टसिद्धि होती हो तो कोईभी दुःखी न होना चाहिये, परंतु एसा नहीं देखते. जो केवल प्रारब्धसेही इष्टसिद्धि होती हो तो प्रयत्नकीही अपेक्षा न हो,- मुखमें भोजन आजाना चाहिये; परंतु एसा नहीं होता. जो केवल ईश्वरकृपासेही सिद्धि होती हो तो उस दयालु सर्वशक्तिमानकी प्रजा दुःखी न होती. जो उसकी कृपा प्राप्ति वास्ते प्रयत्नकी अपेक्षा तो ५६४ नियम सिद्ध होजायगा अर्थात इच्छा, ओर मार्गदर्शक प्रयत्नकी अपेक्षा होगी. जो केवल गुरुकृपासेही सिद्धि होती तो उसमें श्रद्धा होनेकी सामग्री, उसके पास आनेकी क्रिया, उसके कहे अनुसार वर्तनकी अपेक्षा नहीं होती, परंतु एसा नहीं होता. संक्षेपमें इष्टप्राप्तिके विरोधी—प्रतिबंध (५६५) की निवृत्ति करते हुये स्वकृपादि ४ कृपा संपादन हुये इष्टकी सिद्धि होती हे (विस्तार मूलमें) ॥ १५८ ॥

अहंत्व ममत्व प्रतिबंध नहींही तिनके विना प्रवृत्ति न होनेसे (अ.) ॥ १५९ ॥

अर्थ.—व्यावहारिक वा पारमार्थिक इष्टप्राप्तिमें अहंता, ममता आड नहीं होती, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि इनदोनोंके विना निवृत्ति वा प्राप्तिके अर्थ प्रवृत्तिही नहीं होसकती. यह पक्ष सर्व साधारणको संमत हे. इसगत जो अविवेकांश हे उसका विवेक सू. ५६५ । १६ ओर १७ । से होजाता हे ॥ १५९ ॥

व्यावहारिक विषयमें अहंत्व, ममत्वके विना प्रवृत्ति नहीं होती, यह ठीक हे—स्पष्ट हे; तथापि प्रयत्न ओर विषय उपयोगकालमें अन्यका ममत्व ओर अहंकार वृत्तिका त्याग करनाही पडता हे, इतना कियेविना उसकी उपासना ओर उसका ज्ञान नहीं होता, ज्ञानके विना उपयोग नहीं होता. पारमार्थिक विषय (अध्यात्म प्रसंग) में

इससे ज्यादा बारीकी हे. इष्टसे इतरमें ममत्वका त्याग हुये विना इष्टकी तरफ योग्य प्रवृत्तिही नहीं होती; ओर उपासना वा योग किये विना सच्चा इष्ट नहीं मिलता; ओर उपासना वा योगकी सिद्धि अहंत्वके लय हुये विना नहीं होसकती; ममत्वकी तो बातहीं क्या करना; इसलिये मुख्य इष्टप्राप्तिमें अहंत्व, ममत्वको प्रतिबंध मानाजाता हे. यद्यपि इष्टप्राप्तिकी पूर्व क्षणतक सामान्य अहंत्व (नाममात्र) लयरुपमें रहता हे तथापि इष्टप्राप्ति हुये उसकाभी अभाव होजाता हे. व्यावहारिक इष्ट प्राप्तिके पश्चात अहंत्वका उद्भव होता हे. पारमार्थिक तत्वप्राप्ति पीछे अहंत्वका अहंत्वरुपमें उदय नहीं होता, इतना अंतर हे (विशेष बस. में विवेचन हे). इस विषयकी मान्यता वा दृढता इष्टप्राप्तिकाल पीछे वा अपरोक्षत्व (बस. ३७२ देखो) काल पीछे होजाती हे; उस विना समझमें आना कठिन हे (कथन मात्र हे). इसी वास्ते निष्काम कर्म करनेका उपदेश हे. निष्कामवृत्तिवाला इस गुह्य रहस्यको समझसकता हे ॥ १५९ ॥

अर्थ जनानेकी शक्ति शब्दमेंही रागद्वेषका उत्पादक होनेसे (अ.) ॥ १६० ॥

अर्थ.—पद वा वाक्यसे अर्थका बोध होता हे, अर्थ जनानेकी शक्ति शब्दमेंही जान पडती हे; क्योंकि शब्द यह रागद्वेषकी उत्पत्तिमें हेतुभूत देखते हें. यह पक्ष मैमांसिक, वेदांत, न्याय, व्याकरण, सांख्य ओर विश्वासियोंकाभी हे. इसकी असमीचीनता सू. ५७६ । ५७९ । ५९४ । ५९६ ओर ३३२ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १६० ॥

मैमांसिक वेदके पदोंमें अनादिसे शक्ति मानते हें. नैयायकादि पदमें ईश्वरकी शक्ति मानते हें. व्याकरणी प्रकृति प्रत्ययमें के स्फूटनमें मामते हें. विश्वासी ईश्वरदत्त कहते हें. परंतु अर्थबोधकशक्ति पदमें नहीं हे किंतु संकेतभानमें हे; क्योंकि अजाने शब्दश्रवणसे रागद्वेष नहीं होते ॥ १६० ॥

मान्य शब्दपरही आधार ओर तकरार (अ.) ॥ १६१ ॥

अर्थ.—जिस ग्रंथ वा वाक्यको अपन प्रमाणरुप मानते हों वा अपनेको इष्ट हो उसीपर आधार रखना चाहिये, उससे अन्यके मान्य शब्दको मान्य नहीं करना चाहिये, तथाहि अपने स्वीकारित शब्दमेंही विवाद कर्तव्य हे अर्थात अपने माने हुये अर्थको जेसे तेसे सिद्ध करना चांहिये ओर मतभेद होनेसे अन्यके मान्य शब्दपर विवाद करनेकी अपेक्षा नहीं हे, क्योंकि व्यर्थ हे. यह पक्ष जो शब्दके

विश्वासी भगत हैं (इ. य. कि. कु. पु. जै. बौ. वे. इत्यादि) उन सबको संमत हे. याने तमाम धर्म अवलंबियोंको मान्य हे. इसकी असमीचीनता-अनुचितता सू. १०३ । १०५ । १०७ । १०८ । १२१ । ४०६ । ४०८ । ४६९ । ४७० । ४७७ । ५१९ । ५२५ । ५२९ । ५३६ । ५३८ । ५४२ । ५८२ । ५८४ । ५८६ । ५९० । ५९३ । ५९६ । ५९८ । ५९९ । ६१२ । ६१६ । ६८२ । ६८९ । ६९० । ओर ११४ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १६१ ॥

नाना शब्दप्रमाणने, उनके मतभेदने ओर शब्दके नाना अर्थकी तकारने मानवमंडलके सुखको हानी पहोंचाई हे, यह बात जगमें प्रसिद्ध हे. सनातनी, ईरानी, याहूदी, किरानी, कुरानी, बौद्ध, जैन, पुराणी मत ओर नाना संप्रदाय यह उसके उदाहरण हैं; अतः सूत्रोक्त पक्ष अमान्य हे--ठीक नहीं हे, किंतु सत्य हरकोईका-सबका आदरणीय हे, ओर सत्य हो तो उसपर व्यर्थ वा पक्षपातवश तकरार करना अनुचित हे किंतु तकरारी शब्द ओर उसकी अव्यापकता त्याज्य हे ॥१६१॥

शब्दके अनेकार्थ कर्तव्यही (अ.) ॥ १६२ ॥

अर्थ.—शब्दद्वारा निर्णयप्रसंगमें शब्दके जितने अर्थ होसकते हों उतने करना ओर ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि वक्ताकी हाजरी नहीं हे. यह पक्ष अमुक प्रकारमें कवि, व्याकरणी ओर लक्षणावादिओंको संमत हे. इस मंतव्यमें जो असमीचीन भाग हे उसका निश्चय सू. ५८२ । ५८४ । ५९१ । ५९२ । ५९६ । ओर अ. ३ के १६१ सूत्रकी वृत्तिमें जो अंक दिये हैं उनसे होजाता हे ॥१६२॥

यथा "जीव ब्रह्म एक हे" इसके अनेक शक्यार्थ ओर भावार्थ हैं. यथा-कर्ताभोक्ता जीव एक व्यापक हे वा ब्रह्मका स्वरुप हे. अंतःकरणविशिष्टचेतन-जीव ब्रह्मरुप हे. जो जीवे वोह अविनाशी एक ब्रह्म हे. जिसकरके जीते हैं वोह एक ब्रह्म हे ॥ जब यूं कहें कि "सो (ब्रह्म) तूं हे" यहां शक्यार्थ वा भावार्थ नहीं बनता, क्योंकि ब्रह्मको बोधकी अपेक्षा नहीं, अंतःकरण वा अविद्या, बोध ग्रहण करनेके योग्य नहीं तथा जड होनेसे सो ब्रह्मरुपभी नहीं. दोनोंके निषेधसे विशिष्टमेंभी बोधका अभाव हे. तथा ३७५ । ४४५ से निष्फल ठेरता हे; इत्यादि कारणसे अनेकार्थकी अनापति हे; किंतु वक्ताका अभिप्राय जो हो उसी अनुसार अर्थ कर्तव्य हे. वोह आशय ठीक हे वा नहीं, यह दूसरी बात हे ॥ १६२ ॥

चेष्टाप्रमाण नहींही (अ.) ॥ १६३ ॥

अर्थ.—शब्दसे इतर चेष्टा कोई प्रमाण नहीं हे, एसा निश्चय होता हे.

यह पक्ष आर्यावर्तके सब पक्षकारोंको स्वीकार हे. इस मंतव्यमें जितना अंश अनुचित हे उसकी असिद्धि सू. ६२ ओर ५९४ से जानी जाती हे (पृष्ट २८७ देखिये) ॥ १६३ ॥

विषय निर्दष्टांतभीहीं मायावत् (अ). ॥ १६४ ॥

अर्थ.—जिसका कोई दृष्टांत न मिले एसेभी विषय होते हें, एसा निश्चय होता हे; जेसे कि माया निर्दष्टांत विषय हे. यह पक्ष विश्वासियोंको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ६०६ । ६०७ से सिद्ध होजाती हे ॥ १६४ ॥

यद्यपि किसी वस्तु (ब्रह्ममाया, चिदचिद, जीवअजीव, पुरुषप्रकृति) के सब भागोंका दृष्टांत नहीं मिलता, परंतु अमुक धर्मका अवश्य मिलता हे. यथा अस्तित्वका अन्वयी ओर धर्मका व्यतिरेकी दृष्टांत सबमें हे. माया परिच्छिन्न हे जीववत्. माया निर्दष्टांत याने विषय निर्दष्टांतभी मायावत्, इस रीतिसे वदतोव्याघात होता हे. मेटर (प्रकृति) की व्याख्या याने यथावत्लक्षण होना कठिन हे, तथापि अन्यकी (चित्को) अपेक्षासे कुछ कियेजाते हें. तद्वत् चितकेभी अपेक्षासे होजाते हें. यथा चेतनतत्व निर्विकारी, आकाशवत्. इ. स्वरुपलक्षणका दृष्टांत आप स्वरुपही होता हे. ॥ १६४ ॥

सिद्ध दृष्टांतसे साध्यकी सिद्धिहीं (अ.) ॥ १६५ ॥

अर्थ.—जब उभयपक्ष संमत वा सर्वतंत्र दृष्टांत, साध्यके धर्मका बोधक हो तो साध्यकी सिद्धि होगई, एसा जान्ना चाहिये. यह मंतव्य निरक्षर, विश्वासी वा भोले भाईओंका हे. इसकी असिद्धि ६१६ से ६१८ तक इन ३ सूत्रोंसे होजाती हे. यहां दृष्टांताधिकरण विचारणीय हे ॥ १६५ ॥

स्वनिश्चितही मान्य ओर यथार्थ (अ.) ॥ १६६ ॥

अर्थ.—जो प्रमाण, युक्ति, वा अनुभव वा निश्चय आप मानते हें याने निश्चय किया हे सोही मान्य हे ओर यथार्थ हे, अन्यका स्विकारितप्रमाण, युक्ति, अनुभव ओर निश्चय मान्य हे वा यथार्थ हे, एसे नहीं मान्ना चाहिये. यह मंतव्य अंधविश्वासके बंदोंका हे. इसकी असमीचीनता सू. ८९ । ९१ । ९२ । ९५ । १०५ । १०७ । ११५ । ११९ । १२२ । ४०६ । ४४१ । ४६९ । ४७० । ४७७ । ५०७ । ५१९ । ५२५ । ५३६ । ५३८ । ५६८ । ५८६ । ५९६ । ५९८ । ६१२ । ६१८ । ६५५ । ६८२ । ६८३ । ६८९ । ६८७ । ६९० । ७०२ । ७०४ । ७१५ । ७१९ । ७२१ ओर ७३४ से सिद्ध होजाती हे ॥ १६६ ॥

(पक्षकार) स्वनिश्चयही काममें आता हे, स्वमंतव्य सत्य क्यों न हो ? अतः हमारा पक्ष ठीक हे. (उ.) यदि मध्यस्थसे सिद्ध हे तो माननीय हे, अन्यथा अनेकांत प्राप्ति ओर विरोध दोष आता हे; जेसे के जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष संबंधमें ओर शब्दादि विषयमें हे. (शं.) एसा मतभेद तो रहनाही हे; एकमत कभी नहीं होसकता. (उ.) तो दुःखभी होनाही हे, सुख नहीं होसकता ॥ १६६ ॥

अध्यास अनिर्वचनीय नहींही परीक्षणीय ओर तद्अन्य-ख्याति सिद्ध होनेसे (अ.) ॥ १६७ ॥

अर्थ.—भ्रम अथवा अध्यास यह अनिर्वचनीय नहीं हें (अनिर्वचनीय-ख्यातिका विषय नहीं हे); क्योंकि उनकी परीक्षा होजाती हे तथा अनिर्वचनीय-विलक्षणख्यातिसे भिन्न अन्य सदादि १३ ख्याति वा उनमेंसे अमुक ख्याति सिद्ध होजाती हें. यह पक्ष अनिर्वचनीय-विलक्षणख्यातिवादिसे अन्य स्वस्वख्यातिवा-दियोंको संमत हे. इस पक्षकी अयुक्तता सू. ४३४ । ४३७ । ४५१ । ४३९ । सू. ३२५ । ४१५ ओर ६२४ वगेरे अध्यासप्रसंगसे तथा सू. ६७२ । ६७३ ओर अध्याय १ गत अध्यास निर्णय ओर अ. ३ गत, स्वप्नविकल्पादिरुप नहीं, इस परीक्षासे सिद्ध होजाती हे. अंतमें भ्रम (ज्ञानाध्यास) ओर अध्यास (ज्ञाना-ध्यास, अर्थाध्यास) यह उभय अनिर्वचनीय विलक्षण सिद्ध होते हें ॥ १६७ ॥

भ्रमप्रसंगमें सदादि १५ पक्ष अ. ३ । १२१ में बताये हें उनमेंसे अनिर्व-चनीयख्याति वा विलक्षणख्याति, सिद्ध होती हें, अन्य १३ असमीचीन रहती हें. संसर्गाध्यासमें कहीं अन्यथाख्याति (अन्यका धर्म अन्यमेंभासे) भी सिद्ध हो-सकती हे. (विस्तार मूलमेंभी हे) ॥ १६७ ॥

वा अर्थशून्यही (अ.) ॥ १६८ ॥

अर्थ.—ज्ञानाध्यास ओर अर्थअध्यास अर्थशून्यही होता हे, यह पक्ष अ-जातवादि ओर शून्यवादिको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ४३४ । ४३७ । ६७२ । ६७३ ओर पूर्वोक्त अध्यासप्रसंग अ. ३ सू. १६७ से सिद्ध होजाती हे. (क्योंकि किसी अनिर्वचनीयका परिणाम हे.) ॥ १६८ ॥

वा अर्थशून्य नहींही (अ.) ॥ १६९ ॥

अर्थ.—ज्ञानाध्यास ओर अर्थाध्यास अर्थशून्य नहीं हें, एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष सत्यख्यातिवादका हे. इसकी असमीचीनता सू. ६७२ । ६७३ ओर

४४१ से सिद्ध होजाती हे; क्योंकि ग्रहण नहीं होता ओर बाध होता हे. अ. ३ सू. १६७ के विचारमें इसका विचार आजाता हे ॥ १६९ ॥

अध्यास (भ्रम) सदसद्से विलक्षण प्रकारका अनिर्वचनीय रुप हे, ओर अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला अन्यथारुप हे. उसे कोई अज्ञानादि दोषसे भासना ओर कोई अनिर्वचनीय मायाका परिणाम मानता हे. रज्जुसर्प, स्वप्नसृष्टि वा नभनीलता उसके उदाहरण हें ॥ १६९ ॥

अज्ञान भावरुप अनादिसांतही स्वस्वरुपकी अप्रतीति प्रतीति होनेसे (अ.) ॥ १७० ॥

अर्थ.—में नही जानता इस प्रतीतिका विषय अज्ञान भावरुप पदार्थ हे. उसका ज्ञाता अनादिअनंत होनेसे सो अनादिसांत हे; क्योंकि अनादिज्ञाताको स्वस्वरुपका अज्ञान अनादिसे हे ओर ज्ञानसामग्री हुये अपने स्वरुपकी प्रतीति (ज्ञान) होजाती हे; इसलिये अज्ञान अनादिसांत पदार्थ हे. यह मंतव्य अनेक जीववादि ओर मोक्षवादिओंको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ३७५। ४४५ । १९० ओर १९२ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १७० ॥

वेदांतपक्ष ब्रह्म वा जीवको स्वस्वरुपका अज्ञान अनादिसे मानता हे. ब्रह्मपक्षमें माया ओर जीवपक्षमें अविद्याका प्रयोग होता हे. जीवब्रह्मकी एकता बोधक अध्यात्मशास्त्रद्वारा अपने स्वरुपका ज्ञान होनेसे अनादि अज्ञानका नाश मानता हे. जैनमत अनादि कर्मबंधनसे स्वस्वरुपका अज्ञान कहता हे, ज्ञान-दर्शन-चारित्रद्वारा ज्ञान होना ओर अज्ञानका अभाव होना मानता हे. योग ओर सांख्यभी अनादि अविवेकसे अज्ञान ओर विवेकख्याति हुये ज्ञान होनेपर अज्ञानका अभाव मानते हें. एवं अन्यभी रुपांतरसे मानते हें. परंतु मायावादिसे इतर पक्षकार अज्ञानको पदार्थ नहीं मानते; किंतु स्थिति विशेष कहते हें.

ज्ञाताज्ञेय, दृष्टादृश्यके योग्यसंबंधका अभाव, इसका नाम अज्ञान हे. स्वस्वरुपमें संबंध असंबंध कहना हास्यास्पद हे. यदि अज्ञान (वा माया) असंबंध (अवस्था-स्थिति) रुप नहीं किंतु स्वरुपतः वस्तु हे तो सांत न होगा; क्योंकि जो अनादि सो अनंतही होता हे. योग्यअसंबंधके अभाव हुये याने ज्ञेयज्ञाताके अनिर्वचनीय अभेद संबंध हुये ज्ञान होता हे तब अज्ञान संज्ञा नहीं होती. यदि पुनः संबंधाभाव हो तबभी अज्ञान संज्ञा नहीं होती; किंतु या तो अदृष्ट, वा तो विस्मृति संज्ञा होगी. परंतु स्वस्वरुपमें संबंधकाभाव वा अभाव नहीं मानसकते; अतः निरवयव

तत्वस्वरुपको अपना ज्ञान वा अज्ञान वा ज्ञानाभाव वा अज्ञानाभाव वा भूल कहना नहीं बनता. जो मानोगे तो ज्ञानाभाव वा अज्ञानका वा असंबंधका अनुयोगी तथा प्रतियोगी मान्ना होगा, परंतु स्वरुपका अमुक भाग अनुयोगी वा प्रतियोगी कहना नहीं बनता. संक्षेपमें ज्ञान-तत्वस्वरुपमें अपना अज्ञान, अपना ज्ञान, अपना ज्ञाता, अपना दृष्टा, अपनी भावना, अपने स्वरुपको भूलजाना इत्यादि प्रकार नहीं होसकते--नहीं बनते--नहीं मानसकते. जीवको अन्य पदार्थोंका अज्ञान (योग्यसंबंधाभाव) कहना वा मान्ना बनता हे, परंतु स्वस्वरुपका अज्ञान वा ज्ञान एसा कहना वा मान्ना वा होना नहीं बनता. जो पक्षकार उसको अज्ञान वा ज्ञान होना लिखते वा उपदेश करते हें, सो जिज्ञासुके बोधार्थ शैली मात्र हे; इसलिये दोष नहीं आता. अन्यथा ज्ञानस्वरुप--तत्वको अज्ञान वा ज्ञान होना, एसा प्रयोग नहीं होसकता (शेष विस्तार वसु. में हे). अज्ञान वा ज्ञान यह सब जीववृत्तिकेही परिणाम मानसकते हें; परंतु तत्वस्वरुपके परिणाम वा गुण अथवा वे तत्वस्वरुपमें हें, एसा सिद्ध नहीं होसकता. जेसे प्रकाशको प्रकाशका प्रकाशक कहना नहीं बनता किंतु स्वयंप्रकाशही कहसकते हें, ओर जो उसके संबंधमें आवे वोह उसप्रकाशसे प्रकाशित होता हे, एसा प्रकाशका स्वभाव हे इतनाही कहा जासकता हे; एसाही चेतनका स्वरुप हे. यदि घटाकाशवत्, तम आवरणवत् वा सिवाल जलावरणवत्, अज्ञान वा मायाको उसका आवरक मानलें तो उस अज्ञान-मायाको अनादिअनंतही कहना होगा. ओर जो अध्यास, एसा नाम वा प्रकार कहाजाय तो चेतनको संस्कारी (विकारी--परिणामी) कहना पडेगा; क्योंकि अध्यास, संस्कारके विना नहीं होता, ओर संस्कार ज्ञाताकोही हुवा करते हें (५०१।५०२। ५०४ देखो); इसलिये जिसको अध्यास हे उसको याने चेतनतत्वको अज्ञान ओर उसे संस्कारी (विकारी) मान्ना पडता हे, परंतु वोह निर्विकार--अपरिणामी तत्व हे, इसलिये वोह संस्कारी न होनेसे उसको अध्यास हे, एसा कहना वा मान्ना कल्पनामात्र हे. ओर जब यूं हे तो अध्यासका कारण जो अज्ञान सो उसको न होनेसे अज्ञान (माया) अनादिअनंत ओर पदार्थरुप सिद्ध हुवा ॥ १७० ॥

विस्मृति अज्ञानसेही (अ.) ॥ १७१ ॥

अर्थ.—विस्मरण होजाना यह अज्ञानकाही कार्य हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि अप्रतीति (अज्ञान) हुये भूलता हे. यह पक्ष एक नवीन वेदांतीका हे. इसकी असमीचीनता संस्काराधिकरणसे होजाती हे ॥ १७१ ॥

ज्ञान हुये पश्चात संस्कारका स्फुरण स्मृति कहाती हे. प्रसंग प्राप्तिपर संस्कार उद्बोदक सामग्री हुयेभी पूर्वदृष्ट संस्कारका अस्फुर्ण विस्मृति कहाती हे; इसलिये सो अज्ञानका कार्य नहीं. जीव वा ब्रह्म अपने स्वरुपको अनादिसे भूल गया, जो एसे हम कहें तो हमारा अज्ञान हे, क्योंकि पहेले ज्ञान पीछे भूल होती हे. भूलेका ज्ञान हो तो उस पीछेभी पुनः भूल जाता हे. ओर अज्ञान निवृत्त हुये फेर उत्पन्न नहीं होता, यह भूल ओर अज्ञानमें अंतर हे. (शं.) जो उपर अनुसार मानें तो इस जन्मभें न देखे हुये ओर पूर्वजन्ममें देखे हुये पदार्थ हें उनके संबंधमें क्या कहोगे याने उनका अज्ञान वा भूल. (उ.) विषय सूक्ष्म ओर विस्तारवाला हे- संक्षेपमें यह उत्तर हे कि यदि पूर्व दृष्टश्रुतके संस्कारकी अदृष्ट हयाती हे (नष्ट नहीं हुये हें) ओर उद्बोदक वही सामग्री (शरीरादि) हे तो भूलपदका प्रयोग होगा; अन्यथा अज्ञानपदका प्रयोग होगा, एसा व्यवहार हे. यथा-कोई योगी संस्कारमें संयम करनेसे पूर्वजन्मका कुछ वही वा उतनाही वृतांत जानसकता हे कि जिसके संस्कार गुप्त हयात हें, सब नहीं जानसकता; क्योंकि सब संस्कार हयात नहीं रहते. विधेयको विश्वदृष्टिकालमें जिसके दर्शन होजाते हें उसे जागने पीछे नहीं देखता, ओर सब दृष्ट उसको यादभी नहीं रहते तथापि यदि वोह वस्तु सामने आजाय वा उस संबंधी बात सुने तो उसमें आकर्षा जाता हे; यह गुप्त संस्कारोंकी महिमा हे ओर यदि वे संस्कार उद्भव होजायँ तो पूर्वदृष्टका स्मरण होगा तथा उस अनुसार व्यवहार करेगा. इस रीतिसे अज्ञान ओर भूलका विवेक होसकता हे. व्यवहारदृष्टिसे इसका खुलासा नहीं होसकता ॥ १७१ ॥

साक्षीभी परतः प्रामाण्यकाही विषय (अ.) ॥ १७२ ॥

अर्थ.—जेसे मन इंद्रिय परतः याने अनुमानसे जाने जाते हें वेसे साक्षी (चेतन, ज्ञाता, आत्मा) का प्रमात्वभी अनुमानद्वारा जानाजाता हे. यह नैयायक ओर एक प्रकृतिवादिका पक्ष हे. इसकी असमीचीनता ७७ । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ से सपष्ट होजाती हे; क्योंकि परतः उसका विषय होता हे ओर साक्ष्यकी अ- पेक्षासे साक्षी नाम पडता हे ॥ १७२ ॥

• **अध्यास अज्ञान विनाभीही** (अ.) ॥ १७३ ॥

अर्थ.—ज्ञानअध्यास ओर अर्थअध्यास, वस्तु (अधिष्ठान) के अज्ञानसेही होता हे एसा नहींभी हे किंतु अज्ञान विनाभी होता हे; जेसे के आकाशमें नीलताका

अध्यास आकाशके ज्ञान हुये पीछेभी होता हे. यह पक्ष विलक्षणवादिका हे. इसमें जितनी असमीचीनता हे उसका विवेक ६३५।६३७।७३से होजाता हे ॥ १७३ ॥

भ्रम अथवा अध्यास तो अधिष्ठानके अज्ञानसेही होता हे; परंतु अधिष्ठानके ज्ञान हुये पीछेभी पूर्ववत् प्रतीति हो वहां उसका नाम बाधरुप वा स्वाभाविक अवभास कहाजाता हे, अध्यास शब्द नहीं कहाजाता. जेसेके आलातका चक्र ज्ञान हुयेभी जान पडता हे. पहाडपर जावें तब पहाड नीला नहीं जान पडता ओर नीचे उतरके दूर जावें तो नीला जान पडता हे. राजयोगके अभ्यासीको आंख बंद हुये अंदरमें अनेक सिद्धोंकी आकृति ओर अनेक प्रकारकी सृष्टि जान पडती हे, यह उदाहरण योगी–संतोंमें प्रसिद्ध हे; उनका उपादान कोई अनिर्वचनीय (मायादि) वस्तु होने योग्य हे. जेसे के स्वप्नसृष्टिका कोई अनिर्वचनीय उपादान हे वेसे उस अंतर सृष्टिकाभी उपादान होने योग्य हे. (बस. ओर दर्शनसंग्रहमें इसका विस्तार हे) ॥ १७३ ॥

यहांतक अ. २ । सू. ४६९ से ६५६ तकमें जितने जीवसंबंधी नियम, उपनियम हें उनमेंसे कितनोंकका प्रतिपक्ष ओर उन प्रतिपक्षोंकी असिद्धि तथा विवेक संक्षेपमें उदाहरणरुपसे दिखाया हे. जो शेष रहे हें उनका प्रतिपक्ष ओर इन प्रतिपक्षोंकी असिद्धि वा विवेक जानना हो तो शोधक-परिक्षक स्वयं उपस्थित करसकता हे. (विस्तार अ. २ मूलमें हे)

अब आगे अ. २ गत जो सूचनाप्रकरण हे उसके प्रतिपक्ष तथा उन प्रतिपक्षोंकी असिद्धि वा विवेक संक्षेपमें दरसावेंगे.––

सूचनाप्रकरण विचार.

अनवस्थादि दोषही (अ.) ॥ १७४ ॥

अर्थ.—अनवस्था ओर आत्माश्रय दोषही होता हे. यह पक्ष सर्व साक्षरोंको संमत हे. तथापि सिद्ध प्रसंगमें इसको दोष नहीं कहा जासकता (१९१ देखो) इसलिये इतने अंशमें यह मंतव्य अग्राह्य हे ॥ १७४ ॥

पूर्व उत्तरमें लय होनेसे अवर्ति (६७२) नहींही (अ.) ॥ १७५ ॥

अर्थ.—हरकोई जो पूर्वमें न था ओर उत्तरमें न होगा सो सद् वा सदसद् नहीं

कहा जाता, यह बात अयोग्य हे; क्योंकि वोह पूर्व ओर उत्तरमें लय होता हे, इस लिये उसे अवर्ती नहीं कहसकते. यह पक्ष सांख्यको संमत हे. इसकी असमीचीनता सू. ६७२ । ३५२ । ३५३ । ३५५ । १८४ । १८६ से स्पष्ट होजाती हे ॥ (इसका विस्तार मूलमें हे) ॥ १७५ ॥

सत्यके संयोगजन्य वा परिणाम होनेसे अनिर्वचनीय (६७३) नहींही (अ.) ॥ १७६ ॥

अर्थ.—जो उत्पत्तिके पूर्व ओर नाशके पीछे नहीं होता; किंतु अपनी उत्पत्तिके पीछे ओर नाशके पूर्व होता हे सो अनिर्वचनीयही हे, एसा नहीं हे; क्योंकि वोह सत्य अवयवोंके संयोगसे जन्य हे याने उन सत्यकी रचना हे अथवा सत्य पुंजका परिणाम (रुपांतर) हे; इसलिये उसे सत् कहाजायगा; सत्से अन्यथा वा अनिर्वचनीय नहीं कहसकते. यह पक्ष मायावादिसे इतर सर्वको संमत हे. इसमंतव्यकी असिद्धि सू.६७३ । ६७२ । ३५२ । ३५३ । ३५५ । आधारअधिकरण । ४१३ । ४२६ । ४३४ । ४३७ । ४३९ । ६३७ । ६५२ । १९६ । २८० । २८२ । २८५ । २८७ । ३०२ । ३०३ । ३०८ । ३१० । ६८९ ओर ६९० से होजाती हे ॥ १७६ ॥

नैयायक दृश्य घटादिको नवीनोत्पन्न ओर सत्मानते हें, तद्वत नवीन सायंस जलादिकोंको नवीनोत्पन्न ओर सत्रुप मानती हे. मैमांसिक उपादानसे भेदाभेदरुप मानते हें. सांख्य, योग सत्प्रकृतिका सत्परिणाम कहते हें, तद्वत् क्षणिकविज्ञानवादि बौद्ध मानता हे. जडवादि ओर दयानंदश्री जगतको मूल सत्अवयवोंका संयोगवियोगरुपरचना मानते हें. थियोसोफी, वल्लभश्री सत्ब्रह्मका सत्परिणाम बोधते हें. शून्यवादि असत् कहता हे. विश्वासी पूर्व उत्तरमें नहीं ओर वर्तमानमें सत् (ईश्वरने अभावमेंसे सत्रुप पेदा की) मानते हें. सूफीपक्ष ब्रह्मका रुपांतर वा मृगजलवत् बताता हे. जैन सदसद्रुप कहता हे. रामानुजश्री सद्प्रकृतिका सद् परिणाम मानता हे. शंकरश्री मूलउपादानको सद्असद्से विलक्षण अनिर्वचनीय बताता हे. विलक्षणवादि मूलउपादानकोही अधिष्ठानसे विलक्षण मानके उसके कार्य परिणाम (दृश्य) कोभी विलक्षण कहता हे. इत्यादि पक्ष हें. ख्याति निर्णयसे इनका निराकरण होजाता हे. विभु अधिष्ठानवादिको स्वरुपाप्रवेशके कारण (३८२) उससे इतर नामरुपके मूलउपादान वा मूलपरिणामीको अधिष्ठानके समसत्तावाला रुप नहीं मानापडता हे, इसलिये हरकोई वर्तमानस्थ कार्यभी विषमसत्तावाला स्वी-

कारना पडता हे; इसीलिये हरकोई वर्तमानस्थ कार्यभी विषमसत्तावाला मान्ना पडता हे. ओर इसीवास्ते मध्यमेंभी अनिर्वचनीय कहाजाता हे; क्योंकि सद्, असद् ओर सदसद्रुप कहनेमें दोष आते हें.

डोरीका सर्प अर्थशून्य हे-पूर्वउत्तरमें नहीं हे तो वर्तमानमें केसे मानाजाय ? दोषबलसे संस्कारवश डोरीकाही नाम सर्प कल्पाजाता हे; परंतु डोरी सर्परुप नहीं हुई हे; किंतु सर्प संस्कारमात्र हे. (शं.) सर्प यह नाम कल्पन, ओर संस्कार यहभी तो किसीके परिणाम मान्ने होंगे. अधिष्ठान यदि निरवयव हे तो उसका परिणाम नहीं होनेसे संस्कार ओर सर्प नाम यह उसके परिणाम वा अवस्था नहीं हें, यह सिद्ध होगा; अंतमें उससे इतर कोई परिणामी वा उपादान मान्ना होगा; जेसे के डोरीसर्पप्रसंगमें दूषितवृत्ति वा अविद्या, ओर सृष्टिप्रसंगमें स्वप्नका उपादान माया वगेरे कुछभी मान्ना होगा; इसीप्रकार ब्रह्मांड संबंधमें हे. याने अधिष्ठान (सर्वाधार व्यापक) से विषमसत्तावाला जो दृश्य ब्रह्मांडका उपादान वा परिणामी हे सो सत्ताअधिकरणानुसार अधिष्ठानसे विलक्षण अनिर्वचनीय मान्नापडता हे, इसीप्रकार वर्तमानवर्ति घट, रज्जुसर्प, स्वप्नसृष्टि, नीलतादि अनिर्वचनीय स्वीकारने पडते हें. यदि अधिष्ठान संस्कारी-परिणामी याने विकारी होता तो नामरुपात्मक ब्रह्मांड पूर्व उत्तरमें लयरुप ओर वर्तमानमें सतरुप मानलियाजाता, परंतु एसा सिद्ध नहीं होता; इसलिये मध्यकालवर्तिको ओर उसके मूलको अनिर्वचनीय कहाजाता हे ॥ १७६ ॥

सर्वका खंडनही अनिश्चित होनेसे (अ.) ॥ १७७ ॥

अर्थ.—मानवमंडलमें जितना कुछ मानाजाता वा कल्पन कियाजाता हे वोह सब खंडन होजाता हे—सिद्ध नहीं होता; क्योंकि अनिश्चित हे अर्थात मनुष्य उसको निर्णय नहीं करसकता; इसलिये अमुक मंतव्य माननीय, एसा नहीं कहसकते. यह मंतव्य संशयवादि वा कुतर्कीओंको संमत हे. इसकी असमीचीनता ६७९ । ४७७ । ४७९ । ६८० । ४५१ से स्पष्ट होजाती हे ॥ १७७ ॥

निश्चित, अनिश्चित-उपयोगकी मर्यादा, खंडन-मंडन तथा शंका समाधानकी सीमा, मनुष्यमंडलकी हद तक हे; अतः सर्व सर्वथा निश्चित वा सर्व सर्वथा अनिश्चित कहना हठमात्र हे. यदि सर्व अनिश्चित होता तो जीवन ओर पदार्थका उपयोगही नहीं होता ओर जो सर्व निश्चित होता तो शब्दादिमें मतभेद न होता. कुदरतमें जो हे सो एकांत हे; सू. १८६ । ११७ । ११८ । ४५६ देखो; इसलिये अनिश्चित अभावसे सर्वका खंडन कहना वदतोव्याघात हे; अतः विवेकपूर्वक विभाग

कियेविना सर्व अनिश्चित वा सर्व निश्चित एसा नहीं मान्ना चाहिये ॥ १७७ ॥ तथा जो एसा कहे कि मतभेद दर्शनसे सर्व अनिश्चित हे, इसलिये सर्वका खंडनही होता हे. तोभी पूर्वोक्त परिणाम आजाता हे ओर उभय पक्षमें खंडनभी अनिश्चित होजानेसे वक्ताको वदतोव्याघात दोष लगता हे ॥ १७७ ॥

ज्ञातसे इतर तत्व नहींही अद्यापि ज्ञात न होनेसे (अ.) ॥ १७८ ॥

अर्थ.—मानवमंडलमें जितने तत्व (१ से ८० तक) आजतक ज्ञात हुये हें उनसे इतर तत्व ब्रह्मांडमें नहीं हें, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि अभीतक (असंख्य कालसे) अन्य ज्ञात नहीं हुये हें. यह मंतव्य उनका हे कि जो सर्वज्ञके ग्रंथ मानते हें. इसकी असिद्धि सू. ६८२ । ११५ । ४६९ । ४७० से होजाती हे ॥ १७८ ॥

जल पूर्वमें तत्व माना जाता था. औक्षजन ज्ञात न था; वर्तमानमें जल कंपोंड ओर औक्षजन तत्व माना गया हे. इत्यादि ॥ १७८ ॥

अनिश्चितवादही परिणामकी धारासे (अ.) ॥ १७९ ॥

अर्थ.—जितना कुछ देखा-सुना-माना-कहा-जाता वा कल्पन कियाजाता हे वोह वेसेही हे एसा निश्चय नहीं करना चाहिये; क्योंकि मूल कोई तत्व न होनेसे पूर्व-पूर्वसे उत्तरउत्तर नाना परिणामकी धारा हे; अमुक प्रकारकाही परिणाम हो एसा नियम नहीं हे. यह पक्ष यूरोपके एक फिलोसोफरका हे ओर अनिश्चितवादि तथा विषयासक्तोंकोभी संमत हे. इसकी असिद्धि मूलाधिकरण, सू. ३०२ । ३०३ । ३१२ ३१४ । ३२० । ३४० । ३२८ । ४५१ । ४५३ । ४५१ । ४८२ । ६८५ । ६८९ । ओर स्वरुपसंभावनामें तोलनेसे होजाती हे ॥ १७९ ॥

(पक्षकार) पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तर परिणाम यथा-कभी कोई जीव चेतन कभी कोई अचेतनरुप, कभी शब्द वायुकी लहेर, कभी आकाशका गुण, कभी परमाणुरुप-इस प्रकारसे कुदरतमेंही एक निश्चयात्मकता नहीं हे किंतु व्यभिचारीपना हे; अतः अनिश्चितवादकी सिद्धि हे (उ.) पूर्वोक्त अधिकरणसे यह पक्ष असिद्ध हे । अ. ३ सू. १७७ भी ध्यानमें लीजिये ॥

परधर्म प्रवेश अनुचित नहींही लाभ दर्शनसे (अ.) ॥ १८० ॥

अर्थ.—अपनेको जो धर्म (अधिकार) कुदरतसे प्राप्त हे उसका परित्याग करके परके धर्मका ग्रहणकरना अनुचित नहीं हे; क्योंकि उसमें लाभ जानपडता

हे. यह मंतव्य लगभग अनेक पंथाइयोंको संमत हे ओर कितनोंकको नहींभी हे. इस मंतव्यमें जितना अनुचित अंश हे उसकी असिद्धि ओर उचितका विवेक सू. ६८९ । ६९० । ६९२ । २१ । ५३६ । ५३८ । ५२९ । ५३३ । ५४२ । ६८५ । ७१९ । ७२१ से होजाते हैं ॥ ॥

संस्कारादिसे जो स्वभावतः योग्यता प्राप्त हे उसकी उन्नति करनाचाहिये, उसके विरुद्ध वर्तनसे दुःख होता हे. सत्यादि १० सामान्यधर्म सबके लिये समान हैं. विशेषधर्म जुदाजुदा व्यक्तिकी योग्यता, देशकाल, स्थिति परत्वे होता हे; जेसे के ब्राह्मणादि वर्ण ओर ब्रह्मचर्यादि आश्रमीके जुदाजुदा हैं; यदि शूद्रस्थितिवाला ब्राह्मणका ओर ब्राह्मणस्थितिवाला शूद्रका धर्म ग्रहण करे तो दुःखी होजायगा. संन्यासी ग्रहस्थके धर्म लेगा तो दुःखी होगा. इसीप्रकार हिंदु, किरानी, कुरानी, ईरानी वास्ते जान लेनाचाहिये. जिस लाभको मानके स्वीकारता हे वोह अपने धर्ममेंभी मिलसकता हे; जो एसा न होसकता हो तो वोह धार्मिक विषय न होना चाहिये; क्योंकि ईश्वरादिका मान्ना न मान्ना वा केसा मान्ना न मान्ना, इसका संबंध मनके साथमें हे, वोह सर्व सोसाइटीमें पलसकता हे. जो व्यावहारिक-स्वार्थी बाते हैं वे अन्यमें प्रवेश किये विना नहीं मिलती. उनके वास्ते स्थिति बदलना धर्म प्रवेश नहीं किंतु स्वार्थ सिद्धि हे ॥ देशहितादि वास्ते एक धर्मचलाना यह दूसरी बात हे. ओर असत् हानीकारक नाना धर्मोंका विद्या वा दंडद्वारा निवारण करना यह दूसरी बात हे. वर्तमानके प्रचलित तमाम धर्मोंमें कोई न कोई दोष हेही, उसका निवारण करना ही उचित हे. शुद्ध हुये उसका प्रचार लाभकारी हे, अन्यथा द्वेष बढाना हे. उपर अनुसार धर्म एकही हे. नाना धर्मका निकालना कर्तव्य हे. नहींके प्रवेश करके उनकी वृद्धि करना उचित हे (शेष अ. ४ गत संग्रहवादमें) ॥ १८० ॥

सृष्टिके सर्वनियम क्रम ओर इतिहासकी प्राप्तिही सर्वज्ञोंके ग्रंथ दर्शनसे (अ.) ॥ १८१ ॥

अर्थ.—सृष्टिनियम जितने हैं उनकी ओर सृष्टिका उत्पत्तिप्रकार तथा स्थितिका क्रम ओर सृष्टिमें आजतक जो कुछ हुवा उसके इतिहासकी (पुराणकी) प्राप्ति हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि मान्यपवित्र जो सर्वज्ञोंके ग्रंथ हैं उनके दर्शनसे एसा जानपडता हे. यह पक्ष उनको संमत हे कि जो ईश्वरीयग्रंथ वा सर्वज्ञ कृतग्रंथ वा योगीको सर्वज्ञ मानते हैं. इसमंतव्यकी असमीचीनता २९३ । २९४ । २९५ । २९६ । ११५ । ४६९ । ४७० । ४०६ । ४०८ से सिद्ध होजाती

हे; क्योंकि उन ग्रंथोंमें मतभेद हे ओर उनका लेख परीक्षामें सिद्ध नहीं होता ॥ १८१ ॥

आर्यप्रजाके उपनिषद् ओर पुराणोंमें सृष्टिउत्पत्ति क्रममें अंतर हे; मीमांसा ओर जैनग्रंथ अनादि कहता हे. बौद्ध क्षणिक मानता हे. विश्वासियोंके ग्रंथ अभावजन्य आरंभ मानते हें. वेदानुयायी प्रवाह मानता हे. हिंद ओर चीन पुनर्जन्म कहता हे, विश्वासी नहीं मानते. वेदांत अनादिसांत, विश्वासी सादिअनंत, जैन मध्यम अनादिअनंत, इसप्रकारके नियम मानते हें-इत्यादि अनेक मतभेद हें. इससे स्पष्ट होता हे कि मनुष्यको तमाम सृष्टिनियम ओर सृष्टिका भूत इतिहास अप्राप्त हे. ओरभी इतिहासबोधक--ग्रंथोंमें मतभेद हे. इवोलेशनथीयरीका अनुमानिक इतिहास हे, वोह स्वयं पूर्ण यथार्थ मान्नेको उद्यत नहीं हे. याहुदी ओर ईसाईकृत ईसुलाईफमें, शंकरानुयायी कृत ओर जैनकृत महादेवकी लाइफमें, ईसाईकृत ओर मुसलमानकृत नबी मुहम्मदकी लाइफमें रात दिन जितना अंतर हे; एवं वर्तमानमें जो दयानंदादि हुये हें उनकी लाइफमें मतभेद हे. तो फेर सृष्टिके इतिहासमें मतभेद हो, इसमें क्या कहना हे ॥ १८१ ॥

व्यवहार परमार्थ भिन्न नहींही बुद्धिके विषय होनेसे (अ.) ॥ १८२ ॥

अर्थ.—व्यवहार ओर परमार्थ यह दोनों विषय जुदा नहीं हें; किंतु उभय एकही हें; क्योंकि उभय बुद्धिके विषय हें. यह पक्ष प्रकृतिवादि (जडवादि) को संमत हे. इस मंतव्यगत असमीचीन अंशकी असिद्धि सू. ७०२ । ७०३ । ७०४ । ५२३ । ४४ । ७२३ से होजाती हे ॥ १८२ ॥

जडवादि परलोकवादको नहीं मानता. जिसका व्यवहार सत्य, उत्तम नहीं हे, उसको परमार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तथापि उभयमें अंतरही हे. ईश्वर, जीवादिके माने विना जीवन होता हे यह व्यवहार हे. ईश्वरादिको मान्ना चाहिये, नहीं मानें तो नरक मिलेगा यह पारमार्थीकपक्ष हे. इसप्रकार उभय बुद्धिके विषय हुयेभी उभयमें अंतरभी हे ॥ १८२ ॥

व्यवार दृष्टिसेही सन्निर्णय व्याप्ति तदंतरगत होनेसे (अ.) ॥ १८३ ॥

अर्थ.—जितना परोक्ष, अपरोक्ष, व्यावहारिक, पारमार्थिक विषय हे उसका निर्णय व्यवहार दृष्टिसेही कर्तव्य हे, उस दृष्टिको छोडके नहीं मान्ना चाहिये; क्योंकि

निर्णयकी सामग्री याने जितनी व्याप्ति हें वे सब व्यवहारके अंतरगत होती हैं. यह मंतव्य जडवादि ओर फिलोसोफीके शत्रुओंका हे. इस पक्षगत असमीचीन अंशकी असिद्धि सू. ७०३ । ७०२ । ७०४ । ५२३ । ४४ । ओर ७२३ से होजाती हे ॥ १८३ ॥

अमुककी अमुक स्त्री, सात आनेके सिक्केका १६ आना देना, मरण पीछे पुत्र नहीं पुत्री मालिक-इत्यादि व्यवहार हे; पुनर्जन्म ओर मोक्षकी सिद्धि व्यवहार दृष्टिसे नहीं होती; क्योंकि व्यवहारमें तो शरीर मरण यही जीवका मरण हे. शरीर क्षणिक हे, व्यवहारमें स्थाई मानाजाता हे--इत्यादिके विचार करनेसे व्यावहारिक दाखलोंसे सन्निर्णय नहींभी होता, एसा सिद्ध होता हे ॥ १८३ ॥

भिन्नत्व अज्ञान अनादरणीयही (अ.) ॥ १८४ ॥

अर्थ.—भिन्नत्वका अज्ञान (ऐक्यता) वा भेद ओर अज्ञान तिरस्कार करनेके योग्य हें, एसा निश्चय होता हे (क्योंकि भेदका अज्ञान असत हे ओर भेद तथा अज्ञान हानीकारक हें), यह मंतव्य अभिन्ननिमित्तोपादानवादि (वे. शु. थी. सू.) का हे ओर व्यवहारांशमेंभी किसी किसीको मान्य हे. इस मंतव्यगत जितना असमीचीन अंश हे उसकी असिद्धि सू. ७०६।७०७से होजाती हे ॥ १८४॥

भिन्नत्व विना ओर अज्ञान विना उन्नति ओर व्यवहार नहीं होता; इसलिये अभेद (ऐक्यता) ओर उसके ज्ञानका अस्विकार हे. व्यवहारमें संप (ऐक्यता) उन्नतिका हेतु हे. नवीनप्रजा अज्ञानी होती हे तो उन्नतिमें प्रवृत्त होती हे; इत्यादि विस्तार मूलग्रंथ (अ. २ । अ. ३) में हे. सारांश भिन्नत्व ओर अज्ञान (अपूर्णता) यही उन्नति ओर व्यवहारके हेतु हें. यहां यह आशय नहीं हे के द्वेष ओर अज्ञानकी वृद्धि करना, किंतु पदार्थ ज्ञानको संपादन करना ओर दूसरोंको तथा अपनेको सुख पहोंचाना वा स्पृधा करके दूसरोंके जेसे उन्नतिपर आना-वगेरे आशय हे ॥ १८४ ॥

इतरके संगका निषेधही संशयभ्रांति होजानेकी संभावनासे (अ.) ॥ १८५ ॥

अर्थ.—केवल स्वधर्मके ग्रंथ, ओर अपने आचार्यके वाक्यका श्रवण ओर स्वमान्य गुरुकाही संग करना चाहिये; उनसे इतरके श्रवण--मनन ओर संगका निषेध हे (अकर्तव्य हे), एसा निश्चय करना चाहिये; क्योंकि जो उनसे इतरका वांचन, श्रवण वा संग कियाजाय तो स्वधर्म, स्वमत वा स्वसिद्धांतमें संशय वा

भ्रांति पेदा होजाय, एसी संभावना रहती हे. यह मंतव्य बहुधा तमाम धर्म, मत, पंथवालोंको संमत हे; इसको न स्वीकार करनेवाली विरल व्यक्ति होगी. इस मंतव्यमें जितना अयुक्त अंश हे उसकी असिद्धि सदाकराधिकरण (७१७ से ७२५ तक) सू. ५३६ । ५३८ । ५४२ । १०५ । ११५ । ११९ । १२१ । १२२ । ४०६ । ४५६ । ४५९ । ४६९ । ४७० । ४७७ । ४८६ । ४९० । ५१९ । ५२५ । ५२९ । ५४६ । ५४८ । ५५० । ५८६ । ५९६ । ५९९ । ६०९ । ६५१ । ५७९ । ६८७ । ६८९ । ६९० । ७०२ । ७०४ । ७१५ । ७३५ । ७३६ ओर ७४५ से होजाती हे ॥ १८५ ॥

कुसंगका निषेध ओर सत्संगका विधान सर्वतंत्र हे. विश्वासी, मंदबुद्धिको अमुक प्रतिष्ठित सदाचारीके विश्वासमें रहनाही उचित हे (७२१ देखो). वर्तमान-काल तर्क ओर आंदोलनका हे; इसलिये जो सदाकर करनेके योग्य हो उसको सबका संग करना उचित हे. जिनके सत्में संशय हे वे वा धर्म हटीले हें वे दूसरेके संगमें जानेसे वर्जते हें; क्योंकि हमारे बाडेमेंसे जावे, एसा वे नहीं चाहते. (शं.) हमारे धर्ममें जो कहा हे वोह सब सत्यही हे, तो फेर परकी संगतमें क्यों जाना. (उ.) इसीका नाम हट हे. सच्चा हीरा वा सच्चा कुंदन कहींभी जाय उसका सब जघे आदरही होगा. एसे जबके हमारा मंतव्य सत्य हे तो हमारा अनुयायी कहींभी जाय, सत्य स्वयं तिर आवेगा (७२५ देखो). इत्यादि. विस्तार मूलमें हे ॥ १८५ ॥

निर्णय ओर निर्णित सत्यकी अप्राप्तिही असाधनतासे (अ.) ॥ १८६ ॥

अर्थ.—प्रथमतो सत्य क्या इसका निर्णय होना कठिन हे, ओर यदि होभी जावे तो निर्णित सत्यकी प्राप्ति नहीं होसकती एसा निश्चय होता हे; क्योंकि वर्तमानमें मनुष्यको वेसे साधन अप्राप्त हें. यह पक्ष किसी विषयासक्त, अनुत्साही, निरक्षर वा विश्वासीका होनाचाहिये. इसकी असिद्धि सदाकर अधिकरण तथा सू. ७३४ । ७४६ । ११ ओर १८ से होजाती हे ॥ १८६ ॥

(पक्षकार) जब सबका संग याने सदाकरका सेवन करें तो हरेक मूलधर्म—मत—पंथगत तत्व, अतत्वका विभाग, साध्य, हेतु ओर साधनका इतना विस्तार हे कि मनुष्य उसे अपने जीवनमें पूरा नहीं जानसकता ओर उसका निश्चित परिणाम नहीं निकालसकता, तो फेर अनेक धर्मद्वारा निर्णय—परिणाम लानेकी तो बातही

कथा करना. अब कदाचित सारसार लेके निर्णयपर आया तो जो सत्य निर्णय हुवा उसकी प्राप्ति होना असंभव हे; क्योंकि उसको संपादन करनेके लिये बहुत तत्पर हुये हें, परंतु वोह अद्भुत, दुर्बोध्य विषय हे; अतः उसकी प्राप्तिके योग्य साधन नहीं मिलते; यहांतकके मन, वाणि ओर बुद्धिकाभी विषय नहीं हे तो फेर उस सत्यकी केसे प्राप्ति होसकती हे अर्थात अप्राप्ति हे; इसलिये सत्य वा धर्म-मत-पंथके निर्णयसे उपेक्षाही योग्य हे.

(उ.) यद्यपि आपका कथन मिथ्या नहीं हे, तथापि सर्वांशमें सत्यभी नहीं हे; क्योंकि अद्यापि जितने मंतव्य हें उनका विवेक, ज्ञात सृष्टिनियमोंसे होजाता हे (अ. २ में वे हें); जिनको नियम उपस्थित ओर अनुभवगम्य हें उनको यदि संपादन होगा तो सत्यही होगा, असत्य ग्रहण न होगा; क्योंकि उन नियमोंकी उत्थानिका प्रचलित मंतव्योंसेही उद्भव हुई हे. अब रहा सत्यका अनुभव सो अनेकोंको हुवाभी हे; अतः होसकताभी हे. जबके खंडन, मंडन, अज्ञान, भ्रम ओर संशय किसीमें प्रकाशित होते हें तो फेर उस स्वप्रकाश सत्का अनुभव वा प्रकाश क्यों न होगा? होजानाही चाहिये. यद्यपि यह बात सत्य हे कि वोह सत्य दुर्बोध्य हे तथा मन वाणिका विषयी होनेसे उनका विषय नहीं हे, तोभी जेसे सूर्यका प्रकाश आपही चक्षुमें प्रकाशमान होजाता हे वेसेही वोह संस्कारी–बुद्धिवृत्तिमें आपही प्रकाशमान होजाता हे; क्योंकि वोह स्वयंप्रकाश हे वा स्वप्रकाश हे. (विशेष मूलमें) ॥ १८६ ॥

सबके सिद्धांतका एक फल नहींही अदर्शनसे (अ). ॥ १८७ ॥

अर्थ.—जितने मूलधर्म मत हें उन सबके जुदेजुदे सिद्धांतका एक फल (२ । ७४३) नहीं होसकता एसा निश्चय होता हे; क्योंकि जुदाजुदा फल मानना देखते हें. यह मंतव्य अनेक अशोधकोंका हे. इसमंतव्यका जितना असमीचीन अंश हे उसकी असिद्धि सू. ७४३ । ७४० । से होजाती हे. इसका उदाहरण अ. ४ में वांचोगे ॥ १८७ ॥

मूल पक्षकारोंकी शैलीमें भेद हे. सबका सिद्धांत (लक्ष्य) एक आ मिलता हे. यथा-मनकी सफाई-एकाग्रता, सर्वतंत्रसिद्धांत हे. इतना करनेसे जो फल प्राप्त होगा—अपरोक्ष होगा वोह सबका एक हे. उसके वर्णन करनेमें शैलीका भेद अवश्य होगा; क्योंकि वोह मनवाणिका विषय नहीं होता--अवर्णिय हे. पृष्ट २४२ ओर

बस. मैं सबका एक सिद्धांत दरसाया हे. तत्वज्ञोंके मूलग्रंथका भाव सारग्राही दृष्टिसे निरखा जाय तो सबका लक्ष्यबिंदु एक हे एसा समझमें आसकेगा ॥१८७॥

अनेक सूचना व्यर्थही प्रसिद्ध होनेसे (अ.) ॥ १८८ ॥

अर्थ.—अ. २ में सूचनाप्रकरण विषे कितनीही सूचना व्यर्थ हें, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि वे लोकमें प्रसिद्ध हें. इसका उत्तर यह हे कि जो इन सूचनाका संग्रह न होता तो दूसरोंका अन्य प्रकारका वा विपरीतभाव होजावे एसी संभावना जान पडती थी ॥ १८८ ॥

(शं.) इतिहास (६९३), नाश (६५९) इत्यादि सूचना व्यर्थ हें (उ.) नहीं. जो एसी सूचनाका लोकमें प्रचार होता तो सिकंदरियेकी लायब्रेरी मुसलमान खलीफा न जलवाता; अतः योग्य सूचना हों तोभी यथा उद्देश, देश, काल, स्थिति, परिस्थिति-होती रहनाही योग्य हे ॥ १८८ ॥

एवं अन्यभी यथायोग्य (अ.) ॥ १८९ ॥

अर्थ.—दूसरे अध्यायगत उपोद्घातादि ५ प्रकरणोंमें जो विषय हें उनमेंसे इसतीसरे अध्यायके सू. १४ से १८८ तकमें कितनेही विषयोंका प्रतिपक्ष ओर उन प्रतिपक्षोंका जिन नियमादिसे निषेध होता हे वा उनके अमुक भागकी अयुक्तता जानपडती हे उन नियमादिके सूत्रोंका उपयोग यहांतक जेसे दिखाया हे उसीप्रकार उन पांच प्रकरणोंमेंसे रहे हुये विषयोंका प्रतिपक्ष ओर उन अयुक्तका वा उनके असमीचीनभागका निषेध नियमादिके सूत्रोंद्वारा यथायोग्य करलेना चाहिये; क्योंकि हमारा उद्देश, सूत्रउपयोगके उदाहरणमें था ॥ १८९ ॥

जिनका प्रतिपक्ष ओर निषेध उपर कहा उनका ओर जो नहीं लिखे याने जो विषय बाकी हें उनका विस्तार मूललिखित अ. २ में ओर कुछ इसीमें हे. यहांतो संक्षेपमें वृति लिखी हे. शेष विषयोंमेंसे कितनेक एसेभी हें के जो रुपांतरसे इस वर्णनमें आजाते हें ॥ १८९ ॥

संगति—अब जिस उद्देशसे अ. २ की योजना हे उस उद्देशमें अ. २ का उपयोग होगा. अर्थात ईश्वरादिविषयका विचार होगा, उनमेंसे प्रथम असिद्ध पक्षका पूर्ववत् विचार चलेगा. उस पीछे सिद्धपक्षका वर्णन होगा.—

विषयप्रकरण.

(विषय विचारार्थ प्रत्यय).—

उद्देशित इष्ट (ईश्वरादि) विषयके विचारार्थ तत् संबंधि जो प्रत्यय (भावना-

विशेषण) हें सो प्रथम जनाते हें. इन निम्नलिखित प्रत्ययोंमेंसे कोइक एसे हें कि जो पक्षकारोंके विषय नहीं हें. सू. १९२ । १९५ से ईश्वरादिमें जो भावना मान्य हें उनकी असिद्धि जनावेंगे. यह एसा प्रकार होगा कि निम्नलिखित प्रत्ययोंमें जितने अयुक्त--अनुचित--अलीक--कल्पनामात्र प्रत्यय--भावना हें उन सबका निषेध--उस शैलीसे होसके. इसलिये एकएक प्रत्ययका खंडन, मंडन, न कियाजायगा. निम्नलिखित प्रत्ययोंमेंसे कितनेही प्रत्यय आगे संज्ञा ओर विवेचनमें आवेंगे, उनको पुनरुक्तिकी पंक्तिमें नहीं गिन्ना चाहिये; क्योंकि जो एसा न करते तो यहां नीचे लिखेहुये तमाम प्रत्ययोंमें जो अयुक्त प्रत्यय, उन सबका खंडन लिखना पडता, उससे ग्रंथ बहुत बढजाता. ओर जो यहां तमाम प्रत्यय न लिखते तो शोधकको सुगमतासे लाभ न मिलता.

(१) ईश्वरभावना विषे पक्ष प्रत्यय.—

अद्यापि ईश्वरप्रसंगमें मानवमंडलकी भावनामें जितने प्रत्यय हें उनका समावेश निम्न लिखितमें होजाता हे.–

(१) स्वयंभू, नित्य, निराकार, अमूर्त्त, निरवयव, अगोचर, रंगरुपरहित, वजनरहित, अपनेमें असंयोगी, निमित्तकारण, असीम, विभु, अक्रिय, निरीही, सगुण (अमुक गुणवाला), निर्गुण (अमुक गुणरहित), चेतन, सर्वाधार, अधिष्ठान, अभोक्ता, एक, एकरस, सत्, शुद्ध, पवित्र, अवद्ध, निर्लेप, सर्वज्ञ (देशकाल प्रत्यय रहित सूर्यप्रकाश समान जहांके तहां उसके सब प्रकाश्य—विषय-ज्ञेय-इसलिये सर्वज्ञ), सर्वशक्तिमान (उसके कार्यमें उसको अन्यकी अपेक्षा नहीं किंवा जगतके सब पदार्थोंकी शक्ति उसकी सत्तासे उपयोगमें आती हें इसलिये सर्वशक्तिमान) अर्थात जेसे प्रकाशविना तमस्थ मंडल अनुपयोगी ओर प्रकाश होनेपर उसका उपयोग होता हे वेसे, किंवा जेसे मछलीका जलविना अनुपयोग एसे, किंवा प्राणसे शरीर शक्तिका जेसे उपयोग होता हे वेसे, ब्रह्मांडका उसद्वारा उपयोग होनेसे उसको सर्वशक्तिमान कहते हें, स्वाभाविक, स्वतःसिद्ध, सफल (उपयोगी), कूटस्थ (निर्विकार--अपरिणामी), निरपेक्ष, सापेक्ष, अद्वितीयचेतन ब्रह्म.

(२) परिच्छिन्न अर्थात अणुपरिमाण नहीं किंतु मध्यम--स्थितिस्थापक-संकोच विकास रहित समचेतन. मलीन जगतसे जुदा रहनेवाला. देवताओंके द्वारा सृष्टि उत्पति, स्थिति, लयका निमित्तकारण (व्यवस्थापक).

(३) मध्यम समूह (मायाविशिष्ट चेतन) उभय प्रत्यय अर्थात निमित्तो-

पादान (उभयरुप), सावयव--निरवयव, लचकी--अलचकी, परिणामी--अपरिणामी, आधेयाधार, स्वसंयोगी--असंयोगी, जन्य--अजन्य, सादिसांत--अनादिअनंत, साकार-निराकर, चल--अचल, सगुण--निर्गुण, सर्वज्ञ--सर्वशक्तिमान, साभास--माया, तमाम प्रकृतिके सर्व गुणशक्तिका समूह (कुदरत).

(४) अमध्यम अथवा मध्यम परंतु उपादान प्रकृतिमेंसे जीवोंके फल भोगने वास्ते सनियम सृष्टिकर्ता, धर्ता ओर हर्ता--व्यवस्थापक.

(५) अमध्यम परंतु उपादानविना अभावसे यथेच्छा भोक्ता--भोग्य (जीव प्रकृति तत्व)का कर्ता--धरता-हरता-व्यवस्थापक-अन्यथाकर्ता (यथेच्छा करनेवाला)

(६) अद्वितीय अर्थात सजातीय ओर विजातीय स्वगत भेद रहित एकलाही १; किंवा सजातीय स्वगत भेद रहित, जिसके समान वा जिससे अधिक अन्य नहीं २; किंवा सजातीय विजातीय भेद रहित ओर स्वगतभेदवाला, यथा सत् चिद आनंद त्र्यांशरुप ३; अथवा उस जेसा सजातीय सत्, विजातीय सत् नहीं ओर स्वगत भेद रहित (निरवयव--अखंड) ४; त्रिकालज्ञ, सर्व प्रकारकी शक्तिवाला, ज्ञान इच्छा ओर प्रयत्नवाला.

(७) अमिश्रित, अपरिच्छिन्न, परंतु सर्वशक्तिमान होनेसे नीचेके विशेषणवाला.

साकारनिराकार, सगुणनिर्गुण, अविकृतपरिणामी, अपरिणामी, सक्रियअक्रिय, अमूर्त्तमूर्त्त, विभुसक्रिय, अकायसकाय, अद्वैत ओर बहुरुप, गोचरअगोचर, अभिन्ननिमित्तोपादान, असीम ओर परिणामी, अमूर्त्त ओर अवतारी, इच्छावान इच्छारहित, अपरिच्छिन्न ओर अवतारी, परिच्छिन्न ओर अवतारी, मलिनजगतसाथ संबंधी ओर असंबंधी, स्वतंत्र (परतंत्र), अन्यथा कर्ता, अभावसे भावरुप उत्पादक, विरुद्ध धर्माश्रय, अपहत पापमात्मा, सच्चिदानंद स्वरुप.

(८) सबउसमें, सबमेंवोह, सबउससे, सबवोह.

(९) जीवजीवकी सृष्टिमें जुदाजुदा याने नाना ईश्वर (यथा हरेकके स्वप्नका), नेकीका ईश्वर, उससे इतरबदीका ईश्वर, अध्यास (भ्रम) रुप.

(१०) हे इसवास्ते सत्, अगोचर इसवास्ते असत्, एसे सदसदरुप, सदसद्से विलक्षण अन्यथारुप.

(११) ईश्वर नहीं (असद्) किंतु आकर्षण ओर प्रकृतिका समूह हे, सो ईश्वर. किंवा एक शक्ति जडचेतनात्मक नानारुप भासता हे सो.

कल्पनात्मक.

(१२) **विभु** १, सक्रिय २, अक्रिय ३, इच्छावाला ४, निरीह, ५, सगुण ६, निर्गुण ७, स्वभावतः प्रेरक ८, कर्मानुसार नियामक ९, स्वेच्छासे नियामक (यथेच्छा व्यवस्थापक) १०, उपादानसे जनक (निमित्त) ११, अनुपादान जनक १२, (अभावसे भावकर्ता) १३, अभिन्न निमित्तोपादान परिणामी १४, जीवाभिन्न १५, जीवसे भिन्न १६,अनादि अनंत १७ ॥

(१३) **अणु**परिमाण (ओर सक्रियादि पूर्ववत् १६).

(१४) **मध्यम** परिमाण अमिश्रित (ओर सक्रियादि पूर्ववत् १६).

(१५) अनादिसे मिश्रित (ओर सक्रियादि १६ पूर्ववत्).

(१६) मध्यम मिश्रित सादिसांत.

नं. १७ से २० तक विलक्षण—

(१७) सर्वज्ञ–त्रिकालज्ञ, असर्वज्ञसे विलक्षण (सर्वज्ञ नहीं ओर सर्व उसके विषय).

(१८) कर्ता, अकर्ता, अन्यथाकर्तासे विलक्षण-याने-कर्ता नहीं परंतु उसके विना कुछभी न हो याने अन्यथा (बुद्धिकी कल्पनासे अन्यथा) निमित्त.

(१९) भोक्ता, अभोक्तासे विलक्षण (अभोक्ता ओर उसके सब विषय).

(२०) सर्व शक्तिमान, अमुक शक्तिवाला, इनसे विलक्षण (सब शक्तियोंका जीवन, उसद्वारा सब शक्तियोंका उपयोग हो, एसा). —०—

(२१) उपरोक्त नं. १७, १८, १९ उपरोक्त विभु, अणु ओर मध्यम (१२, १३, १४) के साथ लगाना.

(२२) उपरोक्त ईश्वर एक वा अनेक.

(२३) उपरोक्त (नं. १ से २२ तकवाले) नित्य, असत्, वा सदसद् उभयरुप, वा उभयसे विलक्षण.

(२४) उपरोक्त ईश्वर अनेकांत,–अर्थात कोई ईश्वर अमुक (मध्यम वा विभु. इ.) प्रकारका ओर कोई अमुक अमुक प्रकारका.

(२५) ईश्वर अनिश्चित अथवा नहीं मालूम किस प्रकारका.

(२६) ईश्वरसे इतर अनादिसांत वा सादिअनंत वा सादिसांत.

(२७) ईश्वर है ही नहीं.

(२) उपादान (प्रकृति) विषे भावना.—

(१) सावयव निरवयव, अणुविभूसे विलक्षण जडात्मक एक अनिर्वचनीय पदार्थ माया, जो कि अनादिअनंत हे--अव्यक्त व्यक्तरुप हे; ओर बाधरुप हे.

(२) एक अगम्यशक्ति--जिसकी गतिओंके भेदसे देश, काल, परमाणु, आकर्षण, विजली, गरमी, प्रकाश, वगेरे तथा जडचेतन--तमाम उसके रुपांतर हें. वा गतिओंके सबबसे, एसे भासते हें.

(३) सत्व-रज-तम इन त्रिगुणात्मक परिणामी जडपदार्थ हे, देशकाल परमाणु विषय-सवज्ञेय उसका रुपांतर (परिणाम) हे.

(४) पृथ्वी, जल, तेज, ओर वायु इन चारप्रकारके जडपरमाणुओंका समूह, जो देशकालमें विस्तारको पाता हे.

(५) नं. ४ वाले चार तत्वका समूह जो जडचेतनका उपादान हे.

(६) ईश्वरकी अचिंत्यशक्ति.

(७) ७२ वा ८० तत्वोंका समूह.

(८) अनादिसांत, अनुपादानउत्पन्न, सादिअनंत, वा सादिसांत, किंवा मूल अनादिअनंत ओर कार्यरुपसे सादिसांत.

(९) क्षणिकपरिणामी एक वस्तु.

(१०) सद्, असद्, सदसद्, उभयविलक्षण, अध्यास (भ्रम) रुप, स्वअधिष्ठानसे विलक्षण.

(३) सृष्टिभावना विषे पक्ष.—

(१) ईश्वरने जीव, प्रकृति (तत्व-परमाणु) अनुपादान (अभावसे) उत्पन्न किये; क्योंकि सर्वशक्तिमान हे. तत्वोंसे ग्रहादि बनाये. अंतमें सृष्टि अभावरुप होजायगी. अंतमें क्या होगा सो अज्ञात. सब ईश्वरकी शक्तिके आधेय हें.

(२) ईश्वर, जीव, ओर प्रकृति यह तीनों अनादिअनंत हें, ईश्वर जीवोंके कर्मअनुसार उनके भोगार्थ उपादानमेंसे सृष्टि बनाता हे, भोग समाप्त हुये पीछे प्रलयकरता हे, पुनः शेष कर्मानुसार उत्पन्नकर्ता हे, एसे सृष्टिप्रवाहसे अनादिअनंत हे, स्वरुपसे सादिसांत हे, ईश्वराधिष्ठान हे.

(३) अनादि परमाणु, स्वभावसे संयोग वियोग पाते रहते हें. जेसे दरियामें तरंग--भंवर वेसे स्वभावतः सृष्टि हे.

(४) तमाम ग्रह, उपग्रह अनादिसे एसेही हें, रहेंगे. इनका आधार वा

कर्ता कोइ नहीं हे. इनमें प्राणियोंका व्यवहार होता हे. इधरके उधर उधरके इधरभी आतेजाते हें.

(५) किसी स्वयंभु आधारके आश्रय, सृष्टिका उपचयापचय होता रहता हे, सृष्टि न कभी उत्पन्न हुई ओर न नाश होगी; किंतु मारवाडके टींबोंके समान ग्रह बनते बिगडते चले आ रहे हें. उन गोलोंके साथ सब प्रकारके बीजोंकाभी प्रवाह हे; उन अनुसार कार्य (वनस्पति, प्राणि, मनुष्य वगेरे) बनते बिगडते हें; इसप्रकार सृष्टि स्वरुपसे सादिसांत ओर प्रवाहसे अनादिअनंत हे.

(६) नं. ५ में से आधार शब्द निकाल डालो. अनाधार एसा होता हे. याने परस्परके आश्रयसे स्वभावतः होता हे.

(७) नं. ५ में स्वयंभुकी जघे गुरुत्वाकर्षण ज्यादे करदो. शेष नं. ५ वत्.

(८) सृष्टिके पूर्व सब परमाणु कहीं केंद्रमें एकत्र हुये अथडाते थे. घात प्रत्याघात, स्नेहास्नेहरुप विजली, सजातीय परमाणुओंका स्नेह हे; अतः उनके मिलने जानेपर विजातिओंका बीचमें अकस्मात मिलजाना, गरमी विदेशमें जावे ओर पीछी न आवे उस गरमीके वेगकेसाथ सब तरफ उक्त जुत्थोंका चले जाना, उनका वायु–ठंडे प्रदेशमें जाके ठंडे होना, उनमें गुरुत्वाकर्षण शक्ति होजाना, इत्यादि कारणोंको लेके गोले बनते गये ओर यथासामग्री दूर पडते गये. ओर ठंडे पडने-पर आकर्षणके नियममें आने पीछे भौतिक ओर रसायणीयसंयोग होनेसे नाना प्र-कारके पदार्थ-खणिज, वनस्पति, प्राणि, मानव वगेरे स्वभावतः बनने लगे, एसे वि-कास हुवा. अब जब सब ग्रह (गोले) बनचुकेंगे तब फेर उलटा क्रम चलेगा. उत्तर-भागमें आकर्षणका खिंचाव न होनेसे दूसरे ग्रहमें खिंचाने लगेंगे, एवं मिलतेमि-लते कहीं केंद्रमें अथडावेंगे; ओर फेर पूर्ववत् सृष्टिका आरंभ होगा. इसप्रकारसे सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति ओर लयका अनादिअनंत प्रवाह हे.

(९) जेसे स्वप्नसृष्टि क्षणिक हे वेसे दृश्यसृष्टि किसी क्षणिकपरिणामीका रुप हे ओर वोह क्षणिक हे याने क्षणिकरुप प्रवाह हे.

(१०) इस (नं. ५ वाली) गेंदरुप ब्रह्मांडका कोई आधार नहीं हे किंतु ग्रहोंके समूहका तमाम गोला साथका साथ-एसेका एसा स्टीमरकी तरह अनंत आका-शमेंसे आ रहा हे ओर चला जा रहा हे. ग्रह वगेरे न किसीसे बने ओर न कोई उनका आधार हे.

(११) अभावसे स्वाभावतः उत्पत्ति, नाश होता रहता हे.

(१२) सृष्टि न हुई ओर न हे. किंतु अर्थशून्य आकाशकी नीलतावत स्वभावतः भासती हे.

(१३) ब्रह्मनामा वस्तुका वा शक्तिका यह सृष्टि परिणाम हे. (१) यह परिणाम हमेशे बदलते रहेते हें, एसा प्रवाह हे; सर्वथा प्रलय नहीं होती. (२) ब्रह्म स्वेच्छासे लीलारुप नानारुप हुवा हे ओर इच्छासे प्रलय करके पूर्ववत स्वस्वरुप होगा. (३) ब्रह्ममें स्वभावतः जल तरंगरुपसे सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय होनेका स्वभाव हे.

(१४) ब्रह्म, माया (जडचेतन) के संबंधसे जन्य जो शक्ति याने ईश्वर, वोह अविद्या ब्रह्मजन्य जो जीव, उसके कर्मोंके अनुसार माया (प्रकृति) मेंसे सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति, ओर लय करता रहता हे.

जीवभावना विषे पक्षप्रत्यय.—

(१) **अणुपरिमाण**—अनादि अनंत, चेतन, नाना, संख्यासे अनंत, संख्यासे सांत, सक्रिय, कर्ताभोक्ता, पुनर्जन्म पानेवाला, अपनेमें असंयोगी, स्वरुपसे अणु परंतु शरीरमें उसकी ज्ञान सत्ताऽव्यापक, अणु ओर शरीरमें गतिवाला, निरवयव, अमूर्त्त, निराकार, सगुण अर्थात रागादि गुणवाला, रंग ओर वजन रहित, मूर्त्त, साकार.

(२) **विभुपरिमाण**—विभुचेतन, विभु रागादि गुणवाला, विभु ओर कर्ताभोक्ता, विभु ओर अकर्ताभोक्ता, न कर्ता न भोक्ता, विभुअनेक, विभुएक, संख्यासेअनंत.

(३) **मध्यमपरिमाण**—तदंतरगत.—

(क) मध्यम निरवयव, अपनेमें असंयोगी, अनादिअनंत, अपरिणामी चेतन, सगुण, पुनर्जन्म पानेवाला.

(ख) मध्यम अनादिसांत, सादिअनंत, अपनेमें संयोगी, सावयव, जडचेतनात्मक, सगुण होनेसे मध्यम, परिणामी, आभासरुप, प्रतिबिंबरुप, पुनर्जन्म न पानेवाला, अविद्या विशिष्टचेतन, अंतःकरण विशिष्टचेतन, रागादि अवस्थावाला, शरीर परिमाण, इंद्रिय समूह, प्राणरुप, गरमी-विजली वा गिलो समान, शहेद समान, प्रकाश समान, रवड समान, दीपकसे दीपक हो वेसा, मूर्त, संख्यासे सांत, अभावजन्य, जडजन्य, क्षणिक परिणामी, पुनर्जन्म, न पुनर्जन्म, न पूर्व उत्तरजन्म.

(ग) ईश्वरका अंश (टुकडा, जुदा हुवा भाग)–स्फूर्ण–आज्ञा वा उसकी शक्ति, किंवा उसका प्रतिबिंब वा आभास.

(घ) सदसद्रुप, सदसद्से विलक्षण, अध्यास (भ्रम) रुप.

(ड.) जीव कोई वस्तुही नहीं अर्थात असत्.

जीव कल्पित प्रत्यय.—

(४)–एक, नाना, सगुण, निर्गुण, सक्रिय, अक्रिय, सद् (नित्य), असत्, सदसद्, उभय, विलक्षण, जड, चेतन, उभयरुप, क्षणिक मिश्रित, अमिश्रित, स्वरुपतः अनादिअनंत, प्रवाहसे अनादिअनंत, अनादिसांत, सादिअनंत, स्वरुपतः सादिसांत–(अभावजन्य, भावजन्य), प्रवाहसे सादिसांत, पुनर्जन्मवाला, अपुनर्जन्मवाला, कर्ता भोक्ता, अकर्ता भोक्ता, अकर्ता अभोक्ता, अभोक्ता कर्ता, औपाधिक कर्ता भोक्ता, नैमित्तक बंध मुक्त–(प्रावाहिक बंध मुक्त), नित्य मुक्त, नित्य बंध, बंधरहित हुये नित्य मुक्त, न बंध न मुक्त, गुण, शक्ति, श्वास, ज्ञान, स्फुर्ण, आभास, प्रतिबिंब, असर (प्रभाव) एवं ४२ प्रत्यय.

(५) पूर्वोक्त नं. ४ वाला विभु, अणु वा मध्यम–परिणामी, वा मध्यम अमिश्रित अलचकी, वा लचकी, मिश्रित लचकी वा अलचकी.

(६) उपरोक्त जीव अणु, विभु, अजड, अचिद्.

(७) उपरोक्तमें कोई जीव अमुक अमुक प्रकारका, कोई अमुक अमुक प्रकारका (अनेकांत).

(८) जीव, नहीं मालूम किस प्रकारका (संशय–अनिश्चित).

(९) जीव, भ्रमज्ञानका विषय (भ्रांति).

(१०) जीव स्वरुपतः कोई वस्तु नहीं है.

(५) साधनभावना विषे प्रत्यय.—

(१) केवल कर्म (सत्यादि, यज्ञ, जप, वगेरे कर्म) से मुक्ति. (२) केवल उपासना (भक्ति ओर ध्यान) से. (३) केवल योगसे. (४) केवल इष्टेच्छा वा उसकी कृपासे. (५) विकासक्रमसे. (६) ज्ञानसे (पदार्थज्ञानसे, ६ स्वरुपज्ञानसे, ७ ब्रह्मकेज्ञानसे ८ वा जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे ९). (१०) कर्म, उपासना दोनोंसे. (११) कर्म, ज्ञान दोनोंसे. (१२) उपासना ज्ञान दोनोंसे (१३) कर्म, उपासना ओर ज्ञान इन तीनोंसे. (१४) वासना त्यागसे. (१५) शरीर मरणसे. (१६) किसी (गुरु, ग्रंथ, ईश्वर) के विश्वाससे. (१७) मुक्ति नहीं,

इसलिये उसकी उपेक्षासे–आशा बंधाभाव अर्थात उपेक्षासे. (१८) स्वमान्य ग्रंथानुसार कर्तव्यसे. (१९) ईश्वरकी कृपासे.

(६) मुक्तिभावना विषे प्रत्यय.—

(१) दुःखकी अत्यंत निवृत्ति (बंध निवृत्ति–पुनर्जन्मका अभाव–३ तापका अभाव–पंच क्लेशका अभाव). (२) परमानंदकी प्राप्ति (नित्य आनंदमें रहना वा सत् संकल्प हुये यथेच्छा वैभव भोगना). (३) उभय (बंधका अभाव ओर परमानंदका सद्भाव) की प्राप्ति. (४) गति शून्य होना. (५) वासना रहित स्थिर रहना. (६) साकारत्व–परिच्छिन्नत्वसे, निराकारत्व–अपरिच्छिन्नत्वकी प्राप्ति. (७) चित्त ओर आत्मा जुदा हुये स्वस्वरुपमें स्थिति (८, ११) इष्ट--ईश्वरके लोककी वा उसकी समीपताकी वा उसमें युक्त रहेनेकी वा वेसा स्वरुप बनजानेकी प्राप्ति. (१२) ब्रह्मानंदका भोग होना. (१३) उत्तरोत्तर उन्नति याने अनंत उन्नति. (१४) ईश्वरका ज्ञान होजाना. (१५) लोक विशेषकी प्राप्ति. (१६) विकास क्रमाधीन सर्वज्ञ होके ब्रह्ममें लय होजाना. (१७) ब्रह्मस्वरुप होना. (१८) सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान होना याने ईश्वर बनजाना. (१९) अपना अभाव होजाना. (२०) मुक्ति भ्रम--अध्यासरुप. (२१) मुक्ति अमुक समय तक अवस्था विशेष अर्थात अमुक समयतक आनंद वा सत्संकल्प हुये यथेच्छा वैभव भोगना ओर पीछे संसारमें आना, एवं प्रवाह. (२२) शरीर जीवे वहांतक सुख प्राप्ति–प्रेयस् संपादन रहना. (२३) मुक्ति हे ही नहीं.

उपरोक्त **ईश्वरादि** विषय संबंधि भावनागत अनेक अयुक्त भावनाका खंडन अ. १ में आचुका हे ओर इस तीसरे अध्यायमें वांचोगे. तथा कोई रुपमें अ. ४ मेंभी वांचोगे.

(७) सृष्टिके पूर्व (अनादिभाव)में पक्ष.—

जड पदार्थोंकी मान्यता.

अभाव, शून्य, प्रकृति (परमाणु पुंज), माया, ईश्वरशक्ति, ईश्वरेच्छा, परमाणु, देश, काल, आकाश, सामान्यजाति, विशेष, गति, संबंध, अन्योऽन्यका भेद, अत्यंताभाव, तेज (गरमी, प्रकाश, विजली), आभास, पृथ्वी, जल, तेज, वायु यह ४ तत्व, पंचतनमात्रा (शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध,), संयोग वियोग, गुरुत्व, संस्कारादि २४ गुण, आकर्षण,

सत्व (विज्ञान, स्वप्रकाशबुद्धि), सत्वरजतमात्मक समूह (प्रकृति) गति स्वभाववाले, ओरा, प्रभा, ओक्षजनादि ७२ तत्व (जिनका समावेश पृथ्वी वगेरे ४ तत्वमें हे)

उपरोक्तमें सर्व वा अमुक अमुक.

यह सब (१) अणु, परिमाण, (२) वा विभुपरिमाण, (३) वा मध्यमपरिमाण.

सावयव, निरवयव

चेतनतत्वकी मान्यता.

ईश्वर (अणु, विभु, मध्यम,
निरवयव,
सावयव,
परिणामी,
न परिणामी,

जीव ,, ,, ,,

क्षणिकविज्ञान ,, ,, ,,

ब्रह्म ,, ,, ,,

चेतन चेतनका संबंध, चेतन चेतनका भेद, चेतन चेतनका अभेद.

यह सब वा उनमेंसे अमुक अमुक. सो (१) सद्,(२) असद्,(३) सद सद्रुप, (४) वा उभयसे विलक्षण, (५) वा भ्रांतिरुप.

चेतन शून्य (चेतन नहीं).

सत् वा असत् वा उभयरुप वा उभयसे विलक्षण वा भ्रांतिरुप.

जड कोई वस्तु नहीं, सब चेतन.

जडचेतनका भेद ओर जडचेतनका संबंध. तदंतरगत ईश प्रकृतिका, जीव जीवका, ईश जीवका, जीव प्रकृतिका, परस्परमें भेद तथा संबंध ॥

(८) सादि उत्पन्न (पक्ष).

पूर्वोक्त जड (अचिद्).	पूर्वोक्त चिद् (अजड).
१ उक्त तमाम जड.	१ जीवचेतन.
२ उनमेंसे अमुक अमुक.	२ जडजन्य, जीवँचेतन.
३ आकाश, देश, काल.	
४ जडजीव, जडजन्यज्ञानगुण.	

(९) सृष्टिके उत्तर-शेष रहेंगे (पक्ष).

जड (अचिद्).	चेतन (अजड).
१ उक्त तमाम जड.	१ जीव मात्र.
२ उक्तमेंसे अमुक अमुक.	२ ईश्वर.
३ देश, काल, परमाणु.	३ कुछभी नहीं (शून्य).
४ सर्वका अभाव-शून्य.	

(१०) सृष्टिके पूर्वोत्तर विकल्परहित.

(११) अनादि अनंत प्रवाह.

१ पूर्वोक्त तमाम जड.	१ पूर्वोक्त ईश्वर वा
२ वा उनमेंसे अमुक अमुक.	२ ,, जीव वा
	३ चेतन शून्य.

सूचना.—

ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध-पुनर्जन्म, मोक्ष, मोक्षके साधन, सृष्टिके पूर्व सृष्टिके उत्तर, इन ८ विषय संबंधी उपर जो विकल्प लिखे हैं, उनका निर्णय नियमाध्यायसे होजाता हे. ओर तीसरे अध्यायमें इनका जो निर्णय किया हे, उसमें यद्यपि उक्त सब प्रत्यय-विकल्प नहीं आये हें तथापि एसा भाग लिया हे कि उनसे शेष विकल्प वा पक्षोंका निर्णय होजाता हे.

ईश्वर, जीव ओर प्रकृति संबंधि जो विकल्प लिखें हें उनमेंसे कितनेक तो एसे हें कि जो स्वरुपसंभावनामें हें, कितनेक एसे हें कि जो विकल्पमात्र (याने असंभव) हें। परंतु जब अणु, विभु ओर मध्यम-इन तीन परिमाणमेंसे कोनसे परिमाणवाला हे ओर वोह तथा उसके गुण, शक्ति जड हें वा चेतन हें, एसा कल्पके स्वरुपसंभावनागत अणु प्रत्यय, विभु प्रत्यय, अणु विभु प्रत्यय ओर मध्यम प्रत्यय लगाके ओर असंभव प्रत्यय निकालके तोलोगे तो सत्य निर्णय होजायगा.

असद् ग्रहण न होगा, जेसाके अ. ३ में दिखाया हे. ओर अ. २ गत स्वरुपसंभावनाके विवेचनमें (अभाव ओर सामान्य निर्णयका) विस्तारके साथ उदाहरण दिया हे. ओर तमाम पक्षकारोंके मत्का सार मूल ग्रंथ गत् अ. ३ के आरंभमें टांका हे.

ईश्वरादि विषयमें जो असिद्ध भाग आगे बतावेंगे वहां एसा नहीं समझ लेनाचाहिये कि ईश्वरादि ८ विषयका निषेध किया हे; क्योंकि जीव, बंध, पुनर्जन्मका अमुकअंश, मोक्ष ओर मोक्षके साधन यह ५ विषय तो अपरोक्ष ओर परीक्षाके योग्य विषय हैं; ओर ईश्वर अनुमानका विषय हे; प्रकृति–मायाका कार्य प्रत्यक्ष हे उससे उसके मूलकी कुछ समझ पडजाती हे ओर सृष्टि उत्पति आदिका विषय इतिहासद्वारा अनुमानका विषय हे, उसका सम्यक इतिहास मनुष्य नहीं जानसकता. निदान ईश्वरादिका निषेध नहीं हे, यह सिद्धाधिकारमें जानोगे; तथापि इस असिद्धाधिकारमें ईश्वरादिका जो निषेध हे वहां एसा जाननाचाहिये कि जितना अंश भावनामात्र होनेसे अयुक्त माना गया हे उसी भागका निषेध हे; क्योंकि ब्रह्म, माया, जीव, मोक्ष यह लक्ष्यालक्ष्य रुप हैं. इनके स्वरुपसंबंधमें जेसा कहाजाता हे वा मानलिया जाता हे वा बुद्धिमें कल्पते हैं, वेसा नहीं हे किंतु मनवाणीसे पर अनिर्वचनीय ओर अनुभवगम्य विषय हैं. अ. ३ । ५५७ ओर अ. ४ में वांचोगे. अब उद्देशित विषयका विचार करते हैं.—

विषयप्रकरण विचार

तदंतरगत

आधार विषय.—

दृश्यका मूल आधार नहींही आकर्षणादि होनेसे (अ.) ॥ १९० ॥ वे आधेय ओर मध्यम होनेसे॥१९१॥ ओर अनियामक नियमसे॥१९२॥

अथवा नित्य गमनही देश अनंत होनेसे (अ.) ॥ १९३ ॥ व्यवस्था दर्शनसे ॥ १९४ ॥

अर्थ.—इस ब्रह्मांडका कोई एक स्वयंभु मूलाधार नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि गुरुत्वाकर्षण, गुण, शक्ति, कर्म (गति), विद्युत, शेषा (ईथर), धर्म ओर स्वभाव इनमेंसे किसी एक वा अनेकके आधार ब्रह्मांड रहा हुवा हे. यह मंतव्य ईश्वरवादिओंसे इतर अनीश्वरवादिओंको संमत हे. यह मंतव्य असिद्ध हे. (आधाराधिकरण ओर २५६ देखिये) ॥ १९० ॥ क्योंकि आकर्षणादि स्वयं किसीके आधेय होते हैं ओर मध्यम परिमाणवाले सिद्ध होते हैं. जो स्वयं पराधेय

हो ओर न्यूनाधिक होनेवाला हो वोह सर्वाधार नहीं होसकता ॥ १९१ ॥ ओर जो आश्रित हो वोह अपने आधार (आश्रय)का नियामक नहीं होसकता, यह नियम (२६५) हे; इसलियेभी आकर्षणादि नियामक ओर आधार नहीं होसकते. यही अव्यवस्था अन्योऽन्याश्रय माननेमें रहती हे; अ. १ सू. २६८का विवेचन पृष्ट १०३ । १०४ देखो. अतः आकर्षणादि सर्वाधार ओर नियामक नहीं हें ॥१९२॥

विवेचन—सांख्य, पुरुषको असंग ओर प्रकृतिको स्वतंत्र मानता हे, पुरुषकी आधेय नहीं मानता, याने ब्रह्मांड गुणमय हे ओर गुणाधार हे. जैन पृथ्वादि ग्रहोंका उपचयापचय–रचना जीवोंके कर्माधीन मानता हे. जैन, मैमांसिक, जडवादि ओर एक यूनानी फिलोसोफर एसा मानते हें कि पृथ्वी, सूर्यादि, ग्रह, उपग्रह अनादिसे एसेहीं हें, स्वभावतः अपने आप ठेरे हुये-टिके हुये वा सनियम गति करते हें. शक्तिवादि, द्रव्योंकी शक्तिके आधीन मानते हें अर्थात शक्तिको नियामक ओर आधार कहते हें (अ. १ में कहा हे). आकर्षणवादिओंमें २ मत हें; एक कहता हे कि अपनी पृथ्वी ओर शनी वगेरे ग्रह, सूर्यकी गुरुत्वाकर्षणके आधार हें, यह सूर्यमंडल उससे बडे सूर्यके आधार हे, एसे असंख्य हें ओर अंतमें किसी महान सूर्यके आधार हे; वोह मूल किसके आधार होगा, यह हम नहीं कहसकते. दूसरा पक्ष यह हे कि सूर्य, पृथ्वी आदि अन्योऽन्यकी आकर्षणसे अन्योऽन्यके आश्रय हें. वर्तमानके सायंसका एक पक्ष विद्युत, ईथर ओर आकर्षणको आधार ओर नियामक मानता हे. वर्तमानके नवीन जडवादि कर्म–धर्म (अदृष्ट) से इतर अन्य सबको मिलाके आधार ओर नियामक मानते हें[१]

[२]गुरुत्वाकर्षणशक्ति, पराश्रय होती हे याने जिसका गुरुत्व हे उसके आश्रित

---

[१]विलक्षणवादि वा परिणामवादि, मूलाधार एक मानके तदाश्रित हिरण्यगर्भकी लचक ओर ग्रहोंके गुरुत्वसे गति पेदा होके उन उभयके नियमसे (लचक, गुरुत्वके नियमसे) रहे हुये गतिमें हें, एसा मानता हे. ईश्वरवादि, ईश्वरकी शक्तिके आधार हे एसा कहते हें. [२]दूसरे अध्यायकी तीसरी आवृत्तिमें सूत्र इसप्रकार थे.—

गुणोनाधारः ॥ २३३ ॥ आधेयत्वात् । २३४ । न आकर्षणे पराश्रयत्वं नियामकत्वे । २३५ । आधेय मध्यमाभ्याम् ॥ २३६ ॥ विद्युतेऽपि ॥ २३७ ॥ सूक्ष्मायामपि । २३८ ॥ कर्मण्यप्यनाधारत्वंच । २३९ । पराधीनत्वात् । २४० । धर्मशक्तयोरपि । २४१ । तद्वत् स्वभावे । २४२ । इन १० सूत्रोंका समावेश उपरोक्त १९० । १९१ । १९२ में कियागया हे.

है; क्योंकि शक्ति अनाधार नहीं रहसकती (३३२ । ३३८); तो फेर वोह अपने आश्रयका आधार नहीं होसकती. जो उसे दूसरेका आधार मानें तो उसका जो आधार हे वोह किसका आधेय होगा, जो उसे दूसरेका आधेय मानें तो दूसरा किसका आधेय होगा, इसप्रकार अनवस्था चलेगी. अंतमें कोई मूल आधार मान्नाही होगा. जो एकदूसरेका आकर्षण एक दूसरेका आधार मानें तो अन्योऽन्याश्रय दोष (सू. २५६) आवेगा (पृष्ट १७३ देखो.); अतः आकर्षण स्वतंत्र मूलाधार नहीं ओर जब वोह पराधीन हे तो अपने आधारका नियामकभी नहीं होसकती, यह स्पष्टही हे. ओर जड हे इसलियेभी स्वतंत्र नियामक नहीं होसकती (गति अधिकरण याद कीजे).

गुण किसीका स्वतंत्र आधार नहीं होता; क्योंकि जड होनेसे वोह आपही दूसरेका आधेय होता हे ओर दूसरेका आधार होने वास्ते बाहिर नहीं जासकता. (अगुण अधिकरण देखो); अतः आकर्षण वत् वोहभी जगतका आधार नहीं होसकता.

इसीप्रकार परिच्छिन्न होनेसे ओर जड होनेसे विजलीमेंभी पराश्रयत्व हे, स्वतंत्र नियामकत्व नहीं हे; अतः वोह मूलाधार नहीं होसकती.

इसीप्रकार पराश्रित मध्यमरुप सूक्ष्मा (ईथर–शेषा–हिरण्यगर्भ) वास्ते जान लीजे याने उसमें पराश्रयत्व हे, स्वतंत्र नियामकत्व नहीं हे.

(शं.) ग्रह अति शीघ्र गतिमें हें, इसलिये चक्रमेंसे इधर उधर नहीं जाते (उ.) पदार्थके कर्म याने गतिमेंभी पराश्रयत्व हे ओर स्वतंत्र नियामकत्व नहीं हे; इस उपरांत उसमें अनाधारत्वभी हे अर्थात आधेय होकेभी दूसरेका आधार नहीं होसकती; क्योंकि उसकी उत्पत्ति ओर उसका अभाव परके आधीन होता हे. यहां सामान्य गतिसे इतर कर्मवादियोंके जीवके अदृष्ट (पूर्व--कर्म) भी आधार हें एसा अर्थ लें तो लेसकते हें, परंतु गतिवत् वोह आधार वा नियामक नहीं ठेरसकते.

किसी पदार्थकी शक्तिमेंभी स्वतंत्र पराधारपना नहीं होसकता. गुण ओर आकर्षणवत् इसका विवेचन करलेना चाहिये.

किसी पदार्थका धर्म (सामान्यत्व, विशेषत्व, वा जीवके अदृष्ट पाप पुन्य) मेंभी सर्वाधारत्व नहीं होसकता; क्योंकि गति समान तीनों बातें उसमें सिद्ध होती हें

परिच्छिन्न मध्यमोंके स्वभावमेंभी कर्म समान तीनों होनेसे स्वभावमात्रभी मूलाधार नहीं होसकता.

उपरोक्त आकर्षणादि ८ का कुछ बयान अ. १ । १६८की टीकामें पृष्ट १०३ । १०४ मेंभी लिखा हे ओर विशेष विस्तार मूलग्रंथमें हे; उसमेंसे आकर्षण-संबंधि संक्षेपमें नोट लिखते हैं.—

आकर्षण अर्थात क्या ?—जड वा चेतन द्रव्य वा किसी द्रव्यका गुण वा शक्ति ? वा दबान वा लचक वा क्या ? इनमेंसे जो कुछ मानो तो सोभी अणु, मध्यम वा विभु ? सूर्यादि ग्रहके आधीन—आश्रय वा उनके विना स्वतंत्र रहनेवाली ? संकोच विकासवाली वा अलचकी ? गतिमान वा अक्रिय ? ब्रह्मांडके अंतिम-ग्रहके पर हे वा नहीं ? ब्रह्मांडके तमाम परमाणु एकत्र करें तो उसकी सीमासे बाहिर हे वा नहीं ? सूर्य पृथ्वी वगेरे पदार्थ न्यून हों तो वोह न्यून होती हे वा नहीं ? पदार्थके गुरुत्व, विस्तार, परमाणुओंकी संख्या (समूह), दो पदार्थके अंतरका फासला, इन ४पर उसकी न्यूनता अधिकता होती हे वा नहीं ? जब पृथ्वीका नाश होजाय वा चंबुकका नाश होजाय तब वोह उनसे पृथक जीती हे वा नहीं ? जो जीती हे तो विभक्त वा एकरस हे ? जो नाश हो गई तो उसका मेटर कहां गया ? जो मेटर नहीं तो जब थी तब वस्तुरुप नहीं थी वा क्या ? वोह किसीकी कंडीशन हे वा स्वरुप हे ? निरवयव हे वा सावयव हे ? दो ग्रहोंकी आकर्षण जहां टकराती हैं, वहां बलाबल रुपमें आती हैं वा नहीं ? एककी आकर्षण दूसरेकी आकर्षणसे विरुद्ध होजाती हे, इसका कारण क्या ? सबसे बडा सूर्य किसके आधार रहता होगा ? क्योंकि उसकी आकर्षण उसका आधार नहीं होसकती. जो अन्योऽन्याश्रय भाव मानें तो सू. १०८ अनुसार असिद्ध हे. जो आकर्षण शक्ति अपने आधार याने ग्रहसे बाहिर नहीं गई तो दूसरे ग्रहको केसे खेंचा ? ओर उसकी गणित केसे हुई ? ओर जो बाहिर गई तो शक्ति नहीं मानी जासकनेसे संकोच विकासवाली वस्तु ठेरी याने नाशवान क्यों न मानीजाय ?[1]

उपरोक्त तमाम बातोंको स्वरुप संभावनामें तोलें तो आकर्षण कोई वस्तुही सिद्ध नहीं होती. किंतु ईथरकी लचक, ग्रहोंका वजन तथा विस्तार, इन दोनों निमितोंसे ग्रहोंमें सनियम गति होती रहना ओर आडे अवले मार्गमें न जासकना होता हे अर्थात एसी स्थितिका नाम आकर्षण, एसा सिद्ध होता हे. इसमतकी थी-

[1]जनरल सायंस, इस नामके इंग्रेजी पुस्तकमें एक अमेरीकन फिलोसोफरने न्यूटन साहेबकी आकर्षणपर ओर इसथीयरीकी शोधपर भारी आक्षेप किया हे.

यरी बस. में हे. इस सनियम स्थितिकी गणित (पदार्थोंका गुरुत्व, विस्तार और फासलेसे) वही हे जोके वर्तमानमें प्रचलित हे.

सारांश आकर्षण स्वरुपतः कोई वस्तुही सिद्ध नहीं होती तो उसको ग्रहोंका आधार केसे मानलिया जाय? नहीं मानसकते. स्वरुपसंभावनामें आकर्षणका खंडन ३ फारममें किया हे, सो मूलग्रंथमें देखो. यहां खंडनकी शैली नमूनामात्र दिखाते हैं.—

आकर्षण यदि जड हो तो उसमें ज्ञान वा इच्छाशक्ति (वा गुण) न होनेसे नियामक नहीं होसकती और यथायोग्य नहीं खेंचसकती. वोह दूसरेके आश्रित रहती हे एसा देखते हैं, इसलिये परकी स्वयं आधार नहीं होसकती. जेसे उसका आधार गुरुत्व तथा विस्तारमें कम ज्यादा होता हे एसेही वोहभी कम ज्यादा होती हे, इसलिये विभाग पानेवाली अर्थात उत्पन्न नाश होनेवाली हे, इसलिये स्वयं आधाररुप नहीं. यदि द्रव्य समूहमें उसका समूह चंबुककी विजली समान स्वाभाविक काम करता हे अर्थात उसमें ज्ञान इच्छाकी अपेक्षा नहीं, एसा मानें सोभी ठीक नहीं जान पडता; क्योंकि (१) ग्रह, उपग्रह जितने हैं उतने हैं याने अनंत नहीं, इसलिये अंतिम ग्रहकी पिछली तरफ अन्य ग्रह न होनेसे उसका प्रभाव निष्फल रहेगा, इसलिये उस ग्रहके उरली वा इधर उधरकी तरफ वाले ग्रह खिंचजाने चाहिये, क्योंकि उत्तरकी तरफ कोई ग्रहकी आकर्षणरुप रस्सी नहीं हे, इस रीतिसे ग्रह अथडाके नाश होजाने चाहिये, परंतु एसा नहीं होता; इसलिये उससे इतर कोई अन्य शक्ति स्वयं मूलाधार होनी चाहिये. (२) गुरुत्वाकर्षण शक्ति (वा गुण) अपने आश्रय–ग्रहसे बाहिर जाके दूसरे ग्रहको स्पर्श करके उसे खेंचती हे वा बाहिर गये विना तथा दूसरेको स्पर्श किये विना आकर्षती हे? आद्यपक्षमें आकर्षण, यह शक्ति वा गुणरुप नहीं मान सकेंगे; क्योंकि शक्ति वा गुण यह अपने शक्तिमान वा गुणी देशसे इतर देशमें नहीं जाते (अ. २।३३२देखो) तथा वे संकोचविकासवाले नहीं होते इसलिये वोह शक्ति वा गुण नहीं, किंतु किरणोंसमान परमाणुओंकी रस्सी होगी. जो यूं हो तो उसको अन्याधारकी अपेक्षा होगी; क्योंकि सावयव, परिच्छिन्न, गतिमान, और संकोचविकास वाली रस्सी हे; इसलिये वोह अन्यको आधार रखनेयोग्य न हुई. दूसरा पक्ष मानें तो विना गये–ग्रहको स्पर्श किये विना केसे खेंचसकती हे? कभी नहीं. चंबुकमेंसे विजलीकी किरणें गई, लोहेका स्पर्श हुवा तो खेंचसकी, परंतु जो दोनोंके बीचमें आड

८०

हो तो याने किरणें लोहेको स्पर्श न करसकें तो लोहेको नहीं खेंच सकती. इसीप्रकार यहां समझलेना चाहिये. याने ग्रहकी गुरुत्वशक्ति अन्यको स्पर्श कियेविना नहीं खेंचसकती; इसलिये उत्तरपक्ष अयुक्त हे; परंतु खिंचाव होना सो उभयके गुरुत्व, विस्तार तथा फासलेकी गणितसे सिद्ध तो होता हे, इसलिये कुछ ओर कारण होना चाहिये. जो वोह कोई चेतन वस्तु हो तो उपरोक्त शक्ति गुण संज्ञामें ओर बाहिर जाने वा अस्पर्श खेंचनमें जो खामी बताइ हें वे सब आवेंगी; अतः वोह चेतन शक्ति वा चेतन गुणरुपभी सिद्ध नहीं होती.

अब उसके परिमाणका विचार करें.— जो उसे विभु मानें तो गतिवान परिच्छिन्नोंकी आधेय ओर न्यूनाधिक न होनीचाहिये तथा गुरुत्वादि पर उसकी गणित न होनीचाहिये; परंतु एसा नहीं हे, अतः विभु नहीं. इसलिये मध्यम लचकी (परमाणु जन्य रस्सी) मानें तो उपर कहे अनुसार सादिसांत ओर पराश्रित होनेसे स्वतंत्राधार न होगी. जो अणु परिमाण मानें तो दूसरे ग्रह पास न जासकनेसे खेंच नहींसकती; परिच्छिन्न वस्तुमें वजन होता हे इसलिये अविभु (मध्यम अणु) में वजन मान्ना होगा, तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति, एसा न मान सकेंगे. जेसे ग्रहोंकी उत्पति, वृद्धि, क्षय ओर नाश, वेसेही उनके साथ उनकी आकर्षणका उत्पति-वृद्धि-क्षय ओर नाश होता हे तो वोह अनादि स्वतंत्र शक्ति हो, एसा नहीं माना जासकता. जो उसे अगम्य वस्तु वा शक्ति मानें तो मूलाधारके निषेधमें प्रवृत्ति न करनाचाहिये; क्योंकि मूलाधार चेतन ओर आकर्षण शक्ति इनमें संज्ञाका भेद रहा; आशय-परिणाम समान हे. जो ग्रहोंकी आकर्षणशक्ति अन्योऽन्याश्रय रुपसे एक दूसरेको खेंचती हे एसा मानें, तो उपर कहे अनुसार अन्योऽन्याश्रय होना असिद्ध हे.

संक्षेपमें अलचकी, लचकी, मध्यम, अमध्यम, अक्रिय, सक्रिय, भेद, संयोग, एक, अव्याप्य, अनाधार, देश ओर आधार, इन सूत्रोंद्वारा स्वरुपसंभावनामें तोलोगे तो जेसी वा जिसको वर्तमानमें आकर्षणशक्ति मानाजाता हे, सो वेसी वा वोह नहीं हे, यह सिद्ध होगा; किंतु ग्रहोंका–पदार्थोंका जो गुरुत्व उसका परंपरासे लचकी ईथर–हिरण्यगर्भके द्वारा जो उपयोग उसका नाम वा वेसी स्थितिका नाम आकर्षण रख छोडा हे, (बस. में सू. २६८ से २८० तकमें इसका विस्तार हे) ॥ ९९३ ॥

अथवा याने पूर्वोक्त आकर्षणादि आधार न हों तो अनादिसे अन्योऽन्या-

श्रयसे गूंथेहुये ग्रह उपग्रहके समूहकी यह ब्रह्मांडरुपी गेंद अनादिकालसे चली आ रही हे ओर किसी तरफ जा रही हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि आकाश अनंत हे उसका आदि वा अंतका कोई किनारा नहीं हे; इसलिये नित्यगमन संभव हे. यह पक्षभी अनीश्वरवादियोंको संमत होसकता हे ओर जडवादि तो एसा मानताही हे. परंतु यह पक्ष असिद्ध हे (उपरोक्त आधाराधिकरण ओर सू. २५६। २२२ देखो) ॥ १९३ ॥ क्योंकि नित्यगमन हो तो दृश्यकी व्यवस्था न होती; परंतु व्यवस्था तो देखते हें[१] ॥ १९४ ॥

एकमत. (ब्रह्मसिद्धांत सू. २६८-२८० मेंसे)

(**आकर्षण–उपचयापचय.**)

आकर्षण अर्थात क्या? ओर अव्यक्तके कार्योंमें गति केसे होती हे? तथा ग्रह उपग्रह केसे बनते बिगडते हें? उनका संक्षेपमें बयान.—

जबके उपरोक्त निषेधके अनुसार आकर्षणादि आधार नहीं तो दृश्यब्रह्मांड केसे रहता होगा तथा ग्रहोंमें किस नियमसे गति होती होगी, इस विषयमें एकमत जनाते हें.—

दृष्टांत.—

(१) मानो के एक बडा तालाब हे, उसमें लकडी ओर लोहा मिश्रित एक एसा गोला डालदो कि जिसमें पहाड जेसी उंचाई निचाईभी हो. अब यदि हवा न होगी तोभी यह गोला ओर पानी हलता रहेगा; क्योंकि गोलेका गुरुत्व गोलेको

---

[१] आकर्षणवादकी ३ थीयरी हें (१) एक मुख्य व्यापक स्वतंत्र आकर्षण जिसकरके सबग्रह आकर्षित हें, चेतनवादि इसे ईश्वरकी शक्ति कहदेता हे. (२) हरेक ग्रहमें गुरुत्वशक्ति हे उनमेंसे बडेका गुरुत्वाकर्षण छोटेको खेंचता हे. (३) अन्योऽन्याश्रय याने परस्परकी गुरुत्वाकर्षण एक दूसरे ग्रहको खेंचती हे ॥ आधार न मान्नेमें एक यह पक्ष हे कि ग्रह इतनी शीघ्र गति करते हें कि अपने चक्रमेंसे इधर उधर नहीं जाते. अथवा परस्परकी आकर्षणमें गूंथी हुई ब्रह्मांडरुपी गेंद एक तरफ जारही हे. इन सब पक्षोंका समास–आकर्षण (एक बडेका गुरुत्व, अन्योऽन्यकी गुरुत्वशक्ति, गुण), गति (शीघ्र, एक तरफ गमन), विद्युत, शेषा (हिरण्यगर्भ, उपचयापचय), धर्म, स्वभाव इन ६ में होजाता हे. ओर जुदाजुदाभी लिखे हें. अ. १ । १९८ । २६८ ओर अ. २ । २६६ ओर अ. ३ । १९० सूत्रोंका विवेचन विचारो.

पानीमें लेजाना चाहता हे ओर प्रवाही पानी उसको उपरको फेंकता हे, इस प्रकार गुरुत्व ओर पानीके लचक स्वभावसे गोले ओर पानीमें गति होने लगेगी; अंतमें गोलेकी गति कम होगी, ठेरा हुवा जान पडेगा, तथापि उसमें थोडीथोडी तो गति होहीगी, क्योंकि पानीका लचक स्वभाव हे ओर गुरुत्व पानीको दाबता हे, ओर उपर कहे अनुसार प्रकृतिके सत्व--रज--तम्--तीनों गुण चल स्वभाववाले हें.

(२) परंतु जो हलके भारी बीस पचीस गोले इधर उधर डालदिये जावें तो वे सब गोले ओर पानी गतिमेंही रहेंगे-नहीं ठेरेंगे; क्योंकि गोलोंका गुरुत्व ओर प्रवाहीपानीकी लचक यह दोनों गतिके हेतु रहेंगे. भारी गोलेसे पानी दबा ओर पानीने उसे उपर फेंका, इस गतिसे पानीमें लहरें उठी हें ओर पानीके दबानसे दूसरी तरफका पानी उंचा उठेगा-याने उस भागका हलका गोला उपरको आवेगा. यदि वोह पहलेसे भारी होगा तो लहेर कमजोर पड जायंगी; परंतु दूसरा भारी गोला नीचेको जायगा ओर वहां पूर्ववत् क्रम चलेगा. इसप्रकार उक्त सब गोलेंमें पानीका दबान, पानीकी लचक ओर ग्रहोंका गुरुत्व, गति होनेमें हेतु रहेंगे; ओर गुरुत्वके भेद होनेसे ठेर न सकेंगे; ओर गोल होनेसे लहरोंके झोल पानेसे गेंदकी तरह लुढकते (घूमते) चलेंगे; ओर उक्त कारणसे वे गोले इधर उधर घूमते रहेंगे; परस्परमें न मिलसकेंगे; क्योंकि हलके भारी होनेसे एक दूसरेका दबान ओर पानीका ढलान होता रहता हे. अलबत्ते जो कोई सबसे भारी गोला होगा तो जब तब धीरेधीरे सब गोले उसमें मिलनेके लिये अथडायेंगे; नहीं तो नहीं.

(३) अब नंबर २ वाले बहुतसे गोले समुद्रके गर्भ (पानीके अंदर) में मान लीजे. पानीका वजन गोलोंपर नहीं पडता, क्योंकि पानीकी देवारोंके सहारे हे, इसी कारणसे पानीके अंदरका भरा हुवा घट खेंचें तो भार नहीं जान पडता; क्योंकि पानीका ओर घडेका भार पानी सहार लेता हे; पानीसे बाहिर आने पीछे भार जान पडेगा. इसलिये गुरुत्वसे गोलोंका नीचे जाना, पानीका उपरकी तरफ फेंकना--इत्यादि प्रवाह नं. २ अनुसार रहेगा.

(४) जब गोला नीचे जाता हे तो उपरके पानीको कुछ न कुछ नीचेको तनाना पडता हे इसलिये, ओर गोलेके झोलके प्रभावसे, गोलेके पहाडके उपरका अणु ओर आसपासके छोटे पदार्थ उसके साथ तनाते हें--दूसरी तरफ नहीं जाते वा नहीं रह जाते. उपरके पानीका रुख उपरको होनेका हे, इसलिये गोलोंको उपर आनेका इशाराभी होता हे तथा नीचेका पानी उपरको फेंकता हे; इसलिये आस-

पासके वा गोलेके पदार्थोंको उपर चलनेमें मदद मिलती हे परंतु गोलेका झोल ज्यादे होनेसे उपर होनेमें मुशकली पडती हे याने उनको गोलेकी तरफ (गोलेके केंद्रकी तरफ) तनाना पडता हे.

(५) यदि किसीमें वा अनेक गोलोंमें किसी तूफान (बडवानलादिके इशारे) से तूफान होजाय तो उसका कोई भाग जोरके साथ दूसरी तरफ जायगा- याने अपने गोलेकी जो हद (झोल ओर पानीके लहरकी जो सीमा) हे उससे बाहिर तक न गया तो झोल ओर पानीकी लहेरसे जब तब अपने गोलेमें आ मिलेगा. ओर यदि हदसे बाहिर चला गया तो जिस गोलेकी लहरोंके दायरेमें पहोंचेगा उस गोलेमें जा मिलेगा. परंतु जो दोगोलोंके दरमियानी स्थानमें अर्थात जहां दोनों गोलोंसे उत्पन्न हुई लहरें मिलती हें वे सामान्यरुपमें होके स्थिर जेसी जान पडती हें वहां पहोंचा तो, वोह भाग न अपने गोलेमें ओर न दूसरे गोलेमें जासकेगा, किंतु वहांही झोले खाया करेगा; क्योंकि उसपर दूसरे झोलोंका दबान नहीं आता हे ओर उभय तरफकी लहरें होनेसे उसी दायरेमें रहेगा ॥ अब यदि इसी प्रकार एक गोलेके अनेक भाग वा अनेक गोलोंमेंसे निकले हुये भाग एक जघे मिलें वा अनेक जघे मिलें तो, जबतब वहांभी एक गोला बनजायगा. पानीके घसारेसे अमुक सूरतमें (फोर्मका) बनजायगा ओर दूसरे गोलोंके जेसा भागीदार होजायगा. ओर उसके गुरुत्वका असर पानीपर होनेसे दूसरे गोले तक चलेगा. जिनमेंसे भाग निकले हें ओर दूसरी जघे (गोले) से नहीं आये हें किंवा आये हें किंवा आये तोभी निकलनेसे थोडी आवक हुई हे तो वे गोले कम पड जायँगे; यहां तक के उनका भाग जल्दीही दूसरोंमें जाने लगजायगा, अंतमें वोह समाप्त होजायगा ओर झोल तथा लचकके नियमानुसार दूसरे नवीन ओर अन्य गोलोंका प्रभाव विभक्त होके उनकी गति, नियममें आजायगी.

(६) गोलोंके परमाणु, गोलोंके झोल ओर लहरोंकी सीमासे बाहीर नहीं जासकते, परंतु गतियोंसे जो हवा पेदा हुई हे ओर लहरें चलरही हें उनसे मुमुकिन हे कि तूफ़ानके सबबसे जो जराजरासे भाग हुये वे पानीकी लहरोंद्वारा दूसरी तरफभी जायँ ओर वे दूसरे गोलोंमें तो जा नहीं सकते परंतु दो गोलोंके दर्मियानी भागतक नं. ५ में कहे अनुसार पहोंचके रहते जावेंगे.

(७) उपर जो गति, सनियम हुई उसका कारण यह कहेंगे कि परस्परकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति हे. गुरुत्वसेनीचेजाना, पानीकाउपरफेंकना, लचकसे गतिहोना,

झोलसेदूसरे पदार्थ दूर न जाना ओर उपरसे नीचे जलदी जाना ओर नीचेसे उपरको देरसे पहोंचना, उपर जाके हलका जान पडना, ओर हलकेभारी होनेसे गोलोंका न मिलना, अमुक मर्यादामें घूमतेरहना, यह सब कार्य एक दूसरेके संबंध ओर योग्यतासे हो रहे हें. पक्षकार-व्यवस्था शोधकने उसका नाम गुरुत्वाकर्षण शक्ति रखदिया. वस्तुतः वहां गोलोंसे ओर पानीसे इतर शक्ति कोई पदार्थ नहीं हे. ओर न पदार्थोंकी शक्ति पदार्थोंसे बाहिर गई हे.

दार्ष्टांत.

(८) जेसे उपर समुद्र ओर गोलोंकी व्यवस्था कही, वेसेही इस द्रश्य संबंधमें योज लेना चाहिये (द्रष्टांतका अमुक भाग लिया जाता हे, सब नहीं) अर्थात अधिष्ठान ब्रह्मचेतनाश्रित अव्यक्तका एक भाग-शेषा अमुक मर्यादामें समुद्रवत् पसरा हुवा रहता हे, उपर (२६१) कहे अनुसार स्वभाववाला लचकदार हे, चेतनकी आकर्षणसे इधर उधर नहीं जाके हलता रहता हे, इस अनादि चादर वा जालमें ग्रह उपग्रह गोले हें, उनके गुरुत्व तथा गरमी ओर शेषाकी लचकसे आपसमें गति होती रहती हे. ओर द्रष्टांत अनुसार गोले अपनी २ सीमामें घूमते रहते हें (ध्रु भी चर हे, दूर होनेसे स्थिर जान पडता हे). पृथ्वी जब पतली थी, ठंडी हुई, उसकी गति ओर खिंचावसे सुकड गई तो पहाड ओर खड्डे (ताल) बनगये. जब समुद्रका पानी छिद्रोंद्वारा पृथ्वीके अंदरके गरम पदार्थोंके साथ मिलता हे तो खदभद होनेसे भूकंप होता हे, ज्यादे बल हो तो जमीन फटती हे, अमुक भाग ठंडा होके जमीनपरही (टेकडी वगेरे) रहजाता हे. अमुक भाग आकर्षण (पृथ्वीके झोलकी असर) की सीमासे बाहिर जाता हे, सो वेगके कारण प्रकाशित हुवा दूसरे ग्रह निवासीको तारा टूटा जानपडता हे; जेसे के अपनेको तारे टूटे जानपडते हें ओर ग्रहोंके भाग पृथ्वीमें आके मिलना देखते हें. ओर यदि किसीमें न मिले तो जुदा रुप बनता हे; जेसे के धूमकेतु बनरहे हें. जेसे सूर्यकी किरणें ओर गरमी परखंडमें आती जाती हें तथा न्यूनाधिक होती रहती हें, वेसे शनै शनै दूसरे सूक्ष्म रेंझेभी उपर कहे अनुसार आते हें; इसप्रकार ग्रह उपग्रह कमज्यादा होते होते नष्टभी होते हें ओर दूसरे बनते हें. यथा—सूर्य अमुक पुंजका गोला हे उसमेंसे गरमी, आकाश-ईथरमें जाती हे; पीछी नहीं आती. इस गरमीके साथ अनेक प्रकारके परमाणु हें. जब वे दूर पडे ओर तप्त पुंज ठंडे पडे, तो कोई न कोई प्रकारका ग्रह (पृथ्वी) बन गया. जो सूर्यजेसे तप्त गोले नहीं उनमेंसे अन्य

प्रकार भाग हुये हैं. इसप्रकार शनै २ सूर्यादि नष्ट होते जाते अन्य ग्रह बने ओर बिगडेंगे. सारांश मारवाडके टीबोंके समान कालांतरमें बनते बिगडते रहनेका अनादिसे प्रवाह हे. किरोडों वर्षोंमें एसे कार्य होते हें ओर वोहभी शनै शनै, इसलिये मनुष्यको उसका ठीक ठीक पता नहीं लगसकता, व्याप्तिग्रहसेही मान्ना पडता हे. सूर्य काला हे गति वगेरेके प्रभावसे प्रकाशमान हे ओर वोह प्रकाश शेषा द्वारा अन्य ग्रहोंमें आता जाता हे. सूर्यमेंसे गरमी जाती हे पीछे नहीं आती, एसा स्वाभाविक हे. इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी यथायोग्य व्यवस्था हे, जिसको मनुष्य नहीं जानसकता.

(९) शेषामें सूर्य, चंद्र, शनि, योरोनस आदि गुरुत्ववाले गोले हें. धूमकेतु छोटे टुकडे पसरे हुये पदार्थ हें. गतिमान विजली, परमाणु (एटम) यह तृण समान छोटे छोटे जुजव हें. कोई गोला अमुक कक्षामें कोई गोला वक्रगति करके फेर कक्षामें चलता हे. कोई एक गोलेके गिर्द ओर कितनेक किसीएकके गिर्द घूमते हें. यह सब कार्य उपर कहे हुये गुरुत्वादिकी मर्यादासे होते हें. शेषा अधिष्ठानके आश्रित हे ओर ग्रह उसके आधेय हें.

(१०) ब्रह्मांडकी सीमामें जिस गोलेसे शेषाका ज्यादे भाग जिधरको हे वही उस गोलेकी निचली तरफ हे. गोले नीचेकी तरफ जाते हें, शेषा उपरको फेंकती हे, शेषाका उपरका भाग गोलोंके साथ ज्यादा नहीं खिंचानेसे गोलोंको उपरकी तरफ आनेका इशारा करता हे ओर निचला भाग उपरको फेंकता हे ; एसे गति होती हे; ओर अनेकोंकी एसे गति होनेसे सबकी गति मर्यादावाली होजाती हे. शेषाके किनारेके पासवाले ग्रहोंमे ज्यादे ओर जलदी फेरफार होना चाहिये.

(११) गुरुत्व करके झोल पडनेसे व्यापक शेषामें अमुक सीमातक भंवर, लहेर, लचक ओर तनाव होते रहते हें ओर ग्रहके साथ साथ होते जाते रहते हें; तथा यथासामग्री ओर स्थिति उनका उपयोग होता हे.

(१२ उपरके तमाम निमित्तोंसे नीचेके सवाल वाले तमाम कार्य होते रहते हें, इसलिये आधेयसंबंधस्थितिका नाम किंवा उक्त सनियम व्यापारका नाम आकर्षण (शक्ति) हे, एसा क्यों न माना जाय? स्वरुपसे आकर्षण कोई वस्तु (द्रव्य, गुण, शक्ति) नहीं हे एसा क्यों न कहसकें? (क्योंकि अ. २ । १६८। १७४ । १८१ में बताये अनुसार विभु सक्रिय ओर परिणामी असिद्ध हे.)

(१३) नीचेके सवालोंका जवाब (समाधान) उक्त स्थिति नामा—आकर्षणसे होजाता हे.—(१) एक पृथ्वीमें १३ प्रकारकी गति केसे होती हैं, तद्वत् अन्य ग्रहोंमें अनेक प्रकारकी गतिके लिये सवाल हे[१] (२) उपरको फेंका हुवा पत्थर अथवा भूकंपसे उडेहुये—आकाशकी तरफ जाते हुये पदार्थ पीछे जमीनपर क्यों गिरजाते हें. (३) दूसर ग्रहोंका कुछ भाग (तारा टूटा हुवा) दूसरे ग्रह (जमीनादि) में क्योंकर आता हे. (४) नीचे तोली हुई वस्तुको पहाडके उपर लेजाके सुईके कांटेसे तोलें तो वजनमें क्यों कमी होती हे. (५) उपरसे नीचेको गोली फेंके तब जोर नहीं पडता परंतु नीचेसे उपरको फेंके तो जोर क्यों पडता हे. (६) उपरसे नीचेको गोली डालें तो उसका ज्यादे ज्यादे वेग क्यों बढता हे. (७) नीचेसे पहाडपर जब चढें तो जोर पडता हे; परंतु उपरसे नीचे उतरें तो जोर नहीं लगता, इसका क्या कारण हे. (८) चाहिये था के सब मकान आपसमें मिलजाते परंतु क्यों नहीं मिलते ? (रगड ओर गोलेकी समीपता कारण हे). (९) मूल परमाणु वजनदार हें वा नहीं ? उनकी संख्या समूहका नाम वजन हे, किंवा किसी एकमें वजन हे ? सब परमाणु सजातीय हें ? वा विजातीय हें ? किसी एकके रुपान्तर हें वा जुदाजुदा अनादिसे हें ? (१०) हवा निकाली हुई शीशीमें पर ओर पैसा साथ साथ नीचे क्यों उतरते हें ? (११)[२] इत्यादि

---

[१] पृथ्वीमें अपने गुरुत्वसे, सूर्यके गुरुत्वसे, चंद्रादिके संबंधसे, महान बडे सूर्यके गुरुत्वसे, ओर ईथरकी लचकसे इत्यादि निमित्तोंसे १३ प्रकारकी गति होती हैं; ओर किसी बडे सूर्यकी तरफ अपने सूर्य सहित खिंचाती जाती हे. इन १३ गतिका विस्तार एक अमेरीकन वा फ्रेंचके ज्योतिषीके लेखसे गुजरातीपेपरमें छपाभी था. एसेही अन्य ग्रहों वास्तेभी मानसकते हें. इस गतिपर ध्यान दें तो पृथ्वीका क. बिंदु जो इस सेकंडमें आकाशके द. बिंदुके साथ संयुक्त हे, एसा संबंध पूर्व न. हुवा था ओर भविष्यमें पुनः न होगा. तद्वत् पृथ्वीके क. ओर सूर्यके द. बिंदुके साथ जो स्टेटलेन हे वोह भूतमें न हुई ओर भविष्यमें न होगी, एसा परिणाम आजाता हे.

[२] बरफपर पैसा ओर पर रखें तो ज्यों ज्यों बरफ गलती जायगी, त्यों त्यों पैसा ओर पर साथ २ उतरेंगे; वहां वजनके अनुसार (पैसेका जलदी उतरना) नहीं होता. आबखोरेमें पानी भरें, वोह जब स्थिर हो तब उसपर हलकाईसे सूई रखें ओर पर रखें तो वे उपर रहेंगें—नीचेसे शनै २ पानी निकले तो वे साथसाथ उतरेंगे; वहां सूईके वजन अनुसार नहीं होगा. इसीप्रकार शीशीमें हे अर्थात हवा

सवालोंका समाधान होजाता हे; इतनाही नहीं किंतु गुरुत्व (भारीपन), अंतर (दो गोलोंका वा दो वस्तुओंका फासला), विस्तार (गोलोंकी जिसामत-क्षेत्र), इन तीनपर जेसे आकर्षणका हिसाब चल रहा हे वोही हिसाब इसप्रसंगमें होजाता हे. उससे ईथरकी लचक ओर दबानकी गणित ज्ञात होजाती हे.

(१४) आशा हे कि भविष्यमें ईथरकी योग्यताका ठीक २ ज्ञान होनेपर उक्त प्रकार (एकमत) की शोध होगी; क्योंकि जमाना शोधका हे, हंसकाढने मात्रका नहीं हे. धन्य हे **वेदोंको** ओर **कणाद** ऋषिको कि जिन्होंने गुरुत्वाकर्षणका ध्यान दिलाया. ओर धन्य हे योरोपीयन **न्यूटन** साहेबको कि जिसने उसकी गणित स्पष्टकर बताई, जिससे आकर्षण अर्थात क्या ? इस शोधनेका मार्ग खुला.

(१५) उपर जो आकर्षण-स्थितिका बयान हुवा, वोह एक सूर्य मंडलमेंही लगता हे, एसा नहीं हे किंतु असंख्य मंडलमें लगजाता हे. उसके दो भेद मान-सकते हें-(१) पृथ्वीके गिर्द चंद्र ओर सूर्यके गिर्द शनी वगेरे घूमते हें, पुनः यह सूर्य मंडल अपनेसे बडे सूर्यके गिर्द घूमता हे; एसे असंख्य मानलेना चाहिये. अधिष्ठानाश्रित होनेसे अव्यवस्था नहीं होती. (२) शेषाके अमुक भागमें यह द्रश्य-ग्रह उपग्रहका मंडल हे; परंतु इससे आगे केवल शेषाही हे, फेर कहीं आगे जाके दूसरा ग्रह उपग्रह मंडल होगा; एसे असंख्य मंडल होंगे जिनका परस्परमें संबंध नहींभी हो परंतु वे अनंत नहीं; क्योंकि संख्यासे कोईभी अनंत नहीं होता. (शंका) गोलोंका आधार इतना बडा-हिरण्यगर्भ गोचर क्यों नहीं होता. (उ.) तमाम ग्रहोंका आधार आपकी आकर्षणशक्ति क्यों नहीं दीखती ? सारांश अद्भुत ओर सूक्ष्म हे. विशेष-बीज मनस् वगेरे सहित-वर्णन बसु. में हे ॥

पाठक श्री ! इस एकमत (अधिष्ठानाश्रित शेषा-हिरण्यगर्भकी लचक, ग्रहोंका गुरुत्व, इन उभयके संबंधसे ग्रहोंमें सनियम गति)की साक्षी-हवाला उपर अनेक जघे दिया हे ओर बसु. में देखो, एसे कहा हे; सो बसु. (ब्रह्म सिद्धांत उत्तरार्द्ध)

निकाली तो खाली जघे होगी परंतु ईथर भरपूर हे, इसलिये खाली होनेके लिये शीशीगत हिरण्यगर्भ (ईथर) की गति बहुत कुछ कम पडजाती हे ओर ईथर कुछ घट्ट होजाता हे तथा बाहिरकी हवाका पर ओर पैसेपर दबान नहीं रहा; इस-लिये दोनों साथसाथ उतरेंगे याने ज्योंज्यों ईथरमें गति ओर विकास होंगे त्यों त्यों उतरेंगे; वहां पृथ्वीके आकर्षणने समानतासे खेंचा अथवा पैसेमें जराभी वजन नहीं रहा, एसा नहीं हे.

में से लेके इस तत्वदर्शनमेंभी लिखदिया हे. अब उक्त हवालोंको इससे मिलाके विषय जानलेना चाहिये; ओर यथाप्रसंग इसका उपयोग ले लेना.

वक्ष्यमाण भावनामान्य संज्ञागण संबंधी सूचना.

वक्ष्यमाण सूत्र १९५ से सू. २६२ तकके सूत्रोंमें नीचे अनुसार क्रम हे— प्रथम सूत्रोक्त ईशभावना वगेरे ७ गणसंज्ञा नंबरवार ध्यानमें लेना, उसके पीछे उन कल्पित भावनाके निषेधक हेतुवाले जो सूत्र हें वे सूत्र यथायोग्य लगाना. याने भावनाके क्रमानुसार उन कल्पित भावनाओंका निषेध कियागया हे ॥ यथा **ईशभावना** (१९५) इसमें १ से ९ तक जो भावनायें हें उनका खंडन सू. १९६ ओर १९७ में जो हेतु दिये हें उन हेतुओंसे होजाता हे.

यही प्रकार–क्रम–शैली अन्यभावना (जीवभावना सू. २०२ । मायाभावना २१३ । अपुनर्जन्मभावना २२० । मुक्तिभावना २२५ । साधनभावना २४२ । सृष्टि उत्पत्यनुत्पत्तिभावना २५० । प्रसंगी सूत्रोंमें हे. सो क्रम सूत्रोंके अर्थ ओर विवेचनमें स्पष्ट कियागया हे. पाठकको इतना ध्यानमें रखना योग्य हे कि भावनागण–संज्ञाका क्रम जानेविना सूत्रोंका ओर उनके अर्थोंका उपयोग न होगा– ओर **ईशभावना** इत्यादि ७ पद सांकेतिक हें, उनका अर्थ वृत्तिमें कहे अनुसार कर्तव्य हे.

ईश्वर.—

ईशभावनाही[१] (अ.) ॥ १९५ ॥ **अपरिमाण, अक्रिय, अशक्ति, अत्रिकालज्ञ, ओर विरोधी नियमसे** ॥ १९६ ॥ **विरोधागमसे** ॥ १९७ ॥ **परिच्छिन्नमें ईश्वरत्वके अभावसे** ॥ १९८ ॥ **अखंड, अकार्य, आधार अनाधार ओर अपरिणामी नियमसे** ॥ १९९ ॥ **ओर असंभव दोषकी आपत्तिसे** ॥ २०० ॥ **अन्य कल्पनामेंभी यथायोग्य** ॥ २०१ ॥

अर्थ.—ईशभावना निश्चय होती हे,[१] **ईशभावना** (ईश्वरके संबंधमें जो प्रचलित भावनायें हें सो) अर्थात विभु ओर परिच्छिन्न १, व्यापक सक्रिय २,

[१] जेसे रोगीको औषधिका सेवन केवल भावना विश्वाससे होता हे, उसके सिवाय अन्य उपाय नहीं, एसेही परोक्ष ईश्वर, भावनासेही मान्ना होता हे. अर्थात अपनी अपनी भावनाके अनुसार मानलेना चाहिये. इसका नाम ईश्वरभावना हे. सो ठीकही हे ॥

असीम परिणामी ३, निर्गुण सगुण ४, त्रिकालज्ञ ५, निराकार संस्कारी ६, अमूर्त्तावतारी ७, निरीह इच्छावान ८, मूर्तिमान परिच्छिन्न ९, अपहतपापमा १०, मुक्त ११, अद्वैत ओर बहूरुपी १२, अभावसे भावरुप कर्ता १३, ओर अन्यथा कर्ता १४, इन १४ विशेषणवाला वा इनमेंसे अमुक विशेषणवाला–एसा ईश्वर हे सोही मान्य हे; किंवा ईश्वर परोक्ष हे, इसलिये यथाभावना मान्य अर्थात उक्त भावनाओंमेंसे अपनी २ भावना अनुसार मान्य हे. यह मंतव्य ईश्वरवादियोंमें संमत हे. सो मंतव्य असिद्ध हे ॥ १९५ ॥ (भावनोक्त भावनाके असिद्धिके हेतु क्रमसे कहते हैं).—

क्योंकि आद्य ९ भावना, अपरिमाणादि (सू. १७८ । १६८ । ४०१ । ३४०) । नियमसे असिद्ध ठेरती हैं ॥१९६॥ ओर विरोध दोषकी आपत्ति होती हे ॥ १९७ ॥ जो ९ । १० वाली भावना मानें तो परिच्छिन्नमें ईश्वरत्वका अभाव हे, इसलिये नं. ९ । १० की भावना असिद्ध हैं ॥ १९८ ॥ ओर नं. १२ वाली भावना सू. २०२ । २०० । २६८ । १७४ से असिद्ध ठेरती हैं ॥ १९९ ॥ ओर नं. १३ । १४ वाली भावनामें असंभव दोषकी आपत्ति होती हे ॥ २०० ॥ उपरोक्त भावनासे इतर जो अन्य असमीचीन भावना वा कल्पना हों उनमेंभी नियमोंकी यथायोग्य योजना करलेना चाहिये अर्थात निर्दोष विशेषणवालाही ईश्वर मान्य होसकता हे, उक्त भावनामान्य ईश्वरका स्वीकार नहीं होसकता (६८९ देखो). (ईश्वरके स्वरुप विषे जितनी भावना चलरही हैं उनकी विगत इस विषयप्रकरणके साथ हे) ॥ २०१ ॥

विवेचन.—

उपरोक्त भावनामान्य ईश्वरको जो जो पक्षकार मानते हैं उनके नाम.—
(१) भावनावाले विश्वासी, पुराणी, अवतारवादि, थीओसोफी, शुद्धाद्वैत, सूफी. (२) (३) (४) (५) (६) (७) (१४) वाली भावनावाले नं. १ वत्। (२) वेदानुयायी। (४) अमुक गुण होनेसे सगुण अमुक न होनेसे निर्गुण, एसे आर्यसमाजी, विशिष्टाद्वैतवादि । (६) यथापूर्व जो जगतकर्ता मानते हैं ओर जो यथाकर्म फलदाता मानते हैं, उन सबको संमत होनाचाहिये । (९) स्वामीनारायण ओर कोई पुराणी । (१० । ११) उपनिषद् । (१२) शुद्धाद्वैत, उपनिषदका एक भाग, पुराणी, थीओसोफी, सूफी, ईश्वरवादि बौद्ध । (१३) विश्वासी, ब्रह्म ॥

जो मायाविशिष्ट चेतनको ईश्वर मानते हैं (केवलाद्वैतवादि–वेदांती) उनके पक्षमें सत्ता, स्फुरणा, प्रकाश, ज्ञान, इतना भाग चेतनका हे; शेष–परिच्छिन्नत्व क्रिया, परिणाम, सगुणता, संस्कार, अवतार, इच्छा, अपहतपापमात्मा, मुक्त, जगतपरिणाम ओर अन्यथाकर्तापना यह सब मायाके भाग हैं; इसलिये उनके पक्षमें अभावजासे इतर सब पक्ष बनते हैं; क्योंकि ईश्वरके एक भाग याने ब्रह्मको विभु, अक्रिय, निर्गुण, अमूर्त, निरीह, निरवयव, निर्विकल्प ओर अद्वैत मानते हैं. अभावसे भावरुपजनक, एसा ईश्वरको नहीं मानते. ईश्वर नही हे, यहभी एक भावना हे; इसका वर्णन आधार प्रसंगमें आगया हे.

अयुक्त भावनाका निषेध—विभु परिच्छिन्न ओर परिच्छिन्न विभु नहीं होता (१७८). विभुमें इच्छा, क्रिया, संस्कार, परिणाम, गुण, संकोच, बंध, मुक्त, यह विशेषण नहीं होसकते (१६८ । ३८२). जो गतिवान परिणामी होगा तो परिच्छिन्न होगा अतः उसको अन्य आधारकी अपेक्षा होगी (२६१). कोईभी सर्वज्ञ ओर सर्व शक्तिमान नहीं होसकता (४०१ । ४०८). परिच्छिन्नका ज्ञान गुण वा शक्ति उससे इतर देशमें नहीं जाते; इसलिये परिच्छिन्न, सर्वज्ञ वा सर्व शक्तिमान नहीं होता (३३४). ईश्वर मूर्तिमान हो वा अवतारधारी हो तो शरीरवाले दोष आवेंगे (अ. १ अवतारादि प्रकरण ८२ । देखो). ईश्वरके पापही नहीं होते तो पाप हत हुये यह कहनाही नहीं बनता. ईश्वर बंधही नहीं हुवा तो उसे मुक्त वा नित्य मुक्तही कहना नहीं बनता, किंतु बंधरहित इतनाही (५२७) कहना बनता हे. ईश्वरही जगतरुप होता हो तो विरुद्धधर्माश्रय दोष आवेगा; परंतु विरोधीधर्म एकमें नहीं होते; यथा--विभु, परिच्छिन्न नहीं होता; अभावसे भावरुप होना असंभव दोष हे. जो ईश्वरको सर्वशक्तिमान मानके अभावसे भाव करना वा अन्यथा करना मानोगे तो अशक्ति नियमका विरोध आवेगा; ओर जीवमात्र दुःखी न होनेचाहिये. जो ईश्वर सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमानत्व, इच्छा, क्रिया ओर संस्कार रहित हो तो वोह जगतकर्ता न होगा. जो ईश्वर मध्यम समूहरुप होगा तो नाशवान होगा ओर उसको अन्य आधारकी अपेक्षा होगी. जो ईश्वर सापेक्ष हो, यथा—कर्माधीन जगत रचता हे—उपादान विना नहीं रचसकता ओर यथेच्छा अन्यथा नहीं करसकता तो सापेक्ष होने ओर स्वतंत्र न होनेसे ईश्वरही न ठेरा. जो अपेक्षारहित निस्पृह हो तो उसे जगत रचनेकी अपेक्षा नहीं. जो विभु ओर शुद्ध हो तो मलादि अपवित्र स्थानमें नहीं होगा; तथा दुष्ट पापी जीवोंमें

व्यापक-संबंधी न होगा; क्योंकि वोह आकाश जैसा जड नहीं हे; किंतु पाप पुन्य, उत्तम निकृष्टका ज्ञाता होनाचाहिये.

उपरोक्त भावनामान्य ईश्वरकी असिद्धिके सूत्र ओर उनसे भावनामान्य ईश्वरकी असिद्धि कहे गये. अब उससे इतर अन्य कल्पना-भावनाके उदाहरण देवें तो बहुत विस्तार होजाता हे. मूलमें विस्तार हे. हरेक अयुक्तभावना, अ. २ के सूत्रोंसे खंडित होजाती हे. उन सूत्रोंके तथा अधिकरणोंके नाम यह हें.-सू. अपूर्ण, निर्बल, परतंत्र, शब्द, मध्यस्थ, स्वरुप, स्वरुपविवेक, असंभव। मूलाधिकरण, परिमाणाधिकरण, निरवयवाधिकरण, नित्याधिकरण, अभेदाधिकरण, एककार्याधिकरण। सू. देशी, असंयोगी, सीमा। आधाराधिकरण, कारणाधिकरण, उपादानाधिकरण, उपादेयाधिकरण, निमित्ताधिकरण, अगुणाधिकरण। सू. विरोधी, प्रवाह। भेदाधिकरण। सू. ससीम, यथातथा। शक्तिअधिकरण, सर्वज्ञअधिकरण। सू. अवतिष्ठित, अविषम, अल्पज्ञ, आश्रित, योग्य, अनुप्रवृत्ति, अनुमित्ति, दूषित, अभिप्राय, अमान्य, घटक, बोधक, निवारण, ओर उपयोगी ॥ ईश्वरगत पक्ष ओर भावना याने विशेषण इस अध्यायमें टांके हें ॥ अतः उपरोक्तअधिकरण ओर सूत्र, घटित रीतिसे लगालेना चाहिये ॥ १९५ से २०१ तक ॥

जीव.

जीवभावनाभीही[१] (अ.) ॥ २०२ ॥ **परिमाणमें दोष आपत्तिसे** ॥ २०३ ॥ **विकास, आक्रिय, असर्वज्ञ, अनाधार, असांत, सादि ओर दृष्टा नियमसे** ॥ २०४ ॥ **तत्वमें संस्कार दुःखसुखावस्थाका अभाव होनेसे** ॥ २०५ ॥ **दो अंगके स्पर्श भेदसे** ॥ २०६ ॥ **ईशअंशादिसे विपरीत दर्शनसे** ॥ २०७ ॥ **आभास भावमें भोक्तृत्व ओर प्रत्यभिज्ञाके अभावसे** ॥ २०८ ॥ **शरीर अपना दृश्य होनेसे** ॥ २०९ ॥ **असंभव दोषके आगमसे** ॥ २१० ॥ **नूतन भावमें अनुत्पत्ति, अनभाव, विकारीनियम ओर विरोधापत्तिसे** ॥ २११ ॥ **अन्य कल्पनामेंभी यथायोग्य** ॥ २१२ ॥

अर्थ.—जीवभावनाभी निश्चय होती हे ॥ प्रसरित **जीवभावना** अर्थात अनादिअनंत ओर मध्यम १, विभु ओर कर्ता भोक्ता २, अणुचेतन ओर भोक्ता ३, राग-द्वेष-इच्छा-प्रयत्न-दुःख-सुख-संस्कार-ज्ञान, इन अष्ट गुणवाला ओर चेतन ४, नित्य ओर परिणामी ५, अणु ओर शरीरमें इसका ज्ञान व्यापक ६,

[१] जैसा ईश्वरप्रसंगमें भावनामान्यका दूसरा अर्थ किया वैसाही यहांभी होसकता हे.

परिच्छिन्न ओर सर्वज्ञ ७, सादिअनंत ८, अनादिसांत ९, ईश्वरांशादि (ईश्वरका अंश, ईश्वरकी शक्ति, ईश्वरका गुण, ईश्वरका ज्ञान, ईश्वरका श्वास, ईश्वरका स्फुरण, ईश्वरकी आज्ञा, ईश्वरावतार ८) रुप १०, आभास ११, प्रतिबिंब १२, शरीरवत् परिणाम १३, नवीनोत्पन्न १४, अभावजन्य १५, इन १५ वा २३ मेंसे अमुक विशेषणवाला एसा जीव हे, सोही मान्य हे. यह मंतव्य उन जीववादियोंका हे जो जीवको कर्ता भोक्ता मानते हैं. सो यह तमाम मंतव्य असिद्ध हैं ॥२०२॥ (उपरोक्त भावनामें जो क्रम हे उन भावनाओंकी असिद्धिमें क्रमशः हेतु लिखते हैं)–

क्योंकि जीवका अणु, विभु वा मध्यम जो परिमाण मानाजाता हे उसमें पक्षकारके मंतव्यके विरुद्ध दोष आता हे ॥ २०३ ॥ विकासादि याने सू. १७२ । १६८ । ४०६ । ३३२ । १९० । १९२ ओर ३७५ नियमसे उक्त भावनाकी असिद्धि ठेरती हे ॥ २०४ ॥ जो जीवको तत्व मानें तो उसमें संस्कार-दुःख-सुखावस्थाका न होना मान्ना पडता हे, परंतु संस्कारादि तो जीवमें देखते हें॥२०५॥ जब शरीरकी दो अंगुली मिलावें तो शरीरव्यापक–जीवका परस्परमें स्पर्श-संयोग हुवा एसा मान्ना होगा, परंतु संयोग दोका होता हे; इसलिये मध्यमपरिणामी जीव सावयव ठेरता हे याने तत्वरुप नहीं हे॥ २०६ ॥ जो जीवको पूर्वोक्त ईशांशादिरुप मानते हैं तो प्रसिद्ध जीवमें उनसे विपरीतता (दुःख, राग, अज्ञान वगेरे) देख पडती हे; अतः ईशांशादिरुप नहीं हे ॥ २०७ ॥ जो जीवको ईश्वर वा चेतनका आभास वा प्रतिबिंब मानें तो वोह जड ओर अस्थिर–क्षणिक होगा (सू. ४६८ देखो); इसलिये उसमें भोक्तृत्व, स्मृति ओर प्रत्यभिज्ञा (सो यह, एसा ज्ञान) इन तीनोंके होनेका अभाव होगा–याने नहीं होसकते; परंतु भोक्तृत्वादि देखते तो हैं; अतः जीव किसीका आभास वा प्रतिबिंबरुप नहीं ॥ २०८ ॥ शरीर जीवका दृश्य हे वोह उसका द्रष्टा हे इसलिये उसरुप (मगज, मन, शरीर, इंद्रिय) वा उसका परिणामरुप नहीं हे, किंतु उससे भिन्न होने योग्य हे (३७५ याद कीजे) ॥ २०९ ॥ उपरोक्त मंतव्य (भावना) में असंभव दोष आजाते हैं अतः असिद्ध हे ॥ २१० ॥ जो जीव स्वयं वा निमित्तसे नवीन पेदा हुवा हे अथवा ईश्वरद्वारा अभावसे नवीन पेदा हुवा हे एसा मानें तो १३७ । ३१० । ओर ३५० । ३४० नियमका बाध आजाता हे तथा विरोध (३४०) की आपत्ति होती हे; अतः नवीनोत्पन्न नहीं हे ॥ २११ ॥ उपरोक्त भावनासे इतर जो अन्य असमीचन भावना वा कल्पना हों उनमेंभी नियमोंकी यथायोग्य योजना करलेना

चाहिये अर्थात् निर्दोष परीक्षित लक्षणवालाही जीव मान्य होसकता हे. मात्र भावना मान्यवाला स्वीकार नहीं होसकता (६८९) देखो. जीवके स्वरुप संबंधमें जितनी भावना चलरही हें उनकी विगत इस विषयप्रकरणके साथ हे ॥ २१२ ॥

उपरोक्त भावना मान्य जीवको जोजो पक्षकार मानते हें उनके नाम तथा उस मंतव्यकी असिद्धिके सूत्र लिखते हें.—

(१) अनादि अनंत मध्यम बौद्ध; तथा जैन, चेतन मध्यम परिणामी; ओर मैमांसिक जडचेतनात्मक मध्यम ओर नित्य मानते हें. १७२ ओर ३४०से इसकी असिद्धि हे.

(२) विभु कर्ता भोक्ता=न्याय, वैशेषिक. विभु अकर्ताभोक्ता=सांख्य, योग. इसकी असिद्धि १६८ । १४५ से होजाती हे.

(३) अणु ओर भोक्ता=आवृत्तित्रिवादि, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, वगेरे अनेक. इसकी असिद्धि १४५ । १७६ । ५०२ से होती हे; क्योंकि अणुकी अवस्था (दुःख-सुख-संस्कारादिरुप अवस्था) नहीं होसकती.

(४) रागादिवान चेतन=वेदांतके सिवाय सब मानते हें. १४५ । १७६ । ५०२ से इसपक्षकी असिद्धि हे.

(५) परिणामी ओर नित्य, यथाशरीर परिणाम पानेवाला-संकोच विलासवाला=जैन. इसकी असिद्धि १७२ । १७४ । २४५ । से होजाती हे; शरीरकी दो उँगली मिलनेपर जीवका अपनेमें स्पर्श-संयोग होता हे अतः सावयव ठेरता हे (४४३ देखिये).

(६) अणु ओर उसका ज्ञान व्यापक=आवृत्तित्रिवादि वगेरे अणुवादि. इसकी असिद्धि ३३२ । १७२ । १७६ से होजाती हे.

(७) परिच्छिन्न ओर सर्वज्ञ=योगी, जैन, पौराणि ओर सारुप्यमुक्ति मान्ने वाले. इस मंतव्यकी असिद्धि ४०६ । ४७० से होजाती हे.

(८) जीव सादिअनंत=विश्वासी. इसकी असिद्धि १९० से होजाती हे.

(९) जीव अनादिसांत=वेदांती. इसकी असिद्धि १९२ से होजाती हे.

(१०) ईश्वरांशादि=विश्वासी, कोई पुराणि. तदंतरगत भेद हें.—(क) गिलो वत अंश वा बीज वृक्षवत अंश, अभिन्ननिमित्तोपादानवादि मानते हें, सो १७४ १६८ । २०० । २०२ । १९८ से असिद्ध हे. दूसरा घटाकाशवत उपहित अंश मानता हे (वेदांति) तथा भ्रांतिका विषय मानता हे, सो कल्पित होनेसे प्रसंगका

विषय नहीं. (ख) ईश्वरकी शक्ति, गुण, वा ज्ञान (ब्रह्म), श्वास वा आज्ञा (कुरानी), स्फुरण, (योगविशिष्ट), यह सब मंतव्य असमीचीन हैं; क्योंकि ईश्वरके अंश-शक्ति आदि, रागादिवाले नहीं होसकते; परंतु वे जीवोंमें हैं; अतः तदंशादिरुप नहीं.

(११-१२) जीव आभास वा प्रतिबिंब=वेदांती. यह मंतव्य ठीक नहीं; क्योंकि आभास वा प्रतिबिंब जड ओर क्षणिक हैं (४६८ देखो); इसलिये उसमें भोक्तृत्व ओर प्रत्यभिज्ञा होनेका अभाव हे; परंतु यह दोनों कार्य देखते तो हैं; अतः जीव आभास वा प्रतिबिंरुप नहीं.

(१३) जीव शरीरका परिणाम हे=जडवादि, फिजीकलसायंस. इसकी असिद्धि १७५ से होजाती हे; क्योंकि शरीर, इंद्रिय, मन, इनके भेद, मगज ओर ईम्प्रेशन वगेरे किसी अन्यके ज्ञेय हैं.

(१ से १३ तक) जो उपरोक्त हेतुओंको न मानके स्वमंतव्यका आग्रह करोगे तो असंभव दोष आवेगा. यथा जडचेतनात्मक तत्वमें दो विरोधीगुण मान्ना, चेतनमें जड गुण मान्ना, अनादिको सांत कहना, सादिको अनंत कहना, अभावसे भाव मान्ना, तत्वको परिणामी कहना ओर जडमेंसे चेतनोत्पन्न होना-इत्यादि असंभव दोष आवेंगे (१३० देखो); अतः उक्त भावना असमीचीन हे.

(१४) जीव एकसे अनेकतत्व मिलके नवीन पेदा होता हे यह नवीन-विकासवादका मंतव्य हे; इसकी असिद्धि सू. १३७ । ३५० । ३१० । ३०२ । ३०३ । ३४० से होजाती हे; अ. १ गत चिदचिद्विवेकमेंभी इसका निषेध किया हे.

(१५) ईश्वरने जीवको अभावसे भावरुप उत्पन्न किया--बनाया=विश्वासी ओर ब्रह्म. इसपक्षकी असिद्धि सू. ३१० । ३८५ । ३४० । से होजाती हे. ओर अभाव भावका विरोधभी हे; अतः अभावसे भावरुप वस्तु होना असंभव हे. तथा जो जीव ईश्वर कृत हे तो कर्मका जवाबदार नहीं होसकता; क्योंकि परतंत्र रहा.

(१६) थिओसोफिस्ट, आत्मा-बुद्धि ओर मनस् इन तीन तत्वके समूहको जीव कहते हैं, याने मध्यम मानते हैं. सो सादि सांत ठेरता हे ओर चेतनजड उभय मिश्रित मान्ना पडता हे; अतः मोक्षका पात्र नहीं.

(१७) वेदांतपक्षवाले अविद्याविशिष्ट वा अविद्या उपहित वा अंतःकरणविशिष्ट वा अंतःकरणउपहित चेतनको जीव कहते हैं; ओर कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा रागादि अविद्यादिके धर्म हैं, चेतनके नहीं ओर कर्तृत्वका हेतु प्रकृति ओर भोक्तृ-

स्वका हेतु विभु चेतन (दुःख सुखवादि ज्ञानमें ग्रहण होना) हे एसा मानते हैं; दूसरे पक्षोंसे यह पक्ष सयुक्त ठेरता हे. बस. उतरार्द्धमें[1] इसका विस्तार हे. यहां जो जीवप्रसंगमें लिखागया हे, वोह बहोतही संक्षेपमें हे; उपरोक्त एकएक पक्ष लेके यदि खंडन मंडन ओर उसके परिणाम लिखे जावें तो एक अध्याय हो; अतः यहां वृत्तिमात्र लिखा हे. विस्तार बस. में ओर भू. में हे. यहां नमूनारुपमें सू. २०३ की टीका संक्षेपमें दिखाते हैं.—

(१) जो जीवको **विभुपरिमाण** मानें तो क्रिया न होसकनेसे कर्ता नहीं, ओर इसीवास्ते भोक्ता नहीं. भोक्तृत्व एक प्रकारकी अवस्था (परिणाम) होती हे; परंतु विभुकी अवस्थाही नहीं होसकती; अतः विभु भोक्ता नहीं. विभु हे तो दूसरेके दुःखादिका ज्ञानभी होनाचाहिये, परंतु नहीं होता. परिच्छिन्न मनके संबंधसे विभुमें ज्ञान गुण होना मानें तो गुणगुणीका समवाय (तादात्म्य) होता हे, इसलिये विभुमें सब जघे ज्ञानगुण उद्भव होनेसे रुपादि समान दूसरोंके दुःखादिका ज्ञानभी होनाचाहिये, परंतु नहीं होता. आत्मामें यदि वोह ज्ञानगुण अनित्य हे तो उत्पन्न होने समय उसका उपादान बताना चाहिये, परंतु सिद्ध नहीं होता; क्योंकि विभुमें उपादानत्वका अभाव हे (१८०). ओर ज्ञान विनाका आत्मा जड ठेरे, इसलियेभी उसमें ज्ञानगुण नित्य हे, एसा मान्ना होगा. जो यूं हो तो व्यापकका स्वरुप हुवा अर्थात उपर कहे अनुसार अन्यकाभी ज्ञान होना चाहिये. जिसके साथ मनका संबंध, उसका ज्ञान होना मानें तो अन्य विभु आत्माओंके साथ शरीरमें संबंध हे, अतः उनका भान होनाचाहिये; परंतु नहीं होता. तथा मन हे ओर उसके संबंधसे ज्ञान होता हे-इत्यादिकी सिद्धि नहीं करसकोगे; क्योंकि मनके विना आत्माको ज्ञान नहीं होता, इसलिये मन ओर संबंधका ज्ञान न होसकेगा. जो उभयकी सिद्धि अनुमानसे करें तो अनुमान जिसमें ग्रहण हुवा वोह स्वतः सिद्ध मान्ना पडेगा; सू. ७७ से ८८ तक याद कीजे. तथाहि दुःख सुखका साक्षी होनाचाहिये, नहींके रुदन वा में दुःखी, एसा होनाचाहिये. तथाहि जो ज्ञानगुण उत्पन्न नष्ट होता हे तो पूर्व दृष्टकी स्मृति नहीं होनाचाहिये; क्योंकि जिससे संस्कार हुये वोह ज्ञान नष्ट होगया. तथाहि शरीरसे बाहिर जो विभु आत्मा वोह अनुपयोगी रहता हे, एसा न होनाचाहिये; किंतु सर्व स्थानमें रागादिका

[1] दूषण भूषण सहित.

भोग होनाचाहिये, परंतु एसा नहीं देखते. इत्यादि प्रकारके विभुपरिमाण मान्ने विषे दोष आते हैं.

(२) जो जीवका अणु परिमाण हो तो तमाम शरीरमें चेतनता न मालूम होनी चाहिये परंतु होती हे. जो अणुकी सत्ता (ज्ञान चेतन) तमाम शरीरमें (प्रकाश, गंध समान) मानें तो ३३२ नियमानुसार असंभव तथा मध्यम-लचकी होनेसे नाशवान (१७२) ठेरेगा. जीव, दुःखादिका द्दष्टा साक्षी हे, द्दष्टा द्दश्य भिन्न (३७५), इसलिये जीवको दुःख न होना चाहिये; परंतु रुदन होता हे, में दुःखी एसा भान होता हे; इसलिये दुःखादि जीवके गुण मानें तो जो वे अनित्य तो उत्पत्तिप्रसंगमें उनका उपादान कहा चाहिये परंतु सो सिद्ध नहीं होता. जो दुःखादि नित्य तो जीवके स्वरुप होनेसे हमेशे दुःख मालूम होना चाहिये; परंतु एसा नहीं होता. जो दुःखादि (दुःख, राग, संस्कार) की उद्भवता तिरोधानता मानें तो वे जीवके स्वरुपकी अवस्था ठेरी अर्थात जीव मध्यम होगा. जो दुःख गुण वा अवस्था नहीं किंतु जीवके प्रतिकूल जो तन मनकी स्थिति उसका याने दुःखका ज्ञान होनाही भोक्तृत्व मानें तो रुदन नहीं होना चाहिये. अणुमें भोक्तृत्व नहीं होसकता; क्योंकि अणु सावयव नहीं हे अर्थात उसकी अवस्था नहीं होती. (विशेष बस. २११ देखो).

(३) जो अनादि मध्यम अर्थात निरवयव—अपरिणामी—अलचकी मानें (१७३) तो कीडीवाला जीव हाथीके ओर हाथीका जीव कीडीके शरीरमें न जाना चाहिये, तथा शरीरके समान बढ घट न होना चाहिये, तथा अंगुली आदि अंगोंमें विभक्त (जुदा जुदा टुकडेरुप) न होना चाहिये; परंतु इनसे उलटा देखते हैं; दो अंगुलीके संयोग वा सर्पके मुख पूंछके संयोग कालमें जीवके २ किनारोंका संयोग होता हे, सो न होना चाहिये; क्योंकि संयोग दोकाही होता हे (२४५); वा अपनेमें संयोग सावयवका होता हे (२४३); इसलिये जीव अपरिणामी मध्यम तत्वरुप नहीं ठेरता.

(४) जो मध्यम लचकी-परिणामी मानें तो जन्य होनेसे (१७२) नाशवान ठेरेगा. यद्यपि इसपक्षमें विभु, अणु वा अलचकी मध्यम वाले दोष तो नहीं आते, तथापि यह दोष आते हैं--(१) जन्य होनेसे नाशवान होगा. उससे मुक्ति सिद्धांत ओर उसके साधनोंका अभाव होगा. (२) जड होनेसे कर्ता, भोक्ता ओर ज्ञाता नहीं ठेरेगा, परंतु एसा देखते तो हैं.

(५) (शं.) जेसे विच्छुका अणुमात्र डंश तमाम शरीरको हला मारता हे, वेसे अणु जीवद्वारा तमाम शरीरके कारोबार सेंटर ओर ज्ञानतंतु तथा कर्मतंतुओं द्वारा होते हें, एसे क्यों न माना जाय. वर्तमानकी फीजीकल सायंस (शरीरशास्त्र) भी जीवको मेमेटर भागमें परिच्छिन्न मानती हे. जो जीवको नित्य ओर कर्ता भोक्ता ओर शरीरसे भिन्न अर्थात अणु न मानोगे तो कर्मशास्त्र, धर्मशास्त्र ओर अध्यात्म शास्त्रपर हडताल रखनी पडेगी. इ. (उ.) विच्छुका अणुडंश मध्यम हे, जहरी हे; शरीरके रसायणीयसंयोगसे प्रतिकूल हे; जेसे एक लोटे पानीमें अणुमात्र रंग डालदें तो तमाम पानीरंगा हुवा जानपडता हे; अग्निपर गासलेटका एक अणु वा बालका अणु डालें तो तमाम मकानमें गंध होजाती हे; एवं अणुडंश लोहीमें पसरता हे ओर एसा होनेसे परंपरा संबंधद्वारा तमाम शरीरमें हलचल मचजाती हे; परंतु आपका जीव तो तत्वरुप अणु हे, डंशाणुके समान मध्यम सावयव नहीं हे; अतः द्रष्टांत विषम हे, आपके इष्टकी सिद्धि नहीं करता. तथा फिजिकल सायंस अभीतक जीवात्माका स्वरुप हो तो "उसे में नहीं जानती," एसा कहती हे. ओर मगजगत परिच्छिन्न सेंटरोंद्वारा सब कारोबार चलना मानती हे, उनके मूल प्रोटोपलाजममें चेतनत्व नहीं कहती, यह उपर विकासवादमें जनाया हे. अब मानो कि वोह मगजसे भिन्न अणु चेतन कहभी देवे तो क्या परीक्षाके विना--मध्यस्थमें तोले विना अंध श्रद्धालुओंके समान मानलेवेंगे? कभी नहीं (क्योंकि अभीतक सायंसके सिद्धांत बदलते रहते हें); अतः आपकी साक्षी आपके इष्टको सिद्ध नहीं करती. इसविषयकी परीक्षा करनेका यंत्र, योग हे, उसद्वारा परीक्षा करने पीछे किसपर हडताल देना वा न देना यह आपकी बात आप जानो (दर्शनसंग्रह देखो)॥

(६) इसीप्रकार तमाम प्रकारके परिमाणोंमें दोष आता हे.

उपरोक्त भावनासे इतर कल्पना वा भावनामेंभी यथायोग्य नियम-सूत्र लगा लेनाचाहिये; फेर जो परिक्षामें सिद्ध हो सो मान्ना चाहिये. बहुत करके अन्य कल्पना वा भावनाका उपरोक्त भावनाके विवेकसे विवेक होजाता हे याने अन्य उसके अंतरगत हें; इसलिये दूसरे उदाहरण नहीं लिखे ॥२०२से२१२ तक॥

माया.

माया भावनाभीही (अ.) ॥ २१३ ॥ **तमवत् परिमाणमें दोष आनेसे** ॥ २१४ ॥ **देशकाल परमाण्वादि कार्य दर्शनसे** ॥ २१५ ॥ **यथा स्वप्नमें** ॥ २१६ ॥ **अनभाव, असांत, सादि ओर देशी नियमकी आप-**

त्तिसे ॥ २१७ ॥ **भाव अभावका विरोध होनेसे ॥ २१८ ॥ ओर विभु अधिष्ठानमें अप्रवेशसे ॥ २१९ ॥**

अर्थ.—मायाभावनाभी निश्चय होती हे. प्रचलित **मायाभावना** अर्थात देशकालकी उपादान मध्यम माया १, परमाणुकी उपादान विभु प्रकृति २, अनादिसांत ३, सादिअनंत ४, देशरहित गतिमत ५, अनुपादान उत्पन्न ६, भावाभावरुप ७, समाधिष्ठानमें व्याप्य ८, इत्यादि १२ भावनामान्य माया. इसप्रकारका मंतव्य अनेकोंका हे. सो मंतव्य (भावना) सिद्ध नहीं होता' ॥२१३॥ क्योंकि जेसे पदार्थका आवरक भावरुप जो तम उसका परिमाण (अणु, विभु वा मध्यम) जो मानें उसीमें दोष आता हे-कुछ नहीं कहाजासकता, वेसेही सृष्टिके मूल उपादान माया (प्रकृति–मेटर)का जो जो परिमाण मानें उस उसमें दोष आता हे; अतः भावनामान्य असिद्ध हे ॥ २१४ ॥ तथा देश, काल, परमाणु, तम, प्रकाश ओर शीतोष्ण, यह उसीके कार्य देखते हें अर्थात अपरिच्छिन्न (देशादि) ओर परिच्छिन्न (परमाणु) ओर विरोधी (तम प्रकाशादि) उसीके कार्य माने जाते हें जोकि सिद्ध होना कठिन हे ॥ २१५ ॥ जेसे के स्वप्नमें विभु परिमाणवाले देश, काल, अणुपरिमाणवाले परमाणु, मध्यमपरिमाणवाले सूर्यादि ओर विरोधि धर्मवाले तम, प्रकाश, शीत, उष्ण उसी एक मायाके परिमाण-कार्य देखते हें, परंतु एसा होना संभव नहीं हे; इसलिये भावनामान्य माया असिद्ध ठेरती हे ॥२१६॥ जो मायाको अनादिसांत मानें तो १९० नियमसे असिद्ध हे, जो सादिअनंत मानें तो १९२ नियमसे विरुद्ध हे, जो उसे अभाव जन्य–अनुपादान मानें तो २१० नियमसे असिद्ध हे ओर देशके विना गतिवान मानें तो २१९ नियमसे विरुद्ध हे; अतः इन नियमोंकी आपत्तिसे भावनामान्य माया असिद्ध हे ॥ २१७ ॥ जो उसे भावाभावरुप (वा सदसद् रुपा) मानें तो भाव अभावका विरोध होता हे,— एकके यह उभय विरोधि धर्म नहीं होसकते; अतः यह भावना असिद्ध हे ॥ २१८ ॥ ओर विभु अधिष्ठान (समचेतन)में अन्यके स्वरुपका अप्रवेश हे (३८२ याद करो) इसलिये उक्त (नं. ८) भावना मान्य (अधिष्ठानकी सम सत्तावाली) माया असिद्ध हे ॥ २१९ ॥ इसीप्रकार जो अयुक्त अन्य (९ सादिसांत, १० परमाणु, ११ शक्ति, १२ अध्यासादि) भावना हें, वेभी असिद्ध हें ॥ २१३ से २१९ तक ॥

'माया–प्रकृतिका मूलस्वरुप परोक्ष हे; अतः जेसे ईश्वरप्रसंगमें भावनामान्यका दूसरा भावार्थ किया हे, वेसे यहां मायाके स्वरुपसंबंधमेंभी कियाजासकता हे.

पक्षकारोंके नाम यह हें. १, २, ३, ५, = वेदांत, क्षणिकबौद्ध, शक्तिवादि, सांख्य, योग ॥ ५ = जडवादि ॥ ६ = विश्वासी ॥ ७ = जैन ॥ ८ = अधिष्ठानमें संयोग वा व्याप्यसंबंधसे रहनेवाली अधिष्ठानसे समसत्तावाली, एसे मान्नेवाले अद्वैतवादिसे इतर सब वे पक्षकार कि जो विभु परिच्छिन्नवादको स्वीकारते हें. ९ सादिसांत = विश्वासी ॥ १० तत्वोंका समूह = न्याय, वैशेषिक, जडवादि ॥ ११ ईश्वरशक्ति = सूफी, वेदांत ॥ १२ अध्यासरुप = वेदांत, सूफी ॥

संक्षेपमें विवेचन.—जो तमको प्रकाशका अभाव हे, एसा मानें तो अभाव किसी इंद्रियका विषय नहीं होता ओर अभाव किसीका आवरक नहीं होता, परंतु तम चक्षुका गोचर हे ओर पदार्थोंका आवरकभी हे किंतु तममें वजनभी सिद्ध हुवा हे. (बस. देखो); अतः अभावरुप नहीं. जो उसे गुण मानें तो उसका गुणी सिद्ध नहीं होता. इत्यादि बस. में विस्तार हे. अंतमें अनिर्वचनीय पदार्थ ठेरता हे, उसको अणु वा विभु परिमाण नहीं कहाजासकता (बस. पू. देखो). तद्वत माया कोई अनिर्वचनीय पदार्थ जान पडता हे अर्थात जेसे भावनामें मानाजाता हे वेसा नहीं हे, किंतु उससे अन्यथा जान पडता हे. विचारो.—

(१) जो माया-प्रकृतिको अणु वा मध्यम परिमाण रुप मानें तो विभु याने देशकाल उसके कार्य न होने चाहिये (१८२), परंतु स्वप्नमें वेसा देखते हें ओर जाग्रतवत् सत् प्रतीत होते हें.

(२) जो उसका विभु परिमाण मानें तो परमाण्वादि परिच्छिन्न उसके कार्य न होनेचाहिये (१७८), परंतु स्वप्नसृष्टिमें वेसे, जाग्रतवत् सत् प्रतीत होते हें.

(३) जो स्वप्नके उपादान (माया) को अभावरुप माने तो उसका कार्य स्वप्नसृष्टि जाग्रतवत् सत्-भावरुप मालूम न होनाचाहिये परंतु भावरुप जानपडता हे. ओर जो भावरुप मानें तो स्वप्नके बाध हुये उसका पताभी नहीं लगता; अतः जाग्रत ओर स्वप्नके दो प्रकारके उपादान मानें याने जाग्रतका सत् ओर स्वप्नका असत् (मिथ्या) मानें तो एसा सिद्ध नहीं होता; इसलिये स्वप्नके उपादानवत् जाग्रतके उपादानकोभी भाव अभावरुप नहीं कहसकते. तथाहि भाव अभावरुप एक वस्तु नहीं होसकती ; अतः माया भावाभाव रुप नहीं.

(४) जो उसे अनादि सांत वा सादि अनंत मानें तो असंभव दोष आता हे; अतः अनादि अनंत कहना पडता हे; परंतु स्वप्नाभावकालमें उसकी असिद्धि

हे, इसलिये सादि सांत कहना पडता हे, परंतु अनुपादान कोई वस्तु सादि नहीं होती (उपादान उपादेयाधिकरण याद कीजे), इसलिये प्रवाहसे अनादि अनंत ओर उद्भवलय भावसे सादिसांत कहना पडता हे, स्वरुपतः सादिसांत नहीं मानसकते–अर्थात भावनामान्यसे अन्यथा ठेरती हे.

(५) जो मायाको स्वरुपतः एक वस्तु मानें तो उसके अनेक रुप--अनेक परिणाम नहीं मानसकते (१७४ । १९८ । २०० । २०२ देखो), परंतु अनेक विरोधी रुपभी होते हें, अतः एक स्वरुप नहीं.

(६) जो देशकाल उसके कार्य न मानें ओर परमाणुओंके समूहका नाम प्रकृति (माया) कहें तो उसके अधिष्ठानके स्वरुपमें प्रवेश न होनेसे उसकी असिद्धि होगी (२ । ३८२) । भ्रमसे इतर सब पक्षोंमें यह अप्रवेश दोष आता हे.

(७) जो देशकाल उसके कार्य–परिणाम एसा मानें तो देशविना गति होना असंभव हे; अतः यह भावना, सिद्ध नहीं होती (३१९).

(८) जो ईश्वरकी शक्ति मानें तो शक्तिमें गति नहीं होती ओर शक्तिका परिणाम नहीं होता तथा विभुकी शक्ति विभुरुप हे इसलिये परिच्छिन्नरुप नहीं होती; परंतु जगत तो परिणाम ओर परिच्छिन्नरुप हे; अतः ईश्वरकी शक्ति वा निरवयव एक स्वरुप नहीं.

(९) जो मायाको क्षणिक परिणामी मानें तो स्थाई व्यवहार ओर त्रिपुटी रुप व्यवहार न हो, परंतु एसा व्यवहार देखते हें (४७४ । ४७५ देखो).

(१०) जो अध्यासरुप मानें तो संस्कार न मिलनेसे अ. ३ । सू. १४० वाले दोष आते हें.

(११) संक्षेपमें माया (प्रकृति–मूल मेटर) भावनामान्यसे इतर प्रकारकी अनिर्बचनीय–अधिष्ठानसे विलक्षण, मन बुद्धि उसके कार्य हें अर्थात वोह इनका विषय नहीं एसी, ओर अनुभवगम्य हे; भावनामान्यरुप नहीं हे (विशेष आगे) ॥ २१३ से २१९ तक ॥

अपुनर्जन्म.

पूर्वजन्माभाव भावनाभीही स्मृति ओर साक्षीकी अप्राप्तिसे (अ.) ॥ २२० ॥ जीव शरीरसे भिन्न इस व्याप्तिसे ॥ २२१ ॥ उसका द्रष्टा होनेसे ॥ २२२ ॥ ओर अकारण शरीरका संबंध न होनेसे ॥ २२३ ॥ विशेष पूर्ववत् ॥ २२४ ॥

अर्थ.—जीवका इस शरीरसे पूर्वभी जन्म था याने जीव शरीरधारी हुवा था १, या शरीरसे भिन्न कोई वस्तुरुप था २, इससे विरुद्ध याने एसी पूर्वजन्माभाव भावना [1] निश्चय होती हे; क्योंकि इस शरीरसे पूर्व जीव--में था वा पूर्वमें मैं शरीरधारी हुवा था, इस बातकी किसीकोभी स्मृति नहीं होती ओर पूर्वमें एसे होनेकी साक्षीभी नहीं मिलती; अतः पूर्व जन्म नहीं ॥ यह मंतव्य असिद्ध हे ॥ २२० ॥

पूर्व जन्मका अभाव दो को संमत हे—१ जडवादि एसा मानता हे कि शरीर उत्पत्तिसे पूर्व वा शरीरसे भिन्न जीव कोई वस्तुही नहीं हे तो पूर्व (वा उत्तर) जन्मकी बातही क्या करना. २ ओर विश्वासी मंडल यह मानता हे कि शरीर की उत्पत्ति पूर्व जीव था, उसको वर्तमान शरीरमें आना पडा हे, शरीरके नाश पीछेभी वोह रहेगा परंतु पूर्वमें जन्मधारी नहीं था ओर पुनः जन्म न होगा याने शरीरको प्राप्त न होगा; शरीर उत्पत्तिके पहेले ईश्वरने अभावमेंसे यथेच्छा उत्पन्न किया ओर यथेच्छा वर्तमान शरीरमें जन्म दिया हे, इसके पूर्व जीवका जन्म नहीं हुवा था याने शरीरधारी नहीं हुवा था. इसप्रकार पूर्वजन्म न होनेमें दो भावना चलती हें, सो असिद्ध हें ॥ २२० ॥ क्योंकि जीव शरीरसे जुदा पदार्थ हे, एसी व्याप्ति मिलती हे[2] ॥ २२१ ॥ जीव तन, मन, ओर इंद्रियोंका ज्ञाता–द्रष्टा हे, इसलिये ३७५ नियमके अनुसार उनसे जुदा ठेरता हे ॥ २२२ ॥ इस जुदा वस्तुका शरीरके साथ संबंध होनेमें कोई कारण होना चाहिये, उसके विना संबंध नहीं होसकता ओर वोह, पूर्वमें जो कर्म किये उसका फल हे अर्थात पूर्वजन्ममें किये कर्मोंके भोगार्थ वर्तमान शरीरकी प्राप्ति हे; अतः पूर्व जन्माभाव असिद्ध हे ॥२२३॥ इसका विशेष विस्तार अ. १ गत चिदचिद प्रकरणमें कहा गया हे तथा बस.मेंभी लिख आये हें, उसअनुसार जानलेनाचाहिये; इसलिये यहां ज्यादा नहीं लिखा हे ॥ २२४ ॥

जीव शरीरका परिणाम नहीं तथा नवीनोत्पन्न नहीं, ओर अभावजन्य नहीं, यह जीवप्रसंगमें कहा हे, तथा ईश्वर अपनी इच्छासे जीव बनाके यथेच्छा जन्म दे वा दुःखी करे यह अन्याय हे, ईश्वरमें निर्दयताका दोष आता हे; अतः अभावजन्य ओर ईश्वरकृत नहीं. इन सबकी अर्थापत्तिसे स्पष्ट होजाता हे कि इस

[1] जेसे ईश्वर प्रसंगमें भावनामान्यका दूसरा भावार्थ बताया हे वेसेही यहां पूर्वजन्माभावमें अर्थ करसकते हें. [2] बस. में वीर परीक्षाकी व्याप्ति बताई हे.

जन्मसे पूर्वभी जीव, यथाकर्म शरीर धरता आया हे ओर भविष्यमें रखेगा; अतः पूर्वजन्म नहीं यह भावना असिद्ध हे.

विश्वासीमंडल ओर जडवादियोंसे इतर धर्ममतावलंबी जीवके पूर्व उत्तर जन्मको मानते हें. परंतु जो मंडल ब्रह्मको अभिन्ननिमित्तोपादान मानता हे तथा जो मंडल ईश्वरने अपनी इच्छासे जीव नवीन बनाये, एसा स्वीकारता हे, इन दोनों मंडलके पक्षमें जीवका पहेल पहेला जन्म, कर्म फलके बदले हुवा, एसा नहीं माना जासकता किंतु ईश्वरेच्छासेही मान्ना पडता हे; परंतु यह भावना समीचीन नहीं हे. तथाहि हर्वर्टस्पेंरश्री ब्रह्मचेतनको अज्ञेय मानते हें उसमेंसे सब उद्भव (प्रादुर्भाव) हुये एसा कहते हें; परंतु जीवको शरीरसे भिन्न वस्तु नहीं मानते, यह आश्चर्य हे ॥ २२० से २२४ तक ॥

मुक्ति.

मुक्ति भावनाभीही[1] परोक्ष होनेसे (अ.) ॥ २२५ ॥ सम नान्यथा ओर अविकारी नियमसे ॥ २२६ ॥ विनाशी होनेसे ॥ २२७ ॥ अव्यवस्था होनेसे ॥ २२८ ॥ ओर प्रवाह रहनेसे ॥ २२९ ॥ कर्मज अवस्था होनेसे ॥ २३० ॥ अनुच्छेद नियमसे ॥ २३१ ॥ हेतु न मिलनेसे ॥ २३२ ॥ ओर इष्ट न होनेसे ॥ २३३ ॥

जीवनमें अनुभव योग्य होनेसे ॥ २३४ ॥ अन्यथा विकल्प विश्वास वा अज्ञान, योग्य व्याप्ति न मिलनेसे ॥ २३५ ॥ गमनागमनसे ॥ २३६ ॥ लोकमें व्याप्तिसे ॥ २३७ ॥ आवागमनकी सिद्धिसे ॥ २३८ ॥ ओर सुख नीतिके भंगकी संभावनासे ॥ २३९ ॥ सालोक्यादि कही गई ॥ २४० ॥ वर्त्तमानमें यथायोग्याप्राप्ति ॥ २४१ ॥

प्रथम मुक्तिका स्वरुप उसपीछे मुक्तिवास्ते जो भावना मान्य हें उनकी संज्ञा ओर उसपीछे भावनोक्तसंज्ञा कोनेकोन मानते हें उनके नाम लिखके पीछे सूत्रोंके अर्थ लिखेंगे; क्योंकि इतना जानेविना सूत्रोंका अर्थ नहीं जाना जायगा.

मुक्ति अर्थात क्या ? इसके स्वरुपमें मतभेद हें. सबका समावेश इतनेमें हो-

[1] जेसे ईश्वरप्रसंगमें भावनामान्यका दूसरा भावार्थ जनाया हे वेसेही यहां--मुक्तिप्रसंगमेंभी करसकते हें--अपनी अपनी भावनाके अनुसार मोक्षका स्वरुप मानलेना चाहिये, क्योंकि वोह परोक्ष हे. १९५ की नोट वांचो.

जाता हे—(१) बंध (जन्ममरणादि, इच्छाविरुद्ध वा प्रतिकूलकी प्राप्ति) का नित्याभाव, (२) बंधाभाव पूर्वक नित्यपरमानंद (सत्संकल्प वा ब्रह्मस्वरुप हो-जाना इत्यादि). इन उभयमें अन्य[१] सब कल्पना वा लक्षणका समावेश होजाता हे[१] इसप्रकार मुक्ति भाव, अभाव वा उभयरुप कहाती हे.

(१) भावात्मिका. (२) अभावात्मिका. (३) सो तत्वकी. (४) अतत्वकी. (५) स्वभावजा. (६) नैमित्तिका. (७) कर्मजा (कर्म, उपासना जन्य). (८) मोक्षसे अनावृत्ति. (९) मोक्षसे आवृत्ति. (१०) परोक्षा (मरण पश्चात होना). (११) स्व अभाव मोक्ष (शरीर मरण, जीव मरण) (१२) शून्य. (१३) सालोक्यादि ४. (१४) जीवनानंद. यह १४ संज्ञा.

अब मुक्तिके पक्षकारोंका नाम लिखते हैं.–(१) भावरुपा (न्याय, वैशेषिक, मैमांसिक, योग ओर बौद्धसे इतर सब मानते हैं). (२) अभावरुपा (न्याय वैशेषिक, मैमांसिक, योग ओर बौद्धको संमत हे). (३) तत्वकी (सर्वको मान्य हे). (४) अतत्वकी (जडवादिको जीवनतक मान्य हे). (५) मुक्ति स्वभावतः होगी (विकासक्रमवादिको मान्य). (६) नैमित्तक (सब मोक्षवादिको मान्य हे). कर्म, उपासना, योगजन्य (सब द्वैतवादियोंको मान्य हे. तहां कोई केवल कर्म, कोई केवल उपासना ओर कोई ज्ञानको इनके साथ रखके मानता हे. कोई कर्म, उपासना ओर ज्ञान तीनोंसे प्राप्त होना कहता हे. न्या. वै. ज्ञानको साथ लेता हे. विश्वासी केवल उपासना वा कृपाजन्य मानते हैं. पुराणि, कर्मभक्तिजा मानते हैं. योग योगज कहता हे. मैमांसिक केवल कर्मजा मानता हे. वेदांत केवल ज्ञानजा बताता हे जिसका यह सूत्र विषयवाक्य नहीं हे). (८) अनावृत्ति (एक कर्मवादि ओर स्वामी दयानंदजीसे इतर सबको संमत हे. (९)

---

[१] (१) बंधाभाव. (२) सुख प्राप्ति. (३) उभय. (४) सत्संकल्प हुये यथेच्छा वैभव होना. (५) गति शून्य स्थिति. (६) स्वस्वरुपमें स्थिति. (७) सालोक्य, सारुप्य, सामीप्य, सायुज्य (इनके लक्षण उपर आगये हैं). (८) ब्रह्ममें लय होना. (९) ब्रह्मस्वरुप होजाना. (१०) अपना अभाव होजाना. (११) जीवनपर्यंत यथासंभव दुःखरहित सुखपूर्वक जीवन होना. (१२) मुक्ति हे ही नहीं॥ इतने विकल्प हैं. नं. १० । ११ । १२ प्रकृतिवादियोंका पक्ष हे; बाकी सब चेतनवादियोंकी कल्पना हे. बंध, मोक्ष, भ्रांतिरुप; यह वेदांतकी भावना हे. यह नोट सुगमता होनेकी दृष्टिसे पुनः की हे.

मोक्षसे आवृत्ति (एक कर्मवादि ओर स्वामी दयानंदजीको संमत हे). (१०) वेदांत ओर योगसे इतर सब, मोक्षको मरण पीछे होना याने परोक्ष मानते हें. (११) अपना अभाव (जडवादि ओर एक बौद्धको संमत हे). (१२) मोक्ष हे ही नहीं (जडवादिको संमत हे). (१३) इष्टके लोककी प्राप्ति, इष्ट समीप रहना, इष्टमें घुसके जुडे रहना, इष्ट जैसा रुप होजाना, एसे चार प्रकारकी मोक्ष पुराणियोंमें प्रसिद्ध हे. (१४) जीवनपर्यंत दुःखरहित आनंदसे जीवन होना (यह जडवादियोंकी मोक्ष हे). (१५) मोक्ष अध्यासरुप हे, इस पक्षका अ. ४ में वर्णन होगा.

अब **सूत्रोंका अर्थ** करते हें,–उसद्वारा क्रमशः पक्षोंकी असिद्धि जानलोगे.

सूत्रार्थ—मुक्ति भावनाभी निश्चय होती हे, क्योंकि मुक्ति परोक्ष हे, याने मरने पीछे होना मानाजाता हे ॥ प्रचलित मुक्तिभावना अर्थात भावात्मिकादि १४ संज्ञा उपर कही हें. ओर उस भावात्मिकादिको कोनकोन मानते हें उनके नाम उपर यहांही कहे हें; सो भावनामान्य मुक्ति असिद्ध हे ॥ २२५ ॥ क्योंकि जो जीव तत्व स्वरुप हे तो भावरुपा वा अभावरुपा मुक्तिकी उसे अपेक्षा नहीं होसकती, यह बात अ. २ सू. १४१ । १४३ । ओर १४५ से स्पष्ट होजाती हे ॥२२६॥ ओर यदि तत्वरुप नहीं हे तो जबतब नाशवान होनेसे (१७२ । ३५०) उसकी मुक्ति, एसा मान्नाही नहीं बनता ॥ २२७ ॥ जो मुक्ति आपही स्वभावतः होनेवाली हे, एसी भावना हे तो अव्यवस्था होती हे. याने कर्म, उपासना, ज्ञान ओर शमदमादिकी अपेक्षा नहीं रहेगी; मोक्ष प्रतिपादक स्वमान्यग्रंथोंका कथन त्याग होगा--इत्यादि रीतिसे अनेक अव्यवस्था होगी ॥ २२८ ॥ जो मुक्ति नैमित्तक हे अर्थात बंध नैमित्तक हे याने मन वगेरेके संबंध होनेसे हुई हे तो उससे मुक्त होनाभी नैमित्तिक होनाचाहिये याने अमुक प्रयत्नद्वारा मुक्ति होगी. जो यूं हो तो बंध ओर मुक्तिका आरंभ तथा अंत होनेसे प्राप्त मुक्तिका प्रवाह रहनेसे वोह मुक्ति नित्य न रहेगी; यह बात ३७० । ३५५ से स्पष्ट होजाती हे ॥ २२९ ॥ कर्म, उपासना (ध्यान) वा योग (चित्तका निरोध) इनद्वारा जो स्थिति होती हे वोह अवस्था विशेष होती हे ओर वोह सादिसांत होती हे; कारणके कर्मादि सादि सांत होनेसे उनका फल (अवस्था) सोभी सादिसांत होगा; अतः मुक्ति कर्मादि जन्य अवस्थाविशेष ठेरी; उसे आत्यंतिक मोक्ष नहीं कहसकते. योग ओर उपासनाका कर्ममें समावेश होजाता हे; क्योंकि वे प्रयत्नसे हें ॥ २३० ॥ जो भाव-

रुपा वा अभावरुपा मुक्तिसे अनावृत्ति (पीछा न आना) मानें तो अनुच्छेद (३६९) नियमके विरुद्ध हे, प्रवाहाधिकरण उसका निषेध बताता हे; इसलिये अनावृत्ति असिद्ध हे ॥ २३१ ॥ ओर शुद्ध जीवको पुनः बंधनमें आना पडे इसमें कोई हेतु नहीं मिलता, इसलिये नित्य मुक्त न होनाही पाया जाता हे.— अनंत मुक्ति याने अनावृत्तिकी असिद्धि हे ॥ २३२ ॥ ओर यदि मुक्तिसे आवृति होती हे तो एसी मुक्ति इष्ट नहीं हे अतः तदर्थ प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं रहती ॥२३३॥ उपरोक्त प्रकारसे भावनामान्य मुक्ति असिद्ध हे–अनिष्ट हे ॥ २२५ से २३३ ॥ (तथाहि) मरने पीछे मुक्ति होना मानते हें, परंतु यदि मुक्ति हो तो जीवनमेंही उसका अनुभव (वा व्याप्ति) होने योग्य हे, इसलिये परोक्ष मुक्तिकी असिद्धि हे अर्थात मुक्ति नहीं होती, एसा व्यभिचार दोष आजाता हे ॥ २३४ ॥ जो मुक्तिकी जीवतेही खातरी न हो तो मुक्ति होगी, एसा मान्ना या तो अर्थशून्य–विकल्पमात्र मानलेना हे, वा तो विश्वासमात्रसे स्वीकार करना हे अथवा तो मानना अज्ञानमात्र हे; क्योंकि किसीकी मुक्ति हुई वा होगी, एसी संशयरहित संतोषकारक व्याप्ति आजतक नही मिली हे; इसलिये परोक्ष मुक्ति असिद्ध हे ॥२३५॥ शरीर वा जीवका मरणही मुक्ति, एसा मानें तो जीव शरीरको छोडके दूसरे शरीरको पाता हे अर्थात पूर्वउत्तरजन्म सिद्ध हे, अतः शरीर वा जीवका मरणही मुक्ति, यह भावना असिद्ध हे ॥२३६॥ जो एसा मानें के मुक्ति सिद्धांत अर्थशून्य हे याने मुक्ति हे ही नहीं तो लोकमें पूर्वपूर्वसे मोक्ष होना मानते आये हें, एसी श्रुतव्याप्ति मिलती हे ॥२३७॥ तथा जीवका यथाकर्म पूर्वोत्तर जन्म होता हे, इसलिये मुक्ति सिद्धांत नहीं, एसाभी नहीं मानाजासकता ॥ २३८॥ ओर व्यवहार दृष्टिसेभी यूं मानाजासकता हे कि उपरकी रीतिसे मुक्तिसिद्धांत हे; जो उसका निषेधही करें तो लोकमें जो सुख होना ओर नीतिका प्रचार हे उसके भंग होनेकी संभावना रहती हे; क्योंकि तमाम धर्मोमें मुक्ति प्राप्तिको मुख्य–पुरुषार्थ माना हे, उसकी प्राप्ति अर्थ उत्तमाचार– उत्तम विचार–उत्तम उच्चार तथा शम दमादि करनेकी अपेक्षा हे, यह अभ्यासही सुख नीतिका प्रापक ओर रक्षक हे; इस रीतिसेभी मुक्ति सिद्धांतका अभाव अस्विकारणीय रहता हे ॥ २३९ ॥ सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य ओर सारुप्य- इन चारों मुक्तिका बयान कहागया हे याने उपरके विवेचनसे उनका परिणाम निकल आता हे; क्योंकि वे कर्म उपासनाजन्य होनेसे अवस्थायें हें, ओर सादिसांत हें; अतः वहांसे आवृत्ति होती हे. जो एसा न मानें तो सृष्टिका उच्छेद होजाय

॥ २४० ॥ जो एसी भावना हो कि इस जीवनमेंही दुःखरहित तन मनका आनंद रहे इसीका नाम मुक्ति हे; सोभी नहीं बनता; क्योंकि वर्तमानमें याने जन्मसे लेके मरणपर्यंत षडविकारी जो शरीर (३५० । ३५५ । ३७०) उसमें ओर तत्संबंधी वा तत् परिणाम जीव–अंतःकरण–मगजमें जब तब कुछ न कुछ दुःख अवश्य होगा; अतः सर्वथा जीवनानंद होना, यह मंतव्य असिद्ध हे ॥२४१॥ एवं अन्य अयुक्तभावनाके संबंधमें यथायोग्य योजलेना चाहिये[१] ॥ २२५ से २४१ तक ॥

---

[१]मुक्तिमें स्त्री आदिका यथेच्छा भोग होता हे, सगे संबंधी मिलते हें ॥ मोक्षमें नाना प्रकारके भोग भोगते हें ॥ भूत, प्रेत, देवादि सेवक मिलते हें ॥ नारायणकी पादसेवा मिलती हे ॥ पुरुषोत्तम भगवानके जो अधर उनका पान होता हे ओर अलौकिकशरीर मिलके रासलीलाका भोग होता हे ॥ श्री स्वामीनारायणके दर्शन करते रहते हें ॥ ई. ई. १,

स्वर्गमें स्वामी (इसु मसीह) के सत्य-हित-स्नेहमें नित्यानंदमें रहते हें, देव भावको प्राप्त होते हें, भोगभोगे जाते हें ॥ स्वर्गमें अच्छी हूरें (अपसरा) ओर छोकरे, मध, दूध इत्यादि मिलतें हें ॥ ई. २,

ईत्यादि संप्रदायवालोंकी मुक्ति, विश्वासु–अज्ञानमंडलके वास्ते छोडदेना चाहिये-उनकी यहां चर्चा करना उचित नहीं हे.

मुक्ति हुये पीछे शून्य होके बेठते हें ॥ तमाम जगतके देखते रहते हें ॥ प्रकृतिसे जुदा हुवा चेतन स्वस्वरुपमेंही स्थित रहता हे ॥ जीव-चेतनकी अविद्या, भ्रांति निवारण होके अपने ब्रह्मानंद स्वरुपमें रहता हे, फेर उसे अविद्या नहीं लगती, पुनर्जन्ममें नहीं आता ॥ मनका संबंध छूटनेसे आत्मा ज्ञानशून्य–स्तब्ध रहता हे ॥ शरीरके नाश हुये जीव नहीं रहता ॥ इत्यादि यौक्तिकोंकी मुक्ति हे. इनका निर्णय अ. ३ अ. ४ में हे तथा बस. में हे. ३ ॥

ओर लोकलुभावनी संप्रदाइयोंके मोक्षकी चर्चा दर्शनसंग्रहमें वांच आये हो, इसके संबंधमें यह बातभी भूलने योग्य नहीं हे.–अर्थात यदि लोकलुभावनी मुक्ति न बताईजाती, तो रीफारमरोंका उद्देशभी पूरा न होता. अर्थात अज्ञानमंडल नीति, मर्यादा ओर स्वधर्मको मान न देते, पूर्वके दुःखविशेष ओर विषयासक्तिसे जराभी मुक्त न होते. यथा–अरब जेसे जंगली देशमें उनकी रुची–भावनावाला स्वर्ग बतायागया तो अद्वितीय ईश्वरपर भावना आगई, नबीमुहम्मद साहेब बहुत कुछ

(शं.) जेलमेंसे छूटने पहेले केदीको केदसे मुक्त होनेका अनुभव केसे होसकता हे. (उ.) जेलमें आनेके पहेली स्थितिका अनुभव हे. यदि जेलमेंही जन्मा तो मुक्त होनेकी व्याप्ति नहीं मिलती; क्योंकि वेसेही मरजानेकी व्याप्ति मिलती हे. पूर्वकी छूट (स्वतंत्र) विना बंध शब्दकीही आपत्ति नहीं होती. तद्वत् छूट मिलने विना. (शं.) शब्दप्रमाण साक्षी देता हे. (उ.) मुक्तिके स्वरुप ओर तत् प्राप्तिके साधन तथा जीवके स्वरुपसंबंधमें सब शब्द एक संमत नहीं हें, किंतु उनमें मतभेद हे; इसीसे जान पडता हे कि उपर कहे अनुसार विकल्पादि रुप हे. ओर किसका शब्द मान्ना यह विवादित विषय हे तथाहि शब्द अधिकरणयादमें लीजे. विश्वाससे इतर संतोष नहीं मिलता. जो मुक्ति स्वाभावतः होती हो वा अन्यके संसर्ग (उपाधी वा संबंध)से होती हो, तो अव्यवस्था रहती हे, अर्थात पुनः स्वाभाविक वा संसर्ग होनेसे बंध होगा. इसलिये वोह मुक्ति न हुई ॥ जो मरण (नाश)हीका नाम मुक्ति मानें तोभी अव्यवस्था होती हे; क्योंकि वोह किसीको इष्ट न होनेसे उसके साधनोंमें प्रवृत्ति न होना चाहिये, परंतु लोकमें नित्य सुखप्राप्ति वास्ते प्रयत्न देखते हें ॥ जो जीवोंको संख्यासे अनंत मानके मोक्षसे अनावृत्ति मानें तोभी सृष्टिके उच्छेद होनेका समय आजाना चाहिये; क्योंकि जीव जीतने हें उतनेही हें. जो एसा मानें कि जीव अनादिसे मोक्षमें जाते हें वेभी अनंत हें ओर जो बंध हें वेभी अनंत हें, इसलिये सृष्टिका उच्छेद न हुवा ओर न होगा, तो यह बात असंभव होनेसे अमान्य हे; क्योंकि अनंतत्वका अभाव हे. यदि ईश्वर ओर आकाश अनंत होनेसे जीवभी अनंत हें, एसा मानें तो सोभी नहीं बनता; क्योंकि जो जितने हें, उतने ही हें; अतः अनंतत्व क्या? अल्प बुद्धिकी अपेक्षासे कथनमात्र हे. २ । १४९ याद कीजिये. तथाहि अनंत बंध-१०० मुक्त=अनंतके; एसा नहीं होसकता. ओर जो दोनों (बंध-मुक्त) को अनंत मानें तो दो अनंत नहीं होसकते; क्योंकि अनंत--अनंत=० ओर अनंत+अनंत=अनंतके ओर अनंत--१००=अनंत--१०० के ओर अनंत+१००=अनंत+१०० के. अर्थात दो अनंत मान्ना बालकोंकी कहानी समान हे; इसलिये बद्ध ओर मुक्त संख्यासे सांतही ठेरेंगे. तथाहि आपके हठसे अनंत मानभी लेवें तोभी अनंत जीवोंके उपयोग वास्ते अनंत प्रकृतिकी अपेक्षा हे, यह स्पष्ट हे; परंतु मोक्षमें गये हुये

सुधारा करसके ओर करासके; जो एसा स्वर्ग न बताते तो उनका उद्देश पूरा न होता. एवं अन्य संप्रदायोंके प्रसंगमेंभी यथायोग्य सारदृष्टिसे विचारणीय हे.

जीवोंको प्रकृतिकी अपेक्षा नहीं हे; इसलिये प्रकृतिका उतना अंश निकम्मा होताजायगा; इसप्रकार प्रकृति निष्फल होते होते उसके अनंत अवयव निकम्मे होजायँगे; परंतु निष्फलत्वका अभाव हे (२ । १२७ देखो). ओरभी आजतक प्रकृतिका निष्फलत्व नहीं जानपडा हे; इसलिये मोक्षसे अनावृत्ति मान्ना कल्पना वा भावना मात्र हे. तथाहि अनावृति पक्षमें मुक्त जीव निकम्मे पडे रहेंगे; क्योंकि अपना अपनेमें संयोग ओर उपयोग नहीं होता ओर प्रकृतिका वहां संबंध नहीं हे. जो प्रकृतिका संबंध (वैभव) मानें तो बंधकी प्राप्ति होजायगी, तथा सब मुक्त हुये प्रकृति संबंद्ध होनेसे दूसरी संसार बनजायगी; इस रीतिसे मुक्तिसिद्धांत न रहेगा. ओर जो मुक्तजीव परस्परका उपयोग करेंगे, एसा मानें तो वे वीतराग, सजातीय शुद्ध हें उनके परस्परके संबंधसे कोई उपयोग नहीं होसकता. जो आनंद भोगना, यही उपयोग मानें तो परिच्छिन्न वस्तु नित्य एक स्थितिमें नहीं रहसकती, उसकी स्थितिका परिवर्तन होता रहता हे (अ. २ । ३६७); अतः एसाभी नहीं होसकता. सारांश अनावृत्ति पक्षमें जीव, ब्रह्म-ईश्वर ओर प्रकृति निष्फल होजाते हें, जोके असंभव हे.

उपरोक्तविषय (जीवको अणुचेतन, विभुचेतन वा उपहित चेतनांश मानो) सर्वपक्षोंमें लगता हे.ओर जो जीवको सादि मध्यम मानके अनावृत्ति मानें तोभी वही परिणाम आजाता हे तथा उसके मूल उपादानका जबतब अंत आजायगा—तब नवीन जीव न बनेंगे ओर पूर्वोक्त दोष आजायगा. ओर जो जीवोंको अनादिसांत मानें तबतो अनावृत्ति कहनाही नहीं बनता. ओर जो जीवोंको सादिसांत मानें तो अनावृत्ति क्या उनके लिये मोक्षपदका उच्चारणही नहीं होसकता. इसलिये यदि मुक्तिवाद हो तो मुक्तिसे **आवृत्ति, आवृत्तिही** मान्ना होगा—अर्थात एक अवस्थाविशेष हे ओर वोहभी नाशवान होगी. (बस. सू. १२७ । ३६७ में ओर दर्शनसंग्रहगत वेद प्रसंगके अं. ९ मेंभी यहही लिखागया हे) ॥

परंतु मोक्षसे आवृति होनेमें न्यायानुसार कोई हेतुभी नहीं मिलता; कारण के मुक्ति तो जबही होसकती हे कि जीव सर्वथा निर्दोष--पापरहित शुद्ध हो, जन्ममरणमें आनेकी सामग्री (रागादि) उसको न हो. ओर मुक्तिमें गये पीछे दोष उत्पन्न होनेकी सामग्री नहीं होती. कर्मउपासना नामके साधनसे यदि मुक्ति होना मानें तो आवृत्ति होगी; क्योंकि कर्म अभ्यासजन्य फल सादिसांत होता हे. (बस. २१९ से २२२ तक देखो) ॥ मुक्तिसे पीछे संसारमें आना पडता हो तो वोह

सुषुप्तिरुप वा वैभववाली एक अवस्था हे; नहींके मोक्ष ॥ मुक्ति होतीही नहीं हे- एसा सिद्धांत मानें तो लोकके सुख ओर लोकनीतिका भंग होवे, एसीभी संभावना हे ॥ क्योंकि लोकदृष्टि एसी हे; तथा सृष्टिउत्पत्तिसे लोकमें वेसे संस्कार हें, तिसका साधन नीति, शुभकर्म ओर उपासनादि हें, एसी भावना हे. जब मुक्ति नहीं, एसी भावना होजावे तो तदर्थ जो सुखकारक नीति, कर्मउपासना हें उनमें प्रवृति न होगी, उसका परिणाम दुःख होगा. यद्यपि मुक्तिसिद्धांतको न मान्नेवालेभी नीति–शुभकर्म–शुभमर्यादामें चलते हुये देखते हें ओर उनको सुखीभी पाते हें, तथापि एसे विरल; इसलिये अपवाद बोधनार्थ संभावना पदका प्रयोग हे. तथापि यह प्रसंग सर्वसामान्यार्थी हे, इसलिये सूत्रका आशय ठीक हे.–अर्थात मानवमंडलको धर्म-नीतिकी अत्यावश्यकता हे, कारणके सुखप्रद हें; ओर उनकी प्रवृति तथा प्रवर्तितकी रक्षावास्ते यह मुक्तिसिद्धांत--उच्च हेतु (पुलिसमेन) हे. (शं.) सो कल्पित वा वास्तविक ? (उ.) वास्तविक. जबतक जीवको कोईभी प्रकारसे साधन संपन्न होनेपर जीवादिका बोध न हो, वहांतक इसको बंधरुप स्थिति रहेगी. परंतु जब जीवादिकका बोध होजाता हे तब पीछे विज्ञानमें प्रवृति होती हे; याने विवेकख्यातिके अनुकूल उस ज्ञानवानका वर्तन होगा, एसा होनेसे बंध--स्थितिका अभाव होजायगा; क्योंकि वासनाके अभाव हुये विना पुनर्जन्मके चक्रमेंही रहना पडता हे, यह बात इस जीवनमेंही अनुभवमें आजाती हे; अतः बंधनिवृति ओर मोक्षप्राप्तिका निषेध नहीं होसकता–अर्थात मुक्तिसिद्धांत कल्पित नहीं हे; किंतु प्रचलितभावनामात्रका निषेध हे; कारणके मुख्य विषयभावनामान्यसे ओर प्रकारका अर्थात अन्य भाववाला हे सो आगे वांचोगे; भू. मेंभी विस्तार हे. तथापि आपके कहे अनुसार मुक्तिसिद्धांतको कल्पित मानें तोभी लाभिष्ट हे; कल्पनाअधिकरण अ. २ । ओर अवतारादिप्रकरण अ. १ ध्यानमें लीजिये. शेष भू. ओर अ. ४ में ॥ २२५ से २४१ तक ॥

साधन.

(मुक्ति) साधनभावनाभीही (अ.) ॥ २४२ ॥ **मोक्षके स्वरुपमें विवाद होनेसें** ॥ २४३ ॥ **अकथ्य मनानेसे** ॥ २४४ ॥ **सादि कर्म उपासना योगका फल सांत होनेसे** ॥ २४५ ॥ **ज्ञानबाध्य बंध भ्रांतिरुप होनेसे** ॥ २४६ ॥ **स्वरुप ज्ञानके अभावसे** ॥ २४७ ॥ **कृपापक्षमें विषमता प्राप्तिसे** ॥ २४८ ॥ **विश्वासमें अनेकांतकी आपात्तिसे** ॥ २४९ ॥

अर्थ.—मोक्ष प्राप्ति संबंधिनी जो प्रचलित साधनभावना सोभी निश्चय होती हे. साधनभावना अर्थात (१) केवल कर्मसे मुक्ति. (२) केवल उपासनासे मुक्ति. (३) केवल योगसे मुक्ति. (४) केवल ज्ञानसे मुक्ति. (५) १ + २ वा १ + ३ वा १ + ४ वा २ + ३ वा २ + ४ वा ३ + ४ वा १ + २ + ३ + ४ से (७ पक्ष) मुक्ति. (६) इष्ट कृपासे. (७) वा विश्वासभावनासे मुक्ति होती हे. यह १३ मंतव्य वा भावना अनेक पक्षकारोंकी जुदाजुदा हें; उनकी असिद्धि हे ॥ २४२ ॥ क्योंकि मोक्षके स्वरुपमें तमाम मोक्षवादियोंका मतभेद ओर विवाद हे, तो फेर उनके मान्य साधनका निश्चय केसे होसकता हे ॥२४३॥ ओर मोक्षको अकथ्य कहते हें, इसलियेभी उसके साधनका निश्चय नहीं करसकते ॥ २४४ ॥ यदि कर्म, उपासना वा योगसे अथवा इनगत दो दो वा तीनोंके समुच्चयसे मोक्ष होती हो तो वे सादि हें; अतः उनका फलभी सांत होगा याने मोक्ष सादिसांत होगी जो कि इष्टविषय नहीं हे; इसलिये कर्मादि, नित्यानंदरुप मोक्षके साधन सिद्ध नहीं होते ॥ २४५ ॥ ज्ञानसे सत्यबंधका बाध नहीं होता किंतु भ्रांतिरुपबंध (अविवेकरुप, कल्पितरुप वा अध्यासरुप) का बाध होता हे; अब जो बंध भ्रांतिरुप हो तो मुक्तिभी भ्रांतिरुप ठेरेगी; परंतु रज्जुके सर्प वा मृगजलके जेसी मुक्ति इष्ट नहीं; अतः ज्ञानरुप साधनका आदर नहीं होता ॥२४६॥ अपने स्वरुपके ज्ञानसे (आत्मज्ञानसे) मोक्ष होना मानें तो सू. ३७५ । ४४५ से विरुद्ध हे; इसलिये स्वरुपज्ञान मोक्षका साधन नहीं मानाजासकता ॥ २४७ ॥ कर्मादि एकएकके अभावसे उनके समुच्चयकाभी निषेध होगया, एसा जान्ना चाहिये ॥ २४५ से २४७ तक ॥

इष्ट (ईश्वर) जिसपर कृपा करे उसकी मोक्ष होजाती हे; इसप्रकार इष्ट कृपाको मोक्षकासाधन मानें ओर कर्मादिको न मानें तो ईश्वरमें विषमतादोष[1] आता हे; परंतु ईश्वरमें यह दोष नहीं होसकता; इसलिये केवल कृपाही मोक्षका साधन हो, एसा सिद्ध नहीं होता ॥ २४८ ॥ जो किसीपर विश्वास करलें अर्थात अमुक हमारे पाप क्षमा कराके हमको मुक्ति दिला देगा, एसा मानें[2] अथवा हम

[1]एकको मुक्ति देना, दूसरेको नहीं, खुशामद करनेवाले याने प्रार्थना-स्तुति करनेवालेपर कृपा करना, अन्यपर नहीं ? इत्यादि विषमता ॥ [2]किरानी, कुरानी, अवतारवादिओंका विश्वास प्रसिद्ध हे, उससे अनेकांतत्व जान लीजिये ॥ एक बलिदान (हिंसा)से, दूसरा अहिंसासे मोक्ष होना बताता हे; इत्यादि मतभेदभी हे.

ब्रह्मस्वरुप हैं वा नित्यमुक्त हैं एसा विश्वास (भावना--द्रढता--श्रद्धा) कर लें तो मोक्ष होजायगी, एसा मानें तो अनेकांतत्वकी प्राप्ति होती हे अर्थात क, ख पर ओर द, ज पर विश्वास रखता हे, ख ओर ज के मंतव्यका विरोध हे, इसप्रकार विरोध ओर अनेकांतपना प्राप्त होता हे ओर पापीभी 'में मुक्त' एसा भाव करनेसे मुक्त होवेगा एसे, अव्यवस्था प्राप्त होती हे; इसलिये विश्वास वा भावनामात्रभी मोक्षका साधन हे, एसा सिद्ध नहीं होता ॥ २४९ ॥ एवं अन्य अयुक्तसाधन भावनाके संबंधमें यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ २४५ से २४९ तक ॥

उपरोक्त भावनामान्यसाधन जिनजिनको संमत हैं उनके नाम यह हैं—

(१) कर्मसे मैमांसिक ओर जैनभी. (२) उपासनासे पुराणि, विश्वासी. (३) योगसे क्षणिकबौद्ध (याने संयमयोग हुये वासना–स्फुरण न होनेसे निर्वाण एसे मानता हे). (४) योग ओर ज्ञान याने विवेकख्यातिसे सांख्य, योग. (५) सामान्यादिपदार्थके ज्ञानसे वैशेषिक, प्रमाणादि पदार्थसे न्याय. (६) जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान (अहंब्रह्मरुप ज्ञान, जगत मिथ्या एसे ज्ञान)से वा ब्रह्मज्ञानसे वेदांत. (७) उपासना ज्ञानसे बौद्धायन. (८) कर्म उपासना ज्ञान तीनोंसे नवीनपुराणि ओर कोई पुराणि. (९) इष्टकृपासे शुद्धाद्वैत ओर विश्वासी (१०) कर्मज्ञानसे दिगंबरजैन ओर (११) विश्वाससे विश्वासी ओर कोई पुराणि मानते हैं ॥ मोक्षके स्वरुपमें मतभेद होनेसे साधनमें मतभेद हे. इसप्रसंगमें सहकारी, साक्षात, विकार, उपासना ओर आशा इन सूत्रोंकोभी ध्यानमें लेना चाहिये उससे ज्ञात होजायगा कि साधन यथाऽधिकार होता हे[१].

मुक्ति होनेका साधन क्या हे, सो अनिर्वचनीय अकथ्य हे; यह बात आगे वांचोगे ॥ २४५ से २४९ तक ॥

उत्पत्ति अनुत्पत्ति.

सृष्टि उत्पत्यनुत्पत्ति भावनाभीही (अ.) ॥ २५० ॥ जडनियमकी आपत्तिसे ॥ २५१ ॥ अक्रिय ओर देशी नियमसे ॥ २५२ ॥ स्वाभाविकर्मे व्यापारकी अहेतुतासे ॥ २५३ ॥ ओर निरपेक्ष होनेसे ॥ २५४ ॥ परिच्छिन्नमें वेसी योग्यता न होनेसे ॥ २५५ ॥ सेवक द्वारा अव्यवस्था

[१]कर्म, उपासनां, विवेक, वैराग्य, शमादि, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यास (योग), उससे विवेकख्याति, उससे वासनाका अभाव, उससे मोक्ष, एसा कुछ प्रकार हे, परंतु वोह अनुभवकाही विषय हे--कहनेमें नहीं आता.

होजानेसे ॥ २५६ ॥ अनभाव नियमसे ॥ २५७ ॥ संयोगजमें अनादित्वके अभावसे ॥ २५८ ॥ स्वाभाविकमें जडनियम बाधक होनेसे ॥२५९॥ ओर व्यवस्था दर्शनसे ॥ २६० ॥ इतिहास ओर सर्गकी प्राप्तिसे ॥२६१॥ ओर अनेक कल्पनाका विषय होसकनेसे ॥ २६२

अर्थ.—सृष्टि उत्पन्न होती हे वा उत्पन्न नहीं होती इस विषयमेंभी प्रचलितभावनायें निश्चय होती हें [1]अर्थात (१) प्रवाह, (२) आरंभ, (३) अनादि, (४) स्वाभाविक उपचयापचय, यह चार भावना चल रही हें, उनमेंसे कोइभी मान्य हे. यह मंतव्य जुदाजुदा पक्षकारोंको स्विकृत हें. इन मंतव्योंकी असिद्धि हे ॥ २५० ॥

(१) सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति ओर प्रलयका अनादिसे प्रवाह हे-यह मंतव्य द्वैतवादिको, ईश्वरवादिको, जडवादिको, विकासवादिको ओर अभिन्ननिमित्तोपादानवादिको संमत हे.

(२) इस सृष्टिसे पहेले कोई सृष्टि नहीं थी, ईश्वरने यह अभावसे उत्पन्न की हे, इसलिये सृष्टिका आरंभ हे; यह मंतव्य विश्वासिओंको संमत हे.

(३) सृष्टि प्रवाहसे नहीं होती ओर न इसका आरंभ हे, किंतु पृथ्वी सूर्य वगेरे वर्तमान जेसे अनादिसे हें, इनकी उत्पत्ति नाश नहीं हे, अनादिसे स्वभावतः गतिमें रहते हें ओर पृथ्वी स्थिर हे. यह मंतव्य जैन, मैमांसिक ओर एक जडवादिकोभी संमत हे. (४) अनादिसे ग्रह उपग्रह अपने आप उपचयापचय रुप होते रहते हें—जेसे मारवाडके टीबेके अवयव इधर उधर होके उत्पन्न नाश होते रहते हें वेसे ग्रह उपग्रह शनैः शनैः बिगडते ओर पेदा होते रहते हें. यह मंतव्य एक जडवादिका हे. यह सब मंतव्य असिद्ध हें ॥ २५० ॥ (अब उक्तमंतव्यकी असिद्धिमें हेतु देते हें[2]).

क्योंकि जो सृष्टिउत्पत्तिलयका प्रवाह अपने आप होता रहता हो तो जड (२१६) नियम बाधक होता हे अर्थात जडमें सानियम व्यवस्थापक बुद्धागति

[1]सू. १९५की नोट वांचो, याने अपनी भावना अनुसार मानलेना.

[2]इनचारों पक्षोंकी असमीचीनता, मुख्य (२७२), निमित्त (३२०), जड (२१६), प्रवाह (३६७), कार्य (३५२), अक्रिय (१६८), अनाधार (३३२), अनभाव (३१०), आधाराधिकरण ओर निरवयवाधिकरणसे स्पष्ट होजाती हे. यथाप्रसंग लगा लेना.

होनेका अभाव हे ओर सृष्टिके कार्य सनियम व्यवस्थापूर्वक देखते हैं; अतः स्वयं प्रवाहकी असिद्धि हे ॥ २५१ ॥ जो सृष्टि उत्पत्ति स्थिति ओर लयका प्रवाह विभु ईश्वरद्वारा मानें तो विभुमें क्रिया ओर इच्छा नहीं होसकती (१६८) ओर देश विना गति नहीं होती (२१९) विभुसे पर, देश नहीं हे ओर देश, गति तथा इच्छाके विना कर्तृत्व नहीं होसकता (२१९); इसलिये विभु ईश्वरद्वारा सृष्टिके प्रवाहकी असिद्धि हे. एवं ईश्वर अपने आप जगतरुप होता रहता हे इस पक्षकीभी उक्त नियम ओर १७४ से असिद्धि हे ॥ २५२ ॥ ईश्वरके ज्ञान, शक्ति ओर क्रिया स्वाभाविक हैं अतः उत्पत्ति लयका निमित्त हे, एसा मानें तो उसमें व्यापार करनेका कोई हेतु नहीं मिलता अर्थात वोह निरपेक्ष हे--उसको इच्छा कामना न होनेसे उसकी उत्पत्तिलय करनेमें प्रवृत्ति नहीं होसकती. ओर जो मानें तो उपरोक्त सूत्र बाधक होंगे, अतः ईश्वरद्वारा प्रवाह नहीं ॥ २५३ ॥ तथाहि ईश्वर निरपेक्ष हे. उपादान, जीवोंके कर्म वा अपना विनोद—लीला, इनकी अपेक्षासे सृष्टिकर्ता हो तो उसमें ईश्वरत्व न होगा; अतः ईश्वरद्वारा प्रवाह, इस मंतव्यकी असिद्धि हे ॥ २५४ ॥ जो क्रिया, इच्छाके अभाव रहनेसे ईश्वरको परिच्छिन्न मानके उसद्वारा सृष्टिका प्रवाह मानें तो परिच्छिन्नमें जगत कर्तृत्वकी योग्यता सिद्ध नहीं होती; अशक्ति (४०१), असर्वज्ञ (४०६), अनाधार (३२०) ओर आधारअधिकरण देखो; अतः परिच्छिन्न ईश्वरद्वारा प्रवाहकी असिद्धि हे ॥२५५॥ जो परिच्छिन्न ईश्वर देवताओंद्वारा जगतउत्पत्यादिका कारबार करता हो एसा मानें तो सेवकोंद्वारा अव्यवस्था होजाना स्पष्ट हे. (द. सं. में थीओसोफी मतका अपवाद देखो), परंतु जगतमें व्यवस्था देखते हैं, अतः देवताओंद्वारा प्रवाहपक्षकी असिद्धि हे ॥ २५६ ॥

इससृष्टिसे पूर्व कभीभी सृष्टि न हुई ओर नथी, ईश्वरने अपनी मरजी ओर अपनी शक्तिसे अभावमेंसे उत्पन्नकी याने सृष्टिका आरंभ हे, एसा मानें तो अनभाव (३१०) नियमसे यह मंतव्य असिद्ध ठेरता हे; अतः सृष्टिका अनुपादान नवीनआरंभ सिद्ध नहीं होता ॥ २५७ ॥ जो ग्रह उपग्रह याने सृष्टि अनादिसे एसीही हे, एसा मानें तो संयोगजमें अनादित्वका अभाव होता हे; ग्रह उपग्रह सब संयोगज हैं; अतः इनका आरंभ मान्ना पडता हे; इसलिये अनादित्वभावना असिद्ध हे (यहां आधार अधिकरणकोभी ध्यानमें लेनाचाहिये) ॥ २५८ ॥ अनादिसे स्वभावतः ग्रह उपग्रहोंके उपचयापचय होने (शनैः शनैः बन्ने बिगडने)

का प्रवाह हे, एसा मानें तो जडनियमके विरुद्ध हे (२२४ भी देखो); अतः नियमपूर्वक स्वाभावतः उपचयापचय होता हे यह भावनाभी सिद्ध नहीं होती ॥ २५९ ॥ तथाहि सृष्टिके कार्योंकी व्यवस्था देखते हें, जो अबुद्धा (जडकी स्वयंगति) गतिद्वारा सृष्टि होती तो एसा नहीं होता; इसलिये स्वभावतः उपचयापचय, इस भावनाकी असिद्धि हे ॥ २६० ॥

सृष्टि उत्पत्तिके क्रमका इतिहास ओर सृष्टिका इतिहास इन उभयकी प्राप्तिका अभाव हे याने मनुष्यको उसकी प्राप्ति अशक्य हे (६९३ । ६९५); इसलिये सृष्टिकी उत्पत्ति ओर स्थितिका जो कथन हे वोह परीक्षा हुये विना मान्य नहीं होसकता; अतः उक्त भावनाओंकी असिद्धि हे ॥ २६१ ॥ ओर सृष्टि उत्पत्ति, ओर पीछे जो उसका क्रम, इन दोनों विषयमें अनेक कल्पना होसकती हें, तो उनमेंसे सत्य क्या, एसा निश्चय नहीं होता (४५६ याद करो) इसलिये उक्तभावना मान्य नहीं होसकती ॥ २६२ ॥ सृष्टिकी उत्पत्तिमें इतनी कल्पना संभव होसकती हें--(१) ग्रहोंकी उत्पत्ति ओर नाश क्रमशः। (२) उत्पत्ति नाश एकदम. (३) अमुक ग्रहका प्रलय अन्यकी उत्पत्ति एसे क्रमशः उत्पत्ति प्रलयका प्रवाह. (४) आत्यंतिक प्रलय. (५) कभी अग्निसे कभी वायुसे उत्पत्ति प्रलयका प्रवाह. (६) प्राणिकी उत्पत्ति कभी उद्भिज, कभी स्वेदज, कभी अंडज ओर कभी जरायुजसे. (७) कभी अमैथुनी, कभी मैथुनी सृष्टि. (८) कभी नरमादा जोडिये, कभी जुदाजुदा पेदा होना. (९) परमाणुपुंज एकत्र, उनमें अथडाअथडी, उनमें सजातीयका स्नेहाकर्षणसे मिलना तदंतरगत विजातीयोंका बंधाना, गरमी उत्पन्न हुये उसके साथ जुत्थ निकलना, दुमदार (पूंछडीये) तारोंके समान स्थितिमें आना, फेर ग्रह उनसे उपग्रह होना, उनके ठंडे पडनेपर उनमें बनस्पति पीछे प्राणियोंका वंश चलना इत्यादि. फेर कालांतरमें न्यून होते होते अपने उपादानरुप ग्रहमें मिलना एसे सबका प्रलय होके पूर्ववत किसी देशमें परमाणुका पुंज होना ओर पुनः पूर्ववत् सृष्टि उत्पत्ति क्रम चलना. (१०) पारसियोंके वंदीदादग्रंथमें, याहुदियोंके तोरतग्रंथमें, खिस्तिओंके बायबलमें, मुसलमानोंके कुरानग्रंथमें ईश्वरने कहा होजा ओर सृष्टि होगई, एसे ६ दिवसमें अमुकके पीछे अमुक (आकाश वगेरे) पेदा किये; एसे लिखा हे. (११) वेदोपनिषदोंमें ईश्वरेच्छासे आकाश उससे वायु उससे अग्नि उससे जल उससे पृथ्वी उससे बनस्पति उससे शरीरादि, एसे लिखा हे ओर कहीं दूसरा प्रकारभी लिखा हे. (१२) मनुस्मृति, पुराणोंमें अभिन्ननि-

मित्तोपादानरुप ओर यथाकर्म सृष्टि लिखी हे. (१३) थीओसोफी, आरंभमें ब्रह्मके ३ परिणाम मानके पीछे देवताओंद्वारा अनेक गोले होना उनद्वारा उनकी व्यवस्था होना मानती हे. (१४) एवं अनेकपक्ष, पक्षकारोंके मान्यग्रंथोंमें हें. परंतु वे मंतव्य सयुक्त सिद्ध नहीं होते. इस ग्रंथका विषय कारणवाद हे, कार्यवाद नहीं हे; इसलिये कारणवादकी कल्पनाका वर्णन संक्षेपमें किया हे, कार्यवादका नहीं. सृष्टि उत्पत्ति मनुष्यके पूर्वकी हे, इसलिये सृष्टिकी उत्पत्ति " यूं ही हे " एसा मान्ना कठिन हे. इस विषयमें अपनी कल्पनाका दावा करना भूलमें आ-पडना हे ॥ २५० से २६२ तक ॥

अब आगे सृष्टिकी स्थिति ओर प्रलयका संक्षेपमें विचार होगा.––

प्राणि उत्पत्ति.

प्राणि आरंभके देशकाल ग्रंथोक्त मान्यही अन्य साधन न मिलनेसे (अ.) ॥ २६३ ॥

अर्थ.—सृष्टि उत्पत्ति पीछे पृथ्वीमें प्रथम वनस्पतिका आरंभ हुवा, उसपीछे प्राणि (कीडे, मकोडे, पशु, पक्षी, तिर्यक, मनुष्यादि) उत्पन्न हुये वा प्रथम प्राणी पीछे वनस्पति वा उभयसाथ पेदा हुये, इन पक्षोंमेंसे वे प्राणि प्रथम किस देशमें उत्पन्न हुये ओर उनकी उत्पत्ति हुये कितना समय हुवा, यह दोनों बात मान्यग्रंथोंमें जेसे लिखी हें उस अनुसारही मान्ना चाहिये, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि उनग्रंथोंसे इतर इस विषयका साधन अन्य नहीं मिलता. यह मंतव्य उनउन ग्रंथावलंबियोंको संमत हे. यह मंतव्य सू. ४०६ । ४०८ । ४७० । ६९३ । ६९५ । ११५ । ९५ । ४५६से असिद्ध रहता हे; क्योंकि ग्रंथोंमें मत-भेद हे, मनुष्यकी उत्पत्तिके पूर्वकी बात हे ओर विकासवाद तथा विज्ञानवादमेंभी इस विषे मतभेद हे; अतः ग्रंथोक्तमान्य नहीं एसा सिद्ध होता हे ॥ २६३ ॥

प्राणि आरंभमें किस देशमें उत्पन्न हुये ओर उनकी उत्पत्तिको कितना समय हुवा, इन उभयका बयान अ. १ में दर्शनसंग्रहगत कालक्रममें तथा विकासवाद प्रकरणमें लिखा गया हे, वहांही सब पक्षकारोंके नाम हें; इसलिये यहां वर्णन नहीं किया हे ॥ २६३ ॥

स्थिति.

सर्वज्ञसूचक होनेसे सृष्टि उत्पत्ति--स्थिति काल निगमोक्तही (अ.) ॥ २६४ ॥

अर्थ.—दृश्यब्रह्मांड उत्पन्न हुये पीछे कितने कालतक स्थित रहेगा याने उत्पत्ति ओर प्रलय होनेका दरमियानी कितना काल हे, सो काल मान्यग्रंथोंमें जो लिखा हे सोही मान्य हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि वे ग्रंथ सर्वज्ञोंके कहे हुये हैं. यह मंतव्य ईश्वरीय वा सर्वज्ञकृत ग्रंथ हैं, एसे मान्नेवालोंको संमत हे. इस मंतव्यकी असमीचीनता सू. ४०६ । ४०८ । ९५ । १०५ । ४५६ से स्पष्ट होजाती हे ॥२६४॥ क्योंकि जिन ग्रंथोंको सर्वज्ञकृत मानते हैं उन विषे इस विषयमें मतभेद हे, स्थितिकालका योग्यप्रमाण नहीं मिलता, इस विषे जडविकासवादमें भी मतभेद हैं; अतः ग्रंथोक्त मान्यही एसा सिद्ध नहीं होता; इसविषे जो मतभेद हे उसका पक्षकारोंके नामसहित अध्याय १ में बयान आचुका हे. कोई पक्ष वा नियमग्रंथ सृष्टिकी उत्पत्ति लयका प्रवाह वा आरंभही नहीं मानता तो फेर उत्पत्ति स्थिति के कालकी तो बातही क्या करना. जो उत्पत्ति स्थिति लयका प्रवाह वा सृष्टिका आरंभ मानते हैं उनके ग्रंथोंमें कालविषे मतभेद हे; अतः निगमोंमें जो काल कहा उसपर केसे आधार रखाजाय? नहींही ॥ २६४ ॥

प्रलय.

सृष्टि उत्तरमें अभावरुपा ही अभावजन्य होनेसे (अ.) ॥२६५॥

अर्थ.—दृश्यब्रह्मांड उत्पन्न हुवा हे, इसलिये नाश होगा, नाश हुये अभाव याने शून्यरुप होजायगा एसा निश्चय होता हे; क्योंकि अभावसे उत्पन्न-पेदा हुवा था. यह पक्ष विश्वासियोंको संमत हे. इसकी असिद्धि सू. ३१० । २७० । २८२ । २८५ । २८७ से होजाती हे अर्थात किसी भावरुपसे उत्पत्ति हुई हे; अतः उसीरुप होना बनता हे, अभावरुप नहीं ॥ यदि महाप्रलय होती हो तो सृष्टि अपने उपादानरुप होजाय, एसी संभावना हे. अभावरुप नहीं ॥ २६५ ॥

(सृष्टि उत्तरमें) **ब्रह्मरुपाही तद्परिणाम होनेसे** (अ.) ॥२६६॥

अर्थ.—सृष्टि (दृश्य ब्रह्मांड) उत्तरमें (नाश हुये) ब्रह्मस्वरुपही होगी एसा निश्चय होता हे; क्योंकि उसीका परिणाम (रुपांतर) हे. यह पक्ष अभिन्ननिमित्तोपादानवादिओंका (शुद्धाद्वैत, सूफी, थीओसोफी ओर एक अद्वैतवादिका) हे. इसकी असमीचीनता सू. १७४ । १७६ । २०० । ३०२ । ३४० । ३२८ । १८० से सिद्ध होती हे अर्थात जगत निरवयव, निराकार ब्रह्मका परिणाम न होनेसे उत्तरकालमें ब्रह्मरुप न होगा ॥ २६६ ॥

(सृष्टि उत्तरमें) **पूर्ववत तत्वरुपसे, गोल पुंजाही** (अ.) ॥ २६७ ॥

अर्थ.—सृष्टि (दृश्य ब्रह्मांड) अपने उत्तरकालमें (नाश हुये) सृष्टिके तत्व जेसे उत्पत्तिके पूर्व गोल पुंजरुप थे वेसीही होजाती हे, एसा निश्चय होता हे. यह पक्ष किसी नवीन प्रकृतिवादि (यूरोपके जडवादि) को संमत हे; इसकी असिद्धि आधारअधिकरण ओर जड नियमसे होजाती हे; क्योंकि इस पक्षमें किसी सक्रिय सर्वशक्तिमानका स्वीकार नहीं हे ॥ २६७ ॥

(सृष्टि उत्तरमें पूर्ववत् तत्वरुपसे अव्यक्तरुप) **अव्यक्तरुपमें प्रसरित वा बीजरुपाही** (अ.) ॥ २६८ ॥

अर्थ.—सृष्टि अपने उत्तर याने प्रलयकालमें पूर्ववत तत्वरुपसे अव्यक्तरुपमें पसरित वा अव्यक्तरुपमें बीजरुप होजाती हे अर्थात इस दृश्य ब्रह्मांडके मूलतत्व जेसे उत्पत्तिके पहले अव्यक्तरुपमें पसरे हुये थे अथवा बीजरुपमें थे, वेसेही सृष्टिके नाशकाल पीछे होजाते हें; एसा निश्चय होता हे; यह पक्ष उन अद्वैतवादियोंको संमत हे कि जो त्रिवादि हें वा पुरुषप्रकृतिवादि हें. इसकी असमीचीनता सू. १६८ । ४०१ । ३८२ से सिद्ध होजाती हे ॥२६८॥ क्योंकि ब्रह्मांडके नाश होने पीछे उसके तत्व ईथर समान पसरित रखना वा बीज पुंजमें रखना किसी निमित्त-कारणके विना नहीं होसकता; प्रकृति जड हे, परतंत्र हे, अपने आप एसे रुपमें ओर मर्यादामें नहीं रहसकती; ओर विभुमें उसका प्रवेश नहीं तथा विभुमें इच्छा क्रिया नहीं होती; इसलिये यह मंतव्य सिद्ध नहीं होता. मीमांसासे इतर पांचों-शास्त्र, वेद, उपनिषद् ओर अमुक पौराणिकोंकोभी यह मत संमत होता हे. परंतु सिद्ध नहीं होता. नहीं मालूम उन्होंने किस दृष्टिसे एसा माना हे ॥ २६८ ॥

प्रलय नहींही पूर्ववत् प्रवाह रहनेसे (अ.) ॥ २६९ ॥

अर्थ.—दृश्यब्रह्मांडका कभीभी सर्वथा नाश नहीं होता, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि पूर्ववत् वर्तमान रहता हे अर्थात अनादिसे एसाही हे ओर रहेगा १, अथवा अनादितः प्रवाहरुपसे उपचयापचयरुप होता रहता हे २, अथवा पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तर परिणाम होते आते हें कोई मूल उपादान नहीं हे ३; इसलिये पूर्ववत् रहनेसे प्रलय नहीं होती एसा जानपडता हे. इनमें दो पक्ष जैन, मैमांसिकको ओर तीसरा एक जडवादिको संमत हे. इसकी असिद्धि आधाराधिकरण ओर मूलअधिकरणसे स्पष्ट हे ॥ २६९ ॥ क्योंकि संयोगजका अनादित्व सिद्ध नहीं

होता, आधार विना उपचयापचय नहीं मानाजाता, ओर मूलका मूल नहीं होसकता ॥ २६९ ॥

सृष्टि सादिअनंतही कर्तामें निष्फलत्व न होनेसे (अ.) ॥२७०॥

अर्थ.—ईश्वरने यथेच्छा अभावमेंसे सृष्टि बनाई हे सो अनंत रहेगी याने अब उसका प्रलय न होगा, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि ईश्वर सृष्टि न होनेके पूर्व निष्फल था, उसका सफलत्व हुवा ओर ईश्वरके कार्य निष्फल–नाशवान नहीं होते; इसलिये सृष्टि सादिअनंत हे. यह पक्ष विश्वासिओंमें हे, इसकी असिद्धि सू. ३१० । २८५ । ४०१ । १९२ से स्पष्ट हे ॥ २७० ॥

अब आगे (सू. २७१ से २८६ तक) पूर्वोक्त भावनाकांही रुपांतरसे विचार होगा.—

उत्पत्ति लय पक्ष विशेष.

[१]अनुपादान स्वयं वा अभावसेही स्वभावतः वा निमित्तसे उत्पति (अ.) ॥ २७१ ॥

अनुत्पत्यादिकी प्राप्तिसे ॥ २७२ ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि) की उत्पत्ति अनुपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती हे, एसा निश्चय होता हे अर्थात्—

	यह किनका मंतव्य हे.—
१. अनुपादान स्वयं स्वभावसे अन हुई उत्पन्न.	१. शून्यवादि बौद्ध, अजातदृष्टि सृष्टिवाद.
२. ,, निमित्तसे[२] ,,	२. विश्वासी, ब्रह्म.
३. ,, अभावसे स्वभावतः ,,	३. अभाववादि, स्वभाववादि.
४. ,, ,, निमितसे[२] ,,	४. विश्वासी, ब्रह्म.

एसे उत्पत्ति होती हें; यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २७१ ॥ क्योंकि अनुत्पत्यादि नियम अर्थात अनुत्पत्ति (१३७), त्याग (१३०), अस्वयं (२८०), कारण (२७०), मुख्य (२७२), अव्यवहित (२७५), नित्य (१८४), पूर्व

[१](नोट) अनुपादानादि ६ सूत्रोंमें (२८२ तकमें) जो कल्पना ओर उसका निषेध दरसाया हे, सो सब कल्पना प्रचलित नहीं हें, एसा जान्ना चाहियें. अभाव ओर शून्य पर्याय हें तथापि अभावमें मतभेद होनेसे असत्का जुदा प्रयोग करना पडा हे. [२]ईश्वर वा अन्योऽन्य.

(२८५), अनुपादान (३१४), स्वरुप (१२९), अस्वरुप (१३२), मात्र (२८२), अनभाव (३१०) ओर अशक्ति (४७१) इन १४ नियमोंकी प्राप्ति होती हे याने यह इन चारों मंतव्योंके बाधक हें ॥ २७२ ॥

उपरोक्त पक्षोंमें जहां अभाव पक्ष हे वहां **अनभाव** नियमका ओर जहां निमित्त पक्ष हे वहां **मात्र** ओर **अशक्ति** नियमका उपयोग होता हे; इसलिये यथायोग्य उपयोग कर्तव्य हे. (उदाहरणसहित विशेष वर्णन मूलमें हे) ॥ (अ. ३ । ९३की अनुपादान पुनरुक्ति नहीं हे, अन्यप्रसंग प्राप्तिसे.) ॥२७२॥

उपादान हुये स्वयं वा अभावसेही स्वभावतः
वा निमित्तसे नवीनोत्पत्ति (अ.) ॥ २७३ ॥
उपादानादि ओर अनुत्पत्यादिके दर्शनसे ॥ २७४ ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि)की उत्पत्ति उपादान हुये उससे इतर नवीनोत्पत्ति उपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती हे, एसा निश्चय होता हे अर्थात्—

	यह किसका पक्ष हे?
१—उपादान हुये स्वयं स्वभावसे मिश्रणसे नवीनोत्पत्ति	१ एक यूरोपके फिलोसोफरका. जडवादिका. एक सांख्यीका.
२— ,, ,, निमित्तसे ,, ...	२ न्याय, वैशेषिक, एकवेदांति.
३— ,, ,, अभावसे स्वभावतः ,, ...	३ अभाववादि, स्वभाववादि.
४— ,, ,, निमित्ततः ,, ...	४ नं. १ अनुसार.

एसे नवीन उत्पत्ति होती हे. यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २७३ ॥ क्योंकि प्रदर्शित उपादानादि नियम अर्थात उपादान (३०२), अनवीन (३०३), अभिन्न (३१६), परिणामी (३१८), नभिन्न (३०६), योग्यता (५७०), व्याघात (१९६), कार्य (३५२), प्राक (२८९) ओर अनाश (१३९) यह १० नियम ओर पूर्वोक्त अनुत्पत्यादि १४ नियम इन चारों मंतव्योंके बाधक हें ॥२७४॥

उपरोक्त पक्षोंमें जहां अभाव पक्ष हे वहां **अनभाव** नियमका ओर जहां निमितपक्ष हे वहां **मात्र** ओर **अशक्ति** नियमका उपयोग होता हे; इसलिये नियमोंका यथायोग्य उपयोग कर्तव्य हे. ॥ जल अपने उपादान ओ. हाई. से इतर प्रकारका नवीन अनहुवा उत्पन्न होता हे, यह नवीन केमिस्टरी (पदार्थविज्ञान) का मत हे. जडके मिश्रणसे नवीन चेतन उत्पन्न होता हे, यह मत जडवादियोंको संमत हे. परिच्छिन्न तन्मात्रासे आकाश उत्पन्न होता हे, यह सांख्यीका मत हे.

आत्मा ओर मनके संयोगसे आत्मामें नवीन ज्ञानगुण जो पूर्वमें न था सो पेदा होता हे तथा घट, मृत्तिकापिंडसे अन्य नवीन उत्पन्न होता हे, यह नैयायीकोंका पक्ष हे. जड अंतःकरण ओर चेतनात्मा मिलके कर्तृत्व भोक्तृत्व शक्ति नवीन पेदा होती हे, यह एक वेदांतीका पक्ष हे. परंतु यह सब पक्ष असंगत हें (विस्तार मूलमें) ॥ २७४ ॥

अनुपादान असत्सेही स्वभावतः वा
निमित्ततः उत्पत्ति (अ.) ॥ २७५ ॥
नसदादिकी आपत्तिसे ॥ २७६ ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि) की उत्पत्ति अनुपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती हे एसा निश्चय होता हे अर्थात्—

१. अनुपादान	असत्से	असत्की	स्वभावतः	उत्पत्ति	१. शून्यवादि.
२.	,,	,,	निमित्ततः	,,	२. भ्रमवादि.
३.	,,	सत्की	स्वभावतः	,,	३. अभाववादि, स्वभाववादि.
४.	,,	,,	निमित्ततः	,,	४. विश्वासी, ब्रह्मु.

एसे उत्पत्ति होती हे. यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २७५ ॥ क्योंकि नसदादि नियम अर्थात नसत् (३०८), शून्य (३००) ओर पूर्वोक्त अनुत्पत्यादि १४ की आपत्ति होती हे याने नसदादि नियमोंसे यह चारों पक्ष असिद्ध रहते हें॥२७६॥

अभाव ओर असत् एकार्थभी माने जाते हें. **मात्र, अशक्ति** ओर **अनभाव** सूत्रोंका उपयोग पूर्व कहे हुये प्रसंगपर होता हे.

शून्यवादि रज्जुसर्प ओर जगतको अनुपादान ओर पूर्व उत्तरमें असत् मानके वर्तमानमेंभी असत् रुप मानता हे, वर्तमान दर्शनमें निमित्त नहीं मानता किंतु स्वभावतः एसा होना कहता हे. रज्जुका सर्प असत् हे उसका उपादान नहीं हे. ओर प्रतीत होता हे; अतः असतसे असत्की उत्पत्ति हे ओर संस्कारादि निमित्तसे होती हे, अतः निमित्ततः हे, एसा भ्रमवादि मानता हे. अनुपादान (असत्) से प्रध्वंसाभावकी उत्पति कहीं स्वभावतः भी होती हे, प्रध्वंसाभावोंके अन्योऽन्याभावोंकी उत्पत्ति स्वभावतः होती हे, इत्यादि अभाववादि ओर स्वभाववादि मानते हें. अनुपादान याने अभाव वा शून्य वा असत्से ईश्वरने जगत पेदा किया एसा विश्वासी मानते हें. यह सब पक्ष उपरोक्त सूत्रोंसे असमीचीन ठेरते हें (विशेष मूलमें) ॥ २७६ ॥

उपादान हुये असत्सेही स्वभावतः वा
निमित्तसे नवीनोत्पत्ति (अ.) ॥ २७७ ॥
नसदादि ओर उपादानादिके दर्शनसे ॥ २७८ ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि) की उत्पत्ति उपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती है, एसा निश्चय होता हे अर्थात्.—

१.	उपादान हुये	असत्से	असत्की स्वभावतः	मिश्रणसे	नवीनोत्पत्ति.	
२.	,,	,,	,, निमित्ततः	,,	,,	
३.	,,	,,	सत्की स्वभावतः	,,	,,	
४.	,,	,,	,, निमित्ततः	,,	,,	

एसे उत्पत्ति होती हे. यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २७७ ॥ क्योंकि पूर्वोक्त प्रसिद्ध नसदादि (१६) ओर पूर्वोक्त प्रसिद्ध उपादानादि (१०) यह २६ नियम इन-चारों मंतव्योंके बाधक हें ॥ २७८ ॥

असत् ओर अभाव तथा सत् ओर भाव एकार्थीभी माने जाते हें. **मात्र अशक्ति** और **अनभाव** नियमोंका पूर्व कहे प्रसंगानुसार उपयोग होता हे.

१. २. ब्रह्म विवर्त्तउपादान, उसमें माया असत् (अर्थशून्य) उससे अ-सत् दृश्यकी स्वभावतः वा निमित्तसे (अधिष्ठानके अस्तित्वसे) उत्पत्ति होती हे. यथा आकाशकी नीलता ओर डोरीका सर्प. यह पक्ष अध्यासवादिको संमत होसकता हे; परंतु जो माया वा अज्ञानको भावरुप मानें तो यह पक्ष मायावादमें नहीं बनता हे. (विस्तार मूलमें हे).

३. जड मिश्रण हुये अनहुवा सत् चेतन पेदा होता हे, तद्वत् जल. (इस पक्षको जो मानते हें उनके नाम पूर्वमें कहे हें).

४. ज्ञान गुण असत् था, सो आत्मा मनके संयोगसे नवीन पेदा हुवा, यह नं. ४ का उदाहरण पहेलेभी कहा हे ॥ २७८ ॥

अनुपादान सत्सेही स्वभावतः वा निमित्तसे
उत्पत्ति (अ.) ॥ २७९ ॥
नासदादिकी प्राप्तिसे ॥ २८० ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि)की उत्पत्ति अनुपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती हे एसा निश्चय होता हे अर्थात.—

१–अनुपादान सत्से सत्की स्वभावतः उत्पत्ति
२– ,, ,, ,, निमित्ततः ,,
३– ,, ,, असत्की स्वभावतः ,,
४– ,, ,, ,, निमित्ततः ,,

एसे उत्पत्ति होती हे. यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २७९ ॥ क्योंकि नासदादि अर्थात नासत् (अ. २ । सू. ३०७) ओर पूर्वोक्त अनुत्पत्यादि १४ इन १५ नियमोंकी प्राप्ति होती हे अर्थात यह चारों पक्ष अनसदादिसे बाधित होते हें ॥ २८० ॥

१–सत्से सत्की उत्पत्ति कहना ओर अनुपादान मान्ना यह तथा सत्की उत्पत्ति कहना व्याघात (१९६) दोष हे ओर नित्य (१८४) के विरुद्ध हे.

१क.–प्रध्वंसाभावका अभाव पूर्वमें सत् था उस सत्मेंसे सत् प्रध्वंसाभाव उत्पन्न हुवा हे, क्योंकि प्रध्वंसाभाव हुये उसके पूर्ववाला सत् नहीं रहता. यह प्रध्वंसाभाव कहीं स्वभावतः, कहीं निमित्ततः होता हे; एसा नैयायक ओर एक जडवादिको संमत हे.

२–जगतका अभाव पूर्वमें सत् था उसमेंसे ईश्वरनिमित्तसे सत् जगत पेदा हुवा हे; क्योंकि पूर्ववाला अभाव नहीं रहा हे. यह पक्ष विश्वासियोंको संमत हे.

३–परमाणु सत् हें उससे दृश्य नामरुप जो असत् सो स्वभावतः पेदा होता हे; यहां परमाणु उपादान नहीं; क्योंकि सत्का उपादेय सतही होता हे. नामरुप असत् हें यह पक्ष जडविवर्तवादिको संमत हे.

४–मृतिकाही सत् हे, नामरुप कथनमात्र, विकल्पमात्र हें याने असत् हें. इसप्रकार निमित्तकारणको लेके सत्से असत् (नामरुप) की उत्पत्ति हे; क्योंकि जो सत् (मृतका) न हो तो असत् नामरुप न होते. ओर सत्का उपादेय सत् होता हे नामरुप असत् हें; इसलिये अनुपादान सत्से असत् नामरुप हुये हें. यह एक वेदांतके पक्षकारको संमत होसकता हे.

परंतु सत्से सत्की उत्पत्ति कहना ओर उपादान न मान्ना यह, तथा सत्की उत्पत्ति मान्ना यह वदतोव्याघात (१९६) दोष हे. ओर सत्से असत्की उत्पत्ति मान्ना विरोधि ओर उपादान तथा अनवीन नियमके विरुद्ध हे; अतः यह चारों पक्ष कल्पनामात्र हें ॥ २८० ॥

उपादान हुये सत्सेही स्वभावतः वा
निमित्तसे नवीनोत्पत्ति (अ.) ॥ २८१ ॥

नासत् ओर उपादानादि बाधक होनेसे ॥ २८२ ॥

अर्थ.—पदार्थ (वा सृष्टि) की उत्पत्ति उपादानादि ४ प्रकारमेंसे होती हे एसा निश्चय होता हे अर्थात्.—

१. उपादान हुये सत्से सतकी स्वभावतः नवीन उत्पत्ति.
२. ,, ,, ,, निमित्ततः ,,
३. ,, ,, असत्की स्वभावतः ,,
४. ,, ,, ,, निमित्ततः ,,

एसे उत्पत्ति होना निश्चय होता हे. यह चारों पक्ष असिद्ध हें ॥ २८१ ॥ क्योंकि नासद् (३०७) ओर पूर्वोक्त उपादानादि १० नियम इन मंतव्योंके बाधक हें॥२८२॥

(१) जडवादि सृष्टिकी उत्पत्ति, सत् परमाणुओंके सत संयोगसे निमित्त कारण विना स्वभावतः नवीन मानता हे. परंतु २१६ ओर अनुपादानादिसे असिद्ध हे.

(२) उपादान हुये ईश्वरादि निमित्तद्वारा सतके सतसंयोग हुये उपादानसे नवीन पदार्थकी उत्पत्ति ईश्वरवादि ओर प्रकृतिवादिभी मानता हे परंतु सू. सत्-उत्पातिव्याघात (१९६) तथा ६७२ । ६७३ के विरुद्ध हे.

(३) सत परमाणुओंके संयोगसे असत् नामरुपकी स्वभावतः (निमित्त कारण विना) उत्पत्ति होती हे, यह विवर्त्त जडवादको संमत हे. सो अनसत् (३०७) के विरुद्ध हे.

(४) सत्मृत्तिका वा सत्ब्रह्मसे असत् घटादि नामरुप होते हें; क्योंकि वे नाश होते हें सत्का नाश नहीं होता. यह एक पक्षकारको संमत हे वा क्षणिक बौद्धको स्वीकृत हे. परंतु यह पक्ष उपरोक्त सूत्रोंसे बाधित हे. (विस्तार मूलमें हे) ॥ २८२ ॥

एवं अन्य कल्पनामेंभी यथायोग्य ॥ २८३ ॥

अर्थ.—जेसे उपर सूत्र २७१ से २८२ तक १२ सूत्रोंमें पक्ष दिखाके निषेध दरसाया हे वेसे उनसंबंधी अन्य अयोग्य कल्पनाके निषेधार्थ नियमोंका यथायोग्य उपयोग करलेना चाहिये ॥ २८३ ॥

यथा–उपर जिनकी स्वभावतः वा निमित्ततः उत्पत्ति कही हे वे साम्यक अभाव वा घटादिके समान सादिसांत हें किंवा विश्वासिओंके सादिअनंत समान वा नैयायकोंके प्रध्वंसाभाव समान सादिअनंत हें, एसी कल्पना करें तो ६ × ४ × २ = ४८ भेद सादिसांतके ओर सादिअनंतके ४८ भेद होजाते हें. ओरभी

उत्पन्न पदार्थ विश्वासियोंके जीव--परमाणु समान तत्वरुप हें वा कार्यरुप याने विकारी हें वा उभयरुप (प्रकृतिविकृतिरुप ओर तत्वरुप) हें एसे भेद मानें तो अनुपादान भागमें १२ पक्ष बढते हें. इन सबका निषेध सू. १९२ । १३५ । ३५० से ओर उपरोक्त सूत्रोंसे होजाता हे. इन कहे हुये विकल्पोंके पक्षकार हें; परंतु उन मंतव्योंका निषेध, नियम प्रसंगोंमें आचुका हे; अतः यहां नहीं लिखा ॥ २८३ ॥

ओर उक्त उत्पत्तिवत् उत्तरभीही (अ.) ॥२८४॥

अर्थ.—ओर पूर्वोक्त सूत्र २७१ से २८२ तकमें जिसप्रकार पक्षकारोंकी तरफसे उत्पत्ति जनाई हे वेसेही उनकी तरफसे उसका उत्तर (बंध-नाश-अभाव)भी मानके हरेक पक्षका उपरोक्त सूत्रोंसे यथायोग्य उपयोगही--निश्चय कर्तव्य हे. सो निश्चय–मंतव्य असिद्ध हे, याने उपरोक्त रीतिसे निषेध करलेना चाहिये. व्यर्थ जानके यहां उसका विस्तार नहीं लिखा हे ॥ २८४ ॥

उपरके १२ सूत्रमेंभी कोई कोई कल्पना निकम्मीही हें, तोभी पक्षकारोंकी दृष्टि लेके लिखनी पडी हें, ओर उनका निषेध दरसाया हे, उसी निषेधसे उनकी उत्तर (लय अभाव) कल्पनाकाभी निषेध होजाता हे. यथा–प्रध्वंसकी अनुपादान उत्पत्ति अनुचित हे तो उसका अनंतपना मान्नाभी अनुचित हे. जो सृष्टि अभावसे हुई तो अभावरुपही होजायगी, परंतु अभावसे उत्पत्ति असंभव हे तो सृष्टिका अभाव (शून्य) रुप होनाभी असंभव हे. इत्यादि रीतिसे योजलेना चाहिये ॥२८४॥

पूर्वपूर्वके नाशसेही उत्तरोत्तर उत्पत्ति (अ.) ॥ २८५ ॥

ध्वंसनियमसे ॥ २८६ ॥

अर्थ.—सृष्टिका कोई अमुक उपादान नहीं हे, किंतु पूर्वका जो रुप हे उसके नाश (रुपांतर) सेही उत्तरके रुपकी उत्पत्ति होती हे. यह पक्ष यूरोपके एक फिलोसोफरका हे, सो पक्ष असिद्ध हे ॥ २८५ ॥ कारणके ध्वंस (३१२) ओर अनुपादान (३१४) से उसकी असिद्धि होजाती हे (यहां अ. ३ । ४१ भी देखो.) ॥ २८६ ॥

(शं.) सृष्टि उत्पत्ति स्थिति ओर प्रलयके काल तथा उसके क्रम जान्ने वा शोधनेमें काल खराब करना, यह उचित नहीं हे; क्योंकि मनुष्यको इसका यथावत् ज्ञान नहीं होसकता तथा इसके ज्ञात होने वा न मालूम होनेसे कोई विशेष लाभ हानीभी नहीं जानपडते. (उ.) अ. २ । ५६२ का विवेचन वांचिये उससे शंकाका

समाधान होजायगा. लाभ अलाभके उत्तर मिलने वास्ते अ. १ सू. ३३६ । ३३७ का विवेचन ओर अ. १ गत विकासवादकी भूमिका (पृष्ट १४२) वांचिये; ओर फेर अ. २ सू. ५९३ से ५९७ तकका पाठ करिये. अर्थात इस विषयमें किसी न किसीकी प्रवृत्ति हो ही गी. ॥ २५० से २८६ तक ॥

ईश्वरादि धीपर होनेसे उनमें युक्ति तर्क नहींही (अ.) ॥२८७॥

कल्पनादिकी प्राप्तिसे नहींभी ॥ २८८ ॥

अर्थ.—ईश्वर १, जीव २, प्रकृति (माया) ३, जीवके बंध ४ ओर मोक्ष ५ (के स्वरुपसंबंधमें) तथा पुनर्जन्म ६, मोक्षके साधन ७ ओर सृष्टिके पूर्वोत्तर (उत्पत्ति स्थिति लय) इन ८ विषयके संबंधमें अर्थात इनके निर्णय करनेमें मनुष्यकी युक्ति ओर तर्क काममें नहीं आती, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि यह आठों विषय मनुष्यकी बुद्धिसे पर हें; अतः इन ईश्वरादिविषयमें जो पूर्व असिद्धि बताई हे वोह अग्राह्य हे. यह मंतव्य उन उन पक्षकारोंका हे कि जिनके मंतव्यके विरुद्ध ईश्वरादिप्रसंगमें उपर कहा गया हे. इस मंतव्यकी असिद्धि हे ॥ २८७ ॥ क्योंकि जिस माने हुये वा कल्पना किये हुये विषयमें कल्पना १, दोष २ ओर शंका ३, समाधान ४, की आपत्ति (फर्ज) होजाय वहां उतने अंशमें युक्ति तर्कका निषेध नहीं होसकता; क्योंकि विषयकी मूलकल्पना (मंतव्य) बुद्धिके दायरेमें ली गई हे; अतः युक्ति तर्ककी प्राप्ति होजातीभी हे. ॥ २८८ ॥

जो सर्वथा अज्ञात हो उसका तो नामभी नहीं लियाजासकता, २ । २५ देखो. परंतु जब एसा माना के ईश्वरादि हें ओर अमुक प्रकारके हें वहां ज्ञात सृष्टिनियम, व्याप्ति ओर प्रमाणानुसार निरीक्षा करनी पडेगी, वहां मध्यस्थको लेना पडेगा, ओर मानवबुद्धिकी मर्यादातक उसमें कल्पना, दोष, शंका, समाधान अवश्य होंगे. जो एसा नहीं मानोगे तो अर्थात धीपर गति ओर तर्क नहीं, एसा स्वीकारनेसे सदोष–(शून्य, अभाव, स्वभाव, अभावजन्य, वा अन्य कल्पित मतों)की सिद्धि ओर दूषितव्याप्तिग्रह, किंवा सर्वप्रकारके पक्ष मत ओर सबके साधनोंकी मान्यता तथा वादिके अगम्य ओर धीपरत्वकी मान्यता तथा उक्त शंकाके अवसरका अभाव ओर उसका असमाधान–इन सबकी प्राप्ति होनेसे अथवा सर्वपक्ष दूषित ठेरनेसे पक्ष वा सिद्धांतमात्रका उच्छेद होजायगा. इत्यादि दोष, विकल्प, शंका ओर समाधान होते हें; अतः यह मंतव्य सर्वस्थलमें अग्राह्य हे. कोई यह कहे कि जितने धर्म, मत, पंथ, पदार्थ, विज्ञान ओर फिलोसोफि हें, यह सब वहांतक सत्य जान

पडते हैं कि इनसे परे जो एक वस्तु सो अपना प्रकाश न करे; परंतु वोह वस्तु बुद्धिसे पर हे—अगम्य हे; अतः प्रचलितसिद्धांत त्याज्य हैं, असत्य हैं. क्या इतना कहनेसे उसके अनुसार मानलेवें? सत्यको असत्य जानलेवें? कभी नहीं. क्या ईश्वरकी सत्ताके आधीन रहते हुये मुक्तिशब्दका प्रयोग ठीक हे? कभी नहीं. इस लिये बुद्धिके मानेहुये विषयमें किंवा बुद्धिके विषय हुये विषय संबंधमें जहांतक बुद्धिकी गति हे वहांतक मध्यस्थद्वारा परीक्षा कर्तव्य हे. जहां बुद्धि नहीं पहोंच-सके वहांसे आपही निवृत्ति होजायगी. ईश्वरादि प्रसंगमें जितना उपर कहा हे वोह सृष्टिनियमानुकूल ओर सयुक्त हे. जो इन बातोंको मनुष्य नहीं जानसकता तो ईश्वर, जीव, माया, मोक्ष इन विषयोंको छोड देना चाहिये. जेसे कि कोई एसा कहे कि इस दृश्यका (जीव-जगत-मन-वगेरेका) किसी अगम्य शक्ति (ब्रह्म वा शक्ति) मेंसे आविर्भाव हुवा हे वा यह (दृश्य-मन वगेरे) उसका सूचक चिन्ह (लिंग) हे वा उसकाही वा उस करके आविर्भाव हुवा हे. इतना मान्नेपर यह सवाल पेदा होजाता हे—आविर्भाव अर्थात क्या? समुद्रमेंसे मछली, जलमेंसे बर्फ, कनकसे कुंडल, दहीसे मक्खन वा आकाशमेंसे परमाणु समान आविर्भाव वा प्रकृति पुंज वा क्या? अब जो इसका उत्तर न बने वा जो उत्तर दे सो सदोष ठेरे, तब यह कहे कि धीपर युक्ति तर्क नहीं, तो यह कहना ठीक नहीं हे किंतु उसकी कल्पना, अयुक्त होने से त्याज्य ठेरती हे; इसलिये अज्ञेयमेंसे आविर्भाव पद न कहके "हम नहीं जानते कि यह क्या ओर किससे" इतना कहनाही ठीक हे. कार्य होनेकी योग्यता हे तब कार्य होता हे, उसका नाम शक्ति रखा. परंतु वोह योग्यता केसी हे, यह हम नहीं जानते इतना कहना बस हे. परंतु ईश्वरने प्रथम यूं किया त्यूं किया इत्यादि कहके उसके सिद्ध न करनेपर धीपर तर्क नहीं, एसा कहना योग्य नहीं हे. विशेष विस्तार भू. ब्रस. ओर अ. ४ में हे ॥ २८८ ॥

कर्म पदार्थही स्वतंत्र फलप्रद होनेसे (अ.) ॥ २८९ ॥

थिर, जड ओर व्यापार नियमसे ॥ २९० ॥

अर्थ.—कर्म यह एक प्रकारका पदार्थ हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि कर्ताको स्वतंत्र फल देता हे. यह पक्ष जैनमतको संमत हे सो समीचीन नहीं हे ॥ २८९ ॥ क्योंकि इसकी असमीचीनता सू. ३६३ । २७६ । ओर २३५ से स्पष्ट होजाती हे ॥ २९० ॥

जैनमत कर्मको द्रव्यकर्म मानता हे. जीवपर वे लगे रहेते हें, उन अनुसार

जीवको फल होता हे, फल होनेमें वे कर्म निमित्त होते हें अर्थात कर्मफलदाता कोई ईश्वर नहीं हे. (कर्म एक द्रव्य हे अर्थात एक प्रकारके जड परमाणुओंमें हीं जैन मतमें कर्म व्यवहार कियाजाता हे. शुभाशुभ अध्यवसायसे जीवके साथ कर्म परमाणु संबंधित होके उसकी ज्ञान दर्शनादि अनंत शक्तियोंको तिरोधित करदेते हें (जैन मध्यस्थवाद ग्रंथमालाका पृष्ट ६८ देखो, जिसमें दयानंदस्वामी लिखित जैनधर्म संबंधि आक्षेपोंका खंडन हे); एसा जैनका सिद्धांत हे. सो सूत्रोक्त नियमसे असिद्ध हे ॥ २९० ॥

नोट.—पाठक परीक्षक महाशय ! अब आगे कोई कोई विषय पुनरुक्तिरुपमें जान पडेंगे, परंतु एसा नहीं हे, किंतु पक्षकारोंके मतभेदवश ओर इष्टपक्षकी सिद्धि होनेवाली हे इस दृष्टिसे, नानारुपमें विषय लिखें हें; इसलिये अरुचीके पात्र नहीं हें; अतः घबराना वा अरुची करना नहीं चाहिये.—

अधिष्ठानादि विशेषणवान परमेश्वर नहींही (अ.) ॥ २९१ ॥
अगम्य योग्यताबोधक विचित्रता दर्शनसे ॥ २९२ ॥

अर्थ.—सर्वाधिष्ठान (आधार), सर्वोपरि, अचिंत्य, सत्तावान, अन्यधा निमित्त, अंतरजामी, निराकार, कूटस्थ, निष्क्रिय, निष्कलंक, निरीह (इच्छारहित) विभु, समचेतनप्रकाश ओर पूर्ण स्वरुप इन तेरा विशेषणवाला कोई परमेश्वर नहीं हे, गोचर न होनेसे; एसाही निश्चय होता हे. यह मंतव्य जैन, बौद्ध ओर जडवादियोंको संमत हे; तथा जो ईश्वरको सक्रिय अवतारी मानते हें उनको अमुक विशेषण असंमत हें. यह पक्ष असिद्ध हे ॥२९१॥ क्योंकि दृश्य जगतमें मनुष्यसे अगम्य एसी योग्यता बोधक विचित्रता (सनियम विचित्र कार्य) देखते हें; इसलिये अधिष्ठानादि विशेषणवाला कोई परमेश्वर हे, एसा सिद्ध होता हे ॥२९२॥ ओर आधाराधिकरण, प्रकाशाधिकरण, सूत्र अनाश्रय (२५६), जड (२१६), कारण (२७०), निमित्त (३२०), साकार (३२४), अविशेष (५७१), सर्वज्ञ (४१०), अवतिष्ठित (४२६), श्रेय (७४७), विवेकख्याति. (६५६), ओर अ. ३ सू. १९० से १९४ तकको विचारो. तथा इसकी अपरोक्षवत् सिद्धि अ. ४ में स्वप्नालंकारसे दरसाई हे; अतः अधिष्ठानादि विशेषणवालेकी सिद्धि होती हे.

जगतके विचित्र कार्य (गति, उत्पत्ति ओर वृद्धि करनेवाला प्रोटोपलाजम तथा बीज, ओर शरीर, मगज, स्त्रीका गर्भस्थान, विचित्र पुष्प इनकी रचना वगेरे)

देखने ओर उनकी निरीक्षा करनेसे परमेश्वरकी शक्तिको स्वीकारनाही पडता हे. सृष्टिके विचित्रकार्य ओर शब्दादि पदार्थ सो क्या ओर नित्य उपयोगमें आनेवाले पदार्थोंमें जो शक्ति सो क्या, इनकोभी मनुष्य नहीं जानता तो जिस योग्यतासे वे बने उसको (प्रभुकी माया शक्तिको) केसे जानसकता हे अर्थात शक्तिमान ईश्वर अगम्य हे. (शं.) सू. १९५ का विरोध होगा क्योंकि अधिष्टानादिभी भावना मान्य हें. (उ.) सयुक्त सिद्ध होनेसे भावनामान्य जेसे नहीं हें; क्योंकि पररहित पूर्ण होनेसे असीमाधिष्ठानपना बनता हे. सब उसकी सत्ताके मॉहताज हें, अतः सर्वोपरी हे. पररहित होनेसे निराकार हे. अविकारी ओर अधिष्ठान होनेसे कूटस्थ हे. देशापरिच्छेदवाला होनेसे अक्रिय हे. शुद्ध होनेसे निष्कलंक हे. विभुमें ईच्छा नहीं होती अतः निरीह हे. पररहित होनेसे विभु हे. निर्विकल्प एकरस वर्तमान होनेसे सम हे. ज्ञानस्वरुप होनेसे चेतन प्रकाश हे. जिसका केंद्र नहीं हे वा तो सर्व जगह जिसका केंद्र हे अतः पूर्ण हे. उसकी सत्ता नहीं जानी जाती अतः अचिंत्य हे. जेसा जगतमें निमित्तत्व वा कर्तृत्व मानाजाता हे वेसे वोह निमित्त नहीं हे किंतु अन्य प्रकारसे निमित्तकारण हे (आगे वांचोगे). विभुचेतन होनेसे सबका अंतरजामी हे. जब उसको शक्तिविशिष्टरुपसे धारणामें लेंगे तब निमित्तत्व (अन्यथा निमित्त) सर्व शक्तिमत्व, सर्वज्ञत्व ओर इच्छा वगेरे विशेषण होनेमें कोई प्रकारका दोष नहीं आनेका हे. ओर निर्गुणत्वादि विशेषणभी सिद्ध रहेंगे. (इस अद्भुत स्वरुपका बस. में वर्णन हे). (शं.) अ. २ सू. २६८ में प्रस्तुत तत्वके स्वयंभ्वादि थोडे विशेषण कहे हें ओर यहां ज्यादे कहने पडे, इस गोरव करनेका कारण क्या? (उ.) इसका समाधान सिद्धप्रकरणमें (सू. ३९६ में) आगे वांचोगे ॥ २९२ ॥

पुरुष वा प्रकृति नहींही भेद नियमकी आपत्तिसे (अ.) ॥२९३॥

अवतिष्ठित नियमसे ॥ २९४ ॥

अर्थ.—यातो पुरुष विभु नहीं हे वा तो दृश्य प्रकृति नहीं होगी; एसा निश्चय होता हे; क्योंकि स्वरुपाप्रवेश नियम (३८२) यही दरसाता हे. यह पक्ष परिच्छिन्नवादि, जडवादि ओर अनीश्वरवादिको संमत हे. सो पक्ष समीचीन नहीं हे ॥ २९३ ॥ क्योंकि अवतिष्ठित (४२६) नियम, भेद सूत्रकी व्यवस्था बताता हे. सत्ताअधिकरण देखो ॥ २९४ ॥

जेसे शरीरमें रहनेवाला जीव, पुरुष कहाता हे (सो नाना हें) वेसे ब्रह्मांड नामक

शरीरमें शक्तिविशिष्टचेतन व्यापक रहा हुवा हे उसेभी पुरुष कहते हैं सो एक हे ओर ब्रह्मांडके उपादान--समूहको प्रकृति कहते हैं, जो सत्व-रज-तमात्मक अनिर्वचनीय वस्तु हे ओर अनादिसे हे. जगत उसीका परिणाम हे. सांख्यकी रीतिसे उसके मानेहुये नानाविभु पुरुषकी सिद्धि नहीं होती. ओर सत्ताभेदको लेके एक असंग (२७८) पुरुषकी सिद्धि होजाती हे ॥ २९४ ॥

आत्मतत्वकी असिद्धिही प्रकृतिका परिणाम वा तद्धर्म होनेसे (अ.) ॥ २९५ ॥ अपरिणामी ओर वैधर्म्य दर्शनसे ॥२९६॥ ओर उनका द्दष्टा होनेसे ॥२९७॥

अर्थ.—शरीरसे भिन्न कोई आत्मा तत्वस्वरुप हे, इस विषयकी असिद्धि हे; क्योंकि जिसे जीवात्मा कहते हैं सो प्रकृतिका परिणाम (अंतःकरण) हे वा प्रकृतिका (अंतःकरणका) धर्म हे; जो जीवको मध्यम परिणामी मानते हैं उनको यह पक्ष लागु होजाता हे. सो पक्ष असिद्ध हे ॥ २९५ ॥ क्योंकि आत्मा परिणामी नहीं हे; अतः किसीका परिणाम नहीं ओर प्रकृतिवाले धर्म उसमें नहीं हैं किंवा वोह प्रकृतिका धर्मरुप नहीं किंतु उससे विधर्मी हे, इसलिये प्रकृतिका परिणाम वा धर्म नहीं हे ॥ २९६ ॥ ओर प्रकृतिके परिणाम वा धर्मका द्दष्टा हे, इसलिये द्दष्टा (३७५) नियमके अनुसार उनसे जुदा हे ॥२९७॥ यहां प्रकाशाधिकरणभी देखो.

इसका कुछ विवेचन उपर जीवप्रसंगमें आगया हे. वहां यथा शरीर परिणाम मानके असिद्धि दरसाई हे ओर यहां शरीर भिन्न जो अंतःकरण हे उसको मानके असिद्धि दिखाई हे; यह उभय प्रसंगका अंतर हे; याने पुनरुक्ति नहीं हे; क्योंकि जीव ओर आत्माको कोई पक्षकार जुदा जुदा भी कहता हे.

क्षणिकबौद्ध, चेतनप्रकाशविशिष्ट--इसी अंतःकरणको जीव कहता हे. तद्वत् जैनपक्षभी. बौ. अक्षणिक नहीं मानता ओर जैन स्वरुपको क्षणिक नहीं बताता, परंतु पर्यायोंको क्षणिक कहता हे; दोनोंमें इतना अंतर हे. विश्वासियोंकी रुह (जीव)भी एसीही हे, क्योंकि वे उसे परिच्छिन्न मध्यम मानते हैं. मैमांसिक उसको जडचेतनात्मक बताते हैं. संक्षेपमें जो जीवात्माको रागादिवाला मानते हैं उनका आत्मा सूत्रोक्त जेसा मध्यमही सिद्ध होगा; परंतु आत्मतत्व एसा नहीं हे. जीवात्माके स्वरुपसंबंधमें अनेक पक्ष हैं. १ शरीरही आत्मा. २ शरीरका धर्म आत्मा. ३ रसायणीयसंयोगजन्य शक्ति सो आत्मा. ४ इंद्रियपुंज आत्मा. ५ प्राण आत्मा. ६ मन आत्मा. ७ बुद्धि आत्मा वा चित्त आत्मा. इनमें तीन जडवादिके पक्ष हैं. ४

इाद्वैथि वादि. ५ हिरण्यगर्भ उपासी. ७ मनबुद्धिवादि. क्षणिकबौद्ध ॥ भु. बस. में विस्तार हे ॥ २९७ ॥

उसको बंध ओर मोक्षभीही शब्दसे (अ.) ॥ २९८ ॥

सम ओर अविकार नियमसे ॥ २९९ ॥

अर्थ.—आत्मतत्वको बंध हे. याने वोह कर्ता भोक्ता हे ओर उसका मोक्षभी होता हे एसा निश्चय होता हे; क्योंकि शास्त्रोंमें एसा सुनते हें. यह मंतव्य तमाम जीववादियोंका हे सो ठीक नहीं हे ॥ २९८ ॥ इसकी असमीचीनता सम (१४१) अविकार (१४५) ओर १४३ । ३९१ । ३९२ से स्पष्ट होजाती हे ॥ २९९ ॥

यदि आत्मा विभु हे तो कर्ता न होनेसे (१६८) भोक्ताभी नहीं, ओरभी विभुमें संस्कार–रागादिका अनवसर होनेसे वोह कर्ता भोक्ता नहीं. कर्ता भोक्ता याने बंध न होनेसे उसकी मोक्ष माननाभी अघटित हे. जो आत्मा अणु हे तो उसमेंभी रागादि ८ अवस्थाके अभावसे उसका बंध मोक्ष नहीं. यदि मध्यम हे तो यद्यपि रागादि अवस्था प्राप्त होनेके योग्य हे तथापि नाशवान होनेसे मोक्षका पात्र नहीं; इत्यादि उपर कहा हे. शास्त्र यदि नीति धर्मके प्रतिपादक हों तो वे रागादि लिंगवाले जीवके सुखार्थ उपदेशक होनेसे निष्फल नहीं हें, अन्यथा उपर कहे अनुसार हे. (विशेष मूलमें हे) ॥ २९९ ॥

उसको औपाधिक बंधही (अ.) ॥ ३०० ॥

उक्त नियमोंसे ॥ ३०१ ॥

अर्थ.—आत्मतत्वको औपाधिक बंध हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि बंध देखते हें. यह मंतव्य केवलाद्वैतवादिको संमत हे. इस मंतव्यमें जितना अंश असमीचीन हे उसकी असिद्धि हे ॥ ३०० ॥ सो असिद्धि सम (१४१) अविकार (१४५) ओर १४३ से स्पष्ट होजाती हे ॥ ३०१ ॥

यदि आत्मा विभु तत्व हे तो उसको उपाधि, बंध नहीं करसकती; जेसे के घटाकाशकी उपाधि घटके आकाशको बंधन नहीं करसकती; आकाश गत धूम वा आकाशमें नीलताका अध्यास आकाशमें विकार नहीं करसकता, वेसे समचेतनात्मामें माया, अविद्या, अज्ञान वा अंतःकरणादि उपाधि उसे बंध नहीं करसकते. आत्माको अज्ञान हे उस अज्ञानसे वा आत्मामें अविद्या हे उस आवरणसे अपनेको कर्ता भोक्ता मानता हे, यह कथन शैली मात्र हे; क्योंकि उसमें राग, द्वेष, संस्कार, दुःख,

अवस्था न होसकनेसे उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका अध्यास, किसी अन्यको हो सो विकल्पमात्र हे ओर उस समममें अज्ञान, संस्कार न होसकनेसे उसको अध्यास हे, एसा मान्ना हास्यास्पद हे; इसलिये आत्मतत्वमें औपाधिक बंध मोक्षभी नहीं बनता. जो आत्माको अणु मानें तोभी उपर कहे अनुसार उसमें रागादि ८ अवस्था न होनेसे उसका औपाधिक बंध मान्ना कथनमात्र हे. जो मध्यम मानें तो नाशवान हे अतः उसे बंध मोक्ष नहीं (विशेष अ. ४ में) ॥ २०१ ॥

जीव तत्वस्वरुपही अमिश्रित होनेसे (अ.) ॥ ३०२ ॥

रागादि होनेसे ॥ ३०३ ॥

अर्थ.—जिसे कर्ता भोक्ता कहते हें सो जीव तत्वस्वरुप हे, क्योंकि उसमें अन्यका मिश्रण नहीं हे. यह मंतव्य वेदांतसे इतर तमाम मोक्षवादिओंको संमत हे. इस पक्षकी असिद्धि हे ॥ ३०२ ॥ क्योंकि जीवमें राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, संस्कार ओर बुद्धि (ज्ञान) यह ८ अवस्था होती हें; परंतु तत्व (अणु, विभु) की अवस्था नहीं होसकती; अतः रागादिवाला जीव तत्वरुप सिद्ध नहीं होता ॥ ३०३ ॥

जीवको परिच्छिन्न अणु मानें तो अधिष्ठानमें प्रवेश (३८२) न होनेसे उससे विलक्षण सत्तावाला (४२६) मान्ना होता हे. फेरभी अणुमें संस्कार ओर दुःख सुख होना नहीं बनता. जो यह मानें के रागादि उसमें नहीं हें किंतु प्रकृति (मन-चित) के हें ओर अज्ञानसे अपनेमें मानलेता हे तो कर्ताभोक्ता नहीं ठेरेगा. मान्ने मात्रसे स्वरुपमें बंध, मोक्ष, कर्तृत्व वा भोक्तृत्व नहीं होसकता (विशेष अ. ४ में). जो विभु मानें तो उपरोक्त निरीक्षा अनुसार वोह कर्ता भोक्ता न होगा. शेषमें मध्यम मान्ना होगा; मध्यम अमिश्रित नहीं होसकता (१७२); अतः कर्ता भोक्ता जो जीव सो तत्वस्वरुप नहीं, एसा सिद्ध होता हे. जब रागादि हों तब उसको उनका ज्ञान होता हे वा नहीं ? यदि होता हे तो वोह ज्ञानस्वरुप वा ज्ञाता होनेसे रागादिसे भिन्न ठेरेगा, रागादि उसको नहीं ठेरेंगे; यदि रागादिकालमें उसको रागादिका ज्ञान नहीं तो रागादिकी सिद्धि न होगी, तथा इच्छा प्रयत्नका उपयोग ओर दुःखका ज्ञान न होगा; परंतु रागादिकी सिद्धि, उपयोग ओर ज्ञान होता हे; अतः रागादिवाला पदार्थ तत्व नहीं किंतु किसीका ज्ञेय मान्ना पडता हे अर्थात अतत्व हे; क्योंकि रागादि अवस्था हें. यह विषय हरेक जीववादिको खोलखोलके

परीक्षापूर्वक विचारणीय हे. यह बौद्धके क्षणिकविज्ञानवादका ओर जैनके क्षणिक-पर्याय वादका मूल हे ॥ ३०४ ॥

जीव ब्रह्मका भेद वा अभेदही इतर प्रकारके अभावसे (अ.) ॥ ३०४ ॥

ब्रह्म ओर रागकी आपत्तिसे ॥ ३०५ ॥

अर्थ.—जीव ओर ब्रह्मका भेदही होगा अथवा अभेदही होगा, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि इससे इतर अन्यप्रकार नहीं जान पडता. इन दो मंतव्योंमें पहेला भेद (पक्ष) तमाम जीव मोक्षवादिओंको संमत हे (याने द्वैतवादिओंका हे) ओर उत्तर पक्ष अभेदवादि (केवलाद्वैतवादिओं)का हे. उभयमें जो असमीचीन अंश हे, उसकी असिद्धि हे ॥३०४॥ क्योंकि ब्रह्म चेतन एकही, इस (४१३) नियमसे भेद असिद्ध हे ओर जीवरागादिवाला (५५६) इस नियमसे अभेद असिद्ध हे; कारणके ब्रह्म कभीभी रागादिवाला-कर्ता-भोक्ता न हुवा ओर न होगा ओर जीव रागादिवाला था ओर हे. इसप्रकार उभयपक्षकी स्थिति हे ॥ ३०५ ॥

जिस पक्षमें ब्रह्म व्यापकचेतन ओर जीव अणुचेतन हे उस पक्षमें सर्वथा भेद हे ओर जिस पक्षमें व्यापक चेतन एकही हे अन्य चेतन नहीं हे उस पक्षमें रागादिवाले अंतःकरणभागको त्यागके जीवगत चेतन जो हे, सोही ब्रह्म (व्यापक) हे; एसा मानाजाता हे. अणुचेतनकी असिद्धि उपर कही हे; विभु चेतनमें रागादि न होनेसे जीवत्व नहीं. इस रीतिसे उभयके उपहित[1] वा विशिष्ट[1] भावमें व्यवस्था होती हे (बस. में इसका विस्तार हे); परंतु कर्ता भोक्ता जो जीव वोह—ओर अकर्ता अभोक्तारुप जो ब्रह्म सो यह दोनों कभीभी एक नहीं थे ओर न हें ओर न होंगे, एसा सिद्ध होता हे ॥ ३०५ ॥

केवल परिच्छिन्नवादही दर्शनसे (अ.) ॥ ३०६ ॥

आधाराधिकरणसे ॥ ३०७ ॥

अर्थ.—ब्रह्मांडमें एक विभु वा नाना विभु कोई पदार्थ नहीं हें; किंतु सब पदार्थ परिच्छिन्न गतिमानही हें, एसा मंतव्य याने केवलपरिच्छिन्नवादही निश्चय

---

[1]अविद्या हे उपाधि जिसकी सो उपहित चेतन वा अंतःकरण विशिष्ट जो चेतन सो—जीव कर्ता भोक्ता हे वा अविद्या वा अंतःकरणके संबंधसे उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व अन्यथा (अध्यासरुप) भासता हे, यह दोनों पक्ष, विचारणीय हें (बसु. देखो). चेतनभागमें रागादि वा कर्तृत्व भोक्तृत्व मान्ना असिद्ध हे.

होता हे; क्योंकि सबको परिछिन्न गतिमतही देखते हें. यह पक्ष अनीश्वरवादिओंको संमत हे. सो असिद्ध हे ॥ ३०६ ॥ इसकी असिद्धि आधारअधिकरणसे होजाती हे ॥ ३०७ ॥

क्षणिकविज्ञानवादि, परमाणुवादि, प्रकृतिवादिको यह पक्ष संमत हे. अ. ३ । सू. १९१ से १९४ तकभी याद कीजे उससे परिच्छिन्नवादकी असिद्धि होजायगी. वहां आधार असिद्धिके निषेधका प्रसंग हे ओर यहां मतनिर्णयका प्रसंग हे; अतः पुनरुक्ति दोष नहीं हे. परिच्छिन्नवादि देशकालको वस्तु नहीं मानता, किंतु मगजका प्रभाव मानता हे; परंतु एसा सिद्ध नहीं होता ॥ ३०७ ॥

तद्वत् विभु परिच्छिन्नवादही (अ.) ॥ ३०८ ॥

भेद नियमसे ॥ ३०९ ॥

अर्थ.—एक वा अनेक विभु तथा एक वा अनेक परिच्छिन्न (अणु वा मध्यम) एवं उभय प्रकारके पदार्थ इस ब्रह्मांडमें हें एसे मानना वा सिद्ध करना इसको विभुपरिच्छिन्नवाद (व्यापक व्याप्यवाद) कहते हें. सो विभुपरिच्छिन्नवादही सिद्ध होता हे; क्योंकि उभय प्रकारके पदार्थ देखते हें. आधाराधिकरण, विभु परिच्छिन्नवादकी सिद्धि बताता हे ॥ यह पक्ष क्षणिकवादि बौद्ध, ओर प्रकृतिवादि—जडवादि इन दोनोंसे इतर तमाम द्वैतवादिओंको संमत हे. तथा कोई कोई जडवादि देशकालकोभी पदार्थ मानलेता हे अतः उसकोभी संमत हे. परंतु यह मंतव्य असिद्ध हे ॥ ३०८ ॥ क्योंकि इस असिद्धिकी सिद्धि भेद (३८२) नियमसे होजाती हे. भेदाधिकरण पर ध्यान दीजिये ॥ ३०९ ॥

(नोट) तमाम द्वैतवादोंमेंसे जो कथनमात्र दोषवाला हे सो द्वैतवाद अधिकारीकी दृष्टिसे ब्रह्मसिद्धांत गत उत्तरार्द्धमें सू. २५२ से ४१६ तकमें विस्तार पूर्वक लिखा हे; उसे यहां स्वीकारके फेर भेद सूत्र (३८२) लगाके ब्रह्मसिद्धांतके विशिष्टवाद गत अध्यस्तको विलक्षण मान्नेसे व्यवस्था होजाती हे. अ. ३ सू. ३९३ से ४०० तक अ. ३ सू. ५३४ से ५३८ तकमें अध्यस्तवादका विवेचन हे.

विभु परिच्छिन्नवाद (द्वैतवाद). सू. ३ । ३०८ ॥
ब्रह्मसिद्धांत गत सू. २५२ से ४१६ तकका सार.

तद. अ. १ में द्वैतवाद, त्रिवाद एसे अनेक प्रकारके द्वैतवाद लिखे हें; उन-

मेंसे अधिकार भेदवश एक द्वैतवाद अन्योंसे अल्पदोषवाला सयुक्त सिद्ध होता हे जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन ब्रह्मसिद्धांतमें हे, यहां उसका सार लिखते हें.—

(१) पूर्ण अधिष्ठान चेतन (क्षेत्रज्ञ)में परिच्छिन्न अध्यस्त-प्रकृति (माया-क्षेत्र) हे. इन दोनोंसे जगतका व्यवहार चऌता हे. इसलिये इसको विशिष्टवाद ओर क्षेत्रक्षेत्रज्ञवादभी कहते हें.

(२) इन उभयका नाम प्रकृति पुरुष, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ, माया ब्रह्म वगेरे हे.

(३) परमाणुवाद सिद्ध नहीं होता. जीव अणु चेतनभी सिद्ध नहीं होता ओर अणु विभु चेतनमें वा जडमें कर्तृत्व भोक्तृत्व सिद्ध नहीं होता.

(४) स्वतोग्रहवाद सिद्ध होता हे, परतोग्रहवाद सिद्ध नहीं होता; क्योंकि परतः, स्वतोग्रहका विषय होजाता हे. सारांश चेतन स्वप्रकाशस्वरुप स्वतःप्रमाण रुप हे; क्योंकि चित्तादि उसके प्रकाश्य हें—उसमें ग्रहण होते हें ॥

एतद्दृष्टि नीचे अनुसार जान पडता हे ओर सिद्ध होता हे.—

(१) पूर्ण--समचेतनमें प्रकृति--प्रकाश्य रही हुई हे. जेसे के आकाशमें विजली, ईथर, वराल, स्टीम, पानी, बादल वा धूवां हे वेसे.

(२) सो अध्यस्त प्रकाश्य अनेक भागवाला हे. (१) विषयरुप. (२) साधनरुप. तथा विषय सूक्ष्म ओर स्थूल एवं दो प्रकारके हें. साधन (करण) मनस ओर प्रधान एसे दो प्रकारके हें, मनस नाना हें, प्रधान एक हे.

(३) प्रकाश्य--प्रकृति सत्वरजतमात्मक हे, इसलिये हरेक परमाणु, मिश्रितही होता हे. ओर उसके कार्यको परिणाम कहाजाता हे. व्यवहारमें परिणामोंका संयोग वियोग, एसेभी कहाजाता हे.

(४) अध्यस्तका मुख्य सूक्ष्मस्वरुप मन, बुद्धि, वाणिका विषय नहीं हे—याने वे नहीं जानसकते; क्योंकि यह उसके कार्य हें. उसके कार्योंसे उसके स्वरुपका अनुमान कियाजाता हे.

(५) सत्व रज तमका स्वभाव हे कि वे हलते रहें—एक दूसरेके उपर नीचे होते रहें ओर वे अकेले नहीं रहते, कम ज्यादा परिमाणमें साथही रहेंगे, जब समान परिमाणमें हों तो उनकी गति बंद होजाती हे.

(६) उसी प्रकृतिका एक अंश सूक्ष्मा हे (अ. २ लक्षणसंग्रह देखो). सो सूक्ष्मा (हिरण्यगर्भ) अधिष्ठानमें आकर्षित हुई अमुक मर्यादामें समुद्रकी चादर समान अनादिसे पसरी हुई हे—याने इधरउधर न जाके मर्यादामें रहती हे

इस अनादिसमुद्रमें ग्रह, उपग्रहरुप गोले अनादिसे घूमते रहते हैं, यह ग्रह उपग्रह स्वरुपसे अनादि नहीं हैं, किंतु प्रवाहसे अनादि अनंत हैं. (तद. पेज ६३५ से ६४२ तकमें एकमत वांचो); उपचयापचयका अनादिसे प्रवाह हे ओर रहेगा.

(७) ग्रह, उपग्रहोंमें बीज ओर मनसभी होते हैं, यहभी स्वरुपसे नहीं किंतु गिलो समान प्रवाहसे अनादिअनंत हैं, कम ज्यादा होते रहते हैं, उनका आरंभ नहीं कहा जासकता, वेभी ग्रहोंकी गति ओर सूक्ष्माकी लेहर द्वारा दूसरे ग्रहोंमें आते जाते रहते हैं, उनका रसायणीयसंयोग एसा होता हे कि उनका अदृश्य सूक्ष्मस्वरुप महान अग्निसेभी नष्ट नहीं होसकता (इसका मुख्य हेतु मूलमें बताया हे). मनस यह प्रकृतिके मलिनसत्व (रजतमसे दबे हुये) का भाग हे. यही पूर्व-पूर्व संस्कारवाला, प्रोटोपलाजममेंभी होता हे ओर उमुक बीजमेंभी रुपांतर पाया हुवा होता हे. जेसे कोयला, हीरारुप योग्यतावाला होके अद्भुत शक्तिवाला होजाता हे, इसीप्रकार पूर्वपूर्वके संस्कार (अभ्यास) वाला मनस व्यापकचेतनकी सन्निधिसे अद्भुत शक्ति ओर उपयोगवाला होजाता हे ओर चेतनका विशेषउपयोग होता हे; इसलिये उभय विशिष्टकी जीवसंज्ञा होती हे. यह रागादिवाला होनेसे कर्ता भोक्ता होता हे, कर्मवासनानुसार अनेक प्रकारकी योनियोंमें इसका आवागमन (जन्म) होता रहता हे. एसे जीव नाना हैं ओर प्रवाहसे अनादिअनंत हैं. इसीप्रकार अन्य बीजों-की स्थिति हे. पुनर्जन्म पाने ओर नवीन बीजकी रचनामें वक्ष्यमाण ईश्वरशक्तिकाभी हाथ होता हे. जब जीवको अध्यात्म-तत्वविद्याके याने ज्ञानके संस्कार हों तब उसकी कामना-वासना नष्ट होजाती हे, इसलिये उस पीछे उसकी अनुतक्रांति होती हे—पुनर्जन्म नहीं पाता—शरीरवत्. उसकी स्थिति होती हे—उसके अवयवोंका दूसरे मनसमें उपयोग होता हे जोकि अमृतावत् नवीनभी होते चले आ रहे हैं. इसप्रकार जीवोंका उच्छेद नहीं होता.

(८) उन्हीं गोलोंमें छूटे हुये पृथ्वी, जल, तेज, वायु, विजली, प्रकाश, गरमी वगेरेके परमाणु घूमते रहते हैं ओर उनका वर्षादि रुपमें उपयोग होता हे. वनस्पति, प्राणी ओर मनुष्य वगेरेके शरीर बनते बिगडते रहते हैं.

(९) सूक्ष्माका शुद्ध सत्वांश (रजतमसे न दबा हुवा) का नाम प्रधान हे उसमें महान शक्तियें हैं, वोह लचकवाला हे, अनेक उत्तम गुणवाला हे. समचेतन ओर प्रधान—इन उभयके संबंधसे उभयका विशेषउपयोग होता हे. जेसे मन सचेतन—उभयविशिष्टका नाम जीवशक्ति हे वेसेही इन उभयविशिष्टका नाम ईश्वर

शक्ति हे. मनस जीववृत्ति हे, प्रधान ईशवृत्ति हे. सो एक महान निरावरण हे. यही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान इत्यादि योग्यतावाला होनेसे सगुण हे. चेतनभाग निर्गुण हे. इस सगुण ईश्वरद्वाराभी जगतकी व्यवस्था होती हे. जेसे शरीररुप राजधानीके तीन प्रकारसे कारोबार होते हें अर्थात कोई काम प्रकृतिके नियमसे होता हे, जेसे के चक्रोंकी गांठे ओर तिल्ली वगेरे अपना काम आप कररही हें, जीवकी उसमें अपेक्षा नहीं हे. कोई काम जीवके विना नहीं होता, जेसे के हाथ पेर हिलना ओर बोलना वगेरे. ओर कोई काम दोनोंके विना नहीं होता, जेसे के खूराक पहोंचके अवयवोंको पोषण मिलना, श्वास रोकना, चलना इत्यादि. इसीप्रकार ब्रह्मांडके काम तीनप्रकारसे चलरहे हें. (१) प्रकृति मर्यादामें रहे ओर ब्रह्मांड प्रकाशित हो यह काम चेतनका. (२) ग्रह उपग्रह यथायोग्य गतिमें रहें ओर बनते बिगडते रहें तथा उनकी गतिद्वारा पृथ्व्यादि तत्वोंका उपयोग होता रहे यह काम प्रकृतिका. (३) मनस वा बीजोंकी व्यवस्था बिगडे तो वा ग्रह, उपग्रहकी व्यवस्थामें अंतर पडजाय तो ईश्वर (उभय) द्वारा ठीक हो, इत्यादि प्रकारसे ब्रह्मांडका काम चलता हे. इसप्रकार अनादिअनंत प्रवाह हे.

(१०) इस विशिष्टवादमें दो पक्ष हें. (क) उपरानुसार उपचयापचय होते रहना–याने महाप्रलय नहीं हुई ओर न होगी. (ख) ईश्वर यथाकर्म उत्पत्ति लय करता हे, महाप्रलयकालमें ईश्वरका प्रधान अंशभी संकुचित होके अव्यक्त रुप हुवा ब्रह्ममें लय होजाता हे. जेसे जाग्रत स्वप्नसृष्टि यह दोनों सुषुप्तिमें अव्यक्त रुप ओर जीव घन (बीज) रुप होजाते हें, ओर उसमेंसे पुनः जाग्रत, स्वप्नसृष्टि होती हे; एसे महाप्रलयकालमें प्रधान, मनस, सूक्ष्मा, गृह, उपगृह वगेरे सब बीज रुप होजाते हें, कर्मभोगका काल आनेपर उपर कहे अनुसार सृष्टि होके व्यवस्था होती हे ॥ यद्यपि दोनों पक्षोंमेंसे कोई पक्षभी सिद्धांतका हानीकारक नहीं हे, तथापि महाप्रलयका सयुक्त सिद्ध होना मुशकिल हे (विशेष विस्तार बस. में). यहांतक विभुपरिच्छिन्नवाद कहा ॥ ३०८ ॥

(शं.) व्याप्य व्यापकभाव मान्नेमें भेद (३८२) नियम बाधक होता हे; अतः विभुपरिच्छिन्नवाद असिद्ध हे. (उ.) उक्त सिद्धांतमेंसे प्रकाश्यको ब्रह्मसे विलक्षण अस्तित्व (सत्ता) वाला अर्थात स्वप्नसृष्टिवत् जाना कि तमाम शंका दूर होजायँगी ओर पूर्वोक्तव्यवस्थावाले सिद्धांतकी कायमी होजायगी. जेसे के आगे अधिष्ठान अध्यस्तवादमें कहा जायगा. (शं.) सूत्रमें यह बात नहीं हे. (उ.)

यहां तो द्वैतवादोंमें किस प्रकारका द्वैतवाद ठीक होसकता हे, इतना जिताने वास्ते यह सारलिखा हे. नहीं तो इसकी जरुरत नहीं थी; क्योंकि इस द्वैतवादको भेद नियमसे बाधित दरसाया हे ॥ ३०९ ॥

अद्वैतवादही स्वरुपाप्रवेशसे (अ.) ॥ ३१० ॥

वदतो व्याघातसे ॥ ३११ ॥

अर्थ.—ब्रह्मांडमें एक वस्तुसे इतर दूसरी वस्तु नहीं हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि एकके स्वरुपमें दूसरेका प्रवेश नहीं होसकता. यह पक्ष अद्वैतवादियोंको संमत हे सो असिद्ध हे ॥ ३११ ॥ क्योंकि इस मंतव्यमें वदतोऽव्याघात दोष आता हे—अर्थात अद्वैतकी सिद्धि करनेवाला--मान्नेवाला उस अद्वैत तत्वसे जुदा ठेरता हे. (विशेष अ. ४ में) ॥ ३११ ॥ अद्वैतवादके पक्ष यह हें.—

(१) सजातीय, विजातीय ओर स्वगत भेदरहित एक अद्वितीयचेतन (वेदांतपक्षगत अजातवाद).

(२) एक क्षणिकविज्ञानसे इतर दूसरी वस्तु नहीं हे, नामरुपात्मक जगत सब उसीका परिणाम हे. जेसे दीपककी लो क्षणिक हे, वेसे क्षणिक हे. इस क्षणिकत्वका कारण पूर्वपूर्वके संस्कार-वासना-कर्म हें. सो अपनी संतान उत्तरके मेटरमें छोडजाते हें अब वोह उत्तर पूर्ववालाही जानपडता हे. यथा दीपक करके बुझाके दूसरा करें तो पूर्व जेसा होता हे. ओर दीपकसे दीपक करें तो पहेला जेसा होता हे. जो मिश्रणसे हरी लो होगी तो दूसरीभी हरी होगी (यहां हरे रंगको वासना-संस्कार स्थानी जान लेना); एवं क्षणिक अद्वैत हे. किंवा स्वरुप क्षणिक नहीं किंतु यथावासना—संस्कार—कर्म उसके पर्याय (परिणाम—अवस्था) क्षणिक हें; सो ही त्रिपुटीरुप जगत हे, परंतु त्रिपुटीभी समकाल नहीं होती किंतु क्षणिक हें. उत्तर उत्तर परिणामसंतान हें; अतः क्षणिकाद्वैत हे ॥ जबके विज्ञानसे इतर बाह्य पदार्थ अनुमानके विषय हें, एसा मानाजाय तो द्वैत कहाजायगा. उसका यहां प्रसंग नहीं हे.

(३) एक सच्चिदानंद रुपही यह सर्व हे. उसके इच्छाअनुसारी उसीके यह नामरुप (जगत—जीव) हें. वोह कनक कुंडलवत अविकृतपरिणामवाला हे. मकडीतंतुवत् अभिन्ननिमित्तउपादान हे. अपनी लीलासे आपही आविर्भाव, तिरोभाव रुप होता हे. इसलिये उभय पक्षमें शुद्धाद्वैत हे.

(४) एक ब्रह्मही नामरुप जगतभावको प्राप्त होता हे (उसका क्रम थीओसोफी प्रसंगमें वांचोगे--दर्शनसंग्रहमें लिखा हे) यह थीओसोफीका अद्वैतवाद हे.

(५) एक सजातीय विजातीय ओर स्वगत भेदरहित एसा जो अद्वितीय ईश्वर उससे अन्य पहेले कुछभी नहीं था ओर सृष्टिके उत्तरमें न रहेगा. उस ईश्वरने अपनी इच्छासे अभावमेंसे भावरुप यह जीव ओर जगत बनाये हें. उसने कहा कि "होजा ओर सब कुछ होगया." (विश्वासी पक्ष).

(६) एक शक्तिसे इतर अन्य कुछ नहीं हे, उसीकी गति ओर परिणामसे जड चेतनात्मक नाना रुपवाली यह सृष्टि हे (हेगलादि).

(७) एक ब्रह्मही सत्‌चिदानंद रुप हे, केवालाद्वैत हे, अनादि अनंत हे; उससे विलक्षण अनादि अनिर्वचनीय माया करके यह नामरुप जगत भासता हे, अर्थात माया ओर उसके नामरुप यह ब्रह्मके विवर्त्त हें; अतः ब्रह्मही नामरुपात्मक भासता हे. जेसे डोरी सर्परुप भासती हे वेसे. वा जेसे स्वप्नसृष्टि होती हे वेसे. माया अनादि सांत हे ओर डोरीके सर्प समान हे; अतः केवलाद्वैत हे. किंवा माया प्रवाहसे अनादिअनंत ओर स्वरुपतः आकाशकी नीलता समान सद्‌ब्रह्मसे विलक्षण ओर अनिर्वचनीय हे; अतः विलक्षणाद्वैत हे. (इसका विस्तार ब्रसु. में हे). उभय पक्षमें मायाका स्वीकार हे.

(८) द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत वा द्विवाद, त्रिवादका समावेश द्वैतवादमें होजाता हे.

इन पक्षोंके असमीचीनतादर्शक पक्षप्रति सूत्र यह हें.—

(१) ३७२ । ३७४ । ३७५ । ४३४ । ४३७ । ४५१ । १३७ ओर दृष्टविरुद्ध दोष याने परिच्छिन्न जगत समक्ष हे, कुछ हुये विना उपलब्धि नहीं होती.

(२) १७४ । १७५ । २०२ । २०५ । १७२ । २११ । ३७२ । ३७५ । ४५१ । ४७४ । ४७६ । १८० ।

(३) नं. १ ओर २ के तमाम सूत्र. तथा ३४०।३०२।३०३।३२८।४०१.

(४) नं. ३ के अनुसार.

(५) ३१० । २७० । २७२ । २७५ । २८५ । २८२ । ३०८ । १३७ । १३९ । १६८.

(६) आधाराधिकरण तथा ३७५ ओर उक्त नं. २ अनुसार.

(७) अद्वैतसिद्धकर्ता दूसरा सिद्ध होनेसे इस पक्षके एक अंशकी असिद्धि होती हे. ओर सद्‌ब्रह्मसे इतर उससे विलक्षण अनिर्वचनीय एसा मानाजाय

तो कुछ ओर रुप आजाता हे. इसकी सिद्धि ओर तद्गत असमीचीन अंशकी असिद्धिका विस्तार बस. में हे ओर आगे सिद्धपक्षमेंभी वांचोगे. व्यवहारमें द्वैत ओर परमार्थमें अद्वैत कहना वा बताना, यही द्वैत हे. विस्तार अद्वैतादर्शमें कियागया हे ॥ ३१० । ३११ ॥

नमूना.—

अद्वैतवादियोंके अयुक्त अंशका अपवाद दर्शनसंग्रहमें वांचोगे. यहां तो क्रमशः नमूनामात्र जनाते हें.—

१–ब्रह्मसे इतर अन्य न हो तो ब्रह्म अनुपयोगी रहेगा; क्योंकि अपना अपनेमें संयोग ओर उपयोग नहीं होता, यह अ. २ । २४३ में कहा हे; परंतु निष्फलत्वका अभाव हे (२ । १२७ याद करो); इसलिये केवल निरवयव एक ब्रह्मही हे, अन्य कुछभी नहीं हे, एसा नहीं मानसकते.

२–एक क्षणिकविज्ञान परिणामी वस्तु यदि नदीके प्रवाह समान किंवा दीपककी लो समान क्षणिकरुपसे बहती हे (प्रवाहमें हे), तो गया हुवा अंश (भाग) कहां गया ओर नवीन अंश कहांसे आया? इसका जवाब यही होसकता हे कि जेसे दीपकमेंसे तेलके परमाणु आते, ओर रोशन होते, चले जाते हें, अंतरिक्षमें गुप्त–अदृष्ट होजाते हें, वेसे क्षणिकविज्ञानका प्रवाह हे. अर्थात सावयव हे, एक वस्तु नहीं, क्योंकि अभावसे भावरुप वस्तु नहीं होती; तथाहि त्रिपुटी व्यवहार स्थायी देखते हें, सूर्य चंद्र सर्वको वही एक विषय होते हें.–हरेकके जुदा नहीं हें; इसलिये क्षणिक भाव नहीं ओर दृश्य एकका परिणाम नहीं हे; अतः क्षणिकाद्वैत नहीं. जो जल बरफ ओर बरफ जलके समान वा कनक कुंडल, बींटीके समान क्षण क्षणमें परिवर्तनको पाता हे अर्थात उसके राग, द्वेष, दुःख, सुख, स्मृति, ज्ञान वगेरे पर्याय (अवस्था–परिमाण–गुण) तो क्षणिक हें परंतु उसका स्वरुप क्षणिक नहीं हे, एसा मानें तोभी अद्वैतभाव सिद्ध नहीं होता; क्योंकि परिणाम एक निरवयव तत्वका नहीं होता, सावयवकाही होता हे (२ । १७४ याद करो) १, ओर त्रिपुटी व्यवहार स्थायी देखते हें २, तथा विरोधि पदार्थ देखते हें, वे एकके परिणाम नहीं होसकते ३, ओर सबको एकही सूर्य चंद्र भासता हे; अतः वे अनेकोंके परिणाम नहीं ४, इसलिये प्रावाहिक क्षणिकभी नहीं. इसप्रकार दोनों पक्षमें क्षणिकाद्वैतकी असिद्धि हे.

३–सच्चिदानंद ब्रह्म (ईश्वर) से इतर अन्य कुछभी नहीं हे, वोह अपनी

इच्छासेही नाना रुप (जीव-जगत) होगया हे, ओर पुनः अपने पूर्वरुपमें होजाता हे; इसलिये शुद्धाद्वैत हे. इस भावनामें दो पक्ष हें.—

(क) जलसे बर्फ, बर्फसे जल वा कनकसे कुंडल, कुंडलसे कनक, इस समान उत्पति स्थिति लयवाले रुप होते हें. अतः अद्वैत हे.

(ख) दूसरा पक्ष एसे मानता हे कि ब्रह्मके सत्, चित ओर आनंद इनका तिरोभाव आविर्भाव होता हे, सो सब ब्रह्मकाही रुप हे; अतः अद्वैत हे. जेसे द्रश्य घट, मृतिका पिंडमें पहेलेही से था, अनुभवका विषय न होनेसे नहीं मालुम होता था, इसका नाम **तिरोभाव** होना. ओर अब अनुभवका विषय हुवा उस स्थितिका नाम **आविर्भाव**. निदान घट नवीन नहीं हे, ईश्वरकी इच्छासे उसका आविर्भाव, तिरोभाव होता हे. जीव ब्रह्मका अंश हे. जब अग्निकी चिंगारी समान गतिमान रुप होता हे याने जुदा अणुरुपमें आविर्भाव होता हे तब उसमें आनंदांश तिरोभावको पाता हे, सत् चित् अंश उद्भूत रहते हें. यह सब ईश्वर इच्छासेही होता हे. आनंदांश तिरोभाव होनेसे अविद्याके आवेशसे सो जीव कर्ता-भोक्ता दुःखी सुखी होता हे. सो जीव अणु हे ओर नित्य हे. जब ईश्वरकी भक्ति करनेसे-ईश्वरकी इच्छा--कृपा होनेसे उसकी अविद्या नष्ट होजायगी तब वोह ईश्वरमें हमेशे सायुज्य रहेगा ओर आनंदांश आविर्भाव हुये विभुरुप होजायगा. यहभी सब ईश्वरेच्छासे होता हे. दृश्य जड पदार्थ (घट सूर्य पंचतत्वादि) भी ब्रह्मकाही स्वरुप हे. जब ब्रह्मके चेतन, आनंद अंशका तिरोभाव होता हे तब सो सत् रुपवाला जड अंश हे; इसका आविर्भाव रुप यह नाम रुप जगत हे. उपर जो कहा सो सब प्रभुकी इच्छासे होता हे. आपही वोह लीला कर रहा हे. एसा होनेमें कोई अन्य निमित वा अन्य उपादान नहीं हे. आपही उपादान ओर निमित्त हे. अतः अन्य न होनेसे शुद्धाद्वैत हे. (क. ओर ख याने उभय पक्षवादि जीव, उसका बंधमोक्ष, विधिनिषेध ओर शास्त्र मानते हें).

(क) उपरोक्त प्रथम पक्ष (क पक्ष) का संक्षेपमें अपवाद.—

विद्यमान सृष्टिके पूर्व कोई अन्य सृष्टि नहीं हुई या हुई हे या हमेशेसे हे? जो नहीं हुई तो इस सृष्टिके जीवोंको कर्मके विना क्यों जन्म-दुःख हुवा. जवाबमें कहोगे कि उस (ईश्वर)की मरजी; ओर अपनेआप एसा हुवा; अतः निर्दयता वा विषमताका दोष नहीं आता; आपही पुनर्जन्म, नरक, स्वर्ग भोगता भुगाता हे; अतः उसको पाप पुण्य नहीं कहसकते ॥ सृष्टिके आरंभमें जीवसंख्यासे अनंत वा

संख्यात्मक? ओर जो जीव बंधरुपमें उद्भव हुये उन सबकी मुक्ति हुये पीछे प्रलय होगी याने ब्रह्म अपने पूर्व रुपमें होजायगा वा सब मुक्त न होनेके पहले पूर्वरुपमें (शुद्धरुपमें) होजायगा? जो सबकी मुक्ति हुये पीछे पूर्वरुप होगा, तो जीव अनंत हैं, उनकी मुक्तिवास्ते अनंतकाल चाहिये अर्थात पूर्वरुपमें न आवेगा, विकारीही रहेगा. अर्थापतिसे यह सिद्ध होगा कि पूर्वसेही विकारी, सावयव ओर परिणामी हे, केवलाद्वैतरुप नहीं; क्योंकि जीव नित्य हें. ओर जो सबके मुक्त हुये पहेलेही पूर्वरुप होजायगा तो बंध जीव साधनके विना शुद्ध--मुक्त होगये अर्थात प्रभुके कहेहुये साधन शास्त्र निष्फल-कथनमात्र ठरेंगे. जो कहो के भलेही हो, उसकी मरजी. तो में यह कहूंगा कि आपके मंतव्यका निषेधभी उसकी इच्छासे होता हे अतः सो त्याज्य हे. जो कहो कि हमारा मंतव्यभी तो उसकी इच्छा–उसका मंतव्य हे-तो कुछ निर्णय-व्यवस्था न हुई, कथन-मंतव्य बकवादमात्र ठेरा ॥ ओरभी पूर्वरुप हुये पीछे पुनः सृष्टिरुप होगा वा नहीं? जो नहीं हो तो निष्फल रहेगा; निष्फलत्वका अभाव हे. ओर जो होना मानें तो पूर्ववाले अंश (मुक्त, अमुक्त) जीव, उद्भव होंगे वा नहीं? जो उद्भव होना मानें तो मोक्षसे आवृत्ति ठेरी. ओर जो मुक्तिवाले उद्भूत न होंगे ओर बंध जीवही उद्भव होना मानें तो पूर्ववत् शुद्ध रुपमें न आया याने विकारीही रहा, एसा मान्ना होगा; नहीं तो वे कहांसे आगये. अब यह मानो कि मुक्त नहीं किंतु अमुक्तही उद्भव हुये ओर उनमेंसे पुनः मुक्त होने लगे; तो एसे होते होते सब मुक्त होजायँगे, उस पीछे जीवरुप सृष्टि ओर भोग्यरुप सृष्टि नहीं होगी अर्थात ब्रह्म निष्फल रहेगा, परंतु एसा होना असंभव हे. अब जो यह कहो कि जबतब शुद्ध हुये पीछे पुनः "में एक हूं. बहुत होजाउं" एसा करेगा याने एसे होनेका प्रवाह अनादिअनंत हे, एसा मानें तो एसे व्यर्थ कार्य करनेका कोई योग्य हेतु नहीं मिलता ओर न कोई जान्नेमें आया हे. तथा जीव, बंध, मोक्ष मोक्षके साधन, धर्मशास्त्र, व्यवहार व्यर्थ ठेरे वा व्यवस्था विनाके रहे–कोई व्यवस्था नहीं होगी; क्योंकि ब्रह्मके अंश-जीव ओर जड यह तो स्वभावतः होते, बिगडते रहते हें; छोकरोंके घरघूले समान कल्पनामात्र हें ओर बंध, मोक्ष, धर्म, अधर्म, सच्चाइवाले सफल नहीं, यह परिणाम आवेगा; इसलिये एक शुद्ध तत्व याने निरवयव ब्रह्म, नानारुप करता हे, एसा अद्वैतवाद अयुक्त हे. कोईभी एसा नहीं जानसकता वा यह सिद्ध नहीं होता कि यह सब मेराही स्वरुप हे, मेंने रचे हें, मेंही नाना स्वरुप होगया हुं. केवल शब्दोंके भक्त शब्दोंकी

परंपरासे एसा कहते मानते चलेआते हैं. अर्थात व्याप्तिशून्य भावनामात्र यह मंतव्य हे. उक्त ३+३=६ इन छ विकल्पोंका परिणाम कहा गया.

(ख) अब दूसरा (ख) पक्ष—आविर्भाव तिरोभावपर विचार चलावें. जब अनुभवका विषय हो तब आविर्भाव जान्ना ओर जब अनुभवका विषय न हो तब ज्ञेयका तिरोभाव जान्ना, एसा मानें; तो जब घटके टुकडे करके प्रथक प्रथक देशमें लेजाके तोलें तो वे टुकडे घट समान वजनमें नहीं होते—अर्थात जो घट परमाणु (टुकडे) रुप न हुवा किंतु काष्टाग्नि समान अव्यक्त—अदृष्टरुपमें हो तो एसा न होनाचाहिये, परंतु होता हे; तद्वत एसा हो तो शरीरादिमें उत्पत्यादि ६ विकार न होनेचाहिये परंतु होते हैं; अतः घटादिकी उत्पत्ति नाश न मान्ना ओर आविर्भाव तिरोभाव मान्ना यह कल्पनामात्र हे; तथा तिरोभूत घटका ईश्वरको ज्ञान हे वा नहीं? जो हे तो तिरोभाव रुप न रहा. जो नहीं तो ईश्वर सर्वज्ञ न हुवा ओर तिरोभाव (होते हुये न दीखना) का सबूतही नहीं होसकता; अतः ईश्वरकी दृष्टिमें तो तिरोभाव आविर्भाव नहीं किंतु उत्पति नाशवालाही होगा; क्योंकि जब जीव अग्निकी चिंगारी समान जुदा हुवा ओर उस चिंगारी (अणु जीव)का आनंद तिरोभाव हुवा, ओर उस स्थिरकी स्थिरताका अभाव हुवा तथा उसको गति हुई, —इन सबको ईश्वरने जाना. याने गतिकी उत्पत्ति हुई स्थितिका नाश हुवा सो जाना; ओर फेर भक्ति वा ईश्वर कृपासे सायुज्य हुवा ओर विभु हुवा सोभी ईश्वरने जाना. सारांश गतिकी उत्पत्ति नाश, अविद्याकी उत्पत्ति नाश, स्थितिका बदलना यह सब ईश्वरने जाना; तो अब इसको आविर्भाव, तिरोभाव केसे कहाजाय. जो मजकूर गति ओर अविद्या तथा बंध ओर मोक्षका आविर्भाव तिरोभाव मानें तो बंध मोक्षका प्रवाह रहेगा, ओर जो एसा नहीं तो बंधका तिरोभाव कहां रहा? कभी नहीं. किंतु बंध—अविद्याका नाशही कहना पडेगा. यदि जीव अणु ओर नित्य हे तो सायुज्य हुयेभी भेदही रहा--अभेदरुप--ब्रह्म स्वरुप न हुवा, इसलिये ब्रह्मका पूर्ववत अविकृतपरिणाम न ठेरा; किंतु जबके जीव नित्य हे तो आविर्भावके पूर्वभी ब्रह्म शुद्धस्वरुप नहीं था किंतु अणु अणु रुप था. ओर जो सायुज्य न हुवा किंतु ब्रह्मस्वरुप होगया तो जीव नित्य न ठेरा, ओर ब्रह्ममें अमुक वोल्युम ज्यादे हुवा. जो यह मानें कि जेसे कनकके अणुअणुकी सजातीयता एसे सजातीयत्व मानके शुद्धाद्वैत हे तो ब्रह्म टुकडे टुकडे रुप—सावयव ठेरेगा; ओर विरुद्धधर्माश्रय न होगा; ओर जो यूं हो तो उसका अंश

जो जीव सो रागादिवाला ओर उसके अंश जो सत् वे जड तथा विरोधीगुण धर्मवाले न होने चाहिये, परंतु हें; अतः उसके सजातीय नहीं किंतु विजातीय रुपभी अवयव हें, अर्थात जेसे समष्टिवादिजडपक्षका परमाणुपुंज हे, वेसा ब्रह्म ठेरा. शुद्धाद्वैत ओर एक न रहा. जेसे कनककी छुरी, कुंडल वगेरे बनें, कनकके टुकडे टुकडे हुये तब छुरी वगेरे हुये वा आविर्भूत हुये, एसी दुर्दशा हुई, पीछे फेर कनकरुप हो गये, तो छुरी वगेरे नित्य न ठेरे, छुरी कनकके भंडारमें सायुज्य नहीं रही किंतु कनकरुप होगई. ओर यदि छुरी कुंडल हमेशेसे थे, तिरोभाव आविर्भाव रुप होते रहे हें, एसा हो तो अपने पूर्व—कनकरुपमें कभीभी न थे ओर न होंगे. वेसेही ब्रह्म ओर उसके अंश जीव अणुचेतन ओर उसके सदंशवाले पंचभूत वास्ते घटा लेनाचाहिये. उभय प्रकारमें शुद्धाद्वैतका निरास होता हे. निदान आवि. तिरो. का प्रवाह मानो वा उनको स्थायी मानो, दोनों पक्षमें-उभय रीतिमें ब्रह्म अविकारी नहीं ठेरता, ओर सावयव ठेरता हे.

वर्तमान लीला (सृष्टि जीवरुप होना)से पूर्वमेंभी एसी लीला हुई थी १, वा नहीं २, वर्तमानके पीछे पूर्वरुपमें आके पुनः एसी लीला करेगा वा नहीं ३, किंवा प्रवाहसे याने हमेशेसे एसी लीला करता आया ओर करेगा ४, यह ४ सवाल कायम करें, तो जेसे उक्त क पक्षमें दोष आये हें, वेसे सब दोष आवेंगे. अंतमें ब्रह्म, विजातीय अवयवोंका समूह याने सांख्यकी त्रिगुणात्मक प्रकृति जेसा वा परमाणुवादिके पुंज—प्रकृति जेसा मान्ना होगा, शुद्धाद्वैत न होगा.

जो सायुज्योंका तिरोभाव न हो, जन्म मरणमें न आवें तो एसे होते होते सब चिंगारी—जीव अंश—मुक्त होजायँगे अर्थात फेर लीला न होगी, सृष्टिरुप न बनेगा. जो पुनः लीला होगी तो मुक्तिसे आवृत्ति होगी. अर्थात मुक्तिका तिरोभाव होगा. याने स्वपक्ष त्याग होगा. जो यह कहो कि ब्रह्म अनंत, अतः उसके अंश जीव (परमाणु) भी अनंत ओर आविर्भाव तिरोभावभी अनंत हें; इसलिये उक्त दोष नहीं आता ओर मोक्षसे आवृत्ति नहीं होती. एसा मानें तोभी नहीं बनता; क्योंकि सायुज्य मुक्तिवाले ओर अमुक्त तथा परमाणु एसे ३ प्रकारके अंश अनंत हुये, परंतु अनंत एकही होता हे. अनंत मुक्त ओर अनंत अमुक्त एसे एक ब्रह्मके दो अनंत नहीं होसकते (यहां अ. ३ मुक्तिभावना गत सू. २४०।२४१ की टीका देखो). इसलिये ब्रह्मको एक अनंत मान्ना फेर उसके नाना गतिवाले अवयव कहना ओर उसके अनेक प्रकारके अवयव बताना तथा हरेक प्रकारके

अनंत अनंत अवयव कहना तथा उसे एक मानके विरुद्धधर्माश्रय मान्ना याने उसके अंशको दुःख, सुख, बंध, मोक्ष बताना तथा तम, प्रकाश, शीत, उष्ण, चौर, साहुकार, गोभक्षक, गोरक्षक, उपासक, उपास्य, उपदेशक, श्रोता, दृष्टा दृश्य, ज्ञाता ज्ञेय, भोक्ता भोग्य, कर्ता कर्म, इत्यादि उसके विरुद्धरुप–परिणाम मान्ना हास्यास्पद नहीं तो क्या? तथा जबके विरुद्धधर्मवाले विजातीय अंश ठेरे तो ब्रह्म सजातीय सावयवभी न ठेरा; किंतु विजातीय सावयव ठेरेगा अर्थात अ-विकृतपरिणामवालाभी न हुवा, इसलिये शुद्धाद्वैत नहीं बनता.

(शं.) सर्वशक्तिमान, सब कुछ करसकता हे (उ.) इस शंकाका उत्तर उपर (अ. २ । ४०१ । ४०६)में आचुका हे. यह अपवाद ओर आपके अयुक्त मंतव्यका निषेधभी तो उसीकी तरफसे हे, अतः बस हे.

उपरोक्त दोनों पक्षवाले, इन उभय पक्षोंकी सिद्धिमें जिसकी साक्षी देवें उसके सामने यह अपवाद हे, नहींके उसके अनुयायी-भक्तोंके साथ चर्चनेका हे; क्योंकि वे स्वयं परके विश्वासु हें.

४–नं. ४ वाला पक्ष नं. ३ के अंतरगत आजाता हे.

५–पंचम अद्वैतवाद अभावज हे. परंतु अभावसे भावरुपकी उत्पत्ति असंभव हे, यह जघे जघे कहा गया हे. ओर इस पक्षमें जीवको कर्मफलके विना ईश्वरेच्छासे शरीर मिलना कहा हे, ओर जीव ईश्वरकृत माना हे; इसलिये जीव जवाबदार नहीं ठेरता; अतः बंध, मोक्ष, स्वर्ग, नरक ओर स्वतंत्र व्यवहारकी व्यवस्था नहीं होती. तथा सृष्टिउत्पत्तिके पूर्व ओर उत्तरमें ईश्वर निष्फल होता हे. ओर सृष्टिनियम युक्ति तथा अनुभव ओर परीक्षाको यह पक्ष, सहन नहीं करता अर्थात अयुक्त पक्ष हे. (शं.) सर्वशक्तिमान होनेसे अभावसे करसकता हे; अन्यकी अपेक्षाविना अपनी इच्छासेही किया हे; अतः निर्दयता---विषमता---अव्यवस्था वगेरे दोषोंका आरोप नहीं होसकता. वोह स्वतंत्र हे उसका खेल वोह खुशीमें आवे जेसा करसकता हे. (उ.) अ. २ । ४०१ से ४०९ तकसे इसका उत्तर होजाता हे. सर्वशक्तिमानके काम खेलरुप, दुःखद ओर व्यर्थ नहीं होते किंतु न्याय युक्तिवाले सफल होते हें. तथाहि आपके मंतव्यानुसार इस मंतव्यकी अयुक्तताकी प्रेरणा वा कह बताना भी तो उसीकी तरफसे होसकती हे, इत्यादि (विशेष दर्शन संग्रहमें); अतः एसा अद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता.

(६) जीव शरीरसे भिन्न हे, उसका पुनर्जन्म–बंध, मोक्ष होता हे, इस

झगडेको अलग रखके, एक अज्ञेय तत्वमेंसे इस जगतका प्रादुर्भाव होता हे; किंवा किसीएक शक्तिका यह जगत रुपांतर हे; एसा मानें तो--विरुद्धधर्माश्रयवाले दोष आते हें १, ओर एक तत्वकी एक कालमें अनेक गति ओर विरुद्ध दिशामें गति नहीं होसकती, परंतु दृश्यमें तो एसा देखते हें २, उस एकका अंश अपने अंशका विरोधी नहीं होसकता, परंतु सृष्टिके पदार्थोंमें विरोध देखते हें ३, ओर देशके विदून गति नहीं होसकती परंतु इस पक्षमें देशकाल पूर्वमें थे, एसा नहीं मानागया हे ३, इसलिये एसा अद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता.

(७) सातवें पक्षमें यद्यपि पूर्वोक्त दोष नहीं आते, क्योंकि अनादि अनिर्वचनीयके सबब पूर्व पूर्वके संस्कारबलसे दृश्य भान होता हे, बंध मोक्षादिका मंतव्य तदंतर्गत आजाता हे, तथापि केवलाद्वैतसे इतर भावरुप अनादि मायाका स्वीकार हे. अब वोह माया अनिर्वचनीय अनादिसांत मानो अथवा प्रवाहसे (व्यक्त अव्यक्तरुप) अनादिसांत मानो—कैसीभी मानो, परंतु द्वैतका प्रवेश तो कहनाही होगा. तथा जब मायाका अत्यंतअभाव होजाना मानें तब द्वैत, अद्वैतकी सिद्धि वा असिद्धि वा एसा भावही कहना नहीं बनता ओर ब्रह्म अनुपयोगी रहजायगा, परंतु निष्फलत्वका अभाव हे. इसलिये सद् ब्रह्मसे विलक्षण प्रकारकी अनिर्वचनीय माया अनादिअनंत मानें तोभी एक प्रकारका--विलक्षणाद्वैत रहेगा, द्वैतभावका अभाव सिद्ध न होगा; क्योंकि जहांतक साध्य, हेतु, उदाहरण वा प्रतिज्ञा, व्याप्ति, दृष्टांत, सिद्धांत हैं अथवा कल्पना वा भावना हे, वहांतक अद्वैत कहना वा इसपर विवाद करना कल्पनामात्र हे ओर जब यह नहीं तो द्वैत वा अद्वैतरुप भावभी नहीं[1].

सारांश द्वैत वा अद्वैतभावनाका पक्ष खेंचना, उसमें काल गुमाना व्यर्थ जेसा हे. ठालियोंके वास्ते छोड दो ॥ ३११ ॥

अनेकांतवादकी सिद्धिही मतभेददर्शनसे (अ.) ॥ ३१२ ॥

अस्ति नियम ओर व्याघातापत्तिसे ॥ ३१३ ॥

अर्थ.—अनेकांतवादकी सिद्धि हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि पदार्थोंके

[1]मुसलमान संसारमें एक सूफी पक्ष हे. उसमें दो भावना हें (१) एकभावनावाले जीव जगतको ब्रह्म (अल्लाह)काही परिणाम मानते हें. (२) दूसरा मंडल ब्रह्ममें जगत मृगतृष्णिका समान हे, एसा मानता हे ॥ सूफी मतका समावेश नं. ३ ओर ७ में होजाता हे; अभिन्ननिमित्तोपादानवादि आरंभपक्ष मानते हें, प्रवाहपक्ष नहीं मानते.

स्वरुपमें परीक्षकोंका मतभेद हे. यह पक्ष अनिश्चितवादि ओर जैनको संमत हे. यह मंतव्य असिद्ध हे ॥ ३१२ ॥ क्योंकि अस्ति (१८६) नियमकी आपत्ति हे तथा एसे मान्नेवालेको वदतोव्याघात दोष लगता हे ॥ ओर सू. ३४० । ४५६ । २३९ । २४२ । ३८२ । ११७ । ४८२ इस पक्षके निषेधक हें ॥ ३१३ ॥

जो हे सो हे ही ओर जो नहीं हे सो नहीं ही हे, इसप्रकार एकांत हे. तथा अनेकांत कहनाभी तो एकांतकोही सिद्धि करता हे. जो अपने मंतव्यको एकांत (निश्चित) न मानके अनेकांत (हमारा अनेकांत मंतव्य सद्भी असद्भी इत्यादि) कहोगे तो अनवस्था चलेगी ओर कुछभी सिद्धांत निश्चय न होगा; अतः अनेकांत वादकी असिद्धि हे.

अनेकांतवाद कई प्रकारके कहाते हें--(१) एकही वस्तु अनेक प्रकारकी होना (यथा जीव अणुभी विभुभी ओर मध्यमभी हें, अभाव अनादिसांत ओर सादिअनंतभी हें). (२) अ. ३ सू. १७९ में कहा हे. (३) मनुष्य जिसको निश्चित नहीं जानसकता याने अनिश्चित, क्योंकि सृष्टिमें पदार्थ अनेक प्रकारके माने जाते वा सिद्ध होजाते हें. जेसे के शब्दादिमें मतभेद हे. (४) सत् असद् ओर सदसद्रूप होना.

(१) परमाणु, रंग, प्राणी अनेक प्रकारके हें, वे कुदरतमें अनेक प्रकारके हें ही, उनको अनेक प्रकारके कहना मान्ना अनेकांत दोष नहीं मानाजाता, किंतु एकही वस्तुके स्वरुपको अनेकरुपमें मान्ना अनेकांतवाद हे. (२) दूसरे प्रकारका निषेध अ. ३ । १७९ में होचुका हे. (३) मनुष्य अपूर्ण हो वा उसका ज्ञान अल्प हो वा उसके प्रमाण अपूर्ण हों तो क्या कुदरतमें अनेकांतताकी प्राप्ति होजायगी? कभी नहीं; २ । ११५ । ११७ विचारिये. जो सर्वथा अनिश्चितही होता तो जीवनही नहीं होता. अलबत्ते कितनेक विषय एसे हें कि मनुष्य नहीं जानसकता तो यह मनुष्यकी अपूर्णता हे; नहींके कुदरतमें अनिश्चितता; अतः यथासाधन ११७ अनुसार अभ्यास--परीक्षा कर्तव्य हे.

(४) चोथा प्रकार जैन मतका हे, जिसे स्याद्वाद--सप्तभंगी वा अपेक्षावादभी कहते हें उसका स्वरुप—

स्यात्--अनेकांत=किसी किसी प्रकार वा अपेक्षासे, यह इसका अर्थ हे. (स.) अमुक सत् हे (उ.) स्यात् याने किसी अपेक्षासे । इसीका नाम स्याद्वाद अथवा अनेकांत हे. वस्तु सत्ही हे अथवा असत्ही हे, इसप्रकारका निश्चय वा आग्रहका

नाम एकांत हे. इससे विपरीत अर्थात पदार्थ किसी अपेक्षासे सत् ओर किसी अ-पेक्षासे असत्भी हे, इसप्रकारके कथनका नाम अनेकांतवाद हे. उसके ७ रुप (सात प्रकार—सात भंग) हैं.

(१) स्यादस्ति = कथंचित (किसी अपेक्षासे-किसी प्रकारसे) हे. (२) स्यान्नास्ति=कथंचित नहीं हे. (३) स्यादस्ति नास्ति = कथंचित हे ओर नहीं हे. (४) स्यादवक्तव्यम्=कथंचित कहा नहीं जाता. (५) स्यादस्ति चावक्तव्यम् = कथंचित हे परंतु कथन करना असंभव. (६) स्यान्नास्ति चावक्तव्यम् = कथंचित नहीं हे परंतु कहा नहीं जाता. (७) स्यादस्तिनास्ति चावक्तव्यम्=किसी अपेक्षासे हे ओर नहीं परंतु कहा नहीं जाता.

सप्तभंगीके उदाहरण—(१) किसी एक प्रकारसे घट हे (घट अपने स्व-रुपसे हे) याने स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, ओर भावमें घट (अथवा तम, प्रकाशादि) सत्रुप हे. (२) किसी एक प्रकारसे घट नहीं हे (पट स्वरुपसे नहीं हे) याने पर द्रव्यादि वा भावमें घट (अथवा तम प्रकाशादि) सत् नहीं हे, इसलिये अ-सत् हे. (३) एतद्दृष्टि प्रत्येक पदार्थमें अस्ति नास्तिका प्रतिपादन होसकता हे. यथा घट (वा तम, प्रकाशादि) स्वद्रव्यादि रुपकी अपेक्षासे सत् ओर परद्रव्यादि रुप वा भावमें सत् नहीं, किंवा पूर्वकाल विशिष्ट नहीं वर्तमानकाल विशिष्ट हे, किंवा घट गुणसे सत् ओर पर्यायसे सत् नहीं; इसलिये घट सदसद् रुप हे, इस-लिये अनेकांत हे. (४) वाणिद्वारा एकांत अवक्तव्य हे याने अस्ति ओर नास्ति विरोधि स्वभावोंका युगपत एकही समयमें कथन करना असंभव हे; इस-लिये किसी एक प्रकारसे कहा नहीं जाता. (५) जो सद् कहें तो अनंत क्षणिक पर्यायी होनेसे सद नहीं कहाजाता. (६) जो असद् कहें तो असत्मेंभी अस्ति-

(४) उच्चारमें अवक्तव्य हे. (५) हे, एसा नहीं कहाजासकता; क्योंकि पररुपसे नहीं हे. (६) नहीं, एसा नहीं कहसकते, क्योंकि स्वस्वरुपसे विद्यमान हे. (७) हे ओर नहीं हे, एसा एककालमें नहीं कहसकते, क्योंकि उक्त दोनों दोष आते हैं. एककालमें दो विरोधि (सदसद्) धर्मवाला नहीं बनता.

१ । २ । श्री कुंदकुंदनाचार्य कृत " प्राभृतसार " ग्रंथमें एसे लिखा हे के घट आप जैसा हे; पर जैसा नहीं. इत्यादि. एसे मानके जो सप्तभंगीका अर्थ करें तो ओरही रुप आता हे. घट, घट जैसा हे, पर जैसा नहीं; इत्यादि प्रकारमें अन्यो-न्याभावकारुप आ खडा होता हे.

त्व है, परंतु क्षणिक है तथा घट स्वस्वरुपसे सत् है, इसलिये असत् नहीं कहा जाता. (७) इसलिये " घट है घट नहीं है " एसे एककालमें नहीं कहाजाता॥ इसप्रकार वस्तु मात्र अनेकांत रुप हैं (अनिश्चित वा संशयरुप नहीं, वा अन्योऽन्याभावरुप नहीं किंतु कथंचित–अनेकांत रुप हैं).

इस अनेकांत पक्षकी संक्षेपमें असमीचीनता—(१) मूल–द्रव्य–परमाणु आदि अपनी योग्यता सहित अनंत नहीं किंतु एकांतरुप हैं. (१४७ । १४९) १५२ । अतः एकांत हैं. (२) अनवस्थावाली वस्तु तत्वरुप नहीं होती, अतः जीव, आकाश ओर कालको तत्व न मान्नेसे स्वपक्ष त्याग होगा. (३) अनेकांत, जिस ज्ञानस्वरुपका विषय सो अनेकांत नहीं. (४) जिसकालकी अपेक्षासे अनेकांत कहें सो अनेकांत नहीं. (५) परद्रष्टिमें जो अपनेमें (जीवमें) असत् सो जीवको विषय होनाचाहिये परंतु एसा नहीं होता, अतः स्वदृष्टिमेंही अनेकांतत्वका अभाव है. (६) अजीवोंकी दृष्टिसे अनेकांत नहीं बनता. (७) कुदरतकी दृष्टिमें जो जेसे हैं वेसे हैं; अतः उसकी दृष्टिसे अनेकांत नहीं. (८) नित्योंमें विरोधी धर्म (सदसद) मान्ना हास्यास्पद है. (९) जीव अपनी दृष्टिसे परमें विरोधी धर्म (सदसद) कल्पे तो जीवका दोष है, नहींके विषयमें अनेकांतत्व है. (१०) घटादि कार्यरुप द्रव्योंमें उनकी उत्पत्तिके पूर्व ओर नाशके पीछे सद, सदसद् धर्म नहीं है तो वर्तमानमें सद् धर्म कहांसे आगया ? (११) एकमें अनेकांतत्व सद् है तो स्वपक्ष त्याग होगया; नहीं तो अनवस्था चलनेसे अनिश्चितवाद प्राप्त होगा; उससे जीव बंध मोक्षादि--सर्वसिद्धांत अनिश्चित होनेसे स्वमंतव्यका त्याग होगा. (१२) सदसद् धर्मका परिमाण क्या ? उत्तर न होगा. (१३) सदसद् धर्म स्वाश्रयमें कोन संबंधसे रहे हुये हैं ? जो कहोगे उसीमें दोष आवेगा (भेद अधिकरण याद करो). (१४) एक मुक्त वा बंध जीव, पर मुक्तकी द्रष्टिसे मुक्त वा बंध नहीं तो उसका सर्वज्ञत्व कहां चला गया ? (१५) सर्वज्ञोंके वास्तेभी स्याद्वाद तो वे असर्वज्ञ ठेरे ओर जो उनके वास्ते नहीं तो अनेकांतवाद अव्याप्तिदोषवाला होनेसे त्याज्य है वा कल्पनामात्र है. (१६) हिंसा--कर्म स्वभावे सत् परभावे असत्, कुरानीकी दृष्टिसे पाप नहीं जैनकी द्रष्टिसे पाप, एसा मानें तो अनिश्चितवाद ठेरा. यातो उसके फलको एकांतही मान्ना होगा. (१७) जो सदसद् धर्म वस्तु हों तो स्वरुप संभावनामें सिद्ध होनीचाहिये, नहीं तो नैयायिकोंके कल्पित अभाव समान कल्पना मात्र ठेरेंगी. (१८) षडद्रव्यवाद जो अनेकांत तो

जैनसिद्धांत अनिश्चित ठेरेगा. जो सत्य मानें याने एकांत कहें तो अनेकांतवादका त्याग होगा. (१९) में आप पास आया, हाथ मिलाताहुं वा दंडवत करताहुं तो मुझको वा आपको इस जघे शक हे? वा अनेकांत हे? योग्य उत्तर न मिलेगा. इत्यादि रीतिसे अनेकांतवाद असिद्ध ठेरता हे. विद्वानोंकी बुद्धिका एसा विलासभी होता हे कि जो उनकेही गले पडजाता हे. विशेष मूलमें ओर भू. में विस्तार हे, वहां सप्तभंगी पक्षका मंडन करके उसका अपवाद जनाया हे. तद. अ. १ गत दर्शनसंग्रह विषे जैनदर्शनमेंभी इसकी चर्चा हे.[1]

अनेकांतवादके ७ प्रकार हें (मूलमें वर्णन हे) सबका समावेश उक्त ४ में होजाता हे. ओर उक्त रीतिसे असिद्ध पक्ष हे ॥ ३१२ । ३१३ ॥

गुरुत्व तत्वही आकर्षक होनेसे (अ.) ॥ ३१४ ॥

आश्रित रहनेसे योग्यता ॥ ३१५ ॥

अर्थ.—सूर्य, पृथ्वी, ओर घटादि पदार्थोंमें जो गुरुत्व जान पडता हे सो कोई तत्वरुप पदार्थ निश्चय होता हे; क्योंकि अपनेसे इतरका आकर्षक होता हे. यह पक्ष पच्छमके फिलोसोफरका हे. यह मंतव्य असिद्ध हे ॥ ३१४ ॥ क्योंकि गुरुत्व किसीके आश्रय रहता हे जो द्रव्य होता तो स्वतंत्र होता, अतः गुरुत्व यह तत्व पदार्थ नहीं; किंतु पदार्थकी योग्यता (शक्ति) हे जो अपने आश्रयसे इतर देशमें नहीं जाती—नहीं रहती ॥ ३१५ ॥

न्याय, वैशेषिक गुरुत्वको गुण कहते हें. महोदय न्यूटनफिलोसोफर पदार्थोंकी शक्ति याने गुरुत्व शक्ति कहते हें;--इसीको गुरुत्वाकर्षण नाम देते हें, इसी शक्तिसे सूर्यादिग्रह उपग्रह परस्परमें आकर्षित रहे हुये सनियम गतिमें रहना मानते हें, सर्व साधारण पदार्थमें गुरुत्व हे एसा कहते हें. सब परमाणु गुरुत्व रहित समान (सजातिय) हें, विजातीय नहीं हें एसाभी मानाजाता हे. विजातीय (नाना प्रकारके) हें एसाभी पक्ष हे. अभिन्ननिमित्तोपादानवादिकी दृष्टिमें ब्रह्म वा क्षणिकविज्ञानका एसाहि परिणाम हे कि जिसे गुरुत्व कहते हो, एसा मानाजाता हे. इत्यादि अनेक पक्ष हें. आश्चर्य यह हे कि नित्य उपयोगी वस्तुकोभी मनुष्य नहीं जानता ओर दावा परोक्ष पदार्थोंके बयान करनेका करता हे. जेसे पदार्थोंमें

---

[1] अनेकांतवाद—स्याद्वाद—मध्यस्थवाद—अपेक्षावाद. यह पर्यायनाम हें जैन मध्यस्थवाद ग्रंथमाला पृष्ट २२ देखो ॥ जीवादि पदार्थमात्र द्रव्यरुपसे नित्य ओर पर्यायरुपसे अनित्य, एवं अपेक्षासे नित्यानित्य रुप हें; एसा सिद्धांत हे.

योग्यता हे वेसे गुरुत्वभी परमाणुओंमें योग्यता (वा वेसा स्वरुप) हे, एसा व्यवहार नयसे सिद्ध होता हे. ओर निश्चय नयमें तो यह विषय अनिर्वचनीय ठेरता हे. परंतु गुरुत्व कोई तत्व हे, एसा सिद्ध नहीं होता.

बडा छोटेको खेंचता हे, जब बडेको छोटा करदें तो पहेला छोटा बडेके अंशोंको खेंचेगा. इससे स्पष्ट हुवा के अणु अणुमें गुरुत्व शक्ति हे, जुत्थके परिमाणमें उसका उपयोग होता हे. परंतु सवाल यह होता हे कि वोह शक्ति अपने आश्रयसे बाहिर जाके (रस्सी बनके) दूसरेको खेंचती हे वा गये विना ? पहेला पक्ष अगुण अधिकरणसे असिद्ध हे. ओर हठसे मानें तो गुरुत्व तत्वरुप याने परमाणु ठेरेगा; शक्ति नहीं. दूसरा पक्ष मानें तो दूसरेको केसे खेंचसकती हे ? नहीं. अतः गुरुत्वाकर्षण नहीं हे; किंतु कुछ ओर प्रकार हे. इसका विस्तार बस. के उत्तरार्द्धमें हे. उसका सार यह हे कि परमाणुमात्रमें अन्य गुण, शक्तिके समान गुरुत्व शक्तिभी हे. जेसे अन्य योग्यताओंमें परमाणु विजातीय हें, वेसे गुरुत्वमेंभी विजातीय हें (हवा-कनक-पारदादिकी परीक्षा करिये). ब्रह्मांडमें हिरण्यगर्भ (समुद्रवत्) किसी अधिष्ठानका आधेय हुवा मर्यादामें पसरित हे, वोहभी वजनवाला हे; उसमें जल समान लचक हे, क्योंकि सूक्ष्म हे ओर मध्यम हे; उसमें ग्रहउपग्रह (बडी छोटी स्टीमर-गोले समान) हें उनमेंभी वजन हे; इस गुरुत्वशक्ति ओर लचकसे गति पेदा होती हे; ओर उनउभयके नियम (यथा गुरुत्वशक्ति, यथा लचक, यथा जुत्थ, यथा क्षेत्र, यथा दूरी यथा विस्तार) अनुसार सनियम गति होती हे; एक दूसरे, हिरण्यगर्भकी लचक ओर लहरद्वारा गतिके निमित्त हें; गोलेंमें रहेहुये पदार्थोंमेंभी उसी नियमानुसार गति ओर गुरुत्वका उपयोग होता हे. इस थीयरीसे यह सिद्ध होजाता हे के जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हें सो पदार्थोंकी स्थिति हे, तत्व वस्तु नहीं हे. पेज ३२२ से ६३४ तक ओर ६३५ से ६४१ तक (एकमत) विचारिये. जिसको वजन–गुरुत्व कहते हो उसवाला नहीं किंतु वेसा स्वरुपही परमाणु हे अर्थात गुरुत्व कोई योग्यता, गुण वा शक्ति नहीं हे एसा क्यों न माना जाय? एसा मानें तो सब सवालोंका उत्तर होसकेगा. परंतु जिसे स्नेहआकर्षण कहते हें उसमें ओर उपरोक्त आकर्षण पद्धतिमें अंतर हे. सजातीय (सोनाका गोला–लोहका गोला) पिंड, स्नेहाकर्षणसे बनता हे, गुरुत्व शक्तिसे नहीं बनता; एसा जान्ना चाहिये. ओर आप जो गुरुत्वशक्तिका विचार करना चाहें तो उसको स्वरुपसंभावनाकी १३ संज्ञाओंमें तोलो.—(१) वोह अणु हे वा

विभु हे वा मध्यम हे. (२) आधेय हे वा आधार हे. (३) जड हे वा चेतन हे. (४) उसके आधारको न्यूनाधिक करें तो कमज्यादा होती हे वा समान रहती हे. (५) अपने आधारसे बाहिर जाके काम करती हे वा बाहिर नहीं जाती. (६) लोहचंबुककी विजलीके समान बाहिर जाती हे तो दूसरीके साथ अथडाती हे वा नहीं. (७) जो बाहिर नहीं जाती तो दूसरेको केसे खेंचती हे. (८) अपने आश्रयमें कोन संबंधसे रहती हे-संयोग हे वा तादात्म्य हे वा व्याप्य व्यापक भाव हे, उसके अंदर हे वा उपर हे वा किसी भागमें हे. (९) यदि वोह स्वरुपतः वस्तु नहीं हे तो फेर उसको क्यों मानते हो. (१०) अपने आधारका आधार हे वा नहीं. (११) अन्य अन्यकी एसे अन्योऽन्याश्रय दोष होगा, जो नहीं तो फेर मूल ग्रह किसके आधार होगा. (१२) सब परमाणु गुरुत्व रहित सजातीय वा गुरुत्वमेंभी विजातीय (जेसे लोहे, हवा, रुई, पानी, सुवरणके हें). (१३) गुरुत्व शक्तिका आधार परमाणुओंकी संख्यापर, वा परमाणुओंके विजातीय गुरुत्वपर, वा पदार्थके क्षेत्रफलपर वा दोपदार्थोंके अंतरपर वा इन सबपर हे. (१४) दबान हे वा नहीं? जो हे तो गुरुत्वशक्ति सिद्ध होगी. जो नहीं तो गुरुत्व शक्तिका खिंचनेवालेके साथ संबंध नहीं हुवा हे याने वोह अपने आधारसे बाहिर नहीं आई हे तो केसे खिंचाव वा दबान होगा. परंतु दबान वा खेंचाव देखते तो हें.

इत्यादिपर विचार करोगे तो व्यवहारनयमें उपरोक्त (हिरण्यगर्भ ओर गुरुत्ववाले गोलोंकी) थीयरी सिद्ध होगी ओर निश्चयनयमें मूल द्रव्य (अणु)का एसाही (गुरुत्वरुप) स्वरुप परंतु अकथ्य एसा सिद्ध होगा अर्थात गुरुत्वको अनिर्वचनीयत्व प्राप्त होगा ॥ ३१५ ॥

वृत्तिका बाह्य गमनही अन्यथारुप ग्रहण न होनेसे (अ.) ॥३१६॥

परोक्ष अपरोक्षवत् दर्शनसे ॥ ३१७ ॥

अर्थ.—शब्दादि विषय जब शरीरस्थ इंद्रियोंके समीप आके सन्निकर्षको पाते हें तब शब्दादिका ज्ञान (ग्रहण) होता हे, परंतु उनमेंसे रुपका आगमन नहीं होता किंतु जब चक्षुवृत्ति चक्षुसे बाहिर जाके रुपके साथ सन्निकर्षको पाती हे, तब रुपका ज्ञान (ग्रहण) होता हे, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि रुपका आगमन नहीं होता, इसलिये वृत्तिके बाह्यगमन हुये विना रुपका ग्रहण नहीं होता. यह मंतव्य क्षणिकविज्ञानवादि बौद्ध, यूरोपके फिलोसोफर ओर विलक्षणवादिसे

इतर सबको संमत हे; सब एसेही मानते आये हें. सो यह मंतव्य असिद्ध हें ॥ ३१६ ॥ क्योंकि जिसके साथ चक्षुवृत्तिका संन्निकर्ष नहीं होसकता एसे बाह्य परोक्ष पदार्थकाभी अपरोक्षवत् दर्शन (ज्ञान) होता हे; इसलिये वृत्तिके बाह्यगमन विना रुपका प्रतिबिंब (आभास) चक्षुमें आके संबंध पानेपर रुपका ज्ञान होता हे अर्थात चक्षुवृत्तिभी बाहिर नहीं जाती, एसा सिद्ध होता हे ॥ ३१७ ॥

विषय बारीक विस्तारवाला! केवल अनुभवगम्य अनिर्वचनीय हे; इसालिये संक्षेपमें कुछ बयान करते हें.—

(१) शरीरस्थ इंद्रिय मनके साथ जब अमुक द्वारा शब्द, स्पर्श, रस, गंध आके संबंधको पाते हें तब शब्दादि विषयका ज्ञान होता हे, तो फक्त रुपके जान्ने वास्ते वृत्तिको बाहिर जाना पडे, एसा मान्ना अव्याप्ति दोष हे. अथवा अमुक द्रव्योंका इंद्रिय (ज्ञानतंतु) द्वारा मगज वा मनके साथ संबंध होता हे तब मगज वा मनकी अमुक (गंध वगेरे रुप) अवस्था (इम्प्रेशन) होती हे जिसे गंध वगेरे नाम दिया जाता हे (पश्चिमकी फिलोसोफी). (२) सूर्यके प्रकाशकी अधिकतासे दिनको तारे नहीं दीखते परंतु जो दूरबीनमेंसे देखें तो किंवा ओंडे अंधेर कूवेमेंसे देखें तो बडा सीतारा देख पडता हे. जो वृत्ति बाहिर जाती होती तो एसा न होता अर्थात ताराकी किरणे घट्ट प्रकाशके भागसे इतर साधारण भागमें एकत्र हुई चक्षुमें आती हें, इसलिये तारा देखते हें. (३) नीले काच द्वारा श्वेत वस्त्र देखें तो नीला जान पडता हे. जो वृत्ति बाहिर गई होती तो काचसे नीली नहीं हुई हे, अर्थात वस्त्र श्वेतही जान पडता; परंतु एसा नहीं होता; किंतु नीला जान पडता हे; कारणके वस्त्रकी किरणें काचमें आई ओर काचकी नीली किरणें ओर वे उभय एक रुप हुई चक्षुमें आई हें; इसलिये नीला वस्त्र जान पडता हे. (४) सूक्ष्मदर्शी काच द्वारा जो वस्तु देखते हें तो छोटी वस्तु बडी नजर पडती हे. जो वृत्ति बाहिर गई होती तो काच विना जेसी जान पडती थी वेसीही जान पडती; परंतु एसा नहीं होता किंतु किरणोंके विस्तारवाले जुत्थसे बडी जान पडती हे अर्थात काचकी बनावट एसी हे कि किरणें विस्तृत होके जान पडें. (५) दूरका दीपक रातको देखते हें. वहां चक्षुवृत्ति अंधेरेमें नहीं जासकती ओर यदि चक्षुकी रश्मि बाहिर जाती तो दूसरे पदार्थभी देखती; परंतु एसा नहीं होता. (६) रातको बडी दूरबीनसे छोटे तारे बडे ओर अदृष्टभी देख पडते हें. (७) अमेरीकामें एसा काच चला हे के अंधेके लिलाटपर लगा दें तो बाहिरके पदार्थ

देख पडें. (८) क अंधेरेमें ओर ख पुरुष प्रकाशमें खडा हे, क, ख को देखता हे परंतु ख, क को नहीं देखसकता; क्योंकि अंधेरेमें किरण नहीं उठती ओर प्रकाशित किरणें अथडाके जान पडती हें. जो चक्षुकी रश्मि बाहिर जाती तो क, भी देख पडता. चक्षुकी रश्मि प्रकाशकी सहायता विना नहीं देखसकती याने विषयको प्रकाशित नहीं करसकती, एसा मानें तो तमस्थ चक्षुकी रश्मि उठनाही नहीं बनता. जेसे तमस्थ ज्ञेयकी किरणें नहीं उठती वेसे. अर्थात तमस्थ चक्षु रश्मि ख, को नहीं देखसकती, परंतु देखती हे. (शं.) उलुक, बिल्ली, चमगादड, निशाचर अंधेरेमें देखते हें याने उनकी चक्षुके विशेष तेजसे ज्ञेय प्रकाशित होता हे (उ.) वहां तारागणका आलोक हे. सर्वथा अंधेरा हो तो नहीं देखसकते. यद्यपि जेसे हीराका प्रकाश उसके आसपास जान पडता हे, वेसे चक्षु शुद्ध काच होनेसे उसकी रश्मि कुछ उठती हों, तथा तेज ईथरकी किरणें उसको छूके उसका फोटोभी बनाती हों ओर चक्षुवृत्तिको प्रकाश वा काचकी किरणोंसे सहायता मिलती हो, एसा सब कुछ होता हो; परंतु यह सब गोलकस्थ चक्षुमेंही होता हे, चक्षुकी रश्मि--(प्रकाश) बाहिर नहीं जाती; इसलिये चक्षुवृत्ति ज्ञेयका फोटो नहीं लाती किंतु प्रकाश-ईथरकी लहरें चक्षुमें फोटो लाती हें, यह सिद्ध होता हे. (९) एक कटोरीमें छोटी कंकरी (वा सुपारी वा पेसा) रखो, देखो तो वोह आंखोंमें नजर आवेगी. फेर उसको इतनी दूरपर लेजाओ कि कटोरीका किनारा आडमें आनेसे कंकरी न दीखे. फेर उसमें पानी डलवाओ तो वोह कंकरी (वा पेसा वा सुपारी) नजर आवेगी. यदि वृत्ति बाहिर जाती तो पानी विनाभी नजर आती; परंतु पानी डालनेसे जो किरणें पानीमें सीधी आइ हें उनको चक्षुमें आनेका सीधा (कटोरीके किनारे न रोकसकें एसा) मार्ग मिलगया; इसलिये कंकरी (सुपारी) का फोटो चक्षुमें हुवा अर्थात कंकरी (पेसा वा सुपारी) दीखने लगी. सारांश पहेलेभी ओर पानी डालने पीछेभी कंकरी (सुपारी) को नहीं देखते थे किंतु उसका फोटो आंखमें हुवा सो जानते हें. (किरणोंके नियम वास्ते ४६१से ४६४ तकका विवेचन देखो). (१०) पृष्ट पीछे अग्नि जल रही हे, मनुष्य खडा हे, सन्मुखके काचमें उसका फोटो देखते हें; क्योंकि किरणें काचमें अथडाके हमारी चक्षुमें आई हें. काच विनाके फोटोमें इतना अंतर हे के वे किरणें सीधी आंखमें आती हें, ओर यह काचद्वारा आई हें; इसलिये किंचित भेद होता हे. (अपने मुखका दर्शनभी एसाही हे). (११) केमेरेमें वा बडे काचमें जो फोटो

होता हे वहां वृत्ति नहीं जाती किंतु किरणें करती हें. (शंका.) किरणें क्या? (उ.) प्रकाश, ईथर (शेषा) की लहरें, जो हरेक पदार्थाकार चारों तरफ उठती रहती हें. (शं.) जबके असल वस्तुके रुपरंगको नहीं देखते तो कागज वा लकडी-पर बारीक नकशा केसे करसकते हें; दृश्यकी लाल पीली बिंदु केसे हटासकते हें कारणके हाथ उसे नहीं जानता. दरखतपर केसे चढसकते हें, बिंदूकसे निशाना केसे मारसकते हें. (उ.) प्लेटका फोटो समक्ष हे, उसका अटूट संबंध हे, त्वचासे पदार्थका संबंध हे, ओर अभ्यास हे इनचारों कारणोंसे एसा होता हे. जेसे के पीठ पीछे वस्तु हो, उसका फोटो काचमें हो इसके साथ पृष्ठकी तरफ बिंदूककी नालका फोटो संबंध पा रहा हो, तो परोक्ष बिंबपर निशाना लगजायगा. एसे ही सर्वत्र जानलेना चाहिये. (शं.) पांच कोसका लंबा पहाड उसकी, रातको असंख्य सितारे एकदम देखते हें उनकी, ओर दिवसको अनेक वृक्ष मकान देखते हें उनकी किरणें चक्षु बिंदुमें केसे समाती होंगी, ओर अंदरमें उतना देश न होते हुये इतना बडा लंबा पहाड केसे जानपडता होगा. (उ.) दृश्य परिमाण अ. ३। ४९२ विचारो (वस. ४७५ का विवेचन देखो). (शं.) आजतक सबदर्शनकार चक्षुवृत्ति बाहिर जाती हे, एसा मानते आये हें; इसका कारण क्या (उ.) आज २५०० वर्षपर क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध, वृत्तिका बाहिर जाना नहीं मानते थे; दूसरोंने क्यों माना, इसका उत्तर देना छोटा मुख बडी बात समान हे. इसलिये स्वयं उत्तर करलेना चाहिये. (१२) जो चक्षुवृत्ति बाहिर तो लंबगोल बाजुओंकाभी ज्ञान करती परंतु एसा नहीं होता. (१३) योगी वा मस्मेरेजरका सबजेक्ट दूरस्थ परोक्ष पदार्थोंका बयान करता हे वहांभी किरणे ईथरद्वारा अंदरमें आती हें, तब ज्ञान होता हे. (१४) अमेरीकामें एक यंत्र बना हे प्रसिद्ध हे उसको अंधेके लिलाटपर लगादेते हें तब वोह बाह्य पदार्थका ज्ञान करलेता हे, वहांभी काचद्वारा किरणें अंदर जाती हें. वृत्ति बाहिर नहीं गई (उपर७में इशारा किया हे). (१५) जो वस्तु ओर चक्षुके बीचमें किरणके प्रवाहका प्रतिबंध होगा तो चक्षुमें फोटो न आसकनेसे रुपका ग्रहण नहीं होता. (१६) जो रुपकी किरणोंका संबंध न होनेमें समीपादि (४८१) प्रतिबंध हों तो रुपका ग्रहण नहीं होगा. (१७) रज्जुसर्पादि भ्रम प्रसंगमेंभी एसाही हे. किरणें सामान्यांशकी उठी हें अतः विशेषज्ञान नहीं होता ओर सादृश्य संस्कारादिसे सर्प नाम कल्पनेमें आजाता हे. (अथवा यथासंस्कार अंतरवाले ईथरका सर्पाकार परिणाम होता हे.

इ.). (१८) पश्चिमकी फिजीकल सायंस कहती हे कि बाह्य अज्ञात अमुक पदार्थका ज्ञानतंतु (ज्ञानेंद्रिय) के साथ संबंध पानेपर अमुक प्रकारका मगजमें इम्प्रेशन होता हे जिसे शब्दादि पंचविषय कहते हें, वस्तुतः वे स्वरुपतः कोई गुण वा शक्ति वा द्रव्य नहीं हें (उपर कहा हे) इसलियेभी वृत्तिका बाह्यगमन मान्ना कल्पना मात्र हे. (१९) वृत्ति बाह्यागमन सिद्ध होनेसे वर्तमान प्रचलित अध्यासथीयरीसे इतर प्रकारका जो अध्यासवाद हे उसमेंभी फेरफार होजाता हे. (बसगत उत्तरफिलोसोफी वांचो) ॥ ३१६ । ३१७ ॥

बाह्यांतरका भेद कल्पनाही जन्मांधमें न होनेसे (अ.) ॥३१८॥

अनास्ति नियमकी आपत्तिसे ॥ ३१९ ॥

अर्थ.—शरीरसे बाह्य ओर अंतर एसा भेद मान्ना कल्पनमात्रही हे; क्योंकि जो अंधा होता हे उसमें बाह्यांतरकी कल्पना नहीं होती. यह पक्ष क्षणिकबौद्ध ओर एक प्रकृतिवादिको संमत हे. सो असमीचीन हे ॥ ३१८ ॥ क्योंकि प्रमाणके अभावसे प्रमेयका अभाव नहीं, एसे अनास्ति नियम (४८२) की आपत्ति होती हे ॥ ३१९ ॥

बाह्यांतरका भेद तमाम प्राणिओंमें साधारण हे. अन्यथा गमनही न हो. अंधको चक्षु नहीं इसलिये बाह्य देशका ज्ञान उसे नहीं होता, अतः यह हेतु अव्याप्तिवाला हे. अंधा कीली ठोके वा हाथसे परको ग्रहण करे तो क्या वहां देशका भेद नहीं हे? हे ही. जो बाह्यांतरका भेद न हो तो दृष्टा दृश्य, ज्ञाता ज्ञेय रुप त्रिपुटीका व्यवहारही न हो. कितनाभी प्रयास करें देशकालका निषेध नहीं होसकता; क्योंकि सब ज्ञान देशकालविशिष्ट होते हें उस विना नहीं. श्रोत्रके अभाव हुये क्या शब्द नहीं, चक्षुके अभाव हुये क्या रंग ओर आकार नहीं? हें ही. जब अंधेके लिलाटपर यंत्र लगा दें तो उसको बाहिरकेरुप तथा देशका भान होने लगजाता हे; इसलिये बाह्यांतर कल्पनामात्र नहीं किंतु हे सोही विषय होता हे. अंधेको वा अन्याभ्यासीको मनकी गतिका भान होता हे उससे इतरस्वका बोध होता हे. जब शरीरसे बाह्यांतर कल्पना, इतना कहा वा माना उसी समय स्वपक्षका खंडन होगया. स्वप्नसृष्टिभी देशकाल सहित होनेसे वहां बाह्यांतर भेदवाली हे. क्षणिकपरिणामीको बाह्यांतर आकार धरना, एसे स्वीकारना पडता हे. माया देशकाल बाह्यांतर भेदवाले परिणाम धरती हे, एसा मायावादिकोभी स्वीकारना होता हे. सारांश व्यवहारपक्षमें तो बाह्यांतरकी सिद्धिही हे. निश्चय नयमें जेसा

देशकालका निर्णय वेसे बाह्यांतरका निर्णय ठेरेगा याने अनिर्वचनीय पक्ष आ खडा होगा. परंतु बाह्यांतर कल्पनामात्र, एसा सिद्ध न होगा ॥ ३१९ ॥

जल्प वितंडा उपयोगीही पक्षके रक्षक होनेसे (अ.) ॥ ३२० ॥

शोधकको अनुपयोगी होनेसे ॥ ३२१ ॥

अर्थ.--तीन वादोंमेंसे जो जल्प ओर वितंडावाद हें सोभी उपयोगी होते हें, एसा निश्चय होता हे; क्योंकि वे स्वपक्षके खंडन न होनेमें रक्षक होजाते हें. यह पक्ष तज्ञ, जिज्ञासु, शोधक ओर मान्य योग्याचार्यसे इतर सबमतहठीलोंको संमत हे. परंतु यह मंतव्य सर्वांशमें समीचीन नहीं हे ॥ ३२० ॥ क्योंकि जो शोधक मंडल हे उसको अनुपयोगी हे (७१० । ७१३ सूत्र देखो) ॥ ३२१ ॥

अपनेही पक्षका बडबडाट करना परपक्षको न सुन्ना **जल्पवाद** ओर परपक्ष-काही खंडन करना, स्वपक्ष स्थापन न करना **वितंडावाद**. उभय पक्षस्थापन पूर्वक उभय पक्षका खंडन मंडन होना **विवाद** याने जयाजयकी दृष्टिसे जो शास्त्रार्थ कियाजाय सो विवाद हे. ओर शोधन वा जिज्ञासुके अर्थ जो उभयपक्षका निरीक्षण वा संवाद सो **वाद** कहाता हे. शोधकको जल्प वितंडा त्याज्य हें—तन, मन, द्रव्य ओर कालको व्यर्थ गुमाना हे. वर्तमानमें शास्त्रार्थके बदले शस्त्रार्थ ओर द्वेषो-त्पत्ति देखते हें.

(१) दो पक्षकारोंमें विषयका मतभेद न हो, (२) निर्णयार्थ उभयकी इच्छा न हो, (३) उभय संमत मध्यस्थ न ठेरे, (४) प्रबंधक न हो, (५) शास्त्रार्थमें हारजीत वालेको वा प्रजाको लाभ न हो, (६) उभय पक्षकार लिखित संवाद करनेको तैयार न हों, (७) प्रमाण ओर उसकी सामग्री उभयको संमत न हो यदि संमत हो तो उसके अर्थ करनेकी सामग्रीका निर्णय न हो, (८) उभय पक्षकार स्वपक्षको लिखके स्थापन न करें, (९) मध्यस्थ स्थापित विषयोंका ज्ञाता न हो, (१०) ओर सत्ताधारीका अंकुश न हो, इत्यादि बाबत जबतक न हों वहां-तक शास्त्रार्थ व्यर्थही हे. जिज्ञासु शोधकके सवालोंका केसे उत्तर देना ओर कोनसे सवालका केसा उत्तर देना, इन सबका वर्णन मूलमें हे ॥ ३२१ ॥

मतादिसे उपेक्षाही कल्पित होनेसे (अ.) ॥ ३२२ ॥

योग्य उपयोगी होनेसे ॥ ३२३ ॥

अर्थ.—जितने मत, संप्रदाय, धर्म ओर पंथ (रीलीजीयन—मजहब)--मार्ग (तरीके) हें; उन सबसे सर्वथा उपेक्षाही योग्य हे; क्योंकि वे मूल विनाके कल्पित

हैं. यह मंतव्य वर्तमानकालमें बहुतोंका हे ओर मतादिके अवलंबियोंको असंमत हे. इस मंतव्यमें जितना असमीचीन अंश हे वोह असिद्ध हे ॥ ३२२ ॥ क्योंकि योग्य कल्पितभी उपयोगी--लाभप्रद होता हे. संस्काराधिकरण, कल्पनाअधिकरण ओर सू. ५६२ । १२७ देखिये ॥ ३२३ ॥

सृष्टिके आरंभसे एसा (धर्मादिकी भावना) होता आया हे, हे ओर होगा; क्योंकि नवीन प्रजा, नवीन बुद्धि ओर नाना रुचीकी उत्पत्ति नाशका प्रवाह हे, यह प्रवाह बंद नहीं होसकता; अतः मतादिकाभी सर्वथा उच्छेद नहीं होसकता; किंतु नवीनभी होंगे. सायंस इसीकी पुत्री हे ओर फिलोसोफी इसकी पौत्री हे जो के दोनों स्वतंत्र हो बेठी हें. सायंस ओर फिलोसोफीमेंभी तथा व्यवहार ओर रीत रिवाजमेंभी मतभेद चल रहे हें. ओर तमाम मतादिको तमाम विषय अर्थशून्य कल्पितही हें, एसाभी नहीं हे किंतु जो उनमेंसे सर्व संमत विषय (नीति, न्याय, धर्म, उनके प्रचारकी सामग्री) निकालो तो नीति, व्यवहार ओर जीवनकेलिये उपयोगी निकलेंगे (अ. ४में हे); अतः सर्वथा उपेक्षा उचित नहीं. थोडी उपेक्षाने यूरोपगत कैसरीसंग्राम द्वारा योरोपीय प्रजाका नाश किया ओर कर रही हे, एसा देख रहे हें; इसलिये मतादिक असत्, अनुपयोगी ओर हानीकारक भागसेही उपेक्षा कर्तव्य हे, या उनके अनुयायीओंको विद्यादान देके सुधारना उचित हे ॥ ३२३ ॥

स्वप्नगत पक्ष ओर उसकी असिद्धि.

स्वप्नसृष्टि यह चिदचिद (पुरुष प्रकृति-ब्रह्ममाया-जीवाजीव) के अनुभव होने वास्ते समीप ओर अपूर्व उदाहरण हे; परंतु उसके स्वरुप विवेकमें द्वैतवादि, अद्वैतवादि, चेतनवादि ओर प्रकृतिवादिओंमें मतभेद हे ओर पक्षांतर हे; इसलिये प्रथम उन पक्षोंका निषेध दिखलावेंगे ओर फेर सिद्ध पक्षमें स्वप्न जाग्रतकी समानता साबितकरेंगे ओर अ. ४ में उसका उपयोग दिखाया जायगा. तहां प्रथम पक्ष ओर उनकी असमीचीनता हेतुपूर्वक नीचे अनुसार (सू. ३२४ से ३६४ तक) कहते हें.—

स्वप्नसृष्टि विकल्पादि रुपमेंसेही (अ.) ॥ ३२४ ॥

दोषापत्तिसे ॥ ३२५ ॥

अर्थ.—स्वप्नसृष्टि यह विकल्पादि ३८ रुपोंमेंसे कोई एक प्रकारकी हे, एसा- निश्चय होता हे; क्योंकि अनेक एसा मानते हें. यह पक्ष अनेकोंके हें. सो वे पक्ष

असिद्ध हें ॥ ३२४ ॥ क्योंकि विकल्पादि हरेक पक्षमें वक्ष्यमाण दोषकी आपत्ति होती हे ॥ ३२५ ॥ पक्ष ओर पक्षकारोंके नाम यह हें.—

(१) विकल्प रुप (जडवादि ओर अनेक). (२) ज्ञानमात्र (स्वामी दयानंद, नैयायिक). (३) संस्कार मात्र (नैयायिकोंमेंसे). (४) शब्द मात्र (कुरानियोंमेंसे). (५) अनुमांन (तारकिक). (६) शोधन (निरक्षर). (७) स्मृति (सांख्यमेंसे). (८) स्मृति ज्ञान (सांख्यमेंसे). (९) प्रत्यभिज्ञा (निरक्षर). (१०) बाह्यदर्शन (कुरानी पुराणीमेंसे). (११) कल्पित (जडवादिमेंसे). (१२) मगजका परिणाम (डाकटर—वैद्य—हकीम). (१३) मनका परिणाम (वेदांतीमेंसे). (१४) ब्रह्मका परिणाम (अभिन्न निमित्तोपादान वादिमेंसे). (१५) द्रष्टाका परिणाम (नं. १४ अनुसार). (१६) क्षणिक परिणाम (बौद्धोंमेंसे). (१७) प्रतिबिंब (जडवादियोंमेंसे). (१८) प्रभाव (असर) इम्प्रेशन (पश्चिमके फिलोसोफर). (१९) भावना (भावनावादि, पुराणी). (२०) गतिका प्रवाह (यूरोपका एक फिलोसोफर). (२१) सत्‌रुप (स्वप्नसृष्टिके फल बतानेवाले पौ. कि. कु. वगेरे). (२२) असत्‌रुप (अनेक ओर शून्यवादि). (२३) सदसद्‌रुप (जैनमेंसे). (२४) धर्म (नैयायिक). (२५) अन्य देशस्थका दर्शन (एक नैयायिक). (२६) स्मृतिका अविवेक (सांख्य) (२७) अनुभवशून्य (निरक्षर). (२८) उन्माद (वैद्य). (२९) अजात (अजातवादि). (३०) शून्य (शून्यवादि). (३१) अधिष्ठानका स्वभाव (स्वभाववादि). (३२) अधिष्ठानकीही अन्यथाप्रतीति (एक अद्वैतवादि). (३३) भूत दोष (वैद्य). (३४) अज्ञेय (निरक्षर). (३५) अनुपादान (निरक्षर). (३६) भ्रांति (ज्ञानाध्यासवादि). (३७) अन्योऽन्यावभास (संसर्गाध्यासी). (३८) तद्गतबाध (क्रमशः) ॥

जिसने सद, असद, सदसदादि उपरोक्त (अ. ३ । १२१ अ. १ पृष्ट १९४) १५ ख्यातिका अभ्यास किया होगा वा जो सृष्टिनियमोंको अनुभवता होगा, वोह स्वप्नके विषयको समझ सकेगा अथवा जिसने मनको पहेछाना होगा वोह स्वप्नके मूलको जान सकेगा. हरेक इस विषयको नहीं जानसकता.

स्वप्न विकल्पादि रुप नहीं १, क्या हे २, जाग्रत जेसा वा क्या ३, उभयकी समानता ४, इनचारों विषयके निरिक्षण वास्ते अध्याय २ गतके सफलादि निय-

र्मोका अभ्यास होनाचाहिये. नहीं तो यह चारों विषय ध्यानमें बेठना कठिन हे. वे सूत्र यह हें.—

१२७ (सफल), १३७ (अनुत्पत्ति), १३८ (अनाश), १४५ (अ-विकार), ३७५ (द्दष्टा), २११ (अपरिणाम), १७४ (अपरिणामी), १७८ (अपरिमाण), २०२ (अखंड), २७० (कारण), २७५ (अव्यवहित), २८५ (पूर्व), ३०२ (उपादान), ३०३ (अनवीन), ३३२ (अनाधार) २६१ (आधेय), ६२५ (अध्यास), ४४१ (द्विधा), ४७७ (अज्ञ), ३८२ (भेद), ४३४ (यत्ता), ४३७ (अनन्यथा), ४५१ (ज्ञता), ४१८ (विषय), ५०१ (संस्कार), ३१० (अनभाव), २२५ (वैधर्म्य) इन २७ को ध्यानमें रखना चाहिये, यथाप्रसंग यथायोग्य उपयोगमें लेना. विस्तार मूल ओर मू. में हे ॥ ३२५ ॥ अब आगे सू. ३२५ के उदाहरणमें विकल्पादिमें जो दोष हें वे ओर विकल्पादिका निषेध दरसाते हें.—

यथा विकल्परुप नहीं विषय होनेसे ॥ ३२६ ॥ ज्ञान मात्र नहीं त्याग ग्रहण होनेसे ॥ ३२७ ॥ संस्कार मात्र नहीं असंस्कारी दर्शनसे ॥ ३२८ ॥ ओर इदमादिका व्यवहार होनेसे ॥ ३२९ ॥ शब्दमात्र नहीं स्पर्शादि होनेसे ॥ ३३० ॥ अनुमानमात्र नहीं दाह दुःख अनुभवानेसे ॥ ३३१ ॥ शोधनमात्र नहीं अपरोक्ष होनेसे ॥ ३३२ ॥ न स्मृति न तिसका ज्ञान, इदं रुपमें विषय होनेसे ॥ ३३३ ॥ प्रत्यभिज्ञारुप नहीं नष्ट दर्शनसे ॥ ३३४ ॥ बाह्यदर्शन नहीं साक्षीके अभावसे ॥ ३३५ ॥ काल्पित नहीं प्रतिकूल देखनेसे ॥ ३३६ ॥ न मस्तिष्कका परिणाम अनिष्ट दर्शनसे ॥ ३३७ ॥ न मनका समकाल अनेक होनेसे ॥ ३३८ ॥ न ब्रह्म चेतनका वैधर्म्य होनेसे ॥ ३३९ ॥ न द्दष्टाका दृश्य होनेसे ॥ ३४० ॥ न क्षणिक स्थिति ओर स्मृति होनेसे ॥ ३४१ ॥ प्रातिबिंबरुप नहीं बिंबकी अव्याप्तिसे ॥ ३४२ ॥ प्रभावमात्र नहीं वस्तुत्वके अभाव होनेसे ॥ ३४३ ॥ भावना मात्र नहीं प्रतिकूल दर्शनसे ॥ ३४४ ॥ संस्कारीकी गतिका प्रवाह नहीं त्याग ग्रहण होनेसे ॥ ३४५ ॥ न सत्‌रुप सादिसांत होनेसे ॥ ३४६ ॥ न असत्‌रुप वर्त्तमान होनेसे ॥ ३४७ ॥ न उभयरुप विरोध होनेसे ॥ ३४८ ॥ धर्ममात्र नहीं धर्मीसे भिन्न न रहनेसे ॥ ३४९ ॥ अन्यदेशस्थभी नहीं नवीन प्रतीत होनेसे ॥ ३५० ॥ स्मृतिका अविवेक नहीं अपूर्व ओर इदं

दर्शनसे ॥ ३५१ ॥ न अननुभव ओर न उन्माद स्मृति होनेसे ॥ ३५२ ॥ अजात ओर शून्यभी नहीं स्मृतिसाधक होनेसे ॥ ३५३ ॥ अधिष्ठानका स्वभाव नहीं वैधर्म्य होनेसे ॥ ३५४ ॥ न तिसकाही अन्यथारुप असंभव होनेसे ॥ ३५५ ॥ न भूतदोषभाव तद्विपरीत दर्शनसे ॥ ३५६ ॥ अज्ञेय नहीं प्रकाश्य ओर स्मृति होनेसे ॥ ३५७ ॥ अनुपादान नहीं कार्य दर्शनसे ॥ ३५८ ॥ न भ्रांतिरुप अर्थवान होनेसे ॥ ३५९ ॥ न अन्योऽन्यावभास संसर्गी न होनेसे ॥३६०॥ ओर सादृश्यकी अनापत्तिसे ॥३६१॥ (विकल्पादिसे) अन्यथा बाध होनेसेभी वेसा नहीं ॥ ३६२ ॥ जाग्रतवत् भोग्य होनेसे ॥ ३६३ ॥ एवं अन्यमेंभी यथायोग्य ॥ ३६४ ॥

आगे क्रमशः अर्थ.—

जेसे के—स्वप्नसृष्टि (=स्व.) अर्थशून्य कल्पना मात्र नहीं हे; क्योंकि ज्ञानका विषय हे (शब्दादि विषय होते हें), विकल्पमें अर्थ नहीं होते ॥ ३२६ ॥ स्व. ज्ञेयरहित ज्ञानमात्र नहीं हे; क्योंकि वहां पदार्थोंका त्याग ग्रहण ओर भोग होता हे; ज्ञानमात्रमें इदमादि रुपसे वेसा नहीं होता ॥ ३२७ ॥ स्व. पूर्व जन्म वा वर्तमान जन्मके संस्काररुप (संस्कार मात्र) भी नहीं हे; क्योंकि वहां जिसके संस्कार नहीं हें वेसोंकाभी यह, तुं, वोह रुपसे व्यवहार होता हे ॥ ३२८ ॥ ओर अन्यकाभी इदमादिरुपसे व्यवहार होता हे ॥ ३२९ ॥ परंतु संस्कार मात्रमें इदंत्वादि रुपसे व्यवहार नहीं होता. नपुत्रेके पुत्र ओर जीवते संबंधीको दाह करते देखते हें. इत्यादि असंस्कारी विषय हें ओर वर्षा सिंहादि इदंत्वादिके विषय होते हें ॥ ३२८ । ३२९ ॥ स्व. शब्दमात्रभी नहीं हे; क्योंकि वहां स्पर्श, रुप, रस, गंध विषय-भोग्य होते हें. शब्दमात्रमें स्पर्शादि नहीं होते ॥ ३३० ॥ स्व. अनुमान मात्रभी नहीं हे; क्योंकि वहां अपने अंगका दाह ओर दुःख अनुभवते हें. अनुमानमें एसा नहीं होता ॥ ३३१ ॥ स्व. विषयको तालाश करते हों, एसीभी नहीं हे; क्योंकि वहां पदार्थ अपरोक्ष होते हें. तालाश वा अंधोंसमान ढूंढनेमें अपरोक्ष नहीं होते ॥ ३३२ ॥ स्व. स्मृति ओर स्मृतिज्ञानरुपभी नहीं हे; क्योंकि वहांके पदार्थ इदंरुपसे विषय होते हें. स्मृति वा स्मृति ज्ञान (में) इदंरुपसे विषय नहीं होते ॥ ३३३ ॥ स्व. पूर्व द्रष्ट समक्ष (सो यह) रुप अथवा प्रत्यभिज्ञा ज्ञान रुपभी नहीं हे; क्योंकि वहां नष्ट हुये पदार्थ देखते हें. प्रत्यभिज्ञामें नष्ट पदार्थ सन्मुखमें नहीं होता; ओर सो यह, एसे ज्ञानमात्रमें विषय समक्ष नहीं होता,

परंतु स्वप्नमेंतो रसादि ओर दुःखका साक्षात भोग होता हे ॥३३४॥ स्व. शरीरसे बाहिरके पदार्थका दर्शन हे, एसाभी नहीं हे; क्योंकि स्वप्नमें मिले हुये संबंधीसे जाग्रतमें पूछें तो मिलनेकी साक्षी नहीं मिलती. ओर नष्ट हुये पदार्थभी देखते हैं अतः बाह्य दर्शन नहीं ॥ ३३५ ॥ स्व. जीवकी इच्छासे कल्पा गया (बनाया गया-घडा गया) हो, एसाभी नहीं हे; क्योंकि वहां प्रतिकूल (अंग रोग, धन पुत्र स्त्री आदिका हरण, मानभंग, अंगभंग, इत्यादि) देखते हैं. कल्पितमें एसा नहीं होसकता ॥ ३३६ ॥ स्व. मस्तक (ब्रेमेटर-दिमाग) का परिणामभी नहीं हे; क्योंकि जो नहीं चाहते एसे असंस्कारी अनिष्टकाभी दर्शन तथा भोग होता हे[1] ॥ ३३७ ॥ मानलो के ब्रेमेटरका एक भाग नानारुप धरता हो, तथापि अनिष्ट-प्रतिकूल रुप नहीं धरसकता; बडेबडे पहाड, वा देशकालादिरुप नहीं होसकता; अपना मरण ओर दाह एसा रुप नहीं धरसकता; ओर यदि एसा होना मानलेवें तोभी स्वप्नसृष्टि जाग्रत जेसी सिद्ध होगी; क्योंकि वे परिणाम मेटरके हैं ओर भोग्य होते हैं ॥ ३३७ ॥ स्व. मनका परिणामभी नहीं हे; क्योंकि वहां एक कालमें अनेक विरोधी पदार्थ (सरदी गरमी, तम प्रकाश) देखते हैं. मन एककालमें अनेक वा विरोधी परिणाम नहीं करसकता (यह हेतु ३३७ । ३३९ । ३४० और ३४१ इनचारों विकल्पोंमेंभी लगा लेना) ॥ ३३८ ॥ स्व. ब्रह्मचेतनका परिणामभी (अन्यख्यातिका विषयभी) नहीं हे, क्योंकि वैधर्म्य हे. ब्रह्मचेतन, अक्रिय एकरस ओर व्यापक हे; स्वप्नसृष्टि जड, सक्रिय, तमप्रकाश विरोधरुपवाली ओर परिच्छिन हे ॥ ३३९ ॥ स्व. स्वप्नद्रष्टा (जीवात्मा) काभी परिणाम (रुपांतर)

---

[1](शं.) मगज गत जो स्मृति (मेमरी) के सेंटरमें अंकित इम्प्रेशन, जेसेके तेसे वे सामने होते हैं, सो स्वप्नसृष्टि हे, जेसे फोनोग्राफकी सुई डीग जावे तो इधर उधरके अंकित शब्द मिलके अन्यथा वाक्य सुनते हैं, एसे अंकित मेमेरीकी लकीर अन्यथा मिलनेपर अन्यथारुप (अनिष्ट) जान पडता हे; अतः दोष नहीं. (उ.) मेमीरी वा प्रत्यभिज्ञा सोका विषय होती हे, ३३३ याद कीजे; अतः स्वप्न मेमीरीकी लकीर नहीं. तथा मेमेरीका सेंटर पा इंचभी नहीं हे; इसलिये उसमें किरोडों शब्द, किरोडों आकार, किरोडों स्वाद वगेरेकी लकीर नहीं होसकती; किंतु मनका अभ्यासही मान्ना पडता हे. सेंटर तो मेमेरी होनेका साधन हे. इसलिये ब्रेमेटरके भाग (मेमेरीका सेंटर वा गवरनर मेटर)का परिणाम नहीं हे; किंतु वक्ष्यमाणानुसार ईथर (अव्यक्त मायाके भाग)काही परिणाम मान्ना पडता हे.

नहीं हे; क्योंकि उसकी दृश्य हे. द्रष्टा ओर दृश्य परस्पर भिन्न होते हैं. जो द्रष्टा-को सावयव मानके एक भाग दृश्य, एक भाग द्रष्टा मानें तो नं. ३३७ । ३३८ अनुसार स्वप्न, जाग्रतके समान भोग्य वस्तु ठेरेगी ॥ ३४० ॥ स्व. क्षणिक नहीं हे; क्योंकि वहां त्रिपुटी व्यवहार स्थाई देखते हैं ओर वहां तथा जागनेपर उसकी स्मृति होती हे. क्षणिक परिणाममें यह दोनों बातें नहीं होसकती. ज्ञेय परिणाम कालमें ज्ञाता ओर ज्ञातापरिणाम कालमें ज्ञेय नहीं होनेसे व्यवहार नहीं होसकता, परंतु वहांतो त्रिपुटि व्यवहार समकालीन होता हे ॥ ३४१ ॥ स्व. प्रतिबिंबरुपभी नहीं हे; क्योंकि वहां दृश्यका कोई बिंब नहीं जान पडता. ओर केमेरेके समान फोटो मानें तो नपुत्रेके पुत्रका, जीवते संबंधीके मरणका ओर न हुये अनिष्टका दर्शन न होना चाहिये, परंतु स्वप्नमें यह सबकुछ होता हे ॥ ३४२ ॥ स्व. प्रभाव (असर--इम्प्रेशन) मात्रभी नहीं हे; क्योंकि असरमें वस्तुत्वका अभाव हे किंतु मगजकी अवस्थामात्र हे सो त्याग ग्रहणका विषय नहीं हे, परंतु स्वप्नमें तो वस्तुका हाथोंसे त्याग ग्रहण होता हे ओर नष्ट करते हैं तथा इष्ट अनिष्ट देखके सुख दुःख भोगते हैं, परंतु असरमात्रमें एसा नहीं होता; अतः स्वप्न असररुप नहीं हे ॥ ३४३ ॥ इसी प्रकार स्व. भावना मात्र हो एसाभी नहीं हे; क्योंकि अपनेसे प्रतिकूलभी देखते हैं. भावना प्रतिकूल नहीं की जाती. तथा भावना त्याग ग्रहणके योग्य वस्तु नहीं होती, परंतु स्वप्नमें यह सब कुछ होता हे; अतः स्व. भावनारुप नहीं हे ॥ ३४४ ॥ स्व. संस्कारी (मन--जीव) की गतिका प्रवाह-रुपभी नहीं हे; क्योंकि स्व. में लेनदेन होता हे. गतिमात्रमें लेनदेन नहीं होता ॥ ३४५ ॥ स्व. सत्‌रुप नहीं हे; क्योंकि सादि ओर सांत हे; उत्पत्ति नाशवाला सत्‌रुप नहीं होता. तथा स्वप्नमें जो द्रव्य प्राप्त हुवा हे वोह जाग्रतमें नहीं मिलता. यदि स्वप्नके पदार्थ सत् होते तो कभी न कभी जाग्रतमेंभी साथ आते; इसलिये सत्‌रुप नहीं हे ॥ ३४६ ॥ स्व. असत्‌रुपभी नहीं हे; क्योंकि वर्तमानमें उसकी उपलब्धि होती हे. असत् वर्त्तमानमेंभी नहीं होता ओर न उसकी उपलब्धि होती हे. ॥ ३४७ ॥ स्व. सदसद्रुपभी नहीं हे; क्योंकि सदसद्का विरोध होनेसे वे (धर्म) एकमें नहीं वर्तसकते. याने उभयरुप कोई नहीं होसकता ॥ ३४८ ॥ तथाहि सदसद्रुप जो हो सो उत्पत्तिसे पूर्व ओर नाश होनेके पीछे नहीं हो एसा नहीं होसकता, क्योंकि उसमें सदंश हे. परंतु स्वप्न उत्पत्तिके पूर्व ओर नाशके पीछे नहीं होता; अतः सदसद्रुप नहीं. ओर वर्तमानमें हे. जो

उभयरुप होता तो तीनोंकालमें उभयरुप होता; परंतु एसानहीं हे. तथा उभयरुप मानें तो सद, असदवाले दोष आवेंगे. तथा विरोध दोष होगा; क्योंकि एकही वस्तु एककालमें सदसद्रुप नहीं होसकती. किसी द्रष्टिको लेकेकिसीमें सद्-सद्का आरोप करनेसे वोह वस्तु सदसदरुप नहीं होसकती; क्योंकि उभय विरोधि धर्म हें वे एकमें नहीं होसकते ॥ ३४८ ॥ स्व. किसी पदार्थका धर्म (गुण, शक्ति, आकार, योग्यता, इम्प्रेशन) भी नहीं हे; क्योंकि धर्म यह अपने धर्मीसे भिन्न अधिकरणमें नहीं रहता. स्वप्नमें कोई धर्मी नहीं हे तोभी शब्दादि विषय भोग्य होते हें; अतः धर्मरुप नहीं हे ॥ ३४९ ॥ डोरीमें जहां सर्पका भ्रम होता हे वहां जीव वा अंतःकरणमें सर्पत्वरुप संस्कारसे सर्पत्वरुपसे सर्पत्व धर्म रहता हे, सो सादृश्य दोषसे डोरीमें प्रतीत होता हे, वेसे स्वप्नके पदार्थ हें. एसा एक पक्ष हे. सो उपर कहे अनुसार अयुक्त हे. तथाहि जो एसा हो तो नपुत्रेके पुत्र ओर जीवता हुवा मरा, तथा शरीरमें अनिष्ट न भासना चाहिये; क्योंकि न तो उनके संस्कार हें ओर न वेसे धर्म उत्पन्न हुये हें. इसलियेभी स्वप्न धर्ममात्र नहीं हे ॥ ३४९ ॥ अन्यदेशस्थ वस्तु दोषबलसे शरीरके अंदर भासती हो, एसीभी स्वप्नसृष्टि नहीं हे; क्योंकि स्वप्नमें नवीन वस्तु प्रतीत होती हें ॥ मथुरामें कभीभी जो न आया उसको स्वप्नवाली मथुरामें देखते हें. मरे हुये मित्रको जीवता देखते हें ॥ ३५० ॥ स्व. स्मृतिरुप हे, परंतु स्मृतिरुपसे ग्रहण नहीं होता, याने स्मृतिका अविवेक हे. एसाभी नहीं हे; क्योंकि जो पहेले नहीं देखा वोह देखते हें ओर इदंरुपसे देखते हें. स्मृति पूर्व द्रष्टकी होती हे ओर इदंरुपसे विषय नहीं होती. जीवतेको मृत देखना यह पूर्व अद्रष्ट हे, ओर इदंरुपसे ग्रहण त्याग ओर दुःख भोग्य होना स्मृति नहीं कही जासकती. परंतु स्वप्नमें दोनों बातें होती हें, अतः स्वप्न, स्मृतिका अविवेक, एसे रुपवाला नहीं हे ॥ ३५१ ॥ स्व. अनुभव रहित हो किंवा देवानापन (गेरमामूली हालत) हो, एसाभी नहीं हे; क्योंकि जागने पर उसकी स्मृति होती हे. अनानुभवकी स्मृति नहीं होती. तथा देवानपनमें[१] जो देखा सुना भोगा उसकी स्मृति, स्वस्थ चित होनेपर नहीं होती; परंतु स्वप्नकी तो स्मृति होती हे ॥ ३५२ ॥ स्व. अजात (अनुत्पन्न) ओर शून्यरुप (कुछभी नहीं) हो एसाभी नहीं हे; क्योंकि अपनी स्मृति कराता हे. अजात ओर शून्य रुपकी पदार्थ भोग्यरुपसे स्मृति नहीं होती ॥ ३५३ ॥ स्वप्नका, चेतन द्रष्टा हे सो

[१] हिस्टूया, उन्माद नहीं किंतु अन्यथा हे.

उसका अधिष्ठान हे. उस अधिष्ठानका स्वभाव हे के एसे रुपमें प्रतीत हो, एसीभी स्वप्नसृष्टि नहीं हे; क्योंकि द्रष्टाचेतन द्रश्य वा जडरुपसे प्रतीत नहीं होसकता; कारण के उभयका वैधर्म्य हे. स्वभाव, स्वभाववानसे विरुद्धरुप नहीं होता ॥३५४॥ द्रष्टाचेतनही अन्यथा (जड-दृश्य) रुपसे भासता हो, एसीभी स्वप्नसृष्टि नहीं हे; क्योंकि उभयमें सादृश्य नहीं हे अर्थात दृष्टा दृश्यरुप, चेतन जडरुप, अक्रिय सक्रियरुप वा शब्दादि रुपसे प्रतीत हो, एसा नहीं होसकता. आरोप करनेवालेके आरोपसे वेसा वोह नहीं हुवा वा नहीं होता. आरोपकको दोषसे अन्यथा भासे इससेभी वोह वेसा नहीं होता; अतः स्वप्न अधिष्ठानका अन्यथारुप नहीं हे ॥ ३५५ ॥ "स्वप्न यह कफ, पित्त, वायु, वा बदहजमी-अजीर्ण-पेशाबंबदजन्य, वा पृथ्व्यादि भूत दोषजन्य वा भूत पलीतसे दोषरुप हे, कुछ वस्तु नहीं हे. यथा वायुका उपद्रव हो तब उडे, पित्तका हो तब अग्निदाह देखे. इत्यादि दोषरुप हे," एसीभी स्वप्नसृष्टि नहीं हे; क्योंकि इन तीनोंसे उलटा रुप देखते हें ॥ ३५६ ॥ यथा (१) कफ प्रकृतिवाला स्वप्नमें जलन, कफ रोगवाला स्वप्नमें अमल पित्तरोग, सर्दऋतुमें स्वप्न विषे ग्रीष्मका कठिन धूप देखता हे. (२) अजीर्णादिवाला स्वप्न विषे अपनेको भूखा पाके मिष्ट पदार्थ खाके तृप्त होता हे. (३) भूत जो शीरनी वगेरे वस्तु लाया उसे वा उसने कोई भेद कहा सो जाग्रत होने पीछे नहीं पाते । इसप्रकार तीनों दोषसे विपरीत देखते हें; अतः भूत दोष रुप स्वप्न नहीं. हां, संभव हे कि कफ, अजीर्णादि, संस्कारी मनके संस्कार स्फूरणमें निमित्त होजावें; परंतु स्वप्नके जो दृश्य पदार्थ हें वे मन, ओर कफादिसे जुदा वस्तु होने योग्य हें. नहींतो विपरीत रुपमें नहीं देखपडते ॥ ३५६ ॥ स्व. अज्ञेय (अज्ञान) मूढ रुपभी नहीं हे; क्योंकि वोह प्रकाश्य होता हे (जानाजाता हे) ओर उसकी स्मृति होती हे. गुमसुम रुपमें दोनों बातें नहीं होती ॥ ३५७ स्व. अभावजन्य अर्थात उपादान (मेटरके) विना हो एसाभी नहीं हे, क्योंकि कार्य (उपादेय) रुप देखते हें. अभावजन्य भावरुप नहीं होता ओर कार्य मेटरके बिना नहीं होता ॥ ३५८ ॥ "स्वप्नसृष्टि रज्जु सर्प समान भ्रांन्तिरुप हो," एसाभी नहीं हे; क्योंकि स्वप्नमें पदार्थ हें ओर भोग्य होते हें, परंतु भ्रांति (भ्रम) प्रसंगमें अर्थ नहीं होता, किंतु नाम कल्पनामात्र होता हे; अतः स्वप्नसृष्टि भ्रमरुप नहीं हे ॥ ३५९ ॥ स्वप्न अन्योऽन्यावभासरुप नहीं हे; क्योंकि जिसके संसर्गसे स्वप्नसृष्टिरुप भासे वेसा वहां कोई संसर्गी नहीं हे ॥ ३६० ॥ रक्तवस्त्रके

संसर्गसे श्वेतकाच " लालकाच " एसे भासता हे, इसको अन्योऽन्य अवभास-अन्योऽन्याध्यास-संसर्गाध्यास कहते हें, एसी स्वप्नसृष्टि नहीं हे; क्योंकि वहां द्रष्टा चेतन ओर मनसे इतर अन्य वस्तु नहीं हे. उनका परस्परमें सूर्य, तम, प्रकाश रुपसे अध्यास नहीं होसकता, परंतु वहां तो सूर्यादिभी होते हें; अतः किसी दोका अन्योअन्याध्यासरुप स्वप्न नहीं. ओर जो मगजके मेमरी वगेरे सेंटरका तथा मन, चेतनका अन्योऽन्याध्यास मानें तो स्वप्नमें खानपान, दुःखसुख, नपुत्रेके पुत्र, जीवते मित्रका मरण-इत्यादिका दर्शन न होना चाहिये; क्योंकि अन्योऽन्याध्यास संस्कारके विना नहीं होता तथा अध्यासमें भोग्य वस्तु नहीं होती, परंतु स्वप्नमें तो भोजन ओर दुःखादि होते हें; इसलिये स्वप्न अन्योऽन्यावभासरुप नहीं हे ॥ ३६० ॥ तथाहि अन्योऽन्याध्यासमें सादृश्यदोषकी अपेक्षा हे, परंतु स्वप्नमें सादृश्यकी अनापत्ति हे. अर्थात मन, चेतन (ओर मगज) का सादृश्य स्वप्न सृष्टिका जेसा नहीं हे; क्योंकि वे सूर्य, तमप्रकाश, शीतोष्ण, कटुमिष्ट इत्यादि विरुद्ध रुपमें प्रतीत नहीं होसकते, इसलिये स्वप्नसृष्टि अन्योऽन्यावभासरुप नहीं हे ॥ ३६१ ॥ (३५९ । ३६० । ३६१ का विवेचन)—स्वप्नसे जागनेके पीछे "अमुकका अमुकमें अध्यास हुवा था" "मुझे भ्रम हुवा था" इसप्रकार कोई नहीं कहता किंतु मुझे दुःख सुखादि हुये थे, सूर्य चंद्रादि देखे थे, एसे रुपमें बाध होता हे; इसलिये अन्योऽन्यावभासरुप नहीं ॥ स्वप्नमें स्थूल शरीरादि नहीं, केवल द्रष्टा जीव ओर मन हे, उनका अन्योऽन्यावभास मानें तो पुत्र, स्त्री, द्रव्य, पशु, पक्षी, वनस्पति, शत्रु, मित्र, देशकाल वा सूर्यादिकी प्रतीति न होनी चाहिये; क्योंकि पुत्रादि नहीं हें, ओर उन दोनोंमें तद्धर्मापत्ति वा तदरुपताभी नहीं हे. तथाहि अनिष्ट नहीं मालूम होना चाहिये, क्योंकि परस्परमें विरोधि नहीं हें ओर करण (शरीर, इंद्रिय)का व्यवहार न होना चाहिये; परंतु स्वप्नमें तो पुत्रादि ओर अनिष्टादि व्यवहार होते हें; अतः अन्यमें अन्यका अवभास एसी स्वप्नसृष्टि नहीं हें. तथाहि जो भ्रमादिरुप मानें तो साध्यसम[१] दोष आता हे. स्वप्न स्वयं उन दोनों रुपको सिद्ध नहीं करता. बाध पीछेभी उन दोनों रुपसे मालूम नहीं होता. रज्जु सर्प समान कहो तो पदार्थोंका भाव होनेसे नहीं मानाजाता ओर जाग्रतवत कहो

[१] " जगत मिथ्या हे ' रज्जुसर्पवत् वा स्वप्नवत्. यहां रज्जुसर्प ओर स्वप्न जगतके अंदर होनेसे ओर यह कथनभी जगतमें होनेसे साध्यसम दोष हे, क्योंकि तीनों-जगत मिथ्यात्ववत, साध्यके समान हें.

तो स्वप्नसृष्टि जाग्रतसम माननेसे अनिष्टापत्ति होगी. इसप्रकार प्रकरणसम[१] नामदोष प्राप्त होता हे. भ्रमकी सामग्रीअधिष्ठान (डोरी)का सामान्यज्ञान १, विशेषाज्ञान २, वस्तु (सर्प) संस्कार ३, प्रमाता दोष (भयादि) ४, प्रमाणदोष (तिमरादि) ५, ओर प्रमेयदोष (डोरी सर्पका सादृश्य) ६ यह ६, सामग्री हों तब भ्रांति वा अध्यास हो. स्वप्नसृष्टि होनेमें यह सामग्री नहीं हें; क्योंकि स्वप्नके अधिष्ठानरुप चेतनात्माका सामान्य विशेषज्ञान ब्रह्मवितको होता हे तोभी उसे स्वप्न होता हे. अतः १, २ सामग्री नहीं ओर सूक्ष्म प्रकृतिको तो अज्ञात मानते हो, ओर चेतन मन (अंतःकरण)का सादृश्य भाव नहीं हे, इसलिये नं. ६ दोष नहीं ओर जो सब प्रकारसे स्वस्थ हें अर्थात जो तन मनसे आरोग्य हें, जिनको चिंता भयादि नहीं हें उनकोभी स्वप्न होता हे. किंवा स्वप्नमें प्रमाण (इंद्रिय) नवीन होते हें इसलिये नं. ४, ५ वाले दोष नहीं हें. अब केवल संस्कार रहा सो तो जाग्रतमेंभी कार्यका हेतु होता हे अर्थात दृष्टश्रुत संस्कार जुडकेही नवीन मकान, रेल्वे, तार आदि बनते हें, इसलिये संस्कारदोषसे वस्तु दर्शन मानों तो जाग्रतसमान स्वप्नकोभी भ्रांतिरुप मानसकोगे, अन्यथा नहीं (निद्रादोषका निषेध आगे आवेगा) इसप्रकार स्वप्नसृष्टि दोषसामग्रीके विना होनेसे भ्रांति या तो अन्योऽन्याध्यासरुप (स्वप्न भ्रमरुप) नहीं हे ॥ ३६१ ॥ ओर जो स्वप्नसे जागने पीछे जाग्रतमें स्वप्न केसे प्रकारवाला वा केसे भावनावाला प्रतीत हुवा था, एसे बाधके विचारपर (वा स्वप्न द्रष्टाके अनुभवपर) दृष्टि डालें तो उपरोक्त विकल्पादिरुपमें बाध होना नहीं पायाजाता; किंतु उससे अन्यथा (जाग्रत जेसे) रुपमें बाध होता हे; इसलिये स्वप्न विकल्पादि रुप नहीं हे, एसा सिद्ध होता हे ॥ ३६२ ॥ स्वप्न, जागने पीछे विकल्पादि रुपमें बाध नहीं होता, इसका भावार्थ संक्षेपमें यह हे.—

जागने पीछे स्वप्न द्रष्टा स्वयं विचार करे वा उससे पूछो तो “ मुझे विकल्प हुये थे । ज्ञान मात्र था । संस्कार मात्र था । शब्द मात्र था । अनुमान मात्र था । में शोधता था । स्मृति हुई थी । स्मृतिका ज्ञान हुवा था । पूर्व दृष्ट समक्ष देखा था । शरीरसे बाहिरका दर्शन हुवा था । मेंने कल्पा था । मेरे मस्तकने आकार धरे थे । मेरे मनके रुप बने थे । परमात्माने रुप धरे थे । मेरेही वे रुप थे यानेमें उनरुप बनगया था । क्षणिक था । किसीका प्रतिबिंब था । किसीका असर वा इम्प्रेशन था । मेरी वेसी भावना हुई थी । संस्कारोंकी गति मात्र थी । सद्रूप था । असद्रूप था । सद्भी था असद्भी था । किसी धर्मीका धर्म देखता

था। अन्य देशस्थ वस्तु शरीरमें जानपडती थी। स्मृति थी परंतु उसे स्मृतिरुपमें नहीं जानता था। अनुभव विनाका था। में गांडा हो गया था। वहां कुछभी नहीं हुवा था। वहां शून्य रुप था। मेरा स्वभाव प्रतीत हुवा था। मेंही दूसरे रुपमें होके भासता था। मुझे कफ, पित वा वायुकी बेमारी हुई थी, उससे ठंडा गरम देखता था, मुझे अजीर्ण हुवा था इसलिये अन्यथा देखता था, मुझे भूत प्रेत लगगया था। स्वप्न सृष्टि अज्ञेय थी। अभावसे बनगई थी। मुझे भ्रम होगया था। वहां अनेक वस्तु पहेलेसे थी उनके अन्योऽन्याध्यास होनेसे अन्यथा अवभास हुवा था।" एसा उत्तर न मिलेगा, ओर न एसा भाव उसके अनुभवमें होगा. किंतु "जाग्रत नहीं परंतु उस समय जाग्रत जेसा कुछ जानपडता था ओर वेसाहीमें मानता था," एसा उत्तर मिलेगा वा एसा उसके भावमें होगा. अथवा यह उत्तर मिलेगा के "स्वप्न क्या था, सो में नहीं जानता, में इस संबंधमें कुछ नहीं कहसकता. प्रतीति वा व्यवहारकृति जाग्रत जेसी जानपडी थी, इतना मात्र कहसकता हुं॥ इसप्रकार अन्यथाबाध होनेसेभी स्वप्न विकल्पादि रुप सिद्ध नहीं होता॥ ३६२॥ क्योंकि जाग्रत समान भोग्य होता हे, एसा जागने पीछे कहता हे (इस रुपमें बाध होना जानपडता हे), विकल्पादिमें भोग्यरुपमें बाध नहीं होसकता॥ ३६३॥ उपरके ५ सूत्रोंमें दोदो विकल्प हें इसप्रकार ३८ पक्ष हें. यद्यपि इन विकल्पोंमें कोई विकल्प व्यर्थ वा पुनरुक्ति रुप जानपडेगा तथापि पक्षकारोंने रुपांतर करके लिया हे, इसलिये जुदाजुदा रुपमें लिखने पडे हें. सफलादि सृष्टिनियमानुकूल, इनका विशेषविवेचन (अनेक हेतु, अनेक व्याप्ति, अनेक दृष्टांत, अनेक उदाहरण, अनेक शंका समाधान सहित) भ्रम नाशक उतरार्द्ध गत ४१२ पृष्टोंमें हे. यहां तो सूत्रकी वृत्तिमें नमूना मात्र लिखा हे. ओर तत्व. की मूल अध्याय ४ मेंभी विस्तार हे॥ ३२५ से ३६३ तक॥ उपरोक्त ३८ विकल्पोंके सिवाय अन्य विकल्प उपस्थित हों तो उपरोक्त सूत्रोंसे यथायोग्य परीक्षा करलेनाचाहिये. सत्‌ही टिकेगा. असत्‌का खंडन होजायगा॥३६४॥

जबके स्वप्न विकल्पादि रुप नहीं तो क्या हे? सो आगे सिद्धअधिकारमें वांचोगे॥ ३६४॥

यहांतक **असिद्धाधिकार** समाप्त हुवा.

अ. ३–सिद्ध प्रकरण विचार.

संगति—इससे पूर्व जितने असिद्ध विषय लिखने उचित जाने गये उतने विषयोंमें नियमादिका उपयोग दरसाया गया. अब आगे जितने सिद्ध विषय लिखना योग्य जाना गया उतने सिद्ध विषयोंमें नियमादिका उपयोग दिखाया जायगा (अ. १ । २, ३ याद कीजे). अ. ३ सू. ३६६ से लेके उपसंहार तक सिद्ध विषय हैं अर्थात सिद्ध अधिकार किंवा सिद्धप्रकरण हे, एसा जान्ना चाहिये.

अथ सिद्ध ॥ ३६५ ॥

अर्थ.—अब आगे सिद्धविषय लिखते हैं ॥ ३६५ ॥ अ. ३ । १३ का आशय इसप्रसंगमें लगालेना चाहिये. अर्थात जो विषय सिद्ध कियेजायंगे वे नियमादिसे सिद्ध हैं, एसा जान्नाचाहिये. सूत्रोंके अंतमें सिद्ध पदकी आवृत्ति होती हे, क्योंकि वृत्तिमें हेतु ओर साक्षिओंका ग्रहण हे. तथापि जो कहीं आवृत्ति न करें तोभी दोष नहीं आता, क्योंकि सू. ३६५ के अंतरगत हे. **सिद्ध** पदका अर्थ समीचीन, सयुक्त, ग्राह्य, मान्य, उचित, योग्य, प्रमाण सिद्ध होता हे. इनमेंसे यथा प्रसंग योग्य अर्थ करलेना चाहिये ॥ ३६५ ॥

असिद्धिकी अर्थापत्तिसे निर्दोष भावमें जिसकी प्राप्तिसो (सिद्ध) ॥ ३६६ ॥ नियम ओर रुपांतरसे असिद्ध प्रकरणमें उसका स्वरुप ॥ ३६७ ॥ यथा अधिष्ठानाधार ॥ ३६८ ॥

सूत्रार्थ.—कोई दोषकी आपत्ति न होती हो एसी रीतिसे, उपरोक्त असिद्ध विषयोंकी अर्थापत्तिसे जिस विषयकी प्राप्ति होती हो सो विषय सिद्ध हे. एसे जान्ना चाहिये ॥ ३६६ ॥ यहां कहे अनुसार अर्थापतिसे सिद्ध जो विषय हैं उनका रुप (सिद्ध रुप ओर विवेचन) नियमाध्यायमें हे ओर रुपांतरसे उनका रुप उक्त असिद्ध अधिकरणमेंभी मिलेगा ॥ ३६७ ॥ जेसे के अधिष्ठानाधार, यह विषय अ. ३ । १९१ में हे. पक्षाकारने उसका निषेध किया हे ओर नियमादिने उसके पक्षका खंडन किया हे; परंतु आधारकी सिद्धि नहींकी हे किंतु इसकी अर्थापत्तिसे आधारकी सिद्धि मानसकते हैं. यह आधार--विषय नियमरुपमें अ. २ सू. २६८ में हे. यह सू. ३६७का उदाहरण हुवा ॥ ओर अ. ३ सिद्धपक्षमें व्यवस्थाकी दृष्टिको लेके आधार (अधिष्ठान)की सिद्धि की हे, याने पूर्ण परिच्छिन्नवाद दरसाया हे. अब जो असिद्धकी अर्थापत्तिसें अधिष्ठान मानलेवें तो पुनः अधिष्ठान सिद्धिपर पुनरुक्ति दोष आवे, इसलिये असिद्ध पक्षमें अर्थापति नहीं करेंगे ॥ ३६८ ॥

निरवयव अपरिणामी अ. २। १७४॥ निरवयव परिणामीमी अ. ३।५४ इनकी अर्थापत्तिसे विभु उपादान नहीं यह सिद्ध होता हे. परंतु अ. २। १८० में विभु उपादान नहीं, एसा लिखा हे; इसलिये व्यर्थ दोषकी आपत्तिसे अ. ३ की अर्थापत्तिका ग्रहण न हुवा. एसेही अन्य प्रसंगमें विचारणीय हे. ओर अ. ३ । १२७ में मिथ्यासे सत्यकी सिद्धि कही उसका निषेध हुवा हे, तो अर्थापत्तिसे यह आया के जो सत्यका प्रतिपादक हो वोह सत्यही होगा. यह निर्दोष अर्थापति हे ओर इससे जो सिद्ध विषय हुवा सो निर्दोष सिद्ध हे । यह (३६६) का उदाहरण हुवा.[१] एसेभी अनेक विषय अर्थापतिसे सिद्ध होनेवाले हें. जो विषय नियमाध्यायमें हें उनमेंसे जिनका प्रतिपक्ष होके उस प्रतिपक्षका निषेध हुवा, इनकी विगत १, तथा इसकी अर्थापत्तिसे जो पुनरुक्ति असंभवादि दोष रहित सिद्ध हुये उनकी विगत २, तथा जो दूसरे अध्यायके विषय प्रतिपक्षीने असिद्धाधिकारमें नहीं लिये वा सिद्ध अधिकारमें नहीं लिये गये उनकी विगत ३, तथा सिद्ध विषयकी अर्थापत्तिसे जो विषय सिद्ध हों उनकी विगत ४, इन सबका स्मृतिपत्र मूलमें हे* यहां तो स्मरण मात्र उदाहरण दिया हे ॥ ३६८ ॥

निर्णयकी सामग्रीका स्वीकार ॥ ३६९ ॥

अर्थ.—साध्य विषय केसे निर्णय करना, इस सामग्रीका स्वीकार सब सा-

---

[१]जीव अल्पज्ञ हे, यह अ. २। ४६९ की ओर अ. ३। १३२ की अर्थापत्ति, ओर पूर्वजन्मकी सिद्धि अ. ३। २२० की अर्थापत्ति. अ. १ सू. ३८१ देखो. इस विषयका उल्लेख अ. २ में साक्षातसे नहीं हे, परंतु गर्भित हे. तथाहि—

(१) ईश्वर माना के जीव मान्नाही पडेगा. (२) जीव शरीरसे भिन्न माना के पुनर्जन्म मान्नाही पडेगा. (३) परिणामवाद माना के द्वैत (सावयवता) मान्नाही होगा. ओर जीवको मध्यम कहना पडेगा. (४) जो जीवको तत्व माना तो मोक्षसे आवृत्ति स्वीकारनीही होगी. (५) मोक्षसे अनावृत्ति मान्नेवालेको जीवका अभाव मान्ना होगा. (६) जो द्रव्य (जीव जगत) एकका परिणाम तो बंध मोक्ष नहीं मानसकते. (७) स्वरुपाप्रवेश नियम नहीं टूटसकता. (८) जो ब्रह्मेतर मिथ्या तो बंध मोक्षभी मिथ्या मान्नाही होगा. (९) आत्माको स्वाभाविक, नैमित्तिक वा औपाधिक बंध मोक्ष नहीं, यह अ. ३ सू. २९५ से ३०१ तककी अर्थापत्तिसे मान्नाही होगा.

*अ. ३ पृष्ट २९२ से ३०२ तकमें मूलग्रंथे विषे यह स्मृतिपत्र हे.

क्षरोंको संमत हे ॥ ३६९ ॥ परंतु उस सामग्रीमें मतभेद हे; विशेषतः शब्दप्रमाणकी मान्यतामें अपना अपना शब्द मानते हैं. चारवाक प्रत्यक्षसे इतर नहीं मानता. प्रकृतिवादि प्रत्यक्षकोभी मान नहीं देता. इसलिये उपरोक्त (२ । ११४) मध्यस्थको सामग्री मात्रा ठीक मानाजाता हे ॥ ३६९ ॥

निमित्तोपादान भिन्न आकरसे ॥ ३७० ॥

अर्थ.—इस ब्रह्मांडका (वा हरकोई कार्यका) निमित्तकारण ओर उपादान कारण जुदा जुदाही होते हैं, यह मंतव्य तमाम द्वैतवादि ओर ईश्वरवादिओंको संमत हे. यह मंतव्य आकर (३२८) से तथा अ. ३ । ९७ की अर्थापत्तिसे सिद्ध हे ॥ ३७० ॥

विश्वासी ईश्वरवादि ओर अद्वैतवादिभी हैं. जैन द्वैतवादि हे ओर अनिश्वरवादि हे; अतः ब्रह्मांडरुप कार्यमें इस पक्षको नहीं मानते; परंतु उनका मंतव्य असमीचीन हे. संहिता अमुक उपनिषद, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैतवादि, आर्यसमाजी, त्रिवादि, नैयायकादि, योग ओर वेदांतके मुख्य पक्षको यह पक्ष संमत हे ओर सिद्ध हे. मायावाद ओर विलक्षणवादमेंभी इस पक्षका प्रकारांतरसे स्वीकार हे ॥ ३७० ॥

कर्तव्यता यथाअधिकार ॥ ३७१ ॥

अर्थ.—सब ज्ञातव्य सबको, सब कर्तव्य सबको ओर सब प्राप्तव्य सबको, एसा नहीं होता किंतु इन विषय वास्ते कर्तव्यता अपने अधिकार अनुसार याने व्यक्तिके अधिकार परत्वे होती हे. यह मंतव्य सर्वतंत्र हे. इसकी सिद्धि वास्ते ५२९ । ५३३ ओर अ. ३ । २२, १४६ की अर्थापत्तिपर ध्यान दीजिये ॥ ३७१ ॥

प्रवृत्तिमार्गवाले, उत्साह दिलाने ओर पुरुषार्थके अभ्यास कराने वास्ते ‘ सबको सर्व शक्य ’ एसे रोचक बचन कहते हैं, सो निषेधनीय नहीं हैं. ओर रौढिक वर्णाश्रमवाले अपने जातीके निभाववास्ते “ कर्तव्यता वीर्यपर ही ” एसा कहते हैं, वस्तुतः कर्तव्यता यथाअधिकार सिद्ध हे ॥ ३७१ ॥

ज्ञानसे दुःख नहीं निवारणका साधन होनेसे ॥ ३७२ ॥

अर्थ.—पदार्थके ज्ञानसे दुःख नहीं होता, यह सिद्ध हे; क्योंकि ज्ञान यह दुःख निवारण करनेका साधन हे ओर दुःख उसका विषय हे. (३८८ । ३९४ देखो). यह पक्ष सब साक्षरोंको संमत हे ॥ ३७२ ॥

(शं.) ज्ञानसे रोशनी, रोशनीसे भावना, ओर भावनासे दुःख होता हे.

किंवा अज्ञानीकी अपेक्षा ज्ञानवानपर विशेष भार ओर विचार होपडता हे; अतः ज्ञान दुःखद हे. (उ.) अनुचित उपयोग ओर अधैर्यसे किंवा अधूरे ज्ञानसे दुःख होता हे.-ज्ञानसे नहीं. दुःखका ज्ञान होना इसीका नाम भोक्तृत्व हे एसा मानना भूल हे. ज्ञान यह दुःखरुप स्थितिका प्रकाशक हे. दीपकका प्रकाश दुःखद-चोरीका हेतु नहीं हे, किंतु कुसंग वा तदअनुयायी-कुसंस्कारी मन चोरीका हेतु होता हे उससे दुःख होता हे. दूधका ज्ञान हुवा तब शक्तिवर्धक जानके पीया उससे शक्ति हुई ओर शक्ति हुये खून किया. इस खूनका हेतु दूधका ज्ञान वा दूध नहीं हे. बात यह हे कि अयोग्य अहंत्व ममत्व वा अविवेक वा आसक्ति दुःखका हेतु हे. इनका यथावत ज्ञान हुये इनमें आसक्ती नहीं होती, आसक्ति न हुये दुःख नहीं होता; अतः ज्ञान परंपरासे दुःखका निवारक हे.

बालकको सर्पका ज्ञान, वा अग्निका ज्ञान दुःखद नहीं परंतु उसका अनुचित उपयोग दुःखद हे; क्योंकि ज्ञान हुये यथोचित उपयोग करे तो उलटा सुखद हे. तनमनकी प्रतिकूल अवस्थाका नाम दुःख हे, उसका ज्ञान जडको नहीं होता, चेतनको होता हे. सो ज्ञान दुःख नहीं किंतु उसके निवारणके उपाय ढूंडनेमें सहायक हे. परदेश गया हुवा पुत्र मरगया, एसा सुनके दुःख होता हे तहां पुत्रका ज्ञान दुःखका निमित्त नहीं किंतु अहंत्व ममत्व-वृत्ति दुःखका हेतु हे वा दुःखरुप हे. शरीर द्वारा जो दुःख होता हे उसका कारणभी तादात्म्याध्यास हे अर्थात आत्मा अनात्माका अन्योऽन्याध्यास हे. शरीर वा मनका ज्ञान दुःखका हेतु नहीं. शरीरकी पीडा स्वप्नमें नहीं जान पडती, किंतु वहां किलोल-आनंद करता हे; सुषुप्तिमें सुख होता हे, वहां कोई विषयका ज्ञान नहीं हे; आत्मा ज्ञानस्वरुप हे, दुःखस्वरुप नहीं ओर दुःखी नहीं किंतु दुःखका प्रकाशक हे; इन परीक्षाओंसे ज्ञान दुःखका हेतु नहीं, एसा स्पष्ट होजाता हे.

निरक्षर मंडल ज्ञानसे दुःख होना मानता हे, उसका कारण अविवेक वा विषयासक्ति हे. पशु, पक्षी, आफ्रीकन ओर भीललोक तथा ज्ञानवान ओर अच्छे-सच्चे साधुजनोंका मिलाप करोगे तो आपको निश्चय होजायगा कि जो ज्यादे सुखमें आता हे उसको ज्यादे दुःख भोगना पडता हे. यथा-विषयसंग्रही वा विषयासक्त जन हें. जिसको थोडा सुख हे उसको दुःखभी कम होता हे. यथा-भील वगेरे. जिसकी जरुरत कम ओर जिसको आसक्ति नहीं उसको ज्यादे सुख होता हे, दुःख कम होता हे. यथा-योग्य विद्वान जितेंद्रिय साधुजन हें. परंतु यह विवेक ओर

तदअनुसार वर्तन ज्ञान होनेसे होता हे, अतः ज्ञान दुःखद नहीं किंतु सुखद हे (विशेष मूलमें) ॥ ३७२ ॥

औपाधिक सीमा सीमा नहीं घटाकाशवत् ॥ ३७३ ॥

अर्थ.—कोई असीम पदार्थ हो ओर उपाधिसे सीमावाला जानपडता हो तो वोह ससीम हे एसा नहीं हे. जेसे के आकाश विभु हे ओर घटकी उपाधिसे घटाकाश जितना जानपडे तो आकाश ससीम (साकार) हे, एसा नहीं मानसकते. यहां सू. ३९२ । ३९३ देखना चाहिये ॥ ३७३ ॥

अधिष्ठान ब्रह्मचेतन असीम हे. अंतःकरणादिकी उपाधिसे ससीम जान पडता हे; इसलिये उसको ससीम मान्ना भूल हे ॥ ३७३ ॥

विकास सांतही आरंभ होनेसे ॥ ३७४ ॥

ओर उसका क्रमभी ॥ ३७५ ॥

अर्थ.—जिसको विकास स्थिति कही जाती हे उस स्थितिका अंत (अभाव–अविकास) भी होगा; क्योंकि जिसका स्वरुपसे आरंभ हे उसका अंतभी होता हे ॥ ३७४ ॥ ओर जो क्रमसे (प्रवाहसे) होनेका वाच्य हे वोह (प्रवाहसे) सांत होता हे; इसलिये विकासका क्रमभी सांत हे. यहां १५१, १४७ देखो॥३७५॥

सृष्टिके आरंभसे वनस्पति, प्राणी वगेरेका समष्टिरुपमें विकासक्रम चलरहा हे (अ. १ में विकासवाद–इवोल्युशन थीयरी देखो) उस क्रमका अंतभीं आना हे. व्यष्टि परत्वे तो नित्य अविकास होता हे, क्योंकि उसके भाव, विचार ओर अवस्था नित्य–प्रत्येक दिनमें परिवर्तनको पाते हें ओर अंतमें वोह आपनाश होजाती हे. ओर उसद्वारा जो संतानमें उन्नतिक्रम चलता हे वोहभी हिमप्रलयादिसे नाश होजाता हे. यह जडवादके विकासवादका क्रम कहा. एसेही चेतनवादके विकास क्रम (मोक्षसे अनावृत्ति वा अनंतउन्नति) के वास्ते जानलेना; क्योंकि जिस स्थितिका आरंभ हे, वोह सांत होती हे. ओर अनंतउन्नतिका अभाव हे (१५१ नियम याद करिये ॥ ३७५ ॥

अज्ञान असंबंध, पदार्थ नहीं उत्पत्ति ओर नाश होनेसे ॥ ३७७ ॥

अर्थ.—जिसे अज्ञान कहते हें वोह कोई मूलतत्व पदार्थ नहीं हे, किंतु विषयी विषयके योग्य संबंधका न होना वा उनका अयोग्य संबंध होना वा संबंधाभाव इस स्थिति विशेषका नाम अज्ञान हे; क्योंकि अज्ञानकी उत्पाति नाश देखते हें ओर तत्व पदार्थकी न उत्पत्ति होती हे ओर न नाश होता हे. यह पक्ष

स्वस्वरुप ज्ञानसे मोक्ष माननेवालोंसे इतर सबको संमत है. इसपक्षकी सिद्धि अ. ३। १७० की अर्थापत्तिसेभी होजाती हे ॥ ३७६ ॥

" मे नहीं जानता " इस प्रतीतिका विषय अज्ञान हे. जिसे नहीं जानता उसके साथ योग्यसंबंध हुये उसे जानता हे, तब मेंजानता हुं, इस प्रतीतिका विषय ज्ञान हे. सारांश प्रतीतिका नाम ज्ञान ओर अप्रतीतिका नाम अज्ञान हे.

चंद्रस्थ पहाड सादिसांत हें. क. जीवने उनको जो किसी जन्ममें देखे हों तो वर्तमानमें उसका अज्ञान माननेसे अज्ञान सादि सांत ठेरा. ओर यदि वे कभीभी न देखे हों तो उनकी उत्पत्ति पूर्व उनका अज्ञान कहनाही नहीं बनता. ग. वस्तु देखी थी ओर फेर सामने होनेपरभी न जान सका; यहां भूल हे. अर्थात ज्ञानाभावका नाम अज्ञान नहीं हे. तत्वको स्वस्वरुपका ज्ञान नहीं होसकता ३७५। ४४५ देखो; इसलिये उसको अज्ञान नहीं कहसकते. यदि कहें तो वोह अज्ञान अनादि अनंत कहना पडेगा; क्योंकि अपना आप ज्ञेय नहीं होसकता. अतत्व (सावयव) का एक भाग ज्ञाता ओर दूसरा भाग ज्ञेय होसकता हे. परंतु जब वोह आपही नाशवान हे तो उसका ज्ञान, अज्ञान सादि सांत (नाशवान) ही कहना पडेगा. मन आत्माका संबंध होता हे परंतु योग्य संबंध न हो वा योग्य असंबंध हो तो मनका ज्ञान नहीं होता. योग्य संबंध हुये ज्ञान होता हे. ज्ञान स्वरुपको अपना ज्ञान वा अपने ज्ञानका ज्ञान वा व्है अपना ज्ञेय, एसा कहना भूलमें आपडना हे. ज्ञानस्वरुपका परमें उपयोग, तब स्वाज्ञान उपचारमात्र हे. ॥३७६॥

भ्रमज्ञानका विषयभी, विकल्प होनेसे ॥ ३७७ ॥

अर्थ.—भ्रमप्रसंगमें भ्रमज्ञानका जो विषय होता हे वोहभी पदार्थ नहीं हे, (ज्ञानाध्यासमात्र होता हे); क्योंकि अज्ञानादि सामग्रीवश अर्थशून्य विकल्पमात्र होता हे. यह पक्ष क्षणिकवादिसे इतर लगभग सर्वको संमत हे ॥ ३७७ ॥

इस विषयको ज्ञानाध्यास कहते हें. इस विषयमें फिलोसोफरोंके मतभेद हें जिसने ख्यातिवाद देखा होगा वोह जानसकता हे कि भ्रम, किस भाव किस प्रकारका होता हे; परंतु इतना सब मानते हें कि जिस भाव जिस प्रकारमें प्रतीत होता हे वेसा तो व्है नहीं हे; किंतु अन्यथा विकल्प होजाता हे. इसलिये कल्पित—कल्पितवत् वा अजातख्यातिभी कहदेते हें. विस्तार बसु. में हे ॥ ३७७ ॥

(अन्यथाका विषय) अर्थशून्य नहींभी स्वप्नवत् ॥ ३७८ ॥

अर्थ.—जो हो जैसा हो उसका वैसाही जो ज्ञान हो उसे अबाधित—यथार्थ

ज्ञान कहते हैं, उससे अन्यको अन्यथाज्ञान कहते हैं; इस अन्यथाज्ञानका विषय कभी अर्थशून्य होता हे ओर कभी अर्थशून्य नहीं होता यह बात सिद्ध हे. जेसा के स्वप्न अन्यथाज्ञानका विषय अर्थशून्य नहीं हे ओर स्थाणुपुरुष अर्थशून्य होता हे. सू. ६९ से ७५ तक ओर अध्यासाधिकरण विचारिये. अ. ३ । १६८ । १६९ । १६७ भी याद कीजे ॥ ३७८ ॥

स्वप्नको अन्यथाका विषय इसलिये कहते हैं कि जिस भाव जिसप्रकारवाला हे उस भाव, उस प्रकारवाला, उस कालमें विषय नहीं होता. स्फटकमणि कसूम संबंधसे किंवा किरण संबंधसे लाल मालूम होती हे वहां प्रतीतिके विषय दोनों हैं. फक्त लालमणि इतना कल्पन भागही अन्यथा हे. यह विषयभी भ्रमसे अधिक बारीक हे. विस्तार भू. में हे ओर उपरभी कहा हे ॥ ३७८ ॥

परोक्षभ्रम विकल्पवत् ॥ ३७९ ॥

अर्थ.—जहां भ्रमज्ञानका विषय परोक्ष हो वहां अ. ३ । ३७८, अनुसार विषय होही एसा नहीं होता; किंतु अर्थशून्य होता हे. इसलिये वहां असत्ख्याति मानी जाती हे. यह सब ख्यातिवादियोंको स्वीकार हे ॥ ३७९ ॥

जहां झाडी जंगल नहीं एसे मेदानमें उमंगसे अकस्मात घोडा भागे तब सवार मानता हे के यहां आसपास भगेरा हे. यह भ्रम असत्ख्यातिका विषय हे. एसेही बिनादेखे वा व्याप्तिरहित सुन सुनाके (वा कल्पके) स्वर्ग नरकादि यथेच्छा मानलेना सोभी. यथा--मत पंथवालोंने अपनी अपनी कल्पना अनुसार जुदा जुदा प्रकारके स्वर्ग नरक माने हैं ओर उनके अनुयायी वेसाही मानते हैं, सो परोक्ष भ्रम असत्ख्यातिका विषय हे; क्योंकि जो होता तो लिखनेवालोंमें मतभेद न होता. परंतु जो परिक्षा सिद्ध हो तो वहां दूसरेकी मान्यता भ्रमरुप नहीं मानी जासकती ॥ ३७९ ॥

ख्यातिका त्याग ग्रहण दृष्टिसे ॥ ३८० ॥

अर्थ.—शोधक फिलोसोफरोंको जो प्रतीत हुवा ओर उन्होंने सो शुद्धभावसे कहा उस ख्यातिका त्याग वा ग्रहण, दृष्टिको विचारके करना चाहिये. यह बात सब शोधक परीक्षोंको संमत हे ॥ क्योंकि एसे महोदयोंकी ख्याति ओर कथनमें कोई न कोई हेतु (दृष्टि वा शैली) अवश्य होता हे; अतः उनकी दृष्टि उद्देश, शैली, प्रकार, लक्ष्य ओर रहस्य समझेबिना उस ख्यातिका अनादर करना अयोग्य हे ॥ ३८० ॥

यथा—अधिष्ठानके स्वरुपमें अन्यका प्रवेश न होनेसे दृश्य संबंधमें अनेक ख्याति हैं--(१) यह अधिष्ठान ब्रह्मकाही वा क्षणिकविज्ञानकाही परिणाम हे, यहां सत्ख्याति हे. (२) दृश्य हे ही नहीं, यहां अजात वा शून्यख्याति हे. (१) अपने उपादानसहितदृश्य--जगत, अपने अधिष्ठानसे विलक्षण प्रकारकी अनिर्वचनीय हे. यहां विलक्षणख्याति हे. (३) मन वाणीसे नहीं कहा जाता कि दृश्य केसा, ओर उसका उपादान (माया--मेटर) सावयव वा निरवयव वगेरे केसा हे; ओर ये उभय (अधिष्ठानाध्यस्त) किस संबंधसे रहते हैं. यहां अनिर्वचनीय ख्याति हे. (४) यह दृश्य रज्जुसर्पवत् मिथ्या हे, यहां मिथ्या वा सदसद्से विलक्षण अनिर्वचनीयख्याति हे. (५) रक्तसंबंधसे स्फटिक लाल प्रतीत होनेमें संसर्गख्याति हे वा आत्मामें अनात्माके धर्म जान पडनेमें अन्यथाख्याति हे. (६) परोक्ष भ्रममें असत्ख्याति हे. (७) अपरोक्ष भ्रममें कल्पना (अर्थशून्य-विकल्प) ख्याति हे. (८) अनिश्चितवादमें अनेकांतख्याति हे. (९) इत्यादि अनेक ख्याति हैं. अ. १ अध्यासप्रसंगमें कही हैं. इन सब प्रसंगमें वक्ताकी दृष्टि पर विचार करना चाहिये. हमारी ख्याति सर्व जघे सिद्ध हो, ससा आग्रह नहीं रखना चाहिये. यथा--परोक्ष भ्रममें असतसे इतर कोईभी (अनिर्वचनीय वा विलक्षणख्याति वगेरे) ख्याति सिद्ध नहीं होसकती. संसर्गाध्यासमें अनिर्वचनीयख्यातिकी सिद्धि हठ मात्र हे. किंतु जेसे संसर्गख्याति वेसी ख्याति मान्नी होगी. रक्तवस्त्र ओर काच उभय समसत्तावाले हैं; अतः वहां लाल काचकी प्रतीति अनिर्वचनीय नहीं किंतु अन्यथा याने संसर्गाध्यास हे. अधिष्ठान (ब्रह्म) अध्यस्त उभय विलक्षण सत्तावाले हैं; अतः इनके धर्मका अन्योऽन्याध्यास विलक्षण वा अनिर्वचनीय ख्यातिका विषय हे. इत्यादि रीतिसे सर्वख्याति सबजघे टिकना कठिन हे; अतः यथायोग्य उपयोग लेना चाहिये. जो परीक्षा करनेमें सिद्ध न हो तो उसके ग्रहण करनेमें आग्रह करना उचित नहीं हे. यद्यपि सब जघे एकही ख्याति मानके निर्वाह करना, यह पंडितोंका भूषण हे, तथापि द्वैतभावके विना ख्यातिकी सिद्धि नहीं होसकनेसे संसर्ग, असत्—शून्य (कल्पित)ख्याति माने विना छुटकारा नहीं होसकता; अतः यथायोग्य त्यागग्रहण उचित ठेरता हे ॥ ३८० ॥

अधिष्ठानके ज्ञानसे अध्यस्तकी निवृत्ति ॥ ३८१ ॥

अर्थ.—जिस अधिष्ठानमें जो अध्यस्त हे उस अधिष्ठानके ज्ञानसे उस अध्यस्तकी निवृत्ति होजाती हे. यह सतख्याति ओर अजात—शून्यख्याति वादिसे

इतर तमाम अध्यासवादियोंको संमत हे ओर सू. ६४४। ६४२ से सिद्ध हे॥३८१॥

(शं.) इंग्रेजी न जान्नेवालेको कागज (अधिष्ठान) के ज्ञान हुयेभी उस आश्रित अक्षरोंकी (अध्यस्तकी) निवृत्ति नहीं होती. (उ.) यहां अध्यस्तका अर्थ आधेय मात्र नहीं हे, किंतु अध्यास वा भ्रमका जो विषय उसमें आशय हे. तथा अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला अध्यस्त एसा अर्थ हे. कागज अक्षर समसत्तावाले हें, अतः यह शंका नहीं बनती. (शं.) अधिष्ठान ब्रह्ममें यह दृश्य विषम सत्तावाला अथवा कल्पित (रजु सर्पवत) मानते हें ओर ब्रह्मवित अनेक हुये हें एसाभी स्वीकारते हें, परंतु आजतक इस दृश्यकी निवृति नहीं हुई हे. (उ.) डोरीमें किसीको सर्प, किसीको जलधारा, किसीको लकडी वगेरेका भ्रम होता हे. जिसको डोरीका ज्ञान हुवा उसके भ्रम (अध्यस्त सर्पादि) की निवृत्ति हुई, सबके भ्रमकी नहीं. तद्वत ब्रह्मज्ञान प्रसंगमें हे. जिस जीवको यह दृश्य, ब्रह्मवत् समसत्तावाला भासता था उसको ब्रह्मका ज्ञान होनेसे यह दृश्य (जगत) वेसी सत्तावाला नहीं भासता किंतु उससे विलक्षण (बाधरुप) जानपडता हे. ओर जब संस्कारी वृत्ति ब्रह्माकार होती हे, तब दृश्य निवृत्त होजाता हे. उत्थानकालमें जेसे मृगजलके ज्ञान हुयेभी मृगजल बाधितरुपसे भासता हे; आकाशके ज्ञान हुये पीछेभी नीलता बाधितरुपमें भासती हे; ज्ञानवानकोभी स्वप्नसृष्टि भासती हे; ओर शरीरभी भासता हे; वेसे बाध रुप भासता हे. (शं.) ज्ञानसे भ्रम अध्यास–मिथ्याकी निवृत्ति होती हे सत्यकी नहीं. इसलिये ब्रह्मज्ञान पीछे जिसको विलक्षणरुपसे ज्ञान हुवा हे सो ज्ञान ओर विलक्षणत्व सत्य ठेरेगा. (उ.) जेसे स्वप्नमें एसे शंका समाधान हो रहे हों ओर जागने पीछे उनके वास्ते जेसी ख्याति हो वेसाही यहां समझ लीजिये. अर्थात आत्मानुभव पीछे तुर्याका अभ्यास कीजे तो सूत्रोक्त कथनका अनुभव होजायगा. किंवा हम ओर आप नीले पहाडपर जावें तब वहां नीलता बिलकुल नहीं पाते, जब उतरके दूर जावें तब पहाडपर नीलता भासती हे ओर तमाम पहाड नीला भासता हे, परंतु इस नीलता विषे पूर्व अज्ञात समान (पहाड नीला हे एसी) वृत्ति नहीं होती; इसप्रकार अधिष्ठानके ज्ञानसे अध्यस्तकी निवृत्ति होती हे. जो कि अध्यस्त अनिर्वचनीय हे; इसलिये उसकी प्रतीति, निवृत्तिभी अनिर्वचनीय हे; एसा जान्ना चाहिये ॥ ३८१ ॥

पुनर्जन्मकी सिद्धि अर्थापत्तिसे ॥ ३८२ ॥

अर्थ.—जीवका शरीरके साथ संयोग वियोग होता हे याने पूर्वमें हुवाथा,

उत्तरमें होगा, इस विषयकी सिद्धि अ. ३ । २२० से २२४ तककी अर्थापत्तिसे होजाती हे ॥ ३८२ ॥

वहां पूर्वजन्मके अभावका निषेध ओर वर्तमानजन्मकी प्रसिद्ध सिद्धि दिखाई हे, उसकी अर्थापत्तिसे उत्तरजन्मकीभी सिद्धि होजाती हे. मुक्त जीवका पुनर्जन्म होता हे वा नहीं, इसका विवेचन अ. ३ । २२५ से २३३ तककी अर्थापतिसे जाना जासकता हे. पूर्व उत्तरके जन्मकी सिद्धिका बयान भू. में अ. १ गत चिदचिद्में ओर मानसिकयोगके उत्तरार्द्धमें हे. पुनर्जन्म, जडवादि ओर विश्वासी प्रजासे इतर तमाम मानवमंडलको कबूल हे ॥ ३८२ ॥

जीवात्मा स्वज्ञेयसे भिन्न ॥ ३८३ ॥

अर्थ.—जीवात्मा स्वज्ञेय याने शरीर, मगज, इंद्रियोंसे ओर शब्दादि विषयोंसे जुदा पदार्थ हे; अ. ३ सू. २०९ । २९७ की अर्थापत्तिसे एसा सिद्ध होजाता हे. यह मंतव्य प्रकृतिवादिओंसे इतर सबको संमत हे ॥ ३८३ ॥

—:०:—

कर्मफलवाद (बीज–अवतरण–अदृष्ट)

कर्मफल, दर्शनसे ॥ ३८४ ॥

अर्थ.—जीवोंके किये हुये कर्मोका फल होता हे–जीवोंको यथाकर्म फल मिलता हे, यह बात देखनेसे सिद्ध हे. यह पक्ष तमाम पक्षकारोंको संमत हे ॥ ३८४ ॥

वि.—पूर्वजन्मके माने विनाभी वर्तमानमें कर्मफल होना–यथाकर्म फल मिलना सबको अनुभवगम्य हे. दान ओर हिंसा तथा चोरीका फल देखते हें. माता पिताके दूषण (रोगादि) ओर भूषण (गुण) संतानमें उतरते हें. आजके किये कर्म (खानपान, दान, चोरी, नोकरी, खेती, व्यापारादि)का कितनेक दिनके पीछे परिणाम (फल) आता हे. सीखी हुई भाषाका कालांतरमें उपयोग होता हे. इन उदाहरणोंसे प्रारब्ध (जिस किये हुयेका फल मिल रहा हो), संचित (जिस किये हुयेका फल मिलना हे) कर्मोके विभागका भान होजाता हे ॥ ३८४ ॥

अब आगे पूर्वजन्मके कर्मोके फलकी सिद्धि दिखाते हें.—

ओर बीज अवतरण तथा अदृष्टकी आपत्तिसे ॥ ३८५ ॥

अर्थ.—ओर बीज (वृक्षका मूल–प्राणीके शरीररुपी वृक्षका मूल–क्रमी), अवतरण (मातापितादिकी आकृति ओर गुणकी प्राप्ति ओर आवागमन याने प्राणीका शरीरमें उतरना) तथा अदृष्ट (गोचर न हो एसे शुभाशुभ फल होनेमें

निमित्त जो पुंज उनकी उत्पत्ति) की आपत्ति हे, इसलियेभी कर्मफल मिलनेकी सिद्धि होती हे ॥ ३८५ ॥

कर्मफल पद्धति.

विवेचन—धर्म फिलोसोफी विषे कर्म थीयरीमें बीज, अवतरण ओर अदृष्ट इन तीनकी समझन होना जरुरी बात हे; क्योंकि इनपर धर्मके नियम बंधते हें; अत:तीनोंका संक्षेपमें विचार दरसाते हें.—

इसप्रसंगमें उपादान वा शरीररुपी वृक्षके मूलका नाम **बीज** हे. जेसे के वृक्षका मूल बीज हे, ओर रजवीर्यगत कृमि बीज हे. ओर संतानमें बीजके शरीरके अनुसारभी आकृति ओर गुण उतरते (होते) आते हें तथा कृमि (जीव) को शरीरमें आना-उतरना पडता हे, इन स्थितिका नाम **अवतरण** हे ओर मूल बीजके विकासमें कृति, विचार, दर्शन श्रवणादि होनेसे तथा संबंध पानेसे कुछ अदृष्ट (फॉर्म) पेदा होते हें जो भविष्यमें कर्मफलके याने दु:ख सुख मिलनेके निमित्त होते हें (जिनको पाप पुण्यरुप कृतिका फल कहते हें) उनका नाम यहां **अदृष्ट** हे. वृक्ष, शरीर, माता, पिता, नर, मादा, यह; पृथ्वीकागर्भ, जलकागर्भ, माताकागर्भ, यह; ओर बीज, वीर्यगत कृमी, रजगत कृमि यह; यहां रुपक शब्द हें. चित्त यह अंत:करण-मन-बुद्धि-अहंकार, चित्त ओर सूक्ष्म शरीरका उपलक्षित हे. जीवविशिष्ट जीवके पड (कोश) का नाम प्लॅटभी कहाजायगा, जिसमें अंत:करण शामिल हे.

वनस्पतिके बीजमें ३ पक्ष हें. (१) बीज स्वरुपसे नहीं किंतु गिलो (अमृता) समान प्रवाहसे अनादि अनंत हें, प्रलयकालमेंभी वे नाबूद नहीं होते. (२) बीज स्वाभाविक बनते बनते--अमुक फॉर्म (रसायणीयमिश्रण) में आते हें ओर उनमें देशकाल, परस्थितिवश न्यूनाधिकता होके रुपांतर होता रहता हे ओर महाप्रलयमें सर्वथा नाश होजाते हें ओर हिमादिकी प्रलयमें कहीं होते हें ओर कहीं नाश होजाते हें. (३) मूल बीज किसी सर्वज्ञ चतुरा शक्ति (ईश्वर) से प्रयोजित होते हें, सृष्टिके आरंभकालमें अमुक निमित्तको लेके बनाये जाते हें, फेर उनकी परंपरा चलती हे, वे नहीं बदलते ओर महाप्रलयमें सब बीज नष्ट होजाते हें. इसप्रकार सादिसांत हें.

बीज संबंधि विचारका यहां प्रयोजन नहीं हे परंतु पुनर्जन्मवादि जीवको वनस्पतिमेंभी उतरना मानते हें, इसलिये कुछ संक्षेपमें लिखते हें.—

बीज, परिस्थितिके कारण शनैः शनैः (हजोंरा लाखों वर्षोंमें) एसी योग्यता-वाला होजाता हे वा उसमें अनादिसे एसी योग्यता हे अथवा किसी अगम्यशक्तिने उसको एसे रसायणीयमिश्रणमें योजदिया हे कि जब उसके योग्य उसको गर्भका संबंध हो तब उसका गर्भ पसरे ओर वरालादि कारण वश, संबंधि—दूसरे परमाणु खिंचके उसके अनुरुप परिणामको पातेजायें ओर बीजभी संबंधि (समीपवर्ति) परमाणुओंको खेंचता जाय ओर खिंचे हुये उसके अनुरुप होते जावें. जेसे नमककी खानमें जो पुंज जुडजाय वोह नमकरुप होजाता हे, एवं संबंध पाये हुये परमाणु बीजमें जेसी आकृति, जेसी रचना ओर जेसे गुण होते हें उसीके अनुसार उनका रसायणीयपरिणाम होताजाता हे. यही उसकी वृद्धि हे--कुछ नीचेको बढता हे ओर बाकी उपरको बढता हे; जल, वायु, गरमी, रोशनी वगेरेसे जीता हे. इसप्रकार डाली, विचित्र--नियमित पत्ते, फूल ओर फल होते हें, इस उत्पत्ति वृद्धिकी सामग्रीमें सब सजातीयपरमाणु आनके मिले हों एसा नहीं हे किंतु रसायणीयमिश्रण होनेसे स्पष्ट होता हे कि विजातीयोंकाभी मिश्रण हे. अर्थात रचना परिणाम पानेमें स्नेहाकर्षणही कारण नहीं हे किंतु अनेक कारण हें.

एकका विचार हे कि मूल बीजका जब सर्वथा मर्दन होजाय तबसे वृक्षकी वृद्धि बंद पडजाती हे—कुछभी होगा, परंतु बीजवाला रसायणीयसंयोग ओर तद्गत योग्यता उसके वृक्षमें पसरित होती हे, इसलिये अंतमें वेसाही एक वा वेसेही अनेक बीज होजाते हें. यह बीज मूल बीज नहीं हे किंतु उसका तो विभाग हो चुका (नाश होगया) तथापि वही रुप रचना ओर योग्यता उसकी संतान (बीजों) में योजाय गई हें. बीज नर ओर मादारुपवालेभी होते हें, एसा होनेकी योग्यताभी बीज ओर गर्भमें हे. डाली लगना, गांठ लगना, वा डाढीसे उग जाना--इत्यादि प्रकारका समावेश उक्त प्रकारमें होजाता हे. इस प्रसंगमें बीजगत जो आकृति, रचना ओर गुण हें उनके अनुसार रसायणीयसंयोग बन जाना यह **अवतरण** हे ओर पूर्व तथा उत्तरवाले अंश मिलके एसा रसायणीयमिश्रण बने कि जिसका परिणाम फूल फल हो यह उसमें **अदृष्ट** हे.

यदि उपरोक्त सामान्य रीति—प्रकार हो तो उक्त तीनों पक्षोंकी तकरारमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि बीजमें एसी अद्भुत योग्यता हे-अर्थात गति होना, अन्यका खिंचना, उनका अनुरुपमें आना, वृद्धि होना अमुक प्रकारसे परवरश पाना, विचित्र पत्ते--फूल सनियम बनना, नरमादा साथ वा जुदा बने रहना ओर

अंतमें पूर्ववत बीज बन जाना—यह सब अद्भूत रचना, मनुष्यकी बुद्धिको चकित करके आश्चर्यमेंही रखती हें. इस—वनस्पतिशास्त्रके जान्नेवालोंने वनस्पतियोंके अनेक प्रकार—अनेक नियम--अनेक रचनाके प्रकार ओर उपयोगोंका शोध किया हे, तथापि उसके मूल बीज ओर अंतिम बीजके भेदको अभीतक नहीं पासके हें किंतु उनकोभी अनिर्वचनीय कहके चुप होना पडा हे[१]

बीजोंमें जीवका आगमन (अवतरण) होता हे वा नहीं? ओर यदि होता हो तो कब, कहां, ओर किस प्रकारसे होता हे ओर वृक्षके किस अंगमें केसे रहता हे, उसकी केसी स्थिति होती होगी, उसपर वृक्ष व्यापारका केसे--क्या ओर कितना असर होता होगा; इत्यादि बाबतें अभीतक यथायोग्य जान्नेमें नहीं आई हें, परंतु मनु वगेरे आर्य ऋषि मुनि याने वेदधर्म, जैन, बौद्ध, थीओसोफीधर्म, एसा स्वीकारते हें कि जीवको अमुक कर्मके परिणाममें स्थावर--भोग्ययोनी याने वनस्पतिमेंभी जन्म लेना पडता हे ओर वर्तमानमें बंगाली बाबु सर जगदीशचरण बोझने यूरोप ओर अमेरीकामें जाके प्रयोग द्वारा यह बता दिया हे कि वनस्पति पर प्राणियों समान असर (फीलंग—मूर्छा वगेरे) ओर रोग होते हें तथा उनका उपाय होता हे. उसके प्रत्यक्ष प्रयोग देखके यूरोप ओर अमेरीकाके विद्वान फिलोसोफर चकित होगये हें, जडवादियोंको विचार होपडा हे. ओर भ्रमनाशक पूर्वार्द्धमें यह साबित किया गया हे कि वनस्पतीमें कुछ समझभी हे.

जब यूं हो तो कहसकते हें कि उसगत जीवका स्थूल पड बीज हे ओर सूक्ष्म पड वक्ष्यमाण प्लॅंट (चित्त) हे ओर जो अवतरण तथा अदृष्ट कहा हे उसका असर चित्त (सूक्ष्म शरीर) पर होना चाहिये; यही उस जीवके अदृष्ट तथा फल भोग हें, उसको किसी अदृष्ट (कर्मजन्य अदृष्ट)के फलमें स्थावर रुपमें भोग्ययोनी भोगनी पडती हे. (शं.) बीज, डाली ओर गांठसेभी वृक्ष लगते बढते, फूल फल होते हें तो फेर तुम्हारा माना हुवा जीव किस किसमें ओर कहां

[१]कनेर, गुलाब, वेल, वृक्षका परिस्थितिवश (मूल थडमें अन्य सामग्री डालनां) कुछरुप बदल होजाता हे; इसलिये संभव हे कि जो हजारों वर्षतक परिस्थिति बदलती रहें तो बीजका दूसरे प्रकारका फॉर्म होजाय; क्योंकि त्रिगुणात्मक प्रकृतिके नाना परिणाम होनेसे एसा संभव हे. परंतु अभीतक तो यह अनुमान कल्पनामात्र हे, ओर इसीप्रकार उक्त तीनों पक्षों वास्ते सिद्धि असिद्धि होसकती हे. वस्तुतः तो यूं हे कि अभीतक मनुष्य इस भेदको यथावत नहीं जानसका हे.

कहां मानोगे. (उ.) गूलरके फलमें अनेक जीव होजाते हें, मनुष्यके शरीरमें मुख्य जीव एक जघे हे परंतु दूसरे अनेक कृमिभी बदनमें होते हें, एसे वहांभी होना संभव हे. वीर्यमें मनुष्य उत्पादक अनेक कृमि (जीव) होते हें, परंतु जो गर्भ (अंड) में आजाता हे उसीपर शरीर बनता हे, सब पर नहीं बनता; इसलिये उक्त शंका व्यर्थ हे.

हां, वनस्पतिगत जीवकी प्राणीके जीव जेसी स्थिति नहीं होना चाहिये, क्योंकि वेसे साधन नहीं हें; तथापि यथासाधन सहज भोग तो होनाही चाहिये, यह उपर कहे अनुसार प्रयोग सिद्धभी हे.

अब प्राणिके कर्मफलका विचार करते हें. उसमेंसे मनुष्यके कर्मफलका विचार होनेसे अन्यकाभी होजाता हे. जीव शरीरसे भिन्न वस्तु नहीं, इस मंतव्यानुसार जीवके प्रारब्ध, संचित ओर क्रियमाणका फल उपरके सूत्रमें कहागया हे. अब जीव शरीरसे भिन्न हे ओर उसको पूर्व उत्तर जन्ममेंभी कर्मका फल मिलता हे, इसका विचार करते हें. तहां जीवमें पक्ष हें.—

(क.) जीव तत्वरुप अनादि एक पदार्थ हे जो चेतन (ज्ञान दर्शनवाला) हे. उसके साथ चित्त (सत्वरज तमामत्मक प्रकृतिका अमुक भाग) का संबंधभी अनादिसे हे. उस संबंधके कारणका आरंभ नहीं हे. उभय तादात्म्य रुपसे रहते हें. चित्त यह जीवका पड (कोष) हे. इस उभयरुप कूमी (चित्त विशिष्ट जीव वा जीव विशिष्ट चित्त) को यथाकर्म—यथाफोर्स फल भोगना पडता हे. ओर यथाकर्म-यथाफोर्स वनस्पति, पशु, पक्षी, तिर्यक वगेरे योनीमें उसका आवागमन (जन्म मरण) होता हे; क्योंकि यथाकर्म, यथाभावना, यथाविस्तार अदृष्ट बनते हें, उनके अनुसार फल (दुःख सुख) होता हे ओर उनका फल होनेपर वे अदृष्ट नष्ट होजाते हें. मातापिताके शरीरकी जेसी आकृतिभी उसके शरीरकी आकृति होती हे, तथा मातापिताके जेसे गुणभी उसमें उत्पन्न होते हें; परंतु मातापिताकी तमाम आकृति ओर तमाम गुणोंका उसमें अवतरण हो, एसा नियम नहीं हे, किंतु परिस्थिति ओर पूर्व अदृष्टके कारण दूसरे प्रकारकी आकृति ओर गुणभी होते हें. जब जीवको कामना-वासना नहीं होती तब चित्तका संबंध न होनेसे जीव स्वस्वरुपमें स्थित याने मोक्ष होजाता हे. एक पक्ष एसा मानता हे के मोक्षसे आवृत्ति होती हे अर्थात पुनः चितका संबंध होके पूर्ववत आवागमन होता हे. इस क तत्वपक्षमेंभी दो प्रकारकी कल्पना हें. (१) जीव अणुचेतन, अपरिणामी ओर

भावात्मक[१] शक्तिवाला हे. (२) जीव चेतन्य मध्यमपरिमाणवाला परिणामी हे ओर भावात्मक[१] परिणामको पाता हे.

(ख.) जीवचेतन हे, ईश्वरकृत सादि हे, परिच्छिन्न हे, ईश्वरने उसको अमुक योग्यतावाला बनाया हे ओर अपनी इच्छासे मातापिताके रजवीर्यद्वारा उसको शरीरमें भेजता हे. इस जन्मके सिवाय उसको पूर्व उतरका जन्म नहीं होता. मातापिताकीभी आकृति ओर गुणोंका अवतरण होता हे. यथाकर्म, अदृष्ट बंधते हें. शरीरके मरने पीछे कहीं पडा रहता हे. महाप्रलय (कयामत) होनेपर उसके शुभाशुभ कर्मका हिसाब होके हमेशेके लिये स्वर्ग वा नरक मिलेगा.

(ग.) जीव तत्व नहीं हे किंतु मातापिताके रजवीर्यका परिणाम अर्थात कंपोंड (अतत्व) रुप हे, सादिसांत हे. उसके शरीरमें मातापिताकेभी आकृति ओर गुण होते हें. जीवन पर्यंत यथाकर्म, यथाफोर्स ओर यथासंबंध कर्मका फल भोगता हे. शरीरके नाशके साथही उसका नाश होजाता हे (अ. १ अचिद्वाद यादमें लीजे)

(घ) चेतनकण (प्रोटोपलाजम) नामका मध्यम (कंपोंड) पदार्थ स्वभावतः बनता हे (जलमें होता हे) इसपर मातापिताकी आकृति ओर गुण उतरते हें. शरीरके नाश होनेसे उसकाभी नाश होजाता हे (अ. १ विकासवाद यादमें लीजे)

(ङ) विभुचेतन एक अद्वितीय हे. प्रकृतिका अमुक अंश (शुद्ध सत्व) तद्विशिष्ट होता हे सो विशिष्ट जीव हे. अर्थात चित उपाधिविशिष्ट चेतन वा चेतनविशिष्ट उपाधि (अंतःकरण) की जीव संज्ञा हे. सो उपाधि प्रवाहसे (गिलो समान) अनादिअनंत हे, इसलिये जीव प्रवाहसे अनादिअनंत हे. ओर उभयका संबंधभी प्रवाहसे अनादिअनंत हे. उभय अनिर्वचनीय--तादात्म्यसंबंधवाले हें. चित्त मध्यम--परिणामी हे, कम ज्यादे होता हुवा रुपांतरको पाता रहता हे, जीवको यथाकर्म, यथाफोर्स, यथास्थिति, फल होता रहता हे ओर यथा कर्म, यथाफोर्स, यथापरिस्थिति, वनस्पति-पशु-पक्षी-तिर्यक वगेरे योनिओंमें आवागमन करना पडता हे; क्योंकि मध्यम भागमें यथाभावना, यथाविचार ओर यथाकर्म अदृष्ट बनते हें उस अनुसार फल होता हे. मातापिताके शरीर जेसी

---

[१]भावनामात्रसे कर्ताभोक्ता हो उसे भावशक्ति वा भावपरिणाम कहते हें. अर्थात त्याग ग्रहण वा परिणाम पाये विना कर्ता--भोक्तापनेका भाव होजाना अकथ्य बात हे. वा तत्त्व, जो परके धर्म अपनेमें मानले तो उसकोभी भाव परिणाम कहते हें.

आकृति ओर गुणभी संपादन होते हैं. परंतु तमाम आकृति वा गुण मातापिताके जेसेही हों, एसा नियम नहीं हे; किंतु परिस्थिति ओर पूर्व अदृष्टके कारणसे दूसरे प्रकारकीभी आकृति ओर गुण होते हैं. कामना वासनाके अभाव हुये वोह चिद्ग्रंथी नहीं रहती ओर जन्ममें नहीं आती याने मोक्ष होजाती हे. चित्तके अंशोंका अन्यत्र उपयोग होता हे.

(च.) नं. ङ गत जो उपाधि सो सादिसांत हे. प्रवाहसे उत्पन्न ओर नाश होती रहती हे. मध्य-याने विद्यमानकालमें ङ अनुसार आवागमनमें रहती हे ओर उसीअनुसार आकृति गुण ओर अदृष्ट होते हैं. अंतमें उसका अभाव होजाता हे. इसपक्षमें अणुअणुमें जीवचेतन हे. अर्थात जब प्रकृतिका चित्त नामा भाग बनके वहांही यथासाधन सामग्री जीव व्यवहार होने लगजाता हे, क्योंकि चेतन व्यापक-सर्वत्र हे.

(छ.) जीव नामा पदार्थ दीपककी लो समान क्षणिक हे. किंवा कनक कुंडल बीटी समान क्षणिक परिणामी हे. (बौद्ध पक्ष यादमें लीजे).

(ज.) जीव यह ईश्वरका अंश हे (अग्निकी चिंगारी समान, वा घटाकाश महाकाश समान अंश हे). बंध मोक्षको पाता हे.

(झ.) जीव नाना विभु हैं. हरेक जीव चितद्वारा कर्ताभोक्ता होता हे.--बंध मोक्षको पाता हे.

(ञ.) जीव वस्तु नहीं हे, भ्रांतिसे जीवत्व बंधमोक्ष वगेरे जानपडते हैं.

यद्यपि उपरोक्त तमाम पक्ष उपर कहे गये हैं. तथापि प्रस्तुत विषय यहां उनपक्षोंके जनाये विना समझमें नहीं आसकता, इसलिये पुनरुक्तिकी हे. क. वगेरे मुख्य पक्ष हैं. अवांतर अनेक पक्ष हैं, व्यर्थ जानके नहीं लिखे हैं. तथाहि यहां जीवका स्वरुप क्या, इस निर्णय वा निश्चयमें प्रयोजन नहीं हे, क्योंकि सब पक्षोंमें दोष आता हे, यह उपर जान चुके हो ओर आगे जानोगे, तथापि जीवको केसाभी मानो परंतु कर्मका फलतो होताही हे, इतने अंशमेंही यहां दृष्टि हे.

अब प्रस्तुत विषयके उपयोगमें आनेवाले कितनेक दाखले लिखते हें.—

जेसे किरणें टकराके केमेरेकी प्लेटपर चिमटके प्रतिबिंब करती हें वेसे अमुक प्रकारके बाह्य परमाणु चित्तरुपी प्लेटपर काम करते हैं. जेसे किसी योगी भव्य पुरुषके पास जावें तहां उसके शरीरके चारों तरफके परमाणु उत्तम परिणामको पाये हुये होते हैं, क्योंकि उसकी ओरा—प्रभाव ओर उसके पवित्र विचारकी असरसे वे शुद्ध

परिणामको धारते हें ओर वे आनेवालेके चित्तके साथ ईथर द्वारा वा प्राण द्वारा संबंध पातेरहते हें; उससे आनेवालेके चित्तको शांति-सुख होता हे. याने उसके संबंधसे चित्तके अमुक भागका किंवा तमामका शांति-सुख परिणाम होता हे ओर संभव हे के उन परमाणुओंका भाग चित्तमें शामिलभी होजाय. ओर उक्त शांत अभ्यासका वा उन परमाणुके मिश्रणका उपयोग यथाप्रसंग पुनःभी हो. ओर उसी समय चित्तके निकृष्ट अभ्यासकी कमी होजाय तथा उसके निकृष्ट परमाणुका अमुक भाग वियोगको पाजाय. इसीप्रकार ज्यादे दुष्ट क्रूरके पास जानेसे उपरोक्तसे उलटा परिणाम आता हे. यह उभय प्रकारकी स्थिति दोनोंके चित्तके बलाबलपर आधार रखती हे. इसीप्रकार चित्तरुपी प्लेटपर संग संबंधसे अभ्यासकी न्यूनता अधिकता ओर उत्तम मध्यम अदृष्टोंकी न्यूनता अधिकता होते रहनेकी संभावना हे. जेसे थंबे वा तारकेविना विजली, वायु, ईथरके द्वारा समाचार जाते हें ,उनकी लहरें तारपेटीपर असर करती हें, वेसेही एक दूसरे संबंधियोंके विचार ईथर द्वारा अज्ञात रुपसे असर करते हें. जेसे ईथर द्वारा प्रकाश, किरणें, रंग, विजली एक जघेसे दूसरी जघे पहोंचके वहांके पदार्थके साथ जुडके उपयोगमें आते हें; वेसेही चित्तोंके विचारसे जन्य जो आकृति (परमाणुओंका अमुक पुंज-आकार जो हिरण्यगर्भमें होता हे. शेषाका प्रसंग याद कीजे) सो ईथर द्वारा संबंधि चित्तपर पहोंचके असर करती हें ओर उपयोगमें आती हें जिनकी हमको खबरभी नहीं होती, उनको कोई शुद्ध योगीही जानसकता होगा. ओर संबंधि परही असर करें इतनाही नहीं हे किंतु जो मार्गमें किसी अन्य चित्तके साथ संबंध होजाय अर्थात दोनोंका संबंध होसके एसा हो तो वहांभी असर करती हें. जेसे कनक कुंडलादिरुप परिणामको पाके पुनः कनक होजाता हे, वेसे जीव रागादिरुप परिणामको पाके पुनः स्वस्वरुप होजाता हे. जेसे लालकाचके संबंधसे आकाश लाल ओर आसमानी काचके संबंधसे प्रकाश आसमानी जान पडता हे; अजानको वेसाही उनमें भाव होता हे; किंवा जेसे दारु पीये हुये ब्राह्मणको अपनेमें शूद्रभाव उत्पन्न होजाता हे ओर पवित्र पितामें शत्रु चांडालभाव होजाता हे; वेसेही चित्तके संबंधसे जीवमें अन्यथा (चित्तके धर्म) भाव होजाते हें.

(क.)—अब उक्त पक्षोंमेंसे प्रथम क पक्षानुसार[१] बीज वगेरे तीनों विष-

[१]त्रिवाद ओर जैन पक्ष. नाना भाव रुप होना, वा भाव परिणाम होना वा जीवका रागादि परिणाम धारना, यह जीवके स्वरुप संबंधमें क्या सूचना करते हें

यका विचार दरसाते हैं. जबके जीव तत्व हे तो उसमें कोइभी प्रकारकी योग्यता (गुण-शक्ति) हो यह स्पष्टही हे. उपरोक्त क पक्षमें २ भावना हैं.—

(१) राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, दुःख, सुख, संस्कार, बुद्धि (ज्ञानवृत्ति) यह सब अभ्यसित चित्तके परिणाम हैं. उनको जीव अपनेमें मान लेता हे. याने उसके भावमें वा भावनामें[१] रागादिका भाव होजाता हे (इसे भाव परिणामभी[१] कहते हैं). इसलिये बंधादि होते हैं याने बंध (कर्मफल भोग) भी भावरुप होता हे. इस पक्षमें बीज अंतःकरण (चित्त) हे. इसमें जीव अणु ओर मध्यम यह २ पक्ष हैं.

(२) रागादि जीवके गुण वा अवस्था[१] हैं, इसलिये यथाकर्म भोग होता हे. इस पक्षमें जीव अणु नहीं किंतु अनादि, मध्यम, परिणामी मान्ना पडता हे. ओर जीवकोही बीज कहना बनता हे. ओर चित्तको एक प्रकारका साधन वा द्रव्य कर्म मानाजाता हे.

अब क पक्षमें भाव परिणाम ओर अवतरण तथा अदृष्ट केसे होते होंगे, इनका बिचार करेंगे.

(१) जीवकी गति ओर भावनासे मंतव्य होजाना. (२) पूर्व संस्कारादि के अनुसार चित्तके परिणाम होते रहना. (३) शरीरके साथ संबंध पाना. (४) बाह्यांतरके पदार्थोंके साथ संबंध होना-परिस्थितिके संबंधमें आना. (५) अपने विचारोंके अनुसार हिरण्यगर्भमेंसे अदृष्ट आकृति–फॉर्म बनके अपने पर असर करना, वा प्राणद्वारा बाहिर आके उपयोगमें आना अर्थात--(क.) उनका अंतरिक्षमें फिरते रहना ओर नाश होजाना. (ख.) ईश्वरद्वारा दूसरेके तनमनके साथ संबंध पाके उनपर असर होना. (ग.) दूसरेके चित्तमें जुडजाना ओर तब वा कालांतरमें उसका कुछ फल होना. (घ.) उक्त विचार भावना वा कृतिसे जो उक्त फॉर्म हुवा उसके अनुसार कहीं अंतरिक्षमें शरीर बनता जाना जो भविष्यमें विचारकर्ताको मिलना हे. (ङ.) उन फॉर्मोंका चितपर असर करके चलेजाना. (च.) वा अपने चित्तमेंही जुडजाना ओर कालांतरमें उनके अनुसार उपयोग होना. (छ.) दूसरे जीवके उत्तम निकृष्ट विचारजन्य परमाणुओंका चित्तपर असर करना वा चित्तमें जुडजाना ॥ एवं क वगेरे ७ प्रकारको अदृष्ट कहते हैं

[१] सो जीव भावनामें कहा गया हे. यहां तो केवल कर्मफल पक्ष हे, इसीपर ध्यान देना हे.

क्योंकि वे गोचर नहीं होते ॥ (६) शरीर त्यागने पीछे ईश्वर वा देवकी शक्तिद्वारा स्वरचित घ बाला शरीर मिलना. फेर किरण, हवा वगेरेमें होके अन्न, जल प्राणकेद्वारा अपने भोगके योग्य शरीरमें जाके वीर्यमें रहना वहां उसपर यथाचित्त ओर प्राप्त घ शरीरानुसार रचना होना, स्थूलपड चढना, उसपर माता पिताकी वा अन्यकी आकृतिका अवतरण होना ओर पूर्व विद्यमान गुणोंके सिवाय मातापिताके जेसे गुणोंका उतरना-उत्पन्न होना ओर फेर गर्भमेंसे जन्मने पीछे पूर्ववत होना. गुण आकृति कुछ वीर्यस्थ कालमें कुछ रजस्थकालमें ओर फेर मिश्रित हुये गर्भकालमें होते हें. नर मादा रुप शरीरकी आकृति रजवीर्यके मिश्रण हुये पीछे होती हे. (७) किंवा उपर कहे हुये फोर्स संबंध वगेरेसे जिस भाव वा जिस प्रकारका चित्त बना हुवा हे उस जीव विशिष्टको ईश्वरकी शक्तिद्वारा उपरोक्त किरणादिमें होके उपरोक्त अन्नादिद्वारा योग्यशरीरमें रहना पडता हे वहां उसपर यथाचित्त रचना होती हुई स्थूल पडचढता हे. शेष नं. ६ वत जन्मपाके पूर्ववत होता हे. (८) किसी संबंधी परोक्ष व्यक्ति (पितृ वगेरे) के नामसे विचार पूर्वक जो दान पूण्य किया उसकाभी उपर कहे अनुसार हिरण्यगर्भमेंसे अदृष्ट (परमाणु पुंजका फॉर्म) बनता हे सो अदृष्ट (पुण्यफल प्रद) सर्वज्ञ सर्वशक्तिमानकी शक्तिद्वारा उद्दिष्टको मिलता हे उससे उसको सुख फल होता हे (यही कल्पित थीयरी पुण्य पापके फल मिलने ओर प्रयोगद्वारा सूक्ष्मशरीरके बुलानेमें लगाई जाती हे).

उपरोक्त अदृष्ट, योगीभी नहीं जानसकता; कार्यसेही उनका अनुमान होता हे. दुष्ट विचारजन्य सर्प विच्छु जेसी आकृतिवाले फॉर्म ओर सुविचारजन्य सौम्यआकृतिवाले फॉर्म बनते हें (कहते हें कि अब विचारोंके फोटोभी अमेरीकामें लेने लगगये हें).

उपर कहे अनुसार अदृष्ट ओर संस्कार (अभ्यास) पेदा होके अच्छे बुरे कर्मोंका फल मिलता हे.

अब उपरोक्त पक्षके विभाग दिखाते हें. क गत पहेले पक्षमें शुभाशुभ कृति गुण, अवतरण, अदृष्ट ओर दुःख सुखादि यह सब चित्तमें हें, जीव उनको अपना मान लेता हे याने रागादिका भावपरिणाम होता हे. दूसरे पक्षमें सबकुछ जीवको अंतःकरण द्वारा होता हे. यद्यपि जीव भागमें न्यूनाधिकता नहीं होती हे तथापि निमित्त भूत हे, इसलिये उसमें रागादि गुण उत्पन्न होते हें किंवा रागादिरूप

उसकी अवस्था (परिणाम) होती हैं याने बंध मोक्षको पाता हे; क्योंकि इच्छा, प्रयत्न ओर ज्ञान द्वारा निमित्त हे.

उपरोक्त जीवका शरीरोंमें आवागमन होना याने जीवके पूर्व उत्तर जन्मकी सिद्धि अ. १ गत चिदचिद विवेकमें भप.में भू.में ओर अ. ३ सू. २२० वगेरेमें जनाई हे, उसीसे प्रारब्ध, संचित ओर क्रियमाणकी सिद्धि होजाती हे अर्थात जेसे सू. ३८४ में प्रकृतिवादिकी रीतिसे कर्मफलकी (प्रारब्धादिकी) सिद्धि होती हे; वेसेही जीवको जो शरीरसे भिन्न मानते हें उनके सिद्धांतमें प्रारब्धादि कर्म ओर उनका फल होना सिद्ध होता हे ओर इसीप्रकार जीवका अवतरण (पूर्वोत्तर जन्म) ठीक जान पडता हे.

पूर्वोत्तरजन्म याने यथाकर्म जन्म हे तोभी संतानमें मातापिताकीभी आकृति ओर गुण संपादन होना देखते हें यह निर्विवाद बात हे. ओर उनसे इतरभी संस्कारादि (२ । २१) वश पूर्वके ओर नवीनभी होते हें तथा संबंधियोंकी योजनासेभी होते हें, एसाभी देखते हें. अब यह केसे प्राप्त होते हें इतना कहना बाकी हे, सो दृश्यव्याप्ति द्वारा–अनुमानसे कहसकते हें.

आकृति—घोडीके सामने क घोडा खडा करके किसी अश्वके साथ संबंध करावें तो बहुत करके क जेसी संतान होगी. किरणोंका बिंबरुप आकार होजाता हे, ओर उसके स्पर्शसे केमेरेकी प्लेटका मसाला बिंबकी आकृतिवाला होजाता हे याने फोटो होता हे. इसीप्रकार संतानके शरीरकी आकृति बनती हे. याने बीजपर आकृति होती हे ओर उस बीबेपर मेटर चढके संतानका स्थूल शरीर बनता हे.

तहां प्रथम बापके वीर्यमें जो कृमि (मसालेदार प्लेट) होता हे–आये हुये जीवपर जो ग्लेफ चढा हे उसपर पिताकी आकृतिके आकार होने चाहिये. पिता अपनी तसवीर देखता हे वा उसको अपनी आकृतिका भाव चितवनमें आता हे तब किरणें तदाकार होती हें ओर प्लेटपर वेसे आकार होते हें. जहां यह कारणभी न हो वहां (जेसे के अंध मातापिता हो वहां) बीज वृक्षके समान आकृति होती हें. संभव हे कि पिताके प्रिय भावानुसार किसी अन्य छबीका प्रभावभी वीर्यके कृमिपर हो. इसीप्रकार माताके रज गत जो हड्डी विनाके कृमि होते हें उनपर आकार होते हें.

यद्यपि वीर्यमें वेसे अनेक लंबे (सर्प जेसे) कृमि होते हें तद्वत रजमें अनेक गोल कृमि होते हें, तथापि संसर्गकालमें जो वीर्यका कृमि स्त्रीके अंड भागमें प्रवेश

पाके गोल कृमिमें पकडा जावे तो उन दोनोंके मिश्रणपर पुनः कुदरती प्रयोग चलता हे. अर्थात जब गर्भमें दोनों प्लेट मिलती हें तब बलवानमें निर्बल समाजाता हे, उस अनुसार आकृतिके आकार रहते हें, इसप्रकार नरप्लेटके वा मादाप्लेटके आकार होते हें. जेसे दोनों चक्षुमें चंद्रके दो फोटो होते हें अथवा एक आंख रोगी हो तो उसमें चंद्रके तीन चार फोटों बनते हें परंतु वे दोनों वा यह पांचो मगजमें जाके एक होजाते हें. ओर बलिष्ट मगज वा चक्षुके अनुसार होजाते हें; इसीप्रकार उभय कृमि मिलनेपर आकृतियोंका मिश्रण होता हे ओर बलवान मेटर-वाली आकृति विशेष होती हें.

संसर्गकालमें ओर उसके पीछे माताके चित्तपर जिस छबीका विशेष प्रभाव हो उसका असर प्लेटपर उपर कहे अनुसार होता हे उसपर गर्भका पड चढता हे. जब वोह पुखता होजाता हे तब याने ६ महीने पीछे बाहिरके आकारोंकी आकृति उसपर असर नहीं करसकती, इसलिये उक्त आकृतिवाला शरीर जन्मता हे. चूंके जन्म पातेही कोमल अंग होते हें, इसलिये यदि दाई उस समय जो कुछ फेरफार कर दे तो आकृतिमें कुछ फेरफार होभी जाता हे. शरीरकी कफ, पित्त, वायुवाली प्रकृति हे वा क्या, इसका आधार विशेषतः मातापिताकी खूराकपर रहता हे ओर वीर्य बलवान तो नरकी ओर रज बलवान तो मादेकी आकृति होती हे; क्योंकि उनमें मातापिताके बलवान संस्कारोंकी आकृति होचुकी हें.

जोकि शरीरमें आई हुई प्लेट (कृमी) में पूर्व अभ्यासित अभ्यास (टेव) ओर न्यूनाधिक होते हुये प्रकृतिके अमुक परमाणुओंका पुंज था याने सूक्ष्म पड एसा था कि जिसमें शब्दादि पंच विषयके आकार होके ग्रहण करनेकी तथा रागादि रुप परिणाम पानेकी तथा इम्प्रेशन होनेकी योग्यता थी ओर उसमें अदृष्ट (पाप पुण्य जन्य दुःख सुखरुप फल मिलनेके हेतु जो अगोचर परमाणु पुंज) भी थे; तथापि उनके उपयोगके साधन रजवीर्यके संबंधसे मिलते हें अर्थात उपयोग स्थूल शरीरमें वा तद्द्वारा होता हे. वे साधन मगजगत स्मृति वगेरेके सेंटर (कोष) ओर ज्ञान तंतु वगेरे हें.

उक्त आकृति ओर साधन (इंद्रिय-गोलक) मातापितादिके जेसेही हों एसा नहीं हे किंतु चित्तके पूर्व अभ्यास ओर शक्ति अनुसारभी उसके पडमें आकृति ओर साधन बनते हें, क्योंकि वोह बीबा हे. परंतु आकृति वा साधन पूर्वके कोन,

उत्तरके कोन ओर परद्वारा नवीन कोनसे हैं, इनका निर्णय होना मनुष्यकी बुद्धिसे बाहिर हे.

गुण.—गुण अवतरणके संबंधमें एसा जान पडता हे.— " जेसे के जब मातापिताको क्रोध होता हे तब उनकी मुखमुद्रा ओर प्रकारकी होजाती हे, जब दया वा प्रेम वा साम्यभाव होता हे तब उनकी मुख मुद्रा दूसरे प्रकारकी होजाती हे याने चित्तके उत्तम मध्यम परिणामोंका असर स्थूल शरीरपर होता हे, ओर स्थूल शरीरमें जब कुछ विकार हो तब चित्तका परिणाम ओर प्रकारका होजाता हे. याने चितपर स्थूलका असर होता हे–वेसा उसका अभ्यास होजाता हे. जेसे प्रकाश दर्शनसे बालकके चितपर गुप्त प्रभाव होता हे; जब उसके सामने बापा बापा कहें तब कानद्वारा शब्दकी ध्वनि ओर नेत्रद्वारा ओष्टकी आकृति होके उसके चित्तपर अथडाती हें; एसे हुये बालकके चित्तपर उसी अनुसार प्रभाव ओर चेष्टा होती हे, जो योग्य साधन न होनेसे जाहिरमें नहीं आती. "

इसीप्रकार वीर्य ओर रजके कृमियोंपर मातापिताके चित्तके प्रभाओंका याने शुभ अशुभ विकारोंका प्रभाव-असर-वा अभ्यास प्लेट (जीवविशिष्ट चित्त) पर होता रहता हे. चित्तके प्रभाव अनुसार प्रकृतिके नवीन परमाणुभी चित्तमें शामिल होते हे, उस अनुसार प्लेटमें अभ्यास होताजाता हे, इस नवीन शामिल होनेका फेसला करना मुशकिल हे, क्योंकि जो एसा होता हो तो लाखों किरोडों विचार ओर प्रभावके अणु मिलनेसे प्लेट स्थूल ओर द्रश्य होने योग्य होजाय; परंतु एसा आजतक नही हुवा; इसलिये अनुमानसे एसा मान्नेमें आता हे कि प्लेटपर गुणोंके अनुसार अभ्यास होजाता हे याने जिसे रागादि गुण एसा कहाजाता हे वे प्लेटके परिणाम--अभ्यास हें, नहीं कि आकृति समान इनके पड चढते हों. इन्ही अवस्थाओंका नाम संस्कार–भावना–वासना–कामना–इच्छा वगेरे हें. यह अभ्यास मातापिताके संबंध होनेसे पूर्वकी प्लेटमेंभी होता हे ओर जन्म पानेके पीछेभी संग संबंधसेभी होता हे. निमित्त प्राप्त होनेपर वा चित्तका चंचल स्वभाव हे इसलिये, वोह अभ्यास आविर्भाव तिरोभावको प्राप्त होता रहता हे ओर उन गुणोंके अनुसार शरीरादिका उपयोग होता हे ओर खानपानादिकी असर यामे शरीरके संबंधसे उनके उपयोगमें कमी बेशी होती रहती हे. ओर विचारोंके प्रभावसे नवीन गुण (अभ्यास) भी होते रहते हें. (शं.) मातापिताके संबंधसे पूर्व प्लेटमें कितने गुण थे ओर वे उत्तर उत्तरमें रहते हें वा नष्टभी होते हें ओर इतने प्रका-

रका अभ्यास एकमें केसे होसकता हे? (उ.) जेसे भाषाके पद सीखते, भूलते, पुनः नवीन सीखते भूलते हें; इसीप्रकार प्लेटमें होता रहता हे. सबही रहते आते हों वा नहीं होते हों एसा नहीं हे. सजातीय विजातीयजन्य एक मध्यममें अनेक अभ्यास होनेकी संभावना हे, क्योंकि यह विचित्र अद्भूत प्लेट हे. अभीतक मनुष्य इसकी रचना वा योग्यता जान्नेमें असमर्थ हे.

उपर कहे अनुसार मिश्रण ओर गडबड होजानेसे गुणोंका रुपभी विलक्षण होजाता हे. यह नहीं कहा जासकता कि कोनसा गुण पूर्वका हे, कोनसा माता-पितासे मिला हे, ओर कोनसा नवीन हुवा हे, ओर कोनसा पूर्वका था जो मंद पडगया वा नष्ट होगया हे. यद्यपि मातापिता, विद्वान वा योगी हों तो कुछ विवेक (पृथक्करण) करते हें तथापि संपूर्ण विवेक होना असंभव जेसा हे. इसप्रकार संतान गुणवाली होती हें. यदि गुणोंको वस्तु मानें ओर अवस्था न मानें तो उपर कहे अनुसार स्थूल रुप होनेका दोष आता हे. तथा स्वरुपाप्रवेश प्रसंगमें कहे अनुसार गुण गुणीके संबंध ओर स्थितिका निर्णय नही होगा.

सुन्नत, कान छेदन, चीनीस्त्रीके छोटे पेर, तेरना, शब्दसंकेतका प्रभाव इत्यादि बहोत विषय (आकृति-गुण) मातापिताके नहींभी उतरते (अ. १ विकासवाद यादमें लीजे), बतखके अंडेको मुरगीके अंडेके साथ रख दें; फूटनेपर बतखका बच्चा निर्भय हुवा पानीमें जाके तिरने लगेगा, मुरगीका बच्चा नहीं जायगा. इत्यादि कारणोंको शोधें तो पूर्वजन्मके संस्कार-गुण सिद्ध होंगे ओर अदृष्ट मान्ना पडेगा. यहांतक संक्षेपमें अवतरण (आकृति, गुण) का बयान हुवा.

अब अदृष्ट अंशका विचार करें।—उपरोक्त नं. ५ गत क. ख. वगेरे ७ प्रकारका समावेश अद्रष्ट पदमें होजाता हे.

जीवके संकल्प विकल्प—विचारोंके अनुसार हिरण्यगर्भमें कोई प्रकारका फॉर्म (आकृति)-परिणाम बनता हो यह बात स्वप्नसृष्टिके दर्शनसे स्पष्ट होजाती हे, क्योंकि स्वप्नमें संस्कारी जीवके संस्कार (स्फुरण) अनुसार हिरण्यगर्भमें शब्दादि विषय ओर सूर्यादि आकृति बनती हें. जेसे विधेय दूसरेके संकल्प वांचलेता हे ओर दूरस्थ पदार्थको स्वाद सहित जानलेता हे, क्योंकि ईथर (हिरण्यगर्भ) में उसका आकार बनता हे; जेसे प्रकाश वा तारपेटीका खटका वा विजली वा शब्द ईथरद्वारा एक जघेसे दूसरी जघे पहोंचते हें; जेसे योगीके पास जावें तो उसकी

उत्तम ओराका प्रभाव जानेवालेके चित्तपर उत्तम असर करता हे याने चित्तका अभ्यास वा परिणाम अन्य प्रकारका होजाता हे. जेसे भाषण सुन्नेसे चित्तके परिणाममें फेरफार होजाता हे.

इसीप्रकार संकल्पोंसे शरीरके अंदर कोई प्रकारका फॉर्म ईथरमें बनता हे. ओर वोह प्राण द्वारा बाहिर आके ईथरमें गमन करता हे, अंदर बाहिर उसका कुछ परिणामभी हो वा नाशही होजावे, यह दोनों प्रकार मानसकते हें.

ईथरमें ईथर द्वारा सबका परंपरा संबंध हे, इसलिये मुमकिन हे के उस फॉर्मका जहां असर होसकता हो वहां यदि संबंध होजाय तो उसका कुछ उपयोग हो अर्थात किसीके तन मनपर उसका असर हो. वा उसका भाग दूसरेके चित्तमें जुडजाय ओर कालांतरमें उस अनुसार कुछ परिणाम निकले. किंवा वही फॉर्म अपनेही चित्तमें जुडजाके कालांतरमें किसी फलका निमित्त हो. किंवा जिसको उद्देशके वोह संकल्प किया गया हे, उसके साथ यदि उसका संबंध होजाय तो उसको कुछ फल होनेका निमित्त बनजाय॥ इन विचारोंका एकही फॉर्म (आकृति) बने वा अमुक प्रकारका बने, यह संकल्प कर्ताकी इखतियारी बात नहीं हे किंतु जेसे बिंबका प्रतिबिंब सब तरफ उठता हे ओर यथाउपाधिभी रुप धारलेता हे, वेसेही हिरण्यगर्भरुप दरियामें उसके उस विचार अनुसार अनेक ओर नाना प्रकारकी लहरेंभी हों, ओर उनमेंसे नष्ट भी होजावें ओर दूसरोंसे संबंध पाके उनका कुछ उपयोगभी हो—याने उनके संबंध पानेसे कुछ परिणाम निकले. (शं.) जो एसे फॉर्म चित्तमें एकत्र होते हों तो नित्यके संबंधियोंके चित्त स्थूल होजानेसे वे दृश्य होने चाहिये परंतु एसा भार चित्तमेंभी नहीं जान पडता. (उ.) वे अति सूक्ष्म होनेसे अदृष्ट रहते हें, वे देशको नहीं रोकते, इसवास्ते देशकी अमुक बिंदुमें असंख्य रहसकते हें. वे अंतःकरण समान मूर्त्त नहीं हें अतः गोचर नहीं होते, योगियोंकोभी उनको जानना मुशकिल हे.

अदृष्ट उत्पत्ति ओर उसके फलके संबंधमें यहांतक जो लिखा, उसमें कितना संभव भाग हे ओर कितना असंभव हे सो आगे जानसकोगे.

उपर कहे अनुसार यदि स्वाभाविक एसा (विचारोंका फॉर्म द्वारा असर) होता हो तो उक्त फॉर्मोंका अपनेसे निर्बलपर असर हो ओर बलवानपर न हो, यह स्वाभाविक हे. इससे हमको एक उत्तम उपदेश मिलता हे; वोह यह हे कि मानवमंडलके हरेक मेंबरपर सख्त जवाबदारी हे अर्थात यदि वोह शुभ—उत्तम

विचार–आचार करे तो वोह अपनेको, तथा सोसाइटीको लाभकारी–उपयोगी हे ओर पूज्य महात्मा हे. ओर जो अशुभ–नीच–हेय विचार, आचार करे तो वोह अपना ओर सोसाइटीका हानीकर ओर घाती हे; क्योंकि उपर कहे अनुसार परस्परके फॉर्मोंने जो परिणाम निकाला वा फॉर्मोंका प्रत्याघात होके किंवा अन्यप्रकार (उक्त प्रकार)से एक दूसरेके फॉर्म एक दूसरेको ओर अपनेको अज्ञात रीतिसे दुःख सुखके हेतु होजाते हें. इसीवास्ते उन फॉर्मोंका नाम अदृष्ट हे.

परंतु हमारे उद्दिष्ट संकल्पका असर उद्दिष्ट व्यक्तिकोही हो किंवा उससे जो फॉर्म बना सो उद्दिष्टके पडमें जुडके अदृष्ट रुपसे रहके भावीमें फलका हेतु हो, एसा सिद्ध नहीं होता; क्योंकि कर्ताका यदि सूक्ष्म स्थूल उद्दिष्टके साथ साक्षात संबंध हे तब तो संग संबंधसे फॉर्मका असर होना वा उसमें जुडना मानभी लेवें, परंतु जो उद्दिष्ट व्यक्ति परोक्ष हो वा दूसरे लोकमें हो वा दूसरे शरीरमें हो तो उसको फॉर्म पहोंचाना कर्ताके वशमें नहीं हे. ओर वोह स्वयं पहोंचसके एसाभी नहीं हे, क्योंकि जड हे. खंभे विनाका तार उद्दिष्ट हे, अर्थात पेटीका संबंध हमको ज्ञात हे, इसलिये वहां ईथर–वायब्रेशन द्वारा संकेत पहोंचसकता हे. ओर जो दरमियानमें संबंध भंग हो तो वोहभी नहीं पहोंचसकता; परंतु प्रस्तुत प्रसंगमें उद्दिष्ट ओर उद्देशक–इन उभयका संबंध उभयको ज्ञात नहीं हे, इसलिये रचाहुवा फॉर्म वहां नहीं पहोंचसकता. इसका फलितार्थ यह हुवा कि यदि हम किसीके नामपर दान पुण्य करें किंवा किसीका बुरा चाहें किंवा मरे हुयेके वास्ते कुछ करते हें तो उससे यदि अदृष्ट फॉर्म पेदा हों तोभी या तो वे नष्ट होजायँगे वा तो हमारे चित्तपरही उनका असर होगा वा हमारे चित्तमें जुडके फलप्रद होंगे, परंतु उद्दिष्टको उनका असर हो एसा नहीं होसकता.

इसी प्रकार जो उपर एसा माना गया हे कि विचार, आचारके अनुसार कहीं अंतरिक्षमें शरीर बनता हे ओर वोह स्थूल देह त्यागने पीछे कर्ताको मिलेगा सोभी सिद्ध नहीं होता. उसका कारणभी वही हे कि जो उपर कहा हे.

(शं.) ईश्वर सर्वशक्तिमान हे, इसलिये उसकी अचिंत्य शक्तिद्वारा हमारे उद्देशके अनुसार वे फॉर्म (अदृष्ट) उद्दिष्ट व्यक्तिको मिलजाते हें, उससे यथायोग्य परिणाम (फल) उस व्यक्तिको प्राप्त होजाता हे. (उ.) विश्वाससे एसा मानलेना दूसरी बात हे; परंतु जब इसकी परीक्षा करें तो एसा होना साबित नहीं होता. वोह प्रकार यह हे.—

क. का पिता, क को गर्भमें छोडके गुम होगया, ओर कालांतरमें उसके मरनेकी (झूठी) खबर मिलगई. अब यदि उसका ज्ञाता-परीक्षक, पिताको एक कोटडीमें बंद करदेवे ओर क उसके नामपर दान पुण्य (भोजन दक्षणादि) करे तो दान लेनेवाले वा करनेवालेके विचारकी असर वा विचारजन्य फॉर्मोंका संबंध पिताके साथ न होसकेगा. (शं.) पिताको ज्ञात न हों एसे अदृष्ट उस पिताके चित्तके साथ संबंध पावेंगे. (उ.) इसका सबूत क्या? कुछ नहीं. पितासे पूछें तो उस भूखे वा तृष्णातुर पिताको ब्रह्मभोजनसे जराभी तृप्ति वा दानसे जराभी शांति सुख वा उत्साह ज्ञात नहीं होता. इससे स्पष्ट होता हे कि परोक्ष पितृ वगेरेको हमारा किया हुवा अद्रष्ट नहीं मिलता. तथाहि यदि क शत्रुके वास्ते जो मारन वगेरेका प्रयोग करें तो क को कुछभी असर नहीं होता. जो एसा होता तो हरकोई यथेच्छा राजा बन जाता; परंतु एसा नहीं होता. लाखों किरोडों हिंदु व्यक्तिका गोवध बंद होनेका विचार हुवा ओर हे परंतु उसका असर थोडे आदमियोंपरभी नहीं हुवा, एसा ९०० वर्षसे देखरहे हें. ईश्वरने उन फॉर्मों (अलॅमेंतलों) को घातकोंके हृदयमें क्यों नहीं पहोंचाया? परंतु " मूलं नास्ति कुतो शाखा " जेसी बात हे, अतः पहोंचना मान्ना विश्वासमात्र वा कल्पनामात्र हे.

तथाहि क की जायदाद उसके ३ पुत्र ज. झ. न. को मिली हे. ज. ने उसमेंसे क के नामपर दान पुण्य ओर परोपकार किया हे. झ ने क के उपदेशानुसार उस जायदादकी मददसे क को संतोष होनेके लिये क के शत्रुका ओर एक दूसरा खून किया हे ओर अहिंसक पिताके नामपर मांस पिंडका श्राद्ध याने भोजन कराया हे. अब यदि ज के दान पुण्यरुप आचार–विचारजन्य अदृष्टका फल क पितृको मिलता हो तो झ के किये हुये खूनका फलभी क को मिलना चाहिये, परंतु एसा नहीं होसकता. ओर यदि ईश्वरकी शक्तिद्वारा एसा होताभी हो तो ईश्वर अन्यायी ठेरेगा; क्योंकि अकृतका फल अनपराधि (क) को देता हे. (प्र.) क ने मूंडकटीमें जायदाद संपादन की हे. सो अपने पुत्रोंको देके मरगया, ज पुत्रने राज्य विरुद्ध वा खूनका गुनाह किया हे, तो ज पकडाजायगा परंतु जायदादको नुकसान न होगा. इसी प्रकार जो पाप (फोजदारी) कर्म हें उनका फल उद्दिष्ट पितृको नहीं मिलता हे (उ.) उक्त अपराधके बदले ज की जायदाद सरकार स्वाधीन करलेगी, क्योंकि उसकी मददसे उक्त गुनाह करसका हे. वोह पितृकी जायदाद हे, एसा नहीं मानाजायगा. इससे स्पष्ट होगया कि क वाली जायदादका

उपयोग वा फल उसके उपभोग करनेवाले ज वगेरे पुत्रोंको हे. क को नहीं मिलता. इसी प्रकार ज वगेरेके किये हुये दान पुण्य वा खून वगेरेका फल ज वगेरेको होना हे; क को नहीं.

(शं.) पितृ आके लेता होगा. (उ.) यदि नरकमें बंद होगा तो आनेका प्रतिबंध. यदि स्वर्गमें होगा तो संसारी विषयवासनाका अभाव होनेसे नहीं आवेगा. तथाहि उपर कहे अनुसार पापकाभी भागी होगा, परंतु एसा होना अन्याय हे. जो किसी योनीमें होगा तो नहीं आसकेगा तथाहि 'वहां पहोंचता हे' इस स्वपक्षका त्याग होगा. अतः पितृका आना वा जहां वोह हो वहां पहोंचना, यह बात असिद्ध हे. जो विश्वाससें मानके करो तो संसारके तमाम मनुष्य प्राणीके लिये हमेशे श्राद्ध करो; क्योंकि वे पूर्वजन्मोंमें एक दूसरेके पूर्वज हुये होंगे उनको ईश्वर फल पहोंचा देगा. अर्थात नित्य गरीब अनाथोंकी यथाशक्ति पालना करो, यहही श्राद्ध हे.

इसी प्रकार उपर जो अंतरिक्षमें शरीर बन्ना ओर मरने पीछे मिलना माना हे सो बातभी असिद्ध हे. विश्वाससे मानलेना जुदी बात हे. या तो (" जेसे मारन, उच्चाटन वगेरेके प्रयोग करनेवाले–इच्छा ज्ञान शक्तिवाले–सूक्ष्म शरीर (देवता, भूत वगेरे") को मानते हें वोह वीर जाके शत्रुको मारता हे, नहींके हमारे विचारजन्य फॉर्मे मारते हें; एसा वे कहते हें, इस प्रकार ") असंख्य देवता होने चाहिये कि जो असंख्य फॉर्मोंको क्षण क्षणमें लेके जहांके तहां जमा करते जावें ओर स्थिर रखें; परंतु एसा सिद्ध नहीं होता. अलीक कल्पना हे.

क ने खून (वा चोरी वगेरे) किया; सो अज्ञात रहा तोभी इस कृतिका फल (शंका-भय-लज्जा) होता हे--प्रत्यवाय हुये विना नहीं रहता. उससे दूसरे बुरे-दुःखप्रद परिणाम निकलते हें-उत्तम गुण कर्म संपादन नहीं करसकता–चित्त निर्बल हुवा दुःखी रहता हे--यदि ज्ञात होनेपर लोकमें उसको शिक्षा होगई तोभी लज्जा ओर व्यवहारमें हानीकारक जो अविश्वास सो तो रहेहींगे. सारांश जीवनमें दुःखीही रहेगा. फलितार्थ कुकर्म करनेमें शंका--भय--लज्जा वगेरे रुप चितके परिणाम होते हें यही अदृष्ट हें. नहीं के वहां कोई प्रकारके परमाणु आके मिले हें. क ने दान दिया उससे क को आनंद ओर उत्साह होता हे, उससे चित्तकी योग्यता खिलती हें ओर मानसिक बल ज्यादे होता हे यही अदृष्ट ओर उसका फल हे; इससे अनेक प्रकारके व्यावहारिक ओर पार्मार्थिक कार्य बनते हें, अंतःकरणकी शुद्धि होती हे. ओर जिसको दान मिला उसके तनमनको सुख होता हे अतः वोह आशीर्वाद देता हे,

उसके विचारोंका फॉर्म दाताके अंतःकरणके उपर शुभ असर करता हे, उससे उक्त (व्यवहारादि), शुभ परिणाम आते हैं, यही अदृष्ट हे. यद्यपि अंतःकरण मध्यम परिमाणवाला हे, इसलिये उसमें कमोबेशी होती रहती हे; अतः अपने वा दूसरोंके विचारोंका फॉर्म उसमें जुडना ओर अगले निकलना (कमपडना) मानसकते हैं, परंतु इस कल्पनामें उपरोक्त दोष आते हैं ओर व्याप्ति नहीं मिलती. वे फॉर्म देश नहीं रोकते एसे अमूर्त हैं, यह मान्ना कल्पनामात्र हे; स्वरुप अप्रवेश प्रसंग यादमें लीजे; इसलिये विशेषभागमें एसाही मान्ना पडता हे कि संबंध पानेवाले चित्तपर परके विचारोंका असर होता हे, याने संबंधसे अमुक प्रकारका परिणाम-अवस्था-अभ्यास-संस्कार-इम्प्रेशन होता हे. ओर क्वचित फॉर्म जुडते वा कमभी होते हों. यथा मातापिताके गर्भ ओर मातापिता गुरुके साक्षात संबंधसे संभव हे कि उनके विचारजन्य फॉर्म जुडते हों ओर अगलेमें कमी होती हो. तद्वत कोई बलवान दुष्टके संबंधसे खराब फॉर्मका प्रवेश ओर उत्तमकी कमी होजाती हो, वा उत्तम दबजाता हो. इस रीतिसे दो संज्ञाका नाम अदृष्ट ठेरा. (१) संबंधजन्य अभ्यास. (२) अमुक फॉर्मका चित्तमें जुडना. उत्तम अभ्यास ओर फॉर्मका नाम पुण्य ओर निकृष्टका नाम पाप रखा गया हे, क्योंकि कालांतरमें सो अभ्यास, सो फॉर्म सुख दुःख भोग मिलनेके हेतु होजाते हैं.

(शं.) सिंहने गायका ओर **क** मनुष्यने **ख** का खून किया हे ओर **ग** ने बिल्लीसे चूहेको बचाया हे ओर खटमलको मारा हे. तथा **थ** ने **घ** को दान दिया वा पाला हे; यह सब पूर्वजन्मका बदला हे वा नवीन क्रियमाण हे ? चोरी वगेरेकी शिक्षा लोक रीतिके अनुसार मिल गई हे तो उसके सिवाय ईश्वरीयशिक्षा अन्य होगी वा नहीं ? एकके किये कर्मका दूसरेको फल मिलता हे वा नहीं ?

(उ.) कर्म ३ प्रकारके हें—(१) **प्रारब्ध**—पूर्वजन्मके वे कर्म कि जिनके फलका प्रारंभ होचुका. यथा वर्त्तमान शरीर ओर तत्संबंधि दुःखसुख (जो बीज बोया गया सो). (२) **संचित**—पूर्वजन्मके वे शेषकर्म कि जिनका फल होना हे (कोठीमें जो दाने पडे हें). (३) वर्त्तमानजन्म विषे जो इच्छा पूर्वक कर्म करते हें सो (जमीन मोल लेना). इनका विस्तार भप. ओर कर्मविवेकमें किया गया हे. वर्त्तमानमें कोनसा फल कोन कर्मका हे यह याने प्रारब्धादिका विवेक होना मुशकिल हे, तथापि विद्वान विवेकी कुछकुछ जानसकते हें. भप. मेंभी इनकी पहिछान जनाई हे; तथापि तमामको नहीं जानसकते. इसलिये यही मान्ना उचित

हे कि सब क्रियमाण (मनुष्य कृत) हें— नवीन कृत हें. यह पहले सवालका जवाब हे. किसी कर्मकी व्यावहारिकशिक्षा बस होती हे; यथा--गालीकी तमाचा. किसीकी बस नहीं होती; यथा--चोरीकी इच्छा करनेसे लेके चोरी करने पीछे तकभी बहुत काल तक प्रत्यवाय होता हे. यह संक्षेपमें दूसरे सवालका उत्तर हे. पिताके उपदंश हे तो उसकी संतानकोभी होता हे उससे संतानको दुःख होता हे; यहां परके कर्मका फल भोगना हे; तथापि इसका समावेश प्रारब्धमें होसकता हे. एवं दूसरोंका संचितमें समावेश होजाता हे. सारांश कृतका फल कर्ताको मिलता हे. यह तीसरे सवालका उत्तर हे.

कर्मकी थीयरी बारीक हे, मनुष्य पूरी-तमाम नहीं जानसकता; इसलिये व्यावहारिक दृष्टिसे इसका फेसला करना नीति, मर्यादा ओर सदाचार-विचार होनेका हेतु हे, इतनाही कहना बस हे. शेष वास्ते कर्मविवेक ग्रंथमें विवेचन हे.

(प्र.) शरीर त्यागने पीछे पुनर्जन्म केसे होता होगा ? (उ.) अनेक संस्कार (अदृष्ट) वाला प्लेट-हिरण्यगर्भ (ईथर), इस द्वारा परंपरा संबंध, विजली-प्रकाश-वायु-जल-ओर अन्नादि मोजूद हें. अंत समयमें कोइ न कोई प्रकारकी भोगप्रद प्रबल भावना होती हे उस वासनाके वश सुध वा बेसुध हुयेभी जीवको तनाना पडता हे. जेसे कहीं मध रखा हो वहां कीडी वा मक्खी जब तब पहोंच जायँगी; क्योंकि उनको मधका प्रभाव वायुद्वारा नासिकामें जान पडता हे. एवं मलस्थानपर कृमी आजावेंगे. इसीप्रकार जीव अंतरिक्षमें घूमता हुवा जहां वासनाके अनुकूल प्रभाव जान पडता हे वहां खिचाजाता हे. वोह प्रकृतिके आकर्षण, वासना ओर अभ्यास-इन तीन बलोंको तोडनेमें असमर्थ हे याने होनेवाले शरीर संबंधको अपनी इच्छासे नहीं तोडसकता. जहां शरीरका संबंध होना चाहिये अर्थात भोग होने योग्य हे वहां ईथर ओर विद्युतादिके द्वारा इस लोक वा अन्य लोकमें खिचाजाता हे. इस संबंध होनेमें ईश्वरीय शक्तिकाभी हाथ हे ओर वोह यह के यदि इस संबंध वा भोगके विरुद्ध स्वाभाविक कुदरती बनाव प्रतिबंधक हों वा जीव ईश्वरीय वा कुदरती नियमके भंग करनेपर इरादा करे तो उनका भंग होजाय. ओर मुमकिन हे कि शरीर त्यागने पीछेभी जीवकी गति ओर संबंध पानमें ईश्वरीय शक्तिका हाथ हो. ईश्वरीय शक्ति किस स्थितिमें रखके जीवको गति कराती हुई किस प्रकार दूसरे रजवीर्यमें डालती हे, यह नहीं कहाजासकता-जन्म मरणके प्रकारको अभीतक मनुष्य यथावत नहीं जानसका हे. परंतु पूर्व उत्तर जन्म हे, इतना जा-

नसका हे, उससे स्पष्ट होजाता हे कि उपर कहे अनुसार जीवको पूर्वके प्रारब्ध ओर संचित कर्मोंके अनुसारभी फल होता हे.

(शं.) जबके पूर्वके कर्मानुसार जन्म होता हे तो मातापिताकी आकृति ओर उनके गुण तथा उनके रोग उतरना यह क्यों? अन्याय हे. (उ.) क जीवका गर्मदेशमें अंधे गरीब नास्तिकके यहां क्यों जन्म हुवा? ख जीवको मांसभक्षकके यहां क्यों जन्म मिला? ग जीवको राजा–श्रीमंत वा योगीके गर्भमें क्यों आना पडा? इतना होनेमें जो कारण हे वही आपके सवालका उत्तर हे. अर्थात इसप्रकारके कर्म वा अदृष्ट हें कि अमुक आकृति गुण वा रोगादि प्राप्त होके दुःख सुखको भोगे. ॥ इस कर्म थीयरीमें अनेक शंका समाधान हें ओर होसकते हें, प्रयोगसिद्ध पुनर्जन्मकी सिद्धि होनेसे उनका विस्तार नहीं किया हे; यदि विस्तार करें तो दूसरा ग्रंथ बनजाय, तोभी यथायोग्य बयान न होसके; क्योंकि मनुष्य इस विषयको यथावत् नहीं जानसका हे, इसलिये ईश्वरकी अचिंत्य शक्ति वा कुदरत–मायाकी अनिर्वचनीय रचना, इतना कहके संतोष करलिया जाता हे.

उपर संक्षेपमें जो कर्मफलकी पद्धति कही हे, उसको मानलियाजाय तो ३ प्रकार निकलते हें (१) क पक्षगत जीव अणुचेतन, एसा मानें तो जीव शुद्ध तत्व रहता हे ओर उक्त तमाम थीयरीका असर अंतःकरण (चित्त) पर आता हे; ओर दुःख सुख भोगका परिअवसान जीवचेतनपर होता हे, क्योंकि उसने चित्तके धर्म अपनेमें भावरुपसे[१] मानलिये हें. इन भावरुप परिणामोंके[१] दूर हुये जीव स्वरुपसे शुद्ध होजाता हे; उस स्थितिको मोक्ष कहते हें. इन भावरुप परिणामोंका अभाव जब होता हे कि कर्म, उपासना, विवेकादि साधन द्वारा चित्तमें अन्य अदृष्ट पेदा हों; उससे चिदग्रंथीका भंग होके स्वरुपभान ओर वासनाका अभाव हो. एसा हुये उक्त प्रकृति, वासना ओर अभ्यासकी फोर्स जीवको बंधकी हेतु नहीं होती. (अ. ४ गत त्रिवाद वांचो). (२) ओर जो क पक्षगत दूसरा पक्ष (रागादि जीवचेतनके गुण वा अवस्था वा परिणाम) मानें तो अंतःकरण द्वारा जीवके रागादिरुप परिणाम होते हें याने जीव मध्यम हे ओर दुःखी सुखी होता हे. पडके दूर हुये जीवमें रागादि नहीं होते इसको मोक्ष कहते हें, (शेष प्रथम पक्षवत्), एसा मान्ना पडता हे. (३) जो क पक्षगत तीसरा पक्ष मानें

[१]जीव तत्वमें भावपरिणाम होना वा भाव आना, उसके स्वरुपसंबंधमें क्या परिणाम निकालता हे, उसकी चर्चाका यहां प्रसंग नहीं हे.

अर्थात जीव अणुचेतन नहीं किंतु अनादिसे मध्यम परिणामी ओर चेतन तत्व हे उसपर द्रव्य कर्म (चित्त-कर्मपुद्गल) पड हें, चित्तके परिणाम वा स्थिति अनुसार जीवमें भावपरिणाम होते हें, इसलिये दुःखी सुखी होता हे. जब उपरोक्त वा अन्य प्रकारसे वे पड दूर होजावें तो जीव रागादि रहित शुद्ध स्वरुपमें स्थित होता हे—तब भावपरिणामभी नहीं होते. इसका नाम मोक्ष हे. इस पक्षमें मध्यमपरिणाम यह मंतव्य कुछ ओरही परिणाम निकालता हे जिसकी चर्चाका यह प्रसंग नहीं हे

यहांतक जीवके उपरोक्त क पक्ष अनुसार बीज, अवतरण ओर अदृष्ट इन तीनका संक्षेपमें बयान हुवा याने कर्मफल मिलनेका प्रकार कहा ॥

(ख. पक्ष)—उपरोक्त ईश्वर कृत ख पक्षमें कर्मफल तो हे; परंतु पूर्व उत्तर जन्म नहीं होता, क्योंकि वर्त्तमान शरीर संबंध (पहेला जन्म) ईश्वरकी इच्छासे होता हे ओर ईश्वरने जैसी योग्यतावाला बनाया तथा जैसी परिस्थिति (गर्भ-शरीर-देश-काल-लोक-मंडल) में डाला उस अनुसार वोह कर्म करता हे, इसलिये जीव जवाबदार नहीं ठेरता. ओर गर्भमेंभी आकृति तथा गुण वेसेही संपादन होते हें जेसाके उसकी योग्यता वा नसीबमें नियत हुये हें. गर्भमें आने पीछे जन्म लेनेसे मरण पर्यंत कर्मका फलतो होता हे परंतु उपरोक्त पूर्व संस्कारादि अनुसार परिणाम होना, यथा आचार विचार अंतरिक्षमें शरीर बन्ना ओर उत्तर जन्ममें आना यह बातें नहीं होती. बाकी उपरोक्त (१, ३, ४, ५, क, ख, ग, ङ, च, छ,) सबप्रकार होते हें ओर अदृष्ट बनते हें जो महाप्रलय (कयामत) होनेपर फल मिलनेके निमित्त होंगे. वे अदृष्ट जीवके पड हें ओर ईश्वरकी इच्छा वा दत्त योग्यता तथा नियत नसीबके अनुसार होते हें. अब जबके सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे निर्माण होना मानागया हे तो जीवके भावपरिणाम वास्ते कुछ नहीं कहाजासकता, कारणके वोहभी ईश्वरकी तरफसे होना हे. तथा इस पक्षमें ईश्वरको अन्यथाकर्त्ता (पापीको क्षमा करके स्वर्ग दे ओर नेकको नरक दे देवे इत्यादि) माना हे, इसलिये इस ख पक्षमें कर्मथीयरीकी यथायोग्य व्यवस्था नहीं होती. कर्म उपासनाके फलमें हमेशेके लिये स्वर्ग वा नरक मिलना, यह कल्पना अर्थशून्य जानपडती हे.

(ग. पक्ष) जीव मातापिताके रजवीर्यका परिणाम हे, इस पक्षमेंभी पूर्व संस्कार ओर उत्तरजन्मकी सामग्रीको छोडके उपरोक्त क पक्षवाले सब प्रकार बनते हें अर्थात शरीरकी हयाती तक कर्मके फल होते हें जेसाके सु. ३८४में कहा हे.

(घ. पक्ष) विकासवादकी रीतिसे कर्मफलके आरंभकी तथा उसकी व्यवस्था नहीं होती; क्योंकि इस पक्षमें मातापिताकी आकृति ओर गुणोंका अवतरण तो मानते हैं तथा गर्भमें पूर्वजों (मछली, मींढक, बंदर वगेरे) का अनुकरण होनाभी कहते हैं (अ. १ में विकासवाद देखो) परंतु उनकी थीयरी-पद्धति ठीक नहीं होती. यथा- पिता माताके शरीरमें, पहेले प्रोटोपलाजम ओर सेल्स बनके कृमी बना १, किंवा माता पिताके सत्व--संस्कार--आकृतिवाला मेटर बनके कृमी (जिसपर मनुष्य शरीर बनता हे) बना २ । पहेले पक्षमें मनुष्यसे इतरकी आकृति ओर गुणका प्रभाव प्रोटोपलाजम पर नहीं होगा, क्योंकि साक्षात वा परंपरारुप कोई संबंध नहीं हे; किंतु मनुष्य (मातापिता) की आकृति ओर गुणका प्रभाव होगा; इसलिये पूर्वजोंका प्रभाव मान्ना नहीं बनता. दूसरे पक्षमें जेसे जलस्थानमें स्वाभाविक प्रोटोपलाजम--सेल्स--एमीबा बन्ना मानते हैं वेसे बन्ना नहीं मानसकेंगे, किंतु उपर कहे अनुसार मातापिताकी आकृति--गुण--विशिष्ट मेटर (वृक्ष बीजवत) बना, एसा मान्ना होगा; क्योंकि प्रो. में मातापिताके तमाम आकृति संस्कार नहीं होते वा नहीं होसकते. अब जो दूसरा पक्ष माना तो ग पक्ष अनुसार कर्मफल होना सिद्ध होगा; नहींके पूर्वजसे प्राप्तानुसार फल होना. पहले पक्षमें पूर्वजोंके संस्कार (पूर्वजन्म) मानें परंतु उनका अधिष्ठान-मेटर नहीं मानते. बीजमें तो प्रोटेपलाजमकी हस्ति विना वृक्ष होनेके संस्कार-सामग्री हे, ओर वीर्यमें कृमी हो तो उसमेंभी शरीररुपी वृक्ष होनेकी सामग्री हे, परंतु प्रोटोपलाजममें नहीं हे; इसलिये पूर्वसंस्कारके अनुसार होना नहीं बनता ओर यहही इसपक्षमें खामी हे. यदि मनस नामकी कडीपर प्रोट. होना मानलेवें तो व्यवस्था होसके. उसके सिवाय इसपक्षकी कर्मथीयरी नहीं बनती. दूसरे शरीरोंमें संस्कार छोडजाना उन संस्कारविशिष्ट मेटर (बीज) बन्ना, एसे कर्मफल मानें तो अकेले प्रोटोपलाजम बन्ने (बनने)से नहीं होता किंतु ग अनुसार वा क अनुसार चित्त मान्ना पडता हे ॥

(ङ· पक्ष) चेतन १ ओर विभु, इस ङ पक्षमें ओर क पक्षमें इतना अंतर हे कि क पक्षमें जीवचेतन रागादिवाला हे अतः बंध हे अथवा भावपरिणाम (चितके धर्म अपनेमें मानलेना) वाला होनेसे दुःखी सुखी होता हे. ङ पक्षमें चेतन, दुःखी--सुखी--कर्ता--भोक्ता वा भावपरिणामी नहीं हे, परंतु जेसे अमुक मेटरके रसायणीयसंयोग जन्य जो मछली शरीर जलकी संनिधिसे चमत्कारी शक्तिवाली होजाती हे (उस विना मुर्दा-जड) वेसे, तथा जेसे चंबुक शक्तिसे लो-

हेमें गति होने लगती हे वेसे, क पक्षवाला चित्त चेतनकी संनिधिसे अद्भूत शक्तिवाला होजानेसे क पक्षका तमाम प्रकार अंतःकरणमें घटता हे. उसी प्रकार चित्तमें अवतरण, अदृष्ट उत्पन्न ओर नाश होते रहते हें ओर कर्मफल तथा पुनर्जन्म होता हे. क पक्षमें चित्त, स्वरुपसे अनादिअनंत नहीं किंतु प्रवाहसे अनादिअनंत हे. एसेही ङ पक्षमें हे, इसलिये जीवत्व प्रवाहसे अनादि अनंत हे. इसपक्षमें उभयका अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध होनेसे जल मछलीके समान कर्तृत्व भोक्तृत्वका परिअवसान उभयविशिष्टमें जानपडता हे वा मान्ना पडता हे, वस्तुतः चेतनमें नहीं हे. क्योंकि चेतन आकाशवत निर्लेप सम ओर शुद्ध हे. (इसपक्षका विस्तार बस. के उत्तरार्द्धगत अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) में हे.

(च. पक्ष) नं. ङ वाले चित्त (चेतन विशिष्ट चित्त) को सादिसांत मानें तो ग पक्ष (जडवाद) अनुसार परिणाम आता हे. ओर जो उसका कुछ काल तक पुनर्जन्म मानें तो क. वा ङ पक्ष अनुसार कर्मफल होना मानसकते हें. तथापि च जेसे सादिसांतका पुनर्जन्म मान्ना अयुक्त हे.

(छ. पक्ष) जीव क्षणिक हे. इसमें २ पक्ष होसकते हें. (१) दीपककी लो समान क्षणिक हे. इसपक्षमें क थीयरी नहीं लगती किंतु कोई प्रकारसेभी कर्मफलकी व्यवस्था नहीं होती; क्योंकि लोका गत भाग आनेवाला उत्तरभागमें अपने संस्कार छोड सके, एसा नहीं होसकता. ओर यदि एसा होता हो तो क्षणिकवाद न रहा. इसलिये उत्तर भागमेंही यदि पूर्वके संपादित भावना-संस्कार ओर वर्तमान संबंधकी फोर्स-इम्प्रेशन-संस्कार मानें तबही कर्मफलकी थीयरी बनसकती हे; परंतु लो क्षणिकवादमें इसका स्वीकार नहीं होसकता; किंतु इतनाही मानाजासकता हे कि जाता हुवा अपना प्रभाव विद्यमान दूसरे क्षणिक (जीव-लो) पर डाल जाय ओर आप नष्ट होजाय. इससे इतर अन्य प्रकार नहीं बनता. इतने मंतव्यमेंभी मेटर ओर संपादित संस्कारोंपर जब ध्यान दें तो क्षणिकवाद उडजाता हे. इसकी चर्चाका यहां प्रसंग नहीं हे. (अ. १ गत दर्शनसंग्रहमें विस्तार किया हे) ॥ दूसरा पक्ष यह हे कि जीव, कनक कुंडल छुरीके समान क्षणिकपरिणाम हे. इस पक्षमें क नं. ३ (जीव मध्यम परिणामी) के अनुसार कर्मफलकी पद्धति मानसकते हें. परंतु क्षणिकवादि त्रिपुटीका स्थाई परिणाम नहीं मानता; किंतु ज्ञेय कालमें ज्ञान वा ज्ञाता ओर ज्ञाताकालमें ज्ञेय ओर ज्ञान नहीं होता, एसा मानता हे अर्थात क्षणिकवादमें पड वा साधन (चित्त) का स्वीकार नहीं हे, इसलिये क

अनुसार वा अन्य रीतिसे क्षणिकवादमें कर्मफलकी थीयरी नहीं बनती; परंतु कर्मफल तो हे; अतः क्षणिकवाद अलीक हे.

(ज. पक्ष) जीव यह ईश्वरका अंश हे (अग्नि चिंगारीवत वा घटाकाश महाकाशवत् अंश हे वा ईशअंशादिरुप हे). इस पक्षमें कर्मफल-यह पक्षही नहीं बनता; क्योंकि ईशांशादिरुपमें कर्तृत्व भोक्तृत्वादिका अभाव हे ओर भाव परिणामभी नहीं बनता, क्योंकि वोह शुद्ध स्वरुप होता हे.

(झ. पक्ष) जीवको विभु मानके चित्तद्वारा उसमें रागादि गुण वा अवस्था होना असंभव हे, क्योंकि विभु सम होता हे. तथापि हठसे मानें तो उपरोक्त क गत दूसरे पक्षअनुसार कर्मफल सिद्ध होगा. ओर पुनर्जन्म, चित्तका होना चाहिये, क्योंकि विभुमें गतिका अभाव हे ओर यदि विभु मानके रागादि भावरुप होना मानें तो क गत अणु पक्षके समान अंतःकरणपर सब प्रकार घटित होंगे; ङ पक्षके अनुसार नहीं मानसकते; क्योंकि विभुवादमें चेतनको भोक्ता माना हे, नाना विभु जीव मान्नेके दोष उपर कहे गये हें.

(ञ पक्ष) जीव यह कोई तत्वरुप वा अतत्वरुप वस्तु नहीं हे किंवा जीव मान्ना भ्रांतिमात्र (आरोप) हे. इन पक्षोंमें कर्मथीयरी नहीं बनती. अथवा भ्रांति पक्षमें फॉर्म (अदृष्ट) ओर कर्मफल, स्वप्नके आभासरुप जीवोंके समान स्वीकारसकते हें, परंतु इस भावमेंभी ङ पक्षानुसार मान्नेसे कल्पित कर्मथीयरी मानसकते हें; क्योंकि इस पक्ष अनुसार चेतनमें कर्तृत्व भोक्तृत्वादि नहीं बनते. ओर चेतनभी नहीं हे, एसा मानें तो ग अनुसार मान्ना पडेगा; क्योंकि सत् मानो वा स्वप्नवत मानो वा कोई अन्यप्रकार मानो, परंतु कर्मके फल दुःखसुखादि तो मान्नेही पडेंगे.

जेसे बीज, पत्ते, फूल ओर फलकी रचना प्रकार देखके मनुष्यकी बुद्धि गुमशून्य होजाती हे, अनिर्वचनीय कहके ईश्वर वा कुदरत मानके चुप होना पडता हे (यह उपर कहा हे); इसीप्रकार योग द्वारा अंतःकरणका जब कुछ भान होजावे तब उसकी योग्यता ओर अद्भूत कार्य देखके तथा शरीरके मगज, हृदय, गर्भस्थान वगेरेकी अद्भुत रचना ओर उपयोग देखके चकित होना पडता हे. अकिल काम नहीं करती, अनुमानके ढकोसले बनाती हे ओर फेरभी अनिर्वचनीय कहके कोई गुप्त अचिंत्य शक्ति (चतुरा कुदरत)को मानके संतोष करके चुप रहती हे.

इस प्रसंगमें उपर जो कुछ लंबा लंबा कहा हे वोह " कर्मका फल अवश्य होता हे " इस उद्देशसे कहा हे. जीव अणु, विभु वा मध्यम, जड वा चेतन,

तत्व वा अतत्व, चेतनविशिष्ट चित्त वा चित्तविशिष्ट चेतन, वा स्वप्नवत वा क्या; कुछभी हो, केसाभी हो; परंतु जनमंडलमें एक दूसरे संबंधीके कर्मका एक दूसरे संबंधीको थोडा बहुत फल होता हे, यह समष्टि कर्मवाद सिद्ध हे तथा जीवको कर्मका फल (दुःख सुख) होता हे यह प्रकार विवाद रहित हे, इतना जनाना ही यहां प्रयोजन हे. उक्त सब पक्षोंमें दुःख सुखका परिअवसान बीज—कूमीपर आता हे. वोह बीज जड हे, चेतन हे, उभयरुप हे वा उभय विशिष्ट हे, इन पक्षोंकी यहां चर्चा करना व्यर्थ हे, क्योंकि जीवके स्वरुपमें विवाद हे. जेसाजेसा मानें उस उस प्रकारमें दोष आता हे, यह उपर दरसाया हे.

(शं.) जबके जीवका स्वरुपविवादका विषय हे तो उसके कर्मफलकी थीयरी कहनेमें कालको व्यर्थ क्यों खोया? (उ.) ईश्वरकी शक्ति द्वारा मिलना मानो वा अन्यथा मिलना मानो, परंतु अच्छे आचार विचारका उत्तम--सुखकारी ओर बुरे आचार विचारका बुरा--दुःखकारी फल अवश्य होता हे; इसलिये जिज्ञासु--पाठकको उत्तम आचार उत्तम विचार करना घटित हे; नहीं तो दुःखी होगा; इतना जनाने वास्ते प्रकार लिखा हे. अब वोह फल किसको भोगना पडता हे ओर आचार विचार कोन करता हे; यह जान्ना हो तो योग द्वारा परीक्षा पूर्वक जानसकते हो याने विवेकख्याति होनेपर अपने वास्ते इसका फेसला होसकता हे. वहांतक व्यवहारमें पूर्वोक्त क का हरकोई पक्ष (जीव परिच्छिन्न दुःखसुखका भोक्ता ओर कर्ता हे एसा) मान्ना ओर उस अनुसार वर्तन करना उत्तम माना जाता हे. वोह वर्तन यह हे कि मनुष्य (जीव), कुटुंबका ओर जनसोसाइटीका अंग (मेंबर) हे. वोह यदि संयम करता हुवा उत्तम सकाम वा उत्तम निष्काम आचार विचार करेगा ओर उसमें यदि उत्तम गुण संपादन होंगे तो वोह अपना ओर संबंधि मंडलका हितकारी हे--पुण्यात्मा—धर्मात्मा हे. जो इसके विरुद्ध वर्तन होगा याने दुष्टाचार विचार करेगा ओर नीच गुण संपादन करेगा तो अपना हंता (आत्महंता) ओर संबंधि मंडल (जनमंडल)का घातक हे--पापात्मा—नीच—दुष्ट हे; एसा जान्ना चाहिये (अ. ४ में कर्मकी प्रधानता वांचो[1]) ॥ ३ । ३८६ ॥

नाना मतादिका हेतु संस्कार ॥ ३८६ ॥

अर्थ.—सत्यवस्तु एकही प्रकारकी होती हे तोभी मानवमंडलमें ईश्वरादि विषयके स्वरुपसंबंधमें भिन्नभिन्न तथा परस्परमें विरोधीमत हें ओर इसलिये नाना

[1] लाभकारी बोधमें पुनरुक्तिसे डरना नहीं चाहिये.

संप्रदाय, धर्म, मत, पंथ वा मार्ग चल रहे हें, एसा होनेका हेतु नाना संस्कार हें, यह बात संस्काराधिकरणसे स्पष्ट होजाती हे ॥ ३८६ ॥

मत--पंथके आद्यसंस्कारका आरंभ कहांसे हुवा, इसका बयान अ. १ में आचुका हे. विकासवादि, मनुष्यको कुदरतमेंसे शनैःशनैः ज्ञान मिलना ओर उससे देव, जीव, ईश्वर वगेरेकी कल्पना हुई, एसे मानते हें; जैनी ओर मैमांसिक तथा बौद्ध अनादिसे पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तर एसे ज्ञानका प्रवाह मानते हें; आरंभवादि ईश्वरदत ज्ञान मानते हें; ओर प्रवाहवादि सृष्टिके आरंभमें ईश्वर द्वारा मिलना मानते हें. इत्यादि मतभेद हें. कुछभी हो परंतु वर्तमानमें जो हानीकारक नाना मत पंथ हें, वे नाना संस्कारोंके परिणाम हें, यह स्पष्ट हे. अ. २ संस्काराधिकरणमें इसका प्रकार लिखा हे. इसके निवारणका याने असत् संस्कारके निवारणका उपाय, विद्या, सायंस, सृष्टिनियमका प्रचार ओर संग्रहवादकी प्रवृत्ति हे या दंड ॥ ३८६ ॥

मंतव्य सत्य कर्तव्यहित ॥ ३८७ ॥

अर्थ.—जो सत्य हो वही मान्ना चाहिये ओर जिससे परिणाममें हित होता हो सो कर्तव्य हे. यह सर्वतंत्र सिद्धांत हे. अ. २ सू. ७१५ । ६९० । १२२ । १० । ११ । १२ ओर अ. ३ सू. १४७ । १४८ देखना ठीक होगा ॥३८७॥

असत्यके त्याग ओर सत्यके ग्रहणमें उद्यत रहना चाहिये. असत्से जुदा रहना योग्य हे. अपना ओर परका हित कर्तव्य हे अहित त्याज्य हे. हित ओर अहितकी व्याख्या वक्ष्यमाण (अ. ४) जीवनमतसे होजाती हे ॥ ३८७ ॥

योग्य समानता, आत्मवत् सर्व भूतमें दृष्टि होनेसे ॥ ३८८ ॥

अर्थ.—सबमें अपने आत्मा समान योग्य समान दृष्टि रखना चाहिये; क्योंकि सर्व भूतोंमें आत्मा समान हे. यह मंतव्य तमाम सुज्ञ तत्ववेता अनुभवियों को संमत हे. सू. ४१३ । ३९२ । ३९३ देखिये ॥ ३८८ ॥

हाथी, गाय, कुत्ता ओर पंडित तथा लोष्ट ओर कंचन, प्रकृति दृष्टिसे समान हें; क्योंकि सब प्रकृतिके कार्य हें; परंतु परस्परके उपयोगकी दृष्टिसे उनमें समानता नहीं कहसकते. जो हम अपने वास्ते हित अहित समझें वोह दूसरे वास्तेभी समझें; क्योंकि आत्मा सबमें एक ओर यदि जुदा जुदा मानो तोभी समान हे, तथा सृष्टिमें सबको जीनेका अधिकार समान हे, एसी समदृष्टि होना चाहिये; परंतु जेसे बालक, जवान, वृद्ध, विद्वान, बुद्धिमान, अविद्वान, दुष्ट, चोर, पशु-

पक्षीके तन मनके उपयोगमें स्वाभाविक अंतर हे, वेसी दृष्टिसे असमानता हे. तथापि दुःख सुख ओर जीवनमें सबकी समानता हे. इसलिये रागद्वेष रहित हुये अपने दुःख सुख ओर जीवन समान परकेभी जान्ने चाहिये. यही योग्य समदर्शी पना हे. (शं.) क्या दुष्ट, दंडपात्र नहीं? (उ.) उसके ओर परके हितकी दृष्टिसे वोह शिक्षाका पात्र हे. जेसे के यदि हम दुष्ट, चोर, अन्यायी, विश्वासघाती हों तो हम दंडपात्र हें; ओर इस दंडप्रदानमें हमारा ओर परका हित रहा हुवा हे. व्यष्टि वा समष्टि–जनमंडलके हित (सुख–उन्नति) में प्रवृत्ति होना, यह योग्य समान दृष्टि होनेका परिणाम (फल) हे ॥ ३८८ ॥

ज्ञानतत्त्व ओर अतत्त्व ॥ ३८९ ॥ ज्ञान, प्रमा ओर बाधसे ॥ ३९० ॥ ओर व्यवहार तथा निश्चयकी दृष्टिसे ॥ ३९१ ॥

अर्थ.—ज्ञानको तत्वस्वरुप ओर अतत्वस्वरुपभी मानागया हे ॥ ३८९ ॥ अ. २ । ४४७ । ७७ ओर ६७६ से यह बात जानी जाती हे ॥ ३९० ॥ इस प्रकारकी मान्यता व्यवहारदृष्टि ओर निश्चयकी दृष्टिसे होती हे ॥ (ओर ३८८ । ३९२ । ३९३ भी देखिये.) ॥ ३९१ ॥

(१) जडवादि मगजके परिणाम विशेष (अतत्व) को ज्ञान कहते हें. (२) नैयायिक ओर वैशेषिक, आत्मा मनके संयोग हुये ज्ञानगुणकी उत्पत्ति (अतत्व) मानते हें. ओर ईश्वरमें ज्ञानगुण नित्य मानते हें. (३) जैन जीवको तत्वज्ञानस्वरुप मानता हुवा मध्यम, परिणामी (अतत्व) कहता हे. ओर व्यवहार नयमें ज्ञानको जीवका गुण मानता हे. (४) बौद्ध क्षणिकतत्वका परिणाम (अतत्व) मानते हें. (५) द्वैतवादि, जीववादि ज्ञानको जीवका गुण मानते हें. (६) वेदांती चेतनयुक्त वृत्तिके परिणाम (प्रकाशक परिणाम) को ज्ञान (अतत्व) कहते हें ओर ज्ञानस्वरुप आत्मा वा परमात्माको नित्य तत्व मानते हें. इ.

वस्तुतः यह हे कि ज्ञानकी (ज्ञानकृति अवस्थाकी) उत्पत्ति नाश दर्शनसे व्यवहारमें उसको अतत्व मान्ना पडता हे ओर निश्चित यह हे कि उत्पत्ति नाश-वाले वृत्तिज्ञानसे भिन्न असीम ज्ञानस्वरुप जो हे सो तत्त्व हे, अतत्वरुप नहीं हे. पक्षकारोंने जो ज्ञानस्वरुपको मध्यम वा जन्य माना हे उसकी असिद्धि उपर दिखाइ गई हे ॥ ३९१ ॥

प्रमाकी उत्पत्ति नाश व्यवहारमें ॥ ३९२ ॥

अर्थ.—प्रमा अर्थात ज्ञानस्वरुप चेतन उसकी उत्पत्ति नाशका जहां प्रयोग होता हे सो व्यवहारदृष्टिसे होता हे. यह सू. ४४७ । ७७ । ६७६ । ३८८ । ३९२ । ३९३ से सिद्ध हे ॥ ३९२ ॥

घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नाश हुवा, यहां जीववृत्तिका जो ज्ञान परिणाम उसकी उत्पत्ति होके उसका नाश होता हे, उसमें तादात्म्य संबंधसे रहा हुवा प्रमाणचेतन उसकी उत्पत्ति वा नाश नहीं होता हे. यथा--घटाकाशका नाश हुवा; यहां घटका नाश होता हे, नहींके आकाशका. घटाकाश चलता हे; यहां घट चलता हे, आकाश नहीं. चलती नौकावालेको मकान चलते देखपडते हें, वहां चक्षु चलती हे मकान नहीं. इसीप्रकार एक चेतनमें शरीर अंतःकरणकी उपाधिसे नानात्व ओर क्रिया तथा वृत्तिके परिमाणके परिवर्तनसे ज्ञानकी उत्पत्ति नाश जान पडते हें; वस्तुतः ज्ञानस्वरुपसम कूठस्थ हे.

उपरका सूत्र पक्षकारोंकी दृष्टिसे था ओर यह स्वरुपनिर्णयकी दृष्टिसे हे; अतः पुनरुक्ति सफल हे ॥ ३९२ ॥

अधिष्ठानाध्यस्तवाद मध्यस्थसे ॥ ३९३ ॥

अर्थ.—एक तत्व वस्तु पररहित याने पूर्ण सर्वाधार हे ओर दृश्य--परिच्छिन्न उसमें अध्यस्त हे, एसे अधिष्ठानवाद (पूर्ण परिच्छिन्नवाद) की सिद्धि **मध्यस्थ** (प्रत्यक्ष, अनुमान, सृष्टिनियम, बुद्धि, युक्ति ओर अनुभव) सूत्रसे होती हे ॥ ३९३ ॥ परिच्छिन्न--दृश्य प्रत्यक्ष हे, सृष्टिनियम ओर अनुमान उसके अधिष्ठानकी सिद्धि करते हें, उभयका संबंध बुद्धि, सृष्टिनियम ओर अनुभव बताता हे. इसप्रकार पूर्ण परिच्छिन्नवाद आगे सिद्ध करेंगे. यह वाद वेदांतसे इतर किसीकोभी संमत नहीं हे ॥ यहां अध्यस्तका पारिभाषिक अर्थ हे याने अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला अन्यथा स्वरुप. इसका आशय आगे स्पष्ट होगा.

(शंका) अ. ३ । ३०९ का विरोध होगा; क्योंकि वहां विभु परिच्छिन्नका निषेध किया हे. (उ.) विभु परिच्छिन्नवादकी केसे सिद्धि होती हे उसका विस्तार वक्ष्यमाण सूत्रोंसे स्पष्ट होगा, जो मध्यस्थ (सृष्टिनियम, बुद्धि, युक्ति आदि ओर अनुभव) के अनुकूल होगा. यद्यपि इस विषयका मूल अ. २ । ४२६ अवस्थित सूत्रमें हे ओर २६१ । २६८ मेंभी हे; तथापि वहां नियम दृष्टिसे कहा हे ओर नाम मात्र हे. तथाहि अ. ३ । १९० वगेरेमें निषेधका प्रतिपक्ष हे. सिद्धि पक्षमें नहीं ओर परिच्छिन्नकी सिद्धि, असिद्धिसे उपेक्षामें हे, इसलिये विभु

परिच्छिन्नवादका खुलासा उससे नहीं होता. एतद्दृष्टि यहां विषय निर्णयपक्षको लेके इसविषयको विस्तारसे जनाते हैं; उससे सवालका समाधान होजायगा. वक्ष्यमाण पूर्ण परिछिन्नवादका नाम अध्यस्तवाद कहागया हे अर्थात जेसे आकाशमें नीलता अध्यस्त हे वेसे अधिष्ठानमें यह दृश्य परिच्छिन्न अध्यस्त (अस्पर्शवत् रहा हुवा) हे ॥ ३९३ ॥

अध्यस्तवादकी भूमिका.

मूलाधिष्ठानाधारकी सिद्धि आधाराधिकरणसे ॥ ३९४ ॥ ओर असिद्धिकी अर्थापत्तिसे ॥ ३९५ सोही अधिष्ठानादि विशेषणवान ॥३९६॥ दृश्यका निषेध नहीं दर्शनसे ॥ ३९७ ॥ उभयमेंसे एककी अप्राप्ति आधेय ओर भेद नियमसे ॥ ३९८ ॥ अधिष्ठानका रुप जगत नहीं वोह परिणामी न होनेसे ॥ ३९९ ॥ ओर अभेद्य अच्छेद्य निर्विकल्प तथा सम होनेसे ॥ ४०० ॥ जगत भ्रमरुपभी नहीं उसको अज्ञान संस्कार भ्रम वा अध्यास न होसकनेसे ॥ ४०१ ॥ ओर न उनकी सामग्री होनेसे ॥ ४०२ ॥ एकांतसे उभयकी प्राप्ति ॥ ४०३ ॥ सत्ता ओर अवस्था विवेकसे व्यवस्था ॥ ४०४ ॥

सूत्रार्थ.—स्वयंभ्वादि (२ । २६८) ४ विशेषणवाले मूल अधिष्ठानाधारकी सिद्धि अ. २ गत आधाराधिकरणमें स्पष्ट हुई हे ॥ ३९४ ॥ ओर अ. ३ । १९१ । १९३ की अर्थापत्तिसे अधिष्ठानाधारकी सिद्धि हे ॥ ३९५ ॥ यही अधिष्ठानाधार अधिष्ठानादि (१३ विशेषण अ. ३ । २९१) विशेषणवाला हे. इसप्रकार समचेतनकी सिद्धि हे ॥ ३९६ ॥ दृश्यका निषेध नहीं होसकता; क्योंकि सर्वको प्रत्यक्ष हे ॥ ३९७ ॥ परंतु इन दोनोंमेंसे एककी अप्राप्ति होनीचाहिये ॥ ३९८ ॥ क्योंकि आधेय (२६१) ओर २६८ आधार इन उभयका ओर भेद (३८२) इसनियमका विरोध हे; इसलिये यातो विभ्वाधिष्ठान नहीं होना चाहिये वा तो दृश्य परिच्छिन्न न होनाचाहिये. इसका विस्तार २ । ३८२ के विवेचनमें आचुका हे ॥ ३९८ ॥ (शं.) दृश्य अधिष्ठानकाही रुप होगा अतः भेद नियम बाधक नहीं होता. (उ.) जगत अधिष्ठानका स्वरुप नहीं हे; क्योंकि वोह निरवयव अपरिणामी हे (सू. १७४ । १७८ । १६८ । ३४० । १४५ देखो) ॥ ३९९ ॥ ओर वोह अभेद्य, अच्छेद्य, निर्विकल्प, समचेतन हे; इसलिये जड, परिच्छिन्न, नाना विरुद्ध धर्मवाला, षडविकारी ओर सक्रिय जो जगत सो उसका परिणाम

(रुपांतर) नहीं होसकता ॥ ४०० ॥ (शंका) जगत भ्रमरुप याने अर्थशून्य होगा; इसलिये भेदसूत्र बाधक नहीं होसकेगा. (उ.) यह जगत भ्रमरुपभी नहीं मानाजासकता; क्योंकि उस अधिष्ठान समचेतन वा उपहितचेतनको अज्ञान, संस्कार, भ्रम (ज्ञानाध्यास) वा अध्यास (अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास) नहीं होसकता; कारण के वोह असंस्कारी अलुप्तज्ञानस्वरुप हे. ओर भ्रम वा अध्यास, अज्ञान ओर संस्कारके विना नहीं होता, परंतु उसको अज्ञान नहीं हे तथा उस समको संस्कार नहीं होसकते याने उसकी संस्काररुप अवस्था नहीं होसकती ॥ ४०१ ॥ ओर अज्ञान, भ्रम वा अध्यास होनेकी सामग्रीभी (ब्रह्म इतर) सिद्ध नहीं होती; इसलियेभी जगत अज्ञान, भ्रम वा अध्यास रुप नहीं हे ॥ ४०२ ॥ परंतु अधिष्ठान (ब्रह्म) ओर अध्यस्त (जगत) इन उभयकी प्राप्ति तो एकांत (निश्चित) हे; इसलिये भेदनियम बाधकही रहता हे, कोई व्यवस्था नहीं होती ॥ ४०३ ॥ इस अनिवार्य पूर्ण परिच्छिन्नवादकी व्यवस्था सत्ताप्रकरण समझनेपर ओर जाग्रत स्वप्नका विवेक (अन्वय व्यतिरेक ओर समानत्व) होजाने पर होजाती हे ॥४०४॥ अर्थात अ. ३ सू. ४१५ से ४२७ तक। ४३१ से ४३८ तकके विवेचनका अनुभव करें ओर स्वप्न जाग्रतके मूल स्वरुपका ओर उसकी उत्पत्ति नाशका अनुभव करें तो आधाराधेय कायम रहे हुये तथा भेदसूत्र बाधक न होते हुये विभु परिच्छिन्नवादकी व्यवस्था होजाती हे (सो उभय विषय अब आगे कहेंगे) ॥ ४०४ ॥ मूलादि सूत्रोंका विवेचन.—

परब्रह्म परमेश्वर.

दृश्य परिच्छिन्नको आधारकी अपेक्षा हे, आकर्षणादि आधार नहीं होसकते, अन्योऽन्याश्रयकीभी असिद्धि हे, ओर ब्रह्मांडका एक तरफ गमन हो रहा हो एसाभी सिद्ध नहीं होता; इसलिये कोई अन्य सर्वाधार हे ओर वोह **स्वयंभु, असीम, पूर्ण, अचल तथा समचेतन** होनाचाहिये. यह विशेषण न हों तो अधिष्ठान नहीं होसकता; क्योंकि टेबलकागजवत् आधारशब्दका बोधक हे. ओर बाहिर भीतर आकाशवत् व्यापक यह अधिष्ठानका बोधक हे; इसलिये सूत्रमें अधिष्ठानाधार दोनों शब्द लिये. अधिष्ठानपद लेनेका विशेष आशय आगे वांचोगे. सोही अधिष्ठान, अधिष्ठानादि विशेषणवाला हे.

(शं.) स्वयंभ्वादि कहके अधिष्ठानादि विशेष क्यों कहते हो. (उ.) यहां ३ । २९१ वाले विशेषण सामने करके समाधान समझना चाहिये ॥ आधारकी

सिद्धिमें स्वयंभ्वादि विशेषण बस हैं, परंतु विचित्रता दर्शन (अ. ३ । २९२) से अधिष्ठानादि विशेषण मान्नेही पडते हैं; क्योंकि जो सबके अंदर बाहिर न हो तो परमाणुआदिका आधार न हो तथा परिच्छिन्न ओर आधेय होजाय; अतः अधिष्ठान पद लगाना पडता हे. जगतकी तमाम शक्तियें उसके विना काममें नहीं आती; इसलिये सर्व उपरी (अधिष्ठाता—सत्तावान) कहा हे. उसकी शक्ति अचिंत्य हे, जो एसा न होता तो उस विषे मतभेदही न होते, अतः अचिंत्य कहा हे. सबका अंतर्यामी इसलिये कहा कि विभु ज्ञानस्वरुप हे. जो निराकार न कहें तो साकार होता, परंतु साकार अधिष्ठान नहीं होता. जो कूटस्थ न कहें तो विकारी होता, परंतु विकारी विभु नहीं होसकता; किंतु नाशवान होता हे. निष्क्रिय न कहते तो सक्रिय मान्ना पडता, परंतु सक्रिय परिच्छिन्न होता हे, ओर परिच्छिन्न आधेय होता हे अर्थात उसमें अधिष्ठानत्वकी अव्याप्ति होती. जो निष्कलंक न कहते तो कलंककी व्याप्ति होती, परंतु कलंकित सर्वाधार सर्वोपरि नहीं होसकता. जो निरीह न कहते तो इच्छावाला मान्ना पडता; परंतु इच्छावाला विभु ओर निरपेक्ष नहीं होसकता. जो अन्यथानिमित्तकारण न कहते तो जगतगत दृष्ट कुलालादि समान सक्रिय निमित्त माननेकी व्याप्ति होती अर्थात परिच्छिन्न सक्रिय मान्ना पडता, परंतु सक्रिय परिच्छिन्न आधेय होता हे विभु वा अधिष्ठान नहीं होसकता. अथवा एसे अन्यथाकर्ता (अन्यथा निमित्त) कहते याने यथेच्छा बुरेको भला भलेको बुरा इत्यादि करना मानते तो अशक्तिनियमका बाध आता, ओर उसमें विषमता तथा निर्दयताका दोष आता, इसलिये अन्यथानिमित्त अर्थात अक्रिय निरीह ओर विभु हुयेभी जगतकी शक्तिओंके उपयोग होनेमें अद्भुत अकथ्य प्रकारसे निमित्तकारण, एसा कहा. जो विभु (असीम) न कहते तो अविभुकी व्याप्ति होती परंतु अविभु अधिष्ठान सर्वोपरी नहीं होता किंतु आधेय होता हे. जो सम (एक रस) न कहते तो लचकवान मध्यम होनेसे नाशवान ठेरता. जो चेतन न कहते तो आकाशवत जड होनेसे आधार न होता; तथा दृश्य, मर्यादामें न रहसकता. जो स्वयंप्रकाश स्वरुप न कहते तो उससे इतर जड उसकी सिद्धि करनेमें असमर्थ होनेसे उसकी सिद्धिही न होती. जो पूर्ण न कहते तो अपूर्ण (पर अपेक्षावाला परिच्छिन्न) कहना पडता, परंतु जो स्वयंभु न हो, सापेक्ष हो ओर परिच्छिन्न हो वोह आधाराधिष्ठान नहीं होसकता; इसलिये पूर्ण कहा. इस रीतीसे अधिष्ठानादि विशेषण सिद्ध होते हैं. अब जो स्वयंभ्वादि विशेषण ओर अधिष्ठनादि विशेषण

व्याप्तिसे माने हें वे हें, या केसे? इसका अनुभव प्रकार अ. ४ में कहेंगे. अर्थात अपरोक्षवत् सिद्ध हें; इसलिये माने वा कहेजाते हें. जो स्वयंभ्वादि ओर अधिष्ठानादि लक्षण कहे हें उनमें विरोध नहीं हे; किंतु सम, निष्क्रिय, अचल, निराकार, कूटस्थ, विभु, असीम, पूर्ण यह सब पर्याय हें. पक्षकारोंके मंतव्यमें अति व्याप्ति न हो, इसलिये भिन्नभिन्न रुपांतरसे लिखे हें. ओर दोनों प्रसंगमें चेतनपदकी व्याप्तिके विना असाधारणलक्षण नहीं बनते; इसलिये पुनरुक्ति की हे. ओर सर्वोपरी, अचिंत्य, अन्यथानिमित्त, निष्कलंक, निरीह ओर अंतर्यामी ज्यादे लिखनेमें आशयविशेष यह हे कि जब वोह परमात्मा देव शक्तिविशिष्ट कहाजाता हे तब उसमें इन विशेषणोंका उपयोग होता हे अर्थात तब कर्तृत्व, (निमितत्व) सर्वशक्तिमत्व, सर्वज्ञत्व, वगेरेकी व्यवस्था होजाती हे. ओर जगतके सनियम विचित्र कार्यदर्शनके हेतु याने निमित्तकारणका खुलासा होजाता हे अर्थात इस हेतुसे परमात्मादेवमें जितने लक्षण मानेजाते हें वे सफल हें, एसा सिद्ध होजाता हे. इसका विशेषवर्णन बस. में हे ओर अ. ४ आरण्यकप्रकरणमेंभी वांचोगे.

जो समादि लक्षणकी पुनरुक्ति की हे उसका कारण यह हे–विश्वासी, आर्यसमाजी, जैन वगेरे कितनेक पक्षकार जीवको परिच्छिन्न ओर निराकार कहेते हें, उनमें व्याप्ति न हो, अतः असीम पद कहा. सांख्य, न्याय, वै. वगेरे कितनेक जीवको नाना ओर व्यापक एसा मानते हें उनमें व्याप्ति न हो, इसलिये अधिष्ठान ओर अंतर्यामी कहा; क्योंकि वे जीवात्माओंको जगतका अधिष्ठान ओर हरेकका अंतर्यामी नहीं मानते. विश्वासी वगेरे ईश्वरको सर्वोपरि ओर सक्रिय मानते हें, उनमें व्याप्ति न हो इसलिये अक्रिय कहा. शुद्धाद्वैत ईश्वरको विभुपरिणामी मानता हे, उसमें व्याप्ति न हो इसलिये कूटस्थ ओर सम कहा. ईश्वर इच्छावाला हे एसे एक--केवलाद्वैतसे इतर सब मानते हें, उनमें व्याप्ति न हो इसलिये निरीह कहा. विश्वासी ओर अवतारवादि ईश्वरको चल मानते हें, उनमें व्याप्ति न हो इसलिये अचल कहा. विभु आकाशमें व्याप्ति न हो, इसलिये चेतन ओर अधिष्ठान तथा सर्वोपरी ओर ज्ञानप्रकाश कहा; क्योंकि आकाशमें असीम, अचल, सम, पूर्ण, कूटस्थ, निराकार, निष्क्रिय, विभु यह लक्षण घटसकते हें, परंतु चेतनादि नहीं घटते. विश्वासी वा अवतारवादि ईश्वरको निष्कलंक नहीं मानते (दूसरेको छलना, श्राप पाना, मकर करना, दूतका पक्षपात करना वगेरे मानते हें) उनमें अतिव्याप्ति न हो अतः निष्कलंक कहा. सूर्य-चंद्रादि परस्परके आश्रय किंवा कोई एक

महान सूर्य सबका आधार हे एसा यूरोपके कई फिलोसोफर मानते हें, उनमें व्याप्ति न हो इसलिये स्वयंभु कहा हे; क्योंकि वे सूर्यादिको स्वयंभु नहीं मानते किंतु जन्य मानते हें. इत्यादि ओरभी व्याख्यान हे. ॥ इसप्रकार आधार ओर विचित्रता तथा पक्षकारोंकी दृष्टि लेके पुनरुक्ति करनी पडी हे.

(शं.) अधिष्ठान समचेतन, सधर्म वा विधर्म हे, सगुण हे वा निर्गुण हे. (उ.) इसका समाधानकारक उत्तर, अ. ३ । ३०८की टीकामें ब्रह्मसिद्धांतका कुछ सार लिखा हे उसके विचारनेसे होजाता हे ओर अ. ४ मेंभी वांचोगे ॥

(शं.) यह ब्रह्महीका परिणाम हे, एसा क्यों न माना जाय? परंतु इस विषयमें दोष आते हें वे यह हें—(१) निरवयवका परिणाम नहीं होता, सावयवकाही होता हे, ब्रह्म निरवयव हे. (२) देश विना गति नहीं होती, ब्रह्मके आसपास देश नहीं, अतः परिणाम नहीं होसकता. (३) एक तत्व वस्तुकी एक कालमें विरुद्ध दिशामें गति नहीं होती, परंतु दृश्यमें एसा देखते हें. (४) एक वस्तुमें विरुद्ध धर्म नहीं होते वा एक वस्तुके विरुद्ध परिणाम नहीं होते. (५) त्रिपुटी व्यवहार, दुःख, सुख, उंच, नीच, पाप, पुण्य, बंध ओर मोक्षकी व्यवस्था नहीं होती. (६) गतिमान परिणामी परिच्छिन्न होनेसे ब्रह्म अन्यका आधेय होगा.

इन सब दोषोंका इतनाही समाधान बस हे कि तुमको भ्रमसे एसी शंका होती हें. वोह सर्वशक्तिमान होनेसे अन्यथाकर्ता हे, अपने आप लीला करता हे. इतना माननेसे सबका समाधान होजाता हे ओर भेदनियमको अवसर नहीं मिलता.

(उ.) आप एसा जो मानते हो सो भ्रम हे एसा क्यों न कहाजाय? क्योंकि आपके मंतव्यकी तो व्याप्तिही नहीं मिलती, किंतु उसके विरुद्ध व्याप्ति मिलती हे, अतः यह जगत निरवयव ब्रह्मकाही परिणाम हे, यह सिद्ध नहीं होनेसे स्वरूपाप्रवेशनियमकी आपत्ति हे. तथाहि आपकी रीतिसे आपका ओर हमारा मंतव्य यह उसी ब्रह्मका मंतव्य हे; अतः आपको निषेधका अवसर नहीं मिलता ओर हमारी रीतिसे निरीक्षणको अवसर मिलता हे. जहांतक ब्रह्मको छेदरहित, खंडरहित (स्वगतभेदरहित), निर्विकल्प ओर एकरस मानोगे वहांतक आपका परिणामवाद नहीं टिकता. ओर जो वोह भेद्य, छेद्य, सविकल्प हे, ओर एकरस नहीं हे एसा माना तो उपरोक्त (भावनामान्य ईश्वरवाले) दोष आवेंगे ॥

जेसा ब्रह्मपरिणामी इस पक्षका निषेध हुवा वेसाही एक क्षणिकविज्ञानपरिणामी-पक्षका निषेध जान लेना. उपरोक्त पांचों प्रश्न उत्पन्न होनेके सिवाय इष्टविरुद्ध

दोष आता हे. अर्थात ज्ञाता ज्ञेय समकालीन ओर स्थायी व्यवहार देखते हें; परंतु क्षणिकपक्ष ज्ञेयकालमें ज्ञाता ओर ज्ञाताकालमें ज्ञेयका अस्तित्व नहीं मानता. सूर्यचंद्र एक ओर वोह अनेकोंका दृश्य हे, क्षणिकवादकी रीतिसे अनेकोंका दृश्य नहीं हो-सकता; क्योंकि क्षणिकविज्ञान एक ओर क्षणिकपरिणामवाला मानता हे (इत्यादि अ. १ में ओर बस. में विस्तार हे); अतः क्षणिकवादकी रीतिसेभी स्वरुपाप्रवेशका निवारण नहीं होसकता.

इसीप्रकार यह दृश्य एक शक्तिका परिणाम हे, इस पक्षमें दोष आनेसे स्व-रुपाप्रवेश नियमकी आपत्ति रहती हे.

पूर्वपक्ष (दृश्यभ्रम–अध्यासरुप वर्णन) नं. १.

(शं) अधिष्ठान मान्नाहि पडता हे तो फेर कोई कितनाभी प्रयास करे, इस जगतको भ्रम (अर्थशून्य)--अध्यास (भ्रांतिरुप) रुप माने विना व्यवस्था नहीं होसकती ओर भ्रम वा अध्यास, अज्ञानको माने विना सिद्ध नहीं होता; इसलिये अधिष्ठान ब्रह्मको अज्ञान उससे भ्रम वा अध्यासरुप जगतकी प्रतीति हे, एसा मानो किंवा अविद्याविशिष्टचेतनको याने जीवचेतनको अविद्या (मायाका अंश) उपा-धिसे अज्ञान हे उससे भ्रम वा अध्यासरुप याने मिथ्याजगत भासता हे, एसा मा-न्ना चाहिये[१]. परंतु तुमने उपर सूत्र ४०१ । ४०२ में चेतनको अज्ञान, अध्यास वा भ्रम होनेका निषेध किया हे, सो असंगत हे. जगत भ्रम--अध्यासरुप क्यों-कर होसकता हे ओर भेदनियम बाधक न हो, सो प्रकार संक्षेपमें दिखाते हें.

दृष्टांत.

भ्रमप्रसंगमें जहां डोरीमें सर्प (वा शुक्तिमें रजत, स्थाणुमें पुरुष, मरुमें मृ-गजल, इत्यादि) भासता हे, वहां ६ सामग्री हें—(१) डोरीका सामान्यज्ञान, यथा यह कुछ हे. (२) डोरीका विशेषअज्ञान, यथा मूंझके बलवाली. (३)

---

[१]आत्मैव इदं सर्वंनेह नानास्ति किंचन ॥ इस श्रुतिसे जगतको ब्रह्मका परिणाम मान्ना होता हे वा निष्कलंक, निष्क्रिय, निर्गुण, निरंजन–इस श्रुति ओर उक्तश्रुति इन दोनों श्रुतिकी अर्थापत्तिसे नामरुपात्मक जगत भ्रमरुप (अर्थशून्य) मान्ना पडता हे. परंतु इस ग्रंथमें शब्द अग्रहणसे इसको बीचमें नहीं लेसकते. मध्यस्थ-प्रकरण अनुसार साक्षीमें लेना हो तो द्वैतप्रतिपादक श्रुतिभी लेनी होंगी (यथा अजामेकां. द्वासुपर्णा इत्यादि). इसीप्रकार सूफीमतमें उनकी श्रुति–आयत में द्वैत अद्वैतका झगडा हे, जिसकाभी यहां प्रसंग नहीं हे.

वस्तुके संस्कार, यथा-पूर्व दृष्ट सर्प, लकडी, जलधारा वगेरेका संस्कार. (४) प्रमातादोष, यथा भय, लोभ वगेरे. (५) प्रमाणदोष, यथा तिमिरादि. (६) प्रमेयदोष, यथा डोरी ओर सर्पका सादृश्य--लंबाई, कालापन. जो यह ६ सामग्री न हों तो सर्प (भ्रम) भासे नहीं. यथा--इदंत्व ज्ञात न हो, वा विशेषज्ञान हो, वा सर्पादिके संस्कार न हों, वा भय वगेरे न हों, वा तिमिर वगेरे दोष न हों, वा डोरी लंबी न हो, तो सर्पकी भ्रांति न हो; अतः भ्रम होनेकी ६ सामग्री हैं. अब वोह सर्प क्या? उसका उपादान क्या? वोह अर्थशून्य वा अन्य कुछ? उसका निमित्तकारण क्या? इस विषे कितनेही मत हैं, सो अ. १ में अध्यासप्रसंगमें जनाये हैं ओर उनका अपवादभी वहांही दरसाया हे; अतः यहां नहीं लिखते. यहां तो वोही पक्ष लिखेंगे जिसे अनिर्वचनीयख्याति कहते हैं, इसमेंभी कई विकल्प हैं. यहां उपरोक्त सफलादि (२७) सूत्र ध्यानमें रखिये.

प्रस्तुत प्रसंगमें डोरी, सर्परुप नहीं हुई हे. यह सर्प, इस मंतव्यसे डोरी सर्परुप नहीं हुई हे. अज्ञानादिसे डोरी सर्परुप नहीं हुई हे. ओर जीववृत्तिने बाहिर जाके सर्परुप परिणाम रखके प्रतीतिका विषय हुई हो एसाभी नहीं हे; क्योंकि बाह्यगमनका उपर निषेध करआये हें. जीववृत्तिसे इतर वहां कोई अन्यवृत्ति नहीं आइ हे वा नहीं उत्पन्न हुई हे. बाधकालमें वहां सर्प नहीं था एसा जान पडता हे. प्रतीतिके पूर्वभी वहां सर्प नहीं था. अनहुवा प्रतीत नहीं होता. पूर्वोत्तरमें नहीं ओर वर्तमानमें हो तो केसे होसकता हे उसका उपादान ओर निमित्त बताना चाहिये. इत्यादि बातें उपस्थित होती हैं. उनको सामने रखके वहां नीचे अनुसार मानते हैं.

(१) डोरीका सामान्यज्ञान, विशेषअज्ञान ओर सादृश्यदोष होनेपर चित्तमें सर्पके संस्कार स्फुरे याने चित्तवृत्तिही सर्प कल्पनरुप हुई. इसलिये अन्यदोषवश (प्रमातादि दोषवश) डोरीकाही नाम सर्प कल्पा गया. अर्थात अर्थशून्य कल्पना मात्र. यहां सर्प अजात हे. अज्ञानादि निमित्त हैं. अजात होनेसे उपादान कोई नहीं, संस्कारमात्रही सर्प हे (संस्कारी वृत्तिकोही उपादान मानो तो भलेही मानो). इस पद्धतिका नाम ज्ञानाध्यास हे, याने भ्रमज्ञानका विषय अर्थ नहीं हे.

(२) डोरीके इदंरुपाकार बनके किरणें (सूक्ष्मप्रकृतिका सूक्ष्मांश) चक्षुद्वारा अंदर गई, तब डोरीके विशेषअज्ञान ओर सादृश्यदोष होनेसे तथा प्रमातादिदोषवश सर्प संस्कार स्फुरे ओर उस इदं आकार अनुसार अंदरमें सर्पाकार बना (जेसे उदासीन पुरुषके अंदरमें कोई छबी सन्मुख होजाती हे वा दीपक बनजाता

हे वेसे. विस्तार भू. में हे. अथवा जेसे स्वप्नमें नामरुप बनते हें वेसे). इस संस्कारनिमित्तजन्य आकारके उपादानको अविद्या, माया, ईश्वर (शेषा-सूक्ष्मा) नाम देते हें. अब वहां २ रीति हें (क) वोह इदं ओर यह काली लकडी वा काली लकीरके बने हुये सर्प जेसा नवीन सर्पाकार दोनों तादात्म्य होगये तो सर्पका भान न होनेसे उसका धर्म इदंमें जानपडता हे. एसे संसर्गरुप होनेसे सर्पकी भ्रांती हे. जेसे लालवस्त्र संबंधी श्वेतकाचसो लालकाच जानपडता हे वेसे इदं, सर्परुपसे जान पडता हे. डोरी (इदं) अपने स्वरुपको न छोडके अन्यथारुप भासती हे, इसलिये डोरी इस प्रतीतिका विवर्त्तउपादान हे. सर्प उसका विवर्त्त हे; क्योंकि अधिष्ठान (इदं)से विषमसत्ता वाला अन्यथारुप हे. ईश्वर, ईश्वर रुपसे नहीं मालूम होता किंतु अन्य (सच्चा सर्प) आकारसे प्रतीत होता हे; इसलिये सो असंसर्गाध्यासका विषय हे ओर वोह सर्परुपभी न मालूम हुवा किंतु उसके संसर्गसे डोरीही सर्परुप मालूम हुई, अतः संसर्गाध्यास हे. परंतु ' यह सर्प ' इस ज्ञानका विषय--इदं डोरीका अंश ओर सर्पाकार ईश्वरका अंश--यह दोनों अंश हें. यह सब व्यवधान रहित होनेसे बाहिर उपयोग होता हे[१]. (ख) यदि इदंकी किरणें न रही ओर ईश्वरकाही सर्पाकार रहा तो ईश्वरका रुप ज्ञात न होने ओर सर्परुपमें ज्ञात होनेसे केवल असंसर्गाध्यास हे. इन उभयप्रकारमें निश्चय ओर संशयरुप अध्यासका समावेश होजाता हे (विस्तार भू. ओर बस. में हे). सब पक्षोंमें अध्यासपदका प्रयोग हे; क्योंकि पूर्व उत्तरमें वेसा नहीं हे याने बाधरुप हे. ओर उक्त ज्ञानाध्यास १, अर्थाध्यास २ इन उभयप्रसंगमें ज्ञान दूषितवृत्तिका अन्यथापरिणाम हे, जिसे अविद्यावृत्ति कहते हें. वृत्तिके २ परिणाम हें--अबाधितविषयक ज्ञानवृत्तिपरिणाम ओर बाधितविषयक ज्ञानवृत्तिपरिणाम. प्रमात्व ओर अप्रमात्वभी वृत्तिकेही परिणाम हें.

(३) नं. १ में सर्प अजात हुयेभी डोरी स्वस्वरुपको न छोडके सर्परुप भासती हे. ओर नं. २ में सर्प ईश्वर (अविद्या-माया) का परिणाम हे उसके संसर्गसे डोरी सर्परुप भासती हे, परंतु सर्प ओर डोरी दोनों हें. उपादानसे समसत्तावाला अन्यथारुप **परिणाम** कहाता हे. जेसे के उपर नं. २ में ईश्वरका परिणाम सर्प हे. अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला अन्यथारुप **विवर्त्त** कहाता हे. जेसे के ईश्वरका परिणाम सर्प, डोरीका **विवर्त्त** हे. स्वस्वरुपको न छोडके अन्यथारुपसे भासे सो

[१] अ. ३ । ३१६ याद कीजिये.

विवर्त्तोपादान कहाता हे. जेसे सर्पका डोरी विवर्त्तोपादान हे. अन्यकी अन्यमें प्रतीति **संसर्गाध्यास** कहाता हे. अन्यथा प्रतीति ओर इस अन्यथा प्रतीतिका विषय **अध्यास** कहाता हे. नं. १ में सर्पकारुप नहीं हे, इसलिये सर्प विवर्त्त ओर डोरीको विवर्तोपादान नहीं मानसकते; किंतु संस्कारी वृत्तिका विकल्पमात्र हे. ओर सर्पज्ञान, यह दूषितवृत्तिकाही अन्यथापरिणाम हुवा हे, इसलिये उस सर्पज्ञानको वृत्तिसे इतर किसी नवीन वृत्तिका परिणाम नहीं मानसकते. जो उससे इतर किसी अविद्या--वृत्तिको कल्पेंगे तो वहांभी सर्प, अविद्याका परिणाम मान्ना पडेगा. परंतु सर्पज्ञानको इतरवृत्तिका परिणाम मान्ना अनुभवके विरुद्ध हे, इसलिये वहां सर्पभी किसी अविद्याका परिणाम नहीं हे, केवल वृत्तिकी कल्पनामात्र हे. सर्प ओर उसका ज्ञान अजात हे. उपरोक्त दूषितवृत्तिका अन्यथा ज्ञानपरिणाम (सर्पज्ञान परिणाम) याने सर्पकल्पना परिणाम अपने अधिष्ठान साक्षी चेतनका विवर्त्त मानसकते हें; क्योंकि सो स्वस्वरुप (ज्ञानत्व विशिष्ट ज्ञानस्वरुप) को न छोडके अन्यथारुप जो ज्ञानवृत्ति तिसजेसा जानपडता हे; निष्फल प्रवृत्तिका जनक होपडता हे. यहां यह याद रहे कि जहां प्रमारुप वृत्ति होती हे वहां अबाधित होनेसे भ्रमप्रकार नहीं हे. नं. २ में विवर्त्त, विवर्तोपादान, ओर परिणामका स्वीकार हे वा बनता हे यह उपर कहा. अध्यासकी सामग्रीमें सत् वस्तुकेही संस्कार हों एसी अपेक्षा नहीं हे, किंतु वस्तुके संस्कार होने चाहिये इतनाही बस हें. तथा एक स्वप्नमें उडते हें, नपुत्रा अपने पुत्र देखता हे, वा अपनी पीठमें गोली लगी उसका जखम देखते हें; कालांतरमें दूसरे स्वप्नमें इन संस्कारवश ज्यादे उडता हे, उस पुत्रका विवाह करता हे ओर जख्मपर दवाई लगवा रहा हे. (आद्यसंस्कार वर्तमान स्वप्नवत हें, याने उसका आदि नहीं हे, प्रवाहसे पूर्व पूर्वके हें. विस्तार भू. में हे). इसप्रकार बाधितके संस्कार हों तो वेभी अध्यासके हेतु बनते हें. सादृश्य दोषभी अध्यासका हेतु हो एसा नियम नहीं हे, जेसे के नलिये चूते हें. मेरा शरीर में मोटा ताजा, मेरी आंख में काना, में ब्राह्मण में संन्यासी, आकाशनीला, इत्यादि सेंकडों एसे अध्यास हें कि जिनमें सादृश्य नहीं हे, यथा जीवात्माका ओर शरीर इंद्रियोंका सादृश्य नहीं हे तोभी मोटा ताजापना, कानापना जानपडता हे. प्रमाता ओर प्रमाण दोषकीभी सर्वथा अपेक्षा नहीं हे. यथा में काना. यहां आत्मामें जो अध्यास सो प्रमाण दोषके विना हे. ओर मेरा मन ओर में संकल्प करता हुं; यहां प्रमाता दोष विना मनका आत्मामें अध्यास हे. तथापि

अध्यासकी सामग्रीमें सामान्यज्ञान ओर विशेषअज्ञान तथा वस्तुके संस्कारकी तो अपेक्षा हेही; क्योंकि जिसका अध्यास हो, उसकी पूर्वक्षणमें आपत्ति हुये विना उसका अध्यास हुवा, एसा कहना बने नहीं; यथा--शकरके विशेष स्वरुप न जान्नेवालेको पित्तदोष होनेपर कटुताके संस्कारसे उत्तरक्षणमें मिसरी विषे कटुताका अध्यास होता हे. तद्वत आकाशमें नीलताका अवभास कदाचित जन्मसेही होजाय तोभी अवभास होतेही नीलताके संस्कार पहेली क्षणमें हें, ओर आकाशनीला, इस प्रतितिकी क्षण उत्तर हे; इसरीतिसेभी संस्कारकेविना अध्यास, इस संज्ञाकी अनुत्पत्ति हे. एवं अध्यासप्रसंगमें सर्वत्र जानलेना चाहिये. में शरीर, एसे अनात्मामें आत्माका अध्यास जबही होगा कि अनात्मापनेके संस्कार पूर्वक्षणमें हों, उस विना अध्यासपदका प्रयोग नहीं किया जासकता. यह नियम अध्यास निवृत्तिके पीछे सहजमें स्पष्ट होजाता हे. ओर जो नीलताकी प्रतीति संस्कार हुये विना एसे स्वाभाविक मानें तो वोह अज्ञानी (आकाशके अज्ञानवाला) ओर ज्ञानी (आकाश तथा नीलताके स्वरुपको जान्नेवाला) इन उभयको प्रतीत होनेसे, उसे अध्यास नहीं कहसकते, किंतु उसे नैसर्गिक–स्वाभाविक अवभास कहेंगे. (बस. में विस्तार हे. आगेभी वांचोगे); कारणके स्वाभावअधिकरणमें अवभास, यह अध्यासका लक्षण यथार्थ नहीं हे; क्योंकि अनहुयेकी-अभावकी भावरुपमें प्रतीति नहीं होती ॥ उपरोक्त पहेले पक्षमें जब प्रकाशादि द्वारा डोरीका ज्ञान होता हे तो उसी साथ उसके कार्य सर्पकी मान्यता ओर उस मान्यतारुप वृत्ति (वृत्तिज्ञान) की निवृत्ति होजाती हे. शेष पूर्व वर्त्तमान डोरीही रहती हे (याने डोरी उपहित चेतन जो सर्पका अधिष्ठान हे सोही शेष रहता हे) सर्प ओर उसका ज्ञान कहींभी नहीं होता. दूसरे पक्षमें डोरीका ज्ञान हुये साथकासाथ डोरीका अज्ञान ओर कार्य--सर्प (अज्ञानादि निमित जन्य किरणरुप सर्प ओर संसर्गाध्यास) दूर होजाता हे; कारण के डोरीकी किरणें विशेषरुपको धारके अंदर गई हें; इसलिये संस्कार जन्य जो किरणाकार उसे अपने उपादानमें लय होना पडता हे; क्योंकि सर्पसंस्कार दब गये ओर डोरीका विशेषरुप बन्नेसे उसके संबंधीको लय होना पडा.—– याने वोह सर्परुप नष्ट होगया कहींभी नहीं रहा. जेसे तालाबके जलमें कोई कारणसे एक प्रकारकी लहेर उठ रही हे ओर जानपडती हो उसको किसी दूसरेकी टक्कर लगे तो पहेली लहेरका अभाव होजाता हे (जलरुप उपादानमें लय होजाती हे), वेसे विशेषकिरणोंके गये पूर्वोक्त नवीन सर्पका अभाव होजाता हे (माया वा ईश्वररुप होजाता हे),यहां विशेष

पूर्वोक्त नवीन सर्प समसत्तावाले लगभग समानरुप हें; क्योंकि किरणेंभी ईश्वरका अंश हे ओर ईश्वरभी मायाका अंश हे. यथा—सन्मुखमें जो अग्नि वा मनुष्य हम-को ज्ञात होता हे सो, ओर वेही पृष्टमें हों तथा काचद्वारा प्रतिबिंबरुप सन्मुखमें ज्ञात हों, सो समानही हें; क्योंकि उभयके फोटोही हम अंदरमें देखते हें; तथापि सन्मुखवालोंकी किरणोंका साक्षातद्वारा अटूट संबंध हे ओर पृष्टवालोंका काचद्वारा परंपरा संबंध हे; इतना अंतर हे. वेसेही वहां हे; विशेषकिरणें साक्षात हें ओर ईश्वरका परिणाम संस्कारजन्य आकारमात्र हे. इस प्रसंगमें ओरभी बारीक शंका समाधान हें; भु. के अन्यथाप्रकरण विचारनेसे निरीक्षण होसकता हे. किंवा जेसे संस्कारजन्य स्वप्नसृष्टिका, अमुक निमित्तसे अपने उपादानमें लय होजाता हे, वेसे उस नवीन सर्पाकारका लय होजाता हे, ओर पूर्ववत् वर्तमान जो अधिष्ठान डोरी सोही शेष रहती हे.

(४) जिसप्रकार उपर रुपाध्यासका बयान हुवा, वेसाही शब्द, स्पर्श, रस ओर गंधाध्यासकी रीति हे. याने संसर्गाध्यास हे ओर असंसर्गाध्यास हे. यथा-स्व-प्नसृष्टिगत विषय असंसर्गाध्यासरुप हें—याने मायाके परिणाम हें परंतु मायारुप नहीं जानपडते अर्थात जिसभाव, जिसप्रकारवाले हें वेसे नहीं जानपडते ओर बाधरुप हें अतः अध्यासरुप हें ओर साक्षीचेतनका तथा उनका अन्योऽन्याध्यास हे, उसके दुःखादि आत्मामें जानपडते हें ओर आभासरुप जडशरीर, चेतन जानपडते हें; इस प्रकार अन्योऽन्याध्यास हे. अंतःकरण आत्माका अन्योऽन्याध्यास हे. शकरमें कटु-ताका अन्योऽन्य (पित्तदोष) अध्यास हे. इत्यादि.

दार्ष्टांत (समष्टिवाद).

जेसे डोरीसर्पका प्रकार कहा, वेसे ही यह जगत ब्रह्ममें भ्रम वा अध्यासरुप हे. उसके समष्टि, व्यष्टि दो प्रकार (पद्धति) हें तहां प्रथम समष्टिके रुपका दार्ष्टांत कहते हें.—

(१) अधिष्ठानब्रह्ममें जीवनामा ब्रह्मचेतनकोही जगत (नामरुप--त्रिपुटीमात्र) सर्पवत् भासता हे—याने अध्यासरुप हे; क्योंकि जीवनामा ब्रह्मको अनादिसे अपना सामान्यज्ञान हे (यथा हुं, हुं, हुं का वाच्य वा लक्ष्य) ओर अपने विशेष स्वरुपका अज्ञान हे (यथा कूटस्थ--शुद्ध पदका लक्ष्य) ओर जेसे जाग्रतसे स्वप्न (तत्कालमें जाग्रतरुप) ओर स्वप्नसे जाग्रत (तत्कालमें सत् जाग्रतरुप) पुनः जाग्रतसे स्वप्न (तत्कालमें सत्रुप जाग्रत) उससे सुषुप्ति, उससे जाग्रत इत्यादि. इस रीतिसे पूर्व

पूर्वके संस्कारसे उत्तरोत्तर सृष्टि (नाम) भासती हे. प्रमाता ओर प्रमाण यह दोनों तो उन संस्कारजन्य होनेसे अध्यासके अंतरगत हें. ओर अज्ञान, अध्यासका मूल कारण हे. पूर्वपूर्व संस्कार उत्तरउत्तर अध्यासके हेतु हें. इस रीतिसे यह दृश्य अनादिसे अध्यासरुप हे. जेसे सर्प अजात अर्थशून्य होनेसे डोरीका बाधक नहीं होता, याने भेदनियमकी आपत्ति नहीं होती, वेसेही ब्रह्मके स्वरुपमें अजात-अर्थशून्य जगतका ब्रह्मके स्वरुपमें प्रवेश नहीं हे याने जगत कल्पनामात्र हे--मिथ्या (झूठ-अर्थशून्य) हे. जब ब्रह्मको कोई प्रकारसे अपने स्वरुपका ज्ञान होजावे, तब इस अनहुई दृश्यका अत्यंताभाव होजाता हे; क्योंकि पूर्वोत्तरमें नहीं हे, ओर वर्तमानमें संस्कारमात्र-कल्पनामात्र हे, निवृतिका शेष ब्रह्मका शुद्ध स्वरुप हे. बंध, मोक्ष, वर्णाश्रमके व्यवहार, ओर अध्यात्म शास्त्र वगेरे सब उपर कहे अनुसार संस्कारमात्र-कल्पनामात्र हें. इस पक्षमें जगत ब्रह्मरुप नहीं, ब्रह्म जगतरुपसे प्रतीत होता हो, एसाभी नहीं बनता ओर ब्रह्मसे इतर संस्कारमात्र हे-अर्थशून्य हे. ओर अज्ञान अनादिसांत हे (पक्षमें इसी अज्ञानका नाम मायाभी कहते हें).

(२) ब्रह्माश्रित भावरुप अनिर्वचनीय माया, अनादिसे हे (उपर जहां अज्ञान हे वहां माया शब्द कह दो) सो घटाकाश, मठाकाशवत् उपाधि हे, ब्रह्मका स्वरुप उससे आवृत हुवा; अतः ब्रह्म अपने विशेष स्वरुपको नहीं जानता. अनिर्वचनीय माया अपने पूर्वपूर्व संस्कार (अभ्यास) वश नाम रुपको पाती हे. इस मायाकरकेही ब्रह्म नामरुपात्मक भासता हे; परंतु ब्रह्मका नामरुपात्मक परिणाम हुवा हो अथवा माया नामरुपमें परिणाम पाई हो, एसा नहीं हे, केवल माया बलसे ब्रह्म अन्यथारुप याने नामरुपात्मक--जगतरुप भासता हे, इतनाही हे; इसलिये माया ब्रह्मका विवर्त्त हे ओर ब्रह्म विवर्त्तोपादान हे. मायाका आवरण, स्वरुपज्ञानसे नाश होजाता हे, अतः स्वरुपाज्ञानके अभाव हुये मायाका अत्यंताभाव हे; इसलिये नाम रुपकाभी अभाव हे. अतः माया ओर उसका कार्य अनादिसांत हें. उसकी निवृत्तिका शेष अधिष्ठान स्वरुप याने ब्रह्म हे. ब्रह्मेतर बंध, मोक्ष, वर्णाश्रम ओर शास्त्रादि मायामात्रही हें, जेसे स्वप्नका हस्ति अपने सहित स्वप्नका बाधक हे ओर जाग्रतमें लानेका निमित्त हे, वेसेही मायाका अध्यात्मशास्त्रस्वरुप, अपने सहित आवरणका बाधक हे. उसके बाध हुये ब्रह्म शुद्ध स्वरुप होता हे. प्रस्तुत मायाको दूषितवृति याने सर्प कल्पकस्थानी मानके दार्ष्टांत योजलेना चाहिये. अतः मायाका स्वरुपमें प्रवेश न होनेसे भेदनियमकी आपत्ति नहीं होती.

(३) इससे इतरभी पक्ष हैं अनावश्यक होनेसे नहीं लिखे. यहांतक पूर्वपक्ष हुवा.

उत्तरपक्ष नं. १.

उपरोक्त समष्टि दार्ष्टांतका अपवाद.—(१) जो ब्रह्मको अनादिसे अज्ञान मानें तो यदि अज्ञान अभावरुप शून्य हे तो उसका उपयोग–कार्य (भ्रम) न होगा. यदि भावरुप हे तो ब्रह्मचेतनकी अवस्था विशेष हे, एसा कहना पडेगा, क्योंकि ब्रह्मसे इतर भावरुप अन्य नहीं मानते. जो यूं हे तो ब्रह्म परिवर्तन पानेवाली अवस्थावाला होनेसे विकारी ठेरेगा. तथाहि जो ब्रह्मको अज्ञान होना मानें तो उसको ज्ञान हुये अध्यासरुप प्रपंचका नाश होना चाहिये; परंतु आजतक प्रपंचका नाश न हुवा तो भविष्यमें नाश होनेकी व्याप्ति केसे मानलीजाय? नहीं मानसकते. (२) ब्रह्मसे इतर कोई ज्ञान करानेवाला नहीं, इसलिये ज्ञानकी सामग्रीका अभाव रहनेसे प्रपंचका नित्यत्व सिद्ध होता हे. जेसे स्वप्नके सिंहसे स्वप्नका बाध होके जाग्रत होती हे, एसे ब्रह्मका अज्ञान उसी अज्ञानजन्य ज्ञान (अध्यात्मशास्त्र) वृत्तिसे दूर होना मानें तो वहां स्वप्न नामा जाग्रत दूर हुये दूसरा प्रपंच समक्ष हुवा हे, इसलिये एकरुप निवृत्त होके दूसरा हुवा हे; नहींके सर्वथा निवृत्ति हुई हे; अतः विषम दृष्टांत हे. (३) जब ज्ञान होगा तब अज्ञान ओर उसका कार्य प्रपंच नाश होगा, उस समय श्रोता, वक्ता न होंगे याने ब्रह्मको अज्ञान था यही सिद्ध न होगा. (४) निवृत्ति होनेके विना अध्यास--भ्रम पदकी आवृत्ति नहीं होसकती; अद्यापि निवृत्ति नहीं हुई, इसलिये अध्यास कहना नहीं बनता, ओर निवृत्तिके पश्चात श्रोता, वक्ताके अभावसे अध्यास हुवा था एसा कहनाही नहीं बनेगा. (५) अध्यात्मशास्त्रोंमें अनेक मुक्तोंके उदाहरण दिये हें सो व्यर्थ ठेरेंगे; क्योंकि ब्रह्मनामा जीव तो एक हे उसका अज्ञान अभीतक नहीं गया अर्थात वोह मुक्त नहीं हुवा. (६) ब्रह्मको वस्तुके संस्कार हों तब उसे अध्यास हो जिसको ज्ञान उसीको संस्कार यह (५०२) नियम हे, ब्रह्मसे इतर कोई अन्य ज्ञाता नहीं, अतः ब्रह्मकोही संस्कार मान्ने होंगे; परंतु संस्कार यह संस्कारीकी सूक्ष्मावस्था (वस्तु आकार--परिणाम) होती हे, इसलिये ब्रह्म अवस्थाधारी (परिणामी) ठेरेगा--विकारी होनेसे नाशवान, सावयव मान्ना पडेगा; अतः ब्रह्मको संस्कारी मान्ना दोष हे. संस्काराभावसे उसको अध्यास मान्नाभी असत ठेरता हे. जो नभकी नीलता समान, वस्तुके संस्कारके विना प्रपंचको अध्यासरुप मानोगे तो उसकी भ्रम वा

अध्यासरुपसंज्ञा नहीं कहसकोगे, किंतु आलातचक्रके समान, बाधरुप नैसर्गिक स्वाभाविक अवभास कहना पडेगा अर्थात चेतनको अज्ञान, भ्रम वा अध्यास हे वा उसकी भूल हे यह सिद्ध न हुवा.* (७) हुं, हुं, इसका वाच्य वा लक्ष्य जो हे वेसा सामान्यज्ञान ब्रह्मको होना मानें तो में दुःखी, में सुखी एसेभी ब्रह्मको भोग

---

*दृश्य नोट—यह विषय इसप्रसंगमें जलदी समझमें आजावे, इसलिये कुछ खोलके नोटमें लिखते हें. इस नोटका नाम **दृश्यदर्शन** हे.

दिवसको वर्षा होके अंबर खुला हो, कहीं कहीं बादल हों तो उनके बीचमें जितना आकाश हे वोह नीला मनोहर ज्ञात होगा ओर पहाडभी स्पष्टनीले रुपमें जान पडेगा. उस समय एक बालकको कहें के देख. यह आकाशनीला हे, पहाडनीला हे. वोह बालक इन शब्दोंके सुन्ने पहेले नीले शब्द-संस्कारके विना उनको देख रहा था. पीछे नील, आकाश, पहाड इनसंज्ञाके संस्कार हुये. इनसंस्कारके पूर्व जो नीलता उसको भासती थी उसको बालककी दृष्टिसे भ्रम वा अध्यास नहीं कहसकते, किंतु स्वाभाविक अवभास हे, एसा कहाजायगा. फेर उसको नीलारंग बतावें, उस पीछे उसको पहाडपर लेजावें तो कहेगा के यह पहाड नीला जानपडता था, परंतु यह तो नीला नहीं हे. फेर पूर्ववाले स्थानपर आके देखता हे तो पहाडवाला आकाश ओर पहाड पूर्ववत नीले मालूम होते हें. बालक हेरान हे; परंतु पहाडपर जाने पूर्व वृत्तिमें जो भाव ओर प्रकार था वोह पहाडपर जाके आने पीछे नहीं रहा; किंतु नहीं कहसकता. एसा (अनिर्वचनीय) भाव-प्रकार गम्य हुवा. किसी सायंसवेताने कहा कि आकाशमें पसरित अव्यक्त ईथरकी जब मंदमंद लहेर (गति) होती हें तब उसका एसा स्वरुप जानपडता हे, एसी उसकी प्रकृति—स्वभाव हे, वस्तुतः यह नीलता कोई वस्तु नहीं हे. पीछे बालकको समझाने वास्ते एक लकडीके आग लगाके लकडी घुमाई ओर बालकको बुलाया तो उसको अग्निका चक्र जानपडा. पीछे लकडी ठेराई तो चक्र न जानपडा. फेर लकडी घुमाई तो चक्र जानपडा. बालकको लकडी ओर अग्निके किनारेका ज्ञान न था उस समय चक्रमें जो भाव जो प्रकार था वोह अध्यास भ्रमरुप नहीं था; क्योंकि लकडी ओर अग्निके ज्ञान हुये पीछेभी वोह चक्र जान पडता था, परंतु ज्ञान होनेके पीछे चक्रके अस्तित्व-प्रकारके भाव प्रकारको अन्यथा जानने लगा. फेर उस बालकको कहा कि जेसे गतिके वेगसे वर्तमान स्थिति चक्ररुप जानपडती हे, एसेही ईथर-अव्यक्तकी अमुक प्रकारकी गतिके कारण नीलता जान पडती हे॥ अब विचारना चाहिये कि उक्त उभ-

य (नभनीलता-पहाडनीला, चक्र) प्रतीति यदि रजु सर्पवत् भ्रम, वा अध्यास रुप होती तो जेसे डोरीके ज्ञानसे सर्पकी निवृत्ति होजाती हे वेसे तद्अधिष्ठान पहाड, आकाश ओर लकडी अग्निके ज्ञान होनेपर वे निवृत्त होजाते, परंतु निवृत्त नहीं होते. किंवा जेसे डोरीमें पूर्वदृष्ट सर्पके संस्कार थे तो सर्पकी भ्रांति हुई, जो सर्पके संस्कार न होते तो सर्पकी भ्रांति न होती. वेसे यहां नहीं हे याने आकाश ओर पहाड नीले, एसे संस्कार रहितको जान पडे हें. नील संज्ञा तो पीछे जानी हे; तद्वत चक्रभी. इसलिये रजुसर्प, स्थाणु पुरुषवत् नीलता ओर चक्र अध्यास वा भ्रमरुप नहीं कहाते, ओर ज्ञानी अज्ञानीको अज्ञान तथा ज्ञानकालमेंभी पूर्ववत प्रतीत होते हैं; अतः भ्रम वा अध्यासरुप नहीं. अलबत्त उसके अधिष्ठानके स्वरुपके तथा उसके ज्ञान होने पूर्व जिस भाव जिस प्रकारमें प्रतीत होते थे वेसे, ज्ञान होने पीछे नहीं विषय होते, किंतु उससे अन्यभाव अन्य प्रकारमें विषय होते हें. अर्थात बाधरुपमें स्वाभाविक अवभास होता हे. सोभी प्रवाहसे सादिसांत, वेसीही स्वप्नसृष्टि हे. प्रवाहसे सादिसांत हे. परंतु जेसे नभकी नीलताकी प्रतीति अप्रतीतिका नैसर्गिक अनादिअनंत प्रवाह हे, एवं दृश्य (स्वप्नादि) की प्रतीति अप्रतीतिका अनादि अनंत प्रवाह हे. एसे अधिष्ठानमें दृश्य अध्यस्त हे. नहीं के अजात-शून्यरुप, भ्रमरुप वा अध्यासरुप. परंतु इतना भेद हे कि जबतक जीववृत्ति दृश्यके अधिष्ठान (ब्रह्मचेतन वा प्रत्यगात्मा) के आकार नहीं होती याने वृत्तिव्याप्ति अवस्था नहीं होती वहांतक दृश्य (उपरोक्त बालककी वृत्ति समान) अन्यभाव ओर अन्य प्रकारमें अर्थात अधिष्ठानके समसत्तावाला जानपडता हे, ओर जब कोई साधन प्रकारसे अधिष्ठानमें वृतिव्याप्ति होजाती हे तब वही दृश्य (उक्त बालकको ज्ञान हुये पीछे जेसे नभनीलता ओर चक्र जानपडते थे वेसे) पूर्वसे अन्यभाव अन्य प्रकारवाला अर्थात अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला (स्वप्नसृष्टि ओर आकाशकी नीलताके भाव प्रकारवाला) विषय होता हे ओर इस स्वाभाविक अवभासको नैसर्गिक प्रवाह याने प्रवाहसे अनादिअनंत समझता हे, सोभी बाधरुप; क्योंकि अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला हे. यह दृश्यदर्शन हे—दृश्यका सामान्य स्वरुप हे.

परंतु इस दृश्यके मूलका केसा स्वरुप हे (याने अणु हे, विभु हे, वा मध्यम हे, सावयव, निरवयव, विरुद्धधर्माश्रय वा रुपांतरपानेवाला, परमाणुपुंज वा मध्यम लचकी वा क्या ओर केसा इत्यादि) यह नहीं जाना जाता वा नहीं कहा-जाता, किंतु उसके कार्यदर्शन (यथा-स्वप्नादिदर्शन) से यथाबुद्धि नाना कल्पना,

करनेमें आती हैं; अंतमें अधिष्ठान-सद्ब्रह्मसे विलक्षण सत्तावाला अन्यथास्वरुप याने अनिर्वचनीय कहके संतोष मानलियाजाता हे. यदि उसे अनादिसांत कहें वा अणु-आदि प्रकारका कहें तो अनिर्वचनीयत्व कथनही नहीं बनता. जेसे पहाड ओर नीलताका अनिर्वचनीय विलक्षणसंबंध होनेसे उसका अन्योऽन्याध्यास होता हे.- यथा-पहाड नीला, नीलरंगका ढेर-इत्यादि अन्योऽन्याध्यास--अन्यथा अवभास हे, एवं विलक्षणा-अनिर्वचनीया ओर ब्रह्मचेतनका अनिर्वचनीयसंबंध होनेसे अन्योऽन्याध्यास होता हे जेसा के उपर कहा हे. परंतु वे मूल (अधिष्ठान, अध्यस्त) स्वरुप भ्रम वा असत् वा अध्यासरुप नहीं हैं ओर न चेतन (अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्नचेतन)को अज्ञान-भ्रम-अध्यास हे ओर न उसमें संस्कार हैं ओर न उसमें भूलजानेकी आपत्ति हे किंतु यह जो कुछ कहो वा मानो सो जो हों तो वे तमाम जीववृति (चेतनविशिष्ट वृत्ति) मेंही घटित होसकते हैं.

(शं) स्वाभाविक नैसर्गिक अवभास अर्थात क्या ? क्या पहाडकी नीलतासे कपडे रंगे जायँगे, मृगजलमें नोका चलेगी, वा उससे प्यास जायगी, इत्यादि. (उ.) इसका स्वरुप उपर कहागया हे. आपकी शंका ओर हमारा समाधानभी वेसाही-स्वाभाविक अवभास हे. यही आपका उत्तर हे. (शं.) ब्रह्मवाद, शक्तिवाद, अभावजवाद, परमाणुवाद, मायावाद, क्षणिकवाद, त्रिवाद इत्यादि सब मत पंथभी स्वीकारणीय होंगे; क्योंकि वेभी स्वाभाविकअवभासवादके विषय हैं. (उ.) स्वाभाविकअवभासमें ३ प्रकार जान पडते हैं-(१) व्यवहारमें सत्ख्याति (यथा अन्यख्याति-परिणाम वगेरे ख्याति), (२) असत्ख्याति (यथा अर्थशून्य कल्पना), (३) अनिर्वचनीय-विलक्षणख्याति (यथा अधिष्ठानाध्यस्तका खरा स्वरुप). अनिर्वचनीयख्याति परमार्थ पक्ष वा कारणवादमें होती हे ॥ अब जो वाद असत्ख्यातिका विषय हो उसको असत् स्वाभाविकअवभास कहेंगे. एवं अन्य प्रसंगमें यथायोग्य. इसलिये यथाप्रसंग यथायोग्य मानलेना चाहिये (विशेष विस्तार मूलमें, वसु. में ओर आगे वांचोगे). (शं.) भ्रम-अध्यास ओर स्वाभाविकअवभास (बाधवाद) में अंतर क्या हुवा ? (उ.) उभय समान हैं. पहेले पक्षमें समचेतन विकारी ठेरता हे, उत्तरमें नहीं. पहेलेमें माया अनादिसांत मान्ना पडता हे, उत्तरमें प्रवाहसे अनादिअनंत कहना होता हे. अनिर्वचनीय मायाका उभयमें स्वीकार हे. पहेलेमें ब्रह्म पीछे केवलाद्वैत हे, उत्तरमें हमेशे केवलाद्वैत हे. व्यवहार विषे उभयमें द्वैतवाद हे. सारांश (१) समचेतन निरवयव विभुमें स्फुरण--विचार--कल्पना--

होना चाहिये, परंतु जो भोक्ता होता है वोह एकरस (सम) विभु नहीं होता. (८) " ब्रह्म एकरस सम हे, " यह कथन श्रवण हम ओर आप दोनोंको वा किसी अन्य ब्रह्मको होता हे ? आद्यपक्षमें ' ब्रह्म एकजीव ' यह पक्ष बाधित हुवा. उत्तर पक्षमें हम दोनों अध्यासके विषय होनेसे वोह एकरस हे, एसा हम नहीं जानसकते. सारांश, ब्रह्मको अज्ञान, अध्यास ओर बंधमोक्ष, यहँ कहनाही नहीं बनता.

(२) पूर्वोक्त दूसरा पक्ष मानें याने ब्रह्मसंस्कारी नहीं, परंतु माया संस्कारी हे; मायाने नामरुप आत्मक परिणाम नहीं रखे, तोभी माया बलसे ब्रह्मही नाम रुपात्मक प्रतीत होता हे; माया अध्यासरुप नहीं तथापि माया करके अध्यास हे, ओर ब्रह्मको अज्ञान हे, इसलिये अध्यास हे; एसा ऊपर कहा हे. तहां (क) अज्ञान पक्षवाले उपरोक्त दोष आवेंगे. (ख) ओर संस्कार अन्यको, ज्ञान अन्यको एसा होना असंभव हे; अतः अध्यास माना तो ब्रह्मकोही संस्कारी कहना होगा; इसलिये पूर्वोक्त दोष आवेंगे. (ग) अनादि मायाकी निवृत्तिमें कोई हेतु वा सामग्री नहीं मिलती; क्योंकि अज्ञान ओर अध्यातमउपदेश उसीके कार्य हें. (घ) स्वप्नके सिंहवत निवृत्तिका हेतु मानें तोभी पूर्वोक्त दोष आवेंगे. यथा-अध्यात्म मायाको परिणामी मान्ना होगा. (ङ) मायाबलसे ब्रह्मही नामरुपात्मक भासता हे, एसा नहीं कहसकोगे. ओर जब मायाका परिणाम माना तो उत्तरपक्ष स्वीकार होगा. (च) अज्ञान वस्तु नहीं किंतु योग्यसंबंधका अभाव, एसी स्थितिका नाम अज्ञान हे, एसी अवस्था निज स्वरुपमें नहीं होसकती. अ. २ । २७५भी यही बताता हे, अतः ब्रह्मको स्वस्वरुपका अज्ञान हुवा; या हे, वा होगा, एसा कहनाही नहीं बनता.

संकल्प--संस्कार--भाव परिणाम--लहेर वा अज्ञान, भ्रम--अध्यास, नहीं मानसकते, जो इसीको उसकी माया मानें तो ब्रह्म दूषित ठेरता हे. इसलिये माया, जिस भाव जिस प्रकारवाली भावरुप अनिर्वचनीय (सत्--ब्रह्मसे विलक्षण) मानीजाती हे वेसीही भावप्रकारवाली ओर वेसे भावप्रकारवाले उसके नामरुपात्मक परिणाम किंवा उसकरके नामरुप भासते हें सो मानलेवें तो उपरोक्त दोष नहीं आते ओर ब्रह्म सत्य ओर जगविलक्षण होनेसे स्वरुपाप्रवेश नियमका बाधभी नहीं आता. विशेष विस्तार वसु. में हे. इसको दृश्यदर्शनकी पद्धति, इसी प्रकरणमें कहेंगे. (शं.) इस अवभासवादके कार्योंका कुछ नियमभी हे. (उ.) अ. ४ में वांचोगे. विस्तार वसु. में हे; क्योंकि तत्त्वदर्शनका विषय कारणवाद हे.

उपरोक्त रीतिके अनुसार ब्रह्ममें अज्ञान, संस्कार वा उसको भ्रम-अध्यास, न होसकनेसे याने अज्ञानादिका उसमें अभाव होनेसे १, ओर जगतका उपादान माया (मेटर-शक्ति-प्रकृति वगेरे) तथा तिसजन्य--मायावी नामरुप, भ्रम वा अध्यासरुपकी असिद्धिसे २, तथा माया अनादिसांत न होनेसे ३, ब्रह्मके रुपमें दृश्य, बाधक होने योग्य हे अथवा तो दृश्यका अभाव होना चाहिये ॥ यहांतक समष्टिअध्यासका अवभास कहा. इसलिये अब आगे पूर्वपक्षी अपना व्यष्टिअध्यासका निरुपण करता हे.—

पूर्वपक्ष नं. २.

व्यष्टि दार्ष्टांत. अथवा ब्रह्मचेतन निष्कलंक, निर्विकल्प, विधर्म, शुद्ध स्वरुप चिन्मात्र हे, न उसको कभी अज्ञान हुवा, न हे ओर न होगा, तथा वोह अपने स्वरुपको भूला वा भूलेगा एसाभी नहीं हे, ओर न उसको भ्रम वा अध्यास हुवा, न हे ओर न होगा, तथा अलुप्त स्वप्रकाशस्वरुप हे. परंतु अनिर्वचनीय माया उसमें अनादिसे हे, तदाश्रितही तिसकी उपाधि हे (वा उसकी शक्ति हे). उस मायाकेही अविद्यारुप नाना अंश हें; यह अविद्या हे जिसकी उपाधि, सो चेतन अर्थात अविद्याउपहित चेतन (घट आकाशवत् प्रत्यगात्मा) वा अंतःकरण (मायाका परिणाम विशेष) उपहितचेतन वा अविद्याविशिष्टचेतन वा अंतःकरणविशिष्टचेतन वा उनमें चिदाभास साधिष्ठानचेतन, जीव कहाता हे. नाना अविद्याअंश अनादि होनेसे वे जीवभी अनेक हें ओर अनादिसे हें. अविद्याका आवरण होनेसे उनको अधिष्ठान ब्रह्मका विशेषज्ञान नहीं हे, यथा—ब्रह्म शुद्ध, कूटस्थ, सच्चिदानंद स्वरुप मेंहीहुं वा वोह मेरा आत्मा हे, एसा अज्ञान हे. ओर "मेंहुं एसे सामान्य ज्ञान हे. उसी मायाके दूसरे अनेक नाम रुपात्मक परिणाम हें, यथा--देश, काल, पंचतत्व, सूर्य, शरीरादि. अनादि जीवको अनादिसे उनके संस्कार हें. उपर कहीं रीति (रज्जु सर्पवत) से ज्ञान, अज्ञान ओर संस्कारसे, अधिष्ठान ब्रह्ममें अविद्या-मायाकृत अनेक नामरुपात्मक जगत भासती हे. सो अध्यासरुप हे. वे नामरुप अविद्या-मायाके परिणाम हें, ओर चेतन ब्रह्मके विवर्त्त हें तथा ब्रह्म उनका विवर्त्तोपादान हे; क्योंकि ब्रह्मही अन्यथा नामरुपात्मक भासता हे; इसलिये जीवको अध्यास हे, तथा उपहित वा विशिष्ट चेतन कर्ताभोक्ता नहीं हे, तोभी अविद्या ओर तद परिणाम-नामरुपका संसर्ग हे; इसलिये उनके धर्म, चेतन (प्रत्यगात्मा) में भासते हें; अतएव मेंकर्ता, में

भोक्ता, एसा संसर्गाध्यास हे ओर शरीरादि अविद्याकृत हें उनमें चेतनताका अध्यास हे. इसप्रकार अनादिसे अनेक जीवोंको अध्यास हे. जब जिस जीवको स्वरुपज्ञान (में कूठस्थ ब्रह्म हूं एसा ज्ञान) होजावे तब सो अनादिअज्ञान (अविद्या) नष्ट होजाता हे ओर जीवचेतन मुक्त होजाता हे. फेर बंधनमें नहीं आता--नित्य मुक्त रहता हे. उनको अधिष्ठानका ज्ञान होजानेसे मायाका कार्य जो नामरुप जगत वा बंध उसकी निवृत्ति होजाती हे. शेष अपना अधिष्ठान स्वरुप रहता हे. इसप्रकार अनेक जीव मुक्तिको प्राप्त हुये हें ओर होते हें. इसपक्षमें बंध, वर्णाश्रमके व्यवहार, धर्मशास्त्र ओर अध्यात्मशास्त्रादि सब माया-अविद्याके परिणाम हें. अज्ञानीजीव उनको अन्यथा (सत्) मानता हे, यही अध्यास हे. जोकि उक्त उपहित वा विशिष्टचेतन तो पूर्वमेंभी शुद्ध, कूटस्थ था परंतु अविद्या-अज्ञानसे अन्यथा भासता था, इसलिये ज्ञान हुये—" ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या एसा ज्ञान हुये " वा " जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान हुये " वा " अहंब्रह्म एसा ज्ञान हुये " अज्ञान-अविद्याका नाश होनेपर मुक्त हुवा, एसा कहाजाता हे. सारांश आत्मामें बंध भ्रांतिरुप था उसकी निवृति होती हे. परमार्थतः न बंध, न मोक्ष, न जिज्ञासु, न साधन ओर न कोई मोक्षप्रतिपादकशास्त्र हे; यह सब मायामात्र हे. अविद्या, अज्ञान वा माया, ज्ञानबाध्य हें ओर सदअसतसे विलक्षण हें; जगत अध्यासरुप हे अतःअनादि सांत हे ओर कल्पनामात्र होनेसे ब्रह्ममें माया ओर उसके कार्यके स्वरुपका प्रवेश नहीं हे; अतः भेद नियम बाधक नहीं होता; क्योंकि जगत रज्जु सर्पवत् हे. इस पक्षमें ज्ञानाध्यास ओर अर्थाध्यास दोनों हें.

उत्तर पक्ष नं. २.

व्यष्टि दार्ष्टांतका अपवाद—(१) उपहित वा विशिष्टचेतनका नाम जीव हे. तहां अज्ञान, भ्रांति, अभिमान, दुःखसुख, भोक्तृत्व, यह सब उपाधि (विशेषण) को वा उपहित (विशेष्य) को वा उभयको? तहां अवच्छिन्न वा अनवच्छिन्न चेतन निर्विकल्प, कूठस्थ हे तथा अक्रिय, अपरिणामी हे; उसमें वे कहना बने नहीं; उपाधि जड हे अतः उसको अज्ञानादि होना असंभव. जो उभयमें मानें तो एकएकमें न होसकनेसे उभयमें नहीं, यह सिद्ध होगा; अतः उपहितचेतनकोभी जीव कहना बने नहीं. यदि कहो तो उपर कहे अनुसार चेतन विकारी, ओर कर्ता भोक्ता ठेरेगा. (२) पूर्वपूर्वके संस्कार किसमें? उपहित चेतनमें वा विशिष्टचेतनमें मानें तो उपर ब्रह्म प्रसंगमें कहे अनुसार चेतन विकारी होगा;

अतः चेतनमें नहीं. ओर अविद्या--माया भागमें मानें तो दुःखसुख वगेरेभी अविद्या (अंतःकरण) को होनाचाहिये, परंतु जडको दुःखसुख होना बने नहीं; अतःसंस्कार शून्य (असंस्कारी) चेतन भागको अध्यास नहीं होसकता ओर जडको अध्यास होना बने नहीं. ओर जब उभयमें नहीं तो विशिष्टमेंभी नहीं मानसकते. (३) जो क नामका अविद्या भाग (अंतःकरण वा आभास) ख (चेतन) देशको छोडके ग देशमें जावे तो ग चेतन देश क उपहित होजानेसे अभिमानी ओर दुःखी होगा. तथा ख अनुपहित (उपाधि शून्य) होजानेसे शुद्ध-मुक्त होजायगा. पुनः जब ख स्थानमें च अविद्यांश आवे तब ख चेतन च उपहित होनेसे मलिन-बद्ध होगा. ओर जो वहांही क आजावे तो क उपहित हुवा बंध होगा. इसप्रकार विभु चेतनके भाग हमेशा मलिन--बद्ध ओर शुद्ध-मुक्त होते रहेंगे पूर्णचेतन कभीभी बंध, मुक्ति स्थितिसे वर्जित न होगा. (४) जो ख चेतनमें संस्कार, स्मृति मानें तो च रहित क जब ग चेतनांशकी उपाधि हुवा तो पूर्वकी स्मृति न होनीचाहिये, परंतु स्मृति होती तो हे; अतः सो (संस्कार--स्मृति) उस चेतनमें नहीं होनाचाहिये. ओर जो चेतनमेंही संस्कार-स्मृति होना मानें तो उपर (समष्टि प्रसंगमें) कहे अनुसार चेतन विकारी (परिणामी) ठेरेगा; इसलिये संस्कार, अविद्या (अंतःकरण) में हें, एसा मान्ना पडता हे; परंतु उसको ज्ञान नहीं होता, तो फेर उसको स्मृति केसे होसकती हे, इसलिये क अविद्याके साथ पूर्ववाला चेतन (च) साथ आना मान्ना पडेगा ओर चेतनात्मा सक्रिय तथा विकारी ठेरेगा. इसप्रकार उभयपक्षमें दोष आता हे. (५) जो अविद्या वा अंतःकरणमें चेतनका आभास (वा प्रतिबिंब) मानके व्यवस्था करें तोभी ज्ञान, स्मृति, ओर कर्तृत्व भोक्तृत्वकी व्यवस्था नहीं बनती; क्योंकि वोह क्षणक्षणमें बदलता हे (२ । ४६८ विचारो) तथा वह मायाका कार्य ओर जड हे; अतः उसमें ज्ञान वगेरेकी व्यवस्था नहीं बनती. (६) सूर्य चंद्र एक हें तो वे नाना जीवोंमेंसे किस एक जीवका अध्यास हे, सो नहीं कहसकोगे; अतः अध्यासरुप नहीं. ओर यदि 'सृष्टिदृष्टिवाद' मानके उनको अविद्याका कार्य नहीं कहके मायोपहित ईश्वरचेतनकृत मानोगे तो जीवकी अविद्या निवृत्त होनेपर उनका अभाव न होगा. याने प्रपंच अध्यासरुप नहीं किंतु माया अनादि अनंत हे, यह सिद्ध होगा. जो उस ईश्वरकोभी अध्यास (भ्रांति) रुप मानोगे तो उन नाना जीवोंमेंसे वोह ईश्वर किसका अध्यास हे सो नहीं कहसकोगे. जो जीवजीव प्रति जुदाजुदा सृष्टि ओर जुदाजुदा

ईश्वर मानोगे' तो यह सूर्य, ईश्वर किसकी सृष्टि हे, इसका उत्तर न मिलेगा. जो पूछने वालेकाही दृष्टिसृष्टिवाद मानें तो आपका नाना जीववादभी सिद्ध न होगा. याने स्वपक्षका त्याग होगा. ओर समष्टि दार्ष्टांतवाले दोष आवेंगे. (७) एक क जीव मुक्त हुवा उसके स्थानमें दूसरा च बद्ध जीव आया तो पहेला चेतन पुनःबद्ध हो गया; क्योंकि चेतन सर्वत्र एक, अक्रिय हे. अविद्या नामकी मछली उसमें इधरउधर जाती आती रहती हे. इस रीतिमें यातो चेतन क्षणक्षणमें बद्ध मुक्त होता हे एसा वा तो उसे बंध मोक्ष नहीं एसा, तथा कोई बद्ध मुक्त नहीं हे वा नहीं हुवा एसा मान्ना होगा, जोके आपके माने हुये अध्यात्मशास्त्रको अमान्य हे. (८) एक उपहित चेतन (प्रत्यगात्मा) को 'में ब्रह्म स्वरुप,' एसा ज्ञान हुवा तो यह ज्ञान सब उपहितोंका हे; क्योंकि चेतन एकही हे. अतः एसा ज्ञान हुये अध्यासरुप प्रपंचकी निवृत्ति होजानी चाहिये; परंतु ग्रंथोंमें आत्मवित मुक्त हुये सुनते हें तथापि प्रपंच निवृत्त न हुवा किंतु पूर्ववत्‌ही हे; अतः सो ज्ञानभी अविद्या–मायामेंही मान्ना पडेगा अर्थात मायाकी विद्यावृत्तिकाही परिणाम हे ओर अध्यासरुप हे, एसा स्वीकारना होगा; क्योंकि जब क. ज्ञानी द. देशको छोडके म. देशमें गया तो द. देशस्थचेतन साथ नहीं जाता ओर म. देशमें अहंब्रह्मपनेका अभिमान वा स्मृति हे, अतः यह ज्ञानभी अविद्या, मायाका परिणाम हे; इसलिये उससे अध्यासरुप प्रपंचकी निवृत्ति नहीं होती अथवा प्रपंच अध्यासरुप नहीं यह सिद्ध हुवा. इसीप्रकार 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इस ज्ञानकेलिये योजलेना चाहिये याने यहभी मायाकी वृत्तिमात्र हे, चेतनकी वृत्तिरुप नहीं हे. (९) जीव ब्रह्मकी एकता, अहं ब्रह्म, ब्रह्म कूटस्थ शुद्ध, जगत मिथ्या, इत्यादि भाववाला ज्ञान किसको हुवा, अर्थात ब्रह्मात्मा निर्विकल्प साक्षीमात्र हे ओर माया –अविद्या–अंतःकरण जड हें, इसलिये उनको सो ज्ञान नहीं. ओर यह उभय विशिष्टमेंभी नहीं बनता, क्योंकि किसी एकमेंभी नहीं हे; अतः अध्यास, अज्ञान निवर्तक सामग्रीका अभाव होनेसे प्रपंच अध्यासरुप नहीं. (१०) आपके पक्षमें साध्यसम (प्रकरणसम) दोष आजाता हे, याने जबके ब्रह्मसे इतर सब (जाग्रत, स्वप्न, रज्जुसर्प, तन, मन, इंद्रिय, अविद्या, माया वगेरे) मिथ्या तो आपका यह मंतव्य कथनभी मिथ्या होनेसे त्याज्य ठेरा वा तो इस साध्यका साधक अन्य दूसरा कोई सत् स्वरुप होना चाहिये; परंतु ब्रह्मेतर कोई नहीं हे. तथाहि अद्वैतका स-

'वाचस्पतिमिश्र ओर योगवाशिष्टका मत हे.

स्यत्व, मिथ्यात्वका सत्यत्व वा मिथ्यात्वका मिथ्यात्व, इस विषयके निर्णय करनेकी तकरार लें तो इनका साधक दूसरा मान्ना पडता हे, उसको अध्यासरुप नहीं मानसकते; अथवा तो सब स्वप्नगत-सत्य मिथ्याके समान ठेरेंगे ओर चुप रहना पडेगा. तथाहि जबके डोरीके सर्पवत् वा स्थाणुके पुरुष समान अविद्या--माया वा उसके परिणाम स्वरुपतः वस्तु नहीं तो ब्रह्म तथा माया वगेरेका अनिर्वचनीय संबंधभी केसा? उभयका उपयोग क्या? ब्रह्म सत्ता स्फुरण किसको दे? अर्थात कुछभी नहीं. तो फेर वही साध्यसम दोष आजानेसे आपका मंतव्य कल्पनामात्र ठेरता हे.

(शं.) उपर जो देशकालकी कल्पना, अविद्याका आनाजाना, नाना अविद्या, नाना जीव, बंध, मोक्ष, शास्त्र इत्यादि ओर उनके संबंधमें जितना प्रतिपक्ष किया हे, सो सब भ्रांतिही हे; इसीका नाम अज्ञान हे; परमार्थतः न देश, न काल, न अविद्या, न जीव, न अविद्याकी गति, न आभास, न चेतनका बंध, न मोक्ष, न साधन ओर खंडन-मंडन, मंतव्य-अमंतव्य--इत्यादि कुछभी नहीं हें, स्वप्नवत् प्रतीतमात्र हें, चेतनके विवर्त्त हें, ओर अकथ्य--अनिर्वचनीय विषय हें. अविद्यादिकी कल्पना जिज्ञासुओंको बोध होने वास्ते की गई हें. (उ.) तो फेर नाना जीव, जगत अध्यासरुप, चेतन याने जीवोंको वा ब्रह्मको अज्ञान, भ्रम--अध्यास, बंध मोक्ष इत्यादि मान्ना ओर परपक्ष खंडन करना छोड दीजे. समझे हो तो मौन धारिये. (शं.) जो एसा हो तो परको लाभ न हो. (उ.) उपरोक्त अपवादका उत्तर न मिलनेसे उक्त समष्टि वा व्यष्टि पक्ष नहीं बनता. माया--अविद्या, अध्यासका कारण हे, अध्यासरुप नहीं हे; इसलिये ब्रह्मके स्वरुपमें उसका प्रवेश न होनेसे उसका अभाव ओर ब्रह्म वा प्रत्यगात्मा चेतनको अज्ञान, भ्रम, अध्यास न होनेसे जगत भ्रमरुप (अजातः-मिथ्या) नहीं हे तथा उपर कहे अनुसार अध्यासकी सामग्री सिद्ध नहीं होती, अतः दृश्य संबंधमें भेदानियम बाधक होता हे. (शं.) तो फेर उभय प्राप्तकी केसे व्यवस्था होसकती हे. (उ.) सत्ता[१] ओर अवस्थाके विवेकसे (सू. ४०४) व्यवस्था होजाती हे (दृश्यनोट पृष्ट ७७३भी ध्यानमें लीजिये). ॥ ४०४ ॥ सो आगे लिखते हें—

तहां प्रथम सत्ताका वर्णन करते हें—(इसका मूल उलेख अ. २ सत्ता अधिकरणमें हे, उसका विस्तार यहां करते हें)—

[१] सत्ताप्रकरण नवीन पद्धति नहीं हे, वेदांतके मान्य ग्रंथोंमें इसका मूल हे.

सत्ता विचार.

अस्तित्व प्रकार सत्ता ॥ ४०५ ॥ साद्विधा परा अपरा ॥ ४०६ ॥ स्वयंसिद्ध ओर समानलक्षणवति परा ॥ ४०७ ॥ जेसे समचेतनकी ॥ ४०८ ॥ वा स्वप्नके अधिष्ठानकी ॥ ४०९ ॥ उससे इतर अन्यथा अपरा ॥ ४१० ॥ वा जिसकी अस्तिभाति स्वतः सिद्ध न हो ॥ ४११ ॥ किंवा अस्तिवत् न अस्ति, नास्तिवत् न नास्ति, अस्ति नास्तिवत्, नास्ति अस्तिवत् ॥ ४१२ ॥ बाधरुप होनेसे ॥ ४१३ ॥ यथा समचेतनसे इतरकी ॥ ४१४ ॥ वा अध्यस्त स्वप्नकी ॥ ४१५ ॥ उभय अनुभव गम्य ओर अकथ्य ॥ ४१६ ॥ व्यवहारमें अपराके दो भेद ॥ ४१७ ॥ प्रतीतकालमें परावत् ओर पीछे अन्यथा सो मूला ॥ ४१८ ॥ जेसे जाग्रत ओर स्वप्नकी ॥ ४१९ ॥ प्रतीतकालमें मूलावत् ओर पीछे अन्यथा सो तूला ॥ ४२० ॥ यथा मृगतृष्णिकाकी ॥४२१॥ सत्ताके नियम पूर्ववत् ॥४२२॥

अर्थ.—प्रस्तुत प्रसंगमें अस्तित्वप्रकारका नाम सत्ता हे. यद्यपि शक्ति ओर योग्यताका नामभी सत्ता हे तथापि यहां वोह अर्थ नहीं हे ॥ ४०५ ॥ सो सत्ता दो प्रकारकी हे १ परा, २ अपरा ॥ ४०६ ॥ जो अस्तित्व विशिष्ट दूसरेकी अपेक्षा विना स्वयं सिद्ध हो, अपनी सिद्धि-प्रतीतिमें दूसरेकी अपेक्षा न रखती हो ओर कभीभी परिवर्तनको न पावे किंतु समान (अबाध्यरुपसे) वर्तती हो, एसे लक्षणवाली सत्ता (अस्तित्वप्रकार) को **परासत्ता** कहते हें ॥ ४०७ ॥ जेसे के समचेतन ब्रह्मकी सत्ता (अस्तित्व प्रकार) हे ॥ ४०८ ॥ किंवा जेसे स्वप्नके अधिष्ठान चेतन (प्रत्यगात्मा) की सत्ता हे ॥ ४०९ ॥ उस परासे इतर दूसरे प्रकारकी जो सत्ता हो अर्थात जो सत्ता स्वयंसिद्ध न हो, जिसकी सिद्धिमें परकी अपेक्षा हो ओर बदलती हो उसको **अपरा** सत्ता कहते हें ॥ ४१० ॥ किंवा जिसकी अस्ति ओर भाति स्वतः सिद्ध न हो किंतु परसे हो उसे **अपरा** सत्ता कहते हें ॥ ४११ ॥ किंवा जो हे जेसी, परंतु हे, एसी नहीं; ओर नहीं जेसी, परंतु नहीं एसी नहीं; ओर हे परंतु नहीं जेसी, ओर नहीं परंतु हे जेसी; एसे अनिर्वचनीय लक्षणवाली हो उसे अपरासत्ता कहते हें ॥ ४१२ ॥ एसे लक्षण करनेका हेतु यह हे के अपरासत्ता बाधरुप होती हे. याने प्रतियोगीकी अपेक्षा विना अभाववत् होती हे ॥ ४१३ ॥[१] जेसे के समचेतन ब्रह्मसे इतरकी अपरासत्ता हे

[१]कल्पितवत् न कल्पित, अकल्पितवत् न अकल्पित, अध्यासवत् न अध्यास॥

॥ ४१४ ॥ किंवा चेतन अध्यस्त स्वप्नसृष्टिकी अपरासत्ता हे; क्योंकि उक्त लक्षण उसमें घटते हें ॥ ४१५ ॥ परासत्ता (पारमार्थिक सत्ता) ओर अपरासत्ता (प्रातिभासिक सत्ता) यह दोनों प्रकारकी सत्ता अनुभव गम्य ओर मनवाणीसे न कहीजावें, एसी होती हें याने मनवाणीका विषय नहीं हें ॥ ४१६ ॥ स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टि ओर उसके द्दष्टाचेतनकी सत्ताका मुकाबला करो ओर जागने पीछे पूर्ववाले विद्यमान चेतनकी सत्ता ओर कहींभी नहीं, एसी स्वप्नसृष्टिकी सत्ताका मुकाबला करो तथा द्दश्य जाग्रत ओर द्दष्टाचेतनकी सत्ताका मुकाबला करो ओर स्वप्न सृष्टिकी ओर जाग्रतसृष्टिकी सत्ताका मुकाबला करो ओर स्वप्नकालकी द्दष्टि लेके स्वप्नसृष्टि ओर जाग्रतद्दष्टिका मुकाबला करो ओर पुनः उभयसृष्टिकी तथा चेतनकी सत्ताका मुकाबला करो–विचारो–निरीक्षण करो तो उभयकी विलक्षणसत्ता स्वतः अनुभवमें ग्रहण होजायगी ओर फेर उसका भाव वा प्रकार न कहसकोगे. गूंगेके स्वप्न समान जानके चुप रहोगे ॥ उक्त लक्षणका संक्षेपमें निराकरण.–स्वप्नसृष्टिका अस्तित्व स्वयंसिद्ध नहीं याने द्दष्टाचेतनकी अपेक्षा रखता हे. स्वप्नकालमें सत्‌रुपसे प्रतीत होता हे, बाध हुये पीछे पूर्वजेसे भाव वा प्रकारवाला नहीं जानाजाता (जाग्रतमें आके देखो). स्वप्नसृष्टिकी अस्ति (हे) ओर भाति (प्रतीति) स्वतः सिद्ध नहीं हे जेसे के डोरीगत सर्पकी अस्तिभाति डोरीसे इतर स्वतः सिद्ध नहीं हे, वेसे स्वप्नसृष्टिकी अस्तिभाति चेतनसे इतर चेतन विना नहीं हे; क्योंकि बाध हुये पीछे कहींभी वोह नहीं हे, स्वप्नसृष्टिका अस्तित्व " हे जेसा " हे परंतु हे (अबाध्य) रुप नहीं हे. जो अस्तिरुप होता तो उसका बाध न होता. ओर स्वप्नसृष्टि नहीं जेसी हे; परंतु नहीं, एसी नहीं हे; क्योंकि जो नहीं होती तो प्रतीतभी नहीं होती. ओर स्वप्नसृष्टि हे; परंतु नहीं जेसी हे; क्योंकि पूर्व उत्तरमें नहीं हे ओर बाधित हे. ओर स्वप्नसृष्टि नहीं हे (क्योंकि जितने देशकाल चाहिये उतने देशकालादि सामग्री विना की हे ओर बाधित हे. अस्तित्वविशिष्टका बाध नहीं होता; अतः नहीं हे); परंतु हे जेसी हे; क्योंकि जो सर्वथा न हो तो प्रतीतही नहीं होनी चाहिये. सारांश स्वप्नसृष्टि बाधरुप हे; क्योंकि स्वप्न स्वप्नकालमेंभी वेसी सत्तावाला हे जेसा के जाग्रतमें आने पीछे उसकी सत्ता अनुभवते हो अर्थात अपनी हयातीमेंभी बाधरुप

इन लक्षणका ओर अस्तिनास्ति वगेरे लक्षणका विस्तार भू. ओर बस. में हे. यहां सूचिमात्र हे.

हे; इसलिये प्रतियोगी (स्वप्नसृष्टिके अभावका प्रतियोगी स्वप्न हे)के भाव बिना नास्तिवन् होनेसे बाधरुप कहा हे. एसेही अध्यासका विषय अपरा सत्तावाला होता हे.

उपर जितने लक्षण उदाहरण कहे वे समचेतनकी सत्तामें नहीं घटते किंतु वोह स्वयं सिद्ध समान हे. इन सत्ताओंका वैलक्षण्य अनुभव करनेके योग्य हे[1]; क्योंकि अधिष्ठानके स्वरुपमें दृश्य प्रपंचकी सिद्धि सत्ताके वैलक्षण्यसे होती हे. अध्यास वा अज्ञानादिसे सिद्ध नहीं होती. जो के वे अपने स्वरुपके उदाहरणमें वे आपही हें, उन जेसा अन्य नहीं हे, अतः परस्परकी विलक्षणतासे अकथ्य प्रकारसे वे अनुभवगम्य होजाती हें; इसलिये स्वतंत्र निरीक्षणकरके अनुभवमें लेने योग्य हें (विशेष विस्तार बस. ओर भू. में हे) ॥ ४१६ ॥ अब आगे व्यवहारदृष्टिसे सत्ताके भेद लिखते हें.—

व्यवहारमें (व्यवस्थाकी दृष्टिसे) अपरा सत्ताके दो भेद मानलियेजाते हें क्योंकि समानसत्तावाले परस्परके साधक बाधक ओर विषमसत्तावाले परस्परके बाधक तथा अबाधकभी जान पडते हें, परंतु एसे उदाहरण मूल सत्ता (परा, अपरा)में नहीं मिलसकते किंतु अव्यक्तके कार्यमेंही मिलते हें ॥ ४१७ ॥ जो सत्ता सन्मुख--प्रतीतकालमें परासत्ताके समान जान पडे ओर पीछे (बाधकालमें) परासे अन्य प्रकारकी जान पडे उसे मूलासत्ता कहते हें ॥ ४१८ ॥ जेसे जाग्रत ओर स्वप्नसृष्टिकी सत्ता (अस्तित्वप्रकार) हे ॥ ४१९ ॥ स्वप्नसृष्टि स्वप्नकालमें चेतनसमान सत्तावाली याने परासत्तारुप जान पडती हे ओर बाध हुये पीछे परासे अन्यथा याने अपरारुप थी, एसा अनुभवमें आजाता हे. तद्वत् जाग्रतसृष्टि जाग्रतकालमें चेतनसमान सत्तावाली याने परासत्तारुप जान पडती हे ओर बाध हुये पीछे अर्थात स्वप्नकालमें (जो जाग्रतके पदार्थोंकी स्मृत्ति होजाय तो स्वप्नवत्) परासे अन्यथा याने अपरारुपथी, एसा जान पडता हे; इसलिये स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टिकी ओर जाग्रतकालमें जाग्रतसृष्टिकी सत्ताको मूला कहते हें; वस्तुतः वोह अपरा सत्ता हे ॥ ४१९ ॥ जो सत्ता प्रतीतकालमें मूला जेसी जानपडे ओर बाध हुये पीछे मूलासे (जाग्रत स्वप्नसे) अन्य प्रकारकी जानपडे उसे तूला सत्ता कहते हें ॥ ४२० ॥ जेसे मृगजल प्रतीतकालमें जाग्रतके अन्य जलसमान (मूला सत्तावाला) जान पडता हे, ओर बाध हुये पीछे मूलासे अन्यथा (भ्रम--अध्यास निष्फल प्रवृत्तिका जनक) जान पडता हे; इसलिये मृगजलकी तूला सत्ता हे; इसको

[1] परिशेष अनुमान ओर मनका अभ्यासी, विवेकी इसको शीघ्रही अनुभव करसकता हे.

प्रातिभासिक सत्ताभी कहते हें ॥ ४२१ ॥ इसीप्रकार डोरीसर्पादिकी भ्रमस्थलमें सर्वत्र तूलासत्ता जानलेना चाहिये. किंवा जेसे स्वप्नकालमें जो डोरीगत सर्प वा मृगजल जानपडता हे उसकी तूला सत्ता हे; क्योंकि वहां स्वप्नसृष्टिकी सत्ता मूला हे. वहां डोरी सर्पादि प्रथम मूलावत् भासते हें, बाध हुये पीछे उससे अन्यथा थे एसे जानपडते हें. किंवा बालक जिन गुड्डा, गुड्डीको ओर लकडीके अश्वको सत्य जानके उसके साथ सत्य वृत्तिसे रमते हें, उनकी तूला सत्ता हे; क्योंकि समझु हुये वेसा भाव वेसा प्रकार नहीं जानपडता ॥ ४२१ ॥ जिन सत्ताका बयान हुवा वे परस्परमें विलक्षण हें, याने परासत्तासे अपरा विलक्षण हे, वेसेही इन सत्ताके नियमोंमेंभी विलक्षणता हे; सो विलक्षणता अ. २ । ४१५, ४१८, ४२३, ४२४, ४२५में दरसाई हे ॥ ४२२ ॥ अर्थात समसत्तावाले साधक ओर बाधक होते हें, विषमसत्तावाले परस्परके बाधकही हों, एसा नियम नहीं हे. किंतु साधकभी होते हें, जेसे के स्वप्नका दृष्टाचेतन उससे विषमसत्तावाली स्वप्नसृष्टिका साधक हे, बाधक नहीं हे, ओर स्वप्नसृष्टि उसके व्यापक अधिष्ठानचेतनकी बाधक नहीं हे; इसलिये अधिष्ठानके स्वरुपको बाध न करती हुई--उसके स्वरुपमें प्रवेश न करती हुई, आकाशकी नीलताके समान अस्पर्शवत् अध्यस्त हे.

(शं.) जो मुलासत्तावाले (अपरा-प्रातिभासिक) सत्तावाले देश, परमाणु, गुण, गुण्यादि हें उनमें भेदसूत्रबाधक होगा; क्योंकि समसत्तावाले हें तथा जो तूलासत्तावाले मृगजल ओर मृगजलमें वृक्ष पशवोंके प्रतिबिंब इत्यादि हें उनमें भेदसूत्रबाधक होगा; क्योंकि समसत्तावाले हें. (उ.) उनकी सत्ता स्वयंसत्ता नहीं किंतु अ. ३ । ४११ अनुसार हे. जेसे के आकाशगत नीलता की हे, स्वप्नगत रज्जुसर्पकी हे; अतः बाधक नहीं होसकते; इसलिये शंका नहीं बनती॥४२२॥

स्वप्नथीयरी.

स्वप्नसृष्टि क्या ओर उसका उपयोग क्या ओर उससे क्या परिणाम निकलते हें, यह तमाम शंका समाधान सहित जो प्रकार बताता हो उसे स्वप्न पद्धति वा स्वप्नथीयरी कहते हें.—

इसके ६[1] अंग हें—(१) स्वप्न अर्थात क्या ? स्वप्न विकल्पादि ३८ रुप नहीं (इसका बयान असिद्ध प्रकरणमें कहा हे). (२) स्वप्न यह ब्रह्मसे विलक्षण अनिर्वचनीयमायाका संस्कारद्वारा परिणाम हे (यह कहेंगे). (३)

[1] संस्कृतकी आवृतिमें अ. ४ गत एक साथ हें.

स्वप्न, जाग्रत जेसी सृष्टि हे (यह आगे कहेंगे). (४) इसप्रसंगमें ६४ शंका समाधान हें उनका विवेचन भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें विस्तारपूर्वक कियागया हे. (५) ईश्वरादि विषयमें अनेक शंका चलरही हें, उनके समाधानार्थे इसका उपयोग होता हे (अ. ४ में कहेंगे). (६) अधिष्ठान (चेतन) ओर अध्यस्त (प्रकृति–जगत) इन उभयके स्वरुपका लक्ष्यालक्ष्य रुपसे अनुभव होजाना इसका परिणाम हे (सोभी अ. ४ में दिखावेंगे). इन तमाम अंगोंका शंका समाधान सहित वर्णन भू. में प्रसिद्ध होचुका हे, इसलिये इस तत्वदर्शनके साररुप ग्रंथमें संक्षेपसे लिखेंगे.

स्वप्नथीयरीका यह परिणाम नहीं हे कि जगत, स्वप्न समान मिथ्या झूठ–भ्रम–शून्य अध्यासरुप वा त्याज्य हे.[1] किंवा जगत किसीका स्वप्न हे. किंतु इस थीयरीका संक्षेपमें यह प्रयोजन हे.—

(१) यह विषय यथायोग्य शोधनमें नहीं आया हे किंतु अंधेरेमें हे; अतः इसके बारीक शोधसे बुद्धि, निर्णायक ओर तीक्ष्ण हो. (२) तमाम धर्म-मत-पंथ फिलोसोफीके अ. १ में जो अध्यारोपअपवाद किये हें उनको सामने रखके विचारें तो ईश्वरादि विषयमें संशय रहित ठीकठीक निर्णय हाथ नहीं पडता ओर न व्यवस्था होती हे; इसलिये शौकीनोंको शांति नहीं होती. परंतु इस स्वप्नथीयरीके विचारद्वारा अनिर्वचनीय विलक्षणत्वपर पहोंचके अकथ्य प्रकारसे कुछ एसा विलक्षण अनुभव होजाता हे कि शांति होजाती हे. (३) पुरुष प्रकृति (चेतनजड, आत्माअनात्मा, चिद्चिद्, जीवाजीव) का कुछ निर्णय ओर कुछ लक्ष्य होजाता हे. (४) ईश्वरादिके संबंधमें जो गंभीर सवाल प्रचलित हें उनमेंसे बहुतोंका अपरोक्ष व्याप्ति जेसा जवाब वा समाधान होजाता हे. (५) व्यवहारकी विलक्षणता पर ध्यान खिंचता हे, उससे प्राचीन ओर नवीन धर्म, मत, पंथ, रीत ओर रिवाजके विवेकको अवसर मिलके अनासक्ति पूर्वक यथा देशकाल-स्थिति-परिस्थिति लोक समाजकी उन्नतिमें मचा रहनेका विचार पेदा हो. (६) निष्कामता प्राप्त हो. (७) इत्यादि परिणाम आना में मानता हुं.

(शं.) असत्–भ्रमके साथ याने स्वप्नके साथ मुकाबला करना (तोलना) वा उसका दृष्टांत देना व्यर्थ प्रवृत्ति हे किंवा अशिक्षितोंका व्यर्थकार्य हे; क्या प्रति-

[1] "नाही खपुष्प समान प्रपंच" "त्याग आस ईशकी" "न बिरोधो न चोत्पत्ति".

बिंब बोल उठता हे ? कभी नहीं. तद्वत् स्वप्न कोई उपयोगी विषय नहीं हे. (उ.) जो स्वप्नसृष्टिको अर्थशून्य मानते हें उन्होंनें स्वप्नको समझा हो वा उसका बारीक रीतिसे निरीक्षण किया हो, एसा मान्ना मुशकिल हे. हम अपनी आंख मुखके दूषण भूषण वा किया हुवा शृंगार नहीं जानसकते थे, परंतु प्रतिबिंब (ईथर-सूक्ष्माकी किरणों) ने वे अपरोक्षवत् जनाये; तोभी हम उसको असत् वा मिथ्या कहें तो क्या, इस कथनको ठीक मानाजायगा ? कभी नहीं. इसीप्रकार स्वप्नभी जाग्रत जेसा कुछ हे, अर्थशून्य झूठ नहीं हे. यद्यपि वहां बिंब नहीं होनेसे वोह प्रतिबिंबरुप नहीं हे, तथापि ईथर (मायांश)का उपादेय होनेसे प्रतिबिंब जेसा तो हे; बल्के उससे विशेष प्रकारवाला हे; इसलिये वोह अनेक सवालोंके उत्तर मिलनेका साधन हे. ओर प्रकाश, प्रकाश्य वा दृष्टा, दृश्यके विवेक करनेकेलिये पूरा हथियार हे; अतः शोधकको उसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता हे. सबको नहीं ॥

संगति—उपर अधिष्ठान अध्यस्त उभय याने पूर्ण परिच्छिन्नवादकी सिद्धि कहके उनकी व्यवस्था होनेमें सत्ता ओर अवस्थाविवेकको हेतु कहा हे, उसमेंसे सत्ताका बयान किया गया. अब स्वप्न जाग्रतकी अवस्थाका विवेक--विचार करते हें--तहां प्रथम (४४४ तक) उसकी पीठिका कहेंगे.—

स्वप्न, अधिष्ठानसे विलक्षण अनिर्वचनीय जाग्रतवत् ॥ ४२३ ॥ **सत्ताकी विलक्षणतासे** ॥ ४२४ ॥ **विकल्पादिरुप न होनेसे** ॥ ४२५ ॥ **जाग्रतवत् व्यवहार होनेसे** ॥ ४२६ ॥ **ओर उपादानकी समानतासे** ॥४२७॥ **संस्कारप्रवाहसे अध्यस्त सूक्ष्माका परिणाम जलतरंगवत्** ॥ ४२८ ॥ **पूर्वसंस्कारकी संभावनाभी** ॥ ४२९ ॥ **ओर एक दूसरे द्वारा नवीन विलक्षणभी** ॥ ४३० ॥ **अध्यासाभावमेंभी व्यवस्था** ॥ ४३१ ॥ **करण ओर सूक्ष्माके भेदसे अदृष्ट अश्रुतकी (व्य.)** ॥ ४३२ ॥ **गतिके प्रवाहवश विचित्रता दर्शनसे** ॥ ४३३ ॥ **करणके परिणामसे बाह्याकृतिकी (व्य.)** ॥ ४३४ ॥ **यथा आलातचक्रादि** ॥ ४३५ ॥ **सूक्ष्माके परिणामसे आंतर आकृतिकी (व्य.)** ॥ ४३६ ॥ **यथा स्वशिर छेदनादि** ॥ ४३७ ॥ **रचना वाक्यादिवत्** ॥ ४३८ ॥ **नैमित्तिक अपवाद ओर विचित्रता** ॥ ४३९ ॥ **अजके उभय लिंग समान** ॥ ४४० ॥ **परंतु सर्वत्र सनियम उपादानकी आपत्ति ओर परिच्छिन्नत्व** ॥ ४४१ ॥ **अतः व्याप्ति विना सामान्यभी अमान्य** ॥४४२॥ **एकमें सबकी अप्राप्ति** ॥ ४४३ ॥ **असंभव होनेसे** ॥ ४४४ ॥

वृत्ति—जेसे जाग्रतसृष्टि ब्रह्मचेतन अधिष्ठानसे विलक्षणसत्तावाली अनिर्वचनीय हे वेसेही स्वप्नसृष्टि अपने अधिष्ठान द्रष्टाचेतनसे विलक्षण अनिर्वचनीय (शब्द युक्तिको न सहार सके वा निर्वचनमें न आसके एसी) हे. ॥ ४२३ ॥ क्योंकि उपर कहे अनुसार द्रष्टाचेतन ओर सृष्टिकी सत्तामें विलक्षणता हे ॥४२४॥ ओर स्वप्न पूर्वमें (अ. ३। ३२५ वगेरेमें) कहे अनुसार विकल्पादि (३८) रुप नहीं हे; किंतु वस्तुतः कुछ हे ॥ ४२५ ॥ ओर जेसा जाग्रतमें व्यवहार होता हे वेसा वहां व्यवहार होता हे, अतः विलक्षण अनिर्वचनिय हे[1] ॥ ४२६ ॥ ओर जाग्रत स्वप्नका उपादान, समान सत्तावाला हे याने प्रकृति--माया हे, अतः विलक्षण अनिर्वचनीय हे ॥ ४२७ ॥ उक्त उपादान जो भिन्न प्रकारका मानें तो देश कालादि पदार्थोंकी व्यवस्था नहीं होगी, भेदनियम (३८२) याद कीजे. इस रीतिसे स्वप्नसृष्टि अधिष्ठानसे विलक्षण अनिर्वचनीय हे. ओर चेतन अधिष्ठान एक होनेसे तथा उभय सृष्टिका उपादान समान होनेसे जाग्रतसृष्टि, अधिष्ठानसे विलक्षण अनिर्वचनीय हे ॥ ४२७ ॥ जेसे जलमें लकडीके संबंधसे जलके तरंग-नाना रुपमें होते हें, वेसे संस्कार स्फुरणके प्रवाहसे स्वप्नसृष्टि जो अधिष्ठानमें अध्यस्त हे सो सूक्ष्मा (मायाका सूक्ष्मांश शेषा) का परिणाम (तरंगवत् रुपांतर) हे ॥४२८॥ इन निमित्तरुप संस्कारोंमें पूर्वजन्मके संस्कार होनेकीभी संभावना रहती हे ॥ ४२९ ॥ ओर स्वप्नगत एक दूसरे संस्कार इधर उधर जुडके संस्कारोंसे नवीन विलक्षण प्रकारकेभी रुप बनते हें ॥ ४३० ॥ स्वप्नको यदि अध्यासरुप मानें तो जाग्रतभी अध्यासरुप सिद्ध होजायगा, इस भयसे उसे अध्यासरुप न मानें तोभी जाग्रतके समान हे; इस बातकी व्यवस्था होजाती हे ॥४३१॥ स्वप्नमें अनदेखी, अनसुनी चीजें (वा पदार्थ) देखते हें, इसकी व्यवस्था संस्कारी मनस ओर सूक्ष्माके भेद याने विवेकसे होजाती हे ॥ ४३२ ॥ क्योंकि गतिके अति वेग होनेसे विचित्राकार बनते देखते हें ॥ ४३३ ॥ संस्कारी मनसके परिणामसे बाह्य-आकृतिकी व्यवस्था होजाती हे ॥ ४३४ ॥ जेसे के अनहुवा आलातचक्र (अग्निका चक्र) १ ओर स्थिर वृक्ष चलते हुये २, क्यों देखेजाते हें, इन विषयकी व्यवस्था मनके परिणाम विचारनेसे होजाती हे ॥ ४३५ ॥ ओर अंदरमें जो विचित्र आकृति होती हें उनकी व्यवस्था सूक्ष्माके परिणाम विचारनेसे होजाती हे ॥४३६॥

[1]उप. वेदांतदर्शन ओर तंत्रग्रंथोंमें स्वप्नके फल माने हें. ईरानी, कुरानी वगेरेभी एसाही मानते हें; अतः उनके अनुयायी स्वप्नको सर्वथा असत् नहीं कहसकते.

यथा—स्वप्नमें स्वमस्तक छेदन १, स्वपृष्ठदर्शन २, स्वमृत्युदर्शन ३, अभक्ष्यभक्षण ४ ओर अन्यथा (नहीं देखा हुवा वा विचित्र) संयोग ५, एसी आकृतियें देखते हें, उनकी व्यवस्था सूक्ष्माके परिणाम विचारनेसे होजाती हे ॥ ४३७ ॥ स्वप्न-सृष्टिकी रचना, जेसे वाक्य ओर औषधका प्रभाव अर्थात जेसे वाक्य, अनिच्छित यथायोग्य बोलेजाते हें १ ओर जेसे थोडीभी खाई हुई दवाई रोगस्थानपर पहोंचके वहांही खिंचाजाती हे २, वेसे अनिच्छित ओर यथायोग्य होजाती हे ॥४३८॥ संसारमें निमित्तविशेष होनेसे कोई कोई जघे अपवाद ओर विचित्रताभी देखते हें ॥ ४३९ ॥ जेसे के किसी नर बकरेके उसी स्थान पास दूध निकालनेवाले दो स्तन याने स्त्रिके चिन्हभी देखते हें ॥ ४४० ॥ परंतु स्वप्न वा जाग्रतमें सर्वत्र यह दो बातें अवश्य मान्ना चाहिये के उपादानके विना कार्य नहीं बनता १, ओर सब कार्य परिच्छिन्न होते हें २ ॥ ४४१ ॥ इसलिये व्याप्तिके विना दंतकथा वा लेख मात्रसे सामान्य बातभी नहीं मान्ना चाहिये, तो फिर किसी खास साध्य विषयको तो सुनसुनाके केसे मानसकते हें ॥ ४४२ ॥ सब प्रकारके स्वप्न एकको नहीं हो-सकते ॥४४३॥ क्योंकि असंभव हे अर्थात सबको सब संस्कार नहीं होते ॥४४४॥ इसलिये शोध करने समय बहुतोंके स्वप्नदर्शनकी हकीकत सुनोगे तब वक्ष्यमाण समानताको ध्यानमें लेसकोगे. एक दोकी दृष्टिसे निर्णय नहीं करसकोगे ॥ ४४४ ॥

संक्षेपमें विवेचन—जेसे के तालाबमें लकडी मारें वा कंकरी फिकें तो जलमें नाना प्रकारकी लहरें (आकृति) होती हें; वेसे संस्कारी मनरुप लकडीके संस्कार स्फुरण ओर प्रवाहसे ब्रह्ममें अध्यस्त जो शेषा (सूक्ष्मा-लक्षणसंग्रह अ. २ देखो) उसमें परिणाम होते हें. संस्कारानुसार शब्दादि विषयरुप होते हें उसका नाम **स्वप्नसृष्टि** हे ॥ जेसे जाग्रतमें जीवको अनेक संस्कार होनेपर उनसे संकल्पद्वारा शेषा (ईथर) में खंबे, तार विनाका तार, स्टीम, आदि कार्य होते हें वेसे स्वप्नमें प्रवाह स्वभाववश संस्कारी मनके संस्कारानुसार शेषामें पदार्थ बनते हें. यथा-दीपक देखनेपर अंदरमें दीपक सदृश दूसरा दीपक बनता हे उसे देखते हें, अंतरमें अ-निच्छित छबी बनके सामने आना देखते हें, प्रतिबिंब किरणोंसे बनता हे इत्यादि. (विशेष वाकफी वास्ते बस. सू. ४४६ पीछे सत्ताप्रकरण, दृश्यपरिमाण ओर उत्तरार्द्ध भ्रमनाशक देखो). संभव हे के जाग्रत ओर स्वप्नमें जीवगत पूर्व संस्कारोंकाभी उपयोग होता हो, परंतु स्वप्नके जितने विचित्रकार्य हें उनकी व्यवस्था पूर्व जन्मके दृष्टश्रुत संस्कारके विनाभी होसकती हे; इसलिये स्वप्न निर्णयमें उनको

बीचमें लेनेकी जरुरत नहींभी पडती. जेसे जाग्रतमें एक दूसरे संस्कार जुडके रेलवे, घडी, फोनोग्राफादि नवीन फॉर्म–पदार्थ बनालिये जाते हैं, वेसे स्वप्नमें एक दूसरे संस्कार जुडके सूक्ष्मामें पूर्व दृष्टश्रुतसे इतरभी नवीन प्रकारकीभी मृष्टिं हो-जाती हे ॥ ओर उसका विलक्षण उपयोग होता हे. यथा अ. नपुत्रेको अमेरी-कामें ओर ज. सपुत्रीको जापानमें देखा था. कालांतरमें स्वप्न विषे अपने आर्या-वर्त्तवाले मकानमें दोनोंको मिलते ओर बात करते हुये देखते हैं ओर हमभी उ-नके साथ बात कररहे हैं, तथा अ. का पुत्र ओर ज. की पुत्री आपसमें खेलते ओर बातें करते हैं. यह सब (अ. ज. उनकी संतान, मकान, हमारा शरीर, परस्परका संमेलन) नवीन सृष्टि हुई, ओर उसका नवीन उपयोग हुवा; क्योंकि एसा रुप पूर्वमें नही हुवाथा. कोनेनके संस्कारसे श्वेत चूर्ण फुरतेही शकरके संस्कार फुरे के शे-षामें श्वेत मिष्ट अर्थात शकराकार हो गया; यह स्वप्नमें नवीन पदार्थ हुवा. ना-टकमें, लडाईमें वा छबियोंमें सिर कटेके संस्कार ओर टूटे काचमें अपना धड-सिर जुदा, एसे संस्कार होजाते हैं, उस बलसे स्वप्नमें अपना वा परका सिरकटा देखते हैं. तसवीरमें, नाटकमें वा बलूनमें उडते शरीर वा परवाले शरीर देखते हैं, उस संस्कार बलसे स्वप्नमें उडना वा हवामें तेरना देखते हैं. दूसरे शरीरकी मूर्छा वा मरण देखते हैं, मसानोंमें शरीर दाह देखते हैं, वैराग्यवश उनकी अपने शरी-रमें आरोपभावना होजाती हे, इसलिये स्वप्नमें अपना मरण ओर दाह देखते हैं. नाटकमें स्त्रि आदिरुप बनते हैं वेसे स्वप्नमेंभी होता हे. देशकालमें कारणता ओर न कारणता इन उभयके संस्कार सबको होते हैं, वेसे स्वप्नके नवीन देशकाल ओर उनमें कारणता अकारणता देखते हैं. जाग्रतमें जेसे इदमादिके संस्कार हैं उस विशिष्ट स्वप्नमें देखते हैं. जाग्रतमें जेसे मगज विषे पहाड, वृक्ष वगेरेके फोटो होके उसका उपयोग देखते हैं (देखो **दृश्यपरिमाण** अ. ३ । ४९२) वेसे शेषामेंसे स्वप्नसृष्टि बनती हे.[१] इत्यादि प्रकारसे दृष्टश्रुतोंके संस्कार जुडके स्वप्नमें **नवीन** सृष्टि बनती हे. ओर उन नवीनोंका विलक्षण उपयोगभी होता हे. तहां अधिष्ठान अंतरात्मा हे, उपादान सूक्ष्म प्रकृति हे ओर निमित्त, साधिष्ठान संस्कारी मन (जीव) हे । (शं.) मनमें एक समयमें एक पदार्थका संस्कार फुरता हे

[१] जेसे अपना सिर कटा देखना इत्यादि विलक्षणसृष्टि होनेमें दृष्टश्रुत संस्कारकी रीति कही, वेसेही अन्य पदार्थों वास्ते योजलेना चाहिये. श्रम. उत्ता-रर्द्धमें विशेष वर्णन हे.

तो स्वप्नमें एकदम ब्रह्मांड केसे खडा होसकता हे तथा उसके प्रतिकूल (अनिष्ट) संस्कार केसे फुरसकते हें; परंतु वहां तो अनिष्टभी देखते हें. (उ.) आप दिलमें इष्ट मकानका एक अंश स्मरण करिये के उसी क्षणमें देशकाल ओर मकानगत अनेक पदार्थों सहित तमाम कमरेका फोटो आ खडा होगा. निदान मनसकी योग्यता ओर संस्कार उद्बोधक सामग्रीका प्रकार विचित्र हे (बस. २९४। २९६ पढो). एक काचका गोला बागमें रखें तो एकदम सेंकडो वृक्षोंके डाली, पते, फूल, फल सहित प्रतिबिंब देखेंगे. ओर अनेक गोले रखें तो अनेकोंमें दीख पडेंगे. अर्थात सब तरफ किरणें उठके रुप धारती हें. चक्षुमें रातको बडे लंबे चोडे देश सहित सेंकडों तारोंका फोटो क्षणमें होजाता हे (किंवा वृत्ति बाहिर जाके वा किरणें अंदर आके क्षणभरमें देश तारोंका आकार धरलेती हे, एक पक्ष हे). इसप्रकार मनस ओर शेषाकी योग्यतासे यथासंस्कार लंबे देशकाल सहित असंख्य पदार्थ शेषामें तैयार होजाते हें ओर वे स्थायीभी रहते हें. पुनः दूसरी क्षणमें दूसरे संस्कार स्फुरते हें उससे दूसरे बनते हें ओर नाशभी होते हें. इसप्रकार उत्पत्ति-स्थिति-नाश होता रहता हे. जेसे संस्कार सामग्रीसे शेषामें नवीन पदार्थ बने वेसे उनका नवीन उपयोगभी होता हे. (जापानीका उदाहरण उपर दिया हे). जेसे कंकरी डालनेसे तालाबमें लहरें उठीं उनका, लचक ओर हवाके कारणसे दूसरी प्रकारका उपयोग (रुप) होजाता हे. एसेही जेसी—संस्कारादि सामग्रीसे नवीन पदार्थ बने के शेषाकी लचक, बने हुये पदार्थोंके संबंध ओर दूसरे संस्कारोंके फोर्ससे मूल संस्कारोंसे इतर नवीन उपयोगभी होता हे. जेसे कि दो मनुष्य वा जानवरका गतिमें आजाना, जीव (विश्व) के तनका वेसा अनिष्ट होना कि जो जाग्रतमें कभी न हुवा था ओर न चाहता हे. (बात यह हे कि स्वप्नसृष्टि जीवकी इच्छासे रचित होती तो अनिष्ट रुप न देखता; परंतु एसा नहीं हे अतः वेसाभी दीख पडता हे). उपर कही रीति अनुसार क्षणभरमें असंख्य ओर नवीन बनसकते हें, ओर नवीनका उपयोग ओर अनिष्टभी होता हे. यह तो जाग्रतकी दृष्टिसे देशकाल वस्तुकी रचना ओर कालक्रम कहा. परंतु स्वप्नमें तो सेंकडो वर्ष प्रतीत होते हें, ओर वर्ष, दिन, रात, घडी, पलका क्रम होता हे, इसलिये जाग्रत समान क्रमशः बनते ओर समूह पुंज प्रतीत होते हें, अतः वहां पुरुषार्थ, ओर स्वतंत्रका परतंत्रताकाभी स्वीकार हे. उपरके कहे हुये उदाहरणमें जापानी, एमेरीकनके शरीर ओर मकान, पूर्व संस्कारका परिणाम हे ओर, उनका परस्पर भाषण तथा नवीन पुत्र

यह स्वतंत्र पुरुषार्थका परिणाम हे. स्वप्न रचनाके प्रसंगमें औरभी बारीकी हैं. विस्तार भयसे नहीं लिखते.

स्वप्नको अध्यास (भ्रम) रुप न माना जाय तोभी नवीन सृष्टि होनेकी व्यवस्था होजाती हे। यथा—प्रतिबिंब, शेषाकी किरणका परिणाम हे ओर उपयोगी हे, वेसे वहां संस्कारी मनरुप निमित्तसे ईथर (सूक्ष्मा) में पदार्थ बनते हें उस समय वहां उपयोगी (भोग्य) होते हैं; इसलिये असत् नहीं. ओर यदि मनकाही परिणाम मानो (वस्तुतः एसे हे नहीं) तोभी मन सत् होनेसे वेसाही परिणाम आता हे. दृष्टश्रुतकेही संस्कार होते हें; परंतु स्वप्नमें अदृष्ट अश्रुत पदार्थ जेसे देखनेमें आते हें, उनकी व्यवस्था अंतःकरणके परिणाम, ओर सूक्ष्माके परिणाम भेदसे होजाती हे (जेसा के उपर नवीन सृष्टिका प्रकार कहा ओर आगे कहेंगे); क्योंकि दोनोंकी गतिका प्रवाह हे, उससे विचित्र कार्य होजाते हें. (किरणोंकी ओर मनकी योग्यता जान्ने वास्ते बस. सू. २७५ ओर अध्यासप्रसंग देखो). जेसे मृगतृषिणका तालरुप जान पडती हे, चक्र नहीं हे तोभी आलातके वेगसे अग्निका चक्र जान पडता हे, शरीर अंदर दीपकका फोटो ओर नवीन छबी बनती हैं; रेल्वे वा स्टीमरमें बेठे हों तो वृक्ष, मकान, पहाड, चलते देखते हें इत्यादि बाह्य आकृति मनके परिणामसे देखते हें जिसमें सूक्ष्माका हाथ होताभी हे. ओर (उपर कही रीतिसे) स्वमस्तक छेदन, स्वपृष्ट दर्शन, अभक्ष्यभक्षण, स्वमृत्यु वा दाहदर्शन ओर अन्यथा संधि पाये हुये संस्कार (इत्यादि) द्वारा अंतरआकृति सूक्ष्माके परिणामसे देखते हैं. जेसे बोलने समय संस्कार अभ्यासवश अनिच्छित यथायोग्य शब्द बोले (वाक्य रचना) जाते हें, जेसे वाणी मुखपाठ करती हे ओर उसी समय मन संकल्प कर रहा हे, जेसे कलोराफारम सूंघने पीछे अज्ञात यथायोग्य भाषण होता हे, जेसे जड याने इच्छा गुण शून्य थोडीसी दवाभी खावें तो रोगस्थानपरही रुकती हे; इसीप्रकार इच्छा विना स्वप्नसृष्टिकी योग्यरचना होजाती हे. कोई कोई प्रसंगमें नैमित्तक अपवाद ओर विचित्रता देखते हें. जेसेके जाग्रतमें एसा बकरा देखते हें के जिसका नर चिन्ह बीचमें ओर उसके आसपास दो थन—स्त्रिके चिन्ह होते हें; नर चिन्हसे भोग करता ओर दोनों थनसे दूध देता हे.[1] गाय, अग्निको खाती हे. कटी हुई अमुक मछली पानीमें पडतेही जुडने लगके

[1]बहावलपुर स्टेट (सिंध) के अजायबघरमें एसा बकरा देखा था. उभय परीक्षाभी देखी. दूध पीया तो खारा जान पडा.

पूरी होजाती हे[1] परंतु स्वप्न वा जाग्रत विषे नैमित्तक अपवाद वा ज्ञात अज्ञात प्रसंगोंमें यह जरुर हे कि सनियम उपादानके विना कोई कार्य नहीं होता ओर कार्य परिच्छिन्न होते हैं (जेसे के स्वप्नके देशकालादि हैं), एसा जान्नाचाहिये. इसलिये हरकोई प्रकारका सामान्यविषयभी व्याप्ति (ओबजरवेशन) के विना (बस. ७२से ७७ तक देखो) नहीं मान्नाचाहिये. तो फेर विशेषके संबंधमें तो सिद्ध व्याप्तिके विना केसे मानाजाय ॥ सारांश स्वप्नसृष्टि, जाग्रत जेसी, एसा धारके दंतकथा, वहेम, कल्पनामात्र ओर असंभव बातें व्याप्तिके विना नहीं मान्नी चाहिये. योगी वा अयोगी-हरकोई एक व्यक्तिको जाग्रत ब्रह्मांडके तमाम पदार्थोंका ज्ञान नहीं होसकता; क्योंकि परिच्छिन्न ओर अल्पज्ञ होनेसे असंभव हे; इसलिये सब व्याप्तिओंका ज्ञान एकको नही होसकता. फलितार्थ स्वप्नदर्शनके तमाम उदाहरण वा द्रष्टांत, किसी एकके अनेक स्वप्नोंमेंभी नहीं मिलसकते. तमाम मनुष्योंके स्वप्नके दाखले एकत्र करें तो स्वप्नसृष्टि, जाग्रत जेसी हे, ऐसे उदाहरण मिलसकेंगे. प्रयोजन यह हे कि प्रस्तुत प्रसंगको किसी दो चारके स्वप्नपर निर्भर नहीं रखना चाहिये ॥ ४२३ से ४४४ तक ॥

साधर्म्य होनेसे स्वप्न जाग्रतका समानत्व ॥ ४४५ ॥
उपादान ओर भोग द्रष्टिसे सजातीयत्व ॥ ४४६ ॥
कार्य ओर संस्कार द्रष्टिसे सद्रशत्व ॥ ४४७ ॥
ओर रचना तथा उपयोगसे विलक्षणत्व ॥ ४४८ ॥

अर्थ.—स्वप्न ओर जाग्रत सृष्टिका साधर्म्य हे इसलिये उभय समान हैं ॥ ४४५ ॥ दोनोंका उपादान समान हे ओर दोनोंमें भोग हैं; इसलिये उभयका सजातीयत्व हे ॥ ४४६ ॥ उभयमें कार्य होते हैं ओर संस्कार द्वारा रचना होती हैं, इसलिये दोनोंका सादृश्य हे ॥ ४४७ ॥ दोनोंकी रचना ओर उपयोग भिन्न प्रकारसेभी होते हैं, इसलिये उभयमें विलक्षणपनाभी हे ॥ ४४८ ॥[2]

---

[1]अ. १ विकासवाद पृष्ट १६२ देखो.

[2]समानत्वादिका भेद थीयरी दृष्टिसे. कनकके दो कंगनमें समानत्व हे। उसके दो परमाणुओंमें सजातीयत्व हे । उसके कंगन ओर उस कंगनके प्रतिबिंबका सादृश्य हे । कनककी अशरफी, छुरी तथा भस्ममें विलक्षणत्व हे. धी वान्डर फुल कंटोराई The wonder ful century इस इंग्रेजी बुकमें सुवर्णकोभी पाकज लिखा हे. आर्यदर्शनोंमें ४ तत्वजन्य हे ॥

विवेचन——स्वप्न ओर जाग्रत सृष्टिका साधर्म्य हे अर्थात सत्व, रज, तम यह तीनों उनके अणु अणुमें हें इसलिये स्वप्न जाग्रतका **समानत्व** हे। तथा पदार्थोंकी उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति, विकार, क्षय ओर अभाव यह धर्म दोनों सृष्टिमें हें अतः **समानत्व** हे ॥ उभय दृश्यका उपादान प्रकृति हे–उससे अन्य नहीं हे, उभयके पदार्थ भोग्य होते हें ओर सृष्टित्व उभयमें हे, इस दृष्टिसे उभयका **सजातीयत्व** हे. जेसे कनकजन्य कुंडल ओर कड़ूलेका सजातीयत्व हे वेसे ॥ दोनों कार्यरुप हें ओर संस्कार द्वारा बनती हें, इस दृष्टिसे दोनोंका **सादृश्य** हे, जेसे बिंब ओर प्रतिबिंब (सम–असम)का सदृशत्व हे वेसे ॥ दोनोंकी रचना ओर उपयोग दूसरे प्रकारसे होते हें, इस दृष्टिसे उभयका **विलक्षणत्व** हे। स्वप्न इच्छा विना होता हे ओर सूक्ष्म हे, जाग्रतवाला ब्रह्मांड इच्छासेभी होता हे ओर स्थूलरुप हे, यह विलक्षणता हे ॥ उपरोक्त समानत्वादिका विरोधीकथन स्थूल दृष्टिसे हे. विशेषके लिये भ्रम–उत्तरार्द्ध प्रकृतिविवेकप्रकरण देखना चाहिये.

इस प्रसंगमें यह भी जना देना ठीक होगा कि स्वप्न किसको कहना. तहां स्थूल ओर सूक्ष्माका उपयोग न हो वोह **सुषुप्ति**. उभयका उपयोग हो सो **जाग्रत**. ओर जिसमें स्थूल शरीरके अवयव तकका भी उपयोग न हो एसे सूक्ष्मपदार्थ ओर उनके भोगका नाम **स्वप्नसृष्टि** हे. जेसे के स्वप्नमें लेनदेन होना, पृष्टका देखना, जाग्रतके जीवतेको मरा और मरेको जीवता हुवा देखना इत्यादि. जहां स्थूलकाभी उपयोग होरहा हो वोह ज्ञाताज्ञातावस्था अर्थात **तंद्रा** हे, स्वप्न नहीं. यथा स्थूलसे बडबडाना, जाग्रत न हो ओर स्थूलसे पेशाब होजाना इत्यादि. जब स्वप्नके प्रवाह (वेग) का स्थूलमें प्रवाह होजाता हे तब स्थूलके साथ संबंध होजाता हे अर्थात जाग जाता हे.

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन अवस्था हें ॥ जा. स्वकी, जा. सु. की; स्व. सु. की, स्व. जा. की, सु. जा. की, ओर सु. स्व. की एसे ६ संधि होती हें. पुनः जाग्रतमें जाग्रत (सविवेक यथावत् उपयोग), जाग्रतमें स्वप्न (अनुवृत्ति वगेरे), जाग्रतमें सुषुप्ति (मूर्छादि), ओर स्वप्नमें जाग्रत (साभिमान उपयोग), स्वप्नमें स्वप्न (अन्य शरीर सोके जागके अपना स्वप्न कहता हे अथवा आप पूर्वकी जाग्रतको जिस स्वप्नरुप स्मृतिसे विषय करता हे सो), स्वप्नमें सुषुप्ति (सोना मूर्छादि), ओर सुषुप्तिमें जाग्रत (आत्मामें वृत्तिका प्रकाशित होना), सुषुप्तिमें स्वप्न (गुप्त रीतिसे संस्कारमात्र गति), सुषुप्ति सुषोप्ति–शरीरको उचकाके लेजावें तोभी

खबर न होना). पूनः इनकी संधि ओर जीवका उक्त अवस्थारुप कमरोंमें आना जाना. इसलिये संस्कार प्रवाहके बलसे एक अवस्थाका दूसरेमें उपयोगभी होजाता हे; यथा स्वप्नगत हस्ति देखके भयसे स्वप्नवाला शरीर भागता हे उसके प्रवाहका उपयोग जाग्रतके स्थूल शरीरमेंभी होजाता हे (४६० देखो) ॥४४५से४४८तक॥

संगति.—उपरोक्त विषयमें स्थूलवादि अनेक शंका उठासकता हे, इसलिये उसी विषयको उससे विशेषरुपमें लिखते हें. अर्थात जिस सृष्टिको वर्तमान (जाग्रत) में स्वप्न कहरहे हो सो वा अगामी स्वप्नभी एक प्रकारकी जाग्रत सृष्टि हे. सारांश जाग्रत जैसी स्वप्न ओर स्वप्न जैसी जाग्रत हे, इस विषयको **प्रौढिवादकी** रीतिसे लिखेंगे.[१]

(नोट) -वक्ष्यमाण प्रौढिवादमें कोई कोई विषय पुनः पुनः कथन होगा, उसका कारण यह हे कि यह थीयरी (प्रक्रिया) नवीन हे. ओर एकही शंका रुपांतरको पा जाया करती हे. यथा मनसे रचित (मन करके वा मनमेंसे रचित) इसमें अंतर ओर समानता हे. छांदोग्य, वृहदारण्यकको देखें तो अभ्यासार्थ एककोही

[१](शं.) स्वप्नको जाग्रत समान मान्नेवालेको प्रसिद्धवर्ग क्या पदवी देगा? (उ.) जबके सूर्यको नित्य उत्पन्न नाश मान्नेवाला फिलोसोफर, सृष्टि जल वा हवा वा अग्निसेही पेदा होना बतानेवाला फेलसूफ, सृष्टि सातहजार वर्ष पहले नहीं थी एसा कहनेवाला रीफोर्मर, विभुको सक्रिय मान्नेवाले फिलोसोफर (तत्ववेता) रीफोर्मर (आचार्य), आप मरकर न जीनेवाले ओर मुरदोंको जिलानेवाले अग्रेसर, चांदके दो टुकडे करके बांहमेंसे निकालनेवाला अध्यक्ष, ईश्वरका अवतार वा पुत्र बतानेवाले आचार्य, जगतको भ्रमरुप (अर्थशून्य) बतानेवाले नामांकित फिलोसोफर—आचार्य, मुक्तिमें स्वप्नसमान स्वतंत्रभोग बतानेवाले ओर स्वप्नके फल दरसानेवाले दर्शनकार, कहलाये; तथा जिसके दर्शनके दर्शनसे बुद्धिकी आंखें रोशन होके न्याय सूझने लगे उसको अक्षपाद (जिसकी आंखे पांव अर्थात अंधा) ओर जिसके दर्शनसे विशेषज्ञान अर्थात अंधेरेमेंभी (अज्ञानावृत बुद्धिकोभी) पदार्थोंका दर्शन होने लगे उसको उलूक (उल्लु) पदवी मिली हे. तो क्या स्वप्न जाग्रतको समान बतानेवाला वहमी भी न कहलायेगा, क्या मूर्ख जयंतिका प्रधान (प्रेसीडंट) एसी पदवी मिलनेकेभी योग्य न होगा? मेरा खयाल हे कि एसा होनाही चाहिये. विद्वान मंडलकी हंसी वा वहेमका पात्र होना क्या अहोभाग्य नहीं? । सं. ।

अनेक जघे लिखा हे. वैशेषिकमें एक उदाहरणको अनेक जघे दरसाया हे. स्वप्न जाग्रतकी समानता प्रसंगमें " तद्वत् ओर व्यतिरेकसे " इतनाही कहना बस था; क्योंकि उभयमें त्रिपुटी व्यवहार सम ओर उनसे अवस्थांतर हुये उस व्यवहारकी अन्यथांप्रतीति समान ओर एककी दूसरेमें गेरहाजरी समान हे; इतनेमें ४३ सूत्रोंका रहस्य आजाता हे; परंतु उक्त कारणको लेके इस बातको ४३ सूत्रोंमें वर्णन करना पडा हे; ओरभी यहां तो मूलमात्र लिखेंगे. इसका विस्तार भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें प्रसिद्ध होचुका हे. वहां प्रचलित शंका उनका समाधान ओर नवीन विकल्प उनका समाधान तथा अनेक हेतु, अनेक व्याप्ति ओर अनेक उदाहरण–दृष्टांतके सहित २०० पृष्ट हें.—

प्रौढिवादसे तद्वत् ॥ ४४९ ॥ सफलादि नियमसे ॥ ४५० ॥

अर्थ.—प्रतिवादिकी युक्तिको स्वीकारकेभी स्वमंतव्य सिद्ध होजानेका नाम **प्रौढिवाद** हे. जाग्रत जेसी स्वप्नभी एक प्रकारकी जाग्रत सृष्टि हे. अर्थात स्वप्न सृष्टि ओर जाग्रतसृष्टि समान हें, एसा प्रौढिवादसे सिद्ध होजाता हे ॥ ४४९ ॥ यह सिद्धि उपरोक्त (सू. ३२५ के विवेचनमें) सफलादि २७ नियमोंसे होजाती हे ॥ ४५० ॥

सफलादि २७ सूत्र स्वप्न विकल्पादिरुप नही, जाग्रत जेसी सृष्टि हे, इन दोनों प्रसंग विषे उपयोगमें आते हें. किस प्रकार उनका उपयोग करना वा होता हे, इस बातको शोधक सफलादिसूत्र जानके स्वयं उपस्थित करसकता हे. विस्तार भू. ओर मूलमें हे ॥ ४५० ॥

समानताका स्पष्टिकरण.

समानता संस्कार संबंधकी व्याप्तिसे ॥ ४५१ ॥ तद्वान संस्कारीकी (व्या.) भी ॥ ४५२ ॥ कार्य दर्शनसे ॥ ४५३ ॥ पूर्वजन्मकीभी ॥४५४॥ उभयमें अदर्शनसे ॥ ४५५ ॥ जन्मांधको रुप अदर्शनकीभी ॥ ४५६ ॥ बाल पश्वादि रुप अदर्शनकीभी ॥ ४५७ ॥ ओर शंका समाधान सद्भावकीभी ॥ ४५८ ॥ तद्वत् दर्शनसे ॥ ४५९ ॥ वेग वशसे परस्परमें उपयोग भी ॥ ४६० ॥ संभोग परिणामवत् ॥ ४६१ ॥ नहींभी ॥ ४६२ ॥ द्रव्य प्राप्तिवत् ॥४६३॥ ज्ञात ओर अज्ञात दोनोंमें ॥४६४॥ यात्रादिवत् ॥४६५॥

अर्थ.—जाग्रत ओर स्वप्न इन उभय सृष्टिमें संस्कार द्वारा कार्य होते हें ओर एक दूसरेके संस्कार एक दूसरी सृष्टिमें काम देते हें, इसप्रकार संस्कार संबंध

की व्याप्ति देखते हैं, इसलिये उभयकी समानता हे ॥४५१॥ जाग्रतमें जो सवाल हल न हुवा हो उसका समाधान वा जवाब कभी कभी स्वप्नमेंभी होजाता हे ओर उस अनुसार जाग्रतमें उपयोग होता हे. स्वप्नमें किसी पराक्रमी प्रतिष्ठित पुरुषने कुछ कहा हो तो उन संस्कारोंका जाग्रतमें उपयोग लेते हें. वीरोंका युद्ध जिस स्त्रीने देखा हो वोह स्वप्नमें अपनेको वीरा देखती हे वा किसिके साथ युद्ध करती हे ओर जाग्रतमें वीरा होके लडती हे ओर ४६० देखो. (जेसे जाग्रतके संस्कारसे स्वप्न (जाग्रत) सृष्टि मानी जाती हे वेसे स्वप्न (जाग्रत) संस्कारसे जाग्रत (गत स्वप्न) क्यों न माना जाय? (आगे वांचोगे) इसप्रकार संस्कार संबंधकी व्याप्तिसे उभयकी समानता हे ॥ ४५१ ॥ स्वप्नमें जाग्रतकी समानसत्तावाला—काम करनेवाला—जाग्रतवाला संस्कारी मन हे इसलिये, ओर जो स्वप्नको मनका परिणाम मानें तो वोह परिणाम जाग्रतके समान सत्तावाला हे इसलिये, अर्थात तद्वान संस्कारी मनकी व्याप्ति हे, इसलिये उभयकी समानता हे ॥४५२॥ क्योंकि उभयमें समान सत्तावाले कार्य देखते हें ॥ ४५३ ॥ उभय सृष्टिमें पूर्व जन्मके संस्कार नहीं जान पडते, एसी व्याप्तिसेभी उभयकी समानता हे ॥४५४॥ क्योंकि उभयसृष्टिमें जन्मांधको रुपका ज्ञान नहीं होता, में पशुपक्षीरुप, एसी प्रतीति नहीं होती, इसप्रकार उभयसृष्टिमें पूर्वसंस्कारका भान नहीं होता; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४५५ ॥ उभयसृष्टिमें जन्मांधको रुपका ज्ञान नहीं होता, इस व्याप्तिसे भी उभयकी समानता हे ॥ ४५६ ॥ कारणके उभयसृष्टिवाले जन्मांधको उसके रुप गृहणकी योग्यता अनुद्भव होती हे. जवान हुये पीछे अंधा हो तो उसको दृश्य रुपके संस्कार उभयसृष्टिमें होते हें. जो एसी व्यक्तिपर तैजस प्रयोग (मेस्मेरिझम) कियाजाय वा लिलाटपर रुपदर्शक यंत्रविशेष (अमेरीकामें हे) लगावें अथवा उसकी दवाइ करें तो एसी व्यक्तिको उभयसृष्टिमें रुपका दर्शन होता हे; क्योंकि तिरोहित शक्तिको उत्तेजन—साधन मिलगया. इस रीतिसे उभयकी समानता हे ॥ ४५६ ॥ जाग्रतके बालकको बाल भावसे अपना भान नहीं होता वा उसको वेसा स्वप्न नहीं होता, बडेको बाल युवाके भेदका भान वा वेसा स्वप्न होता हे, इसीप्रकार स्वप्नवाली व्यक्तिमें जान पडता हे. उभयसृष्टिमें पूर्वजन्मके पश्वादि याने पशु पक्षी तिर्यकवाले संस्कार न फुरसकनेसे अपनेको पशु आदि रुपमें नहीं देखता. इन उभय व्याप्तिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४५७ ॥ ओर शंका समाधानके सद्भावकी व्याप्तिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४५८ ॥ क्योंकि

जेसे हरकोइ विषय संबंधमें जाग्रत विषे शंका समाधान होते हैं वेसेही स्वप्नसृष्टि मेंभी होना पाया जाता हे; अतः इस व्याप्तिसेभी उभयकी समानता हे ॥४५९॥ धर्म (ईश्वर, जीव, बंध, प्रकृति वगेरे) अर्थ, काम, मोक्ष, नीति, व्यवहार, सोसाइटी, राज्य, देशकाल इत्यादि विषयोंके संबंधमें उभयसृष्टि विषे शंका समाधान होना देखते हैं ॥ ४५९ ॥ वेग (प्रवाह) वशसे एक दूसरेके संस्कारोंका एक दूसरे (सृष्टि) में उपयोग होभी जाता हे ॥ ४६० ॥ जेसेके संभोगसे जागृत वा स्वप्नकी शय्याके वस्त्र मलिन देखते हैं, इस व्याप्तिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४६१ ॥ स्वप्नके संभोगसे जाग्रतकी शय्याका मलिन पाना, एसा अनुभव अनेकोंको हे. जाग्रतकी स्त्रीस्पर्श अवस्थामें यदि निद्रावश होजाय तो स्वप्नकी शय्या मलिन पाता हे. किंवा जाग्रतके हाथी वगेरेके भयसे मूर्छित होनेपर स्वप्न होजाय तो स्वप्नके शरीरसे भागता हे, एसी प्रकारके स्वप्नभी कोई कोईको होते हैं. इस रीतिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४६१ ॥ ओर परस्परमें उपयोग नहीं भी होता ॥ ४६२ ॥ जेसे के एक दूसरेका द्रव्य (वा भोजन, दवाई, भय वगेरे) एक दूसरेमें नहीं मिलता, इसलिये याने इस व्याप्तिसेभी परस्परकी समानता हे ॥ ४६३ ॥ ज्ञात अर्थात अपरोक्ष ओर अज्ञात याने परोक्ष पदार्थ उभयमें हैं ॥ ४६४ ॥ जेसे के जाग्रतमें यात्रा, दूत ओर पत्रार्थ चेष्टा होती हे अर्थात परोक्ष स्थानकी यात्रा करने अर्थ १, परोक्ष पास दूत भेजनेके लिये २, ओर पत्रके आव जावके लिये ३, चेष्टा की जाती हे याने अमेरीका जाने वास्ते, यात्रा करने वास्ते वा दूत भेजने वास्ते तैयारी करके गमन करते हैं, वेसेही स्वप्नसृष्टिमेंभी होता हे. सारांश दोनों सृष्टिमें पदार्थोंकी ज्ञातसत्ता ओर अज्ञातसत्ताभी हे; इसलिये उभयकी समानता हे ॥ ४६५ ॥

तद्वत दर्शन ओर व्यतिरेकसे समानता ॥ ४६६ ॥ अहो रात्रीके क्रमसेभी ॥ ४६७ ॥ सूर्य संतानादिवत ॥ ४६८ ॥ अज्ञान ओर भ्रमसेभी ॥ ४६९ ॥ स्मृति विस्मृतिसेभी ॥ ४७० ॥ सत्ताकी व्याप्तिसेभी ॥४७१॥ तनमनके भावसेभी ॥४७२॥ ग्लानीका भाव ओर आभव होनेसे ॥४७३॥ सफल ओर निष्फल प्रवृत्तिके भेदसेभी ॥ ४७४ ज्ञान ज्ञेय सम ओर विषमसेभी ॥ ४७५ ॥ रज्जु सर्पादिवत ॥ ४७६ ॥ शरीर इंद्रिय भावसेभी ॥ ४७७ ॥ सज्ञान भोग होनेसे ॥ ४७८ ॥ मन नवीन अनवीन उभय पक्षसेभी ॥ ४७९ ॥ स्मृति परिणाम होनेसे ॥ ४८० ॥ भोक्तृत्वादि दृष्टि-

सेभी ॥ ४८१ ॥ ज्ञानमें ग्रहण लक्षण होनेसे ॥ ४८२ ॥ निद्रा दोषसेभी ॥ ४८३ ॥ दोनोंमें होनेसे ॥ ४८४ ॥ कारण कार्य भावसेभी ॥ ४८५ ॥ संतानादिवत् ॥ ४८६ देशकाल ओर विषयसेभी ॥ ४८७ ॥ तद्रत ओर तिसका व्यतिरेक होनेसे ॥ ४८८ ॥ कार्य कारणता ओर इदमादिकी अन्यथा प्रतीतिसेभी ॥ ४८९ ॥ अनुत्तरवत् ॥ ४९० ॥ अध्यस्तवत् गति होनेसे ॥ ४९१ ॥ व्यवहारमें दृश्यपरिमाणवत् ॥ ४९२ ॥

अर्थ.—जेसे जाग्रतमें अनेक व्यवहार होते हें वेसे स्वप्नमेंभी अनेक व्यवहार होना देखते हें ओर जाग्रतसृष्टिमें स्वप्नसृष्टिका तथा स्वप्नमें जाग्रतसृष्टिका अभाव हे, इसलियेभी पूर्व कहे समान उभयसृष्टिकी समानता हे ॥ ४६६ ॥ जाग्रतके समान स्वप्नमेंभी दिवस पीछे रात, रात पीछे दिवस एसा प्रवाह (क्रम) होता हे इसलियेभी समानता हे ॥ ४६७ ॥ जेसे के सूर्यका उदय अस्त होता हे तथा **संतान**की उत्पत्ति स्थिति ओर नाश होना ३, ओर पदार्थोंका **त्याग** ४, **ग्रहण** ५, इन पांचका क्रम जाग्रतमें होता हे वेसाही स्वप्नमें होता हे; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४६८ ॥ जेसे जाग्रतमें पदार्थोंका अज्ञान होता हे ओर सामान्यज्ञान तथा भ्रम होता हे, वेसेही स्वप्नमेंभी अज्ञान ओर भ्रम होता हे; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४६९ ॥ यथा-में इसको नहीं जानता एसा अज्ञान ओर यह पूर्व दृष्ट हे वा नवीन हे एसा संशय, ओर में अन्यत्र हुं एसा भ्रम स्वप्नमेंभी होता हे ॥ ४६९ ॥ उभयसृष्टिमें दृष्ट पदार्थोंकी स्मृति ओर विस्मृतिभी होती हे, जाग्रतमें स्वप्नदृष्ट पदार्थोंकी स्मृति ओर विस्मृति होती हे, इससेभी उभयकी समानता हे ॥ ४७० ॥ पूर्वोक्त सत्ताकी व्याप्तिसेभी समानता हे अर्थात जेसे जाग्रतमें चेतन ओर दृश्यकी विषमसत्ता हे तथा घटपटादिओंकी समसत्ता हे, वेसेही स्वप्नमें दृष्टाचेतन ओर दृश्यसृष्टिकी विषमसत्ता हे, घट सूर्यादिकी समसत्ता हे; एवं उभयकी समानता हे ॥ ४७१ ॥ तनमनके असर देखनेसेभी समानता हे ॥४७२॥ क्योंकि जेसे जाग्रतमें तनके रोगसे मनपर ओर मनके रोगसे तनपर असर होता हे ओर एकके तनमनकी असर दूसरेके तनमनपर होना देखते हें ओर उससे ग्लानिका भाव वा अभाव होता हे, एसा देखते हें; वेसेही स्वप्नगत तनमनका प्रभाव (असर) परस्परमें होता हे ओर एकके तनमनका दूसरेपर होता हे; इतनाही नहीं किंतु स्वप्नमें मनपर जो असर हुवा उसका असर कभी जाग्रतके शरीरपर ओर जाग्रतमें मनपर जो असर हुवा उसका असर कभी स्वप्नके शरीरपरभी होना दे-

खते हें; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४७३ ॥ उभयसृष्टिमें सफलप्रवृत्ति (अ-हार विहारादि) ओर निष्फलप्रवृत्ति (चिद्‌में अचिद् अचिद्‌में चिद्‌बुद्धि, पवित्रमें अपवित्र ओर अशुद्धमें शुद्धबुद्धि, मृगजलमें जलबुद्धि इ.) यह उभय प्रकार देखे जानेसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४७४ ॥ कभी ज्ञान ओर ज्ञेय समकालीन उत्पन्न ओर नष्ट होते हें ओर बहुधा ज्ञेय पूर्व ओर ज्ञान पीछे होता हे, यह उभयसृष्टिमें होनेसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४७५ ॥ जेसे रज्जुसर्प १ शुक्तिरजत २ ओर मृगतृष्णा ३ प्रसंगमें सर्प रजत ओर जलका ज्ञान ओर ज्ञेय समकाल उत्पन्न नष्ट होना जाग्रतमें देखते हें, वेसेही स्वप्नमें होता हे ओर जेसे सूर्य पहाडादि पूर्वमें विद्यमान हें उनका ज्ञान पीछे होता हे, एसा जाग्रतमें प्रसिद्ध हे वेसेही स्वप्नसृष्टिमें देखते हें, इसप्रकार ज्ञान ज्ञेय समकालीन ओर विषमकालीन उभयमें होनेसे उभयकी समानता हे ॥४७६॥ जाग्रतवत् शरीर इंद्रियकाभाव स्वप्नमेंभी हे, इसलिये उभयकी समानता हे ॥४७७॥ क्योंकि जेसे जाग्रतमें शरीर इंद्रियोंके भाव (रोग- पीडा-सुख-अस्तित्व) देखते हें, वेसेही स्वप्नसृष्टिमेंभी शारीरिक, मानसिक दुःख सुख होना देखते हे. अर्थात ज्ञानपूर्वक भोग होता हे. इससे स्पष्ट होजाता हे कि जाग्रतवाले शरीर इंद्रियोंसे भिन्न स्वप्नमें नवीन शरीर ओर इंद्रिय होते हें (हिरण्य गर्भ-मायामेंसे बनते हें). जो एसा न होता तो जाग्रतवत् ज्ञानपूर्वक भोगभी नहीं होता; परंतु होता हे, अतःउभयकी समानता हे ॥ ४७८ ॥ शरीर इंद्रियोंके समान मनभी स्वप्नमें नवीन उत्पन्न होता हे, यह एक पक्ष हे, ओर मन नवीन उत्पन्न नहीं होता किंतु जाग्रतवालाही होता हे, यह दूसरा पक्ष हे, इन दोनोंमेंसे हरकोइ एक पक्ष मानेंभी उभय सृष्टिकी समानता सिद्ध रहती हे ॥ ४७९ ॥ क्योंकि स्मृतिरुप परिणाम देखते हें ॥ ४८० ॥ अर्थात पहेला पक्ष मानें तो (१) जाग्रतकी स्वप्नमें जो स्वप्नरुपसे स्मृति होती हे उस स्मृति सहित स्वप्न नवीन हुवा हे, एसा जान्ना चाहिये; नहीं के उससे पूर्व कोइ स्वप्न (जाग्रत) सृष्टि हुईथी, एसा समझना चाहिये. एसेही जाग्रतमें जो स्वप्नकी स्मृति होती हे सो उस स्मृति साहित जाग्रत नवीन सृष्टि हे; नहींके इससे पूर्व कोइ स्वप्नसृष्टि हुइ थी उसकी स्मृति हे. संक्षेपमें इस प्रकार स्मृति परिणाम (अनुभवितकी होय नहीं एसी स्मृति) वश नवीन मन मान्नेसे असमानता नहीं होती. (२) ओर जो दूसरा पक्षमानें तो उपर कहे अनुसार (४५२ याद करो) सृष्टि, संस्कारी मन द्वारा होनेसे एक दूसरी सृष्टिमें एक दूसरेकी स्मृति होजाना स्पष्ट हे तथा

जाग्रतवाले मनका परिणाम स्वप्न, एसा माननेसेभी उभयकी समानता सिद्ध होजाती हे ॥ ४८० ॥ भोक्तृत्व (भोक्तापना), ज्ञातृत्व (ज्ञातापना), द्रष्टत्व (द्रष्टापना) ओर अभिमानत्व (अभिमानपना) इन दृष्टिसेभी उभयकी समानता हे ॥४८१॥ क्योंकि भोग, ज्ञेय, दृश्य ओर अहंत्व, ज्ञानप्रकाश (चेतन) में ग्रहण होनाही भोक्तृत्वादिके लक्षण हें. सो यह सब उभयसृष्टिमें होते हें याने भोगादि चेतन-प्रकाशमें ग्रहण होते हें, इसलियेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८२ ॥ स्वप्नही निद्रादोषसे आता हे, एसाही नहीं हे किंतु निद्रादोषभी उभयमें समान होता हे इस दृष्टिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८३ ॥ क्योंकि जेसे जाग्रतमें निद्रा हुये पीछे स्वप्नसृष्टि होना मानाजाता हे वेसे स्वप्नसृष्टिमेंभी निद्रा हुये पीछे अन्य अर्थात जाग्रतसृष्टि होजाती हे (४४३ । ४४४ । ४३० । ४६० का विवेचन ध्यानमें लीजिये). इसप्रकार उभयमें निद्रादोष होनेसे उभयकी समानता हे ॥ ४८४ ॥ कारणकार्यभावसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८५ ॥ क्योंकि जेसे जाग्रतमें संतान, कार्य ओर मातापिता उसके कारण, त्याग ग्रहण कार्य ओर हस्तादि इंद्रिय करण देखते हें, वेसेही स्वप्नमें संतानोंकी उत्पत्ति नाश, कार्य ओर मातापितादि कारण तथा इंद्रियकरण ओर त्याग ग्रहणकार्य देखते हें, इसलियेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८६ ॥ देश, काल ओर विषय (पदार्थ) दृष्टिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८७ ॥ क्योंकि जाग्रत जेसे स्वप्नमें ओर स्वप्न जेसे जाग्रतमें देश, काल ओर विषय होते हें तथा वे जाग्रतवाले स्वप्नमें ओर स्वप्न-वाले जाग्रतमें नहीं होते हें; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४८८ ॥ जाग्रतमें देश-काल अनादिसे हें ओर पहाड, सूर्य ओर शब्दादि पंच विषय हमारे पूर्वजोंसे पहलेके हें तथा जो सृष्टि कल देखी थी अथवा हमारे पूर्वजोंने जो देखी थी सोही आज वर्तमान हे; एसा देखते, जानते ओर मानते हें. वेसेही स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टिके देश कालादि जाग्रतके देश कालादिसे भिन्न ओर नवीन तथा अनादिरुपमें भूतकालवाले ओर सृष्टि पूर्ववाली याने जो कल देखी थी वा पूर्वजोंने देखी थी सोही आज हे; एसा देखते, जानते ओर मानते हें; ओर एक दूसरी सृष्टिका (देशकाल वस्तुका) एक दूसरीमें व्यतिरेक (अभाव) देखते हें; अतः उभय भिन्न ओर उभय समान हें. जाग्रतवाली सर्द वा वर्षा ऋतुमें रातको सोये हों परंतु स्वप्नमें जेष्ठ मास, अति तप्त तथा दिवस देखते हें. जाग्रतवाला नगर नदीके प्रवाहमें बह गया उसकी जघे उजाड भूमी देखते हें, इसप्रकार उभयकी

भिन्नता हे ओर देश कालादि समान होनेसे समानत्व हे ॥ ४८८ ॥ कार्य, कारणताभाव ओर इदंत्वादि (इदं, तुं, सो, में)[१] की अन्यथाप्रतीति इस दृष्टिसेभी उभयकी समानता हे ॥ ४८९ ॥ जेसे के अध्यासप्रसंगमें अन्यथा जान पडते हें वेसे उभयसृष्टिमें कार्यकारणादि अन्यथा जान पडते हें ॥ ४९० ॥ क्योंकि कार्यकारणादिमें वा उनके मूल उपादानमें अध्यस्तवत् गति (अधिष्ठानको स्पर्श न करते हुये तदाश्रित गति) होती हे; इसलिये अन्यथाप्रतीति होती हे, सो प्रकार उभयमें समान हे; अतः उभयकी समानता हे ॥ ४९१ ॥ इस विषयको जाग्रतके व्यवहारमें घटालेना हो तो वक्ष्यमाण **दृश्यपरिमाण**के उदाहरण समान समझ लेना चाहिये अर्थात जेसे जाग्रत विषे दृश्यपरिमाणमें नवीन देश, झाड, ओर सडक बनते ओर उनका उपयोग होता हे वेसी स्वप्नसृष्टि हे, इसलिये स्वप्नसृष्टि, जाग्रतसृष्टि जेसी (समान) हे, यह सिद्ध होता हे ॥ ४९२ ॥ सू. ४८५ से ४९२ तकका संक्षेपमें **विवेचन.**—

(शंका) जागने पीछे स्वप्नसृष्टि शून्यवत् जान पडती हे. किंवा जेसे भाव ओर प्रकारमें स्वप्नकाल विषे प्रतीत होती थी उससे अन्यथा जान पडती हे. इससे यह स्पष्ट होता हे कि (क) देशकाल किसी कार्यके कारण किंवा मातादि संतानरुप कार्यके कारण नहीं थे, किंतु सब (कारण, कार्य, देश, काल, ज्ञेय ओर उनका ज्ञान यह सब) समकाल उत्पन्न नाश होते थे; हां स्वप्नमें कारणकार्यादि भाववाले जान पडते थे. अर्थात अन्यथाप्रतीति थी. (ख) ओर इसी (शून्यरुप) कारणसे इदमादिकीभी अन्यथाप्रतीति थी, कारण के चेतनका परिणाम नहीं, अतः उसमें कारणकार्यभाव बने नहीं ओर वोह इदंका विषयभी नहीं. ओर जागने पीछे वहां सूक्ष्मा (शेषा) कोई वस्तु थी एसा नहीं जान पडता; अतः देशकाल चेतन ओर उपादानमें कारणता ओर पदार्थोंमें कार्यता भ्रमरुप कहना पडता हे, इसरीतिसे स्वप्नसृष्टि अन्यथाप्रतीतिका विषय याने भ्रमरुप ठेरती हे ॥ (उ.) जेसे जाग्रतमें अध्यास (अ. १।३९२) प्रसंगमें अन्यथाप्रतीति होती हे, वेसे (स्वप्नादि प्रसंगमेंभी कारण कार्य ओर इदमादि (यह, अस्तित्व, तुं, में वोह) की अन्यथा प्रतीति होजाती हे. रज्जुसर्पादि प्रसंगमें शेषाके कार्य सर्पादि हें ओर उनमें रज्जु आदिका इदंत्व—अस्तित्व हे; ओर सर्पादि शेषाका कार्यकारणभाव हे (बस. ४३६ । ४४९ भ्रमवाद, अध्यासवाद देखो) परंतु बाध होने पीछे अविवेकीको

[१] में ब्राह्मण, में राजा, में भिखारी एसे अन्यथा.

वेसा भाव नहीं जान पडता; शोधक--परीक्षक जानता हे के एसा था. वेसेही स्वप्नप्रसंगमें कूटस्थ द्दष्टा चेतनाश्रित सूक्ष्मामेंसे उपर कहे अनुसार देशकाल वस्तु बनते हें; क्योंकि एसी उसमें योग्यता हे (बस. उत्तर भाग वांचो). जिन संस्कारोंसे वे बने हें वे अमुकमें कारणता, अमुकमें कार्यता ओर इदमत्वादिवाले हें, एसे परंपरासे व्याप्तिवाले संस्कारोंके अनुसार सूक्ष्मा (ईथर) का परिणाम होनेसे स्वप्नमें कारणकार्यादि भाव स्पष्ट जान पडता हे. ओर सब देशकाल वस्तुकी तथा उनके इदंत्वादिकी प्रतीति, प्रतितस्वरुप--चेतन साक्षी प्रकाशके विना नहीं हे, किंतु सूर्यप्रकाश ओर प्रकाश्य समान साक्षिके आश्रित हुये जान पडते हें. जब स्वप्नसृष्टि अपने उपादानमें लय याने अव्यक्तरुप (कनक कूंडलवत् उपादान स्वरुप) होजाती हे तब नवीनोत्पन्न देशकाल वस्तु शून्यरुप होजानेसे कारणकार्यभाव विनाके थे, एसे जान पडते हें. (शेषाकी सिद्धिमें उसके उपादेय–प्रतिबिंब, विजली, नीलता, शरीरके अंदरकी छबी, ज्योतिष्मती इत्यादि जान्ना बस हे). इसीप्रकार जाग्रतसृष्टि वास्ते ज्ञातव्य हे.

द्दश्यपरिमाण.

जिसको आंख बंद करनेपर अंदरमें विशेष प्रकाश न हो तोभी सूर्य उदय पूर्व जेसा प्रकाश मालूम होता हो, उसको चाहिये कि जंगलमें जाके कहीं साफ मेदानमें खडा हो. सो दोसो फूट दूर हो एसे एक वृक्षपर द्दष्टि जमावे, फेर आंखें बंद कर ले तो अंदरमें द्दश्य मार्ग ओर वृक्ष स्पष्ट जान पडेंगे. फेर आंख बंद किये हुये वृक्षकी तरफ चले तो वृक्ष अपनी तरफ आता हे, एसा जान पडेगा. जब वृक्ष चलता हुवा न जान पडे याने कानकी बराबेर आनेपर न दीखे तब आंखे खोलदे तो वृक्षके पास बराबरमें अपनेको खडा देखेगा. इस परिक्षीत प्रयोगका नाम द्दश्यपरिमाण हे. इस परीक्षा किये पीछे नीचेकी बातोंपर ध्यान देना चाहिये.—

(१) देशका प्रतिबिंब होता हे, (२) प्रतिबिंब वस्तु असत्य नहीं हे, (३) रंग रुप मगजकाही इम्प्रेशन नहीं हे, (४) हिरण्यगर्भ–शेषाकी अव्यक्त किरणें द्दश्यका माप लें (स्पर्शवित् रुप धारें) एसी वस्तु हें, किरणे समूहात्मक टकरानेपर व्यक्त होती हें अन्यथा अव्यक्त हें, (५) मगजमें इतना बडा देश ओर वृक्षका इतना लंबा फोटो केसे समाया होगा, अर्थात बाधक हुये विनाभी मायिक स्वरुप रहते हें, (६) किरणोंने (वृक्षने) बाह्य गति समान केसे गति की होगी. एसी परीक्षा होगई हो तो

यह बातभी समझमें आजानी चाहिये कि स्वरूपाप्रवेश हुयेभी सहचर्य होनेका भाव ठीक हे.

तीन मीलका लंबा पहाड आंखमें जान पडता हे अर्थात उसकी किरणें आंखोंकी कीकीमें एकत्र होके अंदरमें जाके पहाड जितना लंबा रुप रखलेती हें. (शं.) अंदरमें इतनी जघे नहीं हे. (उ.) जेसे बडे आदमी ओर बडे पहाडका फोटो लें तो छोटी प्लेटपर बडा जान पडता हे, एसी रीतिसे लंबाई लेता होगा वा जान पडती हे. परंतु यह समाधान ठीक नहीं जान पडता; क्योंकि जिसने कभीभी फोटो न देखा हो उसको इतने बडेका भान (खयाल) नहीं आसकता, परंतु जिसको फोटो वा प्रतिबिंबके संस्कार होंगे वोह पूर्व अभ्याससे इतना बडा मान लेगा; न के उतना लंबा कद विषय होता हे; परंतु आंखमें तो अशिक्षितकोभी बडा लंबा जान पडता हे. सूक्ष्मयंत्रद्वारा फोटो देखें तो उसकी किरणें बडा रुप रखके जान पडती हें, इससेभी स्पष्ट होगया कि फोटो कम ज्यादे न हुवा किंतु किरणोंनेही बडा रुप रखा हे. इसीप्रकार उक्त अंदरके फोटो वास्ते जान लेना चाहिये. काचके प्रतिबिंबमें कितना बडा लंबा गहेरा देश (आकाश) जानपडता हे. मोटा (बडा) काच लें तो काचवाले प्रतिबिंबकी आंखोमें काचकी प्लेट सहित बिंबकी आंखोंका फोटो मालूम पडता हे. सारांश मायाके कार्यरुप जो किरण उनका घुसना, उनका फेरफार होना, ओर अन्यथा जान पडना विचित्र बात हे, तो माया-प्रकृतिके खास कार्य वास्ते तो क्या कहना हे.

सारांश ईथर (शेषा) देशविना देशवाला, कालविना कालवाला आकार धर लेता हे. उपरोक्त उदाहरणानुसार अधिष्ठान अध्यस्तका सहचर्य, बाधक हुये विना बाधरुप वा सत्ताकी विलक्षणता होनेसे बनजाता हे.

उपरोक्त दृश्यपरिमाणवाले उदाहरणमें देश ओर जमीन, अंदरके दृश्य-वृक्षके कारण नहीं हें, परंतु उस कालमें पूर्वसंस्कारवश कारण जान पडते हें ओर अंतस्थ देशमें गति नहीं हे, परंतु गति होना जान पडता हे. कनककुंडल, जल बर्फादि प्रसंगमेंभी एसाही होता हे. अर्थात जब कार्यरुप हुवा तो कारणरुप कहां रहा. कारण कार्यका अभेद हे—एकरुप हे, भेद व्यवहारमें कल्पनामात्र हे, इसलिये बाध हुये पीछे अन्यथाप्रतीति होजाती हे. अज्ञानकालमें कारणकार्यादिभेद जान पडते हें. ज्ञानकालमें सब प्रकृतिके परिणाम हें ओर यथासंस्कार भेद जान पडते हें, एसा हे. स्थूलभावको छोडके विचारिये—जेसे स्वप्नकालमें स्वप्नसृष्टिके देशकाल वस्तुका

कारणकार्यभाव ओर इदमादि अस्तित्व सत्रुपमें स्पष्ट होते हैं, परंतु जागने पीछे वेसे नहीं किंतु उससे अन्यथा (अनिर्वचनीय--आश्चर्य) जान पडते हैं; एसेही वर्त्तमान जाग्रतमें कारणकार्यभाव, इदंत्व, अस्तित्व, निर्भ्रांत स्पष्ट जान पडते हैं, परंतु इस जाग्रतसे जब दूसरी जाग्रत (स्वप्नसृष्टि) में जावेंगे तब गत जाग्रतमें जेसे देश-कालादि कारणकार्यादि भाववाले मालूम होते थे वेसे नहीं जान पडते, किंतु स्मृति मात्र अथवा उससे अन्यथा अनिर्वचनीय (जेसे वर्त्तमानमें स्वप्नको मानते हो वेसे) जान पडते हैं; एसा हे. कारण के अन्यथा (अध्यास), अन्यथा कालमें अन्यथा भावसे विषय नहीं होता; यह नियम हे. बाध पीछे 'यूं था' एसे भावमें विषय होता हे; इसलिये अन्यथाप्रतीति (असमानत्वका हेतु नहीं किंतु) समानत्वका हेतु हे; क्योंकि एसा प्रकार उभयमें सिद्ध होता हे. स्वप्न भ्रमरुप नहीं हे यह उपर कहा गया हे। स्वप्न-सृष्टि अध्यस्त (बस. ४५२) हे; क्योंकि कूठस्थ विभु (स्वप्नसृष्टिमें व्यापक निष्कंप द्रष्टा) में गतिमान हे अर्थात स्वरुपमें अप्रवेश हुये अस्पर्श गति होनेसे अध्यस्त कहीजाती हे (वा तो बाधवादकी रीतिसे देशकाल ओर गतिवाली जान पडती हे; अतः अध्यस्त हे). एसेही परमात्मा (ब्रह्मचेतन) में व्याप्य--जाग्रतसृष्टि अध्यस्त हे. ओर यदि अध्यस्त न हो तो गतिभी न हो (२। ३८२). बस. गत उत्तर फिलोसोफी देखनाभी ठीक होगा. इसलियेभी उभयका समानत्व हे ॥४९२॥ अब आगे प्रस्तुत प्रसंगसंबंधि कितनीक शंकाओंका समाधान होजावे, एसी कितनीक बातें संक्षेपमें लिखते हैं.—

समानता संबंधि **शंका समाधान** सू. ४९३ से ५२० तक.

योग्यभेद असमानताका हेतु नहींभी ॥ ४९३ ॥ यथासंस्कार सृष्टिमें अंतर ॥ ४९४ ॥ सर्वमें सर्वका अभाव होनेसे ॥ ४९५ ॥ धूमश-कट शब्दयंत्रादि वत् ॥ ४९६ ॥ स्वप्नानुसार सिद्धि अकस्मात ॥ ४९७॥ व्यभिचार दर्शनसे ॥ ४९८ ॥ वा जाग्रतवत् सूक्ष्मामें लिंगका दर्शन हो-नेसे ॥ ४९९ ॥ सूक्ष्माके परिणाम योगीगम्यभी ॥ ५०० ॥ परीक्षासे ॥ ५०१ ॥ किरणादि समान स्थूल होने योग्य ॥ ५०२ ॥ कारणकार्य भाव विना उभयका नैसर्गिक प्रवाह ॥ ५०३ ॥ कनककुंडलादि वत् ॥ ५०४ ॥ व्यवहारमें सत्ताका भेद ॥ ५०५ ॥ जाग्रत स्वप्न वत् ॥५०६॥ किसीका स्वप्न न होनेसे ॥ ५०७ ॥ समानता कर्तव्यकी प्रतिबंधक नहीं ॥ ५०८ ॥ प्रयत्न दर्शनसे ॥ ५०९ ॥ यथा उपयोगी मंतव्यका प्रचार

॥ ५१० ॥ अपने अपने कालमें विषम ओर अन्यथा समानत्व ॥ ५११ ॥ वर्त्तमान[1] कलीगत पंचहजारवर्ष आर्यावर्त्तदेश, इंग्लिशराज्य तथा में ब्रह्मानंद[2] तुंभार्गव[3] एसे देशकाल व्यक्तिकी वहां[4] अन्यथा[5] रुपसे प्रतीतिभी तद्वत् ॥ ५१२ ॥ सूक्ष्माके कार्य, योग्यता होनेसे ॥ ५१३ ॥ विनिमय प्रवाहादिके वशसे ॥ ५१४ ॥ अज्ञानादि भ्रमसामग्रीसेभी असमानता नहीं ॥ ५१५ ॥ विलक्षण सत्तावालीकी प्रतीति न भ्रमरुप ॥ ५१६ ॥ निवृत्ति अन्यथा जान्नेसे ॥५१७॥ न भ्रमवत् अर्थशून्य अध्यास ॥५१८॥ पूर्व अपूर्व लक्षणके भेद होनेसे ॥५१९॥ रज्जुसर्प प्रतिबिंबादि वत् ॥५२०॥

अर्थ.—जाग्रत स्वप्नसृष्टिमें यदि कोई योग्य भेद हो तो वोह उनकी असमानताका हेतु नहींभी होसकता. (क्योंकि उभयका उपादान अव्यक्त (प्रकृति—माया) ही हे) ॥ ४९३ ॥ जेसे के प्रतिबिंब ओर बिंबका, तम ओर प्रकाशका, नाटकोंके आदर्श ओर तांत्रिक आम्रादिका जो परस्परका भेद हे यह सब भेद जाग्रतकी प्रकृति ओर सत्ताकी असमानताके हेतु नहीं होसकते वा नहीं हैं. तद्वत् जाग्रत ओर स्वप्नसृष्टिके संबंधमें योजलेना चाहिये, क्योंकि उपादान दोनोंका एकही हे ॥४९३॥ जेसे संस्कार होते हैं उस अनुसार सृष्टियें होती हें, इसलिये दोनों सृष्टिमें अंतर होजाता हे ॥ ४९४ ॥ क्योंकि सब व्यक्तिओंमें सब प्रकारके संस्कार नहीं होते; इसलिये सब प्रकारके स्वप्न सर्वको नहीं होते (४३७ । ४४३ याद कीजिये) ॥४९५॥ जेसे के धूमशकट (रेल्वे), शब्दयंत्र (फॉनोग्राफ), घटिका यंत्र (जेबी घडी) ओर तार तथा आकाशी विमान (बलून) विजलिके यंत्र वगेरे—इनके सबको स्वप्न नहीं होते इसलिये स्वप्नसृष्टिओंमें अंतर होजाता हे ॥४९६॥ संस्कारोंकी रचनासे जब रेल्वे वगेरे बने उस पीछे जिसने वे देखे उसको वेसे स्वप्न हुये अन्यको नहीं, स्वमस्तकछेदन, स्वशरीरका उडन जिसने स्वप्नमें देखा हो उसको जाग्रतमें वेसा होनेका ज्ञान होसकता हे, अन्यको नहीं, जिसको पूर्वजन्मगत भूत होनेके संस्कार हों तो वोह अपने शरीरका मरण ओर दाह होना देखसकता हे, जिसने काच द्वारा स्वपृष्टका दर्शन किया हो तो वोह स्वप्नमें अपने पृष्टके जखम वा गुमडेको देखसकता हे, पूर्व स्वप्नके पदार्थ कालांतरमें उत्तर स्वप्न विषे देखता हे, तहां वस्तुके संस्कार हेतु हैं; नहीं के सत् सत्ताकानके संस्कार हेतु हैं. इसीप्रकार जाग्रतसृष्टि

[1] जाग्रत. [2] पूज्य शिक्षककी यादगारी अर्थ. [3] शिष्य प्रति पूज्यका प्रयोग. [4] स्वप्न. [5] सत्य रुपसे.

पूर्ववत् ओर कभी अन्यथा देखता हे. स्वप्नमें जाग्रतको स्वप्नवत् वा स्वप्न स्मृतिवत् जिसने जाना हो वोहही जाग्रत--स्वप्नकी यथावत् समानता जानसकता हे. अन्य विद्या विश्वाससे मानसकता हे (नहीं तो नहीं). स्वप्नमें दृष्टावत् सत्य ओर जागने पीछे दृष्टा तो पूर्व जेसी सत्तावाला परंतु स्वप्नसृष्टि बेसी (पूर्व वर्त्तमान सत्तावाली) नहीं किंतु अन्यथा; इन दोनों बातोंपर जिसने विचार किया हो वोही सत्ताकी विलक्षणताको जाग्रत ओर स्वप्नमेंभी जान्ने (अनुभवने) योग्य हे; सब नहीं. इस रीतिसे सृष्टिमें अंतरभी होता हे ओर अनुभवमें लेने योग्यही यह विषय हे, एसा सिद्ध होता हे ॥ ४९३ से ४९६ तक ॥ जब स्वप्नके अनुसार जाग्रतमें होजाना जानपडे उसको अकस्मात होजाना जान्ना चाहिये; नहीं के स्वप्नके अनुसार सिद्धि हुई हे एसा मानलेना ॥ ४९७ ॥ क्योंकि स्वप्नवाली तमाम बातें उस अनुसार नहीं मिलती अर्थात व्यभिचार दोष हे ॥ ४९८ ॥ स्वप्नमें अमुक मित्रको परदेशसे आना देखते हें; जागने पीछे उसी दिन वोह आगया हो, एसे प्रसंगमें अकस्मात एसा हुवा हे, एसा जान्ना चाहिये; कारण के स्वप्नानुसार मित्रका आना देखतें हें ओर नहीं आनाभी होता हे, इत्यादि व्यभिचारदोष होनेसे स्वप्नानुसार होना नहीं मानसकते ॥ ४९८ ॥ अथवा जेसे जाग्रतमें क्वचित वीरद्वारा वा अन्यप्रकारसे कुछ ज्ञात होजाता हे वेसे सूक्ष्माके वीरादि निमित्तसे कुछ भान होनेसे उस अनुसार होना पायाजाता हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ ४९९ ॥ परंतु उक्त व्यभिचार दोषके वश वोह दर्शन सर्वांशमें विश्वासके योग्य नहीं होता, इसीप्रकार जाग्रतमें एसा विषय सर्वथा विश्वासपात्र नहीं होता ॥ ४९९ ॥ सूक्ष्माके परिणाम (स्वप्नगत आकृति-फॉर्म) योगीको गम्य होभी जाते हें ॥५००॥ यह बात परीक्षा करनेसे मान्ने योग्य हे ॥ ५०१ ॥ एक विधेय (सबजेक्ट) तैयार था, सोनेवालेके स्वप्नके विषय लिखाता रहा, प्रतिबिंब जेसे ओर उससेभी सूक्ष्म हें, एसा कहता था. उसके जागनेपर उससे पूछा तो अनेक बातें लिखाये हुये अनुसार मिली ॥ ५०१ ॥ स्वप्नगत दृश्य पदार्थ किरणादि समान अर्थात जेसे किरण, विद्युत, उष्णता, प्रकाश, ओर वायु यह स्थूल होनेपर विषय होते हें वेसे (वे पदार्थ) स्थूल होने योग्य हें; क्योंकि उभय सूक्ष्माके परिणाम हें. सारांश जेसे किरणोंका जुत्थ प्रतिबिंबरुपमें विषय होजाता हे स्थूल न हो तो किरणें दृश्य नहीं होती, वेसे स्वप्नसृष्टिके पदार्थों वास्ते मानसकते हें ॥ ५०२ ॥ जाग्रतके विना स्वप्न नहीं होसकता, एसा कारणकार्यभाव नहीं हे किंतु उभय

सृष्टिका नैसर्गिक प्रवाह हे ॥ ५०३ ॥ जेसे के (१) कनकसे कुंडल हुवा, फेर कुंडल कनकरुपमें आगया, फेर उससे तोडा बना, फेर उससे छुरी वा भस्म वा वींटी बनी. किंवा (२) जेसे जलसे हिम बना, फेर हिम जलरुप होगया किंवा (३) जेसे प्रकाश उद्भव तिरोहित हुवा–संकोच विकासको पाया–दिन पीछे रात ओर रात पीछे दिन हुवा; वेसे मायाके परिणाम होते हें अर्थात जाग्रतरुप परिणाम, पीछे स्वप्नरुप परिणाम, पीछे अपने मूलरुप (सुषुप्ति), पीछे पुनः स्वप्नरुप, पीछे जाग्रतरुप, पीछे मूलरुप परिणाम होता हे. इसप्रकार अनादिसे नैसर्गिक प्रवाह हे.–जाग्रत, स्वप्नका ओर स्वप्न, जाग्रतका मुख्य कारण नहीं हे किंतु कारणकार्य भाव विना उभय मायाकेही परिणाम हें ॥ ५०४ ॥ अथवा जेसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय पुनः उत्पत्यादि होनेका प्रवाह हे वेसे होते हें. जहां एक दूसरेमें उपयोग होना जान पडे वहांभी प्रवाहरुपसे जानलेना चाहिये. नहींके उभय समकालमें थे एसा. सारांश पूर्वके संस्कारद्वारा प्रकृतिमेंसे उत्तर उत्तर सृष्टि होती हे, एसा प्रवाह हे ॥ ५०४ ॥ जाग्रत ओर स्वप्नकी सत्ता (अस्तित्व प्रकार) में जो भेद जान पडता हे वोह उस सृष्टिके व्यवहारकी दृष्टिसे हे, एसा जान्ना चाहिये ॥ ५०५ ॥ यथा--जाग्रतमें जाग्रतसृष्टि व्यावहारिक सत्य ओर स्वप्न प्रातिभासिक ओर स्वप्नमें स्वप्न व्यावहारिक सत्य ओर जाग्रत (पूर्ववाला स्वप्न) प्रातिभासिक--सत्तावाला जान पडता हे, सो भेद उस उसके व्यवहारकी दृष्टिसे हे ॥ ५०६ ॥ क्योंकि यह किसीके स्वप्न नहीं हें अर्थात जेसे जाग्रतमें जाग्रतसृष्टि किसीका स्वप्न हो एसा नहीं हे वा एसा नहीं जानपडता, वेसेही दूसरी जाग्रत (स्वप्न) में वोह (स्वप्न) किसीका स्वप्न हो एसा किसीको अनुभव नहीं होता. किंतु एक दूसरेकी गेरहाजरीमें ओर विलक्षणताको लेके एक दूसरेको स्वप्न नाम दियाजाता हे, इसलिये सत्ताका भेद व्यावहारिक दृष्टिसे हे एसा जान्ना चाहिये; क्योंकि उभयका उपादान एक हे (२ । ४३०) ॥ ५०७ ॥ जाग्रत, स्वप्नके समान (वा स्वप्न, जाग्रतके समान) यह समानता, कर्तव्य (पुरुषार्थ-भविष्य प्रबंध, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उन्नति वगेरे) की प्रतिबंध नहीं हे ॥ ५०८ ॥ क्योंकि जाग्रतवत् स्वप्नमेंभी प्रयत्न करना देखते हें ॥ ५०९ ॥ तथाहि " स्वप्न जाग्रत समान " इस पक्षकाभी ग्रहण हे. स्वप्नमें खान, पान, दवाई, संतान पालन, विवाह, संतानार्थे भविष्यका प्रबंध, कर्म, उपासना, बंधनिवृत्ति ओर मोक्ष प्राप्ति अर्थ उपाय इत्यादि सफल प्रवृत्ति ओर जाग्रतवत् मृगजलादिके अर्थे निष्फल

प्रवृत्तिभी देखते हैं. जेसे जाग्रतमें सबको सब प्रकारकी प्रवृत्ति नहीं होती वेसे वहांभी अर्थात एकको सर्व प्रकारकी प्रवृत्ति (स्वप्नदर्शन) नहीं होती ॥ ५०९ ॥ जेसे जाग्रतमें उपयोगी (सामाजिक उन्नति वा जनमंडलको सुखकारी एसे) मंतव्यका प्रचार होता हे याने कोशिशकी जाती हे वेसे स्वप्नमेंभी यथासंस्कार कोशिश की जाती हे ॥ ५१० ॥ यथा---धर्म, नीति, व्यवहारके प्रसंगमें--- जीव-ईश्वर-प्रकृति अनादि, जीव परिच्छिन्न कर्ता भोक्ता, जीव अपनी मर्यादित शक्तिमें कर्म करनेमें स्वतंत्र हे, परंतु फल भोगनेमें परतंत्र हे, ईश्वरकी शक्तिद्वारा जीवको यथाकर्म फल मिलता हे, मोक्षसे अनावृत्ति ओर अमुकरुपमें आवृत्ति (बस. में इस त्रिवादका विस्तार हे); यह मंतव्य अन्य मंतव्योंसे उत्तम जानके इसकी (वा अन्य उत्तमकी) प्रवृत्तिमें कोशिश की जाती हे, वेसेही स्वप्नमें उपयोगी व्यवहारके प्रचारार्थ प्रयत्न होता हे ॥ ५१० ॥ जाग्रत अपने कालमें पूर्वदृष्ट स्वप्न-सृष्टिसे विषमसत्तावाली (सत्य) ओर उत्तर जाग्रत (स्वप्न) अपने कालमें पूर्वके स्वप्न (जाग्रत) से विषमसत्तावाली जानपडती हैं परंतु उनके मूल उपादानपर ध्यान दें तो उभय समान हैं (इशारा उपरभी किया हे) अर्थात दोनोंको असत्य--शून्य नहीं कहसकते. सारांश यदि जाग्रत सत्य हे तो स्वप्नकोभी उसके कालमें सत्य कहना पडेगा ओर जो स्वप्नको असत्य--अर्थशून्य कहोगे तो जाग्रतकोभी परकालमें वेसा कहना पडेगा. परंतु उभय अर्थशून्य न होनेसे समान हैं; अतः उनको असत्य नहीं कहसकते ॥ ५११ ॥[१] जेसे के वर्तमान जाग्रतमें कलीगत पंचहजार वर्ष (एसा काल) ओर आर्यावर्त्त देश ओर इंग्लिश राज्य तथा में ब्रह्मानंद (पूज्य उपदेशक) ओर तूंभार्गव (शिष्यार्थ प्रयोग) एसे देशकाल व्यक्ति जानपडते हैं; स्वप्नमें इसीप्रकारके अथवा इस देशकाल व्यक्तिसे अन्य प्रकारसेभी प्रतीति होती हे. यह उभय प्रतीति उसउस कालमें सत्य जानपडती हैं. दूसरी सृष्टिमें वेसी नहीं जानपडती हैं. परंतु अन्यथा याने वस्तुतः समान हैं; क्योंकि एक उपादानके कार्य हैं ॥ ५१२ ॥ (स्वप्नगत सूक्ष्मा याने माया—अव्यक्त वा उसका भाग हिरण्यगर्भ---शेषामेंसे नाना प्रकारके शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध, तम प्रकाश, देशकालादि केसे बन सकते हैं वा बनते होंगे, एसी शंका लेनेका अवसर नहीं हे क्योंकि) जेसे प्रसिद्ध प्रकृतिमें नाना

[१] ५१२ वाला उदाहरण ग्रंथ गूंथनके देशकाल ओर प्रयोजकका भानभी करादेता हे.

प्रकारके पदार्थरुप परिणाम पानेकी योग्यता हे वेसे प्रकृतिके सूक्ष्मा नामके भागमेंसे स्वप्नसृष्टिरुप कार्य बनता हे; क्योंकि उसमें एसे रुप होजानेकी योग्यता हे ॥ ५१३ ॥ सृष्टिके विनिमयमें अर्थात उत्पत्ति---स्थिति---लय होनेमें ओर स्वप्नमेंसे जाग्रत विषे ओर जाग्रतमेंसे स्वप्न विषे एकदम अदलबदल होता हे उसमें प्रवाहादि याने प्रवाह (क्रम), संस्कार, प्रबलईच्छा (वासना) ओर ईश्यबल (प्रकृतिकी फोर्स) यह चार कारण हें (४६० भी याद कीजे) ॥ ५१४ ॥ भ्रम होनेकी पूर्वोक्त (३ । ४०० का विवेचन) अज्ञानादि (वस्तु का सामान्यज्ञान, विशेषाज्ञान, वस्तुके संस्कार, प्रमाता, प्रमाण ओर प्रमेयदोष यह ६) सामग्री हें उस भ्रम सामग्रीसेभी उभयमें असमानता नहीं हे ॥ ५१५ ॥ स्वप्न स्वयं अध्यासरुप होनेसे वहां भ्रम नहीं होता ओर जाग्रतमें होता हे; अतः असमानता हे, एसी शंकाके निवारणार्थ यह सूत्र हे. अर्थात जाग्रतवत् स्वप्नमेंभी रज्जुसर्पादिका भ्रम होता हे, उससे अज्ञानादि सामग्रीकी सिद्धि होजाती हे. सूक्ष्म होनेसे स्पष्टरुपमें याद नहींभी रहता इतना अंतर हे. ओर स्वप्नसृष्टि भ्रमरुप नहीं हे यह "विकल्पादि रुप नहीं" इसप्रसंगमें कह आये हें; परंतु जो किसी पक्षकारकी रीतिसे स्वप्नसृष्टिको भ्रमरुप (अर्थशून्य) मानोगे तो जाग्रतकोभी भ्रांतिरुप मान्ना पडेगा. इसलिये असमानता नहीं हे ॥ ५१५ ॥ (बात यह हे कि) स्वप्नसृष्टि भ्रमरुप नहीं हे किंतु अधिष्ठान (दृष्टाचेतन) से विलक्षण सत्तावालेकी प्रतीतिरुप हे अर्थात किसी अनिर्वचनीय विलक्षणका परिणाम हे ॥ ५१६ ॥ क्योंकि स्वप्नकी निवृत्ति भ्रमवत् नहीं होती हे किंतु उससे अन्यथा होती हे. अर्थात भ्रमकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप होती हे ओर स्वप्नकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप नहीं किंतु अपने उपादान शेषामें लय होजाना हे ॥ ५१७ ॥ भ्रम निवृत्तिके पीछे भ्रमका विषय कहींभी न होनेसे पुनः भ्रम नहीं होता. स्वप्न निवृत्त हुये पीछे संस्कारवश अपने उपादानमेंसे पुनः होता हे यह उभयमें अंतर हे. ओर निवृत्तिका शेष अधिष्ठान, यह अंश उभय पक्षमें समान हे ॥ ५१७ ॥ स्वप्नसृष्टि भ्रमवत् अर्थशून्य नहीं हे किंतु व्यवहारपक्षमें जिसे अध्यास कहते हें, वेसी हे अर्थात विलक्षणसत्तावाली कुछ हे, एसी हे. (भ्रम ओर अध्यासके अंतरका विस्तार बस. उत्तर फीलोसोफिमें हे) ॥ ५१८ ॥ क्योंकि अध्यासरुप ओर भ्रमके लक्षणमें पूर्व अपूर्वका भेद होता हे अर्थात भ्रमविषयक वस्तुका अधिष्ठानसे भिन्न सर्व देशकालमें अभाव होता हे याने अर्थशून्य हे. ओर अध्यास

विषयक वस्तुका लक्षण यह हे कि जेसे भाव जेसे प्रकारमें पूर्वमें प्रतीत होती थी वेसे भाव वेसे प्रकारमें ज्ञान वा परीक्षा कालमें नहीं जान पडती किंतु उत्तरमें पूर्वसे अन्यथा जान पडती हे (परंतु नहीं थी, नहीं हे, वा वेसी नहीं होगी एसा लक्षण नहीं हे) ॥ ५१९ ॥ जेसे के डोरीका सर्प[1], प्रतिबिंब, आभास, मृगजल[1] ओर आकाशकी नीलता हे. यह इनके ज्ञान वा परीक्षाके पूर्व जेसे जान पडते हैं वेसे ज्ञान वा परीक्षाके उत्तरकालमें नहीं जान पडते; इसलिये अध्यासरुप[2] हैं ॥ ५२० ॥ ओर उनका लय उनके उपादानमें होजाता हे अर्थात उपादानरुप होजानेसे प्रतीत नहीं होते (विस्तार बस. में हे) एसी स्वप्नसृष्टि हे याने अर्थ-शून्यही नहीं हे ॥ ५२० ॥

प्रस्तुतप्रसंग (स्वप्न जाग्रत समान) में **अनेक शंका** होती हें. यथा--स्वप्नमें थप्पड दूसरेके मारें ओर लगता हे जाग्रतके शरीरपर १, स्वप्नमें, में कहां एसा भान कभी नहींभी होता २, क. ख. ग. घ. चार मनुष्य एक कमरेमें हें उनमेंसे तीन स्वप्नमें ओर क. उनके पास बेठा हे, तो वे स्वप्नसृष्टि किसकी ओर यह जाग्रत किसकी? तथा उन सृष्टियोंमें जाग्रत समान चारोंका भाग क्यों नहीं ३, क. ख. दो हाथ पकडे हुये हें इनमें यह जाग्रत किसकी सृष्टि ४, स्वप्नमें तुर्या क्यों नहीं होती ५, खिरसानको डाक्टरीका स्वप्न क्यों नहीं होता ६, स्वप्न जेसे फॉर्म (सिरकटा देखना वगेरे) जाग्रतमें नहीं देखते, वेसे जाग्रत जेसे स्वप्नमें नहीं देखते एसे विषय हें वा नहीं? ७, स्वप्न ओर जाग्रतसृष्टि समकालीन हें तो एक दूसरेके देशकाल वस्तु संबंधमें स्वरुपाप्रवेश दोष होगा, जोकि असंभव हे ८, जाग्रतमें स्वप्नकी ओर स्वप्नमें जाग्रतकी स्मृति किसको होती हे ९, यदि प्रकृति (माया) देश कालादि सामग्री रहित होनेसे मिथ्या मानें तो ब्रह्मभी देशकाल रहित होनेसे मिथ्या क्यों न माना जाय? १०, देशकालके विना प्रकृतिमें गति वा परिणाम नहीं होसकते तो देशकाल उसके परिणाम केसे होसकते हें ११, स्वप्नका उदाहरण साध्यसम हे अर्थात साध्य प्रकृतिके अंतरगत होनेसे मान्य नहीं १२, स्वप्न वा सुषुप्तिमें जाग्रतसृष्टि हे वा नहीं? तथा स्वप्नकालमें परोक्ष पदार्थोंका अस्तित्व अपरोक्षोंके समान हे वा नहीं १३, कल देखे थे वेही आज वर्तमानमें पदार्थ हें वा नहीं १४, उभयकी समानता किसीके अनुभवमें

---

[1]जहां यह शेषाके परिणाम हें वहां अर्थशून्य नहीं होते, एसा इस अध्यायमें कह आये हें. [2] यह पारिभाषिक--कल्पित संज्ञा--अर्थ हे.

क्यों नहीं आती १५, जागने पीछे स्वप्नके विषय ओर स्वप्नमें गये पीछे स्वप्नवाले विषय अन्यथा जान पडते हैं, एसा मानें तो अनिश्चित प्रसंगकी आपत्ति होगी १६, स्वप्न जाग्रत समान हैं यह ओर पुरुष प्रकृतिकी विलक्षणता हे यह याने इन उभयका ज्ञान किसको होता हे १७, तुम्हारा कथन मंतव्यभी--स्वप्नसृष्टिके समान होना चाहिये १८, स्वप्नकालके समान जाग्रतमें शेषामेंसे वेसे पदार्थ क्यों नहीं बनते १९, इत्यादि प्रकारकी ६४ शंका ओर उनका समाधान हेतु--दृष्टांत--उदाहरण सहित विस्तारपूर्वक भू. के उत्तरार्द्धमें (पृष्ट ४२५ से ६०० तकमें) लिख चुके हैं. इच्छा हो तो उस ग्रंथमें देखलेना ॥ ओर लिखित ग्रंथमें सुगमतासे बोध हो, इस दृष्टिसे शंकायें उठाउठाके उत्तरमें उक्त समाधानवाले सूत्र दरसाये हैं. यहां विस्तार भय, ओर संकोचापात्तिसे वोह पद्धत्ति नहीं ली हे ॥ ५२० ॥

विशेषज्ञानसे असमताकी निवृत्ति ॥ ५२१ ॥ सस्मृति परिणाम ग्रहणसे संदेहकी ॥ ५२२ ॥ जीव सृष्टिभावसेभी ॥ ५२३ ॥ सूक्ष्म स्थूल संस्कारके विवेकसे ॥ ५२४ ॥ ओर " यह वोह नहीं पर तद्वत् " " वोह यह नहीं पर इसवत् " के विचारसे ॥ ५२५ ॥ इष्टबोधक ग्राह्य ॥ ५२६ ॥ अनुमंताका ग्रहण बोध ॥ ५२७ ॥

अर्थ.—जाग्रत ओर स्वप्नसृष्टि समान नहीं, ओर जाग्रतवाला ब्रह्मचेतन तथा स्वप्नवाला दृष्टाचेतन असम (भिन्नप्रकारवाले ओर जुदाजुदा) हैं इस विप्रीतभावनाकी निवृत्ति, विशेषज्ञान अर्थात पूर्वोक्त सत्ता भेद, ओर चिदात्माके अनुभवसे होजाती हे ॥ ५२१ ॥ प्रस्तुत विषयमें जिसको जितने संशय हों उसको उनकी निवृत्ति स्मृतिपरिणाम इस थीयरीके ग्रहणसे होजाती हे (४८० याद किजे) अर्थात स्वप्नसृष्टि (उस कालमें जाग्रतरुप) जाग्रत (स्वप्न) स्मृतिसहित ओर जाग्रत (वर्त्तमानसृष्टि) स्वप्न (पूर्वकी जाग्रत) स्मृतिसहित परिणामवाली हे, इस प्रकारके दृष्टिसृष्टिवादकी रीतिसे सब संशयोंकी निवृत्ति होजाती हे ॥ ५२२ ॥ समचेतनके समक्ष (आकाशगत धूम वा तम समान) परिणाम स्वभाववाली मायाप्रकृतिके (साधनांशगत) पूर्वपूर्व संस्कारके अनुसार उत्तरउत्तर एसे नामरुपात्मक परिणाम (याने शक्तिकी गतिरुप सृष्टि) बदलते रहते हैं अर्थात प्रवाहसे नाना परिणाम होते रहते हैं ओर वे देशकाल (भूत-भविष्य) विनाके देश-काल-वस्तु (भूत-वर्तमान-भविष्य) सहित वर्त्तमानरुप (दृष्टिमात्र सृष्टि एसे) होते हैं

परंतु वे अधिष्ठानचेतनकी सत्ताविना नहीं होते. इस थीयरीका नाम दृष्टिसृष्टिवाद हे. इसके विवेकविचारसे प्रस्तुत प्रसंगगत जो संशय हों उनकी निवृत्ति होजाती हे (विस्तार भू. में हे) ॥ ५२२ ॥ जीव सृष्टिभावसेभी प्रस्तुत विषयगत जो संशय हें उनकी निवृत्ति होजाती हे ॥ ५२३ ॥ पहेले ईश्वर प्रयोजित वा कुदरती सृष्टि (ज्ञेय हे. यह श्रौतत्रिवाद बस. पूर्वार्द्धमें जनाया हे) उस पीछे उसका ज्ञान होता हे, इस थीयरीका नाम **सृष्टिदृष्टिवाद** हे. तदंतरगत स्वप्न जीवसृष्टिभाव हे. इस जीवसृष्टिभावसेभी संदेहोंकी निवृत्ति होजाती हे ॥ ५२३ ॥ क्योंकि जीवसृष्टि सूक्ष्मप्रकृति (शेषा)का ओर कुदरती वा ईश्वरसृष्टि (दृश्यब्रह्मांड) स्थूल प्रकृतिका कार्य हे. ओर स्वप्नसृष्टि संस्कारवश स्वाभाविक होजाती हे ओर ईश्वरसृष्टि वा कुदरतीसृष्टि सनियम ईश्वरेच्छापूर्वकभी होती हे, इतना उभयमें अंतर हे. इतने भेदसे इतर उपादान, भोग ओर उपयोगमें उभयसृष्टि समान हें जेसा के उपर कहा गया हे. इसप्रकारके विवेकसे संशयोंकी निवृत्ति होजाती हे ॥ ५२४ ॥ यह (दृश्य जाग्रत) वोह (स्वप्नरुप) नहीं हे किंतु तद्वत् (याने मायाका परिणाम स्वप्नसृष्टि जेसा) हे. ओर वोह (स्वप्नसृष्टि) यह (दृश्य ब्रह्मांडरुप) नहीं हे परंतु इस (दृश्य ब्रह्मांड) जेसा मायाकाही परिणाम हे. इसप्रकारके विचारसेभी उक्त संशयोंकी निवृत्ति होजाती हे ॥ ५२५ ॥ दृष्टिसृष्टिवाद, सृष्टिदृष्टिवाद ओर जाग्रतस्वप्नका व्यतिरेक-इतरपना इन तीनोंका विस्तार भू. में पृष्ठ ५७४ से ५९५ तकमें शंका समाधान सहित लिखा गया हे; इसलिये यहां संक्षेपमें वृत्तिमात्र लिखा हे ॥ ५२१ से ५२५ तक ॥

उपरोक्त प्रकारोंमेंसे शोधक, परीक्षक, वा जिज्ञासुको जो प्रकार इष्टबोधक हो याने जिस प्रकारसे उठे हुये संशय, विपरीतभावनाका निवारण १, उभय सृष्टिकी समानताका बोध २, समचेतनका साक्षात ३, ओर चिदचिद्के अस्तित्व (सत्ताके वैलक्षण्य) का अनुभव ४, होजाता हो वही प्रकार (थीयरी--प्रक्रिया--पद्धति) अधिकारीको ग्राह्य (उपादेय) हे. नहीं के किसीके विश्वासमात्रसे ग्राह्य हे ॥ ५२६ ॥ परीक्षा पूर्वक अनुभव होने पीछे जो मानाजाय एसे मान्नेवालेको अनुमंता कहते हें, उस अनुमंताभावका साक्षिचेतनमें जो स्वतोग्रह होना उसका नाम यहां बोध हे ॥ ५२७ ॥ आशय यह हे के साक्षीचेतनमें अप्रमात्वका ग्रहण नहीं होता, किंतु उसका परतः रुपमें ग्रहण होता हे ओर प्रमात्वका साक्षातसे स्वतः ग्रहण होता हे. यद्यपि अप्रमात्व ओर प्रमात्व जीववृत्तिकेही रुप हें तथापि

अप्रमात्व (भ्रम--अध्यास) का ग्रहण उसके अभावकालमें अनुमानद्वारा होता हे ओर प्रमात्व (यथार्थ) उसकी हयातीमें स्वतोग्रह होता हे, इतना अंतर हे; इसलिये सार यह निकला के यथार्थही ग्रहण करने योग्य हे; अयथार्थ (बाधित) ग्रहण करने योग्य नहीं हे ॥ ५२७ ॥

समानताविषयक प्रौढीवाद समाप्त हुवा.

समचेतन नवीन नहीं अन्वयी होनेसे ॥ ५२८ ॥ प्रकाश्योंका अविषय ॥ ५२९ ॥ अनुमंता उपद्रष्टा समान न कर्ता न भोक्ता ॥ ५३० ॥ कूठस्थ ओर अक्रिय होनेसे ॥ ५३१ ॥ अपरिच्छिन्न होनेसे ब्रह्म ॥५३२॥ व्यष्टि द्रष्टिसे प्रत्यगात्मा ॥ ५३३ ॥ किरण ओर तम जैसी अध्यस्त मूला ॥ ५३४ ॥

अर्थ.—(जेसे स्वप्नसृष्टि नवीन परिणाम हे वेसे) सम चेतन अव्यक्तका नवीन परिणाम वा क्षणिक विज्ञानका नवीन परिणाम वा अध्यासरुप नवीन प्रतीतिका विषय होगा, एसा नहीं हे; क्योंकि वोह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थामें अन्वयी हे.—तीनों अवस्थामें उसका व्यतिरेक नहीं हे, ओर न बदलता हे, इसलिये उक्त प्रकारमेंसे कोई प्रकारकाभी नवीन नहीं हे ॥ ५२८ ॥ जो उसे स्वप्नसृष्टि जैसा मानें वा क्षणिक परिणामी वा अध्यासरुप मानें तो वोह सम न होगा, सावयव तथा जड होगा, ओर त्रिपुटी व्यवहार सिद्ध न होगा, अर्थशून्य वा बाधित होगा—इत्यादि दोष आते हें; अतः वोह समचेतन नवीन नहीं हे ॥ ५२८ ॥ वोह समचेतन प्रकाश्य याने मन, बुद्धि, शेषा, इंद्रिय, मगज, शरीर, शब्दादि विषयोंका विषय नहीं हे, किंतु वे उसके विषय हें. (अतः नवीन नहीं हे) ॥ ५२९ ॥ जेसे अनुमंता (अपरोक्षत्व हुये पीछे मान्नेवाला), उपद्रष्टा (में देखताहुं, में जानताहुं, एसे उत्तर क्षणमें भाववाला) जो जीव सो कर्ता—भोक्ता हे, वेसे वोह समचेतन न कर्ता हे ओर न भोक्ता हे ॥ ५३० ॥ क्योंकि वोह कूठस्थ (निर्विकार) ओर गति रहित हे. परंतु कर्तृत्व क्रिया विना नहीं होता ओर भोक्तृत्व परिणामरुप अवस्था वा विकार हे; अतः समचेतन कर्ता-भोक्ता नहीं हे ॥ ५३१ ॥ समचेतनसे पर अन्य कुछभी नहीं हे ओर वोह सर्वत्र पूर्ण हे—अपरिच्छिन्न याने विभु हे (७४७ देखो); इसलिये उसे ब्रह्म कहते हें ॥५३२॥ जो एसा न होता तो उपर कहे अनुसार (३ । ३०४ । ३९६) अधिष्ठानभी न होता ॥ ५३२ ॥ उसीको व्यष्टि उपाधिकी दृष्टिसे अर्थात अविद्या वा अंतःकरण

अवच्छिन्न वा शरीरउपहित होनेसे प्रत्यगात्मा (अंतरात्मा---साक्षीचेतन) कहते हें ॥ ५३३ ॥ जेसे महाकाश घटकी उपाधिसे घटाकाशरुप ओर सक्रिय जानपडता हे वेसे अविद्या वा अंतःकरणउपहितचेतन, परिच्छिन्न ओर सक्रिय याने कर्त्ता-भोक्ता जानपडता हे, वस्तुतः कूटस्थ हे ॥ ५३३ ॥ जेसे दृश्यप्रतिबिंबकी उपादान किरणे हें जो आकाशकाभी प्रतिबिंब करलेती हें ओर उनका अनेक विचित्रप्रकारका रुप बनजाता हे, उन किरणोंका मूलसूक्ष्म स्वरुप विषय नहीं होता, उनका स्थूलपूंज हो तब पूंजरुपसे वे विषय होती हें वेसी; ओर जेसे तमके परिमाणका निश्चय नहीं होता तथा तम जब उद्भव हो तब अस्तिरुपसे ओर आवरक जानपडता हे ओर जब तिरोहित हो तब कहींभी नहीं एसा ज्ञात होता हे वेसी, अध्यस्तरुप मूल प्रकृति याने अनिर्वचनीय माया हे. अर्थात विचित्ररुप धरलेनेवाली हे, उसका मूल स्वरुप मन-वाणीका विषय नहीं हे, उसका परिमाण अणु वा विभु नहीं कहाजासकता, उद्भव याने प्रतीतकालमें समूह--पूंज रुपसे प्रतीत होती हे, अप्रतीतकालमें कहींभी नहीं, एसा जान पडता हे. एसी अद्भुत माया हे. (जेसे आकाशमें नीलता अस्पर्श (अध्यस्त) हुये हे वेसे समचेतनमें मूला (माया) रही हुई हे) ॥ ५३४ ॥ (समचेतन ओर अध्यस्त--मायाके स्वरुपका विस्तार बस. के उत्तरार्द्धमें ओर भू. में हे ॥५३४॥ यहांतक सू. ४०४ का विवेचन हुवा ॥४०४ से ५३४ तक ॥

सू. ३९३ में अधिष्ठानअध्यस्तकी प्रतिज्ञा उसपर शंकाका उत्थान ४०३ तक, उसके समाधानकी सामग्री याने ४२२ तक, सत्ताका बयान तत्पश्चात सू. ५२७ स्वप्न-जाग्रतकी समानता ओर उसपीछे ५२८ से ५३४ तक अधिष्ठानअध्यस्तका स्वरुप कहा. अब आगे उक्त शंकाका समाधान लिखते हें.—

सत्ताअधिकरणसे उभयका अधिष्ठानाध्यस्त भाव विलक्षण संबंध ॥ ५३५ ॥ ओर उभयसृष्टि समान तथा मूलशक्तिका परिणाम ॥ ५३६ ॥ अतः उभयकी व्यवस्था ओर उभय सफल ॥ ५३७ ॥ अभ्यासीको दोनोंका बोध ॥ ५३८ ॥

अर्थ.---उपरोक्त सत्ताअधिकरण अ. २ ओर अ. ३ गतसे यह सिद्ध होजाता हे कि अधिष्ठान कूटस्थ चेतन ओर उससे विषमसत्तावाला अध्यस्त याने अपने परिणाम (जगत) सहित माया इन उभयका अधिष्ठानाध्यस्त भाव संबंध हे, परंतु उनका अस्तित्वप्रकार एक दूसरेसे विलक्षण हे इसलिये यह संबंधभी

विलक्षण हे ॥ ५३५ ॥ ओर स्वप्न तथा जाग्रत यह उभयसृष्टि समान हें ओर यह दोनों मूल शक्ति याने मायाकेही परिणाम हें ॥ ५३६ ॥ इसलिये उपर कहे अनुसार (३ । ४०४) स्वरुपका बाध न होते हुये (२ । ३८२ का विरोध न होते हुये) उभयके साथ रहनेकी व्यवस्था होजाती हे (२ । ४३० । ३०३ देखो) ओर एक दूसरेसे एक दूसरेका उपयोग होता हे इसलिये दोनों सफळ हें (यहां भेद ओर आधारनियमकी व्यवस्था लिखी हे. दोनोंका उपयोग केसे होता हे इसका विस्तार बस. में हे) ॥ ५३७ ॥ जिसने सत्ता ओर उनकी विषमताका तथा उपरोक्त विषयका अभ्यास किया हे एसे अभ्यासीको अधिष्ठानाध्यस्त (प्रकाश ओर प्रकाश्य) इन उभयका लक्ष्यालक्ष्यरुपसे साक्षात्कार होजाता हे ॥५३८॥

विवेचन.—उपर ४२१ में द्दष्टाचेतन ओर स्वप्नसृष्टिकी सत्ता विलक्षण बताके स्वप्नसृष्टिका जो अधिष्ठानचेतन उसमें उससे विषमसत्तावाली स्वप्नसृष्टि अध्यस्त (आकाशकी नीलता समान अस्पर्श रही हुई) हे, ओर एक दूसरेका स्वरुप एक दूसरेके स्वरुपका बाधक नहीं हे, एसा स्पष्ट किया हे, प्रत्यगात्मा (स्वप्नसृष्टिका साक्षी) ब्रह्मस्वरुप हे, यह उपर कहा हे, ओर चेतन ब्रह्म एकही हे वोही अधिष्ठान हे यहभी उपर कहा हे, ओर स्वप्नसृष्टि तथा जाग्रतसृष्टि समान होनेसे उनका उपादानभी एकही हे; अतः जब के स्वप्नसृष्टि चेतनसे विषम सत्तावाली हे तो ब्रह्मसेभी विषम ठेरी, ओर जाग्रतके समान हे; अतः उभय समसत्तावाली हुई अर्थात कूटस्थ ब्रह्मसे विषमसत्तावाली हुई, ओर उपादेय उपादानकी समसत्ता होती हे; इसलिये उभयके उपादान माया--प्रकृतिकीभी सत्ता स्वप्नजाग्रत जेसी ठेरी अर्थात कूटस्थ ब्रह्मसे विषम ठेरी, ओर विषमसत्तावाले बाधक नहींभी होते यहभी उपर कहा हे, इसलिये अधिष्ठान, विषमसत्तावाले अध्यस्तका साधक हुवा बाधक नहीं. फलितार्थ—अर्थात जेसे कूटस्थमें स्वप्नसृष्टि अध्यस्त हे, वेसे ब्रह्ममें यह ब्रह्मांड अध्यस्त हे; जेसे आकाशके स्वरुपमें नीलता बाधक नहीं, किंतु अध्यस्त हे, वेसे ब्रह्मके स्वरुपमें जगत (माया) बाधक नहीं; किंतु अध्यस्त हे. यह सिद्ध हुवा.

उभयकी सत्ता (अस्तित्व प्रकार) की विलक्षणता अनुभव हुये यह विषय समझमें आजाना मुशकिल नहीं हे. इसप्रकार आधेय (२६१), आधार (२६२), ओर भेद (३८२) इन विरोधाभासवाले नियमोंकी व्यवस्था होजाती हे. सत्ता अभाव (४१५), विषम (४१८), ब्रह्म (४१३) ओर अवतिष्ठित-अवस्थित (४२६),

याद करिये ॥ जेसे कूठस्थद्वारा स्वप्नसृष्टिका उपयोग होता हे उस विना नहीं होता; यहीं कूठस्थका उपयोग हे ओर स्वप्नसृष्टिका उपयोग स्पष्ट हे. वेसेही ब्रह्मनामा कूंचीद्वारा तमाम सृष्टिका उपयोग होता हे उस विना नहीं होता; यही ब्रह्मचेतनका उपयोग हे ओर जगतका उपयोग स्पष्ट हे (विशेष अ. ४ में) । इसप्रकार पूर्ण परिच्छिन्न विलक्षणवाद (३९३) याने अधिष्ठानाध्यस्तवादकी सिद्धि हे ॥ ३९३ से ५३८ तक ॥ अधिष्ठान अध्यस्तवादकाप्रसंग समाप्त हुवा ॥

संगति.—अब अधिष्ठान अध्यस्तवाद हुयेभी मतभेदमें कारण ओर उसका निवारण कहते हें.—

कूटस्थात्मा अनेकांत व्यावहारिक दृष्टिमें ॥ ५३९ ॥ उपहित होनेसे ॥ ५४० ॥ स्वरुपतः एकांत ब्रह्मस्वरुप होनेसे ॥ ५४१ ॥

अर्थ.—व्यावहारिक दृष्टिमें कूटस्थात्मा अनेक प्रकारका जान पडता हे वा मानाजाता हे वा कहाजाता हे ॥ ५३९ ॥ क्योंकि वोह उपाधिवाला हे, इसलिये उपाधि समान जाना, माना ओर कहा जाता हे ॥५४०॥ स्वरुपसे वस्तुतः एक प्रकारका निश्चित हे; क्योंकि वोह ब्रह्म (विभु) स्वरुप हे. ब्रह्म एक समचेतन हे; अतः वोह समचेतन हे ॥ ५४१ ॥

विवेचन.—ब्रह्मचेतन एक हे (४१३ । ३९३) सोही असंग, निर्विकार होनेसे कूटस्थ कहाता हे अथवा जेसे लुहारके अहरनपर अनेक घाडते घडे जाते हें, तोभी वोह निर्विकार रहता हे, इसीप्रकार ब्रह्मनामा अधिष्ठानपर माया--प्रकृतिके अनेक परिणाम होते हें, तोभी वोह असंग--निर्लेप एकरस ओर निर्विकार रहता हे; अतः कूटस्थ हे. अ. २ । २७६ से २७९ । ३७८ । देखो. अविद्या-अंतःकरण अविच्छिन्न (उपहित) होनेसे उसेही प्रत्यगात्मा कहते हें ॥[१]

जेसे आकाश घटमठकी उपाधिसे साकार, परिच्छिन्न, गोल, लंबा, क्रियावाला, उत्पत्ति नाशवाला, ओर जुदाजुदा स्थानवाला भासता हे, इसीप्रकार ब्रह्मकूटस्थचेतन--माया, अविद्या, अंतःकरण, ओर शरीरकी उपाधि होनेसे नाना, जुदाजुदा रुपवाला, कर्ता भोक्ता, परिच्छिन्न, संकोच विकासवाला, जन्म मरणवाला, शरीर प्रति जुदाजुदा एसे अनेकांत रुपमें भासता हे. जो तत्वज्ञानको प्राप्त

[१] माया अपने असली स्वरुपमें विषय नहीं होती किंतु अन्यथा रुपमें अपनेको विषय कराती हे; इसलिये उसे कूट (कपटरुप) कहते हें, कूटवत स्थित सो कूटस्थ. अर्थात मायाकोभी कूटस्थ कहदेते हें. वाहरे शब्दजाल!

नहीं हुये हें किंवा अन्य प्रबल संस्कारग्रस्त हें वे एकांत नहीं मानसकते; क्योंकि यह विषय अनुभवगम्य–लक्ष्यालक्ष्यरुप हे. मनवाणिका विषय नहीं हे (विस्तार भू. ओर वस. में हे). अनेकांतके वे दाखले के जो चलरहे हें सो यह हें (१) आत्मा सत् हे, अनुभवगम्य होनेसे. (२) आत्मा असत् हे, प्रमाणका विषय न होनेसे. (३) आत्मा सदसद्रूप हे, एक पक्षसे असत् ओर अनुभवी पक्षसे सत् होनेसे. (४) आत्मा अणु हे, सक्रिय (कर्ता) होनेसे. (५) आत्मा मध्यम हे, भोक्ता होनेसे. (६) आत्मा जड हे, अभोक्ता होनेसे. (७) आत्माचेतन हे, मन, बुद्धि ओर इम्प्रेशनका प्रकाशक होनेसे. (८) आत्मा शरीरजन्य शरीर जितना हे, अन्यत्र न होनेसे. (९) आत्मा गुणवान हे, कर्ता–ज्ञाता–नियामक ओर रागी–द्वेषी होनेसे. (१०) आत्मा निर्गुण हे, विभु होनेसे. (११) इ. (७०२ । ७०४ । देखो).

(शं.) जब एसे अनेकांत हे तो तुम खंडनमंडन क्यों करते हो ओर तुम्हारा मंतव्यभी अनेकांतका विषय क्यों न हो. (उ.) शब्दप्रमाण सर्वमान्य नहीं ओर सृष्टि-नियम सर्वमान्य हें, उनमें तुलना की जाय, एसे हुये जिज्ञासुको बोध हो, इसलिये आकाश निरुपवत् निषेधका निषेध दरसाया हे (५२७ देखो). सो निर्णय परीक्षा, अनुभव हुये मान्य होसकता हे; अन्यथा नहीं; अतः दोष नहीं. किसीकी भावना खंडनमें हमारा आग्रह नहीं हे. ओर यदि निर्णित विषय खंडित होजाता हो तो उसके न त्यागनेमेंभी हमारा आग्रह नहीं हे ॥ (शं.) जब वोह एक हे तो सबका साक्षी होनेसे एक दूसरेके मनबुद्धिका ओर पीडाका एक दूसरेको ज्ञान होना चाहिये. (उ.) वोह प्रकाशवत ज्ञानस्वरुप हे. उसमें साक्षीत्वका आरोपभी उपाधिसे हे. अ. २ । ३९५ में इसका समाधान हे. अंतःकरण जुदाजुदा होनेसे उनके स्मृतिरुप परिणाम वा अन्य संकल्प विकल्प वा रागादि परिणाम जहांके तहां प्रकाशित होजाते हें ओर स्वतोग्रह हुये रोशनीमें आनेसे उनका उपयोग होजाता हे; बस. गत स्वतोग्रह ओर अपरोक्षत्व प्रसंगमें इस पद्धतिका विस्तार हे. वहां देखो ॥५४१॥

प्रकृतिभी स्वप्नवत् दर्शनसे ॥ ५४२ ॥

वस्तुतः एकांत अनादि होनेसे ॥ ५४३ ॥

अर्थ.—प्रकृति--मायाभी व्यावहारिक दृष्टिमें अनेक प्रकारकी जानी, मानी वा कही जाती हे; क्योंकि स्वप्नसृष्टिके समान देखते हें ॥ ५४२ ॥ वस्तुतः वोह एकांतरुप हे; क्योंकि उसका आरंभ नहीं किंतु अनादिसे हे ॥ ५४३ ॥

विवेचन.—दृश्य ब्रह्मांडके उपादानको प्रकृति वा माया कहते हें, उसीका

कार्य जाग्रत स्वप्न हे. स्वप्नसृष्टि विकल्पादिरुप नहीं किंतु संस्कार द्वारा मायाका परिणाम हे. स्वप्नमें देशकाल विभु, तमप्रकाश विरोधी, शीतोष्ण विरोधी, दुर्गंध सुगंध विरोधी ओर सूर्यादि परिच्छिन्न इत्यादि प्रकारके पदार्थ देखते हें, वे एकेक परिणाम केसे होसकते हें; क्योंकि विरोधी हें (३४० देखो); अतः मायाको सावयव (समूह) परमाणुपुंज मानें तो विभु आकाश, कालकी अनुत्पत्ति होगी (१८२), ओर जो विभु मानें तो विरोधी तथा परिच्छिन्न पदार्थोंकी उत्पत्ति न होगी (१७८ । १८० देखो), ओर जो तमवत् मध्यम मानें अर्थात सत्व-रज-तम मिश्रित त्रिगुणात्मक मानें तो विभु ओर परमाणुकी अनुत्पत्ति होगी (१७२ । १८२ देखो), इत्यादि प्रकारसे कुछ नहीं कहा जाता ओर हे तो सही. तथा परिणामी ओर भोग्य हे. परंतु स्वप्नके बाध हुये उस सृष्टिका पता नहीं लगता-- याने कहींभी नहीं होती, शून्यरुप होजाती हे; इसलिये व्यावहारिक दृष्टिमें अनेकांतरुप जान पडती हे. जो सृष्टिका लय उसके अव्यक्त उपादान–मायामें मानें तो उपरोक्त विरुद्धधर्माश्रयदोष ओर परिमाणअसिद्धदोष आते हें; इसलिये उसे अनिर्वचनीय कहके पीछा छुडाना पडता हे. तथापि जिनकी व्यावहारिक दृष्टि हे, वे इतनेपर चुप नहीं रहसकते; इसलिये उनको जुदा जुदा निश्चय होनेसे उसे व्यवहारमें अनेकांतरुप कहनापडा हे. सो एसे हे—(१) माया (प्रकृति) परमाणुपुंज हे, घटादिका उपादान होनेसे ओर देशकाल उसके कार्य नहीं. (२) माया विभु हे, स्वप्नके देशकाल उसके कार्य होनेसे. (३) माया अव्यक्त हे, स्वप्नके अभावकालमें न जान पडनेसे. (४) माया सत्व--रज--तमात्मक हे, उसके विरोधि विचित्र परिणाम दर्शनसे. (५) माया अनादि हे, उसका उपादान सिद्ध न होनेसे. (६) माया सांत हे, स्वप्नाभावकालमें शून्य होनेसे. (७) माया अनादिअनंत हे, वर्तमानमें उसके कार्य देखनेसे; ओर अनादि, सांत न होनेसे. (८) माया सादि हे, ईश्वरके सामर्थ्यद्वारा अभावजा होनेसे. (९) माया सावयव---मध्यम हे, उसका परिणाम देखनेसे. (१०) माया सत् ओर भावरुप हे, वर्तमानमें दर्शनसे. (११) माया असत् ओर भावशून्य हे, बाध हुये पीछे पता न लगनेसे. (१२) माया सदसद्रूप हे, वर्तमानमें देखनेसे (सत्) ओर पूर्व उत्तरमें न होनेसे (असत्) हे. (१३) माया क्षणिकपरिणामी हे ओर पूर्वपूर्व वासना अनुसार परिणामको पाती हे. (१४) मायाकी गतिसे अनहुये नामरुप जानपडते हें. (१५) मायाकी गतिसे नामरुप जगत बनता हे. (१६) माया पूर्व पूर्व

संस्कार (अभ्यास) के अनुसार देशकाल, तमप्रकाश, शीतोष्णादि रुपको पाती हे; अतः विरुद्धधर्मवाले वा परिमाणवाले दोष नहीं आते. यथा परिच्छिन्न किरणें काचमें विभु आकाशका प्रतिबिंब बनालेती हैं. दृश्यपरिमाणमें (३०३ । ४९२) नाना रंगरुप धरलेती हैं, एसेही, संस्कारद्वारा नाना प्रकारकी स्वप्नसृष्टि होजाती हे. (१४) ब्रह्मके स्वरुपमें स्वरुपका अप्रवेश हे इस वास्ते माया ओर जगत अर्थशून्य भ्रममात्र हे. (१५) अर्थशून्य नहीं, अनहुई प्रतीत न होनेसे. (१६) ब्रह्मकी विवर्तरुप हे (उपर विस्तार किया हे). (१७) माया ओर उसके कार्य आकाशकी नीलता समान प्रवाहसे अनादिअनंत परंतु बाधरुप हैं. (१८) माया एक शक्तिरुप हे, वही उसकी गतिसे रुपांतर होतीजाती हे, सो यह जगत हे (हेगल). (१९) जेसे शुद्धाद्वैत, थीओसोफी जगतको ब्रह्मका परिणाम मानते हैं, वेसे मायाशक्तिका मानलो अर्थात जिसे वे ब्रह्म कहते हैं वोह मायाही हे. ओर उस अनुसार जगतकी उत्पत्ति स्थिति होती हे. (२०) माया ब्रह्मचेतनकी अनिर्वचनीय अचिंत्यशक्ति हे, सो ब्रह्मविशिष्टशक्ति (तदसत्ता विशिष्टशक्ति) पूर्वपूर्वके संस्कारद्वारा नियमपूर्वक साधन, साध्यरुप--जगत एसे परिणामको पाती हे (स्वप्नसृष्टिवत्).

परंतु माया ओर उसका कार्य हे, ओर वोह जेसी हे वेसी हे (१८६ । ११७ । देखो.) ओर अनादिसे हे. इसलिये एकांत हे. शब्दादिमें मतभेद १, देशकालकी व्यवस्था नहीं होती २, परिमाणका निश्चय नहीं होता ३, एकमें विरुद्धधर्म नहीं माना जाता ४, त्रिपुटीव्यवहारमें दोष आता हे ५, गुणगुण्यादिका संबंध अकथनीय ६, स्वप्न यह उसकी विचित्रताको स्पष्ट करदेता हे ७, भेद नियमबाधक हे ८, देशकाल विना देशकालवाली ९, इत्यादि कारणको लेके माया ब्रह्मसे विलक्षणसत्तावाली--अनिर्वचनीय (अन्यथा, अन्यथा) कहते ओर मानते हैं. नहींके अर्थशून्य ॥ ५४३ ॥

जीवभी विशिष्ट होनेसे ॥ ५४४ ॥ प्रवाहसे अनादिअनंत होनेसे ॥ ५४५ ॥ वस्तुतः एकांत अर्थापत्तिसे ॥ ५४६ ॥ उसके बंध मोक्षभी अविवेक होनेसे ॥ ५४७ ॥ अजड ओर अचिद् दृष्टिसे ॥ ५४८ ॥ वस्तुतः एकांत विवेकख्याति होनेसे ॥ ५४९ ॥

अर्थ.—जीवका स्वरुपभी व्यावहारिक दृष्टिमें नानाप्रकारका भासता, मनाता वा कहाजाता हे; क्योंकि वोह मायाके कार्य अंतःकरण ओर प्रत्यगात्मा

(कूटस्थचेतन) उभयविशिष्ट स्वरुप हे ॥ ५४४ ॥ ओर प्रवाहसे अनादि-अनंत हे; अतः अनेकांतरुपमें भासता हे ॥ ५४५ ॥ परंतु वस्तुतः एकांतरुप हे, यह निश्चय विशिष्टके स्वरुपकी अर्थापत्तिसे होजाता हे--याने चेतन ओर अंतःकरणके पृथक्करणसे उसका स्वरुप एकांत हे, एसा अनुभव होजाता हे॥५४६॥

जीवके बंध ओर मोक्षभी व्यावहारिकदृष्टिमें नानाप्रकारके भासते, मनाते ओर कहे जाते हें; क्योंकि उसकी विशिष्टताका जिसको विवेक नहीं हुवा हे उसकी दृष्टिमें अनेकांत भासना स्वाभाविक हे ॥ ५४७ ॥ ओर जीव जडरुप नहीं ओर चेतनरुप नहीं, एसी दृष्टि विशिष्टभाव होनेसे होजाती हे अर्थात जड नहीं, इसलिये बंध मोक्षका पात्र हे; ओर चेतन नहीं, इसलिये बंध मोक्षका पात्र नहीं; इत्यादि अनेकांत दृष्टि होजाती हे ॥ ५४८ ॥ परंतु वस्तुतः उसके बंध मोक्ष एकांत (निश्चित) हें; क्योंकि जब चिद्ग्रंथी (विशिष्टभाव) का विवेक हुये उस विवेकानुसार ख्याति (अनुभव) होजाती हे तब उसके बंध मोक्षका निश्चय होजाता हे ॥ ५४९ ॥ तद्वत् उसके गुण कर्मके अनेकांतत्वका विवेक हुये उनके एकांतत्वका निश्चय होजाता हे; क्योंकि इनका समावेश बंध ओर मोक्ष इन दोनों पदोंमें हे. बंध मोक्षके निश्चय हुये गुण कर्मोंकाभी एकांत (निश्चय) होजाता हे ॥ ५४९ ॥

जीवके अनेकांत एकांतका संक्षेपमें विवेचन.—

(१) कर्ता, भोक्ता, अनुमंता, ओर उपद्रष्टा कोई ओर कुछ हे, भोक्तृत्व मध्यमके विना नहीं होसकता; क्योंकि अवस्था हे. मध्यम अणुजन्य होता हे (अ. २ सू. १७२ । १७६ देखो) ओर मध्यम नाशवान होता हे. ओर अणुमें भोक्तृत्व नहीं होता; इसलिये अनेकांत हे. (२) जीवका शरीरमें शरीरवत् परिणाम, उसके विना अन्यथा; अतः अनेकांत. (३) जीव शरीरवत् शरीरके साथ उत्पत्ति नाशवाला हे. (४) जीव दीपकके प्रकाशवत् दीपकजन्य वा अमृता (गिलो) समान संधि भंगके विना प्रवाहसे उत्पति नाशवाला होनेसे प्रवाहसे अनादिअनंत हे. याने उसकी उत्पत्तिका आरंभ नहीं ओर नाशभी नहीं तथापि हमेशे पूर्वस्वरुपवाला नहीं, एसा हे. अतः अनेकांत. (५) जीव विभु हे ओर मनके संयोग हुये भोक्ता हे; परंतु कर्ता नहीं. (६) अथवा मन संयोगसे उसमें रागादि पेदा होनेसे कर्ता भोक्ताभी हे. (७) जीव चेतनकी सत्तासे चेतन हे. (८) कर्ता--भोक्ता होनेसे विभु नहीं. (९) जवाबदार कर्ता

होनेसे अणुचेतन हे. (९) विशिष्टिभाव पद्धतिका अनेकांत यह हे.—(क.) जडचेतनात्मक होनेसे मध्यम हे. (ख.) विभु हे (कूटस्थचेतन उसमें हे इसलिये), (ग.) अणु हे (अणुजन्य मध्यम अंतःकरण उसमें हे इसलिये), (घ.) मध्यम हे (क्योंकि अणु विभुका मिश्रण हे किंवा परिणामी मध्यम अंतःकरण ओर विभुका मिश्रण हे इसलिये), (ङ.) कर्ता भोक्ता नहीं (विभु दृष्टिसे), (च.) कर्ता भोक्ता हे (अंतःकरणकी गति ओर दुःखादि परिणाम चेतनमें ग्रहण होनेसे), (छ.) अक्रिय ओर निरवयव हे (विभु दृष्टिसे), सक्रिय सावयव हे (मनस दृष्टिसे), (ज.) चेतन हे (आत्म दृष्टिसे), (झ). जड हे (मनस दृष्टिसे), (ञ.) अजड वा अचिद् हे (विशिष्ट दृष्टिसे), (ट.) जड नहीं (चिद् दृष्टिसे), (ठ.) चेतन नहीं (मनस दृष्टिसे), (ड.) नित्य नहीं (मनस दृष्टिसे), (ढ.) अनित्य नहीं (मनसकी प्रवाह दृष्टिसे), (ण.) नित्य हे (आत्म दृष्टिसे), एवं अन्यभी यथायोग्य. इसप्रकार जीव अनेकांत हे. जब इस विशिष्ट भागका पृथक्करण करें तो यह एकांत हुवा कि परिच्छिन्न मनस जोके प्रवाहसे अनादिअनंत हे, अनेक जन्मोंसे अनेक संस्कार (अभ्यास) वाला हे, सो यथासंस्कार गति करता हे, परिणामको पाता हे, जहांतहां उसको समचेतनका संबंध हे–उससे अजड, अचिदरुप हुवा उस द्वारा व्यवहार होता हे. जेसे मछली जलके विना मृतक हे वेसे चेतनके संबंध विना मनससे कुछभी नहीं होता, जेसे रातको दीपकके प्रकाश विना हम कुछ नहीं करसकते परंतु प्रकाश हमको कुछ करने वा नहीं करनेको नही कहता, एसे चेतन के प्रकाशके विना मनस कुछ नहीं करसकता, परंतु चेतन उसको उसकेरता हो, एसाभी नहीं हे (विशेष भू. ओर बस. में विस्तार हे) ॥

जीवके बंध मोक्षका अनेकांत एकांत.—

(१) शरीरकी उत्पत्ति--नाश तक जीव बंध हे, उसके संबंध रहे दुःख पानेसे. ओर शरीर भिन्न न होनेसे शरीर नाश पीछे मोक्ष हे, दुःखी न होनेसे. (२) जीव बंध हे, अनादिसे कर्ता भोक्ता होने ओर कर्म करनेका स्वभाव होनेसे. कर्म, उपासना, योग वा ज्ञान हुये पीछे मुक्त हे, शरीर-प्रकृतिका संबंध न होसकनेसे. वा वासना न रहनेसे. (३) जीव बंध हे, ईश्वरेच्छासे. जीव मोक्षको पाता हे, ईश्वरकी कृपा होनेसे. (४) इत्यादि पक्ष उपर जनाये हैं.

(५) विशिष्ट होनेसे अनेकांत–(क) जीव बंध नहीं (चेतन दृष्टिसे),

(ख) जीव बंध हे (दुःख दर्शन ओर मनस द्रष्टिसे), (ग) जीव मोक्षस्वरुप हे (चेतन द्दष्टिसे), (घ) जीव मोक्षका पात्र नहीं (मनस द्दष्टिसे), (ज.) जीवका बंध मोक्ष हे (विशिष्ट ओर मान्यशास्त्रकी द्दष्टिसे), (च) जीव मुक्त हुवा मुक्त होता हे (प्रत्यगात्माकी द्दष्टिसे), (छ) जीवकी मोक्षसे आवृत्ति (सृष्टि अनुच्छेदकी द्दष्टिसे), (ज.) मोक्षसे अनावृत्ति (चेतनमुक्त हे ओर मनस वासना रहित होजानेपर आगे नहीं चलता इस द्दष्टिसे), (झ.) मुक्त हुये सृष्टिका उच्छेद नहीं (मनसका गिलोवत् प्रवाह रहनेसे), (ञ) इत्यादि अन्य कल्पनाभी यथायोग्य करलेना.

जीव सगुण हे (मनसकी द्दष्टिसे) । जीव निर्गुण हे (आत्माकी द्दष्टिसे)। जीव कर्तृत्वका हेतु हे (संस्कारीमनसकी द्दष्टिसे) । जीव भोक्तृत्वका हेतु हे (चेतनकी द्दष्टिसे) । जीव सक्रिय हे (मनस द्रष्टिसे) । जीव अक्रिय हे (चेतनकी द्दष्टिसे) । जीव अनादिसे कर्ताभोक्ता हे (प्रावाहिक चेतनसंबंधी संस्कारी मनसकी द्दष्टिसे)। जीव कर्ता भोक्ता नहीं (चेतनकी द्दष्टिसे)। जीव रागादिवाला हे (चेतन संबंधी संस्कारी प्रावाहिक मनसकी द्दष्टिसे) । जीव रागादिवाला नहीं (चेतनात्माकी द्दष्टिसे), इत्यादि अन्यभी यथायोग्य कल्पलेना.

परंतु जीवके बंधमोक्ष ओर गुणकर्म, वस्तुतः एकांत हें याने जब चिद्ग्रंथीका विवेक हुये उसका अनुभव होजाय तब रागादि मनसमें ओर उनका उपयोग चेतनके संबंधसे होना जानलियाजाता हे—अर्थात बंध अवस्था चेतनविशिष्ट मनसकी हे, यथाकर्म–संस्कार जन्म मरणको प्राप्त होता हे, एसा प्रवाह हे. जब उसमें सत्संगादिद्वारा निरुद्ध संस्कार हुये उसमें आत्मस्वरुप प्रकाशमान होता हे ओर विवेकसंस्कारसे वासनाका अभाव होजाता हे तब वोह आगे नहीं बढता याने जन्म मरणके चक्रमें नहीं आता ओर उसका शरीरबत अन्य उपयोग होता हे. आत्मा पूर्ववत बंधमोक्ष रहित हे. उसमें जो बंधमोक्ष होनेकी भ्रांति थी सो विवेकख्यातिद्वारा नष्ट होजाती हे. मनसकी प्रावाहिक स्थिति ओर वासनाका अभाव हुये अनुत्क्रांति तथा नवीनोपयोग केसे होते हें, तथा ब्रह्मचेतन प्रत्यगात्मा ओर तद्विलक्षण अनिर्वचनीय माया ओर अंतःकरणोंका समष्टिव्यष्टि रुपमें केसे उपयोग होता हे, इन सबका शंकासमाधनपूर्वक विस्तार बस. के उत्तरार्द्धमें हे (कुछ अ. ४ में वांचोगे). यहां तो असिद्ध सिद्धविचारकी द्दष्टिसे नाममात्र जनाया हे ॥ ५४९ ॥

स्वप्रकाश ओर तद्विलक्षण प्रकाश्य इससे इतर सर्वपक्षमें दोषापत्ति

॥ ५५० ॥ स्वरुपसंभावनामें परीक्षा करनेसे ॥ ५५१ ॥ ओर तत्व मंतव्यमें पक्ष दर्शनसे ॥ ५५२ ॥ यथा शब्दादिमें ॥ ५५३ ॥

अर्थ.—स्वप्रकाश (चिदज्ञान स्वयंप्रकाश समचेतन ब्रह्म) ओर इससे विलक्षण उसका प्रकाश्य (अर्थात ज्ञेय ओर उसका अपरोक्षत्व प्रकार) इससे इतर जितने मन वाणि कल्पनाके पक्ष हें उन सबमें दोषकी आपत्ति होती हे, अर्थात उन सबका खंडन होजाता हे ॥ ५५० ॥ क्योंकि अध्याय २ में जो स्वरुपसंभावना कही हे उन १३ संज्ञा (१२९ विषय) में उक्त साध्यको तोलतें हें तो कोई न कोई दोष आनेसे पक्ष असमीचीन रहता हे ॥ ५५१ ॥ ओरभी अद्यापि जितने तत्ववेत्ता, शोधक वा परीक्षक हुये हें तथा जितने मान्य सर्वज्ञोंके ग्रंथ हें उनके तत्त्वसंबंधी मंतव्यमें मतभेद---जुदाजुदा पक्ष देखते हें; इसलियेभी उन पक्ष ओर उनका खंडन रुप जो प्रकाश्य, (विषय) ओर जिसमें पक्ष ओर खंडन प्रकाशमान होता हे उस स्वप्रकाशसे इतर सर्वका निषेध होना पायाजाता हे ॥ ५५२ ॥ जेसे के शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध, आकर्षण, गरमी, विजली, तम, प्रकाश, गुरुत्व, देश, काल, द्रव्य, गुण, शक्ति, जाति, व्यक्ति, गति, अभाव, किरण, मन, जीव, मोक्ष, पुनर्जन्म, ईश्वर, प्रमाण, आधार, आधेय, अज्ञान, अध्यास, तत्वसंख्या (कोई एक, कोई २, कोई ३, कोई ४, कोई ५, कोई २४, कोई ७२, कोई ८० तत्त्व मानता हे), गुणादि ओर गुण्यादिका संबंध, व्याप्यव्यापक-भेदाभेद ओर तादात्म्य संबंध, इन ३५ विषयोंमें सर्वज्ञ, योगी, विद्वान, रीफॉर्मर, आचार्योंका वा उनके सूचित ग्रंथोंका मतभेद हे (यथा—एक शब्दको गुण, दूसरा द्रव्य, तीसरा वाइब्रेशन, चोथा धक्का, पांचवां नित्य, छठा अनित्य, सातवां भ्रांति--एवं जुदाजुदा रुप कहते ओर मानते हें. इसीप्रकार अन्यस्पर्शादि ३३ में मतभेद हे). इससे स्पष्ट होजाताहे कि उक्तपक्ष दोषग्रस्त हें. यदि कदाचित उनमेंसे किसीका अमुक अंश यथार्थ हो तोभी वोह संशयका विषय होजाता हे, ओर इसमें अपूर्णता कारण हे ॥ ५५३ ॥

विवेचन.—चारों सूत्रोंका यह आशय नहीं हे कि किसी सत्यकाभी खंडन होजायगा; क्योंकि २ । १८६ के विरुद्ध हे. किंतु बुद्धिके दोषोंकी तरफ ईशारा हे, २ । ११७ देखो. जो सबका खंडन कहते तो मंडन (६७९), प्रमा (७०) उभय प्रतिबंध होजाते. यदि सर्व अनिश्चित कहते तो अस्ति (१८६) का कोप होता. किंतु बुद्धिका दोष निवारणही खंडन मंडन हे. (११७ देखो). मनुष्यकी पूर्णता मानके अमुकका खंडन अमुकका मंडन मानलेते तो अपूर्ण (११५) वाला

दोष आता हे. ओर सर्व प्रकारोंमें अनुत्तर-द्विधा (४४१ । ६५१ ।) रुप वज्रका परिहार आगे खडा होजाता हे. इसरीतिसे प्रकाश ओर प्रकाश्यभावकाभी खंडन होसकता हे; परंतु अज्ञान, संशय, भ्रांति, खंडनमंडनभी उस ज्ञानप्रकाशके विषय होजाते हें ओर उस विना उनकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये उसका आदर हे; ओर प्रकाश्य प्रसिद्ध हे तथा प्रकाश्यकी अपेक्षासे उसका व्यवहार होता हे इसलियेभी उभयका निषेध नहीं होसकता. (शं.) इस सिद्धांतको किसने जाना ? क्या वोह इन दोनोंसे इतर तीसरा नहीं ? (उ.) वोह तीसरा नहीं हे, बस. गत अपरोक्षत्व प्रकार देखो. यह अवाच्य सिद्धांत हे; अनुभव लय हुये सिवाय इसका उत्तर नहीं बनता; किंतु चुपही रहना पडता हे. इसे स्वतोग्रह कहें तोभी अंतमें चुप होनापडता हे; यह उत्तर तो स्वार्थमें हे. ओर जब इसका निर्णय परार्थ करें तो सारग्राहीके सिवाय निश्चितही नहीं होता. ' प्रकाश प्रकाश्य ' इतना कल्पनेमेंभी दोष आजाता हे; इसलिये शोधकको तो अनुभवही लेना उचित हे. (शं.) सार लेने पीछे क्या करना ? क्योंकि किसीका खंडन हो वा मंडन हो, सबको (ज्ञानी, अज्ञानी, आस्तिक, नास्तिक वगेरे सबको) प्रकृतिके व्यवहारमें तो उतरनाही पडता हे. (उ.) इसका उत्तर फलाध्याय ४ में आवेगा.

इस खंडनमंडनके उदाहरणमें मूल ग्रंथ विषे—सर्वखंडन १, अनिश्चित २, सामान्य प्रत्यय (जाति) ३, अभाव ४, लक्षण ५, विशेषण ६, गुण ७, द्रव्य ८, भेद ९, समवाय १०, काल ११, देश १२, तर्क १३, हेत्वाभास १४, भ्रम १५, प्रतिबंदि १६, अपसिद्धांत १७, निगृह १८, आधार १९, अनुभव २०, विषयी विषयभाव २१, करण (प्रमाण) २२, आत्मा २३, अद्वैत २४, द्वैत २५, वाद २६, ईश्वर असद्भाव २७, इन २७, विषयका खंडन दिखाया हे. तथा स्वरुपसंभावनाके उदाहरणमें अभाव वगेरेका खंडन एसी प्रकारसे किया हे के उसके अभ्याससे दूसरे असमीचीन असत् विषयको तोल लें; ओर अद्वैतादर्शमें पक्ष **तुला** एसे रुपमें लिखी हे कि असत्का निषेध होजाय. यह ग्रंथ तो मूलग्रंथका आठवां भागभी नहीं हे, किंतु सामग्रीके अभावसे संक्षेपमें सार बताया हे; अतः विस्तार नहीं लिखसके. शब्द यह विद्वानोंका खिलोना हे ओर खंडन मंडन यह विद्वानोंकी बुद्धिका विलास हे. शोधक परीक्षकको सारही लेना उचित हे ॥ ॥ ५५० से ५५३ तक[1] ॥ अब आगे अवाच्य सिद्धांत लिखते हें.—

[1] **यादि सू. ५५०.** आजतक जो व्यक्तियें प्रसिद्ध--मशहूर--मारूफ हुई

हें, उन व्यक्तिओंको सर्वज्ञ कहना मुशकिल हे (भावनामें विश्वाससे मानलेना दूसरी बात हे). अ. २। ४०६। ४७० विचारिये. तो फेर उनके कथन वा लेखको ओर उनकी भावना, विश्वास वा मंतव्यको यथार्थ--पूर्ण कहना केसे बनसकता हे? नहीं; इस हकीकतसे तथा अ. ३। ५५०के गर्भित आशयसे दो परिणामपर आसकते हें वे यह हें--

(१) हरकोइके भाविक मंतव्यके खंडन करनेमें समर्थता ओर स्वमंतव्य मंडन करनेमेंभी असमर्थता हो, यह स्वाभाविक हे--मंडन करनेसे खंडन करना सहेल हे. दूसरेके दोष वा दूसरेकी भूल झट जान्नेमें आजाती हे वा वे बताने सहेल हें, परंतु अपने दोष वा अपनी भूल जान्नेमें आना मुशकिल हे ओर उसको स्वीकारलेना कठिन पडता हे. एतद्दृष्टि मेरा तो पूर्वोक्त (पेज ८) निश्चय हे याने मेरा सत्य सत् न हो तो मत हो, परंतु जो सत्य हो सो मेरा हो. (शं.) जो यूंही हो तो तुम्हारा कथन माननीय न होगा--तुम्हारा श्रम व्यर्थ होगा. (उ.) अस्तु. क्योंकि मेंभी जनमंडलकाही परिणाम हूं याने जेसी बुद्धि हे, जेसे संस्कार प्राप्त हुये, जेसी परिस्थितिमें आया, जेसी निर्णय होनेकी सामग्री मिली ओर जेसा अनुभवमें आया, उस अनुसार मानता ओर कहता हूं; यदि वोह ठीक नहीं हे तो त्याज्यही हे, उसके ग्रहण करने करानेमें मुझे आग्रह करना अयोग्यही हे. यह ग्रंथ सदसद् निर्णय होनेके लिये सामग्रीरुप हे अर्थात कुछ परिणाम निकालने सहित सामग्रीका संग्रह हे; अतः अपनी अपनी योग्यताके अनुसार उसमेंसे त्याग ग्रहण कर्तव्य ठेरता हे. (शं.) जो तुम्हारे माने अनुसार मेरा सत्य नहीं, सत्य मेरा, एसा अन्यभी कहें वा मानें तो कुछ परिणाम नहीं निकलता. (उ.) यदि सब शुद्ध बुद्धिमें एसाही मानें ओर कहें तो हिंदी प्रजाका थोडी मुद्दतमेंही उदय होने लगजाय, सत्य उपर तिर आवे; यह परिणाम निकले.

(२) दूसरा यह परिणाम निकल आता हे के जबके ईश्वरादिके स्वरुप निर्णय करने वा जान्नेमें मनुष्य अपूर्ण हे किंवा सू. ५५० ठीक हे, तो जेसा देश, काल, स्थिति, ओर परिस्थिति हो उसके अनुसार एसे सिद्धांत, एसी नीति, एसा धर्म, एसे रीतरिवाज, एसे गुणकर्म ओर एसे व्यवहारका उपदेश ओर प्रचार हो अर्थात शुद्ध नीति (सच्चे अच्छे विचार, सच्चे अच्छे उच्चार, सच्चे अच्छे आचार) का प्रचार हो, और एसी प्रवर्तका--व्यवस्थापका--नीतिका उपदेश ओर प्रचार हो कि जिससे व्यष्टि समष्टि (मनुष्यजाति) को प्रेयस् प्राप्त रहे--याने

अवाच्य.

ब्रह्म मायाकी विषम सत्ता होनेसे वे विलक्षण ॥ ५५४ ॥ वैधर्म्य होनेसेभी ॥ ५५५ ॥ उनके संबंध व्यापार भेद ओर अभेदभी ॥ ५५६ ॥ उक्त अद्भूत लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य ॥ ५५७ ॥ जीव ओर मोक्षभी ॥ ५५८ ॥ अपरोक्षत्वभी ॥ ५५९ ॥ उक्तका साक्षात्कार ओर साक्षात् प्रकारभी ॥५६०॥ तद्वत् देशकाल ॥५६१॥ ओर विषयमात्रभी ॥ ५६२ ॥

अर्थ.—उपरोक्त **समचेतनप्रकाश ब्रह्म** (अ. २ । ४१३ । ४२६ ओर अ. ३ । ३७७ । ३७४ । ५५०) ओर तिससे विषमसत्तावाली **प्रकाश्य माया** (अ. ३ । ४७५ । ३७४ । ५५० ओर अ. २ । ४२६), इन उभयका अस्तित्व प्रकार (२ । ४२१ ओर ३ सत्ताप्रकरण) विलक्षण याने विषम होनेसे वे परस्परमें स्वरुपसे विलक्षण हें ॥५५४॥ ओर ब्रह्म, चेतनप्रकाशस्वरुप तथा सम हे ओर माया, परिच्छिन्न जड प्रकाश्यस्वरुप तथा परिणामी हे, इत्यादि वैधर्म्य उनके मुकाबलेसे जान पडता हे, इसलिये अर्थात वैधर्म्य होनेसेभी वे स्वरुपमें विलक्षण हें ॥ ५५५ ॥ वे उभय सत्तामें विलक्षण हें, इसलिये उनका संबंध, उनका व्यापार, उनका भेद ओर उ-

---

दुःख न हो, सुख हो, उसकी उन्नति हो, जितना बनसके उतना जीवन सुखसे कटे, वैषम्यभाव ओर तिरस्कार द्रष्टि न रहे; ओर जो कोई परमार्थ तत्वका जिज्ञासु हो तो उसको जिससे संभव शांति मिले वेसी सामग्री उसे प्राप्त होसके, बस. (अ. ४ में प्रेयस् ओर श्रेयस्की सामग्रीका मूल वांचोगे). बाकी जो हानीकारक, द्वेष कलहके उत्पादक, ओर जिनका संपादन होना मनुष्यकी शक्तिसे बाहिर हो, उन विषयोंसे किनारा रहे.

उदाहरणः—आजकल गाय, बेल, अश्वादिको तावे करके उनके तमाम वाजवी हक (भोगविलासादि) भी तथा उनकी तमाम वाजवी स्वतंत्राभी छीनके अपना स्वार्थ सिद्ध कररहे हें, परंतु एसी द्दष्टि रखना उचित नहीं हे; किंतु उन निर्बल-अज्ञजातिको पालन पोषण करते ओर उनके वाजबी हक उनको भोगने देते हुये पालन पोषणके बदलेमें अपना स्वार्थ सिद्ध करलेना, यह एक प्रकारकी प्रवर्तका नीति हे. एवं यदि माइटइजराइटका गेरवाजबी प्रचार हो तो उसको व्यवस्थापिका नीति अनुसार सुधारना उचित हे. विशेष **नीतीमीमांसा** ग्रंथमें लिख आये हें; ओर कुछ अ. ४ मेंभी वांचोगे; परमार्थके जिज्ञासु वास्तेभी अ. ४ में कहेंगे.

नका अभेदभी विलक्षण (अनिर्वचनीय) हे ॥ ५५६ ॥ उपरोक्त ब्रह्म, माया, उनकी सत्ताका विलक्षणत्व, उन उभयका संबंध, व्यापार, भेद ओर अभेद; अपूर्व तथा लक्ष्य अलक्ष्य ओर अवाच्य हैं अर्थात किसी योग्य वृत्तिमें सामान्यतः कुछ लक्ष्य होजातें हैं इसलिये लक्ष्य, ओर विशेषतः अलक्ष्य रहते हे अर्थात वे सर्वांशमें पूर्ण नहीं जाने जाते इसलिये अलक्ष्य, कहेजाते हैं; तथा जितने अंशमें वे लक्ष्य होते हैं याने अनुभवगम्य होते हैं वोह अंश स्वतोग्रह (बस. ३६६ से ३७२ तक) होनेसे मन वाणिका विषय नहीं होता, इसलिये अवाच्य---अकथ्य (ओर आगे कहे अनुसार अनुपम आश्चर्यवाला होनेसे अपूर्व--अद्भुत--एसा) कहा जाता हे ॥ ५५७ ॥ जिसे जीव कहते हैं अर्थात रागादिवाला कर्ता--भोक्ता जो हे सो ओर उसका मोक्ष यहभी लक्षालक्ष्य ओर अवाच्य (तथा अपूर्व) हैं ॥ ५५८ ॥ ओर जिसे अपरोक्षत्व (बस. ३६६ । ३७२) कहते हैं सोभी लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य (तथा अपूर्व) हे ॥ ५५९ ॥ उक्त ब्रह्म, माया, उनकी सत्ता, संबंध, व्यापार, भेद, अभेद, जीव ओर जीवका मोक्ष तथा अपरोक्षत्व इन (१०) का साक्षात्कारत्व (क्या ओर केसा) ओर वे किस प्रकारसे साक्षात् (लक्ष्य) होते हैं सो प्रकारभी लक्ष्यालक्ष्यरुप ओर अवाच्य (तथा अपूर्व) हैं ॥ ५६० ॥ वेसेही देशकालका स्वरुप हे अर्थात् वे मायाके कार्य हैं, इस वास्ते वे, उनका साक्षात ओर साक्षात प्रकारभी लक्ष्यालक्ष्यरुप ओर अवाच्य हैं ओर जो उनको मायाका कार्य न मानें तोभी लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य हैं ॥ ५६१ ॥ ओर (विशेष क्या कहें अर्थात) जितना कुछ विषय (प्रकाश्य-मायाके कार्य) हे वोह सब ओर उसका साक्षात तथा साक्षातका प्रकार लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य हैं. (स्वरुपलक्षण पर ध्यान दीजे) ॥ ५६२ ॥

विवेचन.—ब्रह्म, ज्ञात अज्ञातसे विलक्षण, ज्ञेय नहीं ओर ज्ञेय जेसा हे. उसको अनुभव करनेवाला उसे आश्चर्यवत् जानता, मानता, ओर कहता हे. वोह अकर्ता हे ओर उसके विना कुछ नहीं होता, इसलिये उस परमात्मा देवको अद्भुतरुप (अपूर्व) कहते हैं. मायाके कार्य अनुत्तर हैं. (२ । ६५१) प्रतीतकालमें जेसे हों वेसे न मालूम हों ओर बाध हुये पीछे उनके स्वरुपका पूर्वसे अन्यथा भान हो (जेसे स्वप्नप्रसंगमें कहा हे) इसलिये अद्भुत हैं, तो फेर उसके मूल अव्यक्त (माया--प्रकृति) के लिये अद्भुत अनिर्वचनीय शब्द बोला जावे इसमें क्या कहना हे. संक्षेपमें वे दोनों (प्रकाश--प्रकाश्य दोनों) अपनी उपमा नहीं

रखते; उनजेसे वेही हें, इसलिये अपूर्व हें. इसीप्रकार उनके संबंधादिके प्रसंगमेंभी जानलेना चाहिये. अब आगे अपूर्वता (अद्भुतता), लक्ष्यालक्ष्यत्व ओर अवाच्यपना दिखाते हें.–

जो चेतनप्रकाश योग्यबुद्धिमें प्रकाशमान न होता तो उसकी हस्तिका नामभी न लियाजाता, ओर विषयका ज्ञान न होता; प्रकाशाधिकरण देखो. बस. ओर भू. में इसका अनुभवप्रकार कहा हे; अतः लक्ष्य हे. ओर उसका पूर्ण ज्ञान नहीं होता क्योंकि बुद्धिवाणीसे पर हे; अतः अलक्ष्य हे. जो उसे सत् कहें. तो प्रतीत होनाचाहिये ओर जो असत् कहें तो अनुभवमें न आना चाहिये. जो उसकी कोई उपमा देवें तो अन्य चेतन नहीं हे. जो उसको बुद्धिवृत्ति विषय करने जावे तो उसे पीछा फिरना पडता हे, जो न जावे ओर स्थिर हो तो उसमें आपही प्रकाशमान होता हे; इसलिये वोह अद्भुत याने व्यावहारिक भावोंसे विलक्षण हे. वाणीके दिव्य चक्षु नहीं कि जो उसे विषय करे ओर बुद्धिभी उसे विषय नहीं करसकती किंतु कोई अकथ्य प्रकारसे मत होता हुवा अमत हे, ज्ञात होता हुवा अज्ञात हे, इसप्रकार मत अमत, ज्ञात अज्ञातसे विलक्षण होनेसे अवाच्य हे.

माया सद्ब्रह्मसे विलक्षण हे, यह उपर कहा हे. दृश्यमें जितनी व्याप्ति लें उनसे वोह अन्यथाही जानपडती हे, जेसा के स्वप्नके दृष्टांतमें जनाया हे. अतः अद्भुत हे ओर व्यक्त हो तब लक्ष्य होती हे परंतु उसका मूल सूक्ष्मस्वरुप यथा ताथ्य लक्ष्य नहीं होता; अतःअलक्ष्य हे. उसके स्वरुपकल्पनमें दोषही आता हे ओर देखनेमें प्रसिद्ध हे. बुद्धि वाणी उसके कार्य होनेसे उसको सर्वथा नहीं जानसकती ओर जो कुछ जानाजाय सो बयान नहीं करसकती, इत्यादि कारणोंसे अवाच्य हे.

उभयका अस्तित्वप्रकार (सत्ता) भी एसा हे. (शं.) सत्ता अर्थात क्या? (उ.) परिभाषामें सत्ता अर्थात योग्यताका नाम हे. यहां अस्तित्व प्रकारका नाम हे, सो वस्तु नहीं हे. जेसे ब्रह्मसत् (अबाध्य) हे, सो सत्व वस्तु नहीं, अबाधत्वका नाम सत् हे. वेसे माया सत्से विलक्षण प्रकारकी हे, इसका नाम मायाका अस्तित्व हे. (शं.) सत्से विलक्षण क्या असत्? (उ.) नहीं; क्योंकि असत् कोई वस्तु नहीं ओर माया कुछ हे. तो केसी? सत्से विलक्षण. आकाश नीलतावत्, स्वप्नसृष्टिवत् (बयान उपर आगया हे). जबके माया स्वयं विलक्षण लक्ष्यालक्ष्य अनिर्वचनीय हो तो उसका अस्तित्वप्रकार एसाही हो, यह स्पष्ट हे; उसके हेतु मायावत जानलेना. उदाहरणमें स्वप्न ओर नीलता ले लेना. उभयकी सत्ता

विलक्षण हे ओर अपूर्व लक्ष्यालक्ष्य तथा अवाच्य हे, इसका उदाहरण स्वप्नके द्रष्टा--चेतन ओर चेतनकी सत्ता तथा स्वप्नसृष्टिकी सत्ता बस हे (उपर कहागया हे).

उक्त माया, ब्रह्मका संबंधभी एसाही हे; भेद ओर सत्तानियमसे स्पष्ट हे. जो संबंध, अद्भुत न होता तो भेद नियमबाधक होता. जो अलक्ष्य होता तो उसके संबंधी लक्ष्य न होते ओर जो लक्ष्य होता तो उसके संबंधी अलक्ष्य न होते. तद्वत् संबंधी अवाच्य होनेसे संबंध अवाच्य हो यह स्पष्टही हे.

इसीप्रकारवाला उभयका व्यापार हे; क्योंकि वे स्वयं एसेही हें तो उनका व्यापार एसा हो इसमें क्या आश्चर्य हे. चेतनके संबंधसे मनस्का व्यापार होता हे, मनसके संबंधसे चेतनका विशेष उपयोग होता हे, मनस चेतन जेसा ओर चेतन मनस जेसा जान पडता हे, उभय युक्त हुये आश्चर्य उपजावक जीववृत्ति होती हे तब अहंत्व, ममत्व ओर रागादि होते हें जोके चेतनमें नहीं ओर चेतन विना उपयोगी नहीं. इत्यादि अद्भुत--व्यापार हे. कितनाक वक्ष्यमाण व्यापार, योगी विवेकीको जाननेमें आता हे. यथा--अहंत्व, ममत्व, ओर रागादि जानेजाते हें; अतः लक्ष्य हें. कितनेक नहीं जानेजाते.--यथा चेतन अप्रेरक हुवा उससे मनादि केसे प्रेराये जाते हें; तथा चेतन, बुद्धिवृत्तिमें केसे प्रकाशमान होजाता हे; ओर उसमें मनादि केसे स्वतःग्रहण होते हें; ओर माया, तत् सत्ता, माया ब्रह्मका भेद, अभेद तथा संबंध यह चेतनमें केसे प्रकाशित हुये ग्रहण होजाते हें, क्योंकि चेतनसे इतर इनका कोई प्रकाशक--ज्ञाता--द्रष्टा नहीं हे; तथा उभय विशिष्टमें जीवत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञातृत्व, ओर उसका उपयोग केसे होता हे; तथा योग्य मनसके साथ चेतनका भान ओर विशेष उपयोग होता हे अन्य घटादिमें वेसा उपयोग क्यों नहीं होता, क्योंकि वोह तो व्यापक हे; तथा मनस उसका असर क्यों करलेता हे; तथा अपरोक्षत्व स्थितिके पश्चात जीववृत्ति, इदं वा अहंका प्रयोग केसे करती हे; भेदग्रहणादि केसे करती हे. इत्यादि व्यापार (उभयके व्यापार) ठीक ठीक नहीं जाने जाते; अतः अलक्ष्य हें. जब के वे दोनों अवाच्य हों तो उनका व्यापारभी अवाच्य हो, इसमें क्या कहना हे. (व्यापारोंका विस्तार बस. उत्तरार्द्धमें किया हे. ओर मू. मेंभी हे).

उभयका भेदभी वेसाही हे, वे स्वरुपतः जुदा हें, परंतु उनमें भेद कोई वस्तु नहीं किंतु विलक्षणत्वकाही नामभेद हे. जब वे स्वयं अद्भुतादि विशेषणवाले हें तब उनका भेदभी एसा हो यह स्पष्टही हे.

उभयका अभेदभी एसाही हे. ब्रह्मके स्वरुपमें प्रवेश नहीं ओर माया, उसके कार्यकी अस्तिभाति ब्रह्मकी अस्तिभाति विना नहीं जेसा के स्वप्नमें देखते हें; तो फर उभयका भेद हे वा अभेद हे यह कहना मुशकिल हे. भेदाभेद मान्ना असंगत हे. डोरीके सर्प वा आकाशकी नीलताका जेसा इसका फेसला हे. इसप्रकार अभेदता अद्भुत् (अनिर्वचनीय) हे, उनके लक्षणोंमें भेद देखते हें ओर उपर अनुसार भेदकी अव्याप्ति हे; इसलिये लक्ष्यालक्ष्य हे. ओर उभय अवाच्य होनेसे उनका भेद वा अभेद अवाच्य हो इसमें क्या कहना हे.

उपरके विवेचनमें यह याद रहे कि यह सब वर्णन जीवबुद्धिकी अपेक्षासे हे. ओर माया, उसकी योग्यता, उभयका व्यापार ओर उभयका भेद तथा उभयका अभेद चेतनमें ग्रहण होते हों तो संभवही हे. जेसे के आत्मा मनसका भेद, अभेद ओर व्यापार यह जीववृत्ति नहीं जानती तथापि साक्षीचेतन (प्रत्यगात्मा)में अकथ्य प्रकारसे ग्रहण होते हें वेसे समष्टिमाया, समष्टिरुप ब्रह्ममें होना चाहिये अर्थात ईश्वरके विषय हों तो उसमें क्या आश्चर्य. भेद, अभेद ओर संबंध तथा क्रिया (व्यापार) कोई वस्तु नहीं हें किंतु स्थिति हें; सोभी मायाकी अपेक्षासे मानीजाती हें; क्योंकि असंग सम ब्रह्ममें इनकी घटना नहीं होसकती.

इसीप्रकार जीव ओर उसकी मोक्षभी अपूर्व, लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य हें. जड शरीरसे इतर रागादिवाला जीव हे यह प्रसिद्ध हे; परंतु उसमें अहंत्व, ममत्व, भेदग्रहणादि केसे होते हें; यह अद्भुत बात हे (प्रकृतिवादि इनको जडमें सिद्ध करने वास्ते बहुत बल करते हें परंतु सिद्ध नहीं करसकते); ओर वोह " में हुं " एसे सामान्यतः सबको लक्ष्य हे परंतु वोह क्या ओर केसा इसमें मतभेद हे, अतः उसका अमुक अंश अलक्ष्यभी मान्ना पडता हे. वाणि तो उसका विषय हे, अतः वोह अवाच्य हो यह स्पष्टही हे.

जीव अद्भुत होनेसे उसका (बंध) मोक्षभी अद्भुत हो यह स्पष्टही हे. मोक्ष, जीवतेही निर्वासन होनेसे मुक्त पुरुषोंको अनुभवमें होती हे अतः लक्ष्य हे ओर दृष्टादृश्य भिन्न होनेसे वोह अवस्था मुक्तको अगम्य होनी चाहिये, इसलिये अलक्ष्यभी हे. तत्त्वको बंधमोक्ष नहीं तथापि ब्रह्म प्राप्ति पीछे निर्वासन हुये अपनेको मुक्त हुवा मुक्त मानता हे, यही उसमें अपूर्वता हे. ओर वोह मन-वाणिका विषय न होनेसे अकथ्य हे.

अपरोक्षत्व (प्रत्यक्षत्व), विषय विषयीके योग्यसंबंधसेजन्य अकथ्य स्थिति

होती हे, उस समय इदंत्व, अहंत्व, सोपना, वा तूंपना वगेरे भावनाभी नहीं होती ओर यह अपरोक्षत्व ज्ञानादि ओर ज्ञातृत्वादि व्यवहारका हेतु होता हे ओर सबको होता हे तथा सब मनुष्योंको अनुभवगम्य होता हे (इसका विस्तार बस. गत स्वतोग्रह प्रसंगमें हे), तोभी वोह क्या, केसा ओर किस प्रकार व्यवहारका हेतु होता हे, यह बात अलक्ष्य रहती हे. अनुभवमें आते हुयेभी ग्रहण न हो, यही उसमें अपूर्वता हे ओर मनवाणिका विषय न होनेसे अवाच्य हे.

चेतन वा माया वा दृश्य पदार्थोंकी शक्तिद्वारा जो कार्य होते हें वेभी एसेही हे. यथा देशकाल ओर शब्दादि अद्भुत हें; विषय होते हें, उपयोगमें आते हें; परंतु यह नहीं कहाजाता के वे क्या हें ओर क्योंकर उत्पन्न हुये हें, यही उनमें अपूर्वता हे. सबको लक्ष्य हें यह प्रसिद्ध हे तथापि वे क्या, यह नहीं जाना जाता; इसलिये अलक्ष्य हें ओर मन इंद्रियके विषय होते हुयेभी उनके स्वरुपका वर्णन नहीं होसकता; अतः अवाच्य हें.

विशेष क्या कहें दृश्य विषयोंमेंसे हरकोई विषयको खोजिये, उनका स्वरुप विलक्षण (अद्भुत) जान पडेगा. ओर उपयोगमें आते हें, तोभी वे क्या ओर केसे हें ओर क्योंकर विषय होते हें यह नहीं जाना जाता अर्थात एसे अद्भुत लक्ष्यालक्ष्य ओर अनिर्वचनीय हें. उदाहरणमें मन, बुद्धि ओर विजलीकोही ले लीजे. शब्दादि (३५)के स्वरुपसंबंधमें मतभेद हें, यदि वे सर्वथा लक्ष्य होते तो मतभेद न होता ओर जो सर्वथा अलक्ष्य होते तो मनुष्य उनका उपयोग न लेसकता ओर न उनके स्वरुपसंबंधमें मतभेद होता, किंतु नामभी न लियाजाता.

उपरोक्त (१) ब्रह्म, (२) माया, (३) उनका अस्तित्व प्रकार विषम होनेसे वे विलक्षण. (४) उनका विलक्षण अस्तित्व प्रकार—सत्ता. (५) उनका विलक्षण संबंध. (६) उनका विलक्षण व्यापार. (७) उनका विलक्षण भेद. (८) उनका विलक्षण अभेद. (९) जीव. (१०) मोक्ष. (११) अपरोक्षत्व. (१२) देशकाल. (१३) विषयमात्रका स्वरुप. (१४) इन सबका जो अंश लक्ष्य होता हे सो लक्ष्यत्व, (१५) ओर वोह साक्षात्कार क्या, किसको ओर किस प्रकार होता हे; यह तमाम याने यह विषय प्रचलित व्यवहारके प्रकारसे कुछ ओर भावप्रकारवाला हे जो मनवाणीका विषय न होनेसे अवाच्य हे.

अव्यवस्था वा अनवस्था न हो, एसे प्रकारसे लक्ष्य हें ओर उनको संपूर्ण

नहीं जानसकते; अतः अलक्ष्य हें तथा बुद्धिसे लक्ष्यालक्ष्यत्वका उत्तर मांगे तो उसे चुप होजाना पडता हे, इसलिये वे अलक्ष्य हें ओर अवाच्य हें.

अधिकारी होनेका जो प्रकार कहनेमें आता हे सोभी गौण हे ओर जीवको बोध होता हे यह मंतव्यभी शैलीमात्र हे. वस्तुतः वहां कुछ ओर ही प्रकार वा भाव हे; सो अनुभवीकोही स्ववेद्य होता हे ओर फेरभी अकथ्य रहता हे.

उक्त रीतिसे ब्रह्मादि विषयको अपूर्व--विलक्षण लक्ष्यालक्ष्य ओर अवाच्य--अनिर्वचनीय कहते हें, वा हें. मनुष्य अज्ञेय विषयमें जो माथा मारता हे सो, यद्यपि यह उसकी भूल हे[१] तथापि मति (५६२) अनुसार एसा होता हे; अतः लाचार हे. ओर इतना हुये विना " अज्ञेय वा अनिर्वचनीय इस सूत्रपर नहीं आसकता; ओर संसारके जिन पदार्थोंका उपयोग लेसकते हें, उनका उपयोग करना ओर उनके गुण-कर्म स्वभाव जितने जानसकते हें उतनेको जानके उनका उपयोग लेना तथा मानवमंडलकी उन्नतिमें यथाशक्ति प्रयास करना इतनाही मनुष्य करसकता हे," इस योग्य आशयको नहीं जानसकता; इसलिये अगम्य प्रवृत्तिभी परिणाममें लाभकारी होना मानलियाजाता हे. तथा एसे-अगम्यमें प्रवृत्ति करनेवाले शोधक वा जिज्ञासु पुरुष, किरोडोंमेंसे दो चारही निकलते हें, इसलिये प्रवृत्तिवादि वा प्रकृतिवादिके मंतव्यानुसार (अनुपयोग) परिणाम नहीं निकल सकता, इतनाहि नहीं किंतु जेसे संसारमें भिन्न भिन्न रुचीवाले मनुष्य हें एसे इस प्रकारकेभी होते हें, इसलियेभी उनपर आक्षेप नहीं होसकता ॥ ५५४ से ५६२ तक ॥

उभयके साक्षात्कारसे इष्ट सिद्धि ॥ ५६३ ॥ परमपदप्रापक वासनाका अभाव तिसका फल ॥५६४॥ अनुभवी आश्चर्य युक्त पूर्णकाम ॥५६५॥

अर्थ.—उपरोक्त प्रकाश, प्रकाश्य याने ब्रह्म ओर मायाका उनकी विलक्षण सत्ता सहित साक्षात्कार (लक्ष्यालक्ष्यरुप अनुभव) होजानेसे जिज्ञासु अधिकारीको इष्टकी सिद्धि अर्थात संशयभ्रांति रहित मुख्य ज्ञेय-तत्व बोधकी प्राप्ति होजाती हे. यहां अ. २ न ६४७ । ६४८ अनुसार उभयके साक्षातसे उनके संबंध व्यापार

[१] काण्ट फिलोसोफर (जरमनी वि. संवत् १७८०) का मंतव्य बाह्यवस्तु ओर परमात्मा--आत्मा, इन उभयका संबंध, अनिर्वचीय हें. यूरोपके जो चेतनवादि तत्ववेत्ता हें वेभी यही कहते हें कि परमात्मा--आत्मा ओर माया तथा इन उभयका संबंध ओर मोक्ष यह विषय अज्ञेय वा अनिर्वचनीय हें; इनमें माथा नहीं मारना चाहिये किंतु व्यावहारिक प्रवृत्तिकीही योग्य उन्नति कर्तव्य हे ॥

भेद, अभेदकाभी ग्रहण होजाता हे. इसप्रकार उभयके साक्षातसे इष्टकी सिद्धि होजाती हे ॥ ५६३ ॥ परमपद (मोक्ष) प्राप्त करानेवाला वा जिसकरके परमपद प्राप्त हो एसा जो वासनाका अभाव सो उसका फल हे. अर्थात इसप्रकार इष्टसिद्धि (तत्त्वज्ञान ओर श्रेय--मोक्षकी प्राप्ति) होजाती हे. यह बात अनुभवसे सिद्ध होती हे ॥ ५६४ ॥ प्रस्तुत विषयका जो अनुभवी होता हे वोह आश्चर्य युक्त हुवा पूर्णकाम होजाता हे याने कृतकृत्य हुवा निर्वासन होजाता हे. यह बातभी उक्त अनुभवहुये पीछे अनुभवसे सिद्ध होती हे, अन्यथा नहीं ॥ ५६५ ॥

इस विषयका विवेचन नहीं होसकता; क्योंकि विवेकख्याति हुये आपही अनुभवगम्य होजाता हे. तथापि इसका विस्तार भू. के अंतमें हे ओर कुछ अ. ४ में होगा. किसीने सच कहा हे, "भिद्यते हृदयग्रंथिच्छिद्यंते सर्वसंशयाः। क्षीयंते चास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे" (मं. उ.) ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः (ब्र. ना. उ.) ॥

जब अनुभवका अहंत्व होता हे तब अनुभवका विषय अनुभवरुप रहता हे अप्राप्तवत् होता हे. अहंत्वरहित होनेपर स्वप्रकाश होता हे, ज्ञात हुवा अज्ञात ओर अज्ञात हुवा ज्ञात होता हे. हम नहीं जानते ओर हम जानते हें, एसा नहीं कहाजाता, इत्यादिरुपसे वहां आश्चर्य हे. तथा माया-जगतभी अनिर्वचनीय रहती हे, दृश्य हुयेभी कुछ नहीं कहाजाता एसा आश्चर्य रहता हे. एसे ज्ञानवानको कोई प्रकारकीभी कामना नहीं होती; क्योंकि उभयके साक्षात्कार हुये पीछे पूर्ण काम (निर्वासन) होजाता हे ॥ ५६५ ॥

शक्ति अगम्य तद्कार्यसे सिद्धि ॥ ५६६ ॥

तद्वत पुरुषविशेषकी ॥ ५६७ ॥

अर्थ.—ब्रह्म वा माया वा द्रश्यपदार्थोंमें जो शक्ति (योग्यता) हे वोह मन इंद्रियकी वा अन्य किसीकी गम्य नहीं होती, किंतु उसके कार्य होनेसे उसकी सिद्धि वा कल्पना (अनुमान) की जाती हे (२ । ५७०) ॥ मूल द्रव्योंका स्वरुप याथातथ्य नहीं विषय होता तो उनकी शक्तिके वास्ते तो क्या कहना हे ॥ ५६६ ॥ जिसे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर कहते हें उसका नाम यहां पुरुष विशेष हे, सोभी मनबुद्धि वाणिका विषय न होनेसे अगम्य हे, उसकी सिद्धिभी कार्यदर्शन (३ । २९१ । २९२ । २९४ । ३९६) से की जाती हे अर्थात अनुमानसे होती हे. (भप, मु. तथा बसु. में विस्तारके साथ स्पष्ट किया हे)

॥ ५६७ ॥ शक्तिको परतः होनेसे ओर पुरुषविशेषका अमुक अंश अपरोक्षवत होनेसे वे लक्ष्य ओर वस्तुतः उपर कहे अनुसार अलक्ष्य हैं, एसा कहसकेंगे. ओर अवाच्य (अकथ्य) हैं यह बात तो स्पष्टही हे ॥ ५६६ । ५६७ ॥

शक्ति अर्थात क्या? कुछ नहीं कहा जासकता, इसलिये योग्यताका उच्चार हे. चेतनके विना प्रकृतिसे कुछ नहीं होता (जेसे जलके विना मछली काम नहीं देसकती वेसे). परंतु चेतनकी वोह योग्यता केसी हे, ओर उसका केसे उपयोग होता हे, इस संबंधमें मनुष्य कुछ नहीं जानसकता; इसलिये अलक्ष्य हे. परंतु जेसे जलसे बाहिर निकली हुइ मछलीके शरीरके तंतु काम नहीं देसकनेसे उसका संस्कारी मनस उन तंतुद्वारा काम नहीं करसकता परंतु जब उसको जलमें डाल दें तो उसके केमीकल संयोगजन्य अवयव उपयोगमें आते हैं--याने मछली चलती, फिरती, देखती, खाती, भयभीत होती, ओर बचाव करती हे; एसे कार्य होनेसे जलकी योग्यताका अनुमान होजाता हे. इसी प्रकार चेतनकी योग्यताका उसके कार्यसे अनुमान करसकते हें. स्वप्नसृष्टिका दाखला याद कीजे. चेतन अक्रिय हुवा मनसकी गति होनेमें केसे निमित्त होता होगा, यह हम नहीं जानते, परंतु निमित्त हे यही उसमें अपूर्वता हे. जबके योग्यता, मन वाणिकी विषय नहीं तो उसको अवाच्य कहनाहीं पडता हे.

माया (प्रकृति) की योग्यताभी एसीही हे. आप परिच्छिन्न हुयेभी देशकालादि रुप धारती हे (यथा देश सहित प्रतिबिंब ओर स्वप्नसृष्टि) यही उसकी योग्यताकी अपूर्वता हे. उस योग्यताके विना स्वप्न जेसी विचित्रसृष्टि नहीं होसकती, इसलिये सो योग्यता अनुमानद्वारा मानलीजाती हे; परंतु वोह केसी हे, ओर उसका उपयोग केसे होता होगा यह बात नहीं जानी जाती, क्योंकि यह बात उसके कार्य (मन-बुद्धि) की विषय नहीं हे; इसलिये अलक्ष्य हे, ओर अवाच्य हे.

दृश्य पदार्थोंकी शक्तिभी अपूर्व हे, क्योंकि उसके द्वारा उसका अनुमान होता हे इतनाही लक्ष्य हे, बाकी वोह क्या ओर केसी तथा उससे किस प्रकारसे कार्य होते हें, यह विषय मनुष्य आज तक नहीं जानसका हे, अतः वोह अलक्ष्य ओर अवाच्य हे. वोह अद्भुतभी हे, क्योंकि बुद्धिमें न आवे एसे उसके कार्य देखते हें. मन--इंद्रियका अविषय होनेसे अवाच्य हो यह स्पष्टही हे. ओ. हा. में जलरुप होनेकी शक्ति हे, चंबुकगत विद्युत शक्ति हे, लोहेकी सुई उत्तर तरफ किसीभी शक्तिसे रहती हे, अग्निमें दाहशक्ति हे, पारदको गरम किया जाय तो

लोहेको तोडके निकल जाता हे एसी उसमें शक्ति हे, डामेटड वा बारुद, मकान ओर पत्थरको तोडके उडा देते हें, एसी उनमें शक्ति हे, लोहे वा सोनाके रजकण बंधे रहते हें एसी उनमें स्नेहाकर्षणरुप शक्ति हे, केमीस्तरीसे यह जाना गया हे के विजातीय पदार्थ परस्परमें केसेभी घुस जाके नवीन रुप पेदा करते हें एसी उनमें विचित्र शक्ति हे, शक्ति शक्तिमान किस संबंधसे रहते हें ओर क्यों कर रहते हें?, बीज पृथ्वीके रजकणोंको खेंचके अपने अनुरुप करता जाता हे एसी उसमें उत्पत्ति वृद्धि करनेकी शक्ति हे, प्रोटोपलाजम ओर उसके सेल्सोंमेंभी एसीही शक्ति हे. इत्यादि. उपरोक्त शक्ति क्या ओर केसी ओर उससे कार्य केसे होते हें, यह मनुष्य नहीं जान सकता, तो पीछे उसके मूल माया प्रकृति तथा चेतन ईश्वरकी शक्तिकी तो बातही क्या करना? सारांश शक्तिमात्र अगम्य हें, उनके विचित्र कार्य होनेपर उनकी अनुमानद्वारा सिद्धि होती हे ॥ ५६६ ॥

पुरुषविशेषः—जेसे द्रश्य पदार्थोंमें प्रकाश ओर वायु, सूक्ष्म होनेसे सर्वत्र व्यापक हें ओर उनसे सूक्ष्म ईथर उनसे विशेष व्यापक हे, वेसे उनसे सूक्ष्मतर प्रकृतिका शुद्ध सत्वांश जिसे प्रधान कहते हें, सो समुद्र समान ब्रह्मांडमें व्यापक हे. जेसे मनस ओर प्रत्यगात्मा चेतन मिलके जीवशक्ति-जीववृत्ति होती हे वेसे प्रधान ओर ब्रह्मचेतन मिलके ईश्वरशक्ति वा ईशवृत्ति होती हे. यह शक्ति जीवका विषय नहीं हे किंतु परोक्ष हे; व्याप्तिग्रहसे उसका अनुमान होता हे. मनस नाना होनेसे जीव नाना हें, प्रधान एक होनेसे ईश्वर एक हे. " जेसे स्वप्नसृष्टिमें द्रष्टा-चेतन व्यापक हे ओर संस्कारी मनस भी वायुवत् सबजघे हे, उभय विशिष्ट याने जीवद्वारा स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति ओर उपयोग होता हे, चेतन अधिष्ठान प्रकाशक ओर साक्षी हे, वोह सत्ता स्फुरणाका निमित्त हे, कूटस्थ ओर अक्रिय हे, संस्कारी मनस स्फुरणाको पाता हे उस अनुसार मायामेंसे नामरुप बनते हें, संस्कार स्फुरण बंद हुये सृष्टि लय होजाती हे; यहां स्वप्नसृष्टिका उपादान मायांश (हिरण्यगर्भ) हे ओर जीव (चेतनमनस) निमित्त कारण हे अर्थात स्वप्नसृष्टिका ईश्वर हे, इसेही तैजस पुरुष कहते हें, वहां आभासरुप शरीर ओर सूर्यादि सृष्टि हे. इत्यादि." इसीप्रकार इस ब्रह्मांड नामा सृष्टिका उपादान माया हे ओर निमित्त पुरुषविशेष (प्रधान, चेतन) ईश्वर हे ओर शरीर तथा सूर्यादि सृष्टि हे. सो पुरुषविशेष विलक्षण हे. जीवकी बुद्धिका विषय नहीं हे, उसका एकभाग अधिष्ठानादि विशेषणवान (३९६) हे ओर दूसरा प्रधान अंश सक्रिय हे, उभय मिलके उसमें सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व,

इच्छा, प्रयत्न, संस्कारका उल्लेख होजाता हे. जेसे के जीवमें उभय मिलनेसे ज्ञातृत्व, शक्तिमत्व, इच्छा, प्रयत्न, संस्कारका उल्लेख होता हे वेसे. इसीको जडवादि चतुराशक्ति (डाही कुदरत)--समष्टिशक्ति कहता हे. भक्तजन इसे खास एक अद्वितीय तत्व याने ईश्वर कहते हैं. उपरोक्त ईश्वर निरावरण होनेसे क्लेश, कर्मविपाकसे रहित हे. चेतनके संबंधसे प्रधानका ओर प्रधानके संबंधसे चेतनका विशेषउपयोग होता है, इसलिये ईश्वरशक्तिका अभिधान हे. चेतनमें सामान्य विशेषपना नहीं हे तथापि उपाधिके संबंधसे एसा जानपडता हे. स्वप्नसृष्टिका ईश्वर-जीव अज्ञानावृत्त हे ओर यह ईश्वर अज्ञानावृत्त नहीं हे; क्योंकि फानुसके दीपक समान बाह्यांतर प्रकाशक हे.

(शं.) ईश्वरगत व्यापक प्रधानका ओर जीवगत मनसका, भेद सूत्र बाधक होगा. ओर ईश्वरगतचेतन ओर जीवगतचेतन एक हे, उसके दो उपयोग (ईश्वरमें जीवमें) समकालमें केसे होसकते हैं याने नहीं होसकते; इसलिये उक्त ईश्वरकी असिद्धि हे (उ.) जेसे स्वप्नसृष्टिका एक ईश्वर हे ओर वोह सब आभासोंमें हे उन उभयका जेसे उपयोग होता हे तथा जेसे वहां भेद नियम बाधक नहीं होता, वेसेही यहां जानलेना चाहिये (विशेष बस. ओर भू. में) ॥

(शंका) तुम्हारे इस कथन--मंतव्यमें प्रमाण क्या? (उ.) ईश्वरके स्वरुपसंबंधमें जितनी कल्पना हैं उनमें दोष आते हैं, इसमें उतने दोष नहीं आते, तथा अधिष्ठानाध्यस्तवादकी उपर सिद्धि की हे (५३५) ओर २९१ में परमेश्वर निषेधका निषेध किया हे तथा स्वप्नसृष्टिमें एसे ईश्वरत्वकी व्याप्ति मिलती हे, ओर सृष्टिकी विचित्रता ओर नियम किसी नियामकके माने विना सिद्ध नहीं होते; इसलिये उक्त ईश्वरका कथन हे-सिद्धि होती हे अर्थात अनुमानसे मानागया हे. विस्तार देखना हो तो बस. ग्रंथ वांचो ओर कुछ व्याप्ति अ. ४ मेंभी कहेंगे.

(शं.) जो यह अनुमान सत् न हो तो? (उ.) सू. ५५० की नोटमें उत्तर हे ॥ ५६७ ॥

अब आगे शैलीकी विलक्षणतासे सिद्धांत (लक्ष्य) में अंतर नहीं पडता सो कहते हैं—

शैलीकी विलक्षणतासे लक्ष्यमें भेद नहीं ॥ ५६८ ॥

अर्थ.—प्रतिपादन, वा साधन, वा जनमंडलको सुख हो–वे व्यवस्थामें रहें एसी योजना, इनकी शैलीमें यदि मतभेद हो तो उसमें लक्ष्यसिद्धांतमें अंतर पड जाय, एसा नियम नहीं हे. यह बात ७४० । ७४३ से सिद्ध हे ॥ ५६८ ॥

सांख्य ओर योग, प्रकृति पुरुषको जुदा करके स्थित करना; न्याय ओर वैशेषिक, आत्मासे मनको जुदा करदेना; बौद्ध, क्षणिकविज्ञानको स्थिर करना; ओर वेदांत तथा सूफी, आत्मासे मनको पृथक करके शेष कूटस्थआत्मा ब्रह्मस्वरुप हे एसा, बताता हे. परंतु आत्माका अज्ञान, अविवेक ओर रागादि रहित होजाना यह मोक्ष, इतना लक्ष्य सबका एक हे. विशेष बस. उत्तरार्द्धमें ॥ ५६८ ॥

आगे शैली ओर दृष्टिका आभास कराते हें.–

अर्थात् जिज्ञासुके अर्थ सारग्राहि दृष्टिसे कथनीय सिद्धांतका विचार संक्षेपमें लिखते हें.—

एक अद्वितीय ब्रह्म ओर तद्विलक्षण स्वप्नवत् ॥ ५६९ ॥ ब्रह्म असंगाद्वितीय होनेसे केवलाद्वैत ॥ ५७० ॥ मायामात्र द्वैत होनेसे ॥ ५७१ ॥ निर्विकार अपरिणामी अमिश्रित निरवयव सम ओर अद्वितीय होनेसे शुद्धाद्वैत ॥ ५७२ ॥ स्वविलक्षण मायोपहित होनेसे विशिष्टाद्वैत स्वप्नवत् ॥ ५७३ ॥ अथवा तद्विलक्षण प्रकाश्यविशिष्ट होनेसेभी ॥ ५७४ ॥ निष्फलत्वाभावसे द्वैताद्वैत ॥ ५७५ ॥ प्रसिद्ध व्यवस्था ओर उपयोगी व्यवहार होनेसे द्वैत त्रिवादवत् ॥ ॥ ५७६ ॥ अभिन्ननिमित्तोपादान महिमा ओर लाघव दृष्टिसे ॥ ५७७ ॥ ईश्वरद्वारा अभावजाभी ॥ ५७८ ॥ वैराग्य अनासक्ति दृष्टिसे क्षणिकाद्वैत ओर मिथ्या ॥ ५७९ ॥ फल दृष्टिसे जीव कर्मवाद ॥ ५८० ॥ अनिवार्य जीवन प्रवृत्तिकी द्रष्टिसे प्रकृति (वाद) ॥ ५८१ ॥ उन्नति द्रष्टिसे यथायोग्य (वाद) ॥ ५८२ ॥ अनुभव द्रष्टिसे बाध (वाद) ॥ ५८३ ॥ अग्रहणसे अनिर्वचनीया ॥ ५८४ ॥ ज्ञाताज्ञातसे अन्यत् होनेसे नेति ॥ ५८५ ॥

अर्थ.—ब्रह्मवत् सजातीय सत् वा विजातीय सत् अन्य कोई नहीं हे तथा ब्रह्म स्वगतभेद रहित हे तथा एसा एकही हे, इसलिये एक अद्वितीय हे ओर उस सत्से विलक्षण अस्तित्ववाला मायावी स्वप्न जेसा यह दृश्य हे एसा सिद्ध होता हे यह उपर कहा हे (एसे मंतव्यका नाम विलक्षणवाद हे वा विलक्षणाद्वैत हे) ॥ ५६९ ॥ ब्रह्म असंग, अद्वितीय (सजातीय, विजातीय ओर स्वगतभेद रहित) हे, इसलिये ब्रह्म केवलाद्वैतरुप हे ॥ ५७० ॥ क्योंकि मायामात्र दृश्यद्वैत हे (एसे मंतव्यका नाम केवलाद्वैत वा मायावाद हे) ॥ ५७१ ॥ ब्रह्म नि-

र्विकार, अपरिणामी, अमिश्रित, निरवयव हे तथा एक रस रहनेवाला एक अद्वितीय हे, इसलिये वोह शुद्धाद्वैत हे ॥ ५७२ ॥ स्व अर्थात ब्रह्मसे विलक्षण जो माया तिस उपाधिवाला उक्त ब्रह्म हे; जेसे के स्वप्नका दृष्टा चेतन एक परंतु सृष्टि उपाधि होनेसे विशिष्टाद्वैत हे ॥ ५७३ ॥ किंवा स्वप्रकाश ब्रह्मसे विलक्षण जो प्रकाश्य तिस विशिष्ट उक्त ब्रह्म हे; इसलिये विशिष्टाद्वैत हे ॥ ५७४ ॥ अकेले ब्रह्मका उपयोग नहीं होसकता, उपयोग दोसेही होता हे तथा निष्फलत्वका अभाव हे; इसलिये उक्त ब्रह्म द्वैताद्वैत हे याने तद्विलक्षण अनिर्वचनीय माया शक्तिवाला हे. ॥ ५७५ ॥ प्रसिद्ध अनेक व्यवस्था देखते हें तथा उपयोगी व्यवहार (सफल प्रवृत्ति) देखते हें; इसलिये द्वैतकी सिद्धि हे; जेसाके जीव, ईश्वर, ओर प्रकृति इन तीनोंके मान्नेसे व्यवस्था ओर उपयोगी व्यवहार देखते हें ॥ ५७६ ॥ उक्त ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादनरुप हे याने आपही जगतरुप बना हे--परिणामको पाया हे, एसा कहना वा मान्ना महिमा ओर लाघव दृष्टिसे हे. ॥५७७॥ क्योंकि ब्रह्मसे इतर मायाको विवर्त मान्ना वा अन्य कुछभी मान्ना इसमें ब्रह्मका गौरव नहीं रहता किंतु उसे सापेक्ष मान्नापडता हे.--यथा अज्ञानसे उसे अध्यास वा माया उपादान इस कल्पनामें परकी अपेक्षा हे. ओर सर्वशक्तिमान हे इसलिये आप एक हुवाभी नानारुप होजाता हे यह महिमा हे. ओर लाघव कल्पना हे याने एक वस्तुसेही व्यवस्था करते हें× ॥ ५७७ ॥ ब्रह्म-ईश्वरने अभावमेंसे जीवजगत बनाये, यह कल्पनाभी महिमा ओर लाघव दृष्टिसे हे; क्योंकि सर्वशक्तिमान हे, अतः अभावमेंसे भावरुप की, यह महिमा हे. ओर पूर्वोत्तर एक ईश्वरही तथा अनुपादान सृष्टि यह लाघवता हे.×॥ ५७८ ॥ दुःखदाई संसारमेंसे वैराग्य हो ओर नाशवान तुच्छरुप संसारमें विषयासक्ति न हो; इसलिये क्षणिक अद्वैत ओर मिथ्यात्वकी कल्पना हे ॥ ५७९ ॥ अर्थात-प्रकृति जेसा दूसरा पदार्थ नहीं, वोह पूर्वपूर्वकी वासनासे उत्तरउत्तरमें क्षणिकपरिणामी हे, क्षणक्षणमें उसके फॉर्मोंका नाश होता हे, तथा सो परिणाम पूर्व उत्तरमें न होनेसे मिथ्या हें (अ. २ । ६७२ । ६७३ ।) एसी कल्पना (शैली) की गई. यहां अनित्य (क्षणभंगुर-मिथ्या) भावमें आशय हे ॥ ५७९ ॥ जीवको उसके किये हुये कर्मके अनुसार फल देखते हें; इसलिये वर्तमान शरीर संबंधभी कर्मफलका परिणाम हे; इसदृष्टिसे जीव कर्मवादकी मान्यता हुई हे ॥ ५८० ॥ ज्ञानी, अज्ञानी, योगी, अयोगी, राजा, रंक, सिद्ध, असिद्ध, दुःखी, सुखी, याने कोई प्राणीभी जीवन कलहसे जुदा नहीं होसकता अ-

र्थात उसे प्राणपोषणके वास्ते अनिवार्य प्रवृत्ति करनीही पडती हे ओर उन्नति अवनति, परिस्थितिके दायरेमें उसे आनाही पडता हे याने कर्मके विना जीवनही नहीं होता; इसलिये प्रकृतिवाद (जडवाद, विकासवाद, पंचतत्ववाद ई.) पर बल दियाजाता हे वा मानाजाता हे ॥ ५८१ ॥

जनमंडल जब पराधीन दुःखी हों तब उनकी दुःखनिवृत्ति वास्ते किंवा अव्यवस्थामें हों तब उनकी व्यवस्था होने वास्ते किंवा जनसमाजकी उन्नति होने वास्ते जिन सिद्धांत वा शैलीका प्रचार करना पडे उसे यथायोग्यवाद कहते हें; सो यथायोग्यवाद उन्नतिकी दृष्टिसे कहा वा माना वा प्रतिपादन किया जाता हे ॥ ५८२ ॥ यथायोग्यवादमें कोनसा मंतव्य यथार्थ हे वा नहीं, यह नहीं देखा जाता किंतु सभा--संमतिसे इष्टसिद्धि--उन्नति अर्थ जो माना जाय वा निश्चय किया जाय उसीका स्वीकार होता हे ओर तदनुसार वर्तना पडता हे. यह वाद यथा देश--काल--स्थिति--परिस्थिति बदलता रहता हे. इसका विस्तार बहुत हे. कुछ नमूना अ. ४ में वांचोगे. जरतोश्त, मूसा, ईसा, नबीमुहम्मद, लूथर ओर बेकन श्रीके समयका इतिहास वांचो. हिंदमें बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गुरु नानक, राजा राममोहन ओर स्वामी दयानंदके समयके इतिहासपर ध्यान दीजे ॥ इसलिये खंडनमंडन करने समय उस देशकालादिका विचार कर्तव्य हे; जल्प, वितंडा मात्र बकवाद नहीं करना चाहिये किंतु वर्तमानमें जो जनमंडलकी स्थिति हे ओर वक्ता उस दृष्टिको लेके क्या कहता हे अथवा सभा क्या बतारही हे उसपर ध्यान देनाचाहिये, ओर हठधर्मी, दुराग्रहको दूर रखना योग्य हे. इ. नेशनवादि इसमतको पसंद करते हें ॥ ५८२ ॥

जब पक्षपातरहित साधनसंपन्न हानेपर निरुद्ध परिणाम हुये विवेकख्याति होजाती हे उस अनुभव दृष्टिसे यह दृश्य ब्रह्मांड अधिष्ठान--ब्रह्माश्रित बाधरुपमें (आकाशकी नीलता समान) स्वाभाविकावभासरुप अनादि अनंत हे, एसा बाधवाद मानलिया जाता हे. ॥ ५८३ ॥ ब्रह्मसे विलक्षणसत्तावाली ब्रह्मांडकी उपादान जो माया--प्रकृति--अव्यक्त--उसका मूल स्वरुप बुद्धि वाणीमें यथावत् ग्रहण नहीं होसकता; इसलिये उसके लिये अन्यथाऽन्यथेति कहते हुये अनिर्वचनीय पदका प्रयोग होता हे. ॥ ५८४ ॥ ब्रह्मस्वरुप ज्ञातसे ओर अज्ञातसे अन्यत् हे, अर्थात प्रकृति-माया ओर उसके कार्य ज्ञात ओर अज्ञातभी हें परंतु ब्रह्मको ज्ञात वा अज्ञात नहीं कहाजासकता; ज्ञात इसवास्ते नहीं कि उससे इतर कोई ज्ञाता नहीं हे

ओर वोह किसीका ज्ञेय नहीं हे. ओर अज्ञात इसवास्ते नहीं कि सब वृत्तिओंमें स्वयंप्रकाश होता हे, इसलिये ज्ञात, अज्ञातसे इतर प्रकारका याने न इति, न इति करते करते जो शेष स्वप्रकाश रहे, एसे प्रकारका हे; इसलिये नेति नेति शब्दका प्रयोग हे, याने एसा (प्रपंच जेसा इदंका विषय) नहीं, एसा नहीं (यह नहीं यह नहीं) करनेसे जो शेष रहे (जिसमें नेति भावभी प्रकाशित होता हे) सो उसका स्वरुप हे, एसा सिद्ध होता हे ॥ ५८५ ॥

उक्त पक्षोंमें ब्रह्म परिणामवाद, अभावजवाद, ओर केवल प्रकृतिवाद (शक्तिवाद) असिद्ध हें, यह उत्तर जानचुके हो, तथापि रोचक वा अन्य कोई दृष्टिसे यह पक्ष माना गया हो, एसा जान पडता हे (इन भावनाके फल जान्ने वास्ते विभूषक मतका अंक ७ । ८ । १८ । १९ । यादमें लिजिये) ओर बाकी उक्त तमाम पक्षोंमें ब्रह्मसे विलक्षण सत्तावाली माया--प्रकृतिको मानके दोनोंसे व्यवस्था होजाती हे, एसा समझ लेना चाहिये. एतद् दृष्टि अद्वैत हे वा द्वैत, अद्वैत मानें वा द्वैत, इस झघडेमें पडनेकी अपेक्षा नहीं रहती. [१] (विशेष बस. गत उत्तर फिलोसोफीमें विस्तार हे ओर अ. ४ मेंभी वांचोगे.) ॥ ५८५ ॥

इष्टप्राप्ति तक निष्कामादि कर्तव्य ॥ ५८६ ॥ मंतव्यसे अन्यथा नहीं एसा अभिनिवेश अयोग्य ॥ ५८७ ॥

अर्थ.—शोधक जिज्ञासुको उचित हे कि जहांतक इष्ट (अ. १ । १) प्राप्त न हो वहांतक योग्यनिष्काम—परोपकारी कर्म १, ओर जो एसे न होसकें तो उत्तम सकाम कर्म २, करता रहे; अन्यथा हानी होगी. (२ । ७३५ । ७३६ । ७३७ । ७११ से ७२५ तक ओर अधिकारीअधिकरण वांचना चाहिये). यह पक्ष सब साक्षरोंको संमत हे ॥ ५८६ ॥ (शं.) तत्वप्राप्तिके पीछे क्या कर्तव्य होता हे? (उ.) इसका उत्तर अ. ४ में कहा जायगा.

---

[१] शक्ति वा ब्रह्मका परिणाम माना वा उसे विरुद्धधर्मवाला माना के सावयव होनेसे द्वैत होगया. अभावज अन्य ईश्वरसे अन्यथा माना के द्वैत होगया. अनादि भावरुप माया ओर ब्रह्म माना के द्वैत होगया. सृष्टि अभावजा सादिसांत ओर माया भावरुप अनादिसांत एसा माना के द्वैत होगया, क्योंकि ब्रह्मसे अन्य रुप हें. क्षणिक विज्ञानको परिणामी माना के सावयव होनेसे द्वैत होगया. ईश्वर, जीव नित्य माना के द्वैत होगया. ब्रह्मेतर अजात माना के द्वैत होगया, क्योंकि उसका सिद्धकर्ता दूसरा हे ओर ब्रह्म निर्विकल्प होनेसे सिद्धकर्ता नहीं हें. ॥

नाना रुची ओर शैली–मंतव्य देखते हैं, इसलिये यहां इतना जना देना ठीक होगा कि प्रतिपादनकी शैलीमें वा साधनकी शैलीमें मतभेद होनेसे लक्ष्यसिद्धांतमें फेर (भेद) पडजाता हो, एसा नियम नहीं हे. यह बात २ । ७४० । ७४३ से सिद्ध हे ॥ ५८६ ॥

हमको जितना, जेसा परीक्षा करनेसे यहांतक जो जान पडा–याने हमारा जो मंतव्य हे, उससे अन्यथा नहीं हे; एसा दुराग्रह करना योग्य नहीं हे (२ । ११७ । ६४१ । ४५६ । ६८२ । ओर अ. ३ । १६५ यादमें लीजिये ॥५८७॥ (शं.) जो एसा हे याने अपने निश्चयमें जो दृढ भावना–विश्वास नहीं हो तो कभीभी शांतिफल न होगा. (उ.) जो मध्यस्थ द्वारा परीक्षापूर्वक अनुभवमें आया, उससे अन्यथा जबतक सिद्ध न हो अथवा जबतक मध्यस्थकी परीक्षा ओर अनुभवमें वोह असत् न ठेरे, वहांतक उसका द्रढ श्रद्धापूर्वक ग्रहणही कर्तव्य हे; क्योंकि उससे अन्यथा होही, वा यह असत् होही, एसा निश्चित नहीं हे. बात यह हे के सत्यको प्राप्त हुयेभी अपने यथार्थ ज्ञातृत्वका आग्रह वा अभिमान न रखना चाहिये; क्योंकि अहंकारके मूलमें भूलका बीज गुप्त रहता हे, ओर कालांतरमें अभिव्यक्त होता हे; इसलिये शोधककी मान्यतामें तो भू. सू. ३४ अनुसार भावना रहे तो ठीक हे ॥ ५८७ ॥

उपसंहार.

एवं शेष ओर अन्यत्रभी यथायोग्य यथायोग्य ॥ ५८८ ॥

अर्थ.—अध्याय २ गत जितने विषय लिखे हें, उनमेंसे बहुतोंका पक्षकारोंकी दृष्टिसे प्रतिपक्ष करके उस प्रतिपक्षको असिद्ध अधिकरणमें असिद्ध ओर उसका पृथक्करण करके दरसाया हे १, ओर अनेक विषयोंको पक्षकारोंके विचारमंडलमें लेके सिद्ध अधिकरणमें सिद्धकर बताया हे २, ओर उक्त असिद्ध अधिकरणगतकी अर्थापतिसे जो सिद्ध हों (अ. ३ । ३६५), तथा सिद्ध अधिकरणकी अर्थापत्तिसे जो सिद्ध हों, उनका समावेशभी उक्त कथनमें आगया हे ३, ४, ॥ अब इनके सिवाय दूसरे अध्यायके जो विषय शेष रहे हों अर्थात जो प्रतिपक्ष करके सिद्ध करने योग्य हों उनकेलिये ओर जो पक्षकारोंके मंडलमें सिद्धरुप बताने हों उनकेलिये नियमादिद्वारा यथायोग्य विचार करलेना चाहिये अर्थात प्रतिपक्ष उठाके उस प्रतिपक्षका निषेध करके सिद्ध करलेना ओर सिद्धको सिद्धकर बताना चाहिये. तथा उपरोक्त अध्याय २ गतके असिद्ध सिद्धके सिवाय

(अन्यत्र) जो कोई दूसरे विषय असिद्ध वा सिद्धकर बताने हों तो उनकोभी उपर कही हुई रीति अनुसार नियमादिद्वारा यथायोग्य असिद्ध वा सिद्ध कर दिखाना चाहिये. अर्थात सद्असद्की परीक्षा करलेना चाहिये; क्योंकि हमने तो इस साररुप ग्रंथमें जरुरीजरुरी विषयका उदाहरणरुपमें संक्षेपसे बयान किया हे. सूत्रमें यथायोग्य पदकी पुनरुक्ति, अध्याय समाप्तिकी सूचनार्थ संकेत हे ॥ ५८८ ॥[१]

वि.—कोनसा एसा विषय हे कि जिसको प्रतिपक्षीका विषय न करसकें, तो फेर अध्याय २ गतके शेष (नियमादि) विषय प्रतिपक्षके विषय माने जासकते हें, यह स्पष्ट हे; परंतु वे सिद्ध हें, इसलिये प्रतिपक्षके विषय नहीं रहेंगे. इस दृष्टिसे शेष विषयोंके सूत्रोंकी (संक्षेपमें उदाहरणरुपमें) विगत नीचे लिखदेतें हें.—

असिद्धगत विषयोंवाले अ. २ के सूत्रांक—(प्रकरण १) सू. ७। १३। २१। २४। २६। ४४॥ (प्र. २) सू. ४८से ७६ तक। ८६। ९१। ९७। ९९॥ (प्र. ३) सू. ३४। २२६ से २३२ तक। २३६। २५३। २९०। २९६। ३३०। ३३८। ३५२। ४००। ४६६॥ (प्र. ४) सू. ५४२। ५६३। ५६६ से ५७२ तक। ५८४। ५८६। ५९० से ५९३ तक। ५९६। ६१४। ६१६। ६२०। ६२१। ६२२। ६२४। ६३५। ६३७। ६५२। ६५६॥ (प्र. ५) सू. ६६४। ६६६। ६७०। ६७८। ६८०। ६९९। ७०१। ७१०। इ.

सिद्धगत विषयोंवाले अ. २ के सूत्रांक—सू. १९५। ४५८। ४६०। ४८१। ५०६। ५०७। ५०९। ५१४। ५२३। ५९९। ६३९। ६५७। ६५८। इ.

उपरोक्तके जो अंतर्गत विषय उनके सूत्रांक—अ. २ सू. २२५। २७०। २७८। ३६१। ७१३ प्रत्युत्तर। इ.॥

अन्यका उदाहरण ५८८.

तत्वफिलोसोफीमें अन्य बातोंसे नीचे लिखी हुई बातें दुर्बोध्य ओर कष्ट साध्य मानीजाती हें. (१) परिच्छिन्न ब्रह्मांडको आधारकी अपेक्षा हे परंतु

[१] उपर असिद्ध ओर सिद्ध अधिकरणमें कोई विषयकी पुनरुक्ति होनेका आभास हुवा होगा. परंतु अ. २ ओर ३ का विचार करनेसे जानसकोगे कि अभ्यास ओर स्पष्टता अर्थ रुपांतर करके दिखाया हे, ओर एसा करना योग्यही था.

वोह स्वयंभु अपनां आप आधार, ओर असीम किसप्रकार मानाजाय. (२) परिच्छिन्न आधेय, अधिष्ठानके अमुक भागमें परवश रहता हे वा स्वभावतः रहा हुवा हे किंवा मर्यादारहित हुवा इधरउधर घूमता रहता हे; क्योंकि अन्योऽन्याश्रय होके नियममें रहे, यह सिद्ध नहीं होता. (२ । २५६ देखो). (३) अधिष्ठानचेतन विभु होनेसे अक्रिय हे; इसलिये आधेयकी गतिमें निमित्त नहीं होसकता तो उस जड आधेयमें सनियमगति केसे होती होगी—केसे निभती होगी. (४) चेतनशक्ति किसी समूहका परिणाम हे वा स्वयं तत्वरुप हे. (५) विभु अधिष्ठानके स्वरुपमें आधेय, केसे व्याप्य होसकता हे वा केसे रहसकता हे; क्योंकि एक स्वरुपमें दूसरे स्वरुपका अप्रवेश हे. (६) देशके विना अधिष्ठान केसे रहसकता हे. ओर यदि देश नहीं तो आधेय, देशके विना केसे गति करसकता हे ? वा गतिही नहीं हे ?

संक्षेपमें उत्तर—(१) समचेतनसे परे कुछभी नहीं हे, वोह स्वयंभु हे इतनाही कहसकते हें (आधाराधिकरण देखो) ज्यादे वास्ते मौन. (२) समचेतनमें आकर्षक शक्ति होनीचाहिये, इसलिये परिच्छिन्न, मर्यादामें रहता हे. अन्यथा अव्यवस्था. अ. ३ । ३०८ ओर बसमें विस्तार हे. (३) अक्रिय विभुमें रही हुई प्रकृतिमें परस्परके संबंधसे गति होसकती हे. अ. ३ । ३०८ ओर बस. में विस्तार हे. (४) चिद्शक्ति तत्वस्वरुप सिद्ध होगी वा हे ओर परीक्षामें पास होगी. बस. में ओर अ. १ में विस्तार हे. (५) अधिष्ठानाध्यस्तवादमें इसका समाधान हे. सत्ताके विलक्षणत्वका अनुभव हुये विना इसका उत्तर नहीं होसकता. (६) स्वप्नथीयरीमें इसका उत्तर होजाता हे. ओर अ. ४ गत आरण्यक प्रकरणमें समाधान हे ॥ उपरांत शोधक—परीक्षकको स्वयं विचारणीय हे ॥

सूत्रमें जो यथायोग्यको दो बार पढा हे सो अध्याय समाप्तिका सूचक चिन्ह हे ॥ ५८८ ॥

तत्वदर्शनका तीसरा अध्याय समाप्त हुवा.

॥ ओ३म् ॥

तत्त्वदर्शन–फलाध्याय ४.

प्रवेश.—

(१) तत्त्वदर्शन ग्रंथ गत यह चोथा फलाध्याय हे. यह प्रति, लिखित मसवृविदः (असंशोधित लेख)--मूलमेंसे साररुप हे.

(२) इस अध्यायमें शांतिसुख फल प्रापक ८ प्रकार कहे हें. (१) पूर्वोक्त--प्रोक्ता (सांख्य). (२) विभूषक. (३) संग्रह. (४) त्रिवाद. (५) जीवनमत. (६) प्रौढिवाद. (७) चिदचिद् विवेक. (८) विवेकख्याति.॥ इनमेंसे आद्य ६ प्रवर्तिका--व्यवस्थापिका नीति (अ. ३ । ४) के विषय हें अर्थात इस नीतिकी दृष्टिको लेके लिखे हें. उत्तरके दो आत्मजिज्ञासुके वास्ते हें; ओर उनका कर्तव्य कहा हे.

(३) इसमें जहां अध्यायका अंक नहीं देके सूत्रांक लिखें हों उनको इसी अध्यायके सूत्रांक जान्ना चाहिये.

(४) इस अध्यायके मूल संस्कृत सूत्रोंकी एक आवृत्ति छपचुकी हे जिसमें ४५६ सूत्र थे; उसमें ओर इसमें फेरफार किया गया हे. यथा (१) सूत्र ४ से २९ तक नवीनप्रकार शामिल किया हे, उसमेंसे त्रिवाद ओर जीवनमत (१४ से २९ तक) पहेले अध्यायमेंसे लेके दाखिल किये हें. (२) सत्ताप्रकरण, गतावृत्ति अं. २१ से ३६ तक ओर स्वप्न विकल्परुप नहीं यह प्रकरण, गत आवृत्तिके अंक ३७ से १०० तक ओर स्वप्न जाग्रतसमान उसकी भूमिकासहित, गतावृत्तिके अंक १०१ से २०८ तक; इसप्रकार १८८ सूत्र निकालके तीसरे अध्यायमें डाले गये. इस फेरफार ओर क्रम भेद पडनेसे सूत्रोंके वाक्योंमें फेरफार होना स्वाभाविक हे; इसलिये इसके साथ पहेली आवृत्तिको मिलाना निष्फल हे. यद्यपि सिद्धांतमें कहींभी अंतर नहीं हे, तथापि पहेली आवृत्तिको अब आधार योग्य नहीं मानसकते. अब इस अध्यायमें २७७ सूत्र हें.

(५) इसमें अधिष्ठानाध्यस्त (प्रकाश प्रकाश्य) की पुनरुक्ति, प्रसंगवश करनी पडी हे; ओर योग्य हे.

(६) इस अध्यायमें जीवनमत तक (सू. १ से २९ तक) की **पूर्वप्रकरण** (बहिरंग भाग) संज्ञा हे. उससे पिछले भागकी **उत्तरप्रकरण** (अंतरंग भाग) संज्ञा हे, एसा जान्ना चाहिये.

६—सूत्रोंमें जो गणसंज्ञा हे उसकी लिस्ट ओर विवेचनमें जिनगणोंके नाम आये हें उनकी तथा तत्संबंधि पारिभाषिक पदोंकी लिस्ट नीचे अनुसार हे. सुगमताके वास्तें लिख दी गई हे.

७—इस अध्यायका विवेचन बहुत हे, उसमेंसे त्रिवादका विवेचन ब्रह्मसिद्धांतके पूर्वार्द्धमें हे ओर प्रौढिवाद (तुष्टिवाद) गत कर्मका विवेचन 'कर्मविवेक' ओर 'नीतिमीमांसा' में लिखा हे ओर आरण्यक प्रकरणका विवेचन ब्रह्मसिद्धांतके उत्तरार्द्धमें हे. ओर भू. में हे. जीवनमतके विवेचनकी जुदा बुक हे. ओर संग्रहवादका विवेचन यदि जीवन हे तो तैयार करना हे. तथापि इन सब प्रकरणोंका उपयोगी सारसार इस अध्यायमें आगया हे. ओर कुछ तीसरे अध्यायमें आचुका हे इसलिये, तथा सामग्रीका संकोच हे इसलिये विशेषविवेचनसे उपेक्षाकी गई हे.

(८). अ. दो ओर ३ में अनेक विषय ओर वेभी अनेकरुपमें हाथमें लिये हें. इस अध्यायमें ५ प्रेयस् संबंधी ओर दो श्रेयस् संबंधि लिये गये हें.

गण. अ. ४ (अ. १ भू. सू. ३१.)

गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.	गणका नाम.	विषय संख्या	जिस सूत्रमें हे उसका अंक.
असमर्थादि	३	७७	विश्वविराडादि	८	१६६
अनुत्क्रमणादि	३	२६६	व्यवहारादि	८	२०१
आभासादि	५	४२।७५	सत्यादि	१०	१७
ईशादि	६	८	सालोक्यादि	४	५५
ईश्वरादि	८	१६७	स्वभावादि	४	१३४
ईश्वरांशादि	८	३९	सामान्यधर्म	१०	१३८
ईशधर्मादि	६	११५	हेतुफलादि	५	२०५
उत्पत्त्यादि	३	२०६	ज्ञानादि	३	१९२
कर्तृत्वादि	४	१९०			
जीवादि	६	१२८	विवेचनोक्त परिभाषागण.		
(अ. २ । सू. ४७.)		२००	अनाद्यादि	४	अ. ४।२०६
जीवनमत	+	४१३	आरण्यक	५	अ. ४।१४३
धर्म समाजादि	५	२७२	दूतादि	....	अ. १।११७
प्रेमादि	१६	२५	द्रश्यदर्शन	१	अ. ३।४०१
प्रारब्धादि	५	१२२	द्रश्यपरिमाण	१	अ. ३।४९२
पंचदशांग	१५	४	प्रौढिवाद	१	अ. ४।३०
बुद्धि आदि	१०	२३	बंधादि	६	अ. ४।१०७
भोक्तादि	९	३५	भेदग्रहणादि	१२	अ. ४।२००
मनसादि	६	१५१	मुनिभाव	१५	अ. ४। प्रवेश
मध्यस्थ	४	२४१			चिदचिद विवेक
व्यापारादि	६	६९	शब्दादि	३५	अ. ३।४५३
विवेकादि	४	१४३	संत भावना	५	अ. ४।२०७

॥ ॐ ॥

अथ तत्वदर्शन-फलाध्याय ४.

संगति--जिस उद्देशसे उक्त तीनों अध्यायका कथन हुवा हे वोह उद्देश पूरा हो, इसलिये इस चोथे अध्यायका आरंभ हे; अर्थात निर्णितके फलकी शैलीका[१] प्रकार कहेते हैं. तहां प्रथम दो सूत्रोंमें संगतिको कहते हुये अध्यायका आरंभ करते हैं.

शांति वा सुख फल ॥ ४ । १ ॥

तिसकी प्राप्तिकी शैली अनेक ॥ ४ । २ ॥

अर्थ.—इस लोकमें ओर इससे इतर भाविक पुरुषोंकी स्थिति (परलोक वा शरीरसे जुदा होने पीछे) में विक्षेप रहित शांति-सुख मिले यह सब जीवोंका इष्ट फल हे ओर उसीकी सबको इच्छा होती हे ॥ १ ॥ सांसारिक सुखको प्रेयस् ओर पार्मार्थिक शांतिको श्रेयस् (ओर परमानंदभी) कहते हैं. अथवा उभय पदका अर्थ उभय प्रसंगमें यथोचित होसकता हे. अ. २ सू. ७ । ८ । ध्यानमें लीजिये. ॥ १ ॥ उस शांति वा सुखरुप फलकी प्राप्तिकी शैली-- प्रकार अनेक हैं ॥ २ ॥ क्योंकि प्रत्येक जिज्ञासुओंकी रुची भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं, ओर समष्टिके लिये दूसरा प्रकार होता हे. इस प्रकार व्यष्टि समष्टिकी शैली--प्रकारमें अंतर होता हे. यथा--कोई अपनी शांति वा सुखको चाहता हे. कोई समष्टिकी शांति ओर सुखसे अपनी शांति ओर सुख मानता हे, उस विना उसको चैन नहीं पडता. कोइ धर्मकी प्रवृत्ति हो ओर हम धर्मात्मा हों, इससे शांति सुख मानता हे. कोई प्राप्त करनेमें अशक्त हे तोभी शांति सुखकी लालसा रखता हे. कोइ आत्मज्ञानसे शांति सुखको मानता हे. कोई किसीके विश्वासपर रहना वा

---

[१] उक्त तीनों अध्याय, व्यष्टि समष्टि वास्ते क्या परिणाम बताते हैं--जन मंडलको केसे शांति सुख फल मिले. ई. ॥

चलना नापसंद करके स्वतंत्र शांति सुख मिले, एसा चाहता हे. एतद्दृष्टि इस अध्यायमें ८ प्रकार जनावेंगे. उनमेंसे (१) प्रोक्ता (सांख्य). (२) ओर विभूषक वर्णित अमुक मतकी शैली, अमुकव्यक्ति (व्यष्टि) वास्ते हे. (३) संग्रह समष्टिके लिये हे. (४) त्रिवाद धर्म भावनावालों वास्ते हे. (५) जीवनमत व्यष्टि ओर समष्टि दोनोंके लिये हे. (६) प्रौढिवाद अमुक अशक्त व्यक्तिके लिये लाभिष्ट हे. (७) अवस्थाविवेक आत्मजिज्ञासुके लिये हे. (८) विवेकख्याति स्वतंत्र शोधकके वास्ते हे.

यद्यपि मुख्य शांति सुख (परमशांति—परमानंद) तो "में कोन, क्या, क्यों १, मेरा परिणाम क्या २, यह दृश्य क्या, क्यों ३, मेरा उसका संबंध क्या, ओर क्यों ४, ओर उस संबंधका परिणाम क्या ५, ईश्वर क्या, क्यों ६, मेरा ओर उसका संबंध क्या, क्यों ७, ओर उस संबंधका परिणाम क्या ८, मोक्ष क्या क्यों ९, ओर उसका परिणाम क्या १०"। इन १० बातोंके निश्चय ओर संभव विवेकख्यातिसेही होता हे, जिसका वर्णन इसग्रंथमें हे ओर जिज्ञासुके लिये इस अध्यायमें हे; तथापि वर्तमान—तर्क प्रवृत्तिकालमें लौकिक शांति सुख (प्रेयस्) के इच्छावाले बहुत हें, इसवास्ते इसअध्यायमें उक्त ८ प्रकार बतावेंगे. याने जिस जिससे उसउस अधिकारिके अधिकारके अनुसार उसको शांति, सुख फल होसके, एसा कहेंगे.

"**मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः**" (ब्रह्मनाद बिंदु उपनिषद्) यह किसी महानानुभवी तत्वज्ञका वाक्य मालूम होता हे; ओर यही दृष्टि इस ग्रंथकी हे; इसलिये जुदाजुदा प्रकार लिखें हें. जो पूर्वोक्त पक्ष, नियमादि ओर असिद्ध, सिद्ध विषय ध्यानमें न हों—न समझे गये हों तो उक्त निर्णितका जो परिणाम--फल हे ओर उसकी प्राप्तिका जो प्रकार हे (इस अध्यायमें कहा हे) सो समझमें नहीं आसकते, इसलिये विभाग करके लिखे हें.

(शं.) तन, मन, धन, स्त्री, पुत्र, सत्ता (सिद्धि--वैभव--राज्य) ओर पारमार्थिक (मोक्ष--स्वर्ग--परलोक) एसे ७ प्रकारके सुख कहाते हें, ओर शांतिके साधन हें; सूत्रमें कोनसी शांति ओर कोन सुखका वर्णन हे? दुःख गये विना शांति सुख नहीं होसकता; ओर जेसे ७ सुख हें वेसे ७ दुःखभी हें--यथा तन, मन, धन, स्त्री, पुत्र, सत्ता (अयोग्यता—पराधीनी) ओर नरक (पुनर्जन्म वा नरकलोककी प्राप्ति); इनमेंसे कोनसे दुःखकी निवृत्तिमें अभिप्राय हे. यह सब

दुःख होहींगे. जो कदाचित्त निवृत्ति होके शांति सुख मिले तो वोहभी नष्ट होना हे, अतः दुःखनिवृत्ति ओर आनंदप्राप्ति कथनमात्र हे.

(उ.) तन ओर मन (वा जीव) इन दोमें तमाम दुःख तमाम सुखका समावेश होजाता हे. तनके दुःखसे मनपर असर याने दुःख होता हे; मानसिक दुःखका असर तनपर याने शारीरिक दुःख होजाता हे, एवं उभयपर असर याने उभयका सुखभी होता हे. ओर केवळ तनके दुःख वा सुख होते हें जिसे कुदरती वा अदृष्टजन्य कहते हें, एवं केवल मानसिक दुःख सुख होते हें. इन सब दुःखोंका आध्यात्मिक, आधिभौतिक ओर आधिदैविक पदोंमें वा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष ओर अभिनिवेश इन पांचमें समावेश होजाता हे. ओर मोक्षसे भिन्न अन्य सब सुखोंकाभी परंपरासे सत्ववृत्तिमें समावेश होजाता हे ओर वोह (सुख) अस्थिर होनेसे परम पुरुषार्थ नहीं गिनाजाता.

इस अध्यायमें जो प्रकार लिखे हें उनमेंसे कितनेक तो एसे हें " कि वर्तमान शरीर संबंधी याने कुदरती वा अदृष्टजन्य केवल शारीरिकदुःख जो हें उनको छोडके जितने दुःख हें उन सबकी निवृति हो ओर मोक्षसे इतर जितने सुख हें उनकी प्राप्ति हो अर्थात सब प्रकार हरेक स्थितिमें संतोष रहे. तथा मानसिकदुःख न हो ओर मानसिकदुःखका तनपर असर न हो ओर शारीरिक दुःखका मनपर असर न हो; " क्योंकि उन प्रकारोंके मनन ओर निदिध्याससे निष्काम भावना होजाती हे.—

यथा-शरीर षडविकारवाला हे, उसमें दुःख सुख आगमापायि होते हें, सो भलेही होवें-भोगने योग्य हें; अतः संतोष हे. निवृत्ति अर्थ उपाय कर्तव्य हे, फल कुदरतके नियमानुसार होता हे; अतः संतोष हे. मनमें मानी हुई भावनाका बल हे. यथा–ईश्वरेच्छा, ईश्वरकी लीला, पूर्वादृष्ट, नाशवान इत्यादि भावनासे संतोष शांति रहती हे. धनादि हों वा न हों, होके अनुकूल हों वा प्रतिकूल हों, स्थिर रहें वा नाश हों; इन स्थितिमें हर्ष शोक नहीं होता; क्योंकि ईश्वरेच्छा, ईश्वरकी लीला, पूर्वादृष्ट, नाशवान, एसी भावना रहती हे. एसी भावना रहनेसे जीवसृष्टि रचित, दुःख सुख असर नहीं करते; अतः वे प्रकार शांतिकारक होजाते हें.

ओर कितनेक एसे हें कि समष्टिके तनादि ६ दुःखके निवारण करनेके ओर तनादिके ६ सुखकी प्राप्तिके सहकारी हें. यथा--जीवनमतमें सामाजिकसुख प्राप्तिका प्रकार हे.

ओर तीन एसे प्रकार हैं कि जिनसे वर्तमान शरीरके अदृष्टजन्य (प्रारब्ध-जन्य) दुःख सुखसे इतर सबका निवारण होके परमशांति (मोक्ष सुख) प्राप्त हो; किंतु शारीरिक दुःख सुख ओर मानसिक दुःख सुख तथा मोक्ष सुखभी बाधित वृत्तिरुप होजायँ.

यह शंकाका उत्तर हे, सो आगे यथाप्रसंग जानसकोगे. इस विषयका विस्तार बहुत है, यहां संक्षेपमें जनाया हे. ॥ २ ॥

अब आगे शांति सुख प्राप्तिकी शैली--प्रकारके उदाहरण (सू. ३ से २६६ तकमें) देंगे याने शांति--सुखफल प्रापक प्रकार जनाते हैं.—–

विवेक प्रकरण १.

यथा प्रोक्तद्वारा परंपरासे शांति ॥ ३ ॥

अर्थ.—जेसे के उपर अ. १, २, ३ में जो कुछ (विवेकवाद, युक्तिवाद) कहा गया हे, उस शैली-प्रकारसे विचारद्वारा शांतिफल प्राप्त होसकता हे ॥ ३ ॥ अर्थात जब नियमोंद्वारा अ. ३ अनुसार पदार्थोंका निर्णय करें,[1] ओर बुद्धिवृत्ति तदाकार कीजाय[1] तो कुछ गम्य मालूम होने लगेगा. ओर शब्दादि अनिर्वचनीय जानपडेंगे; ईश्वर ओर जीव तथा मोक्षका स्वरुप अगम्य, एसा भाव होने लगेगा; ओर अंतमें बुद्धिवृत्तिके परटूट जानेसे वोह थिकत होजायगी—ठेरेगी; परंतु इष्टकी प्यास हे; इसलिये उस अधिकारी—संस्कारी--विवेकी शुद्ध बुद्धिमें कोई विलक्षण प्रकारसे आत्माका स्वरुप स्वयं प्रकाशमान होजाता हे—याने आत्माका अनुभव होजाता हे. एसे चेतनप्रकाशमें प्रकाशित हुये जीव, मोक्ष (श्रेयस्) संबंधी भेद-रहस्य ज्ञात होजाता हे ओर तमाम शंकाओंका समाधान आपही आप होके शांति फल संपादन होजाता हे. इस संबंधमें अनुभवीको कोई ज्ञातव्य, कर्तव्य, प्राप्तव्य शेष नहीं रहता; परंतु यह प्रकार कष्टसाध्य हे; क्योंकि इसमें ओरीजनल, इंडीपेन्डंट बुद्धि ओर फिरीथिंकर होनीचाहिये; परंतु एसी बुद्धिवाले विरल होते हैं. इस प्रकारका विस्तार मूल अ. ३ गत पृ. ३०३ से ३१३ तकमें हे ॥ ३ ॥

विभूषक प्रकरण २.

व्यष्टिको पंचदशांगपूर्वक विभूषकमतसे ॥ ४ ॥

अर्थ.—जो कोई अमुक व्यक्ति बाहिर भीतरसे एक भाववाली अर्थात निष्कपट हो ओर शांति मिलनेकी अधिकारी हो तो उसको दोषदृष्टि छोडके भूषण-

---

[1] असिद्ध ओर सिद्ध पदार्थोंका मनन निदिध्यास करें.

ग्राहक जो मत हो उस मतमेंसे सारग्रही दृष्टिसे उपयोगी विषय ग्रहण करने ओर उसे पंचदशांगपूर्वक पालनेसे शांति होजाती हे. अथवा अध्याय एकमें जो विभूषकमत दरसाया हे उसमेंसे अमुक योग्य लेके उस अनुसार निष्ठा होने ओर पंचदशांगपूर्वक वर्तनेसे मनको शांतिरुप फल मिलसकता हे; अतः उन बोधोंमेंसे अपने अधिकार ओर रुची अनुसार ग्रहण करके निष्कपट हुये वर्ते, तथा उस विषयका वादविवाद न करे, ओर उसमें अरुची रखनेवालेको बोधभी न करे, एसा करनेसे जीव ओर मोक्षके संबंधमें मनको शांति होजायगी ॥ ४ ॥

विभूषकमत गत वर्णित सबही प्रकार ठीक जान पडते हें, तथापि जीव मोक्षके भाविकको यह प्रकार शांतिप्रद हें. (४) उत्तम कर्म. (५) कर्मनिष्ठा. (६) नीति. (७) जीव जगत, ईश्वर द्वारा अभावजा-लाशरीक मत. (८) जीव जगत यह इच्छित वा स्वाभाविक ईश्वरकेही परिणाम हें-वा ब्रह्मरुप हें-वा ब्रह्मके स्वरुपका अविकृत आविर्भावा व तिरोभाव हे. शुद्ध अद्वैत मत. (९) संयम. (१०) हकका समानत्व. (११) जगत क्षणिक-मिथ्या. (१२) मोक्षसे आवृत्ति ओर जीव जवाबदार. (१३) साम्यभाव ओर पुरुषार्थ. (१५) योग्य कल्पितमें प्रवृत्ति. (१८-१९) अचिद्‌वाद. (२०-४०) प्रवृत्तिवाद. (२२) भावनावाद. (२७) सर्वतंत्र साधनजन्य मान्य. (२८ । ३६) सर्व तंत्रका ग्रहण. (३०) सबके लक्ष्यकी ऐक्यता. (३९) भक्ति. (४२) योग. इनमेंसे हरकोई वक्ष्यमाण व्यष्टिभावनावाला पंचदशांगपूर्वक उसे पाले तो शांति होती हे.

उपरोक्त प्रकार, जिसकी श्रद्धा भावना दृढ हो, जो वाद विवादसे अलग रहता हो, जिसे वैराग्य हो, विषयोंमें जिसे अनासक्ति हो, ओर जो पंचदशांगपाले उसको, संपादन ओर फलीभूत होसकते हें; हरेकको नहीं. एसे वर्तनेवालेका जीवन शांतिमय होता हे ओर अंतमें उसको सत्यानुभव मिलजायगा. "नो धाई सेल्फ" "खुद दां खुदादां" "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः" यह आत्मानुभव-अध्यात्म शास्त्रके मसले हें, सोभी ध्यानमें आजायंगे ॥ यहां प्रसंगमें अमुक व्यक्ति (व्यष्टि) शब्द लिखा हे, उसका कारण यह हे कि विभूषकमतमें अनेक प्रकार हें ओर वे यथाअधिकार लाभप्रद होते हें; सबको सब ग्रहण नहीं होसकते. (शं.) जबके यूं हे तो दर्शनसंग्रहमें इनमेंसे कितनोंकका अपवाद क्यों दरसाया हे. जेसे के लाशरीकमत, शुद्धाद्वैतमत ओर आवृत्तिवादमतको अपवादमें गिना हे; एसे दुतरफीपक्ष वा विरोधीपक्ष बताना असमीचीन ओर अयोग्य हे.

(उ.) वहां निर्णयदृष्टि हे, यहां भावनादृष्टि हे ओर व्यवहारोपयोग हे. प्रथमतो वेसी भावना होना ओर उस अनुसार वर्तना पोथीके बेंगन हें, तथापि जो वेसी वृत्ति बाह्यांतरमें होजाय तो जीवन शांतिमय व्यतीत होता हे; क्योंकि समष्टिमेंभी कितनेही एसे कल्पित व्यवहार देखते हें कि जिनसे जनसमाजको सुख शांति रहती हे (वे उपर कहे गये हें), तो फेर किरोडोंमेंसे कोई एक व्यक्ति एसी कल्पित भावनापर रहे ओर उससे उसको मानसिक शांति रहे तो क्या आश्चर्य हे; अतः व्यवहारमें साधनप्रकार दृष्टिसे वोह प्रकार दूषित नहीं मानाजाता. आप तटस्थ, सारग्राही ओर साम्यभाववाले होके विचारो. क्या ईश्वरकी स्तुति, प्रार्थना ध्यानसे ईश्वर प्रसन्न होके कुछ देगा? कभी नहीं. क्या वोह बधिर हे कि जो वारंवार नित्य स्तुति प्रार्थना करते हें? क्या वोह अंतरजामी नहीं हे कि जो हमारे आंतरिय भावोंको नहीं जानता; तुम्हारे कहनेसे जानेगा? क्या वोह खुशामदपसंद हे कि जो स्तुतिसे खुश होके न्याय भंग करेगा ओर प्रार्थना करनेसे देगा? कभी नहीं. परंतु स्तुत्यादि करनेसे अपना लाभ हे—अंतःकरणकी शुद्धि होती हे; इसलिये यह साधन–शैली रोचक रुपमें रखी गई हे अर्थात कल्पित हे परंतु लाभकारी हे. इस दृष्टिसे विभूषकने वे शैली जनाई हें. जिसको वे नापसंद हों–लाभिष्ट मालूम न हों–वा असत्ख्यातिका विषय हे एसा निश्चय हो, वोह न करे. अन्यप्रकार ग्रहण करे.[१]

स्वमंतव्यकी द्रढता १, निर्दोषवर्तन २, अनुद्वेग ३, अतिरस्कार ४, साम्यभाव ५, अपरहानि ६, अविवादता ७, अनिंदा ८, लोकनीति ९, स्वकर्तव्यपालन

---

[१]दांतसे जिव्हा कटती हे, अपने हाथगत पंखेके झपाटेसे आंखमें लगती हे, इन दोनों कृतिसे दुःखतो होता हे परंतु दांत वा हाथमें द्वेष नहीं होता. इसप्रकार सब भूत प्राणी मेरेही अंग हें वा में उनका अंग हुं, सब मेरेही रुप वा परिणाम हें, एसी भावना होजाय तो उस व्यक्तिको सुख होगा ओर उससे दूसरेको उद्वेग न होगा; इसभावना होनेसे रागादि न होंगे. अथवा में कुछ नहीं, सब स्वाभाविक होता रहता हे; प्रकृति-मायाका स्वभाव हे के यथासंस्कार-भावना नाना नामरुप परिणामको पावे; इसभावना हुयेभी कामना-वासना रहित होजानेसे रागादि नहीं होते, सुखी रहता हे, दूसरेको उद्वेग होनेका निमित्त भूत नहीं होता. इन दोनों भावनासे उक्त फल होनेका कारण यह हे--मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ ओर भावना अनुसार मनके भाव तथा कृति होती हें.

१०, सदुद्योग ११, संतोष १२, मैत्र्य ओर स्थितप्रज्ञत्व १३, परोपकार १४, दुराचार बर्जित १५, इनका नाम पंचदशांग हे. इनका अर्थ ओर वर्णन संग्रहवादमें वांचोगे ॥ ४ ॥

संग्रहवाद प्रकरण ३.

मानवमंडलको संग्रहवादसे सुख ॥ ५ ॥

अर्थ.—जनमंडलकी वर्तमानमें जो दुर्दशा-दुःख हे उसको देखके यह माना गया हे कि वर्तमान मानवमंडलको संग्रहवादके प्रचारसे सुख मिलसकता हे ॥ ५ ॥ वर्तमानकाल विषे अनेक धर्म अनेक मत अनके पंथ चलरहे हें ओर उनमेंभी एक दूसरेसे विरोधि भावनावाले हें. उनसे साक्षात ओर परंपरासे जनमंडलको अनेक प्रकारके दुःख होरहे हें, ओर धर्मद्वेषकी हद नहीं रही हे; इसीवास्ते यथायोग्य व्यवहार-एकता-कर्म-भक्ति-उपासना वा ज्ञान विज्ञान संपादन नहीं होकसते. साम्यवादके बदले वैषम्यवादका प्रचार हे, किसीके माने हुये ग्रंथ वा धर्मगुरुके विरुद्ध कोई कुछ कहे तो द्वेष बढता हे, धर्मकी आडमें शिकारबाजी हो रही हे. इ. इ. इसलिये तटस्थ, विद्वान, अनुभवी पुरुषोंकी दृष्टिमें यह मानागया हे कि तमाम धर्म मतपंथोंकी वे बातें कि जो सर्वको संमत हों, ओर व्यष्टि, समष्टिको व्यवहार तथा परमार्थमें उपयोगी ओर हितकारी हों उनको एकत्र करके लोकसमाजमें प्रचार कीं जायँ; तो उपरोक्त दुःखकी निवृत्ति होके सुखप्राप्त हो. परंतु यह बातें देश, काल, स्थिति ओर परिस्थितिके अनुकूल होनीचाहिये तथा उनका संग्रह ओर प्रचार सभा—संमतिद्वारा शुद्धभावके साथ होना चाहिये.

संग्रह करना सहजकाम नहीं हे. इसके कोई विषयमें धर्म--मत--पंथवालोंकीभी अपेक्षा हे. यहां संग्रहवादका नमूना बताते हें.—

संग्रहवादके संक्षेपमें नियम.

(१) सर्व मान्य विषयसंग्रह करनेका उद्देश यह हे कि मानव समाजको सुख मिले, उसकी उन्नति हो ओर हठधर्मीका अभाव हो; धर्मक्लेश ओर धार्मिक नाइत्तफाकी न रहे; क्योंकि एक धर्मभाव प्रचार पानेसे मनुष्यमंडलकके अन्य सेंकडों दुःखप्रद दोष नष्ट होजाते हें.

(२) किसी व्यक्तिके जातिदोष वा किसी ग्रंथके लेखमें दोषवाली बातें हों उनका उच्चार न कियाजावे.

(३) कोइभी धर्म मत पंथका ग्रंथ हो, किसी देश वा कोम वा जातिके

विश्वासमें हो, आस्तिकका कथन हो वा नास्तिकका हो, यहां तकके बालकका भी कथन हो उसमेंसे जो सर्वमान्य सुखकारी बात हो वोह लेलेना चाहिये.

(४) जो बातें देशकाल, स्थिति, परिस्थितिके अनुकूल हों ओर जिनका जनमंडलमें चल सकना संभव हो वे बातें ग्रहण करनीं चाहिये.

(५) जो संग्रह कियाजाय उसमें पक्षपात, पोलीसी--चालबाजी न हो, शुद्ध भाव होना चाहिये.

(६) चक्रवर्ति सत्ताके विरुद्ध याने उसकी द्रोही बातें न हों.

(७) जो बात सर्वमान्य ली गई हे वोह सत् हे वा सत् नहीं अर्थात व्यवहारार्थ कल्पित हे वा रौढिक हे, इसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं हे किंतु उससे व्यष्टि समष्टिको लाभ हे वा नहीं इतनेपरही विचार करना हे.

(८) जो सूक्ष्म वा अपरिचित बात हो तो उसके अर्थ ओर उससे जो लाभ हानी हो सो दरसाना चाहिये.

(९) संग्रहसभा अमुक रीतिसे बनाना चाहिये, ओर उसकी शाखा खोलनी चाहिये. इसकी रीति अन्यत्र कहेंगे. वा देशहितैषीमंडल उसके नियम घडके बनासकता हे.

(१०) जो संग्रहवाद प्रचार कियाजाय सो संग्रहसभाकी संमति लेके प्रचार होना चाहिये.

(११) इस सभामें राज्यकीय विषयकी चर्चा न होना चाहिये.

(१२) इस सभामें हरेक जिलेके, हरेक राज्यके जिलेके ओर बडे बडे शहरोंके भद्र, प्रतिष्टित, अपक्षपाती पुरुष शामिल होंने चाहिये ओर यदि वेसे धर्मगुरुभी शामिल हों तो ओरभी अच्छा हे–विशेष लाभ हो अर्थात सर्व संमतिसे नवीन स्मृतिशास्त्र बनजावे.

(१३) वे मेंबर, हरकोई धर्म--जाति--कोम वा देशके होसकते हें, परंतु शुद्ध बुद्धिसे उक्त उद्देशके साथ बंधे हुये होने चाहिये.

(१४) जो हिंदुस्थानके दुर्भाग्यवश एसे मेंबर न मिलें वा शामिल न हों वा एसी सभा बनानेवाला कोइ पुरुषार्थी न हो तो यथामति शुद्ध बुद्धिसे सर्वमान्य संग्रहवाली बातें लोक समक्ष जाहिर कीजायँ.

(१५) इस संग्रह पक्षका नाम **मानवकर्तव्य** कहाजाय.

(१६) इसमें शब्दप्रमाण मात्रे वा खंडन करनेकी अपेक्षा नहीं हे, तद्वत्

किसी व्यक्तिको गुरु--आचार्यरुप कहने वा मानेकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि इसके तो सर्वतंत्र बोधक सबही उपदेशक--भोमिये मान्य हें. (व्यष्टिकी दृष्टिमें किसी विषे गुरु भावना हो, उसका यहां प्रसंग नहीं हे ओर एसा होना स्वाभाविक हे).

वेदोपदेश.—

संगच्छध्वं. ॥ ऋग्वेद अ. ८ । अ. ८ । व. ४९ । मं. २ ॥ शांतभाव होके एकत्रित हो, स्वतंत्रतासे अनेक प्रकारके उपयोगी संवाद ओर विचार करो. विवेक अर्थात सत्यासत्यके निर्णयपूर्वक तुम्हारे मनको ज्ञानी बनाओ. प्राचीन विद्वानों, ओर विचारशील पुरुषों समान उत्तम कर्तव्य करो ओर ईश्वरकी उपासना करो ॥

ईशावास्यमिदं ॥ इसजगतमें आसक्ति न करके उसे भोग, किसी दूसरेके धनकी इच्छा मतकर. किसका धन हे ॥ यजु. अ. ४० मं. १ ॥

कुर्व्वनहकर्माणि. यजु. अ. ४. मं. २ ॥ सो वर्ष तक जीवनेकी इच्छा, निष्कामकर्म (फलकी इच्छा न करके अपनी डयूटी-कर्तव्य करना) करता हुवाकर; तो कर्मके बंधनमें न आवेगा-अर्थात दुःखी न होगा ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेधाम् समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ २ ॥

भावार्थ—तुम्हारे (मनुष्यमंडलके) विचार, सभा, मन, ओर चित्त समान (साम्य) भाववाले हों. तुम्हारे वास्ते समान विचारका बोध करता हूं तथा तमाम प्रकारके व्यवहारादिसे समान इच्छता हूं ॥ १ ॥

तुम्हारे आशय–इच्छा–भाव, हृदय--संकल्प ओर मन समान (साम्यभाववाले) हों कि जिससे तुम सुखपूर्वक वर्तसको ॥ २ ॥

सहृदयं सांमनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः । अन्योऽन्यमाभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्याः ॥ ॥ भावार्थ—द्वेष रहित अच्छा ओर शुद्ध संकल्प (उत्तम विचार) वाला हृदय तुम्हारे वास्ते करता हुं, जिससे तुम अन्योऽन्यके प्रेमसे आकर्षित रहो. जेसे के गाय वत्सकी तरफ प्रेमसे खिंचाती हे वेसे. (सारांश उत्तम विचारवाले परस्परके प्रेमी रहो) ॥

दृते दृꣳहमा मित्रस्य माचक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहंचक्षुषा

सर्वाणिभूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ॥ भावार्थ—हमारा मन एसा विशाल–संकोच रहित हो कि जिससे सब प्राणी हमको ओर हम सबको मित्रदृष्टिसे देखें ओर हम सब परस्परमें मित्रभावसे देखें ॥ ॥

वेदोंमेंसे बहुत बातें लिख सकते थे, परंतु वोह ग्रंथ मूल ओर सूत्रात्मक हे, सबके वास्ते हे; अतः हर कोई अपने अनुसार अर्थ करके लेसकता हे. सारांश उसको पक्षकार नहीं मान सकते ओर इसी वास्ते ज्यादे अवतरण नहीं लिखे. नमूनामात्र हे, विशेष अन्यत्र.

उपनिषद्.

ओ३म् सहनाववतु. तै. आ. ८. अ. १ ॥ हम सब मनुष्य एक दूसरेकी रक्षा करें, हम सब परस्परमें प्रीतिपूर्वक मिलके सर्वोत्तम एश्वर्य भोगें, हम सब एक दूसरेकी सामर्थको पुरुषार्थ करके ज्यादा करें, हम सबका पठन पाठन (विद्या) संसारमें प्रकाशित हो, हमारी विद्याकी वृद्धि होती रहे, हम आपसमें द्वेष (तिरस्कार--ईर्षा--वैरभाव) नहीं करते हुये एक दूसरेके साथ मित्रभावसे रहें ओर आध्यामिक (शरीर संबंधी) आधिभौतिक (दूसरे प्राणिसंबंधी) ओर आधि दैविक (अकस्मात सृष्टिसंबंधी) इन तीन प्रकारके ताप (दुःखों--आफतों) के क्लेशसे जुदा रहें. हे सर्व शक्तिमान, प्रकाशमान ज्ञानप्रद परमात्मा ! आपकी सहायता, कृपा, सामर्थ ओर आपकी करुणासे एसा हो. ॥

ब्रह्मचार्यसि असौ अपो अग्निकर्म कुरु. इ. ॥ तुं ब्रह्मचारी हे. नित्य ईश्वरकी उपासना कर. दुष्टकर्म न कर. सत्धर्म-सत्कर्मका आचरण कर. दिवसको मत सो. गुरुकी आज्ञामें रहके ज्ञान सीख. सर्वप्रकारसे ब्रह्मचर्य पाल. गुरु (शिक्षक–मास्तर) के आधीन धर्मआचरणमें रह. परंतु जो कदाचित आचार्य (गुरु) अधर्माचरण वा अधर्म करनेको कहे तो उतना उसका कहा न मानना. ओर वेसा आचरण कभी न करना. क्रोध मतकर. झूठ नहीं बोलना. अष्ट प्रकारके मैथुनसे अलग रह. (याने स्त्रीका चिंतवनभी न कर). अति स्नान, अतिभोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण मतकर. निंदा (बुराई-बदगोई-चुगली-चांटी), लोभ, मोह, तथा शोक कभीभी न करना. मद्यादिका नशा न करना. नित्यप्रति योग्य अहार विहार करना.

नाना प्रकारकी विद्या (ज्ञान) सीखता रह. सुशील ओर थोडा बोलनेवाला

बनके उत्तम सभामें बेठसके, एसा योग्य बन्ना. गान, तान, शृंगार, फेशनमें-व्यसनमें न पडना ॥ उ. ॥ संस्कार. वि. पेज ७१ ॥

माता, पिता ओर आचार्य इनको गुरु जान; इनकी आज्ञा पाल, इनकी सेवा कर ॥ छां. प्र. ३ खं. १६ ॥ इ.

मनु-उपदेश.

कामात्मापना (स्वार्थताही) रखना ठीक नहीं हे, ओर केवल निष्कामताभी; क्योंकि विधिमें कामना करनी योग्य हे. ॥ मनु० अ. २ । २ ॥ जेसे अश्वको अपने काबूमें रखते हें वेसे ज्ञानेंद्रियोंको अपने काबूमें रखना अर्थात उनकी रुची अनुसार विषयोंमें न खिंचाना ॥ २ । ८८ ॥ जो पुरुष अच्छा बुरा सुनके, स्पर्श करके, देखके, खाके, सूंघके प्रसन्न न होता हो ओर न ग्लानीको पाता हो सो जितेंद्रिय हे २ । ८८ ॥ अपमान होनेपर जो पुरुष खेद नहीं करता वोह सुखसे जागता, सोता, फिरता हे ओर अपमान करनेवाला आपही नाशको पाता हे ॥ २ । १६३॥ किसीने अपमान किया हो तोभी उसको क्षमा करना ॥ २ । १६२ ॥

हरेक प्रकारकी स्थितिमें संतुष्ट रहना चाहिये, क्योंकि संतोष यह परमसुख हे ओर असंतोष परमदुःखका मूल हे ॥ अ. ४ । १२ ॥ जो विषय ज्ञान प्राप्ति, ओर ज्ञान वृद्धिके विरोधि हों उनका त्याग करना ॥ १७ ॥ शत्रु, शत्रुका हिमायती, चौर, अधर्मी इन पुरुषोंके साथ ओर परस्त्रीके साथ मेल झोल नहीं करना ॥१३३॥ विद्वान, बुद्धिमान, वीर, सर्प, बहुश्रुत ओर निर्बलका अपमान नहीं करना ॥१३५॥ उद्यम करते हुएभी सफलता न मिले तो "मे मंदभागी हुं" एसे अपने आत्माका अपमान न करना (निर्बल विचार न करना) किंतु मरण पर्यंत प्रयत्न करते रहना (आत्मबल रखना) ॥ १३७ ॥ सत्य, प्रिय बोलना. अप्रिय हो एसा सत्य न बोलना. प्रिय लगे एसा असत्य न बोलना ॥ १३८ ॥ कोईके साथ नाहक विवाद, झगडा न करना ॥ १३९ ॥ वृद्ध पुरुषोंका जब जब आगमन वा दर्शन हो तब तब उनका सत्कार करना ॥ १४४ ॥ दुष्टाचारण न करना; क्योंकि उससे लोकमें निंदा, अनेक दुःख, ओर रोग होते हें तथा उमर थोडी होजाती हे ॥ १५७ ॥ जो सदाचरणी हो, श्रद्धावान हो, ईर्ष्या रहित हो, एसा पुरुष सो वर्ष तक जीता हे ओर सुखी रहता हे ॥ १५८ ॥ प्रतिग्रह याने दान नहीं लेना चाहिये (भीख नहीं मांगना चाहिये) क्योंकि लेनेवालेका तेज नष्ट होजाता हे ॥ १८६ ॥ जिन क-

र्मोंसे आत्माको संतोष होता हो वे कर्म करना. जिनसे असंतोष होता हो वे न करना (अर्थात शंका, भय ओर लज्जावाले काम नहीं करना). ॥ १६२ ॥

राजाको इतने व्यसन न करना चाहिये.—शिकार, द्युतक्रीडा, दिनका सोना, परदोष कथन, धर्मरहित स्त्रीगमन, मद्य, नाचना गाना बजाना, वृथा फिरना, चुगलीचांटी, अयोग्य साहस, द्रोह, ईर्षा, गुणोंमें दोषारोपण, द्रव्य हरण, कठोर वचन, अतिशय दंड ॥ ७ । ३७ । ३८ ॥ लोभ नहीं करना; क्योंकि अनेक अनर्थोंका मूल हे ॥ ३९ ॥ जो राजा अज्ञानतासे, दुष्ट शासनसे (अन्याय-अनीतिसे) अपने देशको दुःख देता हे वोह थोडे कालमें अपने संबंधियोंसहित राज्य ओर जीवितसे भ्रष्ट होजाता हे ॥ १११ ॥ जो राजा देशका रक्षण करता हे वही सुखको पाता हे (जिसमें प्रजा सुखी वोही राज्य उत्तम होता हे.) ॥ ११३ ॥ रिशवत लेनेवाले अधिकारीको दंड--देशपार करना चाहिये ॥ १२४ ॥

लावारिस (यतीम) बालकका द्रव्य, तथा नपुत्री, लावारिस, पतिव्रता, विधवा, ओर नित्यरोगी, इन स्त्रियोंका द्रव्य राज्यसे सुरक्षित रहना चाहिये. (परंतु उनकी हानी न हो, उनको दुःख न हो, उनके उपयोगमें आवे एसे व्यवस्था होना चाहिये) ॥ ८ । २८ ॥ झूठी साक्षी देना नहीं, साक्षीको सर्वथा सत्यही बोलना चाहिये. असत्य बोलना पाप (दोष) हे ॥ ७९ से ९७ ॥ लोभादि कारणसे झूठी गवाही देनेवालेको दंड होनाचाहिये ॥ ११८ ॥ व्याज दुगनेसे ज्यादा नहीं होना चाहिये ॥ १५१ ॥ ब्राह्मण ओर क्षत्रीय व्याज न लेवे. आपत्ति हो तो बहुत थोडा ले ॥ १० । १७१ ॥

आग लगानेवाला, विष देनेवाला, घात करने वास्ते जिसने शस्त्र उठालिया हो, धन हरण करके भाग जानेवाला, किसीका खेत जबरदस्तीसे खोसनेवाला, स्त्री हरण करनेवाला, यह ६ आततायी कहाते हें; इनके मारडालनेमें पाप नहीं होता ॥ ८ । ४९ ॥

जड वा प्राणी पदार्थके लेने देने वास्ते जो जूवा खेले उसको दंड देना. अर्थात जूवा न खेलना ॥ ९ । २२४ ॥ बालहत्या करनेवाला १, किये हुये उपकारका नाश करनेवाला २, शरण आये हुयेको मारनेवाला ३ ओर स्त्रियोंका नाश करनेवाला ४ एसे चार प्रकारके मनुष्यके साथ धर्मसंबंध नहीं करना; क्योंकि एसे काम करनेवालोंका अंतःकरण—आत्मा पवित्र भावनावाला होजावे, यह कठिन

बात हे ॥ ११ । १९० ॥ पाप बनजाय तो छिपाना नहीं, प्रकाश करदेना, (ओर योग्यमंडलके समक्ष) उसका पश्चाताप करना ओर फेर वेसे न करनेकी प्रतिज्ञा करना. एसा करे तो अधर्मसे छूट जाता हे. इ. ॥ ११ । २२८ ॥

परके धन लेनेमें चित्तको लगाना, अनिष्ट विचार करना, ओर परलोक हेही नहीं एसा मिथ्याअभिनिवेश यह ३ मानसकर्म १ । कटु, असत्, चुगली, व्यर्थ बकवाद, यह चार वाणीके कर्म २ । अन्यायसे परका द्रव्य लेना, अनुचित हिंसा, स्वस्त्रीसे भिन्नके साथ गमन, यह ३ शारीरिक कर्म ३ ॥ उपरके अशुभ मानसिककर्मका अशुभफल मनद्वारा ओर वाणीकृतका वाणीद्वारा ओर शरीरसे जो किये उनका शरीर द्वारा फल भोगा जाता हे ॥ १२ । ७७८ ॥ (सारांश मनमें जो बदी वा असत्य स्फुरे तोभी पाप लगता हे) ॥ (शुभ प्रवृत्तिके वास्ते कितना उत्तम उपदेश हे).[1]

धृति अर्थात आफत होनेपरभी मनमें धीरज रखना, वा धारणा (स्मृति) रखना—बढाना. **क्षमा**--जो अपराधि माफ करने लायक हो उसको माफ करना--टोलरेशन रखना. **दम**—(इंद्रिय निग्रह) अपनी इंद्रियोंपर काबू रखना--उनके विषय सेवनमें उनके आधीन न होजाना. **शम**--मनपर काबू रखना, उसके आधीन न होजाना. **अस्तेय**--परकी वस्तुको अनधिकार--कुरीतिसे न लेना अर्थात चोरी, डकेती न करना, रिशवत न लेना, दगाफरेब करके न लेना.[2] **शौच**--शरीर, वस्त्र, अन्न, जल, मकान साफ--पवित्र रखना. वाणिको सत्से साफ--पवित्र रखना. मनको कपट--दंभ रहित रखना. अर्थात सच्चे अच्छे आचार, सच्चे अच्छे उच्चार, ओर सच्चे अच्छे विचार करना.. **धीवृद्धि**--एसे विद्वान, बुद्धिमानोंका संग करना ओर एसा भोजन सेवन करना कि जिससे बुद्धि बढे. **विद्यावृद्धि**--एसे विद्वान, बुद्धिमान, गुणवान, हुनरकलावालोंका संग करना कि जिससे उपयोगी अच्छे

---

[1]अपनी शक्ति अनुसार पात्रको ओर समष्टिके सुख—उन्नति अर्थ दान दे, निष्काम दे, सकाम दे, कीर्ति वास्ते दे, प्रतिष्ठा वास्ते दे, मोक्ष प्राप्ति अर्थ दे, परंतु दान दे दे ओर दे. (तै.उ.) शुभ दान प्रसंगमें देशकाल देखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं होती, केवल अपनी योग्यता ओर दानका शुभोपयोगही विचारणीय होता हे.

[2] दूसरेके तन मनको गेर वाजबी रीतिसे न दुखाना, एक यह सर्वेमान्य नियम--प्रतिज्ञा बस हे, इतना पालनेसे हजारों दोष--पापसे मुक्त, हुवा सुखी रहता हे.

ज्ञानकी प्राप्ति हो; नाना प्रकारकी विद्या--हुनर--कला प्राप्त हों. सत्य--जेसा देखा सुना, माना हो वेसाही कहना ओर वर्तना--झूठ न बोलना. [1]अक्रोध--गुस्सा न करना; क्योंकि इससे तन, मन ओर व्यहारको हानी पहोंचती हे ॥ मनु. ६। ९२ ॥ यह धृतिक्षमादि १० मनुष्यके सामान्यधर्म हें--कर्तव्य हें. ॥ मनु स्मृति ॥ जो व्यक्ति परत्वे विशेषधर्म जुदा जुदा हों वे इनके बिरुद्ध न होने चाहिये किंतु इनके अनुकूल होने योग्य हें, यह स्पष्ट हे ॥[2]

[1] किंवा झूठ न बोलना--असदाचरण न करना किंतु सत्यही बोलना. इस एक सर्वमान्यनियम--प्रतिज्ञासे सेंकडों दोषसे मुक्त हुवा सुखी होजाता हे; क्योंकि छल, कपट, दंभ, विश्वासघात, वगेरे सब असत्‌की संतान हें, सत् हो तो उनकी उत्पत्ति नहीं होती; किंतु खून, चोरी, रिशवत, जूआ, जिना वगेरे खराब कर्मोंकाभी प्रतिबंधक होजाता हे.

[2] इन धृत्यादि १० को जब विशेषधर्ममें बयान किया जाय तब इसमें बडी बारीकी निकलती हें. तहां जब तक, साधु १, गृहस्थ २, राजा ३, आपत्तिमें आया हुवा ४, इन ४ के अधिकार न लोगे ओर जिसमें दोष थोडा ओर भूषणज्यादा हो उसका ग्रहण करना, एसा भाव न लोगे वहांतक इसका उपयोग नहीं होसकता.

यथा--कोई अबलापर बलात्कार करनेकी कोशिश करता हो वहां धीरज रखना वा क्या? १०० को जो एक दुःख देता हे वोह क्षमापात्र हे वा नही? साधु, गृहस्थ ओर राजाकी क्षमा समान वा उसमें भेद हे? आततायीको मारना वा उपेक्षा करना? बलवानके अन्यायसे बचने वास्ते आत्माके विरुद्ध कृति करना वा नहीं? कृपण पिता, विद्या सीखने वास्ते पदार्थ न देता हो तो छिपके लेजाना वा नहीं? बलवान दुष्ट हमारी वस्तु न देता हो तो छिपके लेना वा नहीं? वा उसके हानीकारक शस्त्रादि छिपके लेना वा नहीं? आपतकालमें स्नानादि करना वा नहीं? रोग प्रसंगमें उत्तम वा दारु वगेरेका सेवन करना वा नहीं? क्रोध-द्वेष विना दुष्टको दंड नहीं दिया जाकसता तो वोह करना वा नहीं? दुष्टकी मारसे बचने वास्ते निरपराधि अशक्त भागके जा रहा हो वा छिप रहा हो जिसको हम जानते हें वहां दुष्टके पूछनेपर सत्य उत्तर देना वा नहीं वा असत् बोलना? सिंह गायपर, सर्प चुहापर दोडता हे उनसे गाय चूहाको बचाना वा नहीं? हमारी सच्ची गवाहीसे किसी (तोहमतदार वा अपराधी) को फांसी मिलती हो वहां सच्ची गवाही देना वा नहीं? बलवानके अश्व ओर सहायकको मारना वा नहीं?

योग-उपदेश.

महाव्रत ५ ॥ अहिंसा-किसीका खून न करना, वैरभाव न रखना, किसीके मनको पीडा न करना, किसीके सुखका भंग न करना ॥ सत्य-जेसा देखा, सुना, माना, वेसाही कहना ओर मान्ना. चाहे हानीभी होती हो परंतु झूठ न बोलना. अस्तेय-चोरी न करना, अथवा अनीतिसे परकी वस्तु न लेना. ब्रह्मचर्य-वीर्यका अत्याग, अष्टमैथुन रहित रहना. अपरिग्रह-जरुरतसे ज्यादेका असंग्रह, दूषित हानिकारक विषयोंका परित्याग (जितनी जरुरत कम उतनाही ज्यादे सुख), पदार्थोंमें अनासक्ति, ओर ममत्वका अभाव ॥ यह पांच यम कहाते हें-सो सर्व देश, सर्व काल ओर सर्व स्थितिमें तन, मन ओर वाणि करके सेवने योग्य हें; इसलिये उनको महाव्रत कहते हें. यथा-कहीं कभीभी (दुःखित स्थितिमेंभी) मनमेंभी खून करनेका विचार न करना १, झूठ बोलनेकी कल्पना न करनी २, परवित्त, हरणका विचार न करना ३, परस्त्रीका चिंतवन न करना ४, विशेष तृष्णा वा कुतृष्णा-कामना न करना; क्योंकि मनमेंभी जो एसा किया गया तो पाप होचुका-प्रत्ययवाय होगा, कुदरत वा ईश्वरके वा लोकके शिक्षापात्र ठेरचुके; ओर इसका खराब फल होगा. एवं वाणि द्वारा हिंसादि (हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य, परिग्रह) का उपयोग हो तो उससे ज्यादे पाप होगा ओर जो शरीरद्वारा हिंसादिका उपयोग होगया तो उससेभीज्यादा पाप-हानी-दुःख होगा.

इन महाव्रतोंका विवेचन बहुत हे. साधु, राजा ओर गृहस्थ तथा आपतमें आये हुये के लिये जुदा जुदा प्रकार हें. यथा-साधुके लिये सर्वथा पालनीय हें. राजा यदि दुष्टको शिक्षा करे वा उसका साधन हरण करे तो हिंसा, स्तेय, परिग्रह, रुप दोष नहीं हे ॥ योग २ । २९ ॥ नीयत (आंतरीयभाव) ओर उसके अमलमें आनेसे जो नतीजा निकले-इन दोनोंको समझके शिक्षा अशिक्षा, पाप पुण्यरुप फल मानाजाता हे, इसलिये मानसिक भावनाकोभी पुण्य पापमें गिना गया हे.

नियम ५-तप—दुःखसुख, सरदीगरमी, मानापमान इत्यादि जो द्वंद हें

इत्यादिका उत्तर जबही होसकेगा कि धर्म तो हो वा न हो परंतु अधर्म न होनाचाहिये, नीति तो हो वा न हो परंतु अनीति न होनाचाहिये, सत्य हो वा न हो परंतु असत्य न होनाचाहिये, एसा मध्यका मार्ग ओर उपरोक्त ४ बातें दरमियानमें लें. यह सब धर्म शोधकोंको विशेषधर्म निर्णय समय विचारना चाहिये ओर फेर सर्वमान्य संग्रहके रुपमें लाके संग्रहवादमें दाखिल करनाचाहिये.

उनको सहन करना अर्थात सहनशील होना. अहार विहारका संयम अर्थात हित, मित ओर शुद्ध सात्विक अन्नका अहार होना ओर शरीरकी क्रिया सनियम करना. परादर ओर परोपकार करनेमें कष्ट सहन करना. इंद्रियोंको अपने तावेमें रखना ओर मनका निग्रह करना. **स्वाध्याय**—अपने ओर परके उपयोग-हित-उन्नति सूचक वा न्याय-धर्म-नीतिके बोधक जो ग्रंथ हों उनका अभ्यास करना. **शौच**—बाह्याभ्यंतर एवं दो प्रकारका ओर तन, मन, वाणिका एवं तीन प्रकारका होता हे. इसका अर्थ मनुव्रत (१०) में किया हे. **संतोष**—जैसी स्थिति प्राप्त हो उस स्थितिमें संतुष्ट रहना; कारणके संसारमें अनेकोंकी अनेक स्थिति होती हैं; सबकी सब स्थिति नहीं होती. **प्रणिधान**-जो इष्ट हो उसका स्मरण करना.

मैत्र्य ४ ॥ जो अपने समान हैं उनमें मित्रभाव रखना १, जो अपनेसे योग्यतामें अधिक हों—श्रेष्ट योग्य पुरुष हों उनके संगसे प्रसन्न होना २, जो दुःखी हों उनपर करुणा-दयाभाव होना ३, जो पापी अयोग्य व्यक्ति हों उनसे उदासीनता-टोलरेशनका होना ४. एवं मैत्री, मुदिता,[१] करुणा ओर उपेक्षा यह चार मैत्र्य कहाती हैं, उनका सेवन करना. (योग) ॥

भगवद्गीता.

जो दुखोंमें उद्विग्न नहीं होता, ओर सुखोंमें आसक्त नहीं होता ओर राग (मोह), भय तथा क्रोधको जिसने त्याग दिया हे वोह विचारशील स्थितप्रज्ञ कहाता हे. ॥ अ. २ श. ५६ ॥ विषयोंसे जिसने मन इंद्रियोंको जीत लिया हे सो स्थितिप्रज्ञ हे ॥ ५९ । ६४ । ६८ ॥ क्षणमात्रभी कोइ कभी कर्मको न करता हुवा नहीं ठेरता; क्योंकि प्रकृतिके गुण हरेकसे कर्म कराते हें ॥ अ. ३ । ५ ॥ यथायोग्य कर्मकर. कर्म न करनेसे कर्म करना श्रेष्ट हे. कर्म न करेगा तो तेरे शरीरकाभी पोषण न होगा. ॥ ८ ॥ इंद्रिय ओर उनके विषयोंमें राग द्वेष नहीं होना चाहिये; क्योंकि राग द्वेष पुरुषके शत्रु हें. ॥ ३४ ॥ काम ओर क्रोधसे

---

[१]यदि वर्तमानमें मनु, गौतम, कणाद, राम, पतंजलि, वशिष्ठ, व्यास, कपिल, ऋषभदेव, महादेव, कृष्ण, अर्जुन, भीष्म, बुद्ध, अंबादेवी, महावीरस्वामी, शंकर, विक्रम, भरत, मूसा, ईसा, जरतोश्त, नबीमोहम्मद, लूथर, बेकन, रामानुज, वल्लभ, दयानंदस्वामी, नेपोलियन, वगेरे होते तो उनके दर्शन करते, दर्शन करके आनंदित होते ओर उनका सर्वमान्य उपदेश सुनते. यह मुदिता. एवं वर्तमानके योग्यों साथ भाव होनाचाहिये.

शांति नहीं होती वे दोषोंके उत्पादक हैं. इनको ताबे कर ॥ ३७ से ४१ ॥ जो काम, क्रोधके वेगको सहन करता हे वही योगी ओर सुखी हे ॥ अ. ५ । २३ ॥ जो कर्मफलकी इच्छा छोडके करनेके योग्य कर्म करता हे (अर्थात अपनी डयूटी समझके अपने कर्तव्य कर्म करता हे) वही संन्यासी ओर योगी हे. शास्त्रिय ओर लौकिक कर्मको त्यागनेवाला पुरुष संन्यासी वा योगी नहीं हे ॥ अ. ६ । १ ॥ जिसने विवेक करके मनको जीतलिया हे, वोह स्वयं अपना हितकारी हे ओर जो अविवेकी हे उसका आत्माही उसका शत्रु हे (याने अपना आप शत्रु हे) ॥६ । ६॥

जिससे कोई उद्वेग (दुःख) को न प्राप्त हो ओर जो किसीसे उद्वेगको न प्रात हो एसा जो हर्ष, खेद (ईर्षाके दाहसे जन्य जो खेद), भय ओर विक्षेपसे अलग हो वोह मुझे प्यारा हे ॥ अ. १२ । १५ ॥ जो प्राप्त हो उसीमें संतुष्ट, तन मनसे शुद्ध--पवित्र, प्रवीण, पक्षपातसे रहित, खेद शून्य, फलकी वासनाको छोडके कर्मोंका करनेवाला अर्थात अपनी डयूटी समझके कर्म करनेवाला, एसा जो हो सो मेरेको प्रिय--श्रेष्ट हे ॥ ६ । १६ ॥

निरभिमानता, निष्कपटता, वैरभावसे रहितपना, शांति, सीधापना, शिक्षककी सेवा, तन मनकी शुद्धता, मनकी स्थिरता, शरीरका संयम, विषयोंमें अनासक्ति, विषयोंमें दुःख ओर दोषका दर्शन, इष्टानिष्टमें स्थिर रहना, निर्बाध अर्थात जहां चित्त प्रसन्न रहता हो एसे पवित्र देशमें निवास, जीव–मोक्ष–ईश्वर–प्रकृतिके स्वरुपको विचारना, यह सब ज्ञानपदके वाच्य हें. ॥ अ. १३ । ८ । ९ । १० । ११ ॥

सत्वगुण, प्रकाशक ओर उपद्रव रहित हे, सुख ओर ज्ञानका उत्पादक हे ॥ अ. १४ । ६ ॥ तृष्णा, आसक्तिसे रजोगुण पेदा होता हे, उससे राग (मोह) होता हे ॥ ७ ॥ अज्ञानसे तमोगुण पेदा होता हे, उससे प्रमाद, आलस्य ओर निद्राकी उत्पत्ति, वृद्धि होती हे ॥ ८ ॥ सात्विक कर्मोंका अंतमें निर्मल ओर सुख फल होता हे, राजस कर्मके परिणाममें दुःखफल ओर तामस कर्मके परिणाममें अज्ञान फल होता हे ॥ १६ ॥ तीनों गुण प्रवृत हुये जो त्रासको न प्राप्त हो ओर उनके निवृत्त हुये उनकी इच्छा न करे, वोह गुणातीत कहाता हे ॥ २२ ॥

अभय (भयभीत न होना), चितकी शुद्धि (असत्--छल--कपट रहित), अनेक प्रकारके उपयोगी ज्ञान प्राप्तिके लिये उद्योग, सुपात्रको यथायोग्य दान, इंद्रियोंका संयम, तप (सहनशीलताका अभ्यास), सरलस्वभाव (सीधापना), वैर--द्वेष रहित, सत्य, अक्रोध, औदार्य, शांति, चुगली चांटी न करना--पीठ पीछे

निंदा वा दोषोंका अकथन, प्राणियोंपर दया, विषयोंमें लोलुप्त न होना (उनके आधीन न होजाना), मृदुता, लोक नीति मर्यादाकी लज्जा, अनुचित चपलताका त्याग, प्रौढता (गांभीर्य), क्षमा (टोलरेशन), धीरज, शौच अर्थात तन--मन ओर वाणिकी पवित्रता, कोईके साथ द्रोह (द्वेष-कीना) न करना, ओर घमंड न रखना, यह सब दैवीसंपत्ति हे. जो एसा हो वोह उत्तम-देव पुरुष हे ॥ अ. १६ । ११ । २ । ३ ॥ दंभ, गर्व (घमंड), मानाभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान, शौच-आचार तथा सत्यतारहित, मलिनचित्त, अल्पबुद्धि, क्रूरकर्म, जनमंडलको दुःख देना, अपवित्रव्रतोंका करना, अशुभ विचार, मरणपर्यंत असंख्य चिंता, कामोपभोग-मेंही रति, अनेक असंभव वा दुष्पुर आशा--कामना होना, काम क्रोधमें तत्परता, स्वार्थ वास्ते अनीति--अन्याय करके परके धनकी इच्छा करना (याने दूसरेके तन मन धनको दुखाना), दूसरोंको तुच्छ ओर तिरस्कार दृष्टिसे देखना, अपनेको ओ-रोंसे सर्वप्रकारमें श्रेष्ट मान्ना, अज्ञानसे मोहित होना, विषय भोगोंमें अनुरक्त रहना, अपनी आप स्तुति करना, परकी निंदा करना, योग्य--पूज्य (विद्वान, बुद्धिमान, अनुभवी, हुनरकलामें कुशल, व्यवहार परमार्थको जान्नेवाले, जितेंद्रिय, सदाचारी, जनमंडलके हितैषी, इ. इ.) का सत्कार न करना, सन्मार्गके साथ शत्रुता, क्रूर ओर अशुभ कर्मका आचरण, मूढता, यह सब आसुरीसंपत्ति हे, जो इनवाला हो वोह असुर हे-- उत्तम पुरुष नहीं हे ॥ ४ से २० तक ॥ काम, क्रोध ओर लोभ यह ३ नरक (अनेक प्रकारके दुःख) के द्वार हें, इन तीनोंका त्याग क-रना चाहिये ॥ २१ ॥

हरेक मनुष्य श्रद्धा (भावना--विश्वास) से व्याप्त हे; अतः जिस प्रकारकी श्रद्धा वेसा मनुष्य होता हे. सात्वकी श्रद्धावाले सत्वगुणी, राजसीवाले रजोगुणी ओर तामसी श्रद्धावाले तमोगुणी होते हें; उनके अहार, विहार, कर्म, तप, दानभी वेसेही तीन तीन प्रकारके होते हें ॥ अ. १७ । ३ । ७ ॥ आयु, बल, उत्साह, प-राक्रम, आरोग्य, सुख ओर प्रीतिको बढानेवाला, रसयुक्त, चिरकालतक शरीरमें बल देनेवाला ओर आनंदकारक जो अहार सो सात्विक जनोंको प्यारा लगता हे[१]

[१] ८, ९ ओर १० का वर्तन देखके मनुष्यकी प्रकृतिका ज्ञान ओर परीक्षा होजाती हे. कोई कारणसे दूसरे प्रकारकी टेव होजाना वा कर लेना (बनावटी प्रकृति बनालेना) यह दूसरी बात हे. "प्रकृतिविवरणमें" मानव प्रकृतिका बिस्तार किया गया हे.

॥ ८ ॥ कडु, खट्टा, खारा, अत्यंत गरम, तीक्ष्ण, उदरमें दाह करनेवाला ओर दुःख, शोक ओर रोगको देनेवाला अहार, राजस जनोंको इष्ट होता हे+ ॥ ९ ॥ ठंडा, निरस, बासवाला, गत दिवसका पकाया हुवा (बासी) उच्छिष्ट–जूठा ओर अपवित्र भोजन तामस जनोंको प्यारा लगता हे+ ॥ १० ॥ प्राप्त कर्म करना हमारी डयूटी (फर्ज) हे एसा मनको दृढ करके उसके फलकी इच्छामें अनासक्त हुये जो यथायोग्य–कर्म कियाजाता हे वोह सात्विक कर्म हे ॥ ११ ॥ कामना, दंभ दृष्टिसे जो कर्म किया जाय वोह राजसी हे ॥ १२ ॥ विधि रहित परोपकारसे शून्य, ओर श्रद्धा विना जो कर्म किया जाय वोह तामसी हे ॥ १३ ॥ उपरोक्त देव–द्विज–गुरुजनोंका पूजन–सत्कार, सीधापन साधना, ब्रह्मचर्य पालना ओर वैरभावका त्याग यह शारीरिक तप कहाता हे॥१४॥ किसीके मनको उद्वेग (क्लेश-दुःख) न देनेवाला, सत्य, प्रिय ओर हित एसा भाषण ओर उपयोगी सद्विद्याओंका अभ्यास यह वाचिक (वाणीका) तप कहाता हे ॥ १५ ॥ मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, मनन शीलता, विषयोंसे मनको रोकना ओर निष्कपट रहना यह मानसिक तप कहाता हे ॥ १६ ॥

उक्त तप तीनतीन प्रकारके होते हें. (१) उक्त तीनों प्रकारके जो तप फलकी इच्छा रहित (डयूटी समझके सहज स्वभावरुप) होते हें ओर स्थिरचित हुये-श्रद्धायुक्त किये जाते हें सो सात्विक तप कहाते हें ॥ १७ ॥ जो उक्त तीनों तप अपने सत्कार, मान, प्रतिष्ठाके लिये किये जाते हें वे चंचल-अस्थिर-राजस तप कहेजाते हें ॥ १८ ॥ जो उक्त तीनों तप दुराग्रहसे अपनी आत्माको पीडा देके वा दूसरेके नाश होनेकी इच्छासे किये जाते हें वे तामसी तप कहाते हें ॥ १९ ॥ हमको (व्यष्टि वा समष्टिके लाभ वास्ते) अवश्य दान दातव्य हे, इस विचारसे अनुपकारीको जो दान, देशकाल पात्रको विचारके दिया जाय सो सात्विक–दान हे ॥ २० ॥ जो दान प्रत्युपकारककी इच्छासे अथवा अन्य किसी (कीर्ति वगेरे) की इच्छासे क्लेशपूर्वक दियाजाय सो राजस–दान कहाता हे ॥ २१ ॥ देशकाल स्थिति विचारे विना अपात्रको असत्कार ओर अनादर पूर्वक जो दान दिया जाय वोह तामस–दान कहाजाता हे ॥ २२ ॥ उपरोक्त सात्विकअहार, सात्विककर्म, सात्विक तीन प्रकारके तप ओर सात्विकदान कर्तव्य–ग्राह्य उत्तम ओर आदरणीय हें ॥ २८ ॥

यज्ञ,[1] दान ओर तप ओर इनके संबंधी जो कर्म वे त्याज्य नहीं हें किंतु आचरणके योग्य हें, क्योंकि विवेकी पुरुषोंके मनको शुद्ध करनेवाले हें ॥ अ. १८ । ५ ॥ परंतु यह सब आसक्तिरहित, निष्काम (फलकी इच्छारहित अर्थात अपनी डयूटी-फर्ज समझके) कर्तव्य हें ॥ ६ ॥ नियमित कर्तव्यकर्मोंका त्याग तामसीत्याग हे ॥ ७ ॥ कर्म दुःखद हें, इस विचारसे क्लेशके भयसे कर्तव्य–कर्मको छोडना राजसत्याग हे, यह त्याग त्यागके फलको नहीं पाता ॥ ८ ॥ अपना नियतकर्म अवश्य कर्तव्य हे, इस अभिप्रायसे आसक्ति ओर फलेच्छा रहित जो कर्म कियाजाता हे, वोह सात्वकीत्याग हे ॥ ९ ॥ देहधारी संपूर्ण कर्म छोडनेमें असमर्थ हे, इसलिये फलासक्तिरहित जो कर्म करता हे वही त्यागी कहाता हे ॥११॥ जो कर्म राग, द्वेष, आसक्ति ओर फलकी कामना छोडके किया जाता हे सो सात्विककर्म कहाता हे ॥२४॥ जो कर्म कामना, अहंकार ओर अति क्लेश पूर्वक कियाजाय सो राजसकर्म हे ॥ २४ ॥ जो कर्म परिणाम विचारे विना अर्थात शुभाशुभ, धन नाश, दूसरेकी पीडा, ओर अपना पुरुषार्थ न जानके अज्ञानसे कियाजाता हे सो तामसीकर्म कहा गया हे ॥ २५ ॥ स्वकामना ओर अहंकाररहित, धीरज–उत्साह युक्त ओर फलकी सिद्धि असिद्धिसे हर्ष शोकको अप्राप्त एसा जो कर्ता सो सात्विककर्ता हे ॥ २६ ॥ रागी, सकाम, हिंसक, अपवित्र ओर हर्ष शोक युक्त जो कर्ता सो राजस कहागया हे ॥ २७ ॥ अयोग्य, विवेकशून्य, स्तब्ध (मान्योंका सत्कार न करनेवाला), शठ, पराई जीविकाका छेदन करनेवाला, अनुद्यमी, विषादयुक्त ओर दीर्घसूत्री (एक दिनके कामकोभी महीनोंतक न करे), एसा जो कर्ता सो तामस कहाजाता हे ॥ २८ ॥ जिस बुद्धिसे मनुष्य धर्म (पूर्वोक्त सत्यादि) में प्रवृत्ति, अधर्म (पूर्वोक्त असत्यादि) से निवृत्ति, किस समय क्या करना योग्य हे ओर क्या करना अयोग्य हे, किससे भय करना किससे अभय रहना, बंध किसे कहते हें ओर मोक्ष किसे कहते हें, इन बातोंको जानता हे वोह सात्विक बुद्धि हे ॥ ३० ॥ जिस बुद्धिसे धर्माधर्मादि बातें ज्ञात नहीं होती वोह राजसी बुद्धि हे ॥ ३१ ॥ अज्ञानसे वेष्टित जो बुद्धि उसकरके मनुष्य, अधर्मको धर्म ओर हितको अनहित मानता हे, उस बुद्धिको तामसी कहते हें ॥ ३२ ॥

---

[1] यज्ञ शब्दके अनेक अर्थ हें. यहां सभा करना, उसमें निर्णय पाये हुये जो स्व पर-उपयोगी सद् कर्म एसा अर्थ करलेना ठीक होगा; क्योंकि यहां मान्य संग्रह हे. दानके वास्ते मनुप्रसंगकी नोट वांचो.

जो सुख, आरंभमें विषके तुल्य कटु, परंतु अंतमें अमृतसमान मिष्ट ओर स्व स्वरुप (आत्मा क्या) विचारवाली बुद्धिके प्रसादसे जो उत्पन्न हुवा सो सात्विक सुख कहलाता हे ॥ ३८ ॥ जो सुख विषय ओर इंद्रियोंके संयोगसे पेदा होता हे ओर आरंभमें अमृतके समान मीठा लगता हे, परंतु अंतमें विषके समान कडवा निवडता हे सो सुख राजसी कहागया हे ॥ ३८ ॥ जो सुख आरंभमें ओर अंतमें चित्तको मोहित करता हे, ओर निद्रा, आलस्य तथा प्रमादसे उत्पन्न होनेवाला हे वोह तामस सुख कहाता हे ॥ ३९ ॥ एसा कोई प्राणी, ब्रह्मांडमें नहीं हे कि प्रकृतिजन्य उक्त तीन गुणोंसे अलग हो. अर्थात हरेकमें उपरोक्त (अ. १७ अ. १८) गुणोंमेंसे कोई न कोई अवश्य होगा ॥ ४० ॥ परंतु सार यह हे कि उपरोक्त सत्वगुण संबंधी (अहारादि अ. १७ ओर त्यागादि याने त्याग-कर्म-कर्ता-बुद्धि-सुख) आदरणीय हें—सेवनीय हें ॥

मानवमंडलमें चार प्रकृति वा योग्यतावाले मनुष्य होते हें, यह कुदरती बात हे ॥ अ. १८ । ४१ ॥ उनके लक्षण कहते हें.—

शम (चित्तकी स्थिरता--मनपर काबू होना), दम (बाह्येंद्रियोंका निरोध उनपर काबु होना), तपश्चर्या, शौच (तन, मन, वाणिकी शुद्धि), क्षमा, आर्जव (सीधापन), ज्ञान, विज्ञान (यथाज्ञान वर्तन) ओर आस्तिकता (सत्यको सत्यही जान्ना मान्ना, असत्यको असत्य जान्ना मान्ना) यह ब्राह्मण (सीबिलियन प्रकृतिवाले) के स्वाभाविक कर्म हें. (यह उसकी टेवमें होजाते हें). ॥ ४२ ॥ शौर्य, साहस, धैर्य, निपुणता, प्राप्तयुद्धमें कायम रहना (पीठ न दिखाना), उदारता, ओर सामर्थ्य, यह क्षत्रीय (मिलटरी प्रकृतिवाले) के स्वाभाविक कर्म हें (यह उसकी टेवमें होजाते हें) ॥ ४३ ॥ खेती करना, गोकी रक्षा--पालन, वणिज करना (पदार्थ खरीद करना--वेचना--हुनर--कलाका उपयोग लेना इ.) यह वैश्य (मर्चंट प्रकृतिवाले) का स्वाभाविक कर्म हे (यह उसकी टेवमें होजाते हें)॥ ओर भली प्रकारसे दूसरोंकी सेवा करना यह शूद्र (सरवंट प्रकृति--योग्यतावाले) का स्वाभाविक कर्म हे (यह उसकी टेवमें होजाते हें) ॥ ४४ ॥ हरकोई मनुष्य (उमरपर आया हुवा पुरुष वा स्त्री) इन चारमेंसे कोई प्रकार--गुण कर्मवाला होगा. कोई कोई दो दो प्रकृतिवालेभी होजाते हें. ॥

उपरोक्त अपने अपने कर्म (योग्यता--प्रकृति) में तत्पर मनुष्य उत्तम सि-

द्धिको पाता हे[१] ॥ ४४ ॥ जिसकी योग्यता--टेव--प्रकृति अपने धर्ममें नहीं, एसे परधर्म पालने, परकर्म करने जावें तो भय--हानी हो, यह स्पष्टही हे ॥

सर्व प्रकार (भाव) से अंतर्यामी ईश्वरके शरण हो, उसकी कृपासे परम शांति ओर अच्युत पदको प्राप्त होगा ॥ अ. १८ । ६२ ॥

परमार्थ सिद्धि.

अत्यंत शुद्ध बुद्धि करके युक्त, धैर्य द्वारा निजमनको रोके, शब्दादि पंच विषयोंको छोड, राग--द्वेषका त्याग कर, एकांत देश ले, लघुभोजी हो, शरीर-वाणी ओर मनको अपने वश कर, ध्यान (अदृष्ट आत्मस्वरुप चिंतन) तथा योग याने चिंतनमें निरुद्ध संस्कारवाले चितकी तदाकारता इन दोनोंमें तत्पर, विषयोंसे सर्वदा वैराग्यको प्राप्त, अहंकार--दुराग्रह--दर्प--काम--क्रोध ओर उपभोग सामग्रीको छोड, ममताको त्याग करनेवाला, शांत--एसा जो अभ्यासी सो [२]इष्टभावकी प्राप्तिके योग्य होजाता हे ॥ अ. १८ । ५१ । ५३ ॥

जो कामनारहित स्वस्वरुपमें संतुष्ट, आत्माराम हो; जो दुःखोंमें उद्विग्नको नहीं पाता, सुखोंमें आसक्त नहीं होता; जो प्रीति, भय, क्रोध रहित हे; जो सर्वत्र स्नेह रहित, अनुकूलमें आनंदित-प्रतिकूलमें शोकातुर नहीं होता; जिसने सब इंद्रियोंको विषयोंसें रोका हे, स्वाधीन करलिया हे; सो स्थित प्रज्ञ कहाता हे ॥ अ. २ । ५५ से ७१ तकका सार ॥

---

[१] शरीर, कुटंब ओर व्यवहारका पालन, इन चार प्रकारमेंही हे. यथा-सिबलियन प्रकृतिवालेको विद्या पढने पढाने, नवीन शोध करने करानेके बदलेमें निर्वाह होता हे. मिलटरी (राजस) प्रकृतिवालेको प्रजाकी रक्षा करनेके बदलेमें निर्वाह होता हे. वैश्य प्रकृतिवालेको पदार्थ उत्पन्न करने ओर इधर उधरके इधर उधरकी प्रजाको लादेनेके बदलेमें गुजरान होता हे ओर सरवंट--शूद्र प्रकृतिवालोंकी आजीवका सेवाके बदलेमें चलती हे.

पारमार्थिक सिद्धिभी इन चारोंको साक्षात वा परंपरासे हो जासकती हे, जबके उनका प्रयत्न हो तो. जेसे के पूर्वमें भील, चांडाल, जुलाहे, अज्ञात कुल, वैश्य, दासीपुत्र, क्षत्रीय ओर ब्राह्मणोंको हुई हे.

[२]यहां आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मभाव, ईश्वरका साक्षात, पराभक्ति, क्षणिकत्व, सौर्य इत्यादि जो भाव लेना हो सो लेसकते हें; क्योंकि इसप्रकारके साधन द्वारा जो जैसा होगा वोह जान पडता हे; अतः किसी पक्षकारकी दृष्टिका अर्थ न लेना चाहिये.

(शं.) जिस पक्षमें ईश्वरका ग्रहण नहीं उस पक्षमें यह संग्रह अनुकूल नहीं होगा. (उ.) अ. १८। ६३वां श्लोक निकालडालिये; हमको आग्रह नहीं हे. यहां तो नमूनामात्र जनाना हे ॥

(नोट) गीताका मुख्य सार यह हे कि आत्मज्ञानी हो वा गृहस्थ हो—सबको आसक्तिरहित निष्कामकर्म (कर्मयोग) करना चाहिये. अर्थात कर्तव्य समझके उत्तमकर्म किये जावे; फलमें आसक्त वा मोह वा चिंता न करे.

वेदांतपक्ष.

कर्मसिद्धि—अर्थात मनमें दूसरेके बुरा चितवनेकीभी भावना न फुरे, सच्चे अच्छे आचार–उच्चार ओर विचार होना. **उपासनासिद्धि**—चितपर इतना काबू होजाना कि जब इच्छे तब किसीके आकार ठेरालेना अथवा कुछ देरके वास्ते संकल्प रहित ठेरजाना. **विवेक**—सदसद्का विचार करना. **वैराग्य**—विवेकसे जो हानीकारक–असद् जाना गया उससे अरुची होना. उसका त्याग करना. **शम**—मनको काबूमें रखना. **दम**—इंद्रियका निग्रह–स्वाधीन होना. **उपरति**—त्याज्य–हानीकारक वस्तु प्राप्त ही तोभी उसका ग्रहण न होना याने मन इंद्रिय उसपर न चले. **तितिक्षा**—सरदी गरमी, दुःख सुख, मान अपमानका सहन होना याने सहनशील स्वभाव होजाना. **श्रद्धा**—सर्वमान्य--सर्वतंत्रवाले विषयोंमें वा वेसे बोधकग्रंथोंमें ओर समदर्शी योग्यपुरुषोंमें (गुरुजनोंमें) श्रद्धाभाव होना. **समाधान**----जब उपरोक्त बाबतमें कोई कुतर्क स्फुरे तो उसका समाधान होजाना ॥ इस साधनसंपत्तिसे व्यावहारिकसुख मिलते हुयेभी मुमुक्षुता प्राप्त होके परमार्थ प्राप्तिका अधिकारी बनजाता हे ॥

पारसी धर्म.

जो जानके वीर्य नष्ट करता हे, उसका (जानीका) प्रायश्चित नहीं हे वोह अपवित्र हे (परस्त्री संग निषेध) ॥ वंदीदाद प्रगर्द ८ ॥ जो गुनाहका पश्चाताप नहीं करता वोह नहीं सुधरता. ॥ प्र. ८ ॥ सच्चा बोलनेवाला, सचाईपर चलनेवाला, सीधा रहनेवाला, दातार (उदारात्मा), सबमें समानद्रष्टि रखनेवाला, आग ओर पानीको न बिगाडनेवाला, प्राणिओंको ईजा न देनेवाला, एसा आदमी भूमीपर उत्तम मनुष्य हे. ॥ जरतोश्तरहबरमेंसे जरतोश्तको जो उपदेश हुवा सो.

बुद्ध.

बुद्ध देवके सर्वमान्य उपदेश प्रसिद्ध हें. उक्त पंचमहाव्रतको मान देता हे.

संयम, भ्रातृभाव, समदृष्टि, सचाई, नेकी, लोकोपयोगी हितकारी बातोंका प्रचार चाहता हे.

कितनाक उपदेश **कल्याणधर्म** ग्रंथमेंसे लिखते हें. यह ग्रंथ अमेरीकाके डाकटर पालफारवस साहबने ईंग्रेजीमें लिखा हे. उसका तरजुमा उरदुमें डाकटर शिवव्रतलाल वर्माने प्रसिद्ध किया हे.

मन वचन कर्मसे एसा काम मत करो जो सचाईके विरुद्ध हो. चित्तमें नेकीका प्रसार हो एसे कर्म करो. अभिमान, जिना, बदनीति, फरेब मत करो. विद्या, प्रेम, उदारता ओर सचाईको संपादन करो!! कल्यानधर्म पेज १६७।१६८॥

जो बोता हे वोह काटेगा (यथाकर्म फल होता हे) " पेज ४८। १०४॥ तृष्णा, ईर्ष्या ओर अभिमान छोडनेसे आनंद होजाता हे ॥६०॥ तृष्णावाले ओर तिरस्कार (द्वेष) दृष्टिवालेको सचाइ नहीं मिलती॥ ६१ ॥ क्रोध, शराबका सेवन, हठ, धर्मद्वेष, फरेब, ईर्ष्या, आत्मश्लाघा, दूसरोंको हलका जान्ना, मिथ्याअभिमान, ओर बदनीयती यह अशुद्ध हें—अपवित्र हें—त्याज्य हें ॥ ६५ ॥ जीवनकी जरुरतें पूरी करना ओर शरीरको आरोग्य रखना चाहिये, नहीं तो हम कुछभी नहीं करसकते. अर्थात ज्ञान ओर चित्तकी शुद्धि प्राप्त न होगी ॥६६॥ भ्रम कुमार्गमें लेजाता हे ओर दुःखमें डालता हे ॥६८॥ जनमंडलका भला हो एसा उपदेश करो, अज्ञमंडल दयापात्र हे ॥७६॥ जिसने अहंत्व समझ लिया उसमें खुदी ओर कामना नहीं रहती ॥८३॥ आपस्वार्थपना छोड दो ॥८३॥

पाप न करना, मन--वचन कर्मसे पवित्र रहना, ओर मनको शुद्ध रखना यही सब बुद्धोंका धर्म हे ॥ ८४ ॥ संसार अस्थिर ओर चंचल हे, दुःखका कारण हे; इसलिये मनको एक तरफी करके स्थिर रखो ॥ ८९ ॥ जीवन, धन ओर अपनी सामर्थमें आसक्ति मत करो ओर अपने कामोंमें रहके काम किये जाओ. आलस्य खराब हे. उंचे (उच्च) इरादे रखो. त्यागी हो वा गृहस्थ, परंतु अपनी डयूटी बजाता रहे ॥ ९२ ॥ दान देना भविष्यमें फलप्रद हे, गरीबोंको मदद देके आनंद मिलता हे, यही मोक्ष हे ॥ भलाई, दया ओर उदारतासे पूर्णता प्राप्त होती हे ॥ ९४ ॥

राजा तुम प्रजाको एकले पुत्र (इकलोता पुत्र) समान पालो, उसको दुःख मत दो. तन मन काबूमें रखो. सचाईपर चलो. दूसरोंको पायमाल करनेमें बडाई मत मानो; किंतु दुःखियाओंको मदद दो. शांति दो, खुशामदियोंकी चिकनी चु-

पडी बातोंको मत सुनो ॥ १०४ ॥ सच्चे अच्छे–आचार विचार रखके प्रतिष्ठित बनो, दुनियाकी खामखयालीपर ध्यान दिया करो. मनको बढाओ, राज्यनीति मत तोडो " ॥ १०७ ॥

बूढिको माता, युवाको बहन ओर बालक स्त्रीको पुत्रीवत खयाल करो. कामदेवसे डरते रहना ॥ ११२ ॥ तिरस्कार दृष्टि, तिरस्कासे नहीं जाती किंतु अतिरस्कार करनेसे जाती हे. विद्वानको संपसे रहना चाहिये, कुसंप पेदा न करो. नेक चलन–विद्वानका संग करो. मूर्ख, आपस्वार्थी, अभिमानी, झगडालु ओर दुराग्रहीके संगसे अकेला रहना अच्छा हे ॥ १२२ ॥ बाहिर ओर भीतर एक जेसे रहो ॥ १२५ ॥

नेकोंका संग करना, धर्म--कर्तव्य सुन्ना, विचार पूर्वक ज्ञान संपादन करना, सदाचरण करना; यह चार बातें आरंभमें करने योग्य हैं. जीवन निकम्मा न गुमाना. चोरी, जिना, झूठ, नशा, शृंगार, फेशन (बनावट) ओर कुसमय भोजन न करना. अनुचित भोजनसे परहेज करना. साधु हो तो उसे द्रव्यसे अलग रहना. ॥२४१॥

सचाई यही धर्म हे. संतोषी बलवान हे. बुद्धिमान वोह हे कि जिसने अपने जीवनकी प्रकृति ओर गुण जानलिये हों, आप स्वार्थी नहीं हे ओर सदाचरणी हे. पंच महाव्रत पालो. ॥१४४॥ खून, चोरी ओर जिना (स्वपत्निसे इतर अन्यका संग) यह ३ शारीरिक; झूट बोलना, निंदा करना, गाली देना, व्यर्थ बकना यह वाणीके; ईर्ष्या, द्वेष, तिरस्कार ओर भ्रम यह ३ मानसिक पाप हैं; सो मत करो. दूसरेके गुण लो. कसम मत खाओ. समयको निकम्मा मत खोओ; मतलबकी बात कहो या चुप रहो. सत्, हित ओर प्रिय बोलो. सबके साथ प्यार ओर उदारताके साथ मिलते रहो. विद्या सीखो. ॥ १४६ ॥

कुलीन, विद्वान, सहेनशील, संतोषी, उदार, सब संसारकी साथ प्यार रखनेवाला, ओर सदाचारी–एसा उपदेशक होना चाहिये. उपदेशकमें मानसिक बल होना चाहिये. जो कहे सो पाले. अभिमानी ओर आत्मश्लाघी न हो. कुसंगी न हो. सबके साथ प्रेमसे वर्ते. दूसरोंकी निंदा न करे. ईर्ष्यालु न हो. कठोर बचन न बोले. साफ शुद्ध वस्त्र पहने. मनमें किसीपर तोहमत न रखे. तमाम दुनिया सुलह संपमें वर्ते एसा खयाल होना चाहिये. झगडे ओर विवाद न करे. किसीके साथ दुशमनी न हो. सब मेरे जेसे (बुद्ध) बनजायँ, एसा भाव हो. नाउमेद न हो. एसे उपदेशकका सत्कार करना चाहिये. ॥ १४७ ॥

जो अपनेको बुद्धिमान जानता हे वोह बेवकूफ हे. जो अपनी बेवकूफीको जानता हे, वोह इतनातो बुद्धिमान हे. ॥ १५४ ॥ इष्ट, अनिष्ट ओर सुख दुःखकी दृष्टि न रखके वर्ते तो हर्ष शोकभी न होगा. ॥ १५५ ॥

परके दोष जान्ना सहेल हे, अपने दोष जान्ना मुशकिल हे ओर जो जानता हे तो छिपाता हे, एसा होनेसे आदमी नहीं बनता. सत्, अक्रोध ओर दान इन तीनसे आदमी, देवता बनजाता हे ॥ १५६ ॥ बुद्धिमानको गाममें रहना चाहिये, तो उसकी सफलता हे. सत्य बात एक होती हे, नाना रुपवाली नहीं होती ॥ १५८ ॥ तप, हठ ओर अतिविद्यासे नित्यानंद नहीं मिलता परंतु कामना-वासना रहित होनेसे मिलता हे. जो हमको तिरस्कार दृष्टिसे देखते हें, हम उनकोभी तिरस्कार दृष्टिसे न देखें ॥ १५८ ॥

जिना, बदनीयती, फरेबके लिये में ना कहता हूं. विद्या, प्रेम, उदारता ओर सचाईका उपदेश करता हूं ॥ १६८ ॥ जो दंड देनेकापात्र हो उसे दंड देनाचाहिये ॥ १७१ ॥ अज्ञान यह दुनियाकी बरबादीका कारण हे ॥ १९२ ॥

प्रेमध्यान----शत्रु, मित्र, संबंधी, असंबंधि, दुष्ट, सज्जनको अर्थात तमाम संसारको सुख मिले ओर उसकी उन्नति हो एसी इच्छा रहना. **दयाध्यान**----सबको दुःखी जानके उनपर दयाभाव पेदा करना. **आनंदध्यान**----सबको सुखी होनेका खयाल करो ओर उनकी खुशीमें खुशी मनावो. **अशुद्धध्यान**----मेल, पाप ओर रोगका विचार करो. क्षणके आनंदके वास्ते नाशक बेमारी होजाती हें. **शांतिध्यान**----राग द्वेष, अन्याय, श्रीमंती ओर कंगलातासे उपेक्षा रखो. तुमसे किसीको उद्वेग न हो अर्थात सब प्रकार संतोष रहे, एसे वर्तो ॥ २०० ॥ तप, रीत-रिवाज ओर रुढीके ताबे न होके जीवआत्माकाभी खयाल छोडके सचाई पर रहो ॥ २०१ ॥

कीमती स्वादिष्ट भोजन, ज्यादे सोना, मोजशौककी ज्यादे तृष्णा ओर निकम्मा रहना, यह रोगके घर हें. कसरत करते रहो, सनियम योग्यभोजन खावो तो रोग जाता रहेगा ॥ २१६ ॥

बदकारको हानी–(१) नेकी नहीं लेसकता, आलसी ओर निर्धन होजाता हे. (२) सब तरफ बदनाम होजाता हे, उसके व्यवहारमें खामी रहती हे. (३) परेशां ओर लज्जित रहता हे, कहींभी जाय उसके साथ प्रत्यवाय होता हे, इसलिये उसे संगका लाभ नहीं मिलता. (४) मरने समय चिंता होगी. (५) अ-

रीर नाश पीछे मनमें बेचेनी रहेगी, जहां कहीं उसका कर्म--संस्कार रहेगा वहांही बेचेनी रहेगी. (यहां प्रकृतिवाद--विकासवाद जेसा पुनर्जन्म हे. नहींके कोई जीव गया) ॥ २४८ ॥

सचाई--सदाचारीके ५ लाभ. (१) पुरुषार्थसे वित्त पैदा करसके. (२) प्रसिद्ध प्रतिष्ठा. (३) सब उत्तम--संगतोंमें जासकता हे. (४) मरने समय चिंता नहीं. (५) शरीर बिगडने पीछे मन आनंदमें रहता हे, जहां उसके कर्म-संस्कार वहांही आसमानी खुशी ओर आनंद रहता हे ॥ क. पेज २४९ ॥

—(०)—

बुद्धदेवने जेसा सर्वमान्य उपदेश किया हे, वोह ओर उससे अधिकभी प्राचीन ग्रंथोंमें पाते हें, परंतु वे खुदनफसी, स्वार्थ ओर नानाधर्म होजानेसे लुप्त पर्याय होगये थे. ओर वे सब शब्दप्रमाण, ब्रह्मजाल, ईश्वरकी लाग ओर जीवकी कायमीके साथ लगे हुये थे, इसलिये वे उपदेश यथायोग्य रोनक नहीं पासकते थे.

बुद्धदेवने उनकी परवाह न करके स्वतंत्र उन उपदेशोंको प्रचार किया. फक्त सचाई, नेकी, प्रेम, साम्यभाव, ओर लोक लाभपर दृष्टि रखके वैराग्य, संयम, नीति, उच्च कैरकटरपर ध्यान दिलाया हे. यहां उसके पारमार्थिक सिद्धांत केसे ओर क्या यह नहीं देखना हे; किंतु लोकहित ओर अपना हित देखना हे. सो उच्च संस्कारोंद्वारा होसकता हे. यह संस्कारही नित्यजीवन--निर्वाण हे, एसा आशय हे ॥

जैन.

अहितकारक बचनसे वाणी और शरीरको रोकना. किसी प्राणीको दुःख हो, एसे कर्म न करना. मधुर, बुद्धियुक्त, लघु, थोडा, अभिमान रहित, जरुरतपर, अतुच्छ, पूर्वापर संबंध विचारसे ओर धर्म संयुक्त वाक्य बोलना. राग द्वेष न करना, पाप कर्म न करना. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य ओर अपरिग्रह यह पांच महाव्रत पालना (इनका अर्थ पतंजलि उपदेशमें किया हे) ॥ ठठा मसखरी, कटाक्ष, भय ओर क्रोधको त्यागना, विनयके साथ बोलना. ४ मैत्रिय पालना (इनका अर्थ पहले लिखा गया हे). साध्य प्राप्त पुरुषोंके गुणोंका कीर्तन, स्मरण, महान पुरुषोंको वंदना करना. जाने अजाने हुये दोषोंका पश्चाताप ओर फेर वेसे न करनेकी प्रतिज्ञा करना, एसे नित्य, १५ दिनमें ओर दर महीने करना. सबमें साम्यभाव रखना, सबसे क्षमा मांगनेकी भावना करना. हर कोई प्रकारके अतिथि वा मह-

मानकी सेवा करना. फलकी इच्छा विना निष्काम कर्म करना (संथारा). दुःखोत्पत्तिका विचार करना. एक पत्निव्रत रखना. एक पतिव्रत रखना. संतानको विद्या ओर शिक्षण देना. समाजकी उन्नति वास्ते तन मन धनसे सेवा करना. (भाव–आवश्यकर्मेंसे) ॥ [१]

अनुकंपादान करना अर्थात अनाथ-दीन-दुःखी मनुष्यादि प्राणियोंको (चाहे वोह कोई जाति धर्मवाला हो) दयाभावसे अन्नवस्त्रादि देना ओर उनकी योग्य सेवा करनी ॥ जैनाचार्य श्री हरिभद्रसूरी अ. ३ सू. ६१. धर्मबिंदु ग्रंथ ॥ धर्मबिंदु. अ. २ । सू. १ वगेरेमें लिखा हे-- दुखी प्राणियोंपर दया, विद्वानोंके साथ प्रेम, साम्यभावसे उचित व्यवहारका आचरण, यह ३ धर्मके मुख्य बीज हें ॥ मध्यस्थ ग्रंथमाला पेज ८६ ॥

अन्यधर्मका भिक्षुक आवे तो उसकाभी सत्कार करना, एवं अन्य योग्य माननीय–पुरुष आवे तो उसका सत्कार करना. दान देना. अशक्त इंद्रियहीन भिक्षुकों (मांगनेवालों)कोभी यथाशक्ति देवे. किसीको निराश न जाने देवे. कठोर हृदय न बने. जैनाचार्य विजयानंदसूरि जो पंडित आत्मारामजी मशहूर हुये हें, उनके बनाये हुये जैनतत्वादर्शके पृ. ४५७ । ५८ जैन शास्त्रानुसार लेख हे.

मार्गानुसारी ३५ गुण—

(१) न्यायसे धन संचय. (२) शिष्टाचार. (३) समान कुलाचारके साथ विवाह. (४) पाप करनेसे भय. (५) प्रसिद्ध देशाचार अनुसार वर्तन. (६) निंदा न करना. (७) शुभस्थाननिवास. (८) सदाचारीका संग. (९) माता पिता गुरुकी सेवा, भक्ति. (१०) उपद्रववाले स्थानका त्याग. (११) निंदित कर्ममें अप्रवृत्ति. (१२) उपजसे ज्यादे खर्च न करना. (१३) शक्तिसे उपरांत वेश न करना. (१४) बुद्धि वृद्धि अर्थात ८ गुण धारण करना. (१५) (सर्वमान्य) धर्म नीतिका श्रवण. (१६) अजीर्ण हो तो न खाना. (१७) यथाप्रकृति भोजन करना. (१८) जिसमें बंधन न हो एसे प्रकार धर्म, अर्थ, ओर कामको साधना. (१९) अतिथि, उत्तमसाधु ओर दीनोंकी सेवा करना. (२०) दुराग्रह न करना. (२१) गुणानुरागी होना. (२२) अयोग्य देशका-

[१] जैन धर्मका लक्ष्य केवल मोक्षही हे; इसलिये, व्यवहारवाले धर्म नीतिका उपदेश इसमें थोडा हे.

लमें फिरना नहीं. (२३) अपना बलाबल विचारके काम करना. (२४) व्रतधारी ओर ज्ञानवृद्ध पुरुषोंकी सेवा करना. (२५) पोषण करने योग्य (माता–पिता, स्त्री, पुत्र वगेरे)का पोषण करना. (२६) दीर्घ दृष्टि होना. (२७) विवेक अर्थात सत्यासत्यको जान्ना. (२८) कृतज्ञता याने किये हुये गुणका उपकार मानना ओर न भूलना. (२९) एसा वर्तन रखना कि जिससे किसीको उद्वेग न हो ओर प्रिय हो. (३०) लोक शास्त्रकी लज्जा. (३१) दयालु रहना. (३२) सौम्य दृष्टि रखना. (३३) परोपकार करना. (३४) कामादि ६ [१]अरिवर्गका त्याग. (३५) इंद्रियोंको स्वाधीन रखना.

सम्यक्‌दर्शनके ५ लक्षण—(१) सम (सर्वपर साम्यभाव). (२) संवेग (निष्कामता). (३) निर्वेद्य (संसारमें अनासक्ति). (४) अनुकंपा (पक्षपात रहित दुःखी प्राणियोंके दुःख दूर करनेकी इच्छा). (५) आस्तिकता (सद्‌गुरु, सद्‌शास्त्र सदाचरणमें श्रद्धा).

बायबलगत तोरेत (सन १९०३ लाहोरमें छपा).

तूं अपने मातापिताका सत्कार कर । खून, जिना (परस्त्रीगमन), ओर चोरी मत कर । तूं अपने पडोसीपर झूंठी गवाही मत दे । तूं अपने पडोसीके धन (घर, स्त्री, दास, बेल, गधा वा हर कोई चीज) का लालच मत कर ॥ खरुज. बाब २० आयत १२ से १७ तक ॥ तूं मुसाफरको मत सता, किसी विधवा ओर यतीम (अनाथ बालक) को दुःख मत दो. कर्ज दे तो व्याज मत ले.[१] हाकिमोंको बद दुआ मत दे. अपने कोमके सरदारको लानत मत कर.[२] ॥ ख. बाब २२ ॥ झूठी खबर मत उडा. शरीरों (लुच्चों) का साथी मत हो. बुराई करनेमें मददगार मत हो, अन्याय नहीं करना. शत्रुका मालभी बेराह हो तो उसके पास पहोंचा देना. झूटे मामलोंसे दूर रहना. अनपराधि ओर सच्चेको कतल न करना. ॥ ख. बा. २३ ॥

इगलाम ओर पशुसंग न करना ॥ अहबार बा. १८ आ. २२ ॥ झूट मत बोलो, झूठी कसम मत खाओ, पडोसीके साथ दगाबाजी मत कर, उसका जबर-

---

[१] काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद ओर मात्सर्य (ईर्षा) यह ६.

[१] तूं अजनबी (अजानको) व्याजु कर्ज देसकता हे; परंतु अपने भाईको सूदी कर्ज न देना. ॥ इस्तसना बा. २३ आ. २० ॥ गरीबोंसे व्याज लेना सब धर्मवाले नापसंद करते हें. [२] पक्ष हे.

दस्तीसे कुछ मत छीन, मजदूरकी मजदूरी तुर्त देदे, इनसाफ कर, भाईके साथ कीना—द्वेष मत कर. अपने भाईको अपने समान जानके उसे प्यार कर. मुसाफरके साथ अपने समान प्यार कर ॥ अहबार बा. २९ ॥

जो तुम्हारा भाई गरीब निर्धन होजावे, तो तुम उसको मदद दो, वोह भाई अजान हो वा मुसाफर हो, परंतु उससे बदला इच्छे विना उसकी सहायता करो ॥ अ. बा. २५ आ. ३५ ॥

जो अपने माबापको तुच्छ दृष्टिसे देखे, उसपर लानत (धिक्कार) देना. इस्तसना बा. २७ आ. १६ ॥ जो परदेशी, वा यतीम वा विधवाके मुकदमेको बिगाडे उसपर लानत ॥ आ. १९ ॥

सुलेमानकी अमसाल.

अपने बापकी पालनाको याद कर. माताकी आज्ञाको मत छोड. ॥अम. बा. १ आ. ८॥ अपराधियोंका संग मत कर ॥आ. १०॥ बुद्धिमान बन. ईश्वरका भय रख; तो तुं सचाई, न्याय, नेकीको समझेगा ॥ बा. २ आ. २ से ९ ॥ भले ओर सच्चे लोगोंके मार्ग पर चल ॥ आ. २० ॥ ईश्वरका विश्वास रख. बुद्धिका अभिमान मत कर. ॥ बा. ३ । आ. ५ । ६ ॥ उपकारके जो योग्य उसपर उपकार कर. व्यर्थ झगडा मत कर. दुष्टपर ईर्षा या उससे दुशमनी मत कर ओर उसके चालचलनको पसंद मत कर. बुद्धिमान ओर सच्चोंको बरकत होती हे. शरीरोंपर लानत ओर मूर्खों (शठों) पर शरमिंदगी ॥ आ. २७ से ३५ तक ॥

मिथ्याअभिमान, असत् बोलना, निरपराधिका खून, बुरी नीयत करना, बुराई करना, झूठी गवाही देना, भाइओंमें झगडे पेदा कराना; इन सात बातोंसे ईश्वर नाराज होता हे ॥ बा. ६ आ. १६ । १९ ॥ परस्त्रीगमन ओर चोरी मत कर. यह महान पाप हे ॥ २९ से ३५ ॥

बुराई, मिथ्याअभिमान, कुमार्ग ओर कटु वाणीके साथ कीना (द्वेष) रख. बुद्धि यह, धन ओर आबरुसे ज्यादा कीमती हे, क्योंकि यह दोनों अकलमंदीके साथ होती हैं. ॥ बा. ८ । आ. १० ॥

कपटसे ईश्वरको अरुची हे. गरुर करनेसे रुसवाई होती हे. दानाई नम्रोंके साथ होती हे. सीधोंकी सच्चाई उनको भूलने नहीं देती. लुच्चा पकडा जाता हे. बुद्धिहीन, पडोसीको खराब कराता हे, बुद्धिमान चुप होजाता हे. जहां मसलहत

(स्थितिदर्शन-निपुणता) नहीं, वहां खराबी होती हे. परंतु बुद्धिमान मंडलसे सलामती होती हे. अजानका जामिन न होना, नहीं तो टोटा होगा. दया करना, यह अपने साथ भलाई करना हे. सच्चा नेकी चाहता हे, ओर लुच्चेकी आशा गजबमें होती हे. हानी चाहनेवालेको हानी आगे आवेगी॥ बा. ११ मेंसे॥

जो अदब (सभ्यता) का मित्र हे वोह मुख्य ज्ञानका मित्र हे. जो कोई शिक्षणका शत्रु हे वोह पशु हे. बुद्धिमान अपने इल्म (ज्ञान) को छिपाता हे, मूर्खजन अपनी मूर्खाइकी डोंडी पीटते हें, चालाक आदमीका हाथ हुकम चलावेगा, परंतु सुस्त-आलसी आदमीको कर भरना होगा ॥ बा. १२ में ॥ आलसी आदमी बहुत कुछ चाहता हे, परंतु उसको कुछ नहीं मिलता. परंतु चालाकोंका मन मोटा होगा ॥ बा. १४ आ. ४ ॥ जिन इरादोंमें मसलहत (विचार, योग्यता) नहीं वे विकल्पमात्र हें; परंतु वे बहुतसे बुद्धिमानों द्वार कयाम पाते हें. जो तृष्णा मालसे घर भरता हे वोह अपने कुटंबको दूःख देता हे, जो रिशवत लेनेसे अरुची रखता हे वोह सुखसे जियेगा. ॥ बा. १५ ॥ तेरे सब काम ईश्वरपर डाल दे, तो तेरे तमाम इरादे ठीक रहेंगे. आडा चलनेवाला आदमी झगडे उठाता हे, कानाफूसी करनेवाला मित्रोंको फाड देता हे. जालिम आदमी पडोसीको बहकाता हे. ॥ बा. १६ ॥ जो गरीब सचाईमें सीधा चलता हे, वोह वाणीमें टेढे बोलनेवाले ओर मूर्खसे अच्छा हे ॥ बा. १९ आ. १ ॥ आदमीकी आबरु उसीमें हे कि कजिये न करे-झगडोंसे अलग रहे. बुद्धिहीन छेडछाड किया करता हे. एसा कोई नहीं कहसकता कि में पाप (गुनाह) रहित हूं. हरेक काम मसलहत (सलाह-संप-योग्यता) से ठीक होता हे. लडाई सलाह (संमति) लेके करना. चुगलखोर (निंदक) के संगसे अलग रह ॥ बा. २० में ॥ अमाप खजानेसे ज्यादा नेकनामको तथा रुपे ओर सोनेसे ज्यादा परउपकारको पसंद करना चाहिये. पूर्वजोंकी बांधी हुई हद (मर्यादा-नियम) मत तोड ॥ बा. २२ में ॥ शराबी ओर व्यभीचारीकी सोहबतसे अलग रह; क्योंकि वे कंगाल होजानेवाले हें ॥ बा. २३ । आ. २१ ॥

बुरे आदमियोंके साथ शत्रुता मत बांध, ओर उनका संगभी मत कर; क्योंकि मनमें वे घात विचारते हें ओर मूंहसे बातें बनाते हें ॥ बा. २४ । आ. १ ॥ जो खोदता हे वही उसमें गिरेगा ॥ बा. २६ आ. २७ ॥ एसा होने दे के दूसरे तेरी प्रशंसा करें. तुं आप अपनी, प्रशंसा मत कर ॥ बा. २७ आ. २ । ३ ॥

न्यायकारी बादशाह अपनी बादशाहतको मजबूती-स्थिरता देता हे। क्रोधि मनुष्य झगडे पेदा करता हे, ओर क्रोधमें आया हुवा बहोत पाप करता हे ॥ बा. २९ में ॥ में झूट बोलनेवाला न होवुं, ओर न कंगाल ओर न श्रीमंत होवुं, यह इच्छता हूं ॥ बा. ३० आ. ७ ॥

बायबल गत इंजील. (सन. १९०६ लाहोरमें उरदुमें छपा).

खून मत करो, किंतु अपने भाईपर जो क्रोध करेगा, वोहभी न्यायकी कचहरीमें (ईश्वरके दरबारमें) शिक्षापात्र गिना जायगा ॥ मति बा. ५ । आ २१ ॥ जिना मत करो किंतु जो परस्त्रिको कुदृष्टिसे देखेगा तो वोह जिना करचुका (पापी हो गया) ॥ आ. २९ ॥ कसम न खाना ॥ आ. ३४ ॥ शरीर (लुच्चे) का मुकाबला न करना. किंतु जो कोई तेरे दाहने गालपर तमाचा मारे तो दूसराभी उसकी तरफ कर दे ॥ आ. ३९ ॥ अपने दुशमनोंसेभी प्यार रखो, ओर अपने सतानेवालेके लियेभी दुआ (भली आसीस) मांगो ॥ आ. ४४ ॥ गुप्तदान किया करो ॥ बा ६ । आ. ३ ॥ एबजोई (छिद्र गोतना) मत करो ॥ ॥ बा. ७ । आ, १ ॥ ढूंढोगे तो पाओगे ॥ आ. ८ ॥ जो तेरा भाई तेरा गुनाह करे तो खानगी रीतिसे फेसला कर; नहीं तो कलीसासे कह. कलीसाकी भी न सुने तो उसे गेरकोमका मान ॥बा. १८॥आ. १५।१६। १७॥ यदि तेराभाई तेरा गुनाह करता रहे तो तुं सातके सत्तर ७० गुनाह तक उसको माफ कर (याने माफही कर) ॥ आ. २२ ॥ खून, चोरी, जिना, झूटी गवाही-इनसे बचना. मा, बापकी इज्जत कर. पडोसीके साथ अपने समान प्यार कर ॥ बा. १९ आ. १९ । २० ॥ सचाइपर चलनेवाले हमेशेका जीवन (मोक्ष) पावेंगे ॥ बा. २५ आ. ४६ ॥

पडोसी वोह हे कि जो रहम (दया, मदद) करे ॥ लूका बा. १० । आ. ३७ ॥ जियाफत (जीमनार) में लंगडे, लूले, अंधों ओर गरीबोंको बुला; तो तुझको बरकत होगी. (गरीब अपाहजियोंकी रक्षा कर) ॥ बा. १४।आ. १२॥ जो गुनाहसे तोबः करे उसे माफ कर ॥ बा. १७ । आ. ४ ॥

कुरान (दिल्लीमें तरजुमे सहित-छपा).

मातापिताकी आज्ञा पालना, उनका मान सत्कार करना ॥ सूरत १७ ॥ किसीका खून न करना ॥सू. १७॥ परस्त्रीसंग वर्जित हे ॥ सू. १७ ॥ झूटी गवाही न देना वा झूटा न बोलना॥ सू. २४॥ निंदा-पीठ पीछे बुराई न करना, हलकाईसे न बोलना ॥ सू. ४९ ॥ रिशवत लेना देना नहीं ॥ सू. २ ॥ अदेखाई-ईर्षा

न करना ॥ सू. ४ ॥ यतीमोंको पालना, उनका हक न खोना--नष्ट न करना. ॥ सू. ४ ॥ करजदारपर दया करना ॥ सू. २ ॥ कम न तोलना, पूरा तोलना ॥ सू. ७ ॥ संतोष-धीरजका फल मीठा हे ॥ सू. ३ ॥ व्यर्थ खर्च न करना ओर कृपण न होना ॥ सू. १७ ॥ अजाने पाप होगया हो तो पश्चाताप करके तोबाः (फेर न करूंगा एसी प्रतिज्ञा) करना ॥ सू. ४ ॥ कीना (गुप्त शत्रुता-द्वेष) का वैर लेना न चाहिये याने द्वैषका त्याग करो ॥ कोईको गाली मत दो, किसीका अपमान मत करो--किसीको तिरस्कारसे मत देखो ॥ सू. ४२ ॥ सच बोलना, की हुई प्रतिज्ञा पालना ॥ सू. १७ ॥ आपघात न करना ॥ सू. ४ ॥ आज्ञा लिये विना दूसरेके मकानमें न जाना ॥ सू. २४ ॥ शराब--नशा करना नहीं. जूवा खेलना नहीं. व्याज लेना नहीं अथवा भारी व्याज लेना नहीं (पेज ६१।६५)॥ एक परमेश्वरके सिवाय दूसरा कोई उपास्य नहीं हे ॥

शत्रुके साथ उपेक्षा वा उसपर अहसान कर, मित्रोंपर महेरबानी ओर उनके साथ प्यार कर ॥ यथेच्छा वर्त परंतु कपट मत कर ॥ हाफिज ॥

दान कर, उदार हो, सबका सत्कार कर, नेकी कर, कृपण मत बन, यथेच्छा वर्त, परंतु कोईको दुःख मत दे ॥ सादी ॥ तूं भला हे तो बुरा हो नहीं सकता अे जौक; है बुरा वोही कि जो तुझको बुरा जानता हे ॥

ईश्वर संबंधि संग्रह,

बौद्ध, जैन ओर प्रकृतिवादि (तथा कोइ अन्य) इन तीनोंको छोडके तमाम मानव संसार ईश्वरको जगतकर्ता मानती हे. उनका इतने लक्षणोंमें एकमत हे.

ईश्वर एक हे, सच्चिदानंद स्वरुप हे; अनादि अनंत, अज, अमर, स्वयंभू, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, जगतका कर्ता, धर्ता (व्यवस्थापक) हर्ता हे; उसकी शक्तिद्वारा जीवोंको यथाकर्म जजा (सुख) सजा (दंड) मिलते हैं, वोह पापरहित हे, निष्काम हे, अखंड, निरवयव, असीम, अपरिच्छिन्न, प्राकृत गुण रहित होनेसे निर्गुण, अप्राकृत स्वगुण (धर्म) होनेसे सगुण, निराकार, शुद्ध, पवित्र, दयालु, कृपालु, न्यायकारी हे. उसका जेसा वा उससे बडा कोई नहीं. मन इंद्रिय वाणिका अविषय हे. वोह केसे स्वयंभू सर्वाधार हे, वोह केसा हे, उसकी शक्ति द्वारा केसे--किसमेंसे ओर क्यों जगत रचता हे इत्यादि बातें मनुष्य नहीं जान सकता; क्योंकि वोह ओर उसकी शक्ति अचिंत्य हे. विश्वाससे हम उसे मानते हैं.

इतने लक्षणोंमें सब ईश्वरवादि संमत हें, परंतु इनसे इतर लक्षणोंमें मतभेद हे, इसलिये वे सर्वसंग्रहके विषय नहीं. **मतभेदवाले लक्षणोंका नमूना.**--ईश्वर अवतार लेता हे, शस्त्रधारी स्त्रीवाला होता हे, छलकपट दावघातभी करता हे ॥ वोह अपने भक्त, नबीसे बातें करता हे. वोह अपनी इच्छासे नाना रुप (स्वामी सेवक, चोर साहुकार, मल सुगंध, भक्षक रक्षक, जड चेतन, तम प्रकाश वगेरे) धरलेतां हे. आविर्भाव तिरोभाववाला परिणामी हे. उसने मनुष्यरुप धरके कुश्तीकी. अग्निके प्रकाश जेसा हे. उसने अमुक कोम, अमुक मंडलको डबोदिया. वोह कोल करार करता हे. वोह कसमें खाता हे. वोह मक्र करता हे. वोह वाक्य प्रेरता वा भेजता हे. वोह साकार हे, अभावसे भावरुप करता हे. मायावादि विशिष्टरुप मानते हें. इ. इ.*

*वेदोपनिषदका ईश्वर.—

ईश्वर व्यापक (य. अ. ४०) ॥ ईश्वर शरीररहित, शक्तिमान, शुद्ध, पापअबद्ध ॥ य. ४० मं. ८ ॥ सृष्टिके पहेले परमेश्वरही था, जगतका स्वामी हे. जगतकर्ता धर्ता हे. वही उपास्य हे ॥ ऋ. अ. ८ अ. ७ व. ३ मं. १ ॥ पूर्ववत् सृष्टि रचता हे ॥ ऋ. ८ ॥ उसकी प्रतिमा—आकार नहीं हे ॥ यजु ॥ ओं. भू. तत्सवितुः ॥ य. अ. २६ मं. ३ ॥ सर्व उत्कृष्ट नामवाला, प्राणका प्राण, दुःखोंसे छुडानेवाला, सुख स्वरुप, भक्तोंको सुख देनेवाला, जगतकी उत्पति करनेवाला, प्रकाशोंकाभी प्रकाशक, इच्छा करने योग्य (इष्ट—प्राप्तव्य), सर्वत्र जय करानेवाला, अतिश्रेष्ट, ध्यान करने योग्य, शुद्ध स्वरुप, सब क्लेशोंका निवर्त्तक हे उसको हम धारण (ध्यानमें) करते हें कि वोह हमारी बुद्धिओंको उत्तम गुण—कर्ममें प्रेरे (गायत्री मंत्र) ॥

उसका कार्य वा साधन नहीं हे. उसके समान उससे अधिक कोई नहीं. उसकी महानशक्ति ओर ज्ञान, बल तथा क्रिया स्वाभाविक हें ॥ श्वे. ६ । ८ ॥ जगतकर्ता, स्वयंभु, सर्वज्ञ चेतन हे ॥ ए. ६ । १६ ॥

एकएव ॥ अथ. का. १३ अ. ४ मं. १६ ॥ ईश्वर एकही हे, दो तीन वगेरे नहीं हें ॥ वोह मनवाणिका विषय नहीं हे ॥ क. ॥

पारसियोंका ईश्वर.

दाना (सर्वज्ञ), दानाईका साहेब, सर्व व्यापक, जीवनका मूल, पेदा करनेवाला, रक्षक, सर्वज्ञ, शुद्ध, अहुर, महाज्ञानी, (एवं मजदाओ वगेरे ७२ नाम

(शं.) उपर संग्रहवादमें कहीं कहीं ईश्वरको बीचमें लिया हे परंतु बौद्ध, ओर जैनसंसार, जगतकर्ता-ईश्वरको नहीं स्वीकारती; अतः इसकी प्रवृत्ति न होगी ओर यह सर्वमान्य संग्रह नहीं कहाजायगा.

(उ.) उपर ईश्वरको सहज दरमियानमें लिया हे, उसका कारण यह हे कि हिंदुस्थान गत ३४ किरोडमेंसे १। किरोडभी एसे नहीं निकलेंगे कि जो ईश्वरको जगतकर्ता न मानते हों, तथा मानवमंडल जो ३२ आना हे तो उसमें ईश्व-

---

हें) ॥ यझदांजरतोश्तिमजहब, इस इंग्रेजी ग्रंथपरसे अर्देस्तर नोशेरवान बलीमोराने तरजुमा किया उसमेंसे ॥

वोह आप अशोई (पाक अहुरमजद) हे. मिश्रण रहित एक हे. पेदा करनेवाला, अनादि अनंत, स्वयंभू हे ॥ जरतोश्ती रहबर पेज २ से ५२ तक ॥

बायबलका ईश्वर.

ईश्वर कृपालु ॥ खरुज बा. २२ । आ. २७ ॥ आदमी खुदाको नहीं देख सकता. ॥ खरुज बा. ३३ । आ. २१ ॥ खुदा महेरबान हे ओर कहरमें धीमा हे, खता (भूल) माफ करनेवाला हे ॥ ख. बा. ३४ आ. ७ ॥ ईश्वरसे इतर (मूर्ति, अग्नि, सूर्य, चांद वगेरे) पूज्य नहीं हे ॥ इस्तसना बा. ४ आ. २६ ॥ ईश्वर सर्वोपरी, सर्वशक्तिमान, हेबतनाक (दंड देनेवाला) हे. वोह रिशवत (सिफार्शादि) नहीं लेता. ॥ इस्तसना बा. १० आ. १७ ॥ ईश्वर सर्वशक्तिमान हे ॥ जबूर ९ ॥ ईश्वर अंतर्यामी (सर्वज्ञ) ओर यथाकर्म फल देनेवाला हे. ॥ अमसाल बा. २४ । आ. १२ । १३ ॥

कुरानी ईश्वर.

मुसलमानी ईश्वरके अन्यसे मिलते हुये मिलते विशेषण, दर्शनसंग्रहमें वांच चुके हो यथा—

कुलहुवल्ला-अल्लाह एक हे, बेनियाज (शुद्ध) हे. न उससे कोई पेदा हुवा ओर न वोह किसीसे पेदा हुवा. ओर न कोई उसकी बराबरका हे. ॥ सूरे इखलास ॥

सूरे अलहम्द=ईश्वर दयालु कृपालु हे. सब प्रशंसा उसके लिये हें, ब्रह्मांडका उत्पन्न करनेवाला हे. कयामतके दिनका हाकिम हे. इत्यादि ॥

ईश्वर एक हे, निर्गुण हे ओर सगुण हे, एसा सब मानते हें, तो फेर ईश्वरवादमें तो अंतर-मतभेद करनेकी अपेक्षा नहीं रहती.

रवादि २२ आना हें, ओर ईशभावना मानवधर्मका जीवन हे; तथापि जो संग्रह-सभाको यह बात न तुलती हो तो ईश्वरशब्द निकाल डाले. उसकी जगह चतुरा कुदरतशब्द लगसकता हो तो लगादे. विशेष आगे वांचोगे. एवं अन्य कोई विषय निकालने वा बढाने वा सुधारनेकी अपेक्षा हो तो सुधारना चाहिये. हमने जो लिखा हे सो ठीकही हे वा बस हे, एसा नहीं मानलेना चाहिये.

अन्य विषय.

(क) जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष (परलोक), उपादान (मूलमेटर), मोक्षके साधन, सृष्टि उत्पत्ति लय, यह विषय संग्रहवादके विषय नहीं होसकते; क्योंकि इनके स्वरुप ओर मंतव्यमें भिन्न भिन्न ओर विरोधी अनेक मत हें जेसा के उपर कह आये हें. हां, इन तीन बातोंका इसप्रकारसे संग्रहमें समावेश होजाता हे.—

१–राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, संस्कार, ज्ञानवाला, ओर दुःख सुख पानेवाला कुछ (जीव) हे, उसको जहांतक बने सुख मिले, एसा उपाय कर्तव्य हे.

२–जीव ओर मोक्ष क्या, सो शुद्धचित्त हुये निरुद्धसंस्कारवाले चित्तमें उसका भान होजाता हे, यह सर्वतंत्र साधन हे (आगे कहेंगे).

३–जगतका उपादान कुछ हे इतना तो सबको मान्य हे; परंतु वोह क्या, केसा ओर अनादिअनंत वा क्या, एसा नहीं कहसकते. अर्थात अनिर्वचनीय हे.

(ख) ईश्वरावतार, ईश्वरका पुत्र, ईश्वरका दूत, ईश्वरीयग्रंथ, मूर्तिपूजा, तीर्थ, श्राद्ध, बलिदान,* ताजिये, कबरपरस्ति, ऋद्धि, सिद्धि, कश्फ, करामात, जादू, मंत्र, देवी देवता, भूत प्रेत, ओर व्यक्ति परत्वे जो विशेषधर्म (उपरोक्त सामान्यधर्मसे अन्य जो एक एक व्यक्तिके लिये कर्तव्य हे सो); यह सब बातें संग्रहवादकी विषय नहीं होसकतीं; क्योंकि इन बातोंमें बहुतोंका परस्परमें मतभेद हे ॥*

*यथा—हिंसाके संबंधमें एक पक्ष यह कहता हे कि याज्ञिक हिंसा, हिंसा नहीं होती. जेसे के कृषियज्ञमें असंख्य जीव मरते हें, सूर्ययज्ञमें असंख्योंका घाण निकलता हे, पाकयज्ञमें असंख्योंका नाश होता हे, प्रजन्ययज्ञमें असंख्योंका घात होता हे, बलयज्ञमें निर्बलोंका भोग होता हे, एवं अन्य यज्ञोंमें बलिदान होता रहता हे, इसलिये यह हिंसा, हिंसा नहीं कहाती. दूसरा कहता हे कि यह पापका फल, अतः जहांतक होसके अपनेसे एसा न होना चाहिये. इत्यादि मतभेद हें; अतः सर्वमान्य संग्रहका विषय नहीं रहा. एवं अन्य (अवतारादि)मेंभी मतभेद हें.

(ग) फलादेशज्योतिष, रमल, जफर, केरल, इनको संग्रहमें नहीं लेसकते; क्योंकि इनके माने न माननेमेंभी मतभेद हे.

(घ.) यद्यपि प्रोटोपलाजम, सेंटर वगेरे अनेक बातोंमें वैज्ञानिकोंके मतभेद हें ओर सायंसके सिद्धांत परिवर्तनको पाते रहते हें तथापि वोह प्रत्यक्ष ओर परीक्षित फलको स्वीकारती हे, इसलिये गणितशास्त्र समानतो नहीं, तोभी वैद्यक समान उसे संग्रहवादका विषय मानसकते हें. अर्थात जो उपरोक्त उद्देशके अनुकूल बातें उसमें हों तो वे परीक्षक मंडल लेसकता हे.

(शं.) जो परिवर्तनके भयसेही उसका सर्वांग न स्वीकारा जावे तबतो उपरोक्त संग्रहवादमेंभी दोष आवेगा, क्योंकि उसमेंभी यथादेशकाल न्यूनाधिक करना वा होना संभव हे. (उ.) यह बात ठीक हे कि एक शुद्धनीति (सत्य) के सिवाय जितनी प्रवर्तिका नीति हें उनका यथादेशकाल, स्थिति, परिवर्तन होताभी हे; तथापि उस परिवर्तनका आधार—उस समयके विद्वान, बुद्धिमान, अनुभवी, प्रतिष्ठित, समदर्शी, निस्पृहि, तटस्थ, जितेंद्रिय, सदाचारी ओर देशहितैषियोंपर होता हे, ओर उनद्वारा यथादेशकाल, स्थिति सर्वमान्य न्यूनाधिकता की जायगी, नहींके मतभेद रखके निर्णय होगा; अतः परिवर्तनमें दोष नहीं आसकता. ओर इसीवास्ते यह माना गया हे " कि श्रुतिबोधभी भिन्न २ हे, स्मृतियोंका कथनभी भिन्न २ हे, मुनियोंके मतभी भिन्न २ हें, इसलिये यथादेशकाल, स्थिति, परिस्थिति उस समय उक्त मंडल याने महाजन जो सर्वमान्य मार्ग-संग्रहवाद निश्चित करें, धारण करें वा कहें, सो सर्व, संग्रहका विषय होगा. यद्यपि उक्त संग्रहोक्त विषय आजतक सब मंडलमें फिक्सरुपमें माने गये- जाने गये हें ओर जनमंडलको (व्यष्टि[१] समष्टिको) लाभकारी निवडे हें, इसलिये "उनका परिवर्तन होना ध्यानमें नहीं आता;[१] तथापि कालांतरमें न्यूनाधिक होनेका भाव सूचनामात्र जनाना ठीक समझा गया.

(शं.) जो बातें उपर संग्रहमें लिखी हें उतनी बातेंहीं बस हें किंवा ओरभी हें.

(उ.) उपरतो नमूनामात्र लिखा हे. ग्रीस, चीनके ग्रंथोंको वांचोगे तो एसी सर्वमान्य बातें बहुत मिलेंगी. फारसीमें पंदनामेसादी, पंदनामेअत्तार, ओर कीमीयायसआदतमें एसी बहुत बातें हें. हिंदुस्तानकी विदुरनीति, चाणक्यनीति, महाभारत, रामायण, ओर कोई कोई पुराणमेंभी एसी बहुत बाते मिलेंगी. तद्वत् इंग्रेजी पुस्तकोंमेंभी बहुत मिलेंगी. उनमेंसे संग्रह करना चाहिये. उपनिषदोंमें केवल

[१] प्रकृतिविवरणमें देखो.

पारमार्थिक विषय हे; इसलिये उनमें मूल मूल थोडी एसी बातें मिलेंगी. जैनधर्ममें केवल उनके माने हुये मोक्षका उद्देश हे, इसलिये सर्वमान्य बातें थोडी मिलेंगी. ऋग्वेदमें यज्ञसंबंधि कर्मकांड विशेष हे, सामवेदमें ईश्वर भक्ति हे; अतः उनमें एसी थोडी बातें मिलेंगी; परंतु अथर्ववेदमें विशेषतः यजुर्वेदमें सर्वमान्य ओर सर्वउपयोगी बातें बहुत मिलेंगी; क्योंकि सब संग्रहका मूल सूत्रात्मक हे. मनुस्मृतिमें एसी बहुत बाते मिलेंगी.[१] हमने तो यहां नमूनामात्र लिखके शैलीमात्र जनाई हे. उन बातोंके उद्देश, उनसे जो लाभ सो ओर उनके न होनेसे जो हानी सोभी ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिख सके हें.

(शं.) बायबल ओर कुरान वगेरेमेंसे जो बातें ली हें वे प्राचीन अन्य ग्रंथोंमेंभी हें, वहांसे क्यों न ली. ओर इनसे ज्यादा उत्तमोत्तमभी अन्य धर्मोंमें हें वे क्यों न ली.

(उ.) इसीका नाम अविवेक–अज्ञान वा धर्म द्वेष हे. बायबल, कुरान जिस देशमें जिस कालमें हुवा हे, उस देश उसकालमें वहांके लोकोंको इतनी बातोंकी अपेक्षा थी; अतः सर्वमान्य इतनी बातें उद्भव हुई. यथा–अरबमें एक एक पुरुष बीसियों स्त्री करता था, उससे हानी होती थी, नबी साहेबने उसको थोडी मर्यादामें ला दिया, उससे कन्यावध बंद पडगया. जहां बुतपरस्ती थी, वहां ईश्वरोपासना चलाई. इ. ॥ ओर चीनी, आर्यप्रजा लाखों वर्षकी प्राचीन प्रजा हें उसने बहुत उंच नीच देखें हें, उदय अस्तमें आई हें, इसलिये इन प्रजाओंमें बहुत बातें संक्षेपमें विस्तारवाली मिलें; इसमें क्या आश्चर्य हे; इसलिये उक्त कथन ठीक नहीं हे. तथाहि वे बातें ओर उनसे ज्यादे बातें दूसरोंमेंसे निकालिये, कोन ना करता हे. अंतके संग्रहमें तो पुनरुक्ति न होनेसे सबका नाम ग्रहण करनाही पडेगा.

(शं.) जितनी श्रेष्ट–उत्तम बातें संग्रहमें लिखी हें वे आदि उपदेशक वेद ग्रंथमेंसे सबको मिली हें–किसीको साक्षातसे, किसीको परंपरासे मिली हें; इसलिये दूसरोंका नाम न लिखके वेदग्रंथकाही नाम लिखना चाहिये था.

(उ.) यहां इससे प्रयोजन नहीं हे, अर्थात कहींसेभी किसी प्रकारसेभी प्राप्त हुई हों. हमारा मतलब तो सब जिसको मानते हें वा मानसकते हें, उनके संग्र-

---

[१] प्रकृतिविवरण, भ्रमनाशक–पूर्वार्द्ध ओर व्यवहारदर्शन इन ग्रंथोंमें एसी बातें बहुत मिलेंगी.

हमें हे. यदि पुनरुक्ति विनासे इसको लिखके प्रसिद्ध किया जाय तो उसमें किसीके नाम लिखनेकी अपेक्षा नहीं हे. फक्त एक जगह सबका नाम लिख देना बस होगा.

(शं.) उक्त संग्रहमें कितनीक बातें तो पोथीके बेंगन समान हें. जेसे के कोइ तमाचा मारे तो दूसरा गाल आगे कर दे; शत्रुके साथभी उपकार करना. इ. क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंत्व, ममत्व, ओर सांसारिक विषय उपयोगी ओर जीवनके हेतु हें; यह न हों तो जीवनही न हो.

(उ.) पोथीके बेंगन कहना यह आपकी नावाकफी वा संकुचितवृतिका प्रताप हे. सत्यवादि हरिश्चंद्रके दुःख ओर उसकी द्रढता, परदुःखभंजनहार वीर विक्रमके दुःख ओर परोपकार, बुद्धदेवने निंदा ओर दुःख सहन करकेभी परोपकार किया, महाबीरने दुःख पाके जीवदयाका धर्म चलाया, अपनेको विष देनेवालेको शंकरने क्षमा किया, अपनेको केद करानेवाले कृतघ्न शिष्यको ईसामसीहने क्षमा किया, पृथ्वीराज चोहानने अपने शत्रु शहाबुद्दीन गोरीको पकडके छोड दिया, राणासंग्रामने अपने शत्रु--गुजरातके महमूद बादशाहको लडकर केद किया ओर छोडदिया--इत्यादि अनेक बातें इतिहासमें वांचते हें. माना के एसा करनेसे उनको हानी हुई--दुःख हुवा, परंतु वेसे पुरुष पोथीके बेंगन, एसा नहीं कहसकते. कदाचित इन लेखोंको कवि उक्ती कह डालोगे तो इस तर्क, अश्रद्धा ओर प्रवृत्तिकालमेंभी एसे देखें हें. प्रसिद्ध स्वामी दयानंदपर जब ईंट पत्थर वगेरे पडने लगे तो पुलिसके अफसरने पूछा के इनको पकडके रोकें. स्वामी बोला कि में इनको अज्ञानसे छुडाने आया हुं, केद कराने--पकडाने वास्ते नहीं आया हुं, मेरे लगे तो लगने दो, वे आपही समझ जायंगे (अंतमें वे धर्मद्वेषी आपही बंद पडगये). स्वामी विवेकानंद बंगाली काठियावाडमें कहीं (   ) श्राद्धपक्षका निषेध कर रहे थे, उस समय आवेशमें आके एक (   ) साक्षरने हाथकी लकडी लगादी. विवेकानंदने अपनी पीठ उसकी तरफ करके कहा कि जो आपको इस प्रकारसे मनकी शांति मिलती हो तो यह पीठ हाजिर हे. वोह साक्षर शर्मा गया. एक इ. नामके साधुने प्रचलित बनानटी धर्ममत पंथोंका खंडन किया था, उस ग्रंथको वांचके एक ब. नामका साधु, एक पंडितको साथ लेके आया, इ. ने उसको आसन दिया, सत्कार किया. पीछे ब. ने उसको गालियें सुनाई ओर क्रोधवश उठ गया. इ. ने उसके पेर पकडके क्षमा मांगी. कहा कि मेरे निमित्तसे आपको क्लेश हुवा हे, क्षमा करो. अब छपा हुवा ग्रंथ मेरे हाथमें नहीं हे; पुनः ब. के आसनपर जाके नम्रताके

साथ माफी चाही ओर शांत किया. एक निर्धन गृहस्थ–साधुके घरमें रातको चोर आया. साधुने जाना कि कोइ गरीब हे, ठंडकी ऋतु हे, इसलिये आया हे, परंतु मेरे घरमें तो ओर कुछ नहीं हे, अपनी ओढनेकी कंबली निकलनेके दरवाजे पास डालके सोगया. चोर देख भालके निकलने लगा तो कंबली न ले गया ओर चला गया. अनुमान होता हे कि आती वक्त कंबल न देखा था ओर घर खाली; जातीदफे कंबली देखी; तो उसकोभी दया आगइ हो. ॥ संक्षेपमें एसे पुरुष होना असंभव हें, एसा नहीं मान सकते. हां, यह बात ठीक हे कि संग्रहानुसार वर्तनेवाले थोडे निकलेंगे. तथापि एसा प्रकार हो तो जन मंडलको कुछ न कुछ अवश्य लाभ--सुख मिलेगा.

(शं.) जब तक आदमीको यह अमुक मेरा धर्म, एसा अभिमान न हो वहांतक न तो उसके ग्रहणमें मजा आता हे ओर न उसमें रुची होती हे ओर न उसमें प्रवृत्ति होती हे; इसलिये धर्म ओर उसकी भावना तो जुदे २ ही होने चाहिये.

(उ.) जेसे सुन्नीमुसलमानोंको अमुक पंचतन, एसा अभिमान होगया हे, इसलिये उस अल्प बातकोभी पकड वेठे हें. जेसे इंगलेंड देशमें किसीको ‘ झूठा हे,’ एसा कह दो तो उसपर केस चलता हे; क्योंकि वहां झूठ ज्यादे निंदित मानलिया हे. जेसे इंगलेंड देशका अभिमान बंधा जानेसे इंग्लिशनेशन होगई अतः प्रत्येक सब उस देशकी भलाई ओर रक्षाके वास्ते पचमरते हें; इसीप्रकार यदि इस संग्रहका “ मानव कर्तव्य ” एसा अभिमान बंधके लोहीमें आजायगा तो ‘ हमारा कर्तव्य,’ एसा होके रुची रहेगी ओर उसमें प्रवृत्ति रहेगी; जेसे के कुलीनोंको अपने कुलके धर्ममें होता हे वेसे. यदि यह बातें विद्याद्वारा सिखाई जायँ, सोसाइटी (जाति) में सुरक्षित होजायँ, धर्मरुपमें मान ली जायँ ओर कोई नकोई रुपमें राज्य सत्तासे सुरक्षित होजायँ तो इनका अच्छी तरह प्रचार होसकेगा, लोकमंडल सुखी होजायगा; क्योंकि कुदरत इनकी सहायक–रक्षक तो हे अर्थात इनके विरुद्ध वर्तनसे मनुष्य दुःखी होता हे; तथापि अज्ञानविशेष ओर विषयासक्ति ज्यादे होनेसे कुदरतका पूरा बल एक साथ नहीं पडता; इसीवास्ते अर्थात कुदरतको मदद मिलजाने वास्ते ओर सहजमें प्रचार रहनेके लिये इन बातोंको धर्म (परलोक-मोक्ष-ईश्वरीयभय-पुनर्जन्म इ.) से सुरक्षित किया गया था. अबभी कोई सर्वमान्य रीतिसे वेसाही हो याने कुदरतको मदद मिलजाय तो इस मानव कर्तव्यका प्रचार होनेसे जनमंडलको सुख होजाय.

ओर उपरोक्त कामादि तथा कुअहंताममताका ओर विषयोंका किसको केसे त्याग ग्रहण करना, इन सब बातोंका जवाब गीताका संग्रह करदेता हे; तथा प्रसिद्ध ग्रंथ **प्रकृतिविवरणमें** लिख आये हें उसमें देखना चाहिये. विस्तार भयसे यहां नही लिखते; क्योंकि यहां तो नमूनामात्र जनानेमें आशय हे.

आर्य (जो उत्तम गुण कर्मवाला हो) । **बुद्ध** (सच्चे ज्ञानवाला) । **बौद्ध** (सच्चे ज्ञानवालेका अनुयायी) । **जिन** (कामादि-रागादि दोष जिसने खपा दिये हें सो) । **जैन** (कामादि रागादि दोषकी जिससे निवृत्ति होजावे एसा मार्ग) । **याहूदी** (ईश्वरको मान्नेवाला) । **नसारा** (जो ईश्वरकी मददसे फते पानेवाला हो सो–ख्रिस्ति मंडल) । **मुसलमीन** (जिसका ईमान–निश्चय–द्रढ हो सो) । **वैष्नव** (जो सबमें ईश्वरको वा सबको वासुदेवरुप मानता हो सो) । **शैव** (जो कल्याण-मंगल स्वरुप ईश्वरका भक्त हो सो) । **शाक्त** (शक्ति-योग्यता-के विना कुछभी नहीं होता, यह सब जगत्‌शक्तिसे हुवा हे, एसा मान्नेवाला) । **गाणपत्य** (सब गणोंका जो ईश अर्थात ईश्वर (गणेश) का जो भक्त हो सो) । **सौर्य** (ज्ञान-प्रकाश--ज्योतिस्वरुप परमात्माका जो भक्त हो सो) । **वेदी** (यथार्थ--सच्चे ज्ञानका जो अनुयायी हो सो) । इत्यादि. आर्यादिके एसे अर्थ हें; परंतु रुढीमें एसे रुपमें आगये हें कि जो किसीको एसे नामसे बोला जाय तो उसे बुरा जानपडता हे; अपना अपमान समझता हे. यथा--किसी जैनीको मुसलमान वा किसी मुसलमानको वेदी कहो वा वेदीको जैनी वा मुसलमान कहो तो बुरा मानेगा. यही जीवसृष्टि, यही संसार हे. जिसदिन एसा धर्मद्वेष नष्ट होगा उसदिन साम्यभाव पेदा होगा.

(शं.) तुम यह चाहते हो कि मानवमंडलमें किसी एक धर्मका प्रचार होके धार्मिकसंप होजाय ओर उससे जनमंडलको सुख हो, परंतु एसा होना कठिन किंतु असंभव हे. आज लाखों वर्ष हुये अर्थात उत्तरदेशमेंसे जब टोले फटे उसमेंभी पक्षका आग्रह, यह हेतु था; तबसे लेके आजतक जुदा जुदा धर्म--मत--पंथ चले हें, ओर नवीन होते जाते हें, परंतु धर्म एक होना तो क्या धार्मिकसंपभी न हुवा. क्या याहुदी, ख्रिस्ति वा ख्रिस्ति, मुसलमान वा मुसलमान, हिंदु वा हिंदु ओर अन्य एक धर्मी होजायंगे? कभी नहीं; अतः तुम्हारा आशय व्यर्थ हे. जहांतक अपने अपने धर्मके मान्य ग्रंथ (अवस्ता, बायबल, कुरान, भगवतीसूत्र, मनु, पुराणादि) को ओर रीफॉर्मेरों (ईशावतार–ईशपुत्र, ईशदूत, तिर्थंकर,

इमाम, आचार्य वगैरे) के नामको दरमियानमें न लेके धर्मपर आवें वहांतक कभीभी एक धर्म वा धार्मिक विचारमें साम्यभाव नहीं होसकता ओर न टोलरेशन आसकता हे, परंतु एसा होना दुर्लभ हे. देखते हैं कि जैसा तुम कहते हो वेसाही कितनेक अन्यधर्मी कहरहे हैं उनमेंसे कोई सीधे रुपमें कहते हैं ओर कोई सुधरी हुई भाषामें रेशमकी अदृश्य बारीक गांठके रुपमें कहते हैं; परंतु हमारा धर्म-मत-पंथ-संप्रदाय-सोसाइटी-मंतव्य सच्चा, अच्छा, लाभकारी हे अन्यकी नहीं, एसा गुप्त आग्रह उनके मनमें रहा हुवा हे ओर उपरसे सुधरीहुई फेशनमें संपार्थ वर्तन हे, परंतु अंतरमें वेसा वर्तन नहीं होता (जैसाके शुद्धि ओर एकभोजन व्यवहारमें देखते हैं), इसलिये स्वपक्षके मंडन ओर परपक्षके खंडनकी आवश्यकता हो, यह स्वाभाविक हे; एसाही वर्तमानमें देख रहे हैं; इसलिये तुम्हारा "धार्मिक साम्यभाव" यह विचार आकाशकी नीलतामें कपडे रंगने समान जानपडता हे; इस विषयमें कदाचित आफ्रीकन (हबशी) सुधर जायेंगे परंतु हिंद निवासी (हिंदु, मुसलमान वगेरे) सुधर जावें, एसा होना मुशकिल हे ॥ तथाहि इंगलेंड वगेरे देशोंमें अनेक धर्म प्रचलित हैं तोभी वहांकी प्रजाकी उन्नति हो रही हे. क्यों ? विद्या, बुद्धि, हुनर, कलाकी वृद्धि करते हैं. इसीप्रकार धर्मको (ईश्वरादिको) बीचमें न लेके सुखकारक उन्नतिका मार्ग दरसाना उचित हे; तुम्हारे धार्मिकभावकी अपेक्षा नहीं हे.

(उत्तर) सचमुच आपका उक्त तमाम कथन सत्य हे, तथापि जो उपरोक्त सृष्टिनियम ओर पदार्थविद्याका प्रचार हो तो आशा हे कि वर्तमानजितना क्लेश न हो किंतु कुछ न कुछ अवश्य फर्क पडजाय--सुखकारक उत्तममार्ग निकल आवे, जेसे के जापानकी प्रजाने किया हे अर्थात सब छोटे मोटे रियासतवालोंने अपनी रियासतें देके एक राज्य बनालिया, इसी प्रकार यदि हम अपने अभिमानका भाग छोडके एक धर्मरुपी राज्य बनावें तो बना सकते हे, ओर एसा सृष्टि नियमादिके शिक्षणद्वारा होसकता हे, इसलिये हमारे मनके फफोले फोडनेके लिये प्रयास हे. ओर नानाधर्म होते हुयेभी जो उन्नति होना कहा सो तो देखतेहो हैं अर्थात यूरोपमें धर्मभावना निर्बल पडी तो अनिष्टपरिणाम आया हे; जेसे के जर्मनीजंग देखते सुनते हैं; लाखों बल्के किरोडके आसरे मनुष्य (कौम कौन जानें) नाश होगये, किरोडके आसरे स्त्री ओर बालक अनाथ होके दुःख पा रहे हैं, ओर ३॥ वर्ष होगये तोभी लडाईका अंत नहीं आया हे. क्यों ? 'माइट इटज राइट'

यह धर्म होगया. यदि मानवधर्म (जेसाके इस अध्यायमें जबे जबे लिखा हे) की भावना प्रबल होती, ओर साम्यभावका साम्राज्य होता तो एसा न होता; इसलिये मानवधर्मभावना कायम होनेकी आवश्यकता हे; क्योंकि एक धर्मभावना होनेमें जनमंडलको सुख हे. धर्मकी निर्बलभावना होनेसे अंतमें ख्वारी होती हे. (शं.) यूरोप ओर एशियामें पहलेभी धर्मप्रचारार्थ किरोडोंका खून हुवा हे, इसलिये धर्मभावना, रक्षक ओर नीति मर्यादाकी प्रचारक हे, एसा नहीं मानसकते. (उ.) यद्यपि प्राचीन हिंदीप्रजामें धर्मार्थ त्रासउपजावक युद्ध नहीं हुये ओर अन्य प्रजाओंमें स्वधर्मप्रचारार्थ त्रास उपजानेवाले जंग हुये हैं; तथापि वे हठ धर्मीसे हुये हैं, असभ्य मंडलकी कृति थी. यदि मनुष्यमात्रका सामान्यधर्म एक हे, सब मनुष्य जीनेके हकदार हैं, एसा धर्मभाव ओर साम्यभाव होता तो वेसी ख्वारी नहीं होती; इसलिये मानवधर्म ओर साम्यभाव प्रचार करनेके लिये यथा शक्ति यथादेशकालस्थिति अवश्य कोशिश करना चाहिये, उनमेंसे एक उपाय संग्रहवादका प्रचार हे ॥

(शं.) सर्वसंग्रहमें जो सर्वमान्य बातें लिखी हें वे अर्थात वोह उपदेश उन उन (अपने अपने) धर्ममें रहनेवालों वास्ते हे (यथा परस्त्री अग्राह्य). जो अन्य धर्मवालोंके लिये होता तो बायबल, कुरान वगेरे ग्रंथोंमें देखो, उससे अन्यथा हे; जो एसा होता तो दूसरेके धनको स्वाधीन न करते, दूसरेकी संतानको गुलाम न बनाते, अन्यकी स्त्रीको घरमें न डालते, लूट मार न करते, जैनसे अन्य मिथ्यात्वि एसा न कहते, वेदनिंदकको बाह्य करना न बोधते. इसीप्रकार छोटी छोटी संप्रदायोंमें हे. यथा--स्वसंप्रदायसे अन्य कुसंगी, तामसी, रजोगुणी, दंभी कहे जाते हें; हालांके सर्वसंग्रहवाली बातें पालनेवाले किसी धर्ममेंभी न हों एसा नहीं मानसकते. यथा--शुक, बुद्ध, शंकर, स्वामी दयानंद, जिन, ईसादि अनेक--सदाचारी जितेंद्रिय हुये हें; परंतु प्रतिपक्षिओंकी दृष्टिमें वे काफर, नारकी मानेजाते हें. बात यह हे कि जो दूसरे धर्मवाले संग्रहवादके अनुसार चलने लगजायँ तो दूसरे धर्मवाला उनको दाब सके, एसा मोका मिलसकता हे; दयालु, साम्यभाववाला, परको दुःख न देनेवाला, क्रूरोंसे हार जाय यह सहेजमें होसकता हे. एसी पोलीसी रखके उपदेश हें; नहींके सच्चे भावसे साम्यभाव पेदा करना; इसलिये तुम जो संग्रहवादपर जोर देते हो उसमें विचार होपडता हे, याने या तो तुम लोक एषणा (मुझे लोक अच्छा जानें एसे) में फंसके स्वयं ठगाते हो वा तो दूसरोंको

ठगके उनके हानी होनेके निमित्त बनते हो. जरा सोचो तो सही, न तो आजतक साम्यभाव हुवा ओर न अनाचारका त्याग हुवा, न हे ओर न होगा; किंतु सब स्वपक्ष, स्वधर्म ओर स्वकोम (नेशन)के लिये कोइ न कोइ रुपमें धरमार करते आये हें, कर रहे हें (जरमनीजंग देख रहे हो) ओर करेंगे. धर्मरहित नेशनका अभिमान, माइटइजराइटका नक्कारा बजा रहा हे. उपरांत साम्यभाव सृष्टिनियमके विरुद्ध हे; क्योंकि जब सब समाननीति ओर साम्यभावपर चलने लगजावेंगे तो जगत--प्रपंचका व्यवहारही नहीं चलेगा अर्थात जबतक प्रकृतिका वैषम्यभाव हे वहांतकही जगतका व्यवहार चलेगा. समष्टि (जाति) यह व्यक्तिके सुखके वास्ते होती हे, व्यक्ति यह जातिके वास्ते नहीं होती; इसलिये हमको चाहिये कि अपने मंतव्य--अपने धर्मकी वृद्धि करें, दूसरेके एसे उपरके उपदेशमें फंसके अपने धर्मको क्यों छोडें? दूसरे धर्मके साथ सरखामनी (तुलना) क्यों करें? जबतक हम अपने धर्मको मानके न चलेंगे ओर दूसरे धर्मसे किनारा न करेंगे तबतकही हमारा स्वधर्म रहसकता हे ओर अपनी जाती जीसकती हे. सच्चे मुसलमानसे पूछो के तुम्हारा भाई कोन हे? जवाब मिलेगा के जो मुसलमीन (अहेल इसलाम) हो सो. एवं अन्योंके संबंधमें यथायोग्य जान लीजिये. परंतु हिंदु जातिको नाना धर्म मत होनेसे स्वधर्म, स्वजातिका अभिमान नहीं हे; अतः उसके लिये तुम्हारा उपदेश लाभिष्ट नहीं जानपडता.

(उ.) आपका कथन सर्वथा ठीक हे; परंतु इसप्रकारके उद्देश वा उपदेशका आप निषेध नहीं करसकते. यदि किसी महापुरुष (रीफॉर्मर) तथा किसी ग्रंथका नाम बीचमें न लेके एसा उपदेश बालक बालकियोंको स्कूलोमें सिखाया जावे तो आप जो दोष बताते हें वोह नहीं आवेगा; तथा अमुक व्यक्ति इस संग्रहवाद अनुसार वर्तन करे तो वोह आप सुखी रहसकती हे. अब बाकी रहा सोसाइटी वा स्वधर्ममंडलमें उसका चलना वा उपदेश होना, सो तो सोसाइटीकी संमतिपर मुनहसर हे, दुष्ट--अनीतिबाज, जनमंडलको हानी पहोंचानेवाला सब धर्मोंमें दंडपात्र मानागया हे; इसलिये मेंने जो अपने विचार जनाये वे चलें वा न चलें, कोई पसंद करे वा न करे, परंतु मुझको जो ठीक जान पडा सो कहा हे. उससे अन्यथा तो होही रहा हे, ओर भविष्यमें उस अनुसार हो वा न हो; परंतु हम अपना विचार जाहिर न करें यहभी ठीक नहीं हे; क्योंकि मानवमंडलमें विचारोंकाही साम्राज्य हे. संभव हे कि जेसे राष्ट्रीय संप, धर्मको बीचमें नहीं लेकेभी

होता हे; वेसे धार्मिकसंप किसी अमुकपक्षको न लेकेभी होसकता हे. मेरा ख्याल हे कि सदाचारी संग्रहवादवाली नेशनका मानसिक ओर नैतिक संप तथा साम्यको लेके इतना प्रबल बल होजाता हे कि उसकी विरोधि नेशन उससे आपही दबजायगी, उसकी हानी नहीं करसकती.

प्रवृतिवाद–अचिद्‌वादका संग्रह.

ईश्वरादि आठों विषयकी प्रवृत्तिकी अपेक्षाविना मनुष्यका जीवन होसकता हे. सब, सुखशांति चाहते हें. तन, मन आरोग्य होने चाहिये. उसीसे यथेच्छा करसकते हें. वे अच्छे सच्चे आचार, विचार ओर उच्चारके विना नहीं होते; इसलिये उंची कैरकटर रखना चाहिये. अपने समान दूसरेका हक ओर दुःख सुख जान्ना चाहिये. परके हककी हानी मत करो. समाजकी उन्नति ओर सुखमेंहीं हमारी उन्नति ओर हमको सुख मिलता हे; इसलिये उसकी बहतरीमें तन, मन ओर धनसे लगे रहो, यथाशक्ति उसका याने व्यष्टि समष्टिका भला करो. राज्यसत्ताके विना यह इरादा पूरा नहीं होसकता; इसलिये राज्यसत्ताके वफादार ओर मददगार रहो, उसके सत्ता ओर वैभवकी वृद्धि करो, उसके द्रोही मत बनो; उसकी महेरबानी संपादन करो; राज्यके अपन–सबप्रजा मुख्य अंग हें, राजाभी एक मुख्य अंग हे. राज्य याने राजा प्रजा मिलके एक शरीर हे, इसलिये राजा प्रजाकी रक्षा, उन्नति ओर आरोग्यताकी कोशिश रखो. सामाजिकउन्नतिके लिये सभा मिलके विचार करो. तुमसे कोई दुःखी न हो, तुम किसीसे दुःखी न हो, एसे वर्तो. संप, ऐक्यता, परस्परकी रक्षामें लगे रहो. किसीको तिरस्कार द्रष्टिसे मत देखो. खून, चोरी, जिना, विश्वासघात, असत्, डाकेती, रिशवत्, द्वेष, यह सब दुष्ट कर्म–हानीकारक हें, इनसे बचो. सत्यको मत छोडो तो थोडे श्रमसे उन्नतिद्वारा सुख होजायगा. बनके दिखाओ. सुख थोडाभी अच्छा हे. दुःख थोडाभी बूरा हे. इ.

(शं.) तुमने जिनधर्म मतके सिद्धांतोंको अपवादमें लिया हे उंन्हीकी बातोंको संग्रहवादमें ग्रहण किया हे, इससे आश्चर्य होता हे, यह क्या पोलीसी नहीं हे ?

(उ.) दूषण भूषण सब पक्षमें हें, अतः उनके भूषणका ग्रहण भूषण हे. पोलीसी नहीं हे. ओर शुद्धबुद्धिसे दोष बताना यहभी लाभकारी हे, क्योंकि सत्यतो ऐकही होता हे, उसमें नाना पक्ष हानीकारक होपडते हें. अमृता (गिलो) गुणवंती हे परंतु अतिसारमें हानीकारकभी हे, तब उसका नित्य सेवन ठीक नहीं हे.

संखिया हानीकारक हे; परंतु ताव वगेरेमें उसका सेवन लाभकारी हे. अब यदि उनके भूषण भूषणही कहें ओर दोष न जनावें तो हानी होनेका संभव हे. ओर यदि दोषही दोष कहें, तो उनके भूषणका उपयोग न हो. इसीप्रकार यहां हे. जो एसा न करते तो संग्रहवादकी प्रवृत्तिही न हो; इसलिये एसे प्रकारको पोलीसी कहना यह स्वमंतव्य निर्वाहके लिये पोलीसी हे, एसा क्यों न मानाजाय ? (विशेष दर्शनसंग्रहकी अनुभूमिकामें समाधान हे).

(शं.) तुमने जो संग्रहवादका नमूना दिया, यहतो नीति ओर सतकर्मका बोधक हे, धर्मका बोधतो ईश्वर, जीवका बंध मोक्ष, पुनर्जन्म, स्वर्ग नरककी चर्चा ओर मोक्षके साधनका बोध हे. (उ.) उपर कहा हे कि यह संग्रहवादके विषय नहींभी हें. तथा ईश्वरादिके मान्ने न मान्नेका एकही परिणाम होता हे—याने सत्कर्म ओर नीतिपर चलना, सद्गुण संपादन करना इत्यादिका नाम धर्म हे; अतः आपकी शंका ठीक नहीं हे. यदि उपरके संग्रहानुसार फिसदी ९५ मेंभी प्रवृत्ति होजाय तो सर्व प्रकारके (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) सुख जनमंडलको प्राप्त होसकते हें. हां, वोह दिन कोनसा कि मियांके पांवमें जूती, यह बात दूसरी हे. उपरांत जो ईश्वरादि विषय सर्व--जनमंडलसंमत होजायँ, ज्यादे नहीं तो हिंद निवासी ३४ किरोडही ईश्वरादिके समानलक्षण मानके स्वीकारें तो कोई दोष नहीं आता.*

---

*व्यवहार संग्रहवाद.

कितनीक व्यावहारिक सुखप्रद बातें वक्ष्यमाण जीवनमत गत सू. २३।२५ में लिखी हें, तथा नवधाभक्तिमें दरसाइ हें, उपरांत जो सभा पसंद करे तो कितनीक बातें यह हें.—

(१) स्त्री १५ ओर पुरुष २१ वर्ष पहले लग्न न करे. (२) अंत्यजपर्यंत प्रारंभिकतालीम फर्जियात. (३) एक पुरुष एक स्त्री करे (खास जरूरत पडे तो सभा संमतिसे दूसरी करे). (४) अस्पर्श ओर न पुत्रीको पुनर्विवाहकी छूट का सभासंमत कायदा हो. (५) रोटी बेटी व्यवहारकी छूटका सभासंमत कायदा हो. (६) चोरी, जिना, असत्, विश्वासघातकी सजा कुछ सख्त होना. (७) फेसला पंचायतसे करना. (८) भीख मांगना बंद, (परंतु गरीबोंका प्रबंध). (९) उद्यमसे जीवन करना. (१०) पुत्र पुत्रीको यथाअधिकार समान तालीम. (११) सभाकी आज्ञा विना वैराग्य करके एकांत सेवनकी मना. (१२) स्त्री पुरुष दोनोंको समान मान्ना. (१३) दासदासीभाव वा रीतिकी बंदी. (१४)

संग्रहवादका उपसंहार.

उपर नमूने दाखिल बडे बडे धर्म मतवालोंके सर्वमान्य विषय जो लिखें हैं, उनमें पुनरुक्ति बहुत हे, ओर वोह करनीही पडी हे. नहींतो सर्वतंत्रशब्द लागु नहीं पडता. यदि उनको एकत्र करें तो दो तीन पेजमें समाजायंगे. कितनीक बातें पुनरुक्ति रुपमें नहीं हें किंतु एसी हें कि हरकोई सुनके उसके लिये हां, ही कहेगा, इसलिये उनको दूसरेके पक्षोंमें नहीं लिखी हें.

उपरोक्तमें न्यूनाधिक करना वा तरमीम करना यह बात संग्रहवादके करने योग्य जो मंडल हो, उसपर आधार रखती हे. यहां तो शैलीका नमूनामात्र लिखा हे. यदि उपरोक्त संग्रहवाली बातोंको विशेषधर्मके रुपमें वर्णन करें तो एक छोटासाग्रंथ बनजाय (यहां धृति वगेरे १० मनुके कथनमें जो नोट लिखी हे वोह यादमें लीजिये) परंतु यह मुझ अल्पका काम नहीं हे, संग्रहसभाका काम हे; अतः उपेक्षा हे ॥ ६ ॥

यहां यहभी जिता देना ठीक होगा कि यदि लोकके जीवनसुख, समष्टि व्यष्टिके हित, ओर व्यावहारिक व्यवस्था पर ध्यान देवें तो सर्वसंमत जो बातें संग्रहवादमें हें वे सृष्टिनियम, युक्ति, जीवनियमद्वारा (अर्थात शब्दप्रमाणको छोडके मध्यस्थद्वारा) भी सिद्ध होजाती हें. यहां उनके विवेचन करनेका अवसर नहीं हे, इसलिये विस्तारभयसे उपेक्षा की हे ॥ ६ ॥ अब आगे अन्य प्रकार लिखते हें.—

अनाथ गरीबोंकी पालनाका प्रबंध. (१५) वारिसेके हकमें तरमीम (सुधारणा). (१६) कमाईमेंसे यथाशक्ति लोक उपकारार्थ दान देना. (१७) वैद्यकी संमतिके विना नशाका निषेध. (१८) राजा, प्रजाकी रक्षा वास्ते समझा जाय. प्रजा, राजाके वास्ते नहीं. (१९) राजा लोक समाजकी संमतिसे राज्य चलावें.

उपरोक्त निषय सर्व संग्रहका विषय नहीं हुवा हे, क्योंकि दो तीन विषय छोडके सब विवादित हें, उनकी आसपासकी हकीकत, रुढी, टेव, मान्यता ओर परिणामके संबंधमें तथा उनके दूषण भूषणके संबंधमें बडी भारी तकरार ओर शंका समाधान हें; अतः हिंदी प्रजामें यह बात सर्वसंग्रहकी विषय हों, यह महा कठिन हे; तथापि वर्तमानकी परिस्थिति ओर हिंदीप्रजाकी शोकनीयदशा देखके तो एसा मान जाता हे कि इनके स्वीकारके विना हिंदीप्रजाकी उन्नति (अपने पूर्व रुपमें आना) मुशकिल हे.

(शं.) एक धर्म वा एकमत तो कभी होनाही नहीं हे, तो फेर हम अपने धर्म–मत–पंथमें चुस्त क्यों न रहें, परधर्म क्यों ग्रहण करें, स्वधर्मका प्रचार क्यों न करें ओर परधर्मका खंडन करके उसकी निवृत्ति अर्थ कोशिश क्यों न करें ?

(उ.) तुम्हारे कहे अनुसार जबके एकधर्म न होसके तो तुम्हारा खंडन करनाभी व्यर्थ ठेरेगा, नाहक द्वेषकी वृद्धि होगी, इससे तो बेहतर यह हे कि पर धर्मके साथ विरोध न करके स्वधर्ममेंही स्थित रहना चाहिये. ओर जो सत्ता ओर विद्वानमंडलकी कोशिश जारी रहे तो सद्धर्म--उपयोगीधर्मका प्रचार होसकता हे.

व्यष्टि भावना (पंचदशांग)

(प्रश्न) यदि संग्रहवादका प्रचार न हो तो अमुक व्यक्तिको कोनसा धर्म स्विकारना लाभिष्ट हे–इसका उत्तर कुछ होसकता हे. ?

(उत्तर) हमारी बुद्धिसे तो यह उत्तर हे, जो व्यक्ति सत्यासत्यके शोधनेमें वा जान्नेमें असमर्थ हो ओर जो कुछ माने सो भावनापूर्वक मानती हो, उसको योग्य हे कि वेद, उपनिषद, षडशास्त्र, वैश्नव, शैव, शाक्त, सौर्य, गाणपत्य, शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, त्रिवाद, बौद्ध, जैन, ब्रह्म, आर्यसमाज, पुराण, अचिद्, गुरु नानक, वगेरे तथा पारसी, याहूदी, ख्रिस्ति, कुरान, इवोल्यूशन, थीओसोफी, वगेरे–सारांश चेतनवाद, जडवाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद वगेरे इन धर्म-भावनाओंमेंसे हरकोइ धर्मभावना अपने मनमें कायम करे[१] वा यूं कहो कि अपने प्राप्त धर्ममेंही स्थित रहके वा किसी मत पंथका अनुयायी न होके नीचे लिखे अनुसार समकके विचारपूर्वक वक्ष्यमाण पंचदशांगका पालन करे तो प्रत्येक धर्म–मत–पंथमें रहके वा किसीमें न रहकेभी सुखसे जीवन ओर कल्याण होसकता हे[१] क्योंकि—

(१) मनही बंधमोक्षका कारण. (यह गुह्य परमरहस्य हे) (२) सुख हरकोइ चाहता हे (३) दुःख कोई नहीं चाहता (४) जनमंडलमें एक दूसरेके

---

[१] कारणके ईश्वर, जीव, मोक्ष, स्वर्ग नरक हें वा नहीं, हें तो किस प्रकारके इन भावनका संबंध अपने मनके साथमें हे, लोकसंबंधी बाह्यक्रिया–व्यवहारके साथ संबंध नहीं; इसलिये मनमें कुछभी केसाभी मानके संतोष करसकते हें; परंतु जो दुराचारी हे, विषयासक्त हे, इंद्रियोंका गुलाम हे, दुसरेके तन, मन, धनको अनीतिसे दुखाता हे वोह चाहे केसेभी सब्बे अच्छे धर्म--मत--पंथको माने, दुःखीही रहेगा; बंधमेंही चकरावेगा, यह निश्चय हे.

संबंधके विना एक दूसरेका जीवनव्यवहार नहीं होता (५) भावना-विश्वासके विना मनुष्यका व्यवहार नहीं चलता, क्योंकि जीवन भावनामयही हे (६) सृष्टिमें जीनेका हरेकको हक हे (७) कर्म किये विना जीवन नहीं होसकता ॥ इस सिद्ध सप्तकको अपने मनमें भलीप्रकार समझले तो हरकोइ भावना धारण होजानेमें हानी नहीं जान पडती; परंतु उस व्यक्तिका नीचे अनुसार वर्तन होना चाहिये; तबही वोह भावना दुःखप्रद नहीं होसकती हे; अन्यथा नहीं.

‘ पंचदशांग ’

१–अपनी भावनाका यहांतक द्रढ विश्वास कि वोह सत्य हे वा नहीं एसा संशय न हो ओर निष्कपट अर्थात बाह्यांतर उसके अनुसार वर्तन हो.

२–उस भावनाके अनुसार वर्तनेसे किसी व्यक्तिके तन, मन, धनको हानी न पहोंचनी चाहिये.

(३) अपने मनमें किसीसे उद्वेग न हो ओर दूसरेको अपनेसे उद्वेग न हो.

(४) दूसरेको वा दूसरेकी भावनाको तिरस्कार दृष्टिसे न देखाजाय.

(५) अपने दुःख सुख ओर हकके समान दूसरेका दुःख सुख ओर हक समझा जाय.

(६) दूसरेके हक–सुख–जीवनका कुरीतिसे भंग न कियाजाय.

(७) भावनाके संबंधमें किसीके साथ वादविवाद न कियाजाय. ओर दूसरेको अपनी भावनाको मनानेका आग्रह न होना चाहिये.

(८) किसीकी भावनाकी वा भावनाके विषय जो ग्रंथ वा आचार्य उनकी निंदा न की जाय.

(९) व्यावहारिक नीति मर्यादाके विरुद्ध वर्तन न हो ओर सुराज्यनीतिके विरुद्ध न होना चाहिये; क्योंकि राज्यके साम-दाम-भेद ओर दंड यह नीतिरुप हें ओर वे प्रजाकी रक्षाके वास्ते आवश्यक हें.

(१०) अपने व्यावहारिकफर्ज (कर्तव्य) अदा करनेमें पीछा न पडे. यथा–यदि गृहस्थ हो तो अपने तथा कुटुंबके पालन करनेमें खामी न आनी चाहिये. अपने तन, मन ओर द्रव्य तथा कालका दुरुपयोग न हो. ओर यदि साधु त्यागी हो तो तप ओर ज्ञानका उपयोग करे अर्थात जितेंद्रिय हो, आसक्ति रहित हो, सबमें साम्यभाव हो, निष्काम हो, यदि कोई जिज्ञासु आके श्रद्धा, विनयपूर्वक कुछ पूछे वा सीखना चाहे तो अपने ज्ञानके अनुसार शुद्ध भावसे उपदेश करदे.

उस उपदेशमें इस ससकपूर्वक पंचदशांगका किंवा अ. ४ में जो संग्रहवाद हैं उसका उपदेश अवश्य होना चाहिये. ओर किसिको अपनी भेड न बनावे तथा आप किसी गृहस्थको भार न बने.

(११) सच्चा, अच्छा उद्यम करके निर्वाह करना, कुवृत्ति न करना.

(१२) संतोषपूर्वक अपनी जातसे स्वतंत्र ओर तन मनसे सुखी रहना; परंतु सामाजिकनियमोंमें परतंत्र रहना पडता हे; अतः उसकी रीतिसे उनको पालना अर्थात न्याय नीतिसे वर्तना.

(१३) जो बनसके तो मित्रभाव, मुदता, करुणा, उपेक्षा यह ४ मैत्र्य पालना (तद. अ. ४ योगप्रसंग याद करो) ओर स्थितप्रज्ञ होना (तद. अ. ४ गीतासंग्रह देखो).

(१४) जहांतक बनसके परोपकार (प्रत्युपकार) अर्थात तन–मन–धनसे व्यष्टि समष्टिको मदद देना ओर योग्यदयाका पालन करना; कारणके दयाके पालनेसे साम्यभाव प्राप्त होसकेगा.

(१५) दुष्ट गुणकर्मोंका निषेध हे. यथा–(१) झूठ बोलना. (२) जिना–स्वपत्निसे अन्य स्त्रीपर काम द्रष्टि करना. (३) चोरी. (४) खून. (५) छल. (६) दंभ. (७) विश्वासघात. (८) निंदा–चुगली चांटी. इत्यादि सर्वमान्य दुराचारोंसे वर्जित रहना ॥

जो अपने धर्म ओर अपने धर्मके भोमियोंका आदर्श बनके उपरोक्त पंचदशांग (१५ बात) यदि व्यक्तिविशेष पाले तो हरकोई धर्मभावना रखनेसे कल्याण होसकता हे. जेसा के अ. १ विषे विभूषक मतमें भावनाओंका सार बताया हे. परंतु जो बाह्यांतरमें वर्तन भावनाके अनुकूल न हो, धर्म हठ हो, वा कपट हो तथा अपस्वार्थपना हो[१] तो सत्यासत्यका निर्णय करके सर्वतंत्र मान्य–समष्टि भावनाका धारण करना योग्य हे, उसमें अपना मनमुखिपना नहीं लगाना चाहिये ॥ पंचदशांग[२] समाप्त ॥ ५ ॥

---

[१]हरकोई धर्म–संप्रदायमें हों, परंतु जो कपटीभावना वा अपस्वार्थपना होगा तो सुखके बदल दुःख ओर क्लेश होगा.

[२]इन १५ का शंका समाधान सहित विस्तार मूलमें हे । सामग्री संकोचसे नहीं लिखसके ॥ योग लिखित ५ यम (सत्, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय ओर अपरिग्रह) का समावेश इसकी टीकामें होजाता हे.

त्रिवाद प्रकरण.

धार्मिक समाजको श्रद्धान्वित अनावृत्तित्रिवादसे' ॥ ६ ॥ उसमें विवाद वा निर्णयकी अपेक्षा नहीं ॥ ७ ॥ ईशादिका स्वरुप अविषय होनेसे ॥ ८ ॥ स्वीकार अस्वीकारका फल स्पष्ट होजानेसे ॥ ९ ॥ स्वीकारमें विशेष ॥१०॥ चित्तशोधक कर्म उपासनाकी आवश्यकतासे ॥११॥ कृतका उत्तरदाता रहनेसे ॥ १२ ॥ नीति मर्यादाकी व्यवस्था होनेसे ॥ १३ ॥

अर्थ.—धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष इन ४ में प्रेयस् ओर श्रेयस्का समावेश होजाता हे. उनका पहेला मूल धर्म हे, तद्अनुसारी अर्थ ओर भोग प्रेयस् हे, ओर मोक्ष श्रेयस् हे; इसलिये सूत्रका यह भावार्थ हे कि जो धार्मिकसमाज हे वा जो मंडल लोकसुखकारी धर्म (कर्तव्य, ज्ञातव्य, प्राप्तव्य--फर्ज--डयूटी) का प्रचार चाहते हें, उनको श्रद्धापूर्वक अभ्यासमें लिये हुये पूर्वोक्त अनावृत्ति त्रिवादसे सुखफल प्राप्त होसकता हे. अ. १ । ३५ का विवेचन (पृष्ट ३१ । क. १ से ६ तक) याद करो. त्रिवाद सविस्तर तथा उसका उपयोग देखना हो तो ब्रह्मसिद्धांतका पूर्वार्द्ध बांचो ॥ ६ ॥ (शं.) उस पक्षके विरोधी उसमें शंका करनेसे भ्रमित करदेंगे. (उ.) उसमें विवाद करने वा निर्णय करनेकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ ७ ॥ कारणके ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष, प्रकृतिका मूलस्वरुप ओर उसकी घटना बुद्धिके विषय नहीं हें ॥ ८ ॥ ओर ईशादि के स्वीकार वा अस्वीकारका फल समान हे, यह बात स्पष्ट हे. अर्थात ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, जीवकी मोक्ष, प्रकृति (माया) जगत सत्य वा मिथ्या, इनके मान्ने न मान्नेसे इष्टकी सिद्धि नहीं होती हे; किंतु यथाकर्म (प्रयत्न) फल होता हे–याने सब पक्षोंमें कर्मवाद (पुरुषार्थवाद) को प्रधानता हे; इसलिये ईश्वरादिके स्वीकार वा अस्वीकार करने करानेमें विवाद करनेकी अपेक्षा नहीं होती. (अ. ४ सू. १२० से १२८ तकमें वांचोगे.) ॥ ९ ॥ परंतु ईशादि (ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष, प्रकृति--माया) ओर तत्कार्य भावरुपके स्वीकारनेमें विशेषफल हे ॥ १० ॥ कारण के चित्तके शोधक जो सत्कर्म ओर उपासना–उनकी आवश्यकता हे ॥ ११ ॥ मलिन विक्षिप्त चित्तसे व्यवहारभी यथायोग्य नहीं होसकता इसलिये अनेक दुःखोंका भोग

'जेसे एम. ए. की उपांत डीग्री बी. ए. हे, एसे परमार्थप्राप्तिकी उपांत डीग्री त्रिवाद हे, एसा जान्ना चाहिये.

होना पडता हे, तो जो परमार्थ (परलोक होतो) उसकी प्राप्तिकी तो बात क्या करना हे! इसलिये चित्तकी शुद्धिकी आवश्यकता हे, सो उत्तमकर्म ओर उपासनाके विना नहीं होती ओर उपासना विषयोंमें अनासक्ति तथा किसी शुद्ध निर्दोषके तदाकार किये विना सिद्ध नहीं होती; अतः चित्तशोधक--कर्म उपासनाकी आवश्यकता हे; इसलिये ईश्वरादिके स्वीकारमें विशेषफल हे ॥ ११ ॥ दूसरा विशेष फल यह हे कि इस त्रिवादमें जीव अपने कर्मका जवाबदार रहता हे. दूसरे पक्षोंमें भयवश यथोचित उत्तरदाता नहीं मानाजाता[१] ॥ १२ ॥ तीसरा विशेषफल यह हे कि लोककी व्यवस्था ओर प्रजाको सुखकी प्राप्ति नीति मर्यादाके विना नहीं होसकती, उस नीति मर्यादाकी व्यवस्था रहती हे ॥ १२ ॥ कारणके इसपक्षमें जीवका पुरुषार्थही कामका हे; किसीकी कृपा काममें नहीं आती. ईश्वरीय दंड ओर कुदरती शिक्षाका भय लगा रहता हे; अतः नीति नियममें वर्तना पडता हे ॥१३॥ यह प्रकार सुगमताके साथ सुखप्रद होता हे ॥ ६ से १३ तक ॥

विवेचन.—समाज अर्थात जनमंडलका समूह ओर जिसमें हरेक कोमके मनुष्य शामिल हों परंतु वोह धर्मविशिष्ट पुरुषोंसे युक्त हो उसे धार्मिकसमाज कहते हें, उसको त्रिवादपक्षसे शांति, सुख होता हे; क्योंकि वे धर्मकी प्रवृत्ति चाहते हें. मत—पंथ—मार्गके अर्थ उपर भूमिकामें किये हें, वहांही धर्मके लक्षण संक्षेपमें कहे हें. विशेष सामान्यलक्षण यह हें—(१) जो कर्तव्य सृष्टिनियमके अनुकूल हो. (२) आत्माके अनुकूल हो. (३) वेदी, बौद्ध, जैन, किरानी, कुरानी, पारसी वगेरे अर्थात मनुष्यमात्रको अनुकूल हों. (४) जिसका परिणाम सुख हो. (५) शब्दप्रमाणके विनाभी जिसकी सिद्धि होती हो. सारांश जो यथा अधिकार ज्ञातव्य, कर्तव्य ओर प्राप्तव्य हे उसका नाम धर्म हे.[२]

---

[१]जैनमतमें कर्मको मुख्यता हे; परंतु स्वाधीन हे. भय नहीं याने दंडदाता नहीं माना हे. बाकी जितने मत--पंथ हें उन सबमें जीव जवाबदार नहीं ठेरता. ओर किसीने नाममात्र जवाबदार मानाभी तो ईश्वर अन्यथाकर्ता होनेसे ईश्वर उसके पाप क्षमा करके पापोंसे मुक्त करदेगा, एसा माना हे. अथवा कर्म ओर कर्मफलको मिथ्या वा क्षणिक माना हे.

[२]इस लक्षणका विषय सत्यादि, यह १० बातें उपर लिखी हें वे हें (मनुस्मृति देखो). इसका व्याख्यान धर्मग्रंथमें कियागया था (यह ग्रंथ नहीं मिलता).

यद्यपि मनुष्यमात्रका धर्म समान हे, तथापि बहुत कालसे अनेक मत-संप्रदाय-पंथ चल रहे हैं; इसलिये कुदरतीधर्मका स्वरुप जाननेमें नहीं आता यह्यां तक के धर्म शब्दके ४० लक्षण वांचनेमें आये हैं. उनमें सबसे संकुचित यह लक्षण हे कि जो अपने मान्य पुरुषने कहा हो वा अपने मान्य ग्रंथमें लिखा हो उसानुसार जो वर्तन उसका नाम धर्म हे.

यह लक्षण सामान्यधर्मको स्पर्श नहीं करता; किंतु यथादेश-काल-स्थिति जो व्यक्ति परत्वे विशेष कर्तव्य उसको किसी अंशमें स्पर्श करता हे, परंतु सोभी विवादित होपडा हे; इसलिये विशेषधर्म निर्णय-याने एकमत होके स्थापन करनेकी अपेक्षा होगई हे. परंतु सोभी सत्ताधारी ओर परीक्षकोंकी सहायताके विदून स्थापित नहीं होसकता. सत्ताधारीकी अपेक्षा इसलिये हे कि धर्मसभाका रक्षक हो ओर उसके निर्णय किये हुयेके विरुद्ध जो वर्ते वोह शिक्षापात्र ठेरे-उसको शिक्षा मिले. धर्मका निर्णय एक व्यक्तिसे नहीं होसकता, इसलिये अमुक समूहकी जरुरत हे. वे धर्मनिर्णय करनेवाले इन लक्षणोंसे विशिष्ट होने चाहिये—

(१) वर्तमान प्रचलित धर्म--मत--पंथोंसे वाकिफ हों. (२) देश, कोमकी रीति रिवाजके ज्ञाता हों. (३) देश, काल, स्थिति ओर परिस्थितिके तथा राज्य, प्रजा, नीति ओर व्यवहारके ज्ञाता हों. वैद्यकके नियमभी जानते हों. (४) शत्रु मित्रको समान दृष्टिसे देखते हों. (५) पक्षपातरहित तटस्थ हों. (६) जनसमाजका हित जिनका इष्ट हो. (७) बंधसे शोक ओर मोक्षसे हर्षको प्राप्त न

यहां उदाहरण रुपमें एक उदाहरण संक्षेपमें कहते हैं---(१) बालकभी सत्यपर होता हे---सहज स्वभावसे एसा होता हे; अतः सत्य सृष्टिनियमके अनुकूल हे. (२) हरकोईके साथ असत्का व्यवहार करें तो उसको अप्रिय लगता हे; अतः आत्माके अनुकूल हे. (३) इसलिये मनुष्यमात्रके अनुकूल हे. (४) जहां दुष्टमंडलके साथ पाना न पडे उससे इतर सब देशकालमें सत्यका परिणाम सुख होता हे. झूटभी सत्यका प्रतिनिधि होके काम करती हे स्वतःसिद्ध नहीं, ओर सत्य तो स्वतः सिद्ध हे. (६) इसकी सिद्धिमें किसी मान्यग्रंथके हवालेकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि स्वतःसिद्ध हे, सर्व संग्रहकेभी अनुकूल हे. मनुष्यमात्रको इसका जानना, वर्तना चाहिये ओर प्राप्तव्य हे याने असत्को छोडके सचाईको समझके वर्तनीय हे.

एवं शेष-अस्तेय, दम, शम, शौच, धृति, क्षमा, अक्रोध, विद्यावृद्धि, बुद्धि वृद्धि इन नोका व्याख्यान सत्वत होजाता हे.

होते हों—अपरोक्ष विवेकजा जिनको शांति हो, (इसका मूल आगे वांचोगे). (८) कुलीन, विद्वान, सहनशील, उदार, संतुष्ट, जितेंद्रिय, बुद्धिमान, विवेकी, निरभिमानी, तमाम संसारमें सुलह्-संपको चाहनेवाले. (९) निष्काम हों. (१०) ओर सत्तासे सुरक्षित हों ॥

यह मंडल, विशेषधर्मका निर्णय करके निश्चित करे अर्थात चारों वर्ण ओर चारों आश्रमके विशेषधर्म कायम करे. सर्व संग्रहवाद करके उसको योजके धर्म-गुरुओं द्वारा वा पुस्तकों द्वारा प्रसिद्ध करे.

सार यह हे कि सब धर्म-जाति-कोम-मत-पंथोंमें उनके वर्णाश्रमका विषय विवादित ओर मनमुखि हो रहा हे, इसलिये प्रजामें अनेक प्रकारके दुःख देखे जाते हें ओर इतिहाससे एसा जानपडा हे कि हरकोई समष्टिसंबंधि काम एक संमत सभा-सोसाइटीकी स्थितिके विना नहीं हुवा ओर नहीं होसकता; इसलिये धार्मिकमंडलके लिये अन्योंसे न्यून दोषवाला यह त्रिवाद माना गया हे.

हमारा यह विश्वास हे कि पक्षपातरहित निःस्वार्थि, लोकहितैषी, विद्वान बुद्धिमान, सदाचारी, जितने आचार्य-धर्मगुरु-रीफॉर्मर-अगवे हुये हें, उन्होंने जो कुछ मार्ग दरसाया वोह लोकके हितके लिये बताया होना चाहिये उसमें उनकी सत् निष्ठा ओर शुद्धबुद्धि होनीचाहिये ओर वोह उपदेश यथादेशकाल स्थितिके अनुकूल होनाचाहिये; परंतु जमानेके फेरफारसे, नाना रुचीका प्रवेश होनेसे, ओर अज्ञ, स्वार्थीमंडलके प्राबल्यसे उसका रुपांतर होके अन्यरुप पकडके विवादका विषय हो गया; ओर एसा होना अनिवार्य था; क्योंकि हमेशे स्थितिओंका परिवर्तन होता रहा हे ओर होगा; इसलिये तरमीम (कमज्यादा करके सुधारणा) करनेकी अपेक्षा हे. वर्तमान-इस प्रवृत्तिकालमें जिस धार्मिकमार्गमें वा जिस प्रवर्त्तिकानीतिमें जीव व्यक्तिपर पूरीपूरी जवाबदारी रहे सो मार्ग वा सो प्रवर्त्तिकानीति लाभकारी हे. ओर वोह सूत्रोक्त त्रिवाद हे; जोके परमार्थप्राप्तिमें उत्तम साधन हे.

अब इस संबंधि कितनीक शंका ओर उनका समाधान लिखते हें.—

(शं.) धर्मनिर्णायक निष्काम होने चाहिये, एसा उपर कहा हे, परंतु निष्कामता यह शब्दही व्यर्थ हे; क्योंकि शरीररक्षाभी इच्छा–कामनाके विना नहीं होती तो दूसरी बातकी तो चर्चाही क्या करना. अर्थात कोईभी निष्काम नहीं होसकता; इसलिये धर्मका निश्चय न होसकनेसे धार्मिकमंडल नहीं बनसकता.

(उ.) यह बात सच हे; परंतु निष्कामशब्दका अर्थ नहीं जानागया; इसलिये संशय होता हे. सुनिये, निष्काम कर्मके दो अर्थ होसकते हें. (१) फलकी कामना छोडके अपने कर्तव्य--कर्म करना वा करते रहें; क्योंकि फल हमारे हाथमें नहीं हे, सृष्टिके नियमानुसार होना हे ओर कर्मके विना जीवनभी नहीं होता; इसलिये कर्तव्य, अपना फर्ज (डयूटी) समझके किये जाना. फल जो होनेवाला हे वोह होगा. (२) दूसरा यह भाव हे कि सचाईके साथ परोपकारार्थ (परके हितके वास्ते) कर्म करना चाहिये, परंतु उसमें अपना जराभी स्वार्थ (कीर्ति--मान--प्रतिष्ठा--प्रत्युपकारदृष्टि--मोक्षप्राप्ति इत्यादि) न होना चाहिये एसे कामना रहित परोपकार करना. सोभी योग्य हो याने जिससे किसीको गेरवाजिब हानि न हो, अनीतिका अवाच्य हो. यद्यपि एसे पुरुष मिलना दुर्लभ हें तथापि संसारमें एसे नहीं हें वा नहीं होसकते, यह बातभी गलत हे. अलबत्ते एसे पुरुष बहुतही थोडे मिलेंगे.[१]

निष्कामताको एक उदाहरणसे समझाना ठीक होगा. किसी सडकके किनारे आंबोंके लायक अच्छी जमीन पानेपर क. म. दो व्यक्तियोंने आंबके दरख्त लगाये. क का उद्देश द्रव्य उपार्जन ओर फल खानेका हे, इसलिये उनके पालनेमें पानीकी धारा, औषधि ओर बाड करानी पडी ओर एक आदमी रखना पडा; फल आनेपर मुसाफरोंके साथ तकरार; अतः आंबकी छायामेंभी न बेठने देना; सरकारी चपडासी वा अहेलकारको भेट देना; सरकारका महसूल देना; संबंधि यदि मांगें तो ना न कहसकना; बेचनेकी कोशिश कराना; घरके वा संबंधी ज्यादे खायें तो कलेजा जलना; ओर जो फल न लगे तो मनमें क्लेश रहना; निद्रा न आना. इत्यादि आफतें भोगनी पडती हें. म. का उद्देश मुसाफर छायामें आराम लें; इसलिये कुछ दिन पानी, औषधि ओर बाडका श्रम लेना पडता हे. फेर उसको कोई उपाधि नहीं होती. मुसाफर आराम पाते हें. किसी नीचवृत्तिवालेके सिवाय, मालिकको परोपकारी जानके कोई मुसाफरभी आंब नहीं तोडता. सरकार वा उसके आदमी पास नहीं आते. संबंधी वा घरवालेभी परार्थी काम समझके नहीं मांगते. इसलिये ज्यादा आंब मिलेंगे. बेचनेकीभी खटपट नहीं; अतः यथाअवसर सगे संबंधि ओर घरवालोंको मिलेंगे. जो कदाचित फल न आवे तो मनमें चिंता नहीं

[१] अपनेको दुःखी करकेभी परोपकार करनेवाले श्रीकृष्ण, शंकराचार्य, वीरविक्रमाजीत, हातमताई, इसुमसीह, बुद्धदेव वगेरेको यादमें लीजे. वर्तमानमेंभी हें.

होती. यहां अपनेको फलकी इच्छा नहीं हे ओर अनायास फल मिलना होगा तो मिलो, एसी दृष्टिभी नहीं हे, परंतु फल मिलता हे. ओर कीर्ति वगेरेकी इच्छा विना मुसाफरोंके सुख वास्ते लगाये गये हें. इसप्रकारके कर्मको निष्कामकर्म कहते हें. यहही निष्कामयोग हे. अब आप सकामता, निष्कामता तथा उनके परिणामको समझ गये होंगे. इच्छा शून्यका नाम निष्काम नहीं हे. क्या कोई पंथाई मार्ग भूल गया ओर पूछे, तब उसको कोई मार्ग बता दे, तो क्या यह कर्म निष्कामकर्म नहीं ? हे.

निष्कामपुरुषोंका जीवनभी निष्काम होता हे. उनकी शरीरयात्राका समावेशभी इसी योगमें होजाता हे, अर्थात वे पूर्णकाम अपना जीवनभी परार्थ समझते हें. परके भले करनेमें अपना जीवन सफल मानते हें. जो निष्काम कर्मका फल यथायोग्य न हो तो उनको चिंता, दुःख, प्रत्यवाय, क्लेश नहीं होता ओर यदि फल यथायोग्य हो तो उससे—उनको हर्ष नहीं होता; क्योंकि उसमें कामना वा ममत्व नहीं हे. जीवनका फर्ज बजा रहे हें.

कर्मयोग करनेसे आदमी निष्काम होजाता हे. उसका विस्तार ब्रह्मसिद्धांतके पूर्वार्द्धमें (सू. ३५ से ४१ तकमें) तथा **कर्मविवेक** ग्रंथमें किया गया हे.

(शं.) सत्कर्म, असत्कर्म, शुद्धनीति, प्रवर्तिका नीति ओर अनीति क्या ? तथा इनसे विलक्षण क्या ? इनका अर्थात कर्म-अकर्म ओर विकर्मकाही निश्चय नहीं हे, सबमें विवाद हे, तो फेर धर्मनिर्णय क्या ?

(उ.) यद्यपि कुदरतकी दृष्टिसे एक सत्यसे इतरके लिये यथार्थ कुछ नहीं कहा जासकता. तोभी जीव जीवका संबंध, प्रकृति जीवका संबंध प्रसिद्ध हे उस दृष्टिसे तथा सब मनुष्य सुख चाहते हें ओर जीनेके हकदार हें, इस प्रसिद्ध व्यापक वर्तमानसे कुछ फेसला होसकता हे. कोई कृत्य एक देशकालमें एक व्यक्तिके लिये सतकर्म-नीती हे ओर दूसरी व्यक्तिके लिये वेसा नहीं. तथा एकही कृत्य एक व्यक्तिको एक देशकालमें सत्कर्म-नीति हे, वही दूसरे देशकालमें वेसा नहीं. वेसेही नीति अनीतिसे विलक्षण (सत् असत् कर्मसे विलक्षण) के लिये विचारणीय हे. उदाहरणमें ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, संन्यासीके लिये स्त्रीसंबंध; ओर किशोर, जवान, वृद्धके लिये शरीरभावना; तथा बलवान दुष्टके निरापराधि अश्वका हनन. यह उपरके कृत्योंमें उदाहरण हें. इसलिये देश, काल, व्यक्तिकी स्थिति,

आपद्, अनापद्, योग्यता, अयोग्यता, अधिकार ओर अनधिकार, इनपर ध्यान देवें तो तुम्हारे सवालका सहेजमें फेसला होसकता हे. वोह संक्षेपमें यह हे.—

(१) अपने दुःख सुख समान दूसरेका दुःख सुख जानके वर्तना.

(२) दूसरेके तन, मन, धनको याने किसीके हक--हित--सुखका अनुचित रीति (अनधिकार दशामें) से हानी न पहोंचाना.

(३) जिन कृत्योंका परिणाम दुःख न हो किंतु सुख हो, जो कृत्य आत्मा ओर सृष्टिनियमके अनुकूल हों ओर जिनकर्मोंके करनेमें भय, शंका ओर लज्जा प्रतिबंधक न होती हो वेसे कर्म करना.

इन तीन प्रकारवाले कर्म सत्कर्म—नीति (वा धर्म) के वाच्य ठेरायें जासकते हें. इनसे उलटे असत्—अनीति (अधर्म)में गिनेजासकते हें. उभयसे विलक्षण प्रकारके जो कर्म हें, उनकी कसोटी अपनी अपनी जाति, व्यक्ति ओर सोसाईटीपर आधार रखती हे, इस विलक्षण प्रकारके उदाहरण **बलदेवमालामें** लिख चुके हें ॥

इस लोकके ओर परलोकके सुख दुःखकी परवाह न करके ओर अपने वा दूसरेकी लाभ हानीकी दृष्टि न रखके जेसा देखा—सुना—जाना ओर माना वेसा-ही कहना—मान्ना ओर वर्तना अर्थात सत्य यह, एक शुद्धनीति कुदरती-नीति हे. ओर यथादेशकाल स्थिति, परिस्थित व्यष्टि समष्टिके सुखार्थ वा व्यावहारकी व्यवस्थाके वास्ते जो नियम—रीतभात नियत की जायँ वा हों उनको प्रवर्तिका-व्यवस्थापिका नीति कहते हें अर्थात् व्यवस्थापक बुद्धि अनुसार वर्तन. यथा माता-पिता ओर संतान, गुरु शिष्य, पति पत्नि, राजा प्रजा, वारसा, व्यापार, सोसाइटी, मित्र, शत्रु, शिक्षण, शासन—इत्यादि संबंधि नीति प्रसिद्ध हें, इनको प्रवर्त्तिकानीति कहते हें; उन सर्वमान्य नीति अनुसार यथादेशकालस्थिति वर्तना चाहिये*

(शं.) धर्मसभा किस विशेषधर्मका निर्णय करे ?

(उ.) धर्मका तो पूर्वमें निर्णय होरहा हे, परंतु तद्गत विकारकी सुधारणा करनेकी जरुरत हे. वे बहोत बाते हें. यहां तो नाममात्र जना देते हें. (१) जब तक कोई विद्या, हुनर, धंधेकी डीग्री पास न करलेवे, यहां तक के शुद्रके कर्मभी न सीखे ओर अपने तथा स्त्रीके पेट भरने योग्य न हो वहांतक चाहे वोह

*कर्म ओर नीतिकी मीमांसा "कर्मविवेक" ओर "नीतिमीमांसा" इन दो ग्रंथोंमें लिख चुके हें. बस. सू. २८ से ७० तकभी वांचनेसे कुछ लाभ होगा.

श्रीमंतकीभी संतान हो, ब्रह्मचर्यका भंग न करे. नहीं तो दंडपात्र होगा. (२) गृहस्थाश्रमके धर्म जहांतक न सीखे वहांतक गृहस्थाश्रम न करसके. (३) कोईभी साधुवृत्ति न ले, ओर यदि वैराग्यवश वा परोपकारार्थ ले तो प्रथम अपनी योग्यताकी परीक्षा सभाके समक्ष करावे, उस पीछे राज्यके बडे कर्मचारीका सार्टीफिकेट लेवे ओर भिक्षा कभीभी न मांगे. जो परोपकारार्थ हो तो बसतीमें आवे अधिकारी--परोपकारी जन उसकी सेवा आपही करेंगे; क्योंकि जनमंडलका हित करता हे; नहीं तो जंगलमें रहे. जिसकी उमर २५ सालसे कम हो वोह किसी सूरतमेंभी साधु नहीं होसके, इत्यादि. (४) जिससे परस्परमें संप, प्रेम-अतिरस्कार, परोपकार होसकता हो उन रीतिओंको खोजके धर्मरुपमें स्थापन करें. (५) जिससे भविष्यमें स्ववर्ण आश्रमके धर्म पाल सके वेसे संस्कार बाल्यावस्थामें-डाले जायें तो सुखेन सुधारा होजायगा[1] (६) मनुके कहे हुये धृति वगेरे १० को विशेषधर्मके साथ बयान करें (यहां उन १० की नोट यादमें लीजे ॥ (७) ब्राह्मणादि जाति गुण कर्मपर वा वीर्यपर इसके नियम बांधें, क्योंकि यह धर्मका बडाभारी सवाल हे.

सब ब्रह्माकी संतान हें तो क्या सब ब्राह्मण हुये, किंतु उनकी स्वाभाविक प्रकृति--गुणकर्मके अनुसार कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रीय वगेरे पदवीसे कहाया. (सूर्य-मनु, भृगु वगेरेकी कथा बांचो). उपयोगभी गुणकर्मपरही होता हे. अब सवाल यह होता हे कि ब्राह्मणके ३ पुत्रोंमें एक शुद्र (मूढ) हो तो क्या उसे बराबर-का वारिसा न मिलेगा? मिलेगा. क्या उसको शुद्रकी कन्या दोगे तो ब्राह्मणके घरमें कुसंस्कार न होंगे? होंगे. क्या उनके माता पिता उन दोनोंको घरसे निकाल-देंगे? कभी नहीं. यदि शुद्रप्रकृतिवाला एकही पुत्र हो तो मरने पीछे ब्राह्मणको सपिंडीमें कोन शामिल करेगा? मतलब यह हे कि जहांतक दायभागमें संतानका हक नहीं, एसा न ठेराया जावे वहांतक जातिभेदके निषेधक, मिथ्या आलाप करते हें. जो आर्यजाति नहीं किंतु परखंड निवासी थे वे अब पूज्य ब्राह्मण माने जाते हें. मुसलमान तकके छोटे बालक गुप्तप्रकारसे लेके उसको तालुकदार वा

[1] आर्यप्रजामें श्रौत--स्मार्तधर्म प्रचारके विना धार्मिक सुधारा होना कठिन हे; इसलिये महाभारतसे पूर्व जो श्रौत--स्मार्त धर्मका प्रचार था वोह एक संमत्त होके सिखाना चाहिये. निंदा--खंडन--मंडनको छोडके यथाअधिकार वर्णाश्रमके विशेषधर्म सिखाने--बताने चाहिये.

राजा बना लियाजाता हे ओर वोह क्षत्रीय कहाता हे. क्षत्रीयोंके साथ रोटी बेटीका व्यवहार करता हे, यह बातें प्रसिद्ध हें तो फेर वीर्यपर वर्णव्यवस्था कहां रही (२ । ५२९ । ५३३ याद कीजे). मतलब यह हे कि विशेषधर्मसंबंधी अनेक बातें हें कि जिनको धार्मिकमंडल यथादेशकाल स्थिति स्थापन करे. आर्य जातिकी कुटंबी संकलना उत्तम हे--करारविवाहसे धर्मविवाह श्रेष्ठ हे, परंतु वर्त्तमानमें वे रीत रिवाज ओर वर्णाश्रमके धर्म बिगड गये हें उनको धर्मसभा शोधके प्रसिद्ध करे, एसा होनाचाहिये. तो सुख हो. इ.

(शं.) तुमने तो त्रिवादका अपवाद किया हे. याने विभु ईश्वर, क्रियाके अभाव होनेसे जगतकर्ता नहीं, ओर जीव अणु नहीं, ओर मोक्षसे आवृति वा अनावृति नहीं बनती, एसा दरसाया हे; यहां श्रुति--शब्दप्रमाणको सत्कार नहीं दिया है, ओर फेर त्रिवादद्वारा धार्मिकमंडलको लाभ होना कहते हो, इस वदतो व्याघातका अर्थ क्या ?

(उ.) यह आपकी शंका एक देशी हे. ईश्वर विभु हे, परंतु उसकी शक्ति अचिंत्य हे, इस तंत्रीका प्रतिपादन किया हे. ओर जीवके तीनों परिमाणमें व्यवहार नयमें दोष दिखाये हें; अतः जहांतक जीवके स्वरुपका निश्चय न हो वहांतक मोक्ष तो संशयास्पद हो यह स्वाभाविक हे. सिद्धशब्दका ग्रहण हे. परंतु उपरोक्त लेखका आशय आपने नहीं समझा. अस्तु. हमारा उक्त तमाम खंडन मंडन हमारे पासही रहने दीजिये. आप स्वतंत्र विचार करियेगा.—

जरा मेरे सवालोंका जवाब दीजिये.

(स.) एक १४ वर्षका किशोर हे उसको स्त्रीसंगका बोध दोगे ? एक ३० वर्षका गृहस्थ हे उसको स्त्रीसंग त्यागका उपदेश करोगे ? एक ७५ वर्षका बूढा हे उसको स्त्रीसंग, कुश्ती ओर शृंगारके लिये कहोगे ? तीनों सवालोंका जवाब दीजे. (उ.) नहीं. (स.) क्यों ? (उ.) योग्यता वा अधिकार नहीं हे, एसे उपदेशसे उनकी हानी हे. (स.) जब वोह किशोर २५ सालका होजाय तब उसे स्त्रीसंगका उपदेश दियाजाय तो वोह क्या तुमको असत्वादि, वा प्रपंची न कहेगा. (उ.) नहीं; क्योंकि वोह समझ सकेगा कि उस समय निषेध, मेरे लिये लाभकारी था ओर अब एक पतिव्रत कर्तव्य होनेसे लाभकारी हे.

इसीप्रकार आत्मा अनात्माके अनुभव होने तक याने विवेकख्याति होने तक त्रिवादके अधिकारके संबंधमें समझलेना चाहिये.

(स.) क्या किसीकोभी असत् बोलनेका बोध दियाजाय ? (उ.) नहीं. (स.) क्यों ? (उ.) झूट बोलनेसे दुःख होता है; अतः पाप हे. प्रतीति-रीति-नीति ओर व्यवहारका नाशक हे तथा सत् बोलनेका हरेकको हमेशे अधिकार ही-नहीं किंतु कर्तव्यभी हे; क्योंकि स्वतःसिद्ध हे. (इसीप्रकार आत्मा अनात्माके विवेकख्यातिके संबंधमें आपको जानलेना चाहिये) ॥

(स.) हितकारी--उपयोगी शब्द, किसीकाभी अनादरणीय हे वा ग्राह्य नहीं हे. (उ.) नहीं. किंतु ग्राह्यही हे ॥ तो फेर एसे सुने हुये वा सुनते चले आये हुये शब्द (याने श्रुति) का निषेध न ठेरा. (२। १२१ । १२२ यादमें लीजे).

(१) आप हें वा नहीं, अपनी हस्तिको सत् मानते हें वा भ्रांतिरुप. किंवा आपको अपनी हस्ति (अस्तित्व) में कुछ संदेह हे. (उ.) में कुछ हुं, में मेरी हस्तिको सत् मानता हूं, भ्रांतिरुप नहीं मानता. मेरे अस्तित्वमें मुझको जराभी संशय नहीं हे, परंतु में केसा हूं, यह में नहीं जानता ॥ जो एसा हे तो आप कुछभी नहीं हो, इसका बाध हो गया; किंतु आप " कुछ हो तो सही, " यह सिद्ध हुवा. (२) आप दूसरेकी सहायता वा प्रेरणाके विना अपनी इच्छासे कुछ करसकते हो वा नहीं ? (उ.) हां, अपनी योग्यताकी मर्यादामें अपनी इच्छासे कुछ करसकता हूं ॥ तो यह साबित हो गया कि आप किसीके बनाये हुये नहीं हें. जो बनाये हुये होते तो परतंत्र होते तथा एसा उत्तर न मिलता. (३) आपको राग द्वेष, सुख दुःख होते हें वा नहीं ? (उ.) हां, होते हें ॥ तो आप ईश्वरके अंशादि रुप नहीं ठेरे; क्योंकि ईश्वर वा उसके अंशादिमें राग द्वेष, दुःख सुख नहीं होते. तथा आप ईश्वरके बनाये हुये नहीं; क्योंकि ईश्वर दुःखद वा दुःखरुप वस्तु नहीं बनाता ॥ (४) आप शरीर ओर उसके अवयवोंको जानते हो वा जानसकते हो वा नहीं ? (उ.) हां, जानता हूं. जो संबंध पावें उनको जानसकूंगा ॥ जो यूं हे तो आप शरीररुप वा शरीरके अवयवरुप न ठेरे, क्योंकि ज्ञाता, ज्ञेयसे भिन्न होता हे ॥ (५) आप आज जो सवेरमें थे वेही हो वा नहीं, कलके भोजनकी आपको स्मृति हे वा नहीं, अपनेसे जुदा मुझे जानते हो वा नहीं ? ॥ (उ.) जो में सवेरमें था वही में हूं, कल जो मेंने भोजन खाया था वोह मुझे याद हे, में आपके हाथको मेरे हाथसे स्पर्श करता हूं, याने दूसरा शरीर पाता हूं ॥ जो यूं हे तो आप क्षणिक नहीं हुये ; क्योंकि उपरकी तीनों बातें क्षणिकपरिणामीमें नहीं होसकती ॥

(६) आप अपना नाश होना चाहते हो वा नहीं ओर अपनेको नाशवान होना मानते हो वा नहीं ओर आपका अभाव--नाश--किसीने देखा है वा नहीं ? (उ.) कोईभी अपना नाश होना नहीं चाहता, ओर में अपनेको नाशवान नहीं मानसकता ओर मेंने किसी प्रस्तुत में के वाच्यका नाश नहीं देखा हे, तो मेरा नाशभी कोइ नहीं देख सकता अर्थात मेरा नाश नहीं होना चाहिये, एसा में मानता हूं. ॥ जो यूं हो तो आप मध्यमपरिमाणरुप न ठेरे; क्योंकि मध्यम नाशवान होता हे. ओर इसीवास्ते उसका नाश किसी न किसीका विषय होना चाहिये. ॥ (७) आप क्रिया करके कहीं जासकते हें वा नहीं ? (उ.) हां, में क्रिया करके शरीरके साथ जासकता हूं. ओर मनसे क्रिया कराता हूं. ॥ जो एसा हे तो आप विभुपरिमाणवाले न हुये; क्योंकि विभुमें क्रिया नहीं होती. (८) आपको दुःख सुख होते हें वा नहीं ओर संस्कार होते हें वा नहीं ? (उ.) होते हें. ॥ जो एसा हे तो आप अणुपरिमाणवाले न ठेरे; क्योंकि अणुतत्वमें यह नहीं होसकते. (९) किसी तंतुद्वारा आपको कुछ भान होता हे वा नहीं ? (उ.) हां, यह तो स्पष्टही हे कि कर्मेंद्रियद्वारा कर्म ओर ज्ञानेंद्रिय (ज्ञानतंतु) द्वारा ज्ञान होता हे. (१०) तो फेर दुःख सुख संस्कार क्या ठेरे ? (उ.) में इस विषयमें कुछ नहीं कह सकता अर्थात तंतुद्वारा एसा होता हे वा स्थितिओंका ज्ञानही दुःख सुख हे, यह में नहीं जानता ॥

उपरोक्त संवादका क्या परिणाम आया ? आप कुछभी नहीं; क्योंकि हरकोई वस्तु ३ परिमाणमेंसे एक परिमाणवाली होनी चाहिये; परंतु तीनोंमेंसे एकभी परिमाण सिद्ध न हुवा; परंतु आपकी हस्ति ओर दुःख सुख तो स्वतः सिद्ध हें; तो फेर अब क्या कहोगे--क्या मानोगे; मानें विना तो छुटकारा नहीं; क्योंकि कुछ हो.

*अब आपको जीवअणुवादकी थीयरी सुनाते हें, जिसका मूल सांख्य हे. वोह यह हे कि--राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, धर्म, अधर्म, बुद्धि, संस्कार--यह १० जीवके गुण वा उसकी अवस्था नहीं हें, क्योंकि वोह अपरिणामी तत्व हे १, प्रकृतिके परमाणु सत्व--रज--तम--मिश्रितही होते हें--याने एसे अनादिसे हें. उन गुणोंका उपर नीचे होते रहना स्वभाव हे. वे अमुक संबंध वा फोर्सघातसे रुपांतरको प्राप्त होते रहते हें, एसे मिश्रित--परमाणुओंके पुंज रागादिरुप परिणामको पाते हें; उनमेंसे कोई राग, कोई द्वेष, कोई इच्छा, कोई दुःख, कोई

*यहां अ. ३ सू. २८४ का विवेचन याने कर्मफलकी थीयरी यादमें लीजे.

सुख वगेरे रुप परिणामको पानेवाले होते हें. एसे नानाप्रकारके परमाणुपुंजका नाम शास्त्रीय भाषामें अंतःकरण (चित्त, बुद्ध, मन, अहंकार,) हे. २.

जेसे किरणें टकराके केमेराकी प्लेटपर चिमटके प्रतीबिंब करती हें ३, जेसे किसी योगी भव्यपुरुष पास जावें तो उसके शरीरके चारों तरफके परमाणु उत्तम परिणामवाले होते हें, क्योंकि उसकी ओरा--प्रभाव--उसके विचारके असरसे वे शुद्ध परिणामको धारते हें ओर वे उस योगीके पास जानेवालेके चित्तको संबंध पाते हें, उससे उसको शांति-सुख होता हे अर्थात उनके संबंधसे अंतःकरणके अमुक भागका किंवा समूहका शांत सुखरुप परिणाम होता हे ओर संभव हे कि उन परमाणुओंका भाग अंतःकरणमें मिश्रणकोभी पाता हो; जिसका उपयोग यथा प्रसंग पुनःभी हो. ओर उसी समय अंतःकरणगत अमुक निकृष्ट परमाणुओंका वियोगभी होता हो. इसीप्रकार दुष्ट—क्रूरके पास जानेसे उपरोक्तसे उलटा परिणाम आता हे. याने अशांतिफल ओर दुष्ट परमाणुओंका संयोग ओर उत्तमका वियोग होता हो, यह उभय स्थिति दोनोंकी योग्यताके बलाबलानुसार होती हें ४, जेसे थंभकेविना वायु, विजलीके द्वारा समाचार (शब्द वा खटका) जाते हें वे तार पेटीपर असर करते हें ५, जेसे ईथरद्वारा सूर्यका प्रकाश--किरणें--रंग-विजली एक जगहसे दूसरी जगह पहोंचके वे वहांके पदार्थ साथ जुडके उपयोगमें आते हें ६, जेसे लालकाचके संबंधसे आकाश लाल ओर आसमानी काचके संबंधसे प्रकाश आसमानी जानपडता हे ७, जेसे दारु पीया हुवा ब्राह्मण अपनेको शूद्र वा म्लेच्छ कहता वा मानता हे ओर दैवीप्रकृतिवाले बापको गाली देता ओर मारता हे ॥ ८ ॥

इसी प्रकार जीव अणुचेतनकी दशा होती हे अर्थात जीवचेतन तो निज स्वरुपमें ज्ञानस्वरुप हे ओर शुद्ध हे; परंतु अनादिकालसे सत्वरजत्मात्मक प्रकृतिके परमाणुओंका उसके साथ संबंध हे. ओर वे संबंधी सूक्ष्म अदृष्ट परमाणु, बाह्य प्रकृति, पदार्थ, फोर्स, परस्थिति, परविचार, इंद्रिय--ज्ञानतंतु, ब्रेमेटर ओर शरीरके संबंध पानेसे तथा संस्कारजन्य आंतरिय स्वतंत्र कृति होनेसे नाना प्रकारके परिणामको पाते हें. ओर अमुक कारणविशेषसे (यथा माता पिताके विचार, खुराक, तालीम, सोहबत वगेरे) कमज्यादाभी होते रहते हें ओर कभी न्यूनाधिक नहींभी होने पाते. इस प्रकारके परमाणुपुंज जीवके उपर पड (गलेफ—म्यान) हे. इन गुणों (रस्सी) से जीव अनादिसे बंधा हुवा हे, इसलिये उनको जीवके

गुण कहते हैं ओर उनका तादात्म्यसंबंध हे; इसलिये वे जीवके लिंग कहे जाते हैं क्योंकि अन्यसे व्यावर्तक हैं; ओर वे परिणामको पाते हैं, इसलिये वे जीवकी अवस्था एसा कह देते हैं. ओर जीव उनसे आवृत हे, इसलिये उनको कोश कहते हैं; क्योंकि जीवका ओर उनका तादात्म्य ओर समवाय संबंध हे. ओर जेसे औषजन, उदजन मिलनेसे नवीन तीसरा रुप होता हे, एसे उन उभयके संबंधसे उनसे विलक्षण रुप जान पडता हे. अर्थात गुणोंका धर्म चेतनमें ओर चेतनका धर्म गुणोंमें जान पडनेसे जीव कर्ता भोक्ता रागादिवाला हे, एसा भान होता हे. वस्तुतः जीव शुद्धस्वरुप हे.

वोह परमाणुपुंज क्या? उपरोक्त रागादिवाले परमाणुका पुंज अंतःकरण (वा चित्त वा मन वा अहंकार).[१] यह मध्यम परिमाणवाला-विशेष प्रसंगसे कम-ज्यादा रुपमें रसायणीयसंयोगवाला अनादिसे जीवके साथ तादात्म्यवत हे. प्रलयमेंभी नष्ट नहीं होता. अग्निसेभी नहीं जलता. यदि दूसरे ग्रहमेंसे तारा तूटनेके साथ वेगसे आवे वा स्वयं गति करे तोभी वोह संयोग, भंगको नहीं पाता. किंतु उसके जेसे नियम हें उसी अनुसार न्यूनाधिक होता रहता हे. जेसे किरणें स्वच्छ पदार्थके साथ अथडावें तबही उनका दृश्यरुपमें उपयोग होता हे, इसीप्रकार उक्त प्रकारका पुंज, चेतनतत्वके साथ एकत्र होके रहते हैं, अन्यके साथ नहीं रहते, एसी उनकी योग्यता हे.

उपरोक्त अंतःकरण (पुंज) उपरोक्त बाह्य प्रकृति–पदार्थ वगेरेके संबंधसे कर्म वगेरे करता हे ओर उस अनुसार उस पुंजको जन्मांतरमें जाना पडता हे, जीव उनसे बद्ध हे, अतः उसकोभी उनके कर्मका फल भोगना पडता हे. इसका कारण आगें कहेंगे. शरीर प्राप्त होने पीछे उपरोक्त बाह्य प्रकृति वगेरे द्वारा अंतःकरणपर असर होता हे; अतः उस अनुसार उसकी स्थिति (दुःख सुख, कृति रागादि) होती हे वा यूं कहो कि उसके अमुक अमुक भागका रागादिरुप परिणाम होता हे. ओर वही अंतःकरण यथासंस्कार परिणाम ओर यथाइच्छा परिणाम, याने संस्कार ओर इच्छा अनुसार मगज (ग्रेमटर–सेंटर) ओर ज्ञानतंतुद्वारा काम करता हे. इस प्रकार शरीर, अंतःकरण ओर जीवका व्यवहार होता हे. एसे अनादिसे प्रवाह हे. यथासाधन (शरीर इंद्रिय) उपयोग होता हे. यही

[१] अष्टपुरीका वा सूक्ष्मशरीरका एक भाग.

विशिष्ट अदृष्ट पुंज प्रोटोपलाजममें छिपा हुवा होता हे (अ. १ सू. ३८६ । ३८७ की टीका यादमें लीजे). अब समझनेका यह हे.—

अंतःकरणके वा उसके भागके तमाम कृति, परिणाम ओर स्थिति (याने रागादि) ज्ञानस्वरुप जीवमें प्रकाशित होते हें, परंतु जेसे काचकी उपाधिसे प्रतिबिंबमें श्यामता, लघुता, वक्रता दोष होते हें वे उसका द्रष्टा अपने (बिंब) में मान लेता हे वा वेसा बिंबमें जान पडता हे, इसी प्रकार जीव तादात्म्यवत होनेसे वे (अंतःकरणके धर्म रागादि) अपनेमें देख पडनेसे उनको भावरुपसे अपनेमें मानलेता हे; इसलिये अपनेको कर्ता भोक्ता (बंध) जानता हे. किंवा जब वे स्थिति प्रकाशित--ज्ञेय होती हें, तब उनका ज्ञान होनाही जीवको राग द्वेष दुःख वगेरे रुप हें (भावरुप हें). सारांश जीव तो कर्ता भोक्ता नहीं हे किंतु शुद्ध हे, परंतु उसके ज्ञान स्वरुपका उपयोग अंतःकरणके साथ हो रहा हे, एसी स्थितिको स्वरुपका अज्ञान, एसा कहा जाता हे; इस अज्ञानके कारण जीवमें कर्तृत्व भोक्तृत्व भासता हे; इसीका नाम भावबंध हे. क्योंकि अनादिसे अंतःकरणमें बंधा हुवा हे, जुदा होनेका अवसर नहीं हे. जेसे नाटकद्रष्टाके ज्ञानका उपयोग नाटकमें हो रहा हे; अतः सम आनेपर अज्ञात रुपमें सिर हिल जाता हे; हंसी वा ग्लानी होजाती हे. वेसेही जीवकी सुरताका उपयोग अंतःकरणकी स्थितिमें हे, इसलिये उन स्थितिओंका अपनेमें दर्शन होता हे. इस वास्ते बंध नहीं तोभी बंधवत् तो हे ही, क्योंकि रागादिका अनुमंता हे. ओर भावनासे अपनेमें भावरुप मानता हे.

जब सृष्टिके प्रवाहमेंसे उत्तमकर्म--धर्म, ईश्वरोपासना ओर अध्यात्मज्ञान हुये परमाणुओंका जुत्थ जीवको मिले किंवा इसप्रकारकी संगति होनेसे उक्त अंतःकरणका दूसरे प्रकारका परिणाम होने लगे तो पूर्वोक्त रागादिवाले परमाणुओंका वियोग होजाता हे अथवा उनका भक्तिज्ञानरुप परिणाम होता हे तब जीव अपनेको शुद्ध जानता ओर मानता हे, वे सब प्रकृतिके थे एसा जानलेता हे. इसप्रकार हुये जो शुद्ध अंतःकरण हे वोहभी जीवसे जुदा पडजाता हे; क्योंकि स्वरुपज्ञान हुये पीछे (स्वस्वरुपमें स्वस्वरुप होनेपर याने स्वस्वरुपमें आनेपर) बाह्य प्रकृति आदिकी फोर्स अंतःकरणपर असर नहीं करसकती; क्योंकि उसमें पूर्ववत् जीवकी अहंत्व (स्वस्वरुपत्व भाव) रुप सत्ता नहीं होती ओर न उसका प्रयोजन हे याने उसका उपयोगभी नहीं हे किंतु पानीरहित मछलीके शरीर जैसा हे, इसलिये सो उस जीवनमुक्तके शरीरके साथही छिन्नभिन्न होजाता हे. इसप्रकार जीव शुद्ध हुवा हुवा

अति हलका होजानेसे उसकी गति उपरको होती हे, क्योंकि उसमें इच्छा प्रयत्नादि नहीं होते; किंतु स्वभावतः उपरको जाना पडता हे ओर जहां प्रकृति नहीं होती वहां ठेरजाता हे. स्वस्वरुपमें स्थित रहता हे, इसीका नाम मोक्ष हे. वहांसे आवृत्ति नहीं होती.—प्रकृतिके संबंधमें नहीं आता ओर ईश्वर अनंत होनेसे जीवभी अनंत हें; अतः मुक्तोंकी अनावृत्ति होनेसे सृष्टिका उच्छेद नहीं होता.

उक्त अणु थीयरीमें दूसरा पक्षकार यह कहता हे कि जहां जहां प्रकृति वहां वहां ईश्वर ओर जहां जहां ईश्वर वहां वहां प्रकृति हे, इसलिये परंपराकी संस्कारी जो प्रकृति उसका संबंध होगा ओर वहांसे आवृत्ति होगी; परंतु आवृत्ति होनेमें प्रबल हेतु न मिलनेसे यह पक्ष निर्बल रहता हे. वा तो मुक्ति होना नहीं मानसकते.

तीसरा पक्षकार इसका अपवाद करता हे–(१) उक्त भावना-भाव होना वा मान्ना रुप अवस्था सो तत्वमें असंभव. (२) भावना मंतव्यसे बंध वा मोक्ष नहीं होता. यथा--प्रतिबिंब बांका होनेसे मुख बांका न हुवा. (३) भावना मान्नेसे दुःखजन्य रुदन, वा में दुःखी सुखी एसा नहीं होसकता. (४) ज्ञानस्वरुपमें अज्ञान नहीं होसकता. (५) दुःखादि अवस्थाके ज्ञानको दुःखादि नहीं कहसकते. (६) अकारण अनादि बंध तो पुनः बंध होगा. (७) परमाणु ओर जीवोंका संख्यासे अनंतत्व असिद्ध हे. (८) जो इच्छारहित तो कर्तृत्व भोक्तृत्व असंभव. (९) ईश्वरमें जीवके स्वरुपका अप्रवेश यह दोष. (१०) कर्म, उपासना वा ज्ञानभी जीवकी इच्छा विना, यह केसी थीयरी. इ. ॥

परंतु तमाम कर्म ओर गुण तथा कर्म उपासना, दुःख सुख वगेरेकी व्यवस्था जीवके परिच्छिन्न हुये विना नहीं होसकती, ओर देखते हें तथा अनेक पक्षकार जीवको, कर्ता भोक्ता परिच्छिन्न मानते हें, इसलिये उपरोक्त तमाम बातोंको एक तरफ रखके परीक्षा करना चाहिये. वहांतक जीव परिच्छिन्न तत्व मान्ना उचित हे; क्योंकि परिच्छिन्न मानें तबही धार्मिक ओर व्यावहारिक व्यवस्था होसकती हे.[१]

---

[१]यदि स्वरुपमें स्वरुपका प्रवेश सिद्ध होजाय ओर विभु वस्तु (ईश्वर) में गति (क्रिया), इच्छा, प्रयत्न सिद्ध होते हुये स्वयं अनाधार सर्वाधार सिद्ध होजावे ओर अणुचेतनमें रागादि स्थिति सिद्ध होजावें तो त्रिवाद जैसा उत्तम अन्य सिद्धांत वा भावना नहीं हे, एसा में मानता हूं. अथवा दर्शनसंग्रहमें " अकलाद्वैत "का त्रिवाद लिखा हे सो ठीक हे. वहां भावनाही मुख्य बीज हे; क्योंकि दु-

सार यह हे कि जीव ओर मोक्षका विषय गुप्त-गुह्य-सूक्ष्म-अकथ्य-अनिर्वचनीय हे, मनवाणिका विषय नहीं ओर उसके खंडन मंडनका अंत नहीं हे; क्योंकि शंका समाधान बुद्धिके विषय ओर कल्पित हें; परंतु जो आप योग यंत्रद्वारा[1] परीक्षा करें याने प्रयोगिक थीयरीका आश्रय लें तो जीवात्माका जेसा स्वरुप होगा वेसा अकथ्य प्रकारसे अनुभवमें आजायगा; ओर उसके अनुभव हुये मोक्षके स्वरुपकाभी निर्णय होजायगा. वहांतक आपको खंडन मंडन करनेका अधिकार प्राप्त नहीं होसकता. आपको पुनः विचारना चाहिये कि अ. ३ में जीवात्मा ओर उसके मोक्षको अनेकांत ओर एकांत कहा हे, एसे उभय विरोधिपक्ष कहनेमें आशय क्या होगा, उसको आप नहीं जानते ओर जीवात्माके स्वरुपका अनुभव होने तक आप आशयको नहीं जानसकते. तोभी संक्षेपमें कुछ कहना चाहता हूं, शायद कुछ जानसको.—

मनुष्यका जीवन भावनामय हे, इसका कोई कामभी भावना--श्रद्धाके विना नहीं होता. (शं.) चोरी, जिना ओर खूनभी भावनासेही होते हें. (उ.) हां. परंतु जिसमें अपनी वा दूसरेकी हानी न होती हो एसी भावना होनी चाहिये, ओर वेसाही वर्तन होना चाहिये. यही प्रकार इस विषयमें हे. अर्थात हमको एसी भावना होनी चाहिये कि जो अन्य भावनासे उच्च हो तथा अन्य भावनासे ज्यादे लाभकारी हो; ओर उससे अपनेको वा दूसरेको हानी न हो किंतु लाभ हो, वोह त्रिवाद भावना हे. यद्यपि सर्वथा निर्दोष कोई भावना नहीं हे तोभी व्यवहारमें अन्य भावनासे उत्तम त्रिवादभावना जान पडती हे. ब्रह्मज्ञानके अधिकार प्राप्ति अर्थ अद्वैदवादोंमेंभी भेद (इसीप्रकारका द्वैत) अध्यारोपका स्वीकार हे.

जीव, ब्रह्मका खास अंश, ब्रह्म चेतन अज्ञानी, जीव दूसरेका बनाया हुवा, ब्रह्मही जीवरुप बनगया, जीव क्षणिक, जीव भ्रांतीरुप, जीव कर्ता--भोक्ता नहीं, जीवपर किसीकी सत्ता नहीं—सर्वथा स्वतंत्र हे, जीव, शरीरसे भिन्न कोई वस्तुही नहीं हे, इत्यादि भावना हें; परंतु इन सब भावनाओंमें दो बडे भारी दोष आते हें, (१) जीव, जितनाकि चाहिये उतना जवाबदार नहीं ठेरता, उससे व्यवहार तथा परमार्थमें हानि होजाती हे--याने परमार्थको प्राप्त करना मुशकिल पडजाता हे ओर व्यवहारभी बिगडजाता हे. (२) दूसरा यह के कर्मोंका फलदाता

षण भूषणरहित कोई पक्ष नहीं हे; अतः त्रिवादमेंही भावना हो तो अकलाद्वैतानुसार मानलेना ठीक होगा.

[1] आत्मानुभवार्थ योगकी रीति बसु. में लिखी हे.

दूसरा न होनेसे अंकुश नहीं रहता; जीव यथेच्छाचारी होसकता हे; परंतु इस त्रिवादभावनामें यह परिणाम नहीं निकालसकते. उपरांत अद्वैतभावनामें सर्वमान्य उपकारकचलन तथा धार्मिकव्यवहार पसरना मुशकिल हे; क्योंकि प्रथम तो अद्वैतभावना द्रढ होना कठिन हे ओर कदाचित होजाय तोभी क्रिरोडोंमेंसे किसी एकको होती हे ओर फेर तदनुसार वर्तन महा कठीन हे. इतनाही नहीं किंतु धर्म, व्यवहार ओर भक्तिमार्ग तथा इनकी मर्यादा तो द्वैतभावनासेही पार पडेंगे.[1] द्वैतमें त्रिवादसे इतर उत्तमभावना नहीं जान पडती; अतः धार्मिकमंडलको त्रिवाद भावनाको स्वीकारना पडता हे.

अब रही यह बात के त्रिवाद वस्तुतः सिद्ध हे या क्या ? इसका उत्तर उपर आचुका हे. आप यम नियमादि-योगसाधन करके इसकी परीक्षा करसकते हें. वहांतक याने योगसिद्ध विनाके मंडलमें यदि धर्म, नीति ओर भक्तिका प्रचार चाहें तो त्रिवादभावनाका प्रचार उत्तम हे.

योग, कर्मसिद्धि ओर उपासनासिद्धि (वेदांतसंग्रह देखो) के विदून नहीं होसकता. दोनों सिद्धिमें निर्दोष-ईश्वरकी स्तुति, प्रार्थना ओर ध्यानकी अपेक्षा हे. यद्यपि ईश्वर, उसकी स्तुति वगेरे करनेसे प्रसन्न होके कुछ दे वा भोगायेविना पापसे मुक्त करदे एसा नही हे; क्योंकि इस पक्षमें वोह न्यायकारी, व्यवस्थापक मानाजाता हे ओर खुशामदपसंद नही हे, तथापि वेसा करनेसे हमारा चित्त उत्तम शुद्ध होताजाता हे. सतकर्म ओर उपासनामें प्रवर्तता हे, यही फल हे. जेसे के प्रतिष्ठित सदाचारी पूर्वजोंके गुणकर्म सूचक ग्रंथ वा इतिहासके अभ्याससे वे हमको कुछ नहीं देते, परंतु हमको अवश्य कुछ न कुछ लाभ होता हे, एसेही ईश्वरकी स्तुति आदिसे हमको लाभ होता हे. (विस्तार भप. में हे). निदान एसे हुये हम योगको निर्विघ्न-सुखेन संपादन करसकेंगे. उससे ईश्वर, जीव, ओर मोक्षके स्वरुपका हमको कुछ लक्ष्यालक्ष्य होके हमको जो शंका हें सो निवृत्त होके हमको शांति होजायगी. जीव केवल अणु हे वा मध्यम हे वा विभु हे, एसा हम नहीं कहसकेंगे. किंतु शांत चुप होके दूसरोंके हित वास्ते कर्म उपासना बोधेंगे, ताके उनको सम्यक्ज्ञान प्राप्त होके सुख मिले.

[1] अहंग्रहउपासनासे यह बातें न तो प्रचारमें आसकती हें ओर न इनमें भावना रहती हे; किंतु यह भावना कदाचित आरण्यकको साधनरुपमें बताई गई हो. अन्यथा-व्यवहारीको इसका कोई फलविशेष नहीं हे.

उपरके कथनसे एसा नतीजा नहीं निकाल लेना कि इससे इतर भावना लाभकारी नहीं हें (देखो विभूषकमत); परंतु इतना जरुर कहेंगे कि समष्टिमंडलमें धर्मप्रवृति अर्थ दूसरी अन्य भावनाओंमेंसे त्रिवादभावना ज्यादे लाभप्रद हे. इसका संग्रहवाद ओर वक्ष्यमाण जीवनमतसे विरोध नहीं हे; क्योंकि तीनोंमें कर्मकी प्रधानता मानी हे.

यदि आप जो उक्त कथन वा त्रिवादभावनाको कल्पित मानते हो तोभी दूसरी कल्पित भावनाओंसे यह उत्तम भावना हे; क्योंकि धर्मप्रवृत्तिमें फर्स्टनंबर हे. जेसे कोई नीतिसत्कर्मबोधक कल्पित नॉवल हो तो वोह लोकमंडलमें लाभप्रद होपडती हे, एसे यहभी हे, एसाही मानलीजिये. आप इस संस्थाके फलपर ध्यान दीजिये, नहींके खंडन मंडनपर जाना हे; क्योंकि कोई कुछभी माने, परंतु कर्मको प्रधानता हे ओर तद्जन्य सुख दुःख अनिवार्य हें (१२० से १२५ तकमें वांचोगे) ओर कर्मफलकी व्यवस्था त्रिवादभावना जैसी अन्यमें नहीं रहती.

चूंके कोई संस्था स्थापन हुये विना पबालिकमें प्रचार नहीं होसकता ओर संस्थाके मेंबर यदि सदाचारी, प्रातिष्ठित, विद्वान, बुद्धिमान, समदर्शी, तटस्थ ओर देशहितैषि न हों तो संकुचित संस्था हानीकारक होपडती हे, इसलिये यदि हो तो एसे मेंबरोंद्वारा प्रचार हो. नहीं तो वर्तमानमें जो संप्रदाय-संस्था हें ओर जेसा उनका फल हे वेसा होगा. एसी एसी दृष्टिसे इस अध्यायमें अनेक शैली लिखनी पडी हें.

आपको ध्मानमें रखना चाहिये कि जो संग्रहवाद वा वक्ष्यमाण जीवनमतका विरोधी हो वोह धार्मिकमंडलका मेंबर नहीं होसकता; वोह त्रिवादका पक्षपाती, एकदेशी, वा धर्महठीला हे; कारणके तीनों शैलीका एकही रहस्य, एकही आशय, एकही निशान हे. एवं ज्ञानकांडसेभी त्रिवादीको विरोध न होना चाहिये; क्योंकि वोह इसका फल हे. (बस. में दोनोंका विस्तार हे) ॥ ६ से १३ तक ॥[१]

[१]संप्रदायी—कंठी, तिलक, माला, पंचकेश, केशलुंचन, मुंडन, वस्त्रोंका विलक्षणत्व, अवतार, दूत, देव, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तीर्थ, मुरदे बालना (वा गाडना), धूनी तपना, विभूति लगाना-इत्यादि उपसिद्धांत, सर्वथा खंडनीय हें अथवा यह मोक्षके साधन हें इसालिये मंडनीय हें, यह उभय भावना ठीक नहीं हें (सू. १४१ का विवेचन वांचो), तथापि जो विद्याद्वारा एक धर्मभावना होजावे तो इनमेंका अधिकभाग निरर्थक होजावेगा; इनका प्रचार आपही बंध पडजायगा. उसके

जीवनमत प्रकरण ५.

अब जो व्यष्टि समष्टिकी व्यवस्था याने जीवन सुखेन हो एसा चाहते हैं तथा यथाअधिकार परमार्थ प्राप्त हो एसा इच्छते हैं, उनके संबंधमें जुदा जुदा प्रकार लिखते हैं.—

व्यवस्थापकको जीवनमतसे (सुख फल) ॥१४॥ (सो जीवनमत यह हे).—

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, मागृद्धः कस्य चित् सुखम् ॥ सिद्धान्तः सर्व तंत्रोऽयं कथ्यते जीवनंमतम् ॥ (इसका हिंदी दोहा) **यावत जीवे सुखीजी, सुख परचित्त न भंग । सर्वतंत्र सिद्धांत यह, जीवनमतका अंग ॥ १५ ॥ यथादेशकाल, स्थिति, अधिकार, मान्यता सर्वतंत्र ॥ १६ ॥ यथा सत्यादि ॥ १७ ॥ मर्यादा बलवान होनेसे ॥ १८ ॥ ब्रह्मचर्य सृष्टिनियमानुकूल वर्तनसे तनसुख फल ॥ १९ ॥ विद्या विवेकसे मानसिकभी ॥ २० ॥ उद्योगसे आर्थिक ॥ २१ ॥ पूर्वोक्तसे दाम्पत्य ओर सांतानिक ॥ २२ ॥ बुद्धि आदिसे सत्ताका ॥ २३ ॥ अनासुरी देवी संपत्तिसे सिद्धिका ॥२४॥ प्रेमादिसे सामाजिक ॥ २५ ॥ सविवेक योगसे दोनोंका ॥ २६ ॥ संतोषसे परम ॥ २७ ॥ ओर योग्यनिष्कामतासे निर्लेपता तथा उपदेश परिणाम ॥ २८ ॥ यथाशक्ति यथाअधिकार कर्तव्यभावसे कर्तव्य ॥ २९ ॥**

वृत्ति.—

जिस व्यक्तिको जीवनकी व्यवस्था अभिमत हे वा समष्टिकी योग्य व्यवस्था अभिमत हे उसको मानवकर्तव्य याने जीवनमत अनुसार वर्तनसे सुखफल प्राप्त होसकता हे ॥ १४ ॥ सो **जीवनमत**[१] (मानव कर्तव्य) यह हे—

जबतक जीवन रहे तबतक अपने तनमनको अयोग्य दुःख न हो इसप्रकार वर्तता हुवा सुखसे जीना. ओर दूसरेके चित्तके सुखका भंग न करना अर्थात कुरीति, अनीतिसे परके तन मन धनकी हानी न करना. यह दोनों बातें सर्वतंत्र सिद्धांत हें (सबको स्वीकार हे वा स्वीकारना पडता हे), हे प्रिय ! इसका नाम **जीवनमत** हे अर्थात जीवन करनेका मंतव्य वा प्रकार वा जीवनकर्तव्य हे ॥१५॥

विना स्वधर्मके व्यावर्तक चिन्ह दूर होना मुशकिल हे, ओर उस उस चिन्हवालेको अनाचार करनेमें दाब होनेसे लाभकारीभी मानसकते हें.

[१] ग्रंथकार योजित हे. व्यवहारमें यथादेशकाल स्थिति मानता हे. वर्तमानकालमें अति उपयोगी जानपडता हे.

जो जो सर्वतंत्रसिद्धांत हें उनको यथादेशकाल, स्थिति, अधिकार ओर यथाशक्ति मान्ना तथा पालना चाहिये ॥ १६ ॥ जेसे के सत्य, अस्तेय, तन-मन-वाणीकी पवित्रता (शौच), दम (इंद्रिय निग्रह), शम (मनोनिग्रह—मन काबूमें रखना), धीवृद्धि, विद्यावृद्धि, धृति (धारणा—धीरज), क्षमा (योग्यक्षमा—टोलरेशन), अक्रोध, यह दस बातें सर्वको मान्य हें वा मान्य करनी पडती हें (१ क्रिोडमेंसे कदाचित १ को कोई १ नापसंद हो), यह यथाशक्ति पालने योग्य हें (इनका अर्थ अ. १ ओर संग्रहवादमें लिख चुके हें)[१] ॥ १७ ॥ क्योंकि जब तब नीति, मर्यादा (हक्क) बलवान होजाती हें ॥ यद्यपि युद्धकालमें अशांति ओर जिसकी लाठी उसकी भेंस (माइटइजराइट) होता हे, नीति न्यायका भंग होजाता हे, तथापि वोह थोडी मुद्दत रहता हे ओर उसका परिणाम सुलह, शांति, न्याय, नीति ओर मर्यादा होजाता हे; इसलिये सत्यादिका पालन करना चाहिये ॥ १८ ॥ (सृष्टिमें जितने सुख हें वे मनुष्यके अधिकारअनुसार प्रयत्नसे मिलते हें, यथा-) ब्रह्मचर्यपालन ओर सृष्टिनियमानुकूल वर्तनसे तनसुख फल होता हे; अतः जिसको शारीरिक सुखकी इच्छा हो वोह एसे वर्ते ॥ १९ ॥ विद्या ओर विवेक संपादन करनेसे (तन सुख ओर) मानसिक सुखभी फल होता हे; इसलिये जिसको मनसुखकी इच्छा हो वोह विद्या विवेकको संपादन करे ॥ २० ॥ उद्योग करनेसे आर्थिकफल होता हे; इसलिये जिसे अर्थ (द्रव्य) की इच्छा हो उसे लोकोपयोगी कोई प्रकारका सच्चा अच्छा धंधा--हुनर करना चाहिये ॥ २१ ॥ उक्त प्रकारवाले तन, मन ओर धन इन तीनोंके हुये पति पत्निको परस्परका ओर संतानका सुखफल होता हे ॥ २२ ॥ बुद्धि, तन, मन, धन, धर्म, विद्या, उद्योग, हुनर, कला ओर संप—इन दस बल करके सत्ताका सुख, यह फल होता हे ॥ २३ ॥ अर्थात जिस राजाकी प्रजामें बुद्धि आदि हों उस राजाको सत्ताका सुख--फल मिलता हे किंवा उस राज्य (राजा ओर प्रजा)को सत्ताका पूर्ण सुख प्राप्त होता हे;

[१] धर्म ग्रंथमें इन १० बातोंका व्याख्यान था जिसमें व्यष्टि परत्वे (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, साधु, राजा परत्वे ओर आपतकाल परत्वे) विभाग करके दरसाये गये थे. वर्त्तमानमें यह ग्रंथ नहीं मिलता. कभी जिसे उत्तम गुणकर्म अर्थात जिसे भूषण मानाजाता हे उसीको कभी दूषण मान्ना पडता हे, एसा देशकाल स्थिति परिस्थिति ओर परिवर्तनसे होता हे (अ. २ । ५१६ । ५२६ ओर त्रिवादका विवेचन यादमें लीजिये) ॥

इसलिये सत्तासुखके इच्छा करनेवाले राजा प्रजाको इसअनुसार वर्तन करना चाहिये याने १० बल संपादन करे ॥२६॥ सिंह ओर हाथीसे मनुष्य कमजोर हे तोभी, मनुष्य उनको प्रेमद्वारा स्वाधीन करलेता हे ओर उनका उपयोग करता हे—वे मनुष्यके साथ खुले हुये फिरत हें. इसीप्रकार जो राजा वा कर्मकारीवर्ग बल, छल, कलको छोडके प्रजाकी भलाई-उन्नति करनेमें विश्वास दिखावें, शुद्ध हृदयसे प्रजाको पुत्र वा मित्रके समान समझके वर्ते तो प्रजा उसके आधीन होजाती हे, प्रेमवश हुई तन, मन ओर धनसे उसपर कुरबान होजाती हे; एसा होनेसे राज्यकी वृद्धि, पुष्टी होती हे. राजा प्रजाको सुख सुखही होता हे. परंतु जो एसा प्रकार न हो किंतु फक्त बल, कल, छलकाही प्रयोग होता रहे तो राजा ओर कर्मकारियोंको कभीभी चेनके साथ नींद नहीं आती; क्लेशमेंही जीवन गालना पडता हे, ओर प्रजाकोभी सुख नहीं होता प्रत्युत क्लेशित रहती हे; उसका परिणाम अच्छा नहीं होता; अतः उक्त १० बल प्राप्त होनेकी आवश्यकता हे. क्योंकि संपबल हुये सब काम सुखकारी होंगे ॥ २३ ॥ आसुरीभावरहित जो दैवसिंपत्ति (तमोगुणरहित रजोगुणको दाबनेवाले सत्वगुण प्रधान जो गुणकर्म स्वभाव सो*) उसके सेवनसे सिद्धिफल होता हे; इसलिये जिसको अपने अधिकारयोग्य इष्ट सिद्धिकी इच्छा हो वोह दैवीसंपत्ति (उपरोक्त गीतासंग्रह यादमें लीजिये सो) संपादन करे ॥२४॥ प्रेम (परस्परमें हेत-प्यार), आरोग्यता (तन मन निरोगी-स्वस्थ), संप, विद्या (अत्यंजके पुत्र पुत्रि तकको यथायोग्य तालीम), समानता (साम्य अर्थात मनुष्यमात्रको समान जानके वर्तना-सबको यथायोग्य 'सम

---

*हुनर, विद्या, कला, बुद्धि, सायंस ओर प्रवृतिमार्गमें कुशल तथा उन्नत जो यूरोपकी प्रजा तद्गत जरमन, फ्रेंच इंगलेंड ओर रुस-इनमें सत्वगुणको दाबनेवाले तमप्रधान रजोगुणने उनको केसी स्थितिमें ला डाला हे अर्थात कैसरीजंग (जरमन और उनकी परस्परमें जो लडाई हुई हे सो) से यूरोपके तमाम राज्य ओर प्रजा बुरी स्थितिमें आपडे हें. क्यों? रजतमकी वृद्धि, धर्मभावनाका सुभाव नहीं, अध्यात्मशास्त्रका स्वप्नभी नहीं, उनके बदले नेशनाभिमान ओर "माइटइज-राइट" का दौरा. यदि इस उन्नतप्रजामें सत्वप्रधान-दैवीसंपत्तिका विस्तार होता, अध्यात्मविद्याका सत्कार होता, तो एसी दुर्दशा न होती. हरी !! इसलिये दैवीसंपत्तिकी वृद्धि ओर प्रचार कर्तव्य हे. 'जातिभेदरहित गुणकर्मके अनुसार मान्ना-वर्तना-अेकले वीर्यमात्रपरही नहीं. वारिसा-दायभाग यह दूसरा विषय हे.

दृष्टिसे देखना), परस्परकी रक्षा करना, दूसरेमें अतिरस्कार (टोलरेशन), स्वसंबंधमें स्वतंत्र परंतु सामाजिक नियमोंमें परतंत्रता, स्वजाति-स्वकोम-स्वदेशका अभिमान, उद्योग (खेती, व्यापार, हुनर, कला, नोकरी, जातमहनत), लोकमान्य नीति, सदाचार (सच्चा अच्छा-आचार-उच्चार-विचार), संग्रहसभा ओर राज्यभक्ति तथा ऐक्य (उद्देश, धर्म, विचार, संमतोपदेश, भाषा, लीपी, संवत, सिक्का, माप, तोल, सामान्य रीतरिवाज, न्याय कानून यह एक प्रकारके) समष्टि रुप ईश्वरकी भक्ति, इन सतरा १७ सामग्रीसे सामाजिकसुख (उन्नति) फल होता हे ॥ २५ ॥ इसलिये जिस राजाको प्रजाके सुखकी इच्छा हो, किंवा जिसको अपनी समाजकी उन्नतिकी इच्छा हो उसे इस अनुसार प्रचार करना चाहिये. प्रजाको ध्यानमें रखना चाहिये के—

जेसे एक एक वृक्षका समूह वन वेसे हरेक व्यक्तिका समूह राज्य हे, उसमें देवान वगेरे समान राजाभी प्रजाका सर्वोपरी सेवक हे परंतु अन्योंसे बडा ओर योग्य. प्रजामूल हे राज्य वृक्ष हे, मूलबलवान तो राज्यभी बलवान. जिस राजाकी प्रजा सुखी उसकी जगतमें प्रशंसा ओर वोह आपभी सुखी रहता हे, जिस राजाकी प्रजा दुःखी उसकी दुनियामें निंदा ओर आपभी दुःखी होता हे. हरेक राज्यमें कुछ न कुछ गंदा भाग होजाता हे ओर प्रजाके हजारों मुख तथा उसके अनेक विचार होते हैं इसलिये यह मानाजासकता हे के राजा सत्ताकसे प्रजासत्ताक ओर प्रजासत्ताकसे राजा प्रजासत्ताक राज्य अच्छा होता हे, कारणके राजाके भोग वास्ते प्रजा नहीं हे प्रत्युत प्रजाके वास्ते राजा होता हे. सारांश सत्ता क्या ? प्रजामंडलकी शक्ति, उससे राज्यका कारबार चलता हे. यदि प्रजा अपने इस स्वरुपको समझले ओर उसका उपयोग करे तो राजाकोभी सुखी रखे ओर अपनी उन्नतिभी करसकती हे. इससे यह सिद्ध होगया के सत्ता यह सत्ता वा कर्मचारी वा अमुक एक व्यक्ति वास्ते नहीं हे किंतु प्रजाकी रक्षा ओर उसके सुखके लिये हे.

सूत्र १९ । २५ का उपवाक्य

समष्टि व्यष्टिकी भक्ति कर्तव्य, इष्ट होनेसे ॥

इसका विवेचन परिशिष्ट (जो ग्रंथके अंतमें टांका हे उस) में बांचो. उसमें स्वसंबंधी ईश्वरकी नोधा भक्ति ओर समष्टि ईश्वरकी उपासना याने देशभक्तिकाभी वर्णन हे. यहां न लिख सके.

अब पूर्व प्रसंगपर आते हैं. उपर कहे हुये राज्यकी भक्ति (सहायता) करने ओर उपरोक्त सत्ताकी महेरबानीसे उपरोक्त सामाजीक उन्नती होसकती हे.

विवेक (सत् असत्-चिदचिदका निर्णय) सहित जो योग (शुद्ध चितका निरोध) उससे इह (सांसारिक प्रेयस्) ओर परलोक (श्रेयस्) का सुख फल होता हे (योगशास्त्र देखो) ॥ २६ ॥ यम ५ ओर नियम ५ के पालनेसे तनमनकी शुद्धि-सफाई रहती हे, व्यवहार उत्तम होता हे ओर आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान करनेसे समाधि होजाती हे, उससे मानसिकशक्तियें खिलती ओर बढती हें, तथा जो आत्मसंबंधी विवेक किया था उसकी परीक्षा-ख्याति (अनुभव) होजाती हे (जीव, आत्मा अणु हे वा मध्यम वा विभु, जड हे वा चेतन, अनादिअनंत (नित्य) हे वा सादिसांत, उसका बंध मोक्ष क्या, तथा अंतःकरण-प्रकृति क्या, ओर केसी-इत्यादि विषयोंकी ख्याति याने भान होजाता हे). इस विवेकख्यातिके हुये-स्वतःग्रहण हुये, जीवतेही मुक्त, (जीवनमुक्त) होजाता हे; विदेहमुक्ति पास होजाती हे; इसलिये जिसको व्यावहारिक सुखकी इच्छा हो वोह यमादि करे ओर जिसे पारमार्थिक सुखकी इच्छा हो वोह समाधिका अभ्यास करे. शोक ! इस वर्तमानकाल विषे, योगदर्शनमें जो क्रियायोग लिखा हे उसका अधिकारी कोई विरल मिलता हे.—याने वर्तमानमें समाधियोग होना मुशकिल हे, इतनाही नहीं बलके आर्य प्रजाके प्राचीन ग्रंथोंमें जो तंत्र, स्प्रीट, तैजस, तथा योग विद्या ओर इन विद्याके जो फल लिखे हें उनके प्रयोग बतानेवाले नहीं रहे या नहीं हें, उसपर छोगा यह के वर्त्तमानकी आर्य प्रजाभी पश्चमकी रोशनीमें अंजाके उनको कल्पित कथा कहने लग गइ हे. हम इस नोरंगी प्रजासे सविनिय इतनाही निवेदन करना चाहते हें के विशेष नहीं तोभी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, ओर अपरिग्रह यह पूर्वोक्त ५ यम सर्व प्रकारसे ३ वर्ष तक तो पालके देखें. उसका इतना अपूर्व फल प्राप्त होजायगा कि आपको प्राचीन आर्य महान पुरुषोंमें तथा उनके ग्रंथोंमें अवश्य श्रद्धा--विश्वास पेदा होके कल्याणके पात्र बन जाओगे. ॥ २६ ॥

हरेक प्रकारकी स्थिति प्राप्त होनेपर संतोष रखनेसे परमसुख फल होता हे ॥२७॥ इसलिये जिसको परमसुख पानेकी इच्छा हो उसे सब प्रकारकी कामना, वासना छोडके धीरज ओर संतोषका आश्रय करके वर्तना चाहिये; कारणके अन-

हुवा न हुवा ओर अहोतव्य न होगा किंतु होतव्य होहीगा (२। ६५७। ६५८ ७३१ देखो); अतः सर्व प्रकारकी स्थितिमें संतुष्ट ओर मग्न रहना चाहिये॥ संतोषका यह चिन्ह हे के किसीमें राग द्वेष ओर किसीमें हर्ष शोक न हो ओर यह जब होता हे कि सबमें यथायोग्य समानदृष्टि रखी जाय, जब समदर्शीपना होगा तब अवश्य संतोषजन्य परमसुख भोगसकोगे॥ २७॥ ओर योग्य निष्कामतासे[१] निर्लेपता फल होता हे तथा इस निष्कामी पुरुषके उपदेशका परिणाम (ग्रहण फल) निकलता हे, यह फल होता हे॥ २८॥ अर्थात अपनी जरुरत कम हो ओर जो हों सो पराधीन न हों किंतु उनका पूरा होना स्वाधीन हो वा अपना परमें स्वार्थ न हो किंतु विवेकबुद्धि हो, तब किसी ज्ञानवान परोपकारीको निष्कामता प्राप्त होती हे, ओर तबही उक्त फल होता हे. अपना कर्तव्य (फर्ज) समझके काम करना, उसके फलकी इच्छा न रखना, किंवा अपना स्वार्थ जिसमें न हो एसा परार्थ अच्छा सच्चा काम करना, उसका नाम निष्कामकर्म हे. तद्वान निष्कामी कहाता हे. एसा विद्वान विवेकी, रागद्वेषरहित निर्लेप रहे तथा उसका उपदेश ग्रहण हो यह स्पष्टही हे. प्रकृतिवादि यह कहेगा कि एसा होना असंभव हे, परंतु यह उसका कथन सर्वअंशमें मान्य नहीं होसकता. हां लाखोंमेंसे एसा कोई एक निकलेगा. इस सवालके जवाबका विस्तार त्रिवादगत कर्मयोग प्रसंगमें तथा कर्मविवेक ग्रंथमें आचुका हे॥ २८॥ दुःखरहित सुख सब चाहते हें ओर संसारमें उपरोक्त सुखोंसे इतर प्रकारका सुख देखने सुन्नेमें नहीं आया हे; इसलिये उपरोक्त सुखोंमेंसे जिसको जिस सुखकी इच्छा हो उसको उसकी प्राप्तिअर्थ उपर कहे अनुसार **यथाशक्ति यथाअधिकार कर्तव्य भावसे कर्तव्य** हे. नहीं के बाहिर कुछ अंदर कुछ, भावना कुछ ओर करना कुछ. सारांश उत्तमनिष्ठासे करे तो वोह फल होनाही चाहिये॥ २९॥ इस जीवनमतका व्याख्यान जुदा हे. जिसमेंसे समष्टिरुप ईश्वरकी ओर व्यष्टि भक्तिका भाग ग्रंथके अंतमें परिशिष्ट विषे टांका हे. सार यह हे-(सोरठा) जीवन दे ओर जीव, करभर प्रत्युपकार; कर जीवनमतकी नीव, सुनी **आत्मा** रीत यह॥ भावार्थ-तू सुखसे जीव, ओर दूसरोंको सुखसे जीने दे; आस्तिक नास्तिक उभयको यथाकर्म फल होता हे यह नियम हे, इसलिये

[१] निष्कामताका ग्राह्य-उपयोगीवर्णन, त्रिवादमें तथा हिंदी ओर इंग्रेजी **सांख्यपयोग-कर्मयोगमें** करचुके हें, उसको देखना चाहिये.

जेसा करेगा वेसा उसका फल भोगना होगा; तेरेपर माता, पिता, गुरु, सोसाइटी, राज्य, प्रजा वगेरे तमाम संसारका उपकार हे, उन्हीकी सहायतासे तूं योग्य हुवा हे; इसलिये इस उपकारका बदला कर अर्थात यथाशक्ति अशक्तोंकी ओर प्रजाकी सेवा कर. इसप्रकार व्यष्टि समष्टिकी सेवा करता हुवा सुखसे जीव. आत्मानंदने जीवन (जींदगी-लाइफ) मतकी यह बुनियाद सुनी हे अर्थात इसप्रकार वर्तनसे सुखपूर्वक जीवन होता हे* ॥ १४ से २९ तक ॥

संक्षेपमें **विवेचन**—जिससे जीवन सुखेन हो उसे किंवा योग्यजीवन करनेवालोंका जो मत हे उसे जीवनमत कहते हैं, जीव ईश्वरादि विषय दुर्बोध्य हैं, उनका अनुभव किसी विरल--विवेकी योगीको होसकता हे अर्थात किरोडोंमेंसे कोई एक उसके सामान्य स्वरुपको कदाचित पा सके; नहींतो इस विषयमें पडनेवालेको भ्रम, संशय, धर्महठ, वा धर्मद्वेष होजानेकी संभावना रहती हे, ओर उससे साधकको उलटा दुःख होजाता हे याने जीवन, एक प्रकारमें दुःखमय होजाता हे (जेसाके देखते हैं).—

" ज्ञानी, अज्ञानी वा सबको अंतमें किसी न किसी रुपमें जीवनमतका आसरा लेना पडता हे. जो मानवमंडलमें निश्चित नीति होगई हैं (यथा सत्यादि) वेही धर्म (कर्तव्य) ओर जो अनीति मानी गई हैं (यथा असत्, खून, चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात वगेरे) वे अधर्म (अकर्तव्य–हेय–त्याज्य) हैं. शुद्ध स्वतःसिद्ध एकही नीति हे जिसे सत्य कहते हैं. शेष नीतियें प्रवर्तिका वा व्यवस्थापिका हैं. कर्म कियेविना जीवनही नही होता. लोकहितैषिमंडल परको प्रवर्तानेवास्तेभी उसीको धारण करते हैं. कोई न कोई रुपमें जीवनकलहमें (प्राणकी रक्षा करनेमें) उतरना पडता हे. ईश्वरादि विषयोंमें उतरेविना जीवन होसकता हे." इत्यादि विचार करनेसे जीवनमतानुसारही वर्तन ठीक जान पडता हे ॥

इस प्रसंगमें मंतव्य सत्य ओर कर्तव्य हित १, सत्य याने विवेकबुद्धि (मगज) ओर हित याने हृदय–भावना २, सत्य = सचाइ, ओर हित = साम्यभाव – प्रेमभाव ३ इन अर्थोंको ध्यानमें रखके जीवन करते रहें तो जीवनमतका उद्देश पूरा होजाता हे.

---

*जीवनमतमें ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, मोक्ष प्रकृति, मोक्षके साधन, सृष्टिरचना, इत्यादि विवादित विषयोंमें उतरनेकी जरुरत नहीं हे; क्योंकि अ. ४।१२० से १२८ तकके अनुसार कर्मको प्रधानता हे; इसीलिये सू. २६ में योग्यपदका ग्रहण हे ॥

जीवन क्या ओर क्यों, यह प्रासंगिक सवाल हे. इसका जवाब देना सहेल नहीं हे; तथापि जड, चेतनवादि–उभयके विरुद्ध न पडे एसा संक्षेपमें यथामति उत्तर लिखते हें.—

सब सफल हें निष्फल कुछभी नहीं हे; इसलिये सवालका जवाब सहेजमें होसकता हे. एसे रसायणीयसंयोग ओर संबंधका नाम **जीवन** (लाइफ) हे कि उन संयोगी, संबंधियोंके गुणकर्म स्वभावका उपयोग हो. (शं.) केसा उपयोग हो. (उ.) जेसी उनकी योग्यता हो. (शं.) क्यों हो. (उ.) निष्फलत्वका अभाव हे. (शं.) एसा केमीकल कंपोंड बने यह क्यों ? (उ.) अग्नि एसी क्यों हे, इस जेसा यह अतिप्रश्न हे, उत्तरके योग्य नहीं हे; क्योंकि मूलतत्व अनादिसे जेसे हें वेसे हें ॥ लाइफ क्यों हे इसका उत्तरभी उपर आचुका अर्थात संयोगी संबंधीका वा उनके पुंजका एसा उपयोग हो कि जो उनके विरुद्ध अर्थात सृष्टिनियमके प्रतिकूल न हो. इतने लक्षणसेही धर्म, अधर्म, नीति, अनीति, विधि निषेध ओर समष्टि व्यष्टिकी व्यवस्था अव्यवस्थाका निराकरण होजाता हे (विशेष नीति मीमांसा ओर कर्मविवेकग्रंथों में हे); इसलिये हरेकको अपनी योग्यता अनुसार कर्तव्य, ज्ञातव्य ओर प्राप्तव्य हे.

जीव ओर जीने दे, कर ओर भर (जेसा करेगा वेसा फल मिलेगा), सृष्टिमें जेसे आप ओर हम जीवनके अधिकारी हें, वेसेही सब अधिकारी हें; इसलिये अनीति--अन्यायसे दूसरेके तन मन धन, अधिकार (हक) वा सुखका भंग नहीं करना चाहिये; क्योंकि एसा वर्तन अपनके साथ हो तो बुरा जान पडता हे, वेसेही दूसरोंके लिये जानना चाहिये. अपने जेसा दुःख सुख ओरोंकाभी समझना चाहिये. सारांश दूसरेको दुःख न हो एसे ओर अपने तन मनको दुःख न हो एसे प्रयत्न ओर सदाचरण करके सुखसे जीना चाहिये. जो अपनेको परलोक (मुक्ति) का अधिकारी मानके कुछ करते हें उनकेभी विरोधी होनेकी अपेक्षा नहीं; क्योंकि कर भरका नियम हे. अज्ञानी बालकको ताडन उसके हित वास्ते कुरीति नहीं. एक दुष्ट, चोर, अन्यायी, वा जालिमको शिक्षा देनेसे हजारोंको सुख होजाता हे ओर अंतमें उसकाभी हित होता हे; अतः अनीति नहीं हे ॥ (जो होसके तो दुःखियाओंका दुःख दूर कर) ॥ इतना सिद्धांत (जीव, जीने दे, कर भर, यथा शक्ति उपकार कर) सर्वतंत्र (सबको मंजूर) हे. यह सिद्धांत एक किरोडमेंसे कदा-

चित कोई एक आपस्वार्थबाजको मनमें नागवार गुजरे (प्रतिकूल जान पडे).[१] (शं.) माता पिताको दुःख हुये विना हम न पेदा हों ओर न पलसकते हें; गाय-बेल-अश्वादि जानवरोंको दुःख दिये विना हमारी जिंदगी नहीं होसकती; इसलिये दूसरेको दुःख दियेविना जीवन मात्रा यह कपोलकल्पना हे. (उ.) माता पिताको हमने हमारी इच्छासे दुःख नहीं दिया; किंतु माता पिता संतानकी कुदरती बात हे-अनिवार्य हे. (पशु पक्षीकोभी देखो). इसके सिवाय उनकी सेवामें आनेवाले हें; इसलिये शंका व्यर्थ हे. गाय बेलादिके साथ जो माइटइज-राइटवाला व्यवहार न हो[२] ओर अर्थाअर्थी प्रकार हो अर्थात उनकी सेवा करें, उ-उन्हें पालें, तथा उनको सुखी करें ओर उनसे यथायोग्य कामभी लें तो कोई वि-रोध नहीं आता,[२] नही तो अन्याय हे (जेसे के वधिया करना, भूखा रखना), विशेष उपर कहा गया हे. अब रही यह बात के दुःख दियेविना जीवन नहीं होता, इस सिद्धांतको पालसकें तोभी न पालना वा आपतकालमें अन्यथाहोना वा अर्थाअर्थी करना यह दूसरी बात हे; क्योंकि परको दुःख दिये विना जीवन हो-सकता हे. एकही बात एकको कभी धर्म, वही कभी अधर्म तद्वत् किसीको जो धर्म वही कभी उसको अधर्म होजाती हे; इसलिये हरेक ज्ञातव्य, कर्तव्य, ओर प्राप्तव्य यथादेशकाल, स्थिति ओर परिस्थिति ओर अपने अधिकार अनुसार क-र्तव्य होता हे, सबको सब नहीं (अ. २ ५२९ देखो). सत्यादि १० बातें अपनी आत्माको, सबकी आत्माको प्रिय हें, सृष्टिनियमके अनुकूल हें, युक्ति परिक्षासे सु-खप्रद हें ओर उनसे दुःख परिणाम नहीं आता; अतः सर्वतंत्र हें, ओर इसलिये कर्तव्य हें (विशेष बस. ३१ । ३२ ओर धर्मव्याख्यानमें हे); असत् ओर उसकी संतान-छल, कपट, विश्वासघातादि, ओर सत्यादिसे जो विरुद्ध सो-अधर्म हें, त्या-ज्य हें. युद्धकालमें अशांति होती हे; क्योंकि माइटका बल हे ओर युद्धाभाव-उद्योगकालमें शाति होती हे; क्योंकि राइट (हक नीति) का बल होता हे तथा

[१]डारवीनश्री, हरबर्टस्पेंसर साहेब तथा जडवाद, चेतनवाद, अद्वैतवाद, द्वैत-वादके ओर ब्रह्मवित तथा अज्ञानी इन सबकी आत्माके ओर सृष्टिनिमियमके अ-नुकूल हे, इसलिये सर्वतंत्रसिद्धांत कहा हे.

[२]जो वृक्षोंसे प्रतिकूल संयोग न हों तो थोडे वर्षोंमेंही अन्य प्राणियोंके रहने वास्ते जहग न मिले, इतनी वृद्धि होजाय. एवं बकरे, हाथी, गाय, बेल वास्ते ज्ञा-तव्य हे. अ. १ विकासवाद यादमें लीजिये.

अंतमें माइट (बलवान) की जरुरत पूरी होनेपर उसको न्याय नीतिपर आना पडता हे. नहीं तो उसके माइटपनेका (बलका) कोई न कोई प्रकारसे नाश होजाता हे (अ. २ । २४६ से २४८ तक याद करो) ॥

जिनमें योग्यता नही, जो बलहीन, अशक्त, रोगी, स्पर्धाहीन, अनुत्साही ओर भयभीत हें वे व्यक्तियें वा समष्टिरुप मंडलियें (प्रजा-जाति-कोम) पराधीन होके अंतमें नाश-होजानेवाली हें, जेसे के पूर्वमें होचुकी हें.

त्यागीको नैष्ठिकब्रह्मचर्य (अष्टमैथुन रहित) ओर गृहस्थको गृहस्थब्रह्मचर्य पालनेसे ओर उभयको सृष्टिनियमानुकूल वर्तनेसे शरीरकी आरोग्यता संपादन होती हे, उत्साह ओर बल बना रहता हे, उत्तम भोजन न मिले तोभी तंदुरस्ति कायम रहती हे; अब इतना हुये विद्या, विवेक हो तो मानसिक सुखभी होता हे; क्योंकि पापिनी–चिंता नही सताती, ओर अपनी जरुरतको पूरी करसकता हे. उद्योगमें चतुर होजाता हे उससे यथाजरुरत द्रव्य पेदा करसकता हे, उससे आर्थिक सुख मिलजाता हे. तृष्णाका पार नहीं हे; तमाम दुनियाकाजितना धन होजावे यह आर्थिक सुख नही हे किंतु हमारी कुदरती जरुरत पूरी होजावें, यही आर्थिक सुख हे ओर वोह नीतिपूर्वक हो तबही सुख होगा; अनीतिसे जो अर्थ संपादन होना हे वोह दुःखका मूल होता हे ॥ १९ । २० । २१ ॥ यह ३ सुख जिसको हों उसीको स्त्री, पुत्रका सुख होगा. अर्थात एसेकी कन्या विदुषी, सुशील, निरोगी, प्रेमी, सभ्य, पातिव्रत्य पालनेवाली होगी, वेसी स्त्री मिलनेसे जीवनपर्यंत आनंद रहता हे. जो माबाप ओर पतिमें उक्त तीनों सुख न हों तो स्त्रीका सुख मिलना दुर्लभ हे. जब मातापिता, पति पत्नि, उपर कहे जेसे हों तो उनका पुत्र आज्ञाकारी, मातापिताका सेवक ओर विद्वान सदाचारी-धर्मात्मा हो यह स्पष्टही हे ओर एसे पुत्र सुखदाता हों इसमें क्या कहना हे. एसे कुटुंबमें यदि ज्वारकी रोटीभी मिले तोभी वोह विषयासक्त, तृष्णाग्रसित–श्रीमंतोंसेभी उत्तम हे ॥ यहां अ. ३ । १०४ का व्याख्यानभी देखना. ओर उद्योग संबंधमें जापान, अमेरीका ओर इंगलेंड, जर्मनकोभी याद करना चाहिये ॥ २२ ॥

सू. २३ । का आशय स्पष्ट हे, स्वयं विचारिये. सू. २४ के वास्ते उपर्युक्त गीतासंग्रहगत अ. १६ के वाक्य देखो.

सू. २५ वास्ते स्वयं विचारिये. ओर वक्ष्यमाण समष्टिकी **नवधाभक्ति** कर्तव्य हे. २५ गत राज्यभक्तिका यह अर्थ हे कि राज्य अर्थात राजा (सत्ता)

ओर प्रजा उभय. याने राजाविशिष्ट प्रजा ओर प्रजाविशिष्ट राजा, यह राज्यका अर्थ हे. उसकी भक्ति करना अर्थात उसकी उन्नति हो, उसके दुःख कटें, उसको सुख हो, वोह स्वतंत्र हो, परतंत्र न रहे ओर उसको उसके योग्य सामग्री प्राप्त हो, इतना होने वास्ते तन मन धनसे यथाशक्ति उसकी सेवा करना, यह राज्य भक्ति कहाति हे, सो हमारी (अपने आपकी)भी भक्ति हे; क्योंकि हम उस समष्टिके अंग हें. यह भक्ति यथादेशकाल--स्थिति--परस्थिति अनेक प्रकारवाली ओर अनेक प्रकारसे होती हे. वर्तमानमें जैसी समष्टिभक्ति (राज्यभक्ति)की अपेक्षा हे उसका प्रकार अध्याय ४ के अंतमें वांचोगे. बाकी सू. २५ गत प्रेमादिका व्याख्यान स्पष्ट हे अथवा स्वयं विचार लीजिये.

सू. २६ वास्ते पतजलीदर्शन (योगदर्शन) प्रसिद्ध हे सो देखिये. सू. २८के वास्ते बस. गत कर्मयोग देखिये. किंवा अ. ४ त्रिवादवाला, निष्कामप्रसंग यादमें लीजिये. यदि अपन वेसे बनके दिखावें तो हमारे ओर आपके उपदेशका फल जलदी होजायगा. सू. २७ स्पष्टही हे.

(शं.) अ. ३ में सू. ५५० से ५५३ तकमें सबका खंडन किया हे. सू. ५५४ से ५६२ तकमें लक्ष्यालक्ष्य--अवाच्य कहा हे, तो फेर यह जीवनमत कहांसे बताने लगे. आश्चर्य हे ! (उ.) इस शंकाका जीवनमतसे कोई संबंध नहीं हे; क्योंकि यहां तत्वनिर्णय हे ओर यह व्यावहारिक विषय हे. तथापि संक्षेपमें उत्तर यह हे कि जीवनमत कोई सप्रदाय-मत-पंथ नही हे. शुद्धनीति ओर प्रवर्तिकानीति एसे २ भेद कहे हें. पक्षपातरहित किसी विषयका निर्णय करना वोह शुद्ध-सत्यनीतिका विषय हे, जेसे के ५५० वगेरे ओर ५५४ वगेरेमें हुवा हे. ओर जीवनमतमें जो लिखा हे वोह प्रवर्तिका नीतिका विषय हे. यद्यपि सत्यसे विरुद्ध वा असत्य नहीं हे किंतु सद्व्यवहार हे; तथापि शुद्धसत्यमें एकही दृष्टि होती हे ओर प्रवर्तिकामें व्यष्टि समष्टिकी व्यवस्था ओर उनको सुख मिले एसे आचार विचार होते हें, इतना अंतर हे.

इसलिये जिन आचार विचारसे जनमंडलकी उन्नति हो वेसोंका प्रचार करना अर्थात् प्रेमादि, नेकी--सचाईकी प्रवृति करना १, जिससे आत्मजिज्ञासुको अनुभव होजावे एसी उत्तम योजना करना २, व्यष्टि समष्टिका जीवन सुखसे हो एसे उपाय लेना. एसा करनेमें उसके मूल (जीव प्रकृति मोक्षादि) के विचारनेकी

जरुरत नहीं हे; इसलिये इस जीवनमतका उद्देश हे. नहींके मतमतांतरके खंडन मंडन वा उनके निर्णयमें प्रयोजन हे.

जीवनमतका आशय कुदरती शरीरप्रबंध ओर कुटुंबप्रबंधसे समझ सकते हो. शरीरमें एक अवयव सडा हुवा हो तो उसके असरसे दूसरे अवयवोंको हानी पहोंचके शरीरके कारोबारमें ग्वामी आती हे, तद्वत एक अवयव रोगी होजानेसे शरीरकी डयूटी पूरी नहीं होती. यदि शरीरके सब अवयव आरोग्य हों तो एक दूसरेकी (परस्परकी) सहायतासे शरीरका राज्य अपनी डयूटी बजाता हे, सुखी रहता हे. कुटुंबमें जो मुखियाव्यक्ति वा अमुक चलतीव्यक्ति दुराचारी (असत्वादि, व्यभिचारी, जुगारी, चोर, द्वेषी, क्रोधी, अनीतिबाज-शेतान-पापी) हो तो ‘ सोहबत असर ’ इस नियमानुसार तमाम कुटुंबको दुराचारी होजानेका निमित्त बनजाती हे. यदि सदाचारी (सच्चे--भले--अव्यभिचारी, नीतिबाज, प्रेमी, साम्यभाववाली, परस्परकी रक्षक--सरल- इत्यादि सदगुणकर्मसंपन्न) हो तो तमाम कुटुंबको सदाचारी होजाने ओर सुखी रहनेका निमित्त बनजाती हे. यदि माता पिता वा कुटुंबका एक मनुष्य कोइ चेपी रोगवाला हो.तो उनकी संतानमेंभी उस रोगकी असर उतरेगी जेसाके श्वास, क्षय, बवासीर, आतशक, चक्षु वगेरेके रोगियोंकी संतान देखते हें; क्योंकि ‘ तुख्म तासीर ’ यह नियम हे. किंतु उस रोगका असर संबंधिओंकोभी होजाता हे. इसी प्रकार निरोगी, शुद्धाचार--शुद्ध विचारवाले सत्वगुणी माता पिता वा कुटुंबके मनुष्यका असर उनकी संतान ओर संबंधियोंपर होता हे याने उत्तम प्रभाव पडता हे.

इसी प्रकार समष्टिमें हे. याने अपन समष्टि (जनमंडल) रुपी शरीरके अमुक अंग हें वा मानवमंडलरुपी कुटुंबके मेंबर हें. यदि हम दुराचरणी--अशुद्ध गुणकर्मवाले बनें अथवा वेसे हें तो दूसरे अवयव (मनुष्य) वा दूसरे मेंबरोंको दुराचारी--अशुद्ध गुणकर्मवाले बनानेमें निमित्त होते हें अर्थात दूसरेको दुःखिया करने ओर आप दुःख पानेके निमित्त होजाते हें. अपना फर्ज छोडके बडे पापी बनते हें.

उदाहरण—क. वेश्याके पास गया. उसने अपने तन, बल, वीर्य, द्रव्य, कीर्ति, धर्म, लाज, विद्याअभ्यास, सुसंगप्राप्ति, इनकी हानी करी; इतनाही नहीं किंतु बहुतोंका दुःखप्रद होपडा हे. सोजाक वा आतशकका रोगी होगा, उससे द्रव्य, शक्ति ओर पुरुषार्थहीन होनेसे कुटुंबकी सेवा न करसकेगा किंतु अपनी रक्षा

कराने वास्ते दूसरोंको भाररुप होपडेगा. वेश्याके पास जानेसे उसकी स्त्रीको क्लेश होगा; क्योंकि उसने पतिके हक ओर आनंदका भंग किया हे, उसकोभी रोगी बनावेगा, उसकी संतानभी रोगी उत्पन्न होंगी, दूसरे संबंधी वेसा कृत्य सीखेंगे ओर इस--व्यसनीसमान दुःखके भोगी बनेंगे ओर दूसरोंको दुःखी होनेके निमित्त होंगे; तथा क. में जो वीर्यबल हे, उसमें उसके बालक ओर कुटुंबियोंका भागभी हे; क्योंकि वीर्यबलसेही धंधा रोजगार होता हे, उस भागको क. ने दूसरेमें खराब किया हे, इसलिये पाप किया हे. इससे ज्यादा पाप क्लेश वे करते हें कि जो परस्त्रिका संग करते हें. (प्रकृतिविवरणमें विस्तार हे).

इसप्रकार दुराचारीपुरुष, तमामको नहीं तोभी सोसाइटीके अमुक भागको दुःखका निमित्त होजानेसे पापी ओर दुःखी होता हे ओर सत्ता तथा सोसाइटीका शिक्षापात्र ठेराया गया हे; अंतमें वोह क. तो मर जायगा परंतु उस द्वारा मंडलमें जो, कुप्रभाव पसरा हे वोह रहजावेगा. यही उसका बंध हे, यही उसको नरक हे.

ओर यदि हम सद्गुणकर्मवाले बनें वा हें तो दूसरे अवयव वा दूसरे मेंबरोंको सदाचारी, उत्तम गुण कर्मवाले बनानेमें निमित्त होते हें अर्थात दूसरेको सुखिया होने ओर अपने आप सुख पानेके निमित्त बनते हें. अपना फर्ज बजानेसे धर्मात्मा (उत्तम पुरुष) होजाते हें; पीछे हम तो चलें जायंगे, परंतु अपन द्वारा मंडलमें जो सुप्रभाव, पसरा हे वोह रहजावेगा. यही अपनी मुक्ति ओर यही अपना स्वर्ग मान लो.[१]

(शं.) एसे साम्यभाव रखने ओर वर्ततमें धर्म ओर सोसाइटी (संकुचित जाति मंडल) आडमें पडते हें. यथा--हमारे धर्म--पंथको न स्वीकारे वा छोडदे वा संप्रदायका चिन्ह तोड डाले वा जिस तिसके साथ खान पान करे तो उसको धर्म वा सोसाइटीसे बाहिर करदो, उसके साथ रोटीव्यवहार बंद करदो. इ. इसका क्या करना; क्योंकि धर्म वा सोसाईटी (जातिबंधन) के विना जीवन व्यवहार नहीं होसकता. (उ.) प्रथमतो जो सर्वमान्य बातें लिखी हें, उनको

---

[१]बुद्धसे पूर्व दत्तात्रेय, अष्टावक्र वगेरेकी ओर पीछे बुद्धदेवादि जितने आजाद पुरुष हुये हें उनकी ओर पच्छमके नेशनवाद ओर विकासवादकी यही थीयरी–शैली थी ओर मंतव्य था तथा हे. आर्यावर्तमें वर्तमान विषे यह पद्धति नष्ट पर्याय होगई हे, तथापि दूसरे देशोंमें अपने अपने लक्ष्य–उद्देश्य वास्ते इस पद्धतिका अनुकरण हे.

धारण करो; ओर साम्यदृष्टि रखो तो आपपर जनमंडलकी भावना अवश्य आजायगी. उस पछि धर्म वा सोसाइटीमें जो असाम्यवाद वा जो अनुचित मंतव्य रीतरिवाज हों उनको लाभहानीसहित सभ्यभाषामें समझावो, ओर बालक बालकियोंको संग्रहवादसहित जीवनमत सिखा देनाचाहिये. एसा करनेसे आपही शनैः शनैः उत्तमपरिणाम निकल आवेगा. परंतु उद्धत होके सोसाइटी वा वर्णाश्रमके धर्मोंका खंडन मंडन करना, यह जनमंडलको हानी पहोंचाना हे. जहांतक दूसरी उत्तमरीति दाखिल न करसको वंहांतक प्राचीनके छुडानेमें दुराग्रह करना अनुचित हे.

उपरोक्त प्रकारतो सामाजिकहित चाहनेवालोंके लिये हे. यदि आप एसी योग्यतावाले नहीं हें तो जीवनमतमें जो व्यष्टिके लिये प्रसंग जनाया हे सो करते रहनाचाहिये.

(शं.) जीवनमतके अभ्यासीको यदि उसके पूर्वजन्मके संस्कार प्रतिबंध हों तो याने विरुद्ध हों तो क्या करे? (उ.) प्रारब्ध, संचित अज्ञात होते हैं; अतः उनका हवाला देके पुरुषार्थमें आलस्य करना अनुचित हे. अतः शंका नहीं बनती. ओर यदि एसीही भावना होजाय तो उसको पूर्वोक्त त्रिवादका वा वक्ष्यमाण प्रौढिवादगत सू. १२० से १२५ तकका आधीन होजाना चाहिये. तो जीवनमतका अनुयायी होजायगा.

मन वाणीसे जितना कुछ कल्पाजाय वा माना जाय उन सबका खंडन मंडन होसकता हे अर्थात इसमें विशेष महत्ता नहीं हे; इसलिये जो विशेषांशमें लोकहितकारी विषय (बाबत) हो उसके खंडनमेंभी आग्रह रखना योग्य पुरुषोंका काम नहीं हे. जीवनमतमें अमुक विरल विवेकी, विरागी वा निवृत्ति अदृष्टवाले योगीको छोडके सर्वके लिये यथायोग्य प्रवृत्ति मार्ग बताया हे.

* * * * * *

उच्च जीवन.

जो तूं पूरण काम हे, निष्फल मत तूं जीव;
परहित करने वास्ते, जीव जीव तूं जीव.

यह दोहा पोथीके बेंगन समान हे, एसा नहीं मान्ना चाहिये; किंतु विक्रमादि एसे हुये हें ओर वर्तमानमेंभी कोई होगा. परंतु किरोडोंमेंसे कोइक एसा होता हे, यह बात सच्च हे; अतः, सुरनर मुनिजनकी यह रीती; स्वारथ लाग करें सब प्रीती ॥ यह ओर विकासवादि, प्रवृतिवादि जो निष्कामताका निषेध ओर

स्वार्थमयकाका विधान कहते हैं, सो सर्वांशमें मान्य नहीं हे. किंतु निष्काम हुवे यथाशक्ति जनसमाजका भला करना, यह उत्तम महापुरुषोंका मत हे. मंतव्य सत्य कर्तव्य हित, यह उनका सूत्र हे. परंतु एसे महानुभाव बहुत थोडे निकलते हें ॥ तथापि यथाशक्ति, यथाअधिकार कर्तव्य--भावसे कर्तव्य हे, एसा जानना चाहिये.

दो.--सत्यआग्रही होय जो, वाको लाज न भीत;
शस्त्रग्रहीकी हार हो, न्यायशस्त्रकी जीत. ॥ १४ से २९ तक ॥

नोट.

यहांतक जो संग्रहवाद, त्रिवाद ओर जीवनमत लिखा गया, वोह समष्टि--व्यष्टिको सुख--शांति मिले, इस दृष्टिसे लिख गया हे. तीनोंका परस्परमें अविरोध हे. यद्यपि शैलीमें कुछ अंतर हे, परंतु निशान--प्रेयस् ओर अंतमें श्रेयस् हे, इसमें मतभेद नहीं हे.

(शं.) उक्त तीनोंप्रकार एशियाके ओर यूरोपके प्राचीन महापुरुष रुपांतरसे कहगये हें, किंतु इससे विशेष विशेष लिख गये हें. आर्य ऋषि मुनिओंके लेख आंख खोलके वांचोतो सही! परंतु वर्तमानकी स्थिति ओर प्रजाकी दुर्दशा देखके सवाल यह पेदा होरहा हे कि उक्त तीनों वा इनसे अन्य लाभकारी प्रकारका प्रचार केसे हो; क्योंकि वर्तमानमें जो भद्रपुरुष कुछ करते हें उसका फल यथेच्छा-यथायोग्य नहीं होता; अतः तुम्हारा पिष्टपेशणभी व्यर्थ हे.

(उ.) जितना कुछ भद्रपुरुष कर रहे हें वोह ठीकही हे. धीरेधीरे फल होगा; अतः धीरज रखना चाहिये ओर निष्काम करते रहना चाहिये. उपरांत हमको चाहियें के दुःख सुख पाके स्वयं एसे बनके दिखायें. घरमें स्त्री ओर बालकोंको इन बातोंका उपदेश करते रहें, जात न्यात, मेले, मंडली प्रसंगमें इन बातोंको सुनावें, उनके लाभ दरसावें ओर खंडन मंडन न करें. राज्यसे सुरक्षित सभायें बनाके विद्यार्थिओंके शिक्षणमें सिखाना शरु करें ओर उनकी परीक्षा लीजाय. नहीं तो सचमुच शब्दमात्र हे.

स्कूलोंमें सनातनी, जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई, वैश्नव, शैवी धर्मके छोकरे साथमें रहके विद्या सीखते हें, उनमें यदि विरुद्धधर्मवाले दो चारका प्रेम--दोस्ति होजाती हे तो तमाम उमर अपने धर्मकी आडविना मित्रभाव रहता हे, ओर परस्परमें सुखी रहते हें. यदि उनको तोड फोडके साम्यभाव सिखाया जाय तो उक्त इष्ट क्यों न सिद्ध हों? होना संभव हे. हिंदु मुसलमान वा हिंदु खिस्ति

जुडके व्यापार करते हें ओर लाभसंपादन करते हें, उनके बीचमें उनकी धर्मभावना आडमें नहीं आती. अपनेसे परधर्मीकी नोकरी करते हें वहां धर्मभावना आडमें नहीं आती. एवं जो सर्वसंमत–सर्वमान्य एकधर्म बताया--सिखाया जावे तो उसका प्रचार क्यों न हो ? क्यों न स्वीकार हो ? क्यों न लाभ हो ? अर्थात होसकता हे. शेष अन्यत्र ॥

इति पूर्वांग.

प्रौढिवाद (तुष्टि) प्रकरण ६.

अब जो शांति सुखको इच्छता हे अर्थात जो नाना धर्म--मत--पंथ सुनके भ्रमित हे, जीव मोक्षादि प्रसंगमें संशयात्मक हे ओर उसके निर्णय करने तथा परीक्षा करनेमें अशक्त होनेसे शांतिको नहीं पाता हे, एसे अशक्त शोधक अमुक व्यक्तिको विवेकनिर्णितजन्य विश्वाससे शांतिफल प्राप्त हो सो प्रकार **प्रौढीवाद**की रीतिसे लिखते हें.

अशक्त शोधकको प्रौढीवादसे सयुक्तविश्वासजा शांति (तुष्टिफल) ॥ ३० ॥

वृत्ति—जो जीव मोक्षादिके निर्णय ओर परीक्षा करनेमें अशक्त (तन, मन व्यवहारादि करके सामर्थ्यरहित) हो परंतु उसने धर्म--मत--पंथोंका श्रवणादि किया हो ओर जीव मोक्षादिमें शोधक बुद्धि रखता हो तथा उसे जिज्ञासा हो ओर यत्किंचित अधिकारीभी हो, एसे जिज्ञासुको **प्रौढिवाद** (प्रतिवादिकी युक्ति वा कथनको मानकेभी सिद्धांतको सिद्ध करना उसे प्रौढिवाद–उंची थीयरी कहते हें) की रीतिसे सयुक्तविश्वासजाशांति (सब तुष्टिओंमेंसे उत्तम–सुखकारक जो तुष्टि सो) फल होजाता हे ॥ ३० ॥ सोही आगे जनाते हें. अर्थात प्रचलित तमाम धर्म--मत--पंथोंकी रीतिसे एक परिणाम याने शांतिफल निकलता हे सो प्रकार आगे (सू. ३१ से १४२ तक) बयान होगा ॥[1]

---

[1]वक्ष्यमाण प्रसंगमें पूर्वोक्त नियमादि ओर अ. ३ का विषयप्रकरण (पे. ६१८) ध्यानमें रहना चाहिये. जेसे उपरोक्त स्वप्नथीयरीका उद्देश जनाया हे वेसाही यहां हे. अर्थात ईश्वर, जीव, बंध मोक्षादिके खंडनमें आशय नहीं हे; किंतु जेसे परीक्षावास्ते विद्यार्थिओंको कठिन सवाल दिये जाते हें वेसा यह प्रौढिवाद हे. अर्थात अधिकारी अपने आप परीक्षामें पास होके शांतिफल संपादन करसकता हे, एसा गूढप्रकार हे, ओर फलसंपादन हुये क्षमा ओर उपेक्षा (टोलरेशन) तथा निष्कामता

जीवविवेक.

यदि जीव तत्व तो मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ३१ ॥ अविकारी ओर प्रवाह नियमसे ॥ ३२[१] ॥ गुणोंकी अनिवृत्तिसे ॥ ३३ ॥ परके उसमें न आनेसे ॥ ३४ ॥ ओर अपूर्व भोक्तादि अवस्थाके अभावसे ॥ ३५ ॥ प्रकृति विकृति तत्व नहीं ॥ ३६ ॥ जो अतत्व तो विनाशी होनेसे ॥ ३७[१] ॥ यदि उपाधि तो नियम बाधक न होनेसे ॥ ३८ ॥ ईश्वरादिअंशभावमेंभी तद्वत् होनेसे ॥ ३९ ॥ ओर तद्वत्‌मेंभी ॥ ४० ॥ क्षणिकत्वमेंभी स्वभाव होनेसे ॥ ४१ ॥ आभासादि रूपमेंभी अतत्व होनेसे ॥ ४२ ॥ अविवेक गृहित अन्यथाभावमेंभी अन्यका अविवेक होनेसे ॥ ४३ ॥ भ्रांति विषयमेंभी वैसा रुप होनेसे ॥ ४४ ॥ जनित रुपमेंभी स्वतंत्रताके अभावसे ॥ ४५ ॥ तद्वत् विकासक्रममेंभी ॥ ४६ ॥ प्रकाशवत् निमित्तभावमेंभी आकाशवत् होनेसे ॥ ४७ ॥ एवं अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य कल्पना ॥ ४८ ॥

अर्थ.—जो जीव **तत्त्व** (अनादिअनंत, अमिश्रित, निरवयव, अखंड, स्वगतभेदरहित हे अर्थात विभु वा अणु हे वा संकोचविकासरहित सम मध्यम परिमाण हे तो उसको **मोक्षकी अपेक्षा नहीं** होसकती ॥ ३१ ॥ क्योंकि तत्व वस्तुके स्वरुपमें कोई प्रकारसेभी फेरफार नहीं होता. उसमें रागादि अवस्था नहीं होती; अविकारी, अपरिणामी होनेसे संसर्गकालमेंभी वेसाका वेसा बना रहता हे, उस तत्वका नैमित्तिक वा अनैमित्तिक किंवा संसर्गज वा असंसर्गज बंध तथा वे-

---

उसे हासिल होजाती हे; क्योंकि इस नवीनशैलीमें किसी मत-पंथमें नहीं तनाके ओर खंडन मंडनसे उपेक्षा रखते हुयेभी शांति प्राप्त हो एसा प्रकार हे. तुष्टि ९ प्रकारकी होती हैं, उनका सर्वप्रकारमें ग्रहण नहीं माना गया हे, तथापि जो सयुक्त हो, जिसका परिवर्तन न हो ओर जो स्वाधीन हो उसका ग्रहण किया जाता हे, क्योंकि उससे शांति–सुख मिलता हे ॥

[१](नोट)–वक्ष्यमाण जीव, मोक्ष, ईश्वर, मोक्षके साधन, ओर प्रकृति तथा चारित्र्य यह ६ प्रसंग ओर तदगत शंका समाधान सू. ३१ से सू. १४२ तकमें हैं. जिसका सार सू. ३१ । ३२ । ३७ । ५७ । १२२ । १२३ के विचारनेसे निकल आता हे अर्थात १२२ सू. का प्रयोजन इन ६ सू. में हे, परंतु पक्षकारोंके विकल्प ओर मान्यता अनेक होनेसे तथा जिज्ञासुओंकी विचित्र रुची होनेकी दृष्टिसे इतना विस्तार (आडंबर) करना पडा हे ॥

साही मोक्ष मान्ना नहीं बनसकता-(त. श्र. २ । १३५ से १४६ तक देखो). ओर यदि जीव अणु वा परिच्छिन्न मध्यम-अलचकी तत्व हे तो उसके उपयोगका प्रवाह हे (त. २ । ३६७ देखो) अर्थात एक स्थितिमें हमेशे नहीं रहसकता (२ । ३७०), इसलिये आत्यंतिक मोक्ष नहीं होसकनेसे उसको मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनसकती ॥ ३२ ॥ जो जीवमें रागादि गुण मानें तो नित्यद्रव्यमें उसके गुणभी नित्य होते हें उसमें अनित्यगुण नहीं होते; इसवास्ते उसके राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, संस्कार ओर ज्ञान यह नित्य गुण निवृत्त नहीं होसकते, इसलिये उसकी मुक्ति न होसकनेसे (२ । ७२९) उसको मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनती ॥ ३३ ॥ ओर उसमें दूसरोंके (प्रकृतिके-चित्तके) रागादि गुण आगये हों उनकी निवृत्तिकी अपेक्षा हे, सोभी नहीं वनता; क्योंकि परके गुण उसमें नहीं आसकते (२ । ३३४); इसलिये उसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनती ॥ ३४ ॥ ओर तत्व वस्तुकी भोक्तादि अर्थात दुःख सुखका भोगना, राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान ओर संस्कार यह ९ अवस्था नहीं होसकती; इसलिये तत्वरुप जीवको मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनती ॥ ३५ ॥ अर्थात रागादि जीवके गुण मानो वा अवस्था मानो ओर जीवको अणु मानो वा विभु मानो वा मध्यमतत्व मानो परंतु उसको मोक्ष न होसकनेसे मोक्षके साधनोंकी अपेक्षा नहीं बनती ओर आगे कहेंगे उस अनुसार आवृत्ति तो होनाही हे; अतः उसे उपेक्षा रहती हे ॥ ३१ से ३५ तक ॥ जो प्रकृतिकी विकृति हे तो तत्वरुप नहीं ॥३६॥ जो जीव अतत्वरुप हे अर्थात (सादिसांत, मिश्रित, सावयव-सखंड-जन्य, परमाणुपुंज-किसीका परिणाम-मध्यम-लचकावाला-संकोच विकासवाला, किसीका भाग वा किसीकी अवस्था-कार्य, इम्प्रेशन, इफेक्ट, रचनाजनित) हे तो जब तब नाशवाला होनेसे उसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं याने हमेशा मोक्ष नहीं रहसकता॥३७॥

सू. ३१ से ३७ तकका संक्षेपमें विवेचन—(१) जो जीव विभु परिमाणरुप तत्त्व हे, तो हमेशे सम रहनेसे उसका अवस्थांतर नहीं होसकता अर्थात भोक्तृत्व, रागादि यह स्वरुपतः तत्व वस्तु नहीं हें किंतु उत्पत्तिनाशवान होनेसे किसी मध्यम वस्तुकी अवस्था वा परिणाम हें, सो विभुमें होना असंभव १. ओर विभुमें क्रिया न होसकनेसे कर्तृत्वका अभाव हे, अतः भोक्ता नहीं होसकता २. जो रागादि स्वरुपतः कोई वस्तु अर्थात नित्य गुण वा शक्ति हें, एसा मानें तो एकरस विभुमें उसका प्रवेश न होसकनेसे उसमें रागादि नहीं होसकते ३. सारांश

उसमें स्वयं वा दूसरे (मनादि) की क्रिया वा संबंधसेभी बंध न होसकनेसे उसे मुक्तिकी अपेक्षा नहीं ओर न उसकी अवस्था याने मोक्षावस्था होसकती हे. (२) जो जीव अणु परिमाणरुप तत्व अर्थात परमाणु हे तोभी अविकारी, अपरिणामी होनेसे भोक्तृत्वादि–रागादि उसकी अवस्था न होसकनेसे बंध नहीं ओर बंध न होनेसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं १. " जेसे अग्निके संबंधसे जलभी गरम होजाता हे; जेसे ओक्षजन हाइड्रोजन मिलनेपर जलरुप अवस्था होजाती हे याने रुप बदलजाता हे, जेसे विजलीको लोहा रोकलेता हे. एसे प्रकृतिके संबंधसे प्रकृतिके गुण रागादि जीवमें आजाते हें, उसकी स्थिति बदलजाती हे वा उसकी इष्टगति रुकजाती हे, इसका नाम बंध हे, उसकी निवृत्तिकी अपेक्षा हे, " एसा मानें तो, गरमी अग्निमेंही हे, जलमें नहीं आई (त. २ । ३३४ नि. याद करो), जलका प्रथक्करण करनेपर ओक्षजन वेसेका वेसा निकलता हे अर्थात संबंधकालमेंभी तत्व अपने स्वरुपको नहीं बदलता–नहीं छोडता यह सिद्ध हुवा २. तोभी जो संबंधवश जड परमाणुओंके समान जीवका परवश रोकमें आना ओर उपयोगमें रहना अर्थात बंध ओर उपयोग मानें तो सफलत्वका भाव (सू. २ । १२७), अनुपयोगत्वका अभाव (सू. २ । १२८) हे, अतः उपयोग (प्रवृति निवृत्ति, प्रवृत्ति निवृत्ति)के प्रवाह (२ । ३६७ । ३६९ । ३७०) रहनेका नियम हे, परिच्छिन्न वस्तु हमेशे एक स्थितिमें नहीं रहसकती, इसलिये जीवका संबंध असंबंध होता रहनेसे बंध ओर अबंध एसी अवस्थाका प्रवाह हमेशे होता आया, ओर हमेशे रहेगा यह सिद्ध होगा ३. सारांश एसा बंधाभावभी सुषुप्ति जैसी नैमित्तिक सादिसांत अवस्था ठेरी. नहींके जिसे मोक्ष (सर्वथा अनिष्ट–दुःखाभाव ओर सर्वथा नित्यानंद–सुख) कहते हें सो हे; अतः अणुरुप जीवको मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनती. (३) जो जीव मध्यम (अणु विभुके दरमियानी) परिमाणवाला तत्व हे अर्थात अनादिसे संकोच विकासरहित रहनेवाला पदार्थ हे (२ । १७३ । २४३) तो उसकोभी मोक्षकी अपेक्षा नहीं हे; क्योंकि एकसमान रहनेसे ओर संकोचविकास न होसकनेसे हाथीवाला कीडीके शरीरमें ओर कीडीवाला हाथीके शरीरमें नहीं आसकनेसे तथा अपनेमें आप संयोगी न होसकनेसे, ओर संयोगी होनेवाले शरीरांग (अंगली आदि अवयव) समान नहीं होसकने अर्थात अंग प्रतिविभाग पानेवाला नहीं होसकनेसे शरीरोंके साथ उसका संबंध (जन्म) नहीं होसकता ओर तत्व होनेसे उपर कहे अनुसार उसका अवस्थांतर वा परिणाम नहीं होता; अतः बंधाभावसे मोक्षकी अ-

पेक्षा नहीं. तोभी जो बंध मोक्ष होनेका आग्रह करें तो पूर्व कहे अनुसार सफलत्वादि नियमवश बंध, अबंध होता रहनेसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (४) जो जीव तत्व (विभु-अणु वा अलचकी मध्यम) ओर पवित्र (गुणस्वभाववाला) हे तो हमेशे वेसा रहनेसे ओर वेसाही उसका उपयोग होता रहनेसे उसमें बंधका अभाव हे, अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (५) जो जीव तत्व ओर अपवित्र (गुणवाला) हे तो हमेशे वेसा रहने ओर वेसा उसका उपयोग होनेसे कभीभी शुद्ध नहीं होसकता, अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (६) जो जीव तत्व, पवित्र अपवित्र गुण स्वभाववाला याने मिश्रित हे, तो उपर कहे अनुसार उत्तम मध्यम (बंध, अबंध) स्थितिका प्रवाह रहेगा; इसलिये उसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (७) जो जीव तत्व हे परंतु पवित्र अपवित्र गुण स्वभाववाला नहीं किंतु यथासंसर्ग रुप होजाता हे; तोभी पूर्व कहे अनुसार बंध, अबंधका प्रवाह रहना यह परिणाम आता हे; अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (८) जीवको केसाभी मानें परंतु सार यह हे के **"जो न होके हो (मोक्ष) वोह होकेभी नहीं रहे"** अर्थात स्थिति--अवस्था--सादि-सांत (२ । ३७०) होती हे; अतः नवीन प्राप्तव्य मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (९) दुःख सुख अर्थात अपनी वा परकी प्रतिकूल अथवा अनुकूल अवस्थाका ज्ञान होना किंवा अविवेकसे परकी वोह स्थिति अपनेमें मान लेना, इसप्रकार प्रकृतिके संबंधसे जीवतत्वमें दुःख सुखरुप बंध होता हे उसकी निवृत्तिकी अपेक्षा हे, एसा मानें तो "ज्ञेयका ज्ञानही भोग" एसा नहीं कहाजासकता किंतु ज्ञानसे जो असर (अवस्था-परिणाम-फीलींग) प्रकाशित (ग्रहण) होता हे सो अर्थात दुःख सुखफल होता हे वोह भोग हे, परंतु एसा असर तत्वमें नहीं होसकता, यह उपर कहा हे. ओर स्वरुपका अज्ञान होनेसे वा अविवेकवश वा अन्यथा स्वाभाविक अज्ञानवश, अपनेमें मानलेनेसे तत्व विषे विकार (दुःख सुख भोग) नहीं हुवा हे अर्थात तत्व स्वरुप बंध वा मोक्ष नहीं हुवा वा नहीं होसकता; इसलिये मंतव्यमात्रसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं; ओर यदि हठसे 'हे' एसा मानो तो अब 'नहीं हे' एसा मानलेना बस हे. (१०) जो जीवकी प्रकृति (स्वभाव) बदलती हे (सत्व तम रजरुप होती हे) एसा मानें, तो वोह विकृति प्रकृतिकी होगी न के तत्वकी. अथवा जीव तत्वरुप न होगा, किंतु प्रकृतिकी विकृतिरुप होगा; क्योंकि विकृति पानेवाला मध्यम ओर अतत्व होता हे. विकृति स्वभाववालेको मोक्षकी अपेक्षा नहीं यह स्पष्टही हे. (११) जो जीव अतत्वरुप (सादिसांत) हे तो जब तब

नाशवान होनेसे उसकी मोक्ष मान्नाही नहीं बनता; इसलिये उसे अपेक्षा नहीं. उत्पत्तिसे पीछे नाशके पूर्व जेसा संबंध, जेसे उसके कर्म (प्रवृत्ति, निवृत्ति, उद्योग पुरुषार्थ), उस अनुसार दुःख, दुःखनिवृत्ति, सुख, सुखाभाव ओर रागादि क्लेश तथा ताप (जेसे अणुवादीके बंध मोक्ष आगमापायि वेसे इसके दुःख सुख) आगमापायिरुपमें होते रहेंगे, ओर जब तब उसका नाश होगा; इसलिये उसके संबंधमें मोक्षपद नहीं बनता; क्योंकि जिन कारणोंसे उत्पन्न हुवा वे उसके पूर्व होनेसे उनका यह पराधीन ठेरा, वे इसके आधीन नहीं हें. ओर अपना नाश आप कोई नहीं चाहता; इसलिये उसके नाशके कारणभी स्वाधीन नहीं; किंतु अभाव होनेमेंभी पराधीन हे.

सू. ३१ से ३७ तकका सार-(फलितार्थ)—(१) तत्व न बदलने ओर अपना स्वरुप न छोडनेसे तत्वको मोक्षकी अपेक्षा नहीं. (२) ओर यदि हे तो बंध, अबंध (मोक्ष) यह सादिसांत अवस्था हें, इनका प्रवाह पूर्ववत् भविष्यमेंभी रहेगा अर्थात सर्वथामोक्ष नहीं होता. (३) ओर जो अतत्व हे तो उसकी दुःख सुख अवस्था, तत्वके दुःख सुख वा तत्वके मोक्ष समान सादिसांत हें, परंतु अंतमें वोह नाशवान होनेसे दुःख सुखका नित्य प्रवाह नहीं; अतः उसकी मोक्ष नहीं. तत्व अतत्व विवेक समाप्त[1] ॥ ३१ से ३७ तक ॥

जो जीव घटाकाशवत उपहित [2](बस. २९२ में विस्तार हे) तो आकाशवत् निरवयव तत्व होनेसे उपाधि, उपहिततत्वमें विकार वा बाधा नहीं करसकती; अतः ३१ वत् ओर जीवको घटवत् उपाधि मानें तो ३७ वत् ओर जो उभय मिश्रितको जीव मानें तो ३१ ओर ३७ उभय अनुसार परिणाम आता हे; अतः उ-

[1](नोट) १—इस प्रौढिवादगत जीवादिके प्रसंगमें यह (तत्वातत्व) विवेकबल हे. शेषविकल्प ओर उनका समान परिणाम तो पक्षकारोंकी दृष्टि लेके लिखा हे एसा जान्ना चाहिये. २—अर्थात कर्ता भोक्ता जो जीव सो तत्वरुप अर्थात अणु, विभु वा अलचकीमध्यम नहीं होसकता. तथा मध्यमअलचकी अप्रसिद्ध ओर असंभव हे (अ. २ का परिमाणाधिकरण याद करो ओर बस. २११ देखो) तथापि पक्षकारोंकी द्रष्टि लेके अणु, विभु, मध्यमका विवेक लिखा हे ॥

[2]घटावच्छिन्न आकाश प्रसंगमें घट उपाधि ओर आकाश उपहित हे. क्योंकि घट, व्यापक आकाशको परिच्छिन्न बताता हे. प्रसंगमें आकाशस्थानी चेतन, घटस्थानी—अज्ञान, अविद्या, माया, अंतःकरण, चित्त ॥

नको मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ३८ ॥ जो जीव, ईश्वरका अंश--गुण--शक्ति--ज्ञान--आज्ञा--स्फुर्ण वा श्वास हे (वा उसका अवतार हे) तो (यद्यपि एकरस, बिभु, अखंड, निरवयवमें अंशादि असंभव हैं तथापि मानलेवें तोभी) ईश्वरका जैसा होनेसे ओर पवित्र होनेसे नं. ३१, ३३ अनुसार परिणाम आता हे याने उसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ३९ ॥ जेसे एक दीपकसे दूसरा दीपक होता हे, वेसे ईश्वर रुप दीपकसे उस जेसे दूसरे जीव होना (असंभव, तथापि) मानें तोभी ३९, जैसा ओर जो दीपकसमान संकोच विकासवाला मध्यम मानें तो ३७ अनुसार परिणाम आता हे, याने उसे मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ४० ॥ जो जीव जलबरफ, कनककुंडलसमान क्षणिकपरिणाम स्वभाववाला हो तो उसका स्वभाव न बदलनेसे मोक्षावस्थाभी क्षणिक होगी, ओर मध्यमपरिणामी होनेसे नं. ३७ अनुसार परिणाम आवेगा. ओर जो दीपककी लो समान क्षणिक हे तो उसके गत अवयव मुक्त न हुये ओर अंतिम अणुरुप अवयव (परमाणु) के लिये नं. ३१ वा ३७ अनुसार परिणाम आता हे; अतः उभय पक्षमें मोक्षकी अपेक्षा नहीं. ओर यदि नित्य दीपककी लो समान प्रवाह हे तो गत ओर अनागत प्रवाहरुप होनेसे मोक्षभी क्षणिक होगी; अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ४१ ॥ जो जीवको ईश्वरका आभास --प्रत्याकृति--प्रतिबिंब वा छायारुप वा संस्काररुप अवस्था होना (असिद्ध हे, तथापि) मानें तो आभासादि प्रकृतिके कार्य (किरणजन्य) सावयव ओर सादिसांत अर्थात अतत्व होनेसे ३७ वत् परिणाम आता हे ॥ २ । ४६८भी देखो ॥ ४२ ॥

जेसे प्रतिबिंबमें धर्म बिंबके जान पडते हें वा जेसे लालवस्त्रकी लाली काचमें प्रतीत होनेसे काच लाल जान पडता हे वेसे तत्व--असंगरुप आत्मामें दूसरेके अर्थात् चित्त आदिके रागादि धर्म अविवेकसे ग्रहण होतें हें, याने जीवात्माको बंध हे एसा जान पडता हे. एसे अन्यथाभाव मानें तोभी मोक्षकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि यह अन्यका विवेक हे अर्थात अन्य बुद्धि आदिके अविवेकसे किंवा अपने अविवेकसे उसमें (आत्मा वा अपने स्वरुपमें) बंध मोक्ष न हुवा ओर न होगा ॥ ४३ ॥ क्योंकि प्रतिबिंबवाले दोष बिंबमें नहीं होते, काच लाल नहीं हो गया. चेतन अपनेको जड मानें वा दूसरेको जडरुप मालूम हो तो उससे चेतन जड न हुवा ओर न होगा. कंगाल अपनेको राजा मानें वा अन्यको राजावत् जनाय तो कंगाल राजा न हुवा ओर न होगा. इसप्रकार नं. ३१ अनुसार किंवा वक्ष्यमाण भ्रान्तिसमान (४४) परिणाम आता हे ॥ ४३ ॥ जो जीवका अस्तित्व भ्रान्ति-

रुप (अर्थशून्य-प्रतीतमात्र) हे, तो उसके बंध मोक्षभी वेसेही होंगे; क्योंकि कोई ज्ञानस्वरुप ब्रह्म वा सर्वज्ञ ईश्वरको तो भ्रांति होना बने नहीं, तो फेर जिसको भ्रम हे वोह भ्रांतिही हे, उससे जीवमें बंध मोक्ष न हुवा ओर न होगा; अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं बनती ॥ ४४ ॥ पुरुषरुप भ्रांतिसे स्थाणु पुरुष न हुवा, सर्प भ्रांतिसे डोरी सर्प न हुई, तद्वत् यहां हे. अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ४४ ॥ जो जीव स्वयं (अभाव वा भाव पदार्थसे) नवीन बना हो तो उत्पत्तिनाशवाला होनेसे ३७ अनुसार परिणाम आता हे क्योंकि जीव स्वतंत्र नहीं हे. ओर जो जीव ईश्वरने वा अन्यने (अभाव वा भाव पदार्थसे) बनाया हो तो जेसा वा जेसी योग्यतावाला बनाया ओर जेसे साधन, जेसी योग्यता ओर स्थिति प्रदान किये उस अनुसार जीव वर्तता हे; इसलिये कृतका जवाबदार नहीं ठेरता; क्योंकि स्वतंत्र नहीं किंतु दत्तयोग्यता अनुसार चलना पडता हे; अतः मोक्षके लिये प्रवृत्ति नहीं बनती ॥ ४५ ॥ (शं.) ईश्वरने यथेच्छा जीवको बनाके उसको स्वतंत्र बुद्धि दी ओर सदसद मार्ग बताया (उपदेश किया वा कराया); अतः जवाबदार हे. (उ.) शक्तिमान ईश्वरकी पवित्र-उत्तम इच्छाशक्तिको ओर आज्ञा उलंघन करनेको जीव शक्तिमान नहीं होसकता, जेसी उस सर्वज्ञने कल रखी हे, वेसेही होगा. जो यूं नहीं मानें तो सब जीव अच्छे वा सबही बुरे हों; परंतु एसा नहीं देखते; किंतु एकभी बुरा ओर भला होता हे. तथाहि ईश्वरकी आज्ञा उलंघन करसके न करसके, ईश्वरकी इच्छा अनुसार चलसके न चलसके, किंवा अच्छे कर्म करे वा बुरे करे वा उभयथा करे,– इन सर्व बातोंका आधार ईश्वरदत्त योग्यता, ईश्वररचित बनावट, ओर ईश्वरदत्त स्थिति, संबंध (अंगहीनशरीर, पुरुष वा स्त्री शरीर, गरम देशमें भेजा, राजाके नास्तिकके, आस्तिकके वा कंगालके वा विद्वानके घर पेदा किया, बालकही मरजावे एसी स्थितिमें पेदा कराया, इत्यादि स्थिति, संबंध) पर निर्भर हे; इसलिये जीव जवाबदार नहीं; पेदा करनेवालाही जवाबदार ठेरता हे (याने उसीका खेल हे ओर उसकी इच्छा अनुसार हे) अर्थात बंधमोक्ष जीवकी स्वतंत्रामें नहीं हे; तथा उत्पत्तिवाला नाशवान होता हे इसलिये नं. ३७ अनुसार परिणाम आता हे ॥४५॥ जो जीव विकासक्रमके आधीन हे तो यदि विकास ईश्वराधीन हे तो परतंत्र रहनेसे लाचार ओर जो विकासक्रम स्वाभाविक हे तो जेसी सामग्री–संबंध--वेसा– वायु अग्नि–समान–वर्तेगा; क्योंकि परतंत्र होनेसे लाचार हे. उभयथा जवाबदार न होनेसे बंध मोक्षका स्वतंत्र पात्र नहीं. तथाहि विकासक्रममें आनेवाला जीव

तत्वरुप हे तो उसपर विकासक्रम असर नहीं करसकता (३१ याद करो), जो अतत्वरुप हे तो मोक्षका पात्र नहीं (३७ याद करो), ओर जो प्रावाहिक हे तो (३७ वत) बंधाबंधका प्रवाह रहेगा; अतः मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ४६ ॥ जेसे अंधरेमें बेठ हुये मनुष्य यथेच्छा कर्म नहीं करसकते, दीपक वा सूर्य उदय हो तब करसकें, इसलिये कर्म करानेमें प्रकाशभी निमित्त होनेसे जवाबदार हे. इसीप्रकार शरीरव्यापी चेतनात्मा (वा ब्रह्मांड व्यापी परमात्मा) के प्रकाशके विना (सत्ता विना) कर्म नहीं होते; अतः जवाबदार होनेसे वोह बंध हे, उस चेतन आत्माको मोक्षकी अपेक्षा हे. सोभी नहीं बनता; क्योंकि आत्मा वोह आकाशवत (३१) निर्लेप ओर साक्षीमात्र हे, प्रकाशसमान किसीको बुरा भला करानेमें निमित्त नहीं हे, अंतः आत्मा (जीवात्मा, परमात्मा) को मोक्षकी अपेक्षा नहीं ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार जीव ओर उसके मोक्षसंबंधी अन्य प्रसंगोंमेंभी यथायोग्य कल्पना करलेना अर्थात कोई प्रकारमेंभी मोक्षार्थी प्रवृत्ति सफल न होगी ॥ ४८ ॥

जिसप्रकार उपर कहा वेसे दूसरे मंतव्य विकल्पोंमें योग्यकल्पना करलेना चाहिये. सब जीववादका उपर कहे अनुसार परिणाम आवेगा ॥ फलितार्थ–जीववादमें जो असिद्धपक्ष हें उनकोभी मानें तोभी पूर्वोक्त (तत्व, अतत्व वा प्रवाहवाला) परिणाम आता हे. तो फेर बंध, मोक्षके झगडेमें तन, मन, द्रव्यको रोकने वा इस विवादमें पडनेकी आवश्यक्ता हे वा नहीं, यह बात शोधक स्वयं जानके उससे उपराम ओर शांत होजायगा. ॥ ३१ से ४८ तक ॥ अब आगे **मोक्षप्रसंग** कहते हें.—

मोक्ष विवेक.

यदि मोक्ष पदार्थ तो प्रवृत्तिका विषय नहीं वियोग ओर क्लेश होनेसे ॥ ४९ ॥ जो अवस्था तो सादिसांत होनेसे ॥ ५० ॥ ओर तत्वकी अवस्था न होनेसे ॥ ५१ ॥ जो प्रवाहरुप तो इष्ट न होनेसे ॥ ५२ ॥ परार्थ सत्संकल्पसे अवतारकीभी अंत आनेसे ॥ ५३ ॥ विकासक्रममेंभी परतंत्र रहनेसे ॥ ५४ ॥ सालोक्यादि कही गई ॥ ५५ ॥ अनावृत्तिका अभाव होनेसे ॥ ५६ ॥ अनुच्छेद प्रवाह ओर सफल नियमकी सर्वत्र आपत्ति होनेसे ॥ ५७ ॥ जो स्वानंदस्वरुपका ज्ञान तो विनाशी होनेसे ॥ ५८ ॥ जो ईशदर्शन तो विज्ञान इतर न होनेसे ॥ ५९ ॥ जो नाशरूप तो इष्ट न होनेसे ॥ ६० ॥ जो भ्रांतिरूप तो अर्थशून्य होनेसे ॥ ६१ ॥ ओर विशेष ज्ञान विनाभी तत्व अतत्वके विवेकद्वारा निवारण होनेसे ॥ ६२ ॥ अ-

भाव भावमें संस्कार स्वभाववश प्रवृत्ति होने पीछे निवृत्ति परिणाम ॥६३॥ अन्यभावमेंभी उपेक्षाही ॥ ६४ ॥

अर्थ.—यदि मोक्ष कोई एक पदार्थ हो तो **प्रवृत्तिका विषय** नहीं होगा; क्योंकि उसकी प्राप्ति करके स्वाधीन रखने (भोगने) के लिये मुक्तों विषे परस्परमें क्लेश होनेसे शांतिका अभाव होगा. ओर मोक्ष संयोगी होनेसे उसका वियोग होनाभी अनिवार्य होगा; इसलिये प्रवृत्तिके योग्य नहीं ॥ ४९ ॥ यदि मोक्ष कोई प्रकारकी अवस्था (परिणाम) वा संसर्गज वा नैमित्तिक स्थिति हे तो वोह सादि-सांत होनेसे (२ । ३७०) प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥ ५० ॥ ओर तत्वजीवकी अवस्था (परिणाम) नहीं होसकनेसे (२ । १७६) भी प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥५१॥ जो बंध पीछे मोक्ष ओर मोक्ष पीछे बंध, इस अनुसार प्रवाहरुप हो अर्थात मोक्षसे आवृत्ति होती हो तो वेसा मोक्ष इष्ट न होनेसे प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥ ५२ ॥ क्योंकि वोह मोक्ष नहीं; किंतु नाशवान (सुषुप्ति जेसी) अवस्था विशेष हे. जो प्रवाहरुप नहीं मानें तो अनावृत्ति होनेसे वक्ष्यमाण (आगे कहे) अनुसार सृष्टिका उच्छेद होजाता हे, जो कि असंभव हे; अतः प्रवाहरुप मान्नापडता हे ॥ ५२ ॥ जो परोपकारार्थ मुक्त पुरुष, सतसंकल्पद्वारा स्वेच्छासे जन्म लेते हें अतः अनावृत्तिमें सृष्टिका उच्छेद न होगा, एसा मानें तोभी सर्व मुक्त होने पश्चात अवतार लेनेका अभाव होनेसे उनकी प्रवृत्तिका विषय न होगा अर्थात सृष्टिका उच्छेद होगा जोके असंभव हे. सारांश अवतार लेनेवालोंकीभी पुनरावृत्ति होनेसे प्रवृतिका विषय नहीं ॥ ५३ ॥ जो मोक्ष विकासक्रमाधीन मानें तोभी परवश रहने ओर आवृत्ति होनेसे प्रवृत्तिका विषय नहीं; क्योंकि जिसको विकासक्रम लगना हे वे संख्यासे अनंत नहीं हें, ओर परतंत्र रहे,' अतः सृष्टिके उच्छेद न होनेके कारण परवश आवृत्ति होगी ॥ ५४ ॥ सालोक्यादि अर्थात इष्टके लोककी प्राप्ति, इष्टकी समीपता, इष्टमें जुडे रहना, ओर इष्ट जैसा रुप होजाना, इन चार प्रकारकी मुक्ति—अवस्थाके लियेभी उपर कहे अनुसार जानलेना चाहिये ॥ ५५ ॥ क्योंकि सबमें अनावृत्तिका अभाव होनेसे यह चारों प्रकारकी मुक्ति प्रवृतिकी विषय नहीं होसकती ॥ ५६ ॥ सार यह हे कि यह चारोंभी सादि अवस्था हें अतः सांत होंगी, आवृत्ति न होसके एसा नहीं हे अर्थात आवृतिही होगी अतः प्रवृत्तिकी विषय नहीं ॥ ५६ ॥ सृष्टिके प्रवाहका उच्छेद नहीं होता (२ । ३६९), पदार्थ, उपयोगमें आते रहें, एसा प्रवाह हे (२ । ३९७), ओर सृष्टिमें सब वस्तु

सफल हें, निकम्मी कोईभी नहीं हे वा नहीं रहती (२ । १२७); इन तीन नियमोंकी सब प्रकारके मोक्षके प्रसंगमें आपत्ति होनेसे आवृत्ति होनेके कारण मोक्ष प्रवृतिका विषय नहीं ॥ ५७ ॥ जो मोक्षसे अनावृत्ति मानें अर्थात मोक्ष होने पीछे पुनः जन्म मरण वा प्रकृतिके उपयोग होनेका संबंध नहीं होता. तो जब तब सृष्टिका उच्छेद होजायगा, क्योंकि जीव ओर परमाणु संख्यामें अनंत नहीं हें किंतु जितने हें उतनेही हें (२ । १४९); इसलिये जब तब अंत होनेसे प्रकृति अनुपयोगी रहेगी ओर सृष्टिका उच्छेद होजायगा; परंतु यह बात व्याप्ति ओर सृष्टिनियमके विरुद्ध हे; इसलिये यदि कोई मोक्षावस्था वा स्थिति हे तो वहांसे आवृत्ति होनी चाहिये. (प्र.) ईश्वर अनंत हे, जहां जहां वोह वहां वहां जीव ओर परमाणुभी हें अतः अनंत हें, इसलिये अनावृत्तिसे उच्छेद नहीं. (उ.) अनंत नहीं हें ओर यदि मानभी लेवें तोभी आवृत्ति होगी; क्योंकि अनंत–अनंत = ० परंतु अनंत–एक अर्बुद = अनंत के एसा नहीं होसकता, किंतु अनंत–१ अर्बुद = अनंत–१ अर्बुदके. इसलिये गये हुये एक अर्बुद जीवोंके लिये जिस प्रकृतिके भाग–जितने परमाणुओंका उपयोग होता वोह उपयोग कम होगा. अंतमें प्रकृतिके विभाग निष्फल रहजायंगे, ओर उधर जीव निष्फल बेठेंगे, तथा परिच्छिन्नवस्तु नित्य एक स्थितिमें नहीं रहसकती (२ । ३७०) तथा जो न होके हुवा वोह होकेभी न रहेगा; इत्यादि कारणोंसे मुक्ति जो अवस्थाविशेष उससे आवृत्तिही होगी. जब यूं हे तो नाशवानअवस्था, प्रवृत्तिकी विषय नहीं होसकती. (शं.) सुख सुखही, अतः क्या थोडे कालके सुख वास्ते प्रवृत्ति नहीं होती. (उ.) होती हे, होनी वा करनीही चाहिये; परंतु जिसको श्रेय–अपवर्ग–सर्वथा दुःखाभाव नित्यानंदप्राप्ति–मोक्ष कहते हें अथवा जिसके लिये मानव अनेक साधन करते हें ओर जिसको मुक्ति मान रहे हें सो वोह अनावृत्तिरुप मुक्ति नहीं किंतु सादिसांत अवस्थाविशेष हे. अ. ३ मुक्तिप्रसंग (सू. २२५ से २४१ तक) याद कीजिये ॥ ५३ से ५७ तक ॥

जो अपने आनंदरुप आत्मका ज्ञान यही मोक्ष मानें तो स्वरुपमें विनाशरुपकी आपत्ति होती हे; क्योंकि द्रष्टादृश्य भिन्नभाग होनेसे स्वरुप सावयव ठेरेगा, सावयव नाशवान होता हे; अतः एसी मोक्ष प्रवृतिका विषय नहीं ॥ ५८ ॥ जो ईश्वरका दर्शन होना (ज्ञान होना) इसीका नाम मोक्ष, एसा मानें तोभी वोह मुख्यवृत्तिका विषय नहीं; क्योंकि प्रथम तो वोह किसीकाभी विषय नहीं हे, जो

विषय होता तो उसके स्वरुपमें मतभेदही नहीं होते, ओर जो कोई प्रकारसे उसका विषय होना मानभी लेवें, तो ईश्वर एसा हे (याने शुद्ध–अबद्ध–नित्यमुक्त हे, यथाकर्म फलदाता हे. इ.) इस विज्ञानसे इतर फल नहीं होगा. इसपीछे इससे इतर कुछ ओर मानें तो प्रसंगांतर होगा ॥ ५९ ॥ जो नाश अर्थात मरनाही मुक्ति हे, एसा मानें तो इष्ट न होनेसे प्रवृत्तिका विषय नहीं हे ॥ ६० ॥ क्योंकि मोत सर्वको बलात, अनिच्छित स्वभावतः होती हे, इसकेलिये कोई प्रयत्न नहीं करता (९९ भी देखो) ॥ ६० ॥ जो मोक्ष भ्रम (भ्रांतिरुप) वा अज्ञानका विषय हे तो अर्थशून्य होनेसे उसकी प्राप्तिही क्या? अतः प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥६१॥ (शं.) डोरीवाले सर्पके पांव लगजानेसे सर्पने डसा, एसा वहेम होनेपर विष चढे समान मोत होजाती हे; इसलिये भ्रम निवृत्तिकी आवश्यकता हे. अधिष्ठान आत्माके ज्ञानविना यह भ्रांति (में बद्ध इत्यादि) नहीं जासकती; अतः तदर्थप्रवृति बनती हे. (उ.) आत्मामें बंध--मोक्ष भासना यह भ्रांति हे, एसा मानलीजे; अतः प्रवृतिकी आवश्यक्ता नहीं; क्योंकि आत्मामें बंधाभाव पहेलेहीसे निश्चय हे (३१ याद करो ओर अ. ३ । ४०१ का विवेचन बांचो) ओर जो बंध-मोक्षको भ्रांतिरुप नहीं किंतु सत्‌रुप मानके प्रवृत्ति करें तो कर्म (कर्म--उपासना)की अपेक्षा होगी (२ । १५ याद करो), ज्ञानकी नहीं (३ । २४६ याद करो ४ । ५८ ध्यानमें लो); परंतु कर्मका फल सादिसांत हे (३ । २४५ याद कीजे ओर आगे बांचोगे); अतः प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥ ६१ ॥ तथाहि में बद्ध हुं, एसा आत्माने मानलिया हे, इस मंतव्यकी तथा प्रस्तुत मिथ्या भ्रांतिकी निवृत्ति अधिष्ठान आत्माके ज्ञान हुये विनाभी उपरोक्त तत्व (३१) अतत्व (३७) के विवेक द्वारा होजाती हे ओर ५८ अनुसार ज्ञान होनाभी नहीं बनता; अतः प्रवृत्तिका विषय नहीं ॥ ६३ ॥ जो मुक्ति (मोक्ष) नहीं हे, एसा विश्वास करके चुप बेठें वा उपेक्षा रखें सोभी नहीं बनसकता; क्योंकि जीवमें परंपरासे इसके संस्कार हें, निर्णयकरनेकी जीवमें योग्यता हे ओर उसकी योग्यताका उपयोग हो यह सृष्टिनियम हे (२ । १२७); इसलिये योग्य जीवकी स्वभाववश इस विषय (जीववाद, मोक्षवाद) में प्रवृत्ति होती हे, किंवा किसी कल्पनाके अंत जानेकी जीवको रुची होती हे, एसा उसका स्वभाव हे; अतः प्रवृत्ति होती हे. उस पीछे उपरके विवेक होनेपर[१] उस प्रवृत्तिसे निवृत्ति एसा परिणाम आता हे

[१]वा अकथ्य प्रकारसे आत्मस्वरुपका स्वयंप्रकाश–साक्षात् होवे तब.

अर्थात जेसे अन्योंको मोक्ष (मुक्ति) वास्ते कितना विक्षेप ओर अशांति हे, वेसा न होके शांति होजाती हे ॥ सार यह हे कि " जो न होके हो वोह होकेभी नहीं रहे " " तत्त्वको बंध--मोक्ष नहीं ", " अतत्व नाशवान हे ". एसे स्पष्ट होजाता हे; अतः शांति ॥ ६२ ॥ (शं.) दर्शनकार, फिलोसोफर ओर शास्त्रकारोंने अनावृत्ति क्यों कही हे? (उ.) उसमें उत्तम रहस्य हे, बुद्धिमान स्वयं विचारसकता हे (बस. मेंसे भी वोह रहस्य मिलसकता हे) ॥ ६३ ॥ इसीप्रकार मोक्षसंबंधी अन्य विकल्पों वा भावोंमेंभी उपेक्षा परिणाम आता हे. इसप्रकार प्रवाह होनेके कारण मोक्षविवादसे उपेक्षा ओर विचार करनेसे मोक्ष संबंधमें शांति परिणाम आता हे ॥ ४९ से ६४ तक ॥

अब आगे **ईश्वर प्रसंग** कहेंगे—अर्थात हम न मानें तोभी ईश्वर बंध देगा ओर कृपया वा पुरुषार्थके फलमें हमेशेके लिये प्रकृति संबंधसे छुडाके मुक्ति–सुख देगा, इसलिये बंधनिवृत्ति ओर मोक्षप्राप्ति अर्थ प्रवृत्तिकी अपेक्षा हे, एसी मान्यताके संबंधमें कहते हैं.—

ईश्वरविवेक.

यदि ईश्वर हे तोभी[१] प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६५ ॥ परिच्छिन्नमें ईश्वरत्वका अभाव होनेसे ॥ ६६ ॥ सत्ता सत्तावानसे अभिन्न होनेसे ॥ ६७ ॥ ओर नृपवत्भावमें अव्यवस्था रहनेसे ॥ ६८ ॥ यदि ब्रह्म तो व्यापारादिके अभावसे ॥ ६९ ॥ सिद्ध मानें तोभी तत्व, अतत्वकी आपत्तिसे ॥ ७० ॥ ओर प्रवाह होनेसेभी ॥ ७१ ॥ लीलाभावमें पूर्ववत् दोष आनेसे ॥ ७२ ॥ जो विरुद्धधर्माश्रय तो विरोधी नियमके विरोधसे ॥ ७३ ॥ यदि मायाविशिष्ट तो तत्व अतत्ववत् गति होनेसे ॥ ७४ ॥ जो आभासादिरुप तो कार्य होनेसे ॥ ७५ ॥ जो भ्रांतिरुप तो व्यर्थ होनेसे ॥ ७६ ॥ जो उपदेशक तो असमर्थतादि दोष आनेसे ॥७७॥ निर्दोष व्यापकमें व्याप्यके संबंध होनेसेभी ॥ ७८ ॥ यदि ईश्वर होने अर्थ तो अनुपयोग ओर अनुच्छेदके असंभव होनेसे ॥ ७९ ॥ एवं अन्यत्रभी यथायोग्य ॥ ८० ॥

पूर्वोक्त परिणाम कर्मफल नियमका बाधक नहीं ॥ ८१ ॥ तत्वका

[१] मोक्षार्थ.

स्वभाव ओर नियम अनादि होनेसे ॥ ८२ ॥ अधिष्ठान (परमात्मा) कामी व्याप्तिसे ॥ ८३ ॥

अर्थ.—जो कोई ईश्वर व्यक्ति हो तोभी उसके निमित्तसे याने भय ओर फलकी आशासे बंधनिवृत्ति ओर मोक्षप्राप्तिके अर्थ प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ६५ ॥ क्योंकि जो ईश्वर परिच्छिन्न याने मध्यम हो तो परिच्छिन्न होनेसे उसमें सर्वज्ञत्वादि न होसकनेसे ईश्वरत्वकाही अभाव होगा; बल्के नाशवान ठेरेगा. निदान, ब्रह्मांडका व्यवस्थापक न होसकनेसे उस निमित्तसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ६६ ॥ जो उस परिच्छिन्नकी सत्ता व्यापक मानके व्यवस्थापक मानें तो सत्ता, सत्तावानसे भिन्न देशमें नहीं होसकती (२ । ३३२); अतः परिच्छिन्नकी शक्ति व्यापक न होनेसे ईश्वरत्व न होगा. ओर जो दीपकके प्रकाशसमान व्यापक मानभी लेवें तो मध्यम होनेसे शक्ति नाशवान ठेरनेसे व्यवस्थापक न होगा; अतः उस निमित्तसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६७ ॥ जो ईश्वर परिच्छिन्न राजाके समान विराजमान हे ओर देवताओंद्वारा जगतकी व्यवस्था करता हे, एसा मानें तो उसमें अल्पशक्तित्व ओर असर्वज्ञत्वादि दोष होनेसे योग्यव्यवस्था न होगी; किंतु अव्यवस्था रहेगी. ओर आधेय होगा (२ । २६१). ओर जीव कर्मसंबंधवश एक दूसरेकी सृष्टिमें जानेसे देवताओंमें विवाद होगा, अधिकार ओर उपास्यकी मर्यादा न होगी--इत्यादि अव्यवस्था होगी, ओर मध्यम होनेसे ६६ अनुसार परिणाम आता हे, अतः तिस निमित प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६८ ॥ यदि ईश्वर व्यापक होवे तो उसमें **व्यापारादिके** अभावसे तिस निमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६९ ॥ अर्थात उस सत्य, अनादि-अच्छेद्य, अभेद्य, एकरस विभु (ब्रह्म) में व्यापार, क्रिया, इच्छा, संस्कार, गुण ओर परिणाम सिद्ध नहीं होते; इसलिये जीवोंके बंध मोक्षादिके व्यापारों याने फलव्यवस्थाके दरमियानमें नहीं आसकता; अतः तिस निमित्तको लेके प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६९ ॥ तथा विभुमें स्वरुपाप्रवेश होनेसे जगतकी असिद्धि हे, परंतु जगत प्रसिद्ध हे; इसलिये जगत ईश्वरका स्वरुप ठेरता हे; परंतु विभुमें परिणाम क्रिया न होनेसे जगत, ईश्वररुप नहीं होसकता; तथापि पक्षद्रष्टिसे मानें तोभी २९ तथा ३१ (तत्व--जीव पवित्र) ओर ३७ अनुसार परिणाम आता हे; अतः प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ६९ ॥ जो कोई प्रकारसे ईश्वरमें व्यापारादि सिद्ध मानें तो ईश्वर सत्य, अनादि, व्यवस्थापक होनेसे उसके न्यायादि गुणकर्म स्वभाव पवित्र ओर सृष्टिनियमानुसार यथाकर्म फल

मिलना चाहिये. अर्थात तत्व (३१) अतत्व. (३७) अनुसार परिणाम आता हे ॥ ७० ॥ किंवा बंधाबंधका प्रवाह (३१) यह परिणाम आता हे, उसमें ईश्वर अन्यथा नहीं करसकता; इसलिये ईश्वरके निमितसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥७१॥ (६५–७१ तकका फलित यह हे कि मोक्षार्थ ईश्वरके निमित्तसे प्रवृत्ति होना नहीं बनता. अपनी इच्छासे प्रवृत्ति करना जुदी बात हे. परंतु इस संबंधमें पूर्व कहा गया हे) ॥ ७१ ॥

जो जगतरचना ईश्वरकी लीलामात्र हे अर्थात कोई कर्मादिके हेतुसे नहीं किंतु अपनी इच्छासे आपही जगतरुप होता हे, पुनः अपने पूर्वरुपमें आजाता हे, एसे लीला करता हे; एसा मानें तो जीव तदंश होनेसे ३१ । ३९ । ४० । ६६ अनुसार परिणाम आता हे; अतः तिस निमित्तसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ७२ ॥ जो ईश्वर विरुद्धधर्मवाला हे ओर अन्यथाकर्ता हे (यथेच्छा न्यायान्याय करता हे), इसलिये उसे दोष नहीं, एसा मानें तो यह बात नियम (२ । ३४० । ४०१) के विरुद्ध हे; अतः तिस निमित्त प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं अर्थात वोह न्याय करेगा, यथाकर्म फल देगा, अतः तिस निमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥७३॥ तथापि जो यह पक्ष मानभी लेवें तो कोई बातकीभी मर्यादा नहीं रहेगी, जीव अपने कृतका जवाबदार नही बनता; उसकी प्रवृतिमें सफलत्वकी आशा नहीं रहती; क्योंकि अन्यथाकर्ता होनेसे जीवोंसे यथेच्छा कृत कराना ओर अपनी मरजी अनुसार (अच्छेको बुरा, बुरेको अच्छा) फल देनेवाला हे; अतः तिस (एसे ईश्वर) के निमित्त प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं बनती ॥ ७३ ॥ जो मायाविशिष्टचेतन, इस व्यक्तिको ईश्वर मानें (३ । ३०८ के विवेचनमें ओर बस. ३३२ में इसका स्वरुप कहा हे) तो उपरोक्त तत्व (३१) ओर अतत्व (३७) अनुसार परिणाम आनेसे तिस निमित्त प्रवत्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ७४ ॥ किंवा अंतःकरणविशिष्टचेतन जीवगत जो चेतन सो अबद्ध, शुद्ध होने तथा अंतःकरण (अविद्या) ओर जगत दोनों मायाके भाग होनेसे जीव, बंध मोक्षका पात्र नहीं ठेरता (३ । ५४१ । ५४६ याद करो); इसलिये प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ७४ ॥ जो ईश्वरको किसीका आभास, प्रतिबिंब, वा किंसीकी छाया, प्रत्याकृति वा संस्काररुप अवस्थामात्र मानें तो अभासादिरुप उपर कहे अनुसार (४२) प्रकृतिका कार्य होनेसे तथा अतत्व, जड ओर नाशवंत होनेसे यथायोग्य व्यवस्थापक नहीं होगा; अतः तिस निमित्त प्रवत्तिकी अपेक्षा

नहीं ॥ ७५ ॥ जो ईश्वर भ्रांतिका विषय हो अर्थात ईश्वर हे, एसा मान्ना भ्रम (अर्थशून्य, कल्पनामात्र) हे, एसा मानें, तो व्यर्थ ठेरा; क्योंकि अर्थशून्य हे (ओर जेसे स्थाणुका पुरुष उपयोगी नहीं एसा हे); अतः तिस निमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ७६ ॥ सर्वेशक्तिमान ईश्वर, कोई न कोई मार्गद्वारा (अवतार, हृदयमें प्रेरणा, आकाशवाणी वा दूत द्वारा) जीवको विधि निषेधका उपदेश करता वा कराता हे, इसलिये प्रवृत्तिका फर्ज पडता हे; एसा मानें, तो ईश्वरमें असमर्थता (सर्वशक्तिमत्वका अभाव), अन्याय ओर पराधीनताका दोष आता हे; अतः तिसके निमित्तसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ७७ ॥ क्योंकि जो शक्तिमान होता तो उपदेशकी अपेक्षा नहीं थी, किंतु प्रेरणा द्वारा फर्ज डालके सीधे मार्ग चलाता; अथवा जीव उसकी आज्ञा भंग करनेमें समर्थ हे ओर ईश्वर उस भंगकी तथा जीवके अन्यायकी शिक्षा करनेमें असमर्थ हे, एसा मान्ना पडता हे, जो एसा नहीं तो उपदेशकी अपेक्षा नहीं रही. ईश्वर अपने अवतार वा दूतोंकी आज्ञा भंग करनेकी शिक्षा न देसका;[1] अतः असमर्थ हे. एक द्वारा पुनर्जन्मका दूसरे द्वारा अपुनर्जन्मका उपदेश करे, यह अन्याय हे. (ईश्वरीय मान्य ग्रंथोंमें एसे अनेक अन्याय हें). कर्मके अनुसार सृष्टि रचना ओर दंड देना, तथा उपादानविना सृष्टि न रचसकना, यह पराधीनी हे, तबही उपदेश करता कराता हे. जो दयालु होता ओर स्वतंत्र होता तो जीवोंको दुःखद मार्गमें न जाने देता, परंतु एसा नहीं देखते. जीव बुरे कर्म करके दुःख पाये, एसी जगतरचनेवाला ईश्वर निर्दयी कहा जासकता हे; अतः एसेके निमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं । (शंका) यथाकर्म फल देनेसे ईश्वरमें कोई दोष नहीं आता. (उ.) तो फिर तिसके निमित्त तिसके फर्जसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं, यह स्पष्ट होगया अर्थात अपने स्वतंत्रभावसे स्वपरको दुःख न हो, स्वपरको सुख मिले, स्वपरकी उन्नति हो एसे सत्कर्म करे. यथा—नेकी नेक हे इसलिये नेकी, सत्य सत्य हे इसलिये सत्यवर्तन ओर धर्म धर्म हे इसलिये धर्मपालन करना चाहिये, नहीं के ईश्वर, राजा वा लोक प्रसन्न हों ओर मुझे उत्तम मानके उत्तम फल दें, इसवास्ते नेकी वगेरेमें वर्ते ॥ ७७ ॥ यदि ईश्वर विभु हे ओर शुद्ध पवित्र हे तथा जीव उसमें व्याप्य हे, एसा मानें वा हो तो पवित्र अपवित्रका ओतप्रोत समीप (तादात्म्य) संबंध नहीं होसकता, यह स्पष्ट

[1]श्रीकृष्णको भीलने मारा, श्रीरामकी स्त्री रावन लेगया, इसुमसीहको सूलीपर चढाया, नबी महम्मदजीका दंतशहीद—भंग हुवा. इ.

हे; परंतु संबंध होना माना हे; इसलिये अर्थापत्तिसे यह सिद्ध होजाता हे कि जीवभी शुद्ध पवित्र होना चाहिये; इसलिये उसे बंध मोक्षका पात्र नहीं मानसकते; एतदृष्टि तिसके निमित्तसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ७८ ॥ (शं.) जगतमें मलादिभी तो ईश्वरमें व्याप्य हें ओर मलिन शरीरमें जीवभी तो व्याप्त हे. सारांश ईश्वर आकाशवत् निर्लेप हे ओर मलिनतादि बुद्धिकी कल्पना हें, वस्तुतः नहीं हें (२ । ५१६ देखो); अतः उक्त हेतु ठीक नहीं हे. (उ.) दुर्गंधादि यह बुद्धिकी कल्पना होने योग्य हें (बस. ९४भी देखो) प्रलयमें छूटे परमाणु होनेसे दुर्गंधादि मत हो, परंतु वर्तमानमें तो ईश्वरकोभी उसका भान ओर उससे ग्लानिनी होना चाहिये, क्योंकि ईश्वर आकाशवत् जड नहीं हे, या तो ईश्वर व्यापक नहीं होगा; क्योंकि दुष्ट जीव ओर मलिनके साथ उसका संबंध नहीं होसकता. जो आपका पक्ष मानभी लेवें तोभी उभयथा (बंध, दुर्गंधिवत् बुद्धिका विकार वा कल्पना हे, जीवकी नहीं ओर जीवात्मामें नही १, ओर जीवात्मा निर्लेप हे २) याने उभय पक्षमें तिस निमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं ॥ ७८ ॥ जो विकासक्रमानुसार उन्नति होते होते जीवही ईश्वर बनजाता हे, किंवा जीव, ईश्वरका खंड (अंश) हे परंतु उसकी शक्तियें तिरोहित हें, पुरुषार्थ करनेसे शक्ति उद्भव होके वही मोक्षस्वरुप--ईश्वर होजाता हे, इन उभय दृष्टिसे प्रवृत्तिकी अपेक्षा बनती हे, एसा मानें तो, इस अयुक्त कल्पनाका यह परिणाम आवेगा कि नाना ईश्वर होंगे, उनका अनुपयोग रहेगा तथा ब्रह्म सावयव ठेरेगा, इसलिये पराधेय होगा; तथा सृष्टिका उच्छेद होजायगा; क्योंकि सर्वजीव उन्नतिमें आने वा मोक्षस्वरुप होने पीछे प्रकृति (परमाणु) निकम्मी होजायगी; परंतु यह चारों बातें होना असंभव हे ! (२ । १४९ । १८२ देखो); अतः मोक्षस्वरुप ईश्वर बनने निमित्तभी प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं हे ॥ ७९ ॥

उपरोक्त प्रकारसे ईश्वरसंबंधी अन्य प्रसंगोंमें तिसनिमित्त प्रवृत्तिकी अपेक्षा नहीं, एसा परिणाम निकल आता हे, सो यथाप्रसंग यथायोग्य योजलेना चाहिये ॥ ८० ॥ यथा--जो ईश्वर स्तुति प्रार्थनासे प्रसन्न होके कुछ देता हो तो खुशामदिया ठेरता हे, उपास्य नही ठेरेगा; क्योंकि उसकी निंदा करनेवाले वा न माननेवालेसे प्रसन्न नहीं होता;[१] अतः एसेके निमित्त प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं. इसप्रकार

[१] ईश्वरकी प्रार्थना, स्तुति ओर ध्यान कर्तव्य हें क्यों ? अध्याय १ । १११ ओर त्रिवाद अ. ४ में तथा बस. गत भक्तियोगमें समाधान हे अर्थात उनसे कर्ताका अंतःकरण शुद्ध ओर अधिकारी बनता हे; अतः कर्तव्य हे ॥

ईश्वरसंबंधी असिद्ध वा सिद्ध पक्षोंमेंभी* उसके निमित्तसे प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं होनेसे मनमें एक प्रकारकी शांति ओर संतोष प्राप्त होजाते हैं ॥६५ से ८० तक॥

प्रस्तुत प्रसंगमें जो परिणाम निकलता हे सो परिणाम (सार-फल) कर्मफल, कर्मपद्धतिका बाधक होता हो, एसा नहीं जानलेना ॥ ८१ ॥ क्योंकि परिच्छिन्न तत्व (जीव) का स्वभाव हे क्रिया करनेका ओर उस कर्मका परिणाम (फल) (स्वाभाविक, कुदरतद्वारा वा व्यवस्थापकद्वारा) कुछभी हो, एसा नियम अनादिसे हे ॥ ८२ ॥ इसलिये ईश्वर, पुनर्जन्म मानो वा न मानो तोभी कर्मफल प्रधान हे (आगे कहेंगे). सार यह के ईश्वरके निमित्तसे प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं ॥ ८२ ॥ उक्त परिणाम जेसे कर्मफलका बाधक नहीं हे वेसे अधिष्ठान (परमात्मा देव) काभी निषेधक नहीं हे; क्योंकि उसकी व्याप्ति सिद्ध हे ॥ ८३ ॥ अर्थात ईश्वर नहीं हे, एसा मानें तोभी नही बनता क्योंकि (३ । ३९६ । ५६३ ओर बस. ९० । ३३२ देखो), परिच्छिन्नको अधिष्ठान आधारकी अपेक्षा हे. नहीं तो सनियम गति ओर विचित्र कार्य न हों, परंतु उस निमित्तसे मोक्षार्थ प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं हे। उपरोक्त प्रकारसे ईश्वरसंबंधि विवाद ओर चिंतासे उपेक्षा होजानेसे शांति परिणाम आता हे ॥ ६५ से ८३ तक ॥ अब आगे **मोक्षके साधनका** प्रसंग लिखेंगे.—

साधनविवेक.

कर्म, इष्ट[1]का साधन नहीं फल[2] सांत होनेसे ॥ ८४ ॥ तद्वत् भक्तियोग उभयभी ओर तत्त्व अतत्त्वके विवेक तथा अनुपयोगसे ॥ ८५ ॥ विश्वासमात्रभी अनेकांत प्राप्तिसे ॥८६॥ ईश्वर ज्ञानमात्रभी ज्ञान ज्ञानमात्र होनेसे ॥ ८७ ॥ तिसमें लीनताभी प्रवाह अनुच्छेद नियमसे ॥ ८८ ॥ पदार्थज्ञानभी बंध असत् न होनेसे ॥ ८९ ॥ एकत्वकाभी उसका फल न देखनेसे ॥ ९० ॥ विरुद्धधर्मकी आपत्तिसे ॥ ९१ ॥ ओर उपयोग अभावसे ॥ ९२ ॥ अन्यथाकाभी निष्फलत्वाभावसे ॥ ९३ ॥ भावनाभी अव्यवस्थाप्रसंगसे ॥ ९४ ॥ आत्मज्ञानभी स्वज्ञान ओर अनुपयोगके अभावसे ॥ ९५ ॥ समुच्चयभी दोषापत्तिसे ॥ ९६ ॥ विकासक्रम ओर स्वभावभी

*अ. ३ । ३९६ वाला ईश्वर वा मायोपहित चेतनसें इतर कोईपक्ष सिद्ध नहीं होता. [1]मुक्ति प्राप्ति. [2] मोक्ष.

परतंत्रता ओर अनुपयोगसे ॥९७॥ परकृपाभी पूर्ववत् दोषापत्तिसे ॥९८॥ अपना अभावभी अनिष्ट होनेसे ॥ ९९ ॥ ज्ञान विज्ञानभी कल्पितानुकूल न होनेसे ॥ १०० ॥ दुःखनिवृतिअर्थ योग्य प्रयत्न ॥ १०१ ॥ तत्वमें उसका अभाव रहनेसे ॥ १०२ ॥ अतत्वमें आगमापायी होनेसे ॥ १०३ ॥ अतः तिसतिसके उपायसे साध्य ॥१०४॥ अन्यत्रभी यथायोग्य ॥१०५॥

अर्थ.—केवल कर्मनामक साधन इष्ट याने मुक्तिप्राप्तिका साधन नहीं हे; क्योंकि कर्म सादिसांत होनेसे उसका फल अनंत नही होता, परंतु मुक्ति तो अक्षय सुखको कहते हें. सादिसांत फल अर्थात जिस मुक्तिसे आवृति (पुनः संसारप्राप्ति) हो सो मुक्ति नहीं किंतु एक अवस्थाविशेष हे, अतः कर्म नित्य मुक्तिका साधन नहीं ॥ ८५ ॥ भक्ति (उपासना) ओर योग यह दोनोंभी मुक्तिप्राप्तिके साधन नहीं हें; क्योंकि कर्मवत् उभयका अभ्यास सादिसांत होनेसे उनका फलभी सांत हे. ओर उसके साधकोंका मुक्तिमें अनुपयोग रहता हे, परंतु एसा होना २ । १२७ के विरुद्ध हे (तथा पूर्वोक्त तत्व (३१) अतत्व (३७) का विवेक, इन साधनोंकी अपेक्षा नहीं बताता) ॥ ८५ ॥ ईश्वरका कीर्तन, स्मरणादि **भक्ति** कहाती हे. इष्टाकार चित्तको स्थिर करना **उपासना** कहाती हे. निरालंब चित्तवृत्तिका निरोध करना **योग** कहाता हे. अ. २ । प्रवाहाधिकरण ओर ४ । ५७ मोक्षसे अनावृत्तिकी ना करता हे, सालोक्यादिमेंसे आवृत्ति होगी. मुक्तिमें चित्त नहीं होता; अतः योग सांत हे. वैभववती वा वैभव विना स्वरुपस्थितिरुप मोक्ष यह उभय उपर कहे अनुसार सादिसांत अवस्था हें; अतः भक्ति ओर योग मोक्षके साधन नहीं. (शंका) योगके विना विवेकख्याति अथवा तत्व अतत्वकी परीक्षा नहीं होसकती. (उ.) यह प्रकरणांतर विषय हे, क्योंकि योग इस विवेकका परीक्षक ठेरा ॥ ८५ ॥ किसीपर विश्वास लेआवें के वोह मोक्ष करदेगा वा करादेगा, एसा विश्वास मात्रभी मोक्षका साधन नहीं; क्योंकि अनेकांतताकी प्राप्ति होती हे; जेसा के लोकमें देखते हें ॥ ८६ ॥ अर्थात जिनपर विश्वास कियाजाता हे उनके मंतव्य, मोक्षके स्वरुप, मोक्षके साधन ओर प्रकारमें मतभेद ओर विरोध हे तथा इस भावनामें पापी धर्मात्माका भेद ओर प्रभाव नहीं रहता. संप्रदायोंकी ओर दूतोंकी कथा ध्यानमें लो। यहां जिसपर सबका विश्वास अर्थात ईश्वरके विश्वासभंगमें किंवा जिस जिसके विश्वासभंगमें प्रयोजन नहीं हे, किंतु शोधकको कहना पडता हे कि योग्यायोग्यका विचार करोगे तो विश्वास यह मुक्तिका साधन नहीं हे, एसा स्वयं जानलोगे ॥ ८६ ॥ केवल ईश्वरका

ज्ञानमात्र होजाना, यहभी मुक्तिका साधन नहीं हे; क्योंके "यह ईश्वर" "एसा ईश्वर" एसा ज्ञान-ज्ञानमात्र हुवा, इससे मुक्ति क्या हुई ? कुछ नहीं ॥ ८७ ॥ ओर ईश्वरमें लीन होजाना वा तदाकार होजानाभी मोक्ष होनेके साधन नहीं हें; क्योंकि प्रवाह (३६७), अनुच्छेद (३६९), चल (३७०) यह तीनों नियम हमेशे एसे रहना निषेध करते हें ॥८८॥ ओरभी (२ । १९८) एक होनेका निषेध हे. ओर जो परिच्छिन्न जीवकी तदाकारता (व्यापक होना) मानलेवें तो जीव परिणामी होनेसे मध्यम-नाशवान ठेरता हे (२ । १७२ । १८२ देखो). नाशवानकी मुक्ति क्या ? बस. २१३ भी देखो. एवं उभय साधन मुक्तिके साधन नहीं ठेरते ॥ (शं.) मान्यग्रंथोंमें ईश्वरके ज्ञान होनेसे मुक्ति होना लिखा हे. (उ.) यहां शब्दप्रमाण लेनेका प्रसंग नहीं हे. ओर आशय यह हे कि कोई अकथ्य प्रकारसे अवाच्यात्मानुभव होता हे (३ । ५५७ । ५५८ याद करो), उससे प्रस्तुत कथनकी सिद्धि होजाती हे ॥ ८८ ॥

पदार्थका ज्ञानभी मोक्षका साधन नहीं हे; क्योंकि जन्म मरण ओर दुःखरुप जो बंध यह असत् नहीं जानपडते. ओर ज्ञानसे तो मिथ्या (भ्रांतिरुप) बंधकी निवृत्ति हुवा करती हे ॥ ८९ ॥ अब जो बंध मिथ्याही हे एसा मान लेवें, तो मिथ्याकी निवृत्तिही क्या ? तथाहि जो बंध (दृश्य जगत) मिथ्या तो मोक्ष, ओर पदार्थज्ञानभी मिथ्या ठेरेंगें (४४ । ६१ याद करो) ॥ ८९ ॥

जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञानमात्र (वा एकता मान्ना) भी मोक्ष प्राप्तिका साधन नहीं हे; क्योंकि उसका फल तथा उसानुसार उपयोग नहीं देखते-अर्थात् वेसा ज्ञानी क्रियारहित होगया हो (यह फल) ओर एकको ज्ञान होनेसे सबको ज्ञान होजाता हो वा ब्रह्मरुप होजानेसे सबका ज्ञान करता हो (यह उपयोग) एसा नहीं देखनेमें आता ॥ ९० ॥ ओर विरुद्धधर्मकी आपत्ति यह दोष आता हे अर्थात् जो सर्वथा कर्तृत्व भोक्तृत्व भावरहित (ब्रह्म) उसके साथ कर्ता भोक्ता-जीवकी एकता कहना वा मान्ना यह विरुद्ध दोष हे. इसलियेभी जीवब्रह्मकी एकता न होनेसे याने उसके ज्ञानकी अनुपपत्ति होनेसे सो ज्ञान वा एकता मोक्षका साधन नहीं माना जासकता ॥९१॥ तथापि जो एकताके अवलंबीकी रीति अनुसार याने लक्षणावृत्तिसे इस पक्षको मानभी लेवें तो "ब्रह्म पूर्ववत् शुद्ध चेतन हे ओर एक हे" यह रहस्य-परिणाम-निकलता हे; नहीं के जीव ब्रह्मकी एकता. ओर एसा सिद्धांत होनेसे "जीव चेतनको बंध न हुवा न हे ओर न होगा"

एसा स्वीकारना होगा अर्थात मोक्ष मान्ने ओर उसमें प्रवृत्ति होनेकीही अपेक्षा नहीं रही. उपरांत जो कोई रीतिसे एकत्व वा मोक्ष होना मानभी लेवें तो अमुक जीव ब्रह्मरुप होजानेसे अनावृत्ति होगी, एसे सब जीव ब्रह्मरुप हुये वहांसे अनावृत्ति होनेसे (पुनः जीवभाव न होनेसे) जब तब सृष्टिका उच्छेद होजायगा ओर शुद्धब्रह्म अनुपयोगी रहजायगा; परंतु एसा होना असंभव हे (अ. २ । १२७ । १२८ । ३६७ । ३७० । ३७१ यादमें लीजिये) ; अतः एकत्व ओर उसका ज्ञान, मोक्षका साधन न ठेरा. ओर जो निष्फलताके भयसे पुनरावृत्ति मान लेवें तो वदतोव्याघात दोष आवेगा. तथाहि जब एक जीवनमुक्त--ज्ञानवान--वा अज्ञानी व्यक्ति क. स्थानसे ग. स्थानमें जावे ओर पुनः क. स्थानमें आवे ओर फेर ग. वा ज. स्थानमें जावे, तो क. ग. ज. स्थानि ब्रह्मचेतन वर्तमानवत् बंध मोक्ष (विशिष्ट--उपहित--अविद्यावाला--अविद्यारहित)ही होता रहेगा, सर्वथा शुद्ध कभीभी न होगा, तो फेर वोह एकता ओर उसका ज्ञान तथा उस ज्ञानसे मोक्ष होना कथनमात्र नहीं तो क्या ? इसलिये एकता ओर उसका ज्ञानभी इष्ट (मोक्षप्राप्ति) का साधन नहीं ॥ ९० से ९२ तक ॥

जगत (बंध) भ्रमरुप हे वा अजात हे, किंवा “ ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या ” एसा ज्ञानमात्रभी मोक्ष होनेका साधन नहीं हे, क्योंकि निष्फलत्वका अभाव हे (२ । १२८) ॥ ९३ ॥ अर्थात ब्रह्मसे इतर जबके सर्व मिथ्या (भ्रम वा अजात) हे, तो उसमें यह ज्ञान, बंध, मोक्ष, वक्ता, श्रोता, मुमुक्षु ओर साधनभी मिथ्या--शून्य ओर निष्फल ठेरते हें, इसलिये यह ज्ञान मोक्षका साधन न ठेरा. ओर जो एसाही (ब्रह्मसे इतर अजात, भ्रम) हो तो ब्रह्म एकलाही ठेरेगा, याने अनुपयोगी रहेगा; क्योंकि अपना अपनेमें संयोग न होसकनेसे (२ । २४३) अपना अपनेमें उपयोग नहीं होसकता; परंतु निष्फलत्व—अनुपयोगीत्वका अभाव हे, इसलिये जगत अर्थशून्य--मिथ्या, यह ज्ञान सत्य होनेसे मोक्ष होनेका साधन नहीं हे, तथाहि जबके ब्रह्मसे इतर मिथ्या (भ्रांति--अजात) तो प्रस्तुत ज्ञान (जगत मिथ्या ब्रह्म सत्य--यह ज्ञान), बंध, मोक्ष, श्रोता, वक्ता, मुमुक्षु ओर शास्त्रभी तदंतर्गत होनेसे मिथ्या ठेरेंगे ; तो फेर बंध, मोक्ष ओर मोक्षके साधनभी सिद्ध न होंगे; इसलियेभी यह मिथ्याज्ञान मोक्षका साधन नही ॥ ९३ ॥ मैं मोक्षस्वरुप हुं वा मुक्त हुं, इत्यादि भावनामात्रभी मोक्ष होजानेका साधन नहीं हे; क्योंकि यथाभावना तथाफल मान्नेसे अव्यवस्थाकी प्राप्ति होती हे ॥ ९४ ॥ यथा—प्रति-

पक्षीकी भावना मुमुक्षुको मुक्त न होने देगी, एक व्यक्ति अनेक पापीको मुक्त करसकेगी, नीति मर्यादाका भंग होगा, सृष्टिनियमोंके (२ । १८२ । ४०६ । वगेरे) विरुद्ध मान्ना पडेगा, इत्यादि अव्यवस्था होती हें; इसलिये भावनामात्रभी मोक्ष होनेका साधन नहीं हे ॥९४॥ आत्मज्ञान मात्रभी मोक्ष होनेका साधन नहीं हे; क्योंकि द्रष्टा-दृश्य, ज्ञाता-ज्ञेय परस्परमें भिन्न होनेसे स्वज्ञान होनेका अभाव हे (२।३७५।२४५) ओर अनुपयोगका अभाव हे (५७ देखो) ॥ ९५ ॥ जो अपना अपनेको ज्ञान होना मानें तो सावयवत्व आता हे. ज्ञानस्वरुपमें स्वस्वरुपकी विस्मृति वा स्वरुपाज्ञान, वा कर्ता भोक्ता एसा अन्यथाज्ञान (अज्ञान), ओर ज्ञानका ज्ञान, ज्ञानमें ज्ञान एसे भाव वा प्रकार नही बनते; इसलिये स्वरुपज्ञानका फल मुक्ति नहीं बनता. अपना आप द्रष्टा ज्ञाता माना तो दो भाग होनेसे सावयव ठेरेगा, उसका मोक्ष वा उसे वासनाका अभाव असंभव, ओर यदि हो तो नाशवान होनेसे व्यर्थ हे; इसलिये आत्मज्ञान मोक्षका साधन नहीं ॥ ९५ ॥ कर्म, उपासना ओर ज्ञान तीनों वा दो दो मिलकेभी मोक्षका साधन नहीं हे; क्योंकि उपरोक्त दोनों पक्षवाले दोष (८४ । ८५ । ८९ । ९५ तथा ३१ । ३७ । ६९ । ७० । ६५ । ६६ ओर अ. ३ । २३० याने कर्म, ज्ञानप्रसंगवाले दोष) आते हें—अर्थात उक्त परिणाम आता हे ॥ ९६ ॥

विकासक्रम वा स्वभावमात्रभी मोक्ष होनेके साधन नहीं हें; क्योंकि साधन स्वाधीन होने योग्य हें ओर उनमें परतंत्रता रहती हे. विकास ओर स्वभावक्रम अनुसार (अपनेआप स्वाभाविक इसप्रकार) जबतब जेसेतेसे मोक्ष होजाना हे; इसलिये स्वतंत्र प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं रहती ओर अंतमें अनुपयोग रहता हे अर्थात ५७ अनुसार परिणाम होता हे ॥ ९७ ॥ तथा बुरे कर्मगुणभी विकास ओर स्वभावाधीन होनेसे दूषित नहीं ठेरते; मोक्ष होनेके प्रतिबंधक हों वा न हों यह बातभी उस क्रमके आधीन हे; एसा परिणाम आता हे, जोके सर्वतंत्र--नीति मर्यादाके विरुद्ध हे. इस सिवाय उपयोगक्रम (सू. ५७) से उसका इष्ट फलभी नहीं होता.—याने आवृत्ति होके पुनः बंधन होजाता हे, अतः विकासक्रम ओर स्वाभाविकक्रमभी मोक्ष होजानेका साधन नहीं माना जासकता ॥९७॥ पर याने ईश्वरादिकी कृपामात्र (वा इष्टकी इच्छामात्र)भी मोक्ष होजानेका साधन नहीं हे; क्योंकि पूर्वमें कहे समान (६५ । ७० । ७१ । ८६ समान) दोष आते हें.—ईश्वर खुशामदपसंद, विषमदृष्टिवाला ओर अन्यायी मान्ना पडता हे; परंतु एसा ईश्वर नहीं

होसकता ॥ ९८ ॥ अपना अभाव (मरण) होना वा करनाभी मोक्ष होजानेका साधन नहीं हे; क्योंकि अपना अभाव होना किसीकोभी इष्ट नहीं होता ॥९९॥

यहां ६० भी याद करिये. यूरोपका एक फिलोसोफर मरनेको सुख–मुक्ति मानता था. अ. १ गत दर्शनसंग्रहमें इसका वर्णन किया गया हे ॥ ९९ ॥

पदार्थका ज्ञान ओर विज्ञानभी उपरोक्तमुक्ति मिलनेका साधन नहीं हे; क्योंकि ज्ञान, विज्ञान होनेसे मुक्तिकी वासना (मोक्षकी इच्छा, उसकी प्राप्तिअर्थ साधनके झगडेमें पडना, इत्यादि वासना)काही अभाव होजाता हे, यह बात उपरोक्त जीव, मोक्षप्रसंगके विचारनेसे स्पष्ट होजाती हे. अर्थात मुमुक्षुकी कल्पना (सर्वथा दुःखरहित–नित्यसुखप्राप्ति) के अनुकूल नहीं हे;[1] किंतु उसके विरुद्ध परिणाम आता हे, अतः ज्ञान विज्ञानभी मोक्ष होनेका साधन नहीं हे ॥१००॥

(उपसंहार) दुःखकी निवृत्ति अर्थ उसके योग्य प्रयत्न कर्तव्य होता हे अर्थात (अध्याहार) आत्यंतिक दुःखकी निवृत्ति अर्थ प्रयत्न व्यर्थ हे ॥ १०१ ॥ क्योंकि तत्त्वमें दुःखावस्थाका अभाव हे; अतः तदर्थतो प्रयत्न व्यर्थ हे ॥ १०२ ॥ ओर अतत्वमें आत्यंतिकनिवृत्ति नहीं बनती किंतु उसमें दुःख सुख आगमापायि होते रहते हें ॥ १०३ ॥ इसलिये जब जिस प्रकारका दुःख होवे तब उसकी निवृत्तिअर्थ जिससे वोह दूर होसके वेसा उपाय कर्तव्य हे (बस. ३३ में विस्तार हे) ॥ १०४ ॥ जीव तत्वरुप वा अतत्वरुप--केसाभी हो, तथा कोई प्रकारकाभी मंतव्य (ब्रह्मपरिणामवाद, ईश्वरद्वारा अभावजावाद, क्षणिकवाद, पुरुषप्रकृतिवाद, विलक्षणवाद, मायावाद, एकजीववाद, स्वाभाविकअवभासवाद, बाधवाद, जडवाद, त्रिवाद वगेरे) मानें, परंतु दुःख सुख तो होते हें, मंतव्य--भावनामात्रसे उनकी निवृत्ति नहीं होती, ज्ञानी अज्ञानी--याने सबको होना देखते हें, इसलिये उक्त मंतव्य--भावनाकी दृष्टिको छोडके वर्तमानमें जो प्राप्त हे उस दुःखकी निवृत्तिअर्थ ओर भविष्यमें (जीवनपर्यंत) जहांतक होसके दुःख न हो वेसे उपाय वास्ते ओर जितना होसके उतने सुखकी प्राप्तिअर्थ प्रयत्नकी अपेक्षा रहती हे, क्योंकि दुःख सुख होता तो हे. तहां उपर कहे अनुसार तत्वमें तो यह प्रसंग नहीं बनता; इसलिये जिसको दुःख सुख होता हे वा जिसकी यह अवस्था हें वोह अतत्वरुप होगा (३७ याद करीये), उसमें आत्यंतिक निवृत्ति कहना नहीं बनता, उसके दुःख सुखादि आगमापायि देखते हें, ओर शरीरधारीमात्रको दुःख सुख

[1] मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः । १०१

होते रहते हैं; ईश्वर मोक्षादिके विवादमें पडनेसे उनकी निवृत्ति नहीं होती, किंतु उनउनके योग्य उपायोंसे दुःखकी वेसी निवृत्ति ओर सुखकी वेसी प्राप्ति होती हे; इसलिये क्लेश, द्वेषोत्पादक (ईश्वर, जीव, मोक्ष ओर साधनादिके) झगडेसे उपेक्षा रखना परिणाम आता हे ॥ १०४ ॥

जेसे साधनसंबधेंम (सिद्ध असिद्ध पक्ष मानकेभी) उपरोक्त परिणाम आया हे, वेसे साधनसंबंधी अन्य-विकल्पोंमेंभी एसाही परिणाम आनेका हे. शोधक यथायोग्य स्वयं निकालनेके योग्य हे; अतः उक्त मोक्षसंबंधी साधनके झगडोंसे उपराम हुयेको उस प्रसंगमें शांति परिणाम आता हे ॥ १०५ ॥ (शंका) उपर सब जगह मात्र (कर्ममात्र-ज्ञानमात्र-विश्वासमात्र एसे) शब्दका प्रयोग हुवा हे, इससे पायाजाता हे कि उक्त सब मिलके मोक्षके साधन होंगे, केवल एक नहीं अर्थात शांतिके बदले अशांति परिणाम आता हे. (उ.) इस शंकाका समाधान १०० से १०४ तकका विवेचन कररहा हे ॥ ८४ से १०५ तक ॥ अब आगे प्रकृति-(माया) का प्रसंग लिखेंगे.—

(नोट) वक्ष्यमाण प्रकृति-मायाके प्रसंगमें यह २ बात ध्यानमें रखके सूत्रोंका आशय लेना हे-(१) बंध (प्रकृतिका संबंध), मोक्ष (उसका असंबंध होके वा उसकी आत्यंतिक निवृत्ति हुये परमानंदकी प्राप्ति). (२) पंचभूत, शरीर, इंद्रिय, इंद्रियोंके विषय, चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार, राग, द्वेष, इच्छा, दुःख, सुख, चेतना, धृति ओर संस्कार-यह सब प्रकृतिके विकार (परिणाम-फॉर्म-कार्य) हें; यही बंधके हेतु हें (अविद्यारुप हें). ओर शरीर, इंद्रिय, अंतःकरण यह साधनभी कहे जाते हें. संस्कारी बुद्धिको विद्यावृत्तिभी कहते हें ॥

प्रकृतिविवेक.

यदि भोग्या[1] सत् तो [2]इष्टसाधक नहीं असंबंध अशक्य होनेसे ॥ १०६ ॥ जो असत् तो अनुपयोगी ॥ १०७ ॥ यदि अनेकांत तो दोषापत्तिसे ॥ १०८ ॥ जो विलक्षण तो तत्समान फल ॥ १०९ ॥ तद्वत् भ्रांतिरुपामेंभी ॥ ११० ॥ एवं अनिवर्चनीयामेंभी ॥ १११ ॥ ओर चिद् अभाववालीमेंभी ॥११२॥ जो स्वप्नाभासवाली तो अपरमार्थतासे ॥११३॥ यदि क्षणिका तो अनुपयोगी ॥ ११४ ॥ जो ईशधर्मादिरूपा तो बंधाभाव ॥ ११५ ॥ जो अभावजन्या तो जनितवत् ॥ ११६ ॥ यदि अनादि

[1]प्रकृति बंधरुप. [2]मोक्ष.

वा सादि अनंत तो पुनरावृत्ति ॥ ११७ ॥ जो सांत तो प्रयत्न इष्ट नहीं ॥ ११८ ॥ एवं अन्यत्रभी यथायोग्य ॥ ११९ ॥

सूत्रार्थ.—यदि भोग्या (प्रकृति–माया) सत्य हो तो इष्ट (श्रेय) की साधक नहीं होसकती; क्योंकि उसके संबंधका अभाव (वा उसकी आत्यंतिक निवृत्ति) अशक्य हे अर्थात वोह जीवोंरहित हुई निष्फल (अनुपयोगी) नहीं रहसकती (२ । १२७ । १२८ देखो); इसलिये जीवोंका उसके साथ संबंध होता रहनेसे भोग्याही रहेगी; अतः इष्टसाधक नहीं ॥ १०६ ॥ जब यूं हे तो यह परिणाम निकल आता हे कि उसका सविवेक योग्यउपयोगही करना चाहिये ओर उसमें आसक्ति नहीं रखना चाहिये, किंतु निष्काम हुये भोक्तव्य हे; कारणके आसक्ति हो तोही दुःखदाता होती हे. उसकी आसक्ति (वासना–कामना) सेही दुःख होता हे. परंतु वोह इष्टकी साधक तो नहीं हे ॥ १०६ ॥ जो वोह प्रकृति सकार्य असत् (अर्थशून्य–शशशृंगवत्) हो तो अनुपयोगी होनेसे इष्टसाधक नहीं हे ॥ १०७ ॥ क्योंकि उसका बंध १, उसमें प्रवृति २, उससे निवृति ३, उसका उपयोग ४, उसका साधनपना ५ ओर उसका फलभी ६, असत् (वा व्यर्थ)ही होगा; इसलिये जीवको शांतिपरिणाम सूचक हे याने बंधन नहीं ठेरा ॥ १०७ ॥ जो वोह सदसद्रुप (उभयप्रकारवाली) हो तो विरोध दोषकी आपत्ति होती हे (२ । ३४० देखो) अर्थात वेसी न होवे तो इष्टसाधक वा बंधकारक कहनेकी तो बातही क्या? निदान उपेक्षणीय हे, ओर यदि अनेकातका भाव-अनिश्चित मानें तो प्रकृति अनिश्चित होनेसे प्रवृति निवृतिकी साधक न बनसकनेसे इष्टकी साधक बाधक नहीं होसकती ॥१०८॥ जो वोह सत् असत्से विलक्षण कोई अन्यप्रकारकी हे तो उसके बंधादि ६ भी वेसेही होंगे, सत् नहीं; इसलिये सत्इष्टकी साधकबाधक नहीं किंतु विलक्षण होनेसे शांति-संतोष होता हे॥१०९॥ जो वोह भ्रांतिरुप (रज्जुसर्पवत नामरुप कल्पनामात्र–अर्थशून्यरुप) हो तो बंधादिभी भ्रमरुप होंगे; इसलिये सत्इष्टकी साधक नहीं ओर उसके बंधादि भ्रमरुप होनेसे शांति-संतोष परिणाम आता हे ॥ ११० ॥ यदि वोह माया अनिर्वचनीया हे.[1] अर्थात कुछ हेतो सही परंतु किस प्रकारकी हे, एसा नहीं कहा जाता, वा जीव उसके स्वरुपका निर्णय नहीं करसकता, वा उसके स्वरुपको वाणि

[1]मायाको अनिर्वचनीय क्यों कहते हें, इसका विस्तार अ. ३ । २१३ से २१९ तकमें लिख आये हें.

नहीं सहार सकती, एसी अनिर्वचनीय हो तो उसके बंधादिभी अनिर्वचनीय मानने पडेंगे ओर इसलिये सत्‌इष्टकी साधक नहीं, तथा अनिर्वचनीय होनेसे शांति–संतोषपरिणाम आता हे ॥ १११ ॥ तथा किसीके मंतव्यपर तिरस्कार द्रुष्टि होनेका निषेध, ओर खंडन मंडनसे उपेक्षा, यह परिणाम आता हे; क्योंकि अनिर्वचनीय होनेसे यह नहीं कहसकते कि किसका मंतव्य ठीक ओर किसका अठीक हे. अनिर्णित होनेसे इष्ट साधकताका आरोप नहीं होसकता, तथापि अपनी स्वाभाविक कमजोरी ओर उसकी अविषयता अनिवार्य होनेसे संतोषपरिणाम आता हे ॥ १११ ॥ ओर जो मायाका अधिष्ठानचेतनमें अभाव हो अर्थात अजातरुप हो तो शून्य होनेसे वेसेही उसके बंधादि शून्यरुप होंगे; अतः सत्–इष्टकी साधक नहीं किंतु शांतिपरिणाम आता हे (असत् ओर अभावमें पक्षकारोंका मतभेद होनेसे नं. १०७ की पुनरुक्ति की हे) ॥ ११२ ॥ जो प्रकृति ओर उसके कार्य स्वप्नाभास जेसे हों तो वोह परमार्थरुप नहीं होनेसे इष्टसाधक नहीं ओर उसके बंधादिभी अपरमार्थरुप होनेसे शांतिसूचक हें; अतः संतोषपरिणाम लाते हें ॥ ११३ ॥ जो प्रकृति क्षणिकपरिणामभाववाली हो तो स्थिर न होनेसे इष्टसिद्धिमें उपयोगी नहीं होसकती याने इष्ट साधक नहीं ओर उसके बंधादि क्षणिक होनेसे संतोष रहता हे (जेसे के स्वप्नके बंधादि क्षणिक होने ओर स्थायि न होनेसे उन विषे आपही संतोषपरिणाम होजाता हे वेसे इस द्रश्यसंबंधमें ज्ञातव्य हे), ॥ ११४ ॥ जो माया–प्रकृति, ईश्वरका धर्म अर्थात ईश्वरकी शक्ति, स्वभाव, ज्ञानादि गुण, स्फुर्ण, श्वास, अथवा अंश, एवं ६ भाव वा परिणाम वा विभूति रुप हो तो बंधका अभाव होनेसे संतोष हे: क्योंकि ईश्वरके धर्मादि बंधके हेतु नहीं होते, किंतु सुखकारी होंगे; अतः संतोष हे ॥ ११५ ॥ जो प्रकृति अभावजन्य (ईश्वरने अभावसे पेदा की किंवा स्वयं अभावसे भावरुप हुई) हो तो पूर्वोक्त ४५ समान परिणाम आता हे अर्थात जीव स्वतंत्र न होसकनेसे संतोष हे. ओर ईश्वरजन्य सृष्टि दुःखद (बंधकी हेतु) नहीं होती, इसलियेभी संतोष हे ॥ ११६ ॥ जो माया अनादिअनंत हो तो बंध अबंधका प्रवाह (३१ । ३२ । ५७ । १०६) रहनेसे संतोष होजाता हे, क्योंकि अनिवार्य हे । ओर जो माया सादिअनंत हो तो बंधभी सादिअनंत ठेरेगी अर्थात पुरुषार्थसे उसकी निवृत्ति नहीं होसकती ओर जो मुक्ति होवे तोभी आवृत्ति होगी; क्योंकि अनावृत्ति हो तो प्रकृति निष्फल रहे, इसलिये उपर अनुसार संतोष रहता हे ॥ ११७ ॥ जो प्रकृति

अनादिसांत वा सादिसांत हो तो प्रयत्न इष्ट नहीं. अर्थात बंध स्वयं निवृत्त होजायगा; इसलिये संतोष रहेता हे ॥ ११८ ॥

सार—(१) जो माया–प्रकृति सत् (अनादिअनंत) वा अनिर्बचनीय-विलक्षण भाववाली हे तो संबंध अनिवार्य होनेसे शांति संतोष. (२) ओर इससे इतर जितने विल्कप लिखें हें वे असिद्ध हें (२ । १९० । १९२ देखो) इसलिये १, तथा हठसे वे मान लेवें तोभी बंधभी वेसी (अर्थात् असत्, सदसत्, अनिश्चित, मिथ्या, भ्रम, स्वप्नवत्, शून्यरुप, क्षणिक, अभावरुप, सादिसांत, सादिअनंत) ही हे, अतः उसकी बिवृतिके लिये प्रयत्नकी अपेक्षा नही इसलिये २, शांति शांति रहजाती हे–होजाती हे ॥ १०६ से ११८ तक ॥

जेसे विकल्प करके उपर परिणाम निकाले हें, वेसे अन्यप्राप्तप्रसंगमेंभी यथायोग्य परिणाम निकाल लेना योग्य हे. अर्थात जेसे उपर सिद्ध, असिद्ध पक्ष मानते हुयेभी संतोष–शाति परिणाम आता हे, वेसे माया–प्रकृतिसंबंधि अन्य विकल्पोंमेंभी इष्टकी साधक नहीं यह ओर उसके बंधादिभी विकल्पवत् यह ओर संतोष यह परिणाम आनेके हें; इसलिये उसका भय न होनेसे ओर उसमें आसक्ति न रखनेसे शांतिफल प्राप्त रहता हे ॥ ११९ ॥ अब आगे चारित्र्य प्रसंग लिखते हें.—

चारित्र्य विवेक.

ईश्वर माने न मानेमेंभी कर्मकी प्रधानता ॥ १२० ॥ तद्वत पुनर्जन्म संबंधमेंभी ॥ १२१ ॥ प्रारब्धादिमेंभी ॥ १२२ ॥ अभाव पूर्व विचार ओर त्यागमेंभी ॥ १२३ ॥ शांतिभावमेंभी ॥ १२४ ॥ तिसविना जीवन न होनेसे ॥ १२५ ॥ ईश्वरेच्छामें परतंत्रता होनेसे शांति ॥ १२६ ॥ विकास क्रममेंभी ॥ १२७ ॥ ओर जीवादिके अगम्य मानेमेंभी शांति शक्तिबहिर होनेसे ॥ १२८ ॥ विदेशीयसिद्धांत उक्तके अंतर्गत ॥ १२९ ॥ उपसिद्धांतोंका प्रसंग नहीं ॥ १३० ॥

अर्थ.—जो ईश्वर ओर पुनर्जन्म (जीव शरीरसे भिन्न वा अभिन्न) वस्तुतः हें ओर मानते वा नहीं मानते, किंवा वे वस्तुतः नहीं हें ओर मानते वा नहीं मानते, इन उभयपक्षमें कर्मकी प्रधानता हे ओर उभय भावनाका समान परिणाम आता हे ॥ १२० । १२१ ॥ यथा (क) मानता हे ओर (ख) नहीं मानता परंतु उभय सत्कर्म ओर नीतिपर हें; इसलिये जीवनमेंभी उभय सुखी हें ओर म-

रनेके पीछेभी यदि ईश्वरादि हें तो उभयको सुखकी सामग्री होगी. ओर जो ईश्वरादि नहीं तोभी उभयका समान परिणाम (जडवादवत्). (ग) मानता हे ओर (घ) नही मानता; परंतु उभय विषयासक्त असदाचारी हें ओर अनीतिपरायण हें, इसलिये जीवनमेंभी उभय क्लेशित–दुखी रहते हें; ओर मरने पीछेभी यदि ईश्वरादि हें तो उभयको दुःखकी सामग्री होगी ओर यदि नहीं हें तोभी जडवादवत् उभयका समान परिणाम हे. सारांश ईश्वर ओर पुनर्जन्म (वा परलोक) की मान्यता वा अमान्यता उपयोगी नहीं किंतु कर्मको प्रधानता हुई; इसलिये सत्यकर्म ओर नीतिपर रहनेकी आवश्यकता हे, ईश्वरादिके विवादकी आवश्यकता नहीं हे(शं.) सदाचारी नीतिपरायण कोभी दुःखी देखते हें; इसका कारण पूर्वके कुकर्म वा वर्तमानकी कोई फोर्स ? (उ.) सदाचारी, नीतिवान दुःखी नहीं होसकता; क्योंकि उसका मानसिकबल उत्तम होता हे. ओर जो कोई दुःखी होगा तो उसमें कोई कारणविशेष होगा. यथा-विषयवश ज्यादेसंतान पेदा करलेना, उसमे शरीर अशक्त, आलसी ओर मन चिंतातुर होनेसे बल कम होजाता हे, या तो देखादेखी लोकेषणासे शक्ति उपरात मोजशोक वा व्यवहारकी वृद्धि करलेना वा तो नीतिधर्मको नीतिधर्म न मानके लोकमें दिखाने वास्ते वेसा वर्तना, वा तो सृष्टिनियमानुकूल न वर्तना, इत्यादि. इसप्रकार कोई व्यष्टि वा समष्टिकर्म कारण होगा. पूर्वसंस्कार यहां मान्ना प्रकरणांतर हे. (शं.) अनीतिबाज–अप्रमाणिकोंको सुखीभी देखते हें; इसलिये पूर्वजन्मके संस्कार ओर दंडप्रद ईश्वरको मान्ना पडता हे. (उ.) यहा पूर्वजन्मकी सिद्धि असिद्धिका प्रकरण नहीं हे; किंतु कर्मका हे. अनीतिबाज वा अप्रमाणिकोंको उपरसे सुखी देखते हो, उनके तनमनकी निरीक्षा करोगे तो उनको दुःखी पाओगे; सुखसे उनको निद्रांभी नही आती होगी; अंतःकरणमें अनेक प्रकारके जखम होरहे होंगे; शरीरमें कोई न कोई प्रकारका रोग होगा; ओर उनके पापकी नौका एकदम डूबनेवाली हे. इसलिये सदाचारी नीतिवानपुरुष यदि गरीब हो तोभी धन्य हे. सारांश ईश्वर, पुनर्जन्म हे वा नही, इस दृष्टिको छोडकेभी जो सत्कर्म ओर नीतिमें वर्तता हे वोह आप सुखी रहता हे, उसकी संतान सुखी होगी ओर जनमंडलमें वोह उत्तम नमूना (आदर्श) हे; अतः उसका बोधक होनेसे समष्टिकोभी लाभकारी–सुखप्रद होता हे, यह कितना बडा लाभ हे. इसप्रकार वोह संसारी–व्यावहारिक सुखकी सामग्री हे, ओर आपभी सुखी रहता हे. ओर यदि ईश्वर पुनर्जन्म हे तो मरण पीछे परलोककाभी सुख उसे मिलना हे. ओर यदि

असदाचारी अनीतिबाज हे तो आपभी दुःखी रहेगा, उसकी संतानभी दुःखी होने की हे ओर जबमंडलकोभी हानी पहोंचेगी, यह स्पष्टही हे; ओर यदि ईश्वर पुनर्जन्म होगा तो मरने बाद परलोकमेंभी दुःखी होगा; इसलिये सदाचार ओर नीतिसे वर्तनाही स्वपरको लाभकारी हे. (शं.) सत्कर्म, असत्कर्म, शुद्धनीति, अशुद्धनीति, प्रवर्तिकानीति किसे कहते हें. (उ.) इसका संक्षेपमें वर्णन त्रिवादमें कर आये हें उसको ध्यानमें लीजिये. उत्तर होजायगा ॥ १२० । १२१ ॥

वेसेही (१) प्रारब्ध, (२) संचित, (३) क्रियमाण, (४) भावी, (५) ईश्वर निर्मित–इन पांच प्रसंगोंमेंभी कर्मकोही प्रधानता सिद्ध होती हे ॥१२२॥ क्योंकि जो (१) प्रारब्ध (पूर्वजन्मके वे कर्म कि जिनका फल शरीर मिलना हे–मिला हे) ओर (२) संचित (पूर्वजन्मके वे कर्म कि जिनका फल अभी मिलना हे) इन दो पक्षको मानें तो उभय हमारे पुरुषार्थसेही हुये हें इसलिये पुरुषार्थकोही मुख्यता रही. तथा प्रारब्ध ओर संचितका मनुष्यको ज्ञान नहीं होता, इसलियेभी पुरुषार्थ करनाही पडता हे. प्रा. सं. कोही जो मानते हें उनकोभी पुरुषार्थ करते देखते हें, खानपानादि पुरुषार्थ विना नहीं होते; अतः पुरुषार्थ अर्थात क्रियमाण कर्मही कर्तव्य रहे. अब यदि किसी अशक्त रोगीको लाचार देखें ओर यह फल उसके प्रारब्ध वा संचितका मान लेवें तोभी पुरुषार्थ कियेविना नहीं रहना चाहिये, ओर उसको करुणापात्र जानके उसके साथ धर्म-मत-पंथके संबंधमें क्षमा (टोलरेशन) की जरुरत हे, ओर उसको चाहिये के बंध-मोक्षके संबंधमें शोक-हर्ष न करे; क्योंकि अशक्त हे. ओर (३) जो केवल क्रियमाणही मानें प्रारब्धादिको न मानें अर्थात अकेला पुरुषार्थही मानें तो सूत्रका आशयही सिद्ध होता हे. अर्थात सत्पुरुषार्थ किये जावें, उसका फल कुदरती नियमानुसार जो होना होगा सोही होगा, अन्यविवादमें पडनेकी अपेक्षा नहीं. ओर जो उपरोक्त तीनों पक्ष मानें तोभी उपर कहे अनुसार पुरुषार्थ करते रहनेकीही सिद्धि होगी; जब यथाशक्ति सर्व प्रकारका पुरुषार्थ करनेपरभी सफलता न मिले वहां पुरुषार्थकी खामी जानके वा अपनी असामर्थता मानके अपने मनको संतोष देने वास्ते प्रारब्ध वा संचित मानके शांति करलेना चाहिये. दूसरेपर रोष करनेकी वा दोष देनेकी जरुरत नहीं हे. (४) जो भावि (होतव्य -चांस-इत्तफाक) मानें तोभी कर्मको प्रधानता हे; क्योंकि हमको उसका ज्ञान नहीं होसकता तथा फल मिलना कुदरतीनियमके आधीन हे; इसलिये पुरुषार्थ कियेजावें जो होने योग्य हे सो होजायगा. (५) जो हमारा होतव्य ईश्वरने पूर्वमेंही

निर्माण करदिया हे तोभी पुरुषार्थकोही प्रधानता हे; क्योंकि हमको बोह अज्ञात हे. किंवा ईश्वर हमारी रोटी बनाके हमारे मुखमें डालेगा, एसा नियत नहीं किया हे; जो एसा होता तो उसको जीवसृष्टि करनेकी अपेक्षाही नहीं होती; इसलिये कुछ करना ओर अमुक प्रकारसे करना, एसाही नियत हुवा होगा. एसे विश्वास होनेपरभी कर्म (पुरुषार्थ) कोही प्रधानता हे; क्योंकि दुःख सुख हमको भोगना पडेगा, ईश्वरको नहीं ॥ उक्त रीतिसे यह सिद्ध हुवा के मनुष्य कर्म करनेमें अपनी मर्यादामें स्वतंत्र हे, फल भोगनेमें परतंत्र हे; इसलिये कर्म कियेजावें ॥ १२२ ॥ मरण वा मोक्ष होनेके पूर्वमें तथा सांख्ययोग (बुद्धियोग--विचारयोग) ओर वैराग्य कालमेंभी कर्मकीही प्रधानता हे ॥ १२३ ॥ उसके पीछेभी अर्थात ज्ञानवान होके जीवनमुक्त होजावें तबभी याने शांतिभावमेंभी कर्मको प्रधानता हे (संक्षेपमें जड-वादि, अनीश्वरवादि, जगत मिथ्यावादि, विलक्षणवादि, अहंब्रह्मवादि, जीवांशवा-दि, जीव ईश्वरकृतवादि, चेतनवादि, द्वैतवादि, अद्वैतवादि वगेरे वगेरे सबकेलिये कर्मकी अपेक्षा रहनेसे ओर एकदूसरेकी सहायता, संबंध ओर कर्मकेविना जीवन न होनेसे कर्मकोही प्रधानता रहती हे. कर्मप्रवृत्तिको सत् मानो, मिथ्या मानो, बा-धित मानो, अज्ञान मानो वा मोह मानो परंतु कर्म करनाही पडेगा; अतः कर्म ओर यथाकर्मफलकी प्रधानताही हे) ॥ १२४ ॥ क्योंकि उसके विना ज्ञानी, अज्ञानी, आस्तिक वा नास्तिक याने किसीकाभी जीवन नहीं होस-कता ॥ १२५ ॥ यदि ईश्वरेच्छासेही सब कुछ होना मानें याने ईश्वरने आरंभ (पूर्व) में हमारे वास्ते जो निर्माण करदिया वेसा करना पडता हे ओर भोगना पडता हे किंवा जेसा उसकी इच्छामें आवे वेसा करता, कराता हे, जो एसा मानें तो हम लाचार–परतंत्र हें; अतः शांति हे. विक्षेप होनेका कारण नहीं हे ॥ १२६ ॥ यद्यपि इसपक्षमें जीव परतंत्र हे, इसलिये निष्कामता वा सकामता उसके आधीन नहीं हे, अर्थात कर्मको प्रधानता नहीं होती, तथापि या तो अ. ४ । ४५ परिणाम आजाता हे; अतः शांति हे. अथवा तो ईश्वरने क्या निर्माण किया हे उसकी जान न होनेसे पुरुषार्थही किये जानाचाहिये, एसा निश्चय होनेसे शांति–संतोष होजाता हे ॥ १२६ ॥ इसीप्रकार विकासक्रमकी थीयरीमें कुदरत-परिस्थितिके आधीन रहनेसे भावी–होतव्य एसा १२६ अनुसार शांतिपरिणाम आता हे अथवा भावी अज्ञात होनेसे कर्मको प्रधानता रहती हे. एवं अपने पुरु-षार्थ–कर्म पर संतोष करना पडता हे ॥१२७॥ ओर जीवादि याने जीव, ईश्वर, बंध,

मोक्ष, मोक्षके साधन, ओर प्रकृति–मायाका मूलस्वरुप यह ६ मनुष्यकी बुद्धिसे अगम्य हैं, एसा मानें तोभी शांति परिणाम आता हे, क्योंकि उनका स्वरुप जान्ना, उनका यथायोग्य उपयोग (प्राप्ति, निवृत्ति) करना मनुष्यकी शक्ति (योग्यता-बुद्धि) से बाहिर हे ॥१२८॥ मानबमंडलमें जितना कुछ जीवादि विषयमें मानागया, मान रहे ओर मानाजायगा उसको; किंवा जिसको भ्रमकी निवृत्ति हुई हे एसा रुप दिया उसको; भ्रमरुप क्यों न मानाजाय? ओर भ्रम, भ्रमकालमें भ्रमरुपसे विषय नही होता, इसलिये जीवादि विषय अगम्य हैं; किंवा मनुष्य अल्प हे अपूर्ण हे, जीवादि विषयको उसकी बुद्धि, युक्ति (तर्क) नही पहोंचसकती, इसलिये जीवादि अगम्य हैं; एसा मानें तो इस अनिवार्य प्रसग (अ. २। १२५ ओर बस. १८९। १९७से २०० तक देखो) में न पडके सर्वतंत्र सृष्टिनियमको लेनेसे मत पंथोंसे उपेक्षा कर्तव्य होजाती हे, उससे शांति होजाती हे; इसीप्रकार निश्चित हुये सर्वतंत्र जो जो कर्म वर्तन, उनउनको मानके वर्तना चाहिये जेसा के उपर (५। १२०। १२१ में) कहा हे. क्योंकि यथातथा जान्ना मनुष्यकी शक्तिसे बाहिर हे ॥ १२८ ॥ उपर सू. ४८। ६४। ८०। १०५। ११९ में ओर अर्थापत्तिसे सू. ३। ५ में एवं ७ जगह अन्यत्र यथायोग्य वगेरे पद लिखे हैं; उनका आधा आशय वहांही लिखा हे, शेष इस उपसंहार प्रसंगमें लिखने योग्य था सो लिखते हैं-जेसे उपर जीवादि प्रसंगमें सिद्ध ओर असिद्ध पक्षके विकल्प करके परिणाम निकाले हैं एसेही उनके परस्परके मेल झोल वा आन्दोलन उलटापलटीवाले विकल्पोंमें निकलते हैं; बुद्धिमान विचारशील, स्वयं निकालसकता हे. यथा-सब वस्तु जड, अजड, चिद् वा अचिद् मानें किंवा सब एक शक्तिका परिणाम हे एसा मानें, तोभी उपरोक्तपरिणाम आता हे. किंवा उपरोक्त ईश्वर, जीव उभय अनादि ओर माया सादि, वा जीव, ईश्वर दोनो सत् या भ्रमरुप, वा ईश्वर, माया दोनों सत्य ओर जीव भ्रमरुप, किंवा तीनों सत्य अनादि-अनंत, अथवा माया ओर जीव अभावजन्य इत्यादि मंतव्य–कल्पनमेंभी विचारशील शोधक, उपरोक्त बलसे शांति परिणाम निकाल सकता हे. "जो मूलमें जेसा हे वेसा हे सो वेसाही रहेगा", "जो न होके हुवा वोह होकेभी न रहेगा", "जो होतव्य हे वोह होना हे, अहोतव्य नहीं होता", "अनुच्छेद (२। ३६९), प्रवाह (२। ३६७) ओर सफल (२। १२७) इन नियमोंकी आपत्ति हे", "मछलियें नाचकूदके समुद्रमें सांत होनेवाली हैं", तो फेर जीवादिके विषयमें क्या विचार करना बाकी हे? इस झगडेमें क्यों पडना? किंतु

पूर्वोक्त सू. १०४ । १०५ को ध्यानमें लेते हुये शांत होके निष्काम हुये उपर लिखे अनुसार सदाचरण ओर नीतिसे वर्तते हुये जीवन करना बस हे ॥ ३१ । से १२८ तक ॥

विदेशीय अर्थात भरतखंडसे इतर देशवालोंके मंतव्यका परिणामभी उपरोक्तमें आजाता हे ॥ १२९ ॥ यथा यूरोपखंडमें विक्रमके पूर्व ५६८ से लेके विक्रम सं. ४०८ तक (यूरोपके पूर्वकाल) में थीलीजी आदि २९ फिलोसोफर हुये, विक्रम सं. ४०९ से १६५१ तक (मध्यकाल) में आगास्टिनादि १२ फिलोसोफर हुये, ओर विक्रम १६५२ से १८६३ तक (वर्तमानकाल) में डेकार्टादि २० फिलोसोफर हुये, उनके चिद्वाद, अचिद्वादवाले मंतव्यको सारग्राहीसे देखें तो उपर कहे अनुसार परिणाम आजाता हे. चीन, जापान तो बौद्ध (संयम सचाई, नेकी, नीति, भ्रातृभाव) ओर राजधर्मपर हेहीं. मेकसीकुआदि प्राचीन अमेरीकनका समावेश आर्यमंतव्यमें ओर नवीनोंका यूरोपके धर्ममें होजाता हे. प्राचीन अमेरीकन ओर मिसरका पौराणिक हिंदुमंतव्यमें ओर नवीनका याहुदी, किरानी, कुरानी ओर यूरोपीयनमें समावेश होजाता हे. याहुदि, किरानी, कुरानी, ओर ईरानी मंतव्यका विचार उपर किया गया हे.

इसप्रकार सब मंतव्योंका (जड–चेतन, उभयवादका) परिणाम उपर अनुसार निकल आता हे; इसलिये उससे शांति होजाती हे ॥ १२९ ॥

ईश्वरका अवतार, ईश्वरका दूत, ईश्वरका पुत्र, उसका विश्वास, मूर्तिपूजा, तीर्थ, श्राद्ध, देव देवी, मुरदे गाडना–बालना, माला–तिलक–वस्त्रादि चिन्ह, अंग छेदन इत्यादि मंतव्य वा अमंतव्य, संप्रदायोंके उपसिद्धांत[1] कहाते हें, ओर वे अपनेको दूसरोंसे जुदा दिखानेके लिये अपने अपने मत, पंथमें जुदाजुदा प्रकारमें हें, वे फिलोसोफी–वा प्रस्तुतप्रसंगके विषय न होनेसे उनकी चर्चा यहां नहीं की

[1]उपसिद्धांतोंमेंसे कोई तो लोकहितकारी हें, यथा--मुरदेको जलाना. कोई स्वधर्मभावना द्रढाने वास्ते रोचक हें. यथा–अवतार, दूत. कोई नाना धर्म संप्रदाय चलजानेसे अपनेको दूसरोंसे जुदा बतानेके लिये हें. यथा–अमुक प्रकारके कंठी, तिलक वगेरे. कोई त्यागी (गृहस्थाश्रमीसे भिन्न) हें इस स्थिति बताने वास्ते हें. एवं उपयोगीभी हें ओर एक धर्म चले तो अनेक चिन्ह निरर्थकभी हें. इनसे मोक्ष मान्ना वा इनका खंडन करना एक प्रकारका अज्ञान हे.

हे—याने उनका एकपरिणाम नहीं दरसाया हे[१] ॥ १३० ॥ अब आगे प्रस्तुत प्रौढीवादमें कितनीक शंका होसकती हें, उनका समाधान लिखते हें.—

शंका समाधान.

स्वतः बोध होनेका अभाव उसका साधन न होनेसे ॥ १३१ ॥ प्रबोध निष्फल नहीं दोषज्ञान फलित होनेसे ॥ १३२ ॥ अधिकारीकी उपलब्धिसे ॥ १३३ ॥ ओर बालकके स्वभावादिका परिवर्तन दर्शनसे ॥ १३४ ॥ उक्त परिणामका अनिष्ट परिणाम नहीं ॥ १३५ ॥ फलप्रद प्रकृति, राज्य ओर मंडलका उच्छेद न होनेसे ॥१३६॥ विद्या ओर धर्मका डंक लगनेसेभी ॥ १३७ ॥ सृष्टिनियम ओर आत्माके अनुकूल जो हितका[२] साधन सो सामान्यधर्म ॥ १३८ ॥ इष्ट होनेसे ॥ १३९ ॥ यथा सत्यादि सर्वतंत्र ॥ १४० ॥ ओर तदनुकूल यथादेशकालस्थिति विशेष ॥ १४१ ॥ उक्तमें अभिनिवेश नहीं ॥ १४२ ॥

(शं.) उपर जो तत्त्व (३१) अतत्व (३७) ओर प्रवाह (५७) तथा जो हे जेसा हे वोह वेसाही रहेगा, न होके जो हुवा वोह न रहेगा इत्यादि कहा हे, सो जो स्वतःसिद्ध हे तो फेर उसका कथन क्यों ? (स. सूत्रार्थ) यह बोध जन्मसे वा अपने आप नहीं होता; क्योंकि अशिक्षित अवस्थामें अल्प साधनवाला होता हे; इसलिये जेसे असदादिको पूर्व धीर अनुभवियोंसे प्राप्त हुवा वेसे अन्यको जनानेकी अपेक्षा हे. ओर यह नवीन पद्धति हे; इसलिये लिखने योग्य हे॥१३१॥ (शं.) जेसे मरना (संसारको छोडना) हे, एसा बोध सबको हे तथापि अधिक नहीं तोभी जीवनयात्रा अर्थ स्वपरको दुःख देनेवालीभी प्रवृत्ति होती हे, एसेही इस बोध (उपदेश) का फल होगा (टोलरेशन न होगा, धर्म मत पंथके झगडेमें उतरेगा); अतः यह बोध निष्फल हे ? (स. सूत्रार्थ) यह प्रबोध निष्फल नहीं हे; क्योंकि दोषका ज्ञान होजावे तो उस दोषसे निवृत्ति होजाती हे, एसा फल देखते हें ॥ १३२ ॥ जेसे के जिसको जिस विषय (खान पान, प्रवृत्ति निवृत्ति) में अपने प्रतिकूल-दोषका बोध होजावे तो दुःखप्रद होनेसे उस विषयको ग्रहण नहीं करता, ओर यदि स्वयं योग्य हो तो उस दोषका परोपकारार्थ दूसरोंकोभी जनाता हे.— अर्थात वोह बोध निष्फल नहीं हुवा, एसे यह बोध हे. अर्थात जिसको इसका

[१] लिखित तत्वदर्शन ग्रंथमें तथा सांख्ययोग—कर्मयोगमें उपसिद्धांतोंका परिणामभी संक्षेपमें दरसाया हे. [२] प्रेयस्, श्रेयस्.

बोध होजावे वोह विरोध, द्वेष, कलह ओर तन मन धनके हानीके मूल जो स्वार्थ साधक, परहानीकारक नाना विरोधी धर्म--मत--पंथ हैं उनमें भाग न लेगा, उनसे टोलरेशन रुपमें किनारा रखेगा ओर आप जीव बंध मोक्षादि विषयके परिणामका ज्ञाता होनेसे शांत रहेगा. जेसे जिसको मरण (संसार वियोग) का विवेक हो तो वोह स्वपर दुःखोत्पादक प्रवृत्ति नहीं करता ओर यदि करता हे तो उसको उसका याथातथ्य ज्ञान नहीं हुवा एसा हे. इसीप्रकार इस विषयका अभ्यासी यदि मत पंथके विवादमें उतरे वा जीवादि विषयकी तरफसे उसको शांति न हुई हो, तो उसको इस विषयका याथातथ्य बोध नहीं हुवा हे, एसा जाननाचाहिये. एसे उदाहरणोंकी उपेक्षा करकेभी योग्य अनुभवीपुरुष अपना कर्तव्य समझके सर्वमान्य धर्म नीतिका ओर टोलरेशनका उपदेश करते आये ओर कररहे हैं; उनका उपदेश जेसे सर्वांशमें निष्फल न हुवा किंतु विशेष अंशमेंभी उपयोगी होजाता हे, एसे इस बोध वास्तेभी जानलेना चाहिये ॥ १३२ ॥ सब एक प्रकारकी रुचीवाले नहीं होनेसेभी इसके योग्य अधिकारीकी उपलब्धि स्पष्ट हे (विशेषतः वर्तमानमें) अतः निष्फल नहीं हे ॥ १३३ ॥ प्राचीन संस्कारवाले मनुष्य हमेशे नहीं रहते; किंतु नवीनसृष्टि होती रहती हे, ओर जमानेके चाल चलन बदलते रहते हैं. अर्थात बालकोंके स्वभाव, गुण, कर्म ओर विचारका परिवर्तन होता हे, उनकी रुचि प्रति अनेक प्रकारका उपदेश किया जाता हे ओर तदनुसार त्याग ग्रहण होता हे, इस रुपमें नवीनसृष्टिका प्रवाह हे; अतः इसके अधिकारी मिलसकनेसे प्रस्तुत पद्धति निष्फल नहीं हे ॥ १३४ ॥

जीव, ईश्वर, बंध--पुनर्जन्म ओर मोक्ष इनको मुख्यरुप नहीं दिया हे (अ.४। २०० देखो) इसलिये उक्त पद्धति अनिष्टपरिणाम लावेगी, याने इसका अभ्यासी स्वच्छंदी होजायगा, एसाभी नहीं हे ॥ १३५ ॥ क्योंकि जिस मंडलमें ईश्वर वा पुनर्जन्म वा मोक्ष तकका त्याग हे अथवा ग्रहण हे उस मंडलमेंभी स्वच्छंदता देखते हैं; परंतु उभय स्थलमें प्रकृति (कुदरत), सत्ता (राज्य) ओर सोसाइटी (जाति मंडल), कर्मफल मिलनेवाले नियमको नहीं छोडती याने कर्मफल होनेका उच्छेद नहीं होता; इसलिये जो ज्ञानी वा अज्ञानी स्वच्छंद होगा उसको उस-अनुसार फल अवश्य होगा (हुवा, होरहा हे ओर होगा); इसलिये इस पद्धतिका अनिष्टपरिणाम नहीं माना जासकता ॥ १३६ ॥ ओरभी इसके अभ्यासीको विद्या ओर धर्मका डंक लगनेसेभी यह शैली अनिष्टपरिणाम (स्वच्छंदीपना) की

हेतु नहीं होसकती ॥ १३७ ॥ जिसको प्रस्तुत शैली ओर परिणाम समझमें आसकेंगे उसमें विद्या अवश्य होगी ओर सर्वमान्य वक्ष्यमाण सामान्य विशेषधर्म उसके हृदयमें जगह करेंगे, इसलिये वोह जो स्वच्छंदपनेमें वर्तेगा तो उसको विद्या ओर धर्मका डंक अवश्य लगेगा; इसलिये जिसमें शंका, भय, लज्जा होगी ओर तनमनको हानी कर्ता होगा वेसे कर्म वोह कभी नहीं करेगा ! ! तथाहि इस प्रसंगमें जीवादिका निषेध कहींभी नहीं हे, किंतु उनको नानारूपमें मान्नेवालोंके मंतव्योंका (सब धर्म—मत—पंथवालोंके मंतव्योंका) प्रस्तुत परिणाम निकाला हे. वोह इसप्रकारका हे कि जीवादिके झगडोंमें पडनेकी अनावश्यकता बताता हे. टोलेरेशन (क्षमा-उपेक्षा) रखके सर्वमान्य धर्मनीतिमें वर्तना कहता हे, क्योंकि पक्षकारोंके मंतव्योंका जो अंतिम परिणाम हे सोही प्रस्तुत प्रौढीवादका परिणाम हे ओर सदाचरण तथा नीतिकोही मुख्य बताता हे (१२० । १२१ याद करो); इसलिये अनिष्टका हेतु नहीं हे ॥

मनुष्यकी विशेषप्रवृत्ति इंद्रिय ओर उसके विषयोंमें होती हे, उससे उसको दुःख होता हे तोभी कामवश उसीमें प्रवृत होता हे, एसा यथेच्छाचरणसे रोकने वा रुकनेके लिये उपरोक्त प्रकृति, राज्य, मंडल ओर विद्या ओर धर्म यह ५ अंकुश हें.

मनुष्योंसे ज्यादा पशु पक्षी, प्रकृतिके अनुसार वर्तते हें अर्थात वे तन मनकी प्रकृतिके विरुद्ध नहीं करते, इसलिये सुखी रहते हें; मनुष्यके जितने दुःखी नहीं होते. मनुष्यने विषयासक्तिवश अपना कुदरती ज्ञान कुछ खोदिया हे, परंतु प्रकृति अपने नैसर्गिक नियमों (कानून कुदरत) को नही छोडती अर्थात प्रकृति, ज्ञानी अज्ञानी याने सबपर अपना नियम चलाती हे, उसके अनुसार फल होता हे. शरीरसंबंधिशास्त्र ओर मानसिकशास्त्रके अभ्याससे प्रकृतिके नियम ओर फल जानसकते हो.

जो नीति, राज्य ओर प्रजाकी हितकारी हो सो राज्यनीति कहाती हे ओर उसकी सत्ता द्वारा अनाचारी, स्वच्छंदी ओर दुष्टजनोंको दंड मिलता रहता हे.

ब्राह्मणादि जाती मंडलके अथवा हरकोई सोसाइटी कोमके वे नियम के जो उसके मिंबरोंके हितकारी हों ओर उनसे विरुद्ध वर्तनेवालेको व्यावहारिक हानी पहोंचसके, एसे नियम जातिबंध कहाते हें. सो प्रसिद्ध हें.

उपर जिस सत्ता ओर मंडलका वर्णन हे उनमें अनीतिराजसत्ताका ओर हठी—मूरखजातीका समावेश वा प्रसंग नहीं हे.

जिससे सत्यासत्यका, हिताहितका ओर उपयोग अनुपयोगका ज्ञान हो उसे विद्या कहते हें, उसके विरुद्ध वर्तनसे मनमें प्रत्यवाय होता हे, सो विद्या प्रसिद्ध हें ॥ १३५ से १३७ तक ॥ ओर धर्मके लक्षण यह हें.—

सृष्टिनियम ओर आत्माके अनुकूल जो हित (प्रेयस्, श्रेयस्) कारक साधन (कर्तव्य) उसे सामान्यधर्म कहते हें ॥ १३८ ॥ क्योंकि वोह मनुष्यमात्रको इष्ट होनेसे स्वीकृत हे ॥ १३९ ॥ यथा–सत्य, अस्तेय, शम, दम, शौच, धीवृद्धि, विद्यावृद्धि, अक्रोध, क्षमा ओर धैर्य यह १० बातें सर्वतंत्र होनेसे सामान्यधर्म कही जाती हें ॥१४०॥ ओर उक्त सामान्यधर्मके अनुकूल (वा अप्रतिकूल) यथादेशकालस्थिति (अधिकार) जो कर्तव्य, ज्ञातव्य, प्राप्तव्य हें उनको विशेषधर्म कहते हें ॥ १४१ ॥

१३८ से १४१ तकका संक्षेपमें **विवेचन**—अर्थापत्तिसे धर्मके यह लक्षण होजाते हें के, सृष्टिनियमके ओर आत्माके तथा समष्टि मनुष्यमंडलके जो अनुकूल हो उनके प्रतिकूल न हो, जिसका परिणाम दुःख न हो प्रत्युत सुख हो तथा शब्दप्रमाणको बीचमें न लेकेभी जिसकी सिद्ध होती हो तथा जिसके वर्तनमें शंका भय लज्जा न होते हों ओर इष्टप्राप्ति जिसका फल हो याने प्रेयस ओर श्रेयसका साधन हो उस कर्तव्य (ज्ञातव्य, प्राप्तव्य, कर्तव्य) को धर्म कहते हें. इसीको ड्यूटी-फर्जभी कहते हें (अ. ४ त्रिवादमें कहआये हें). जीवादि विषयोंसे उपेक्षा करते हुयेभी मूढ ओर केवल अपस्वार्थीसे इतर तमाम आस्तिक नास्तिकोंको उसे स्वीकारना पडता हे; अतः सर्वतंत्र हे. ओर व्यक्ति परत्वे यथाअधिकार जो विशेषधर्म हें वे इसके अप्रतिकूल होनेसे उनसेभी किसीका विरोध नहीं आता. इसका उदाहरण दृष्टांत, शंका, समाधान सहित व्याख्यान धर्म व्याख्यानके ट्रेकटमें हे. कुछ बस. ३१ । ३२ में भी हे ओर प्रसिद्धग्रंथ **प्रकृतिविवरण**मेंभी हे. उसीमें मानसप्रकृतिका बयान हे. सारांश धर्मानुसार वर्तनेसे कोई स्वच्छंदी नहीं होसकता ॥ १३८ । १४१ ॥[1]

---

[1]इसग्रंथमें सत्यादि १० का ५ जगह हवाला हे. अ. १ त्रिवाद. अ. १ अच्छिदवाद. अ. ४ संग्रहवाद. अ. ४ त्रिवाद, अ. ४ जीवनमत १७, अ. ४ प्रौढिवाद १३८ ॥ यह स्पष्ट पुनरुक्ति हे. परंतु इनइन पक्षवाले मानते हें, अतः विवेचनमें वा सूत्रोंमें उनउनके प्रसंगमें इनको लिखना पडा हे. जो नाम मात्र

(शंका) जिसको जीवादि (मोक्ष वगेरे) के संस्कार नहीं हैं एसे जडवादि वा अशिक्षित जड–पामरबुद्धिवालेका ओर उक्त विवेकज–विश्वासजाशांति पानेवालेका एकही परिणाम होना पायाजाता हे; क्योंकि जीवादिके विषयसे उपरामता उभयमें समान हे, तो फेर इस विषयके जान्नेमें श्रम क्यों कियाजाय? व्यर्थ हे. (उ.) कर्मप्रधान प्रकरण (१२० से १२५ तक) में इसका उत्तर होचुका हे; जो आस्तिक नास्तिक, शिक्षित ओर आशीक्षित सबके वास्ते समान हे. तथाहि संस्कार, फोर्स–वासनाही अगामी प्रवृत्ति निवृत्तिके हेतु होते हैं; ओर देहआत्मवादि वा अशिक्षितके मोहजालका ओर वासनाका अभाव नहीं होसकता, सुषुप्ति प्रसंगसमान गुप्त–अज्ञातरुपमें रहते हैं; परंतु प्रस्तुत निश्चयवालेको वेसा नहीं होता किंतु निष्काम हुवा वर्तता हे, एसा उभयके परिणाममें अंतर हे.

(शंका) उपरोक्त सयुक्त विश्वासजाशांति (तुष्टि) जनक बोधकी अर्थापत्तिसे बंधका स्वरुप यह सिद्ध होता हे कि जीवको दुःख सुखका प्रवाह बना रहे, आवागमनकी प्राप्ति रहा करे ओर सर्वथा स्वतंत्र नहीं ओर मोक्ष प्राप्तिके लिये प्रवृतिकी अपेक्षा नहीं हे; परंतु वेसा होनेका हेतु क्या? तहां (१) जो आत्मा विभु तो उसे कर्म, बंधका हेतु नहीं; क्योंकि वोह अक्रिय हे. (२) जो आत्मा परिच्छिन्न तो कर्मविना न रहसकनेसे आवागमन–बंध अबंधका स्वाभाविक प्रवाह रहनेसे कर्मको बंध हेतुता सिद्ध न होगी. (३) जो बंध स्वाभाविक तो निवृति असंभव; क्योंकि गुण--शक्ति उद्भव तिरोहित होंगे न के नाश. (४) देशकाल बंधके हेतु नहीं; क्योंकि उसका मुक्त अमुक्तके साथ नित्य संबंध हे. (५) अवस्था (परिवर्तन) बंधका हेतु नहीं; क्योंकि तत्वमें एसा नहीं होसकता. (६) प्रकृति बंधका हेतु नहीं; क्योंकि उसमें बंध करनेका ज्ञान नहीं हे ओर सबके साथ संबंध होनेसे मुक्तकोभी बंध होनेका समय आवेगा. (७) अविद्याभी बंधका हेतु नहीं; क्योंकि अविद्या कोई वस्तु नहीं हे, उसको वस्तु अवस्तुरुप मानें तो उभय दोष आते हैं. (८) अनादि वासना, अज्ञान, भ्रम, अविवेक वा अविद्या वा अदृष्टभी बंधके हेतु नहीं; क्योंकि अनादि होनेसे निवृत्त नहीं होसकते ओर जो निवृत्त हुये तो अनादि नहीं; कारणके अनादि सांत नहीं होता. ओर जो सादिसांत हैं तो पूर्ववत् पुनः होंगे एसे होने न होनेका प्रवाह रहेगा.

लिखते तो उन पक्षोंका गौरव ध्यानमें न आता. मतलब यह हे के उपयोगी पुनरुक्ति कटाक्षके योग्य नहीं होती.

(९) भूल, बंधका हेतु नहीं; क्योंकि ज्ञात पीछे अज्ञातरुप हुये भूलका प्रयोग होता हे अर्थात पूर्ववत् पुनः होनेका प्रवाह होनेसे मुख्य हेतु नहीं कहाजासकता. (१०) स्वरुपअविवेक बंधका हेतु नहीं; क्योंकि आरोप वा मान्यतासे स्वरुप बंध न हुवा. (११) ईश्वर बंधका हेतु नहीं; क्योंकि उसका यह धर्म नहीं हे वा न्यार्या हे. (१२) अपने आप बंधका हेतु नहीं, न संभव होनेसे. परंतु बंध (दुःख सुख) तो हे. उसका हेतु क्या? अर्थात प्रत्यक्षप्राप्तबंधका हेतु अज्ञात रहनेसे उसकी निवृत्ति होनेमें संदेह रहता हे अर्थात विवेकजाशांतिवालेकी मुक्ति ओर आवृत्ति अनावृत्तिके संबंधमें क्या निश्चय कियाजाय? (स.) जिसने उपरोक्त परिणामोंको जानलिया हे तो उसको बंधके हेतु जान्नेकी जरुरत नहीं हे ओर मुक्ति वा अनावृत्तिके संबंधमेंभी एसाही जान्ना चाहिये. एसे निश्चयवालेके संबंधमें इस विषयकी चर्चा करनाही नहीं बनता; क्योंकि उक्त परिणाम देखनेसे उसको यह शंकाही नहीं होसकती.

तथापि शोध दृष्टिसे उत्तर दियाजाता हे.–एसे परिणामवाले पुरुषकी "**अंत मतिवत्गति**" होती हे. यदि निष्कामता, त्याग--वैराग्य--औदार्य नहीं किंतु सकामता अर्थात कोई प्रकारकी वासनाका बीज शेष हे तो आवृत्ति होगी; ओर आशा हे कि भविष्यमें मोक्ष हो. जो वासना नहीं तो इस जन्ममेंही आत्मानुभव होके मोक्ष होनेमें क्या आश्चर्य? याने होनाही चाहिये ओर उत्तरमें कहे हुये २३८ समान उपयोग होगा. जो इस शैलीके अभ्याससे निष्कामता ओर निर्वासनता प्राप्त नहीं हुई तो अपरशांति (तुष्टि) रुप फल अर्थात शांतिभी नहीं भोग सकेगा.

ओर मनसकी उत्पत्ति, चिदग्रंथीका होना, उसकी उन्नति–तथा चिदग्रंथीका अभाव होनेसे मनसका अभाव एवं प्रवाह हे; इन बातोंका सविवेक भान जब होता हे कि चिदग्रंथीका साक्षात हुये उसके भंग होनेको अपरोक्ष जानाजाय अर्थात विवेकख्याति हो तब होता हे. एसा होनेपरही बंध क्या, बंधका हेतु क्या, उसकी निवृत्तिका साधन क्या, हित--नीति ओर धर्मके बोधक शास्त्र किस कारणसे सफल माने जायँ, मुक्ति क्या, मुक्त हुये पीछे फेर बंध हो उसमें अथवा जो बंध न हो उसमें कारण क्या? इत्यादि सवालोंका समाधान स्वयं होजाता हे (बस. ४०४ से ४१२ तकके विवेचनमें इसका विस्तार किया हे). यह प्रसंग उसकी चर्चाका नहीं हे; इसलिये अशक्तशोधक वास्ते इतना कहना बस होगा कि उपरोक्त प्रकारसे शांति न हुई हो तो परमात्मादेव तेरे हृदय–बुद्धिमें विराजमान हें

साधनसंपन्न होके चिदग्रंथीके भेदनेकी कोशिश करके उसको भंग,! तो उस परमात्मादेवके लक्ष्यालक्ष्य होनेपर स्वयं साक्षातशांति होजायगी; ओर उक्त परिणामोंका रहस्य तथा फल जानलोगे. अन्यथा नहीं. चिदग्रंथीभंग ओर साक्षातका प्रकार बस. उत्तरार्द्धमें हे ओर आगेभी आरण्यक प्रकरणमें वांचोगे.

(शं.) तुमने सृष्टिनियम ओर युक्ति द्वारा प्रौढीवादसे उक्त परिणाम निकाले हें, परंतु वे सृष्टिनियम ओर युक्ति, तथा सृष्टिके मूलतत्व, उनके फॉर्म, अवस्था—सारांश त्रिपुटीमात्र, यह सब अव्यवस्थित हें, इनमेंसे विवाद, संशय रहित किसी बातकाभी निर्णय वा निश्चय नहीं होसकता, ओर सब प्रसंगोंमें दोष रहता हे; इसलिये उपरोक्त कथन विश्वासपात्र नहीं.

(उ.) यह बात ठीक हे कि कुदरतकी दृष्टिसे कुछ नहीं भी कहसकते, ओर इस शंकाका समाधान उपर सू. १३८ में आचूका हे, तथापि संक्षेपमें कुछ विशेष लिखते हें—(१) कुदरतकी दृष्टिसे व्यवस्थित वा अव्यवस्थित कहनेके योग्य मनुष्य नहीं हे, (२) जितना कुछ कहा मानाजाता हे वोह मनुष्यकी बुद्धिकी हदमें हे याने व्यवास्थित भाग वा अव्यवास्थित अंश एक कम १००० मनुष्यकी प्रेक्टिस ओर परिचयसे माना जाता हे. यथा—यदि प्रतिबंध न हो तो अग्नि जलाती हे, दो एक नहीं होते, इत्यादि अ. ३ । २६ के विवेचनमें कहा हे, (३) जो सबही अव्यवस्थित मानें तो जितने धर्म—मत (चिदचिदवाद, मायावाद, विवर्तवाद, वेदवाद, प्रकृतिपुरुषवाद, ब्रह्मसत्य जगतमिथ्यावाद, जीव ईश्वरवाद इत्यादि) हें उनको अव्यवस्थित मान्ना पडेगा—सब ग्रंथोंके कथन मंतव्य त्याग होंगे, (४) शुद्ध नीति जो सत्य उसपरभी हडताल देनी पडेगी, (५) आपकी शंकाभी वदतोव्याघातमें ग्रसानेसे त्याज्य होगी, (६) जीवन होनाभी कठिन होपडेगा; (७) जितनी शंका वा समाधान हें वे सब मनुष्यकी मर्यादामें हें अर्थात बहुतसी बातें व्यवस्थित सिद्ध होती हें, ओर बहुतसीको मनुष्य नहीं जानता, अतः उसकी दृष्टिमें अव्यवास्थित हें; परंतु कुदरतकी दृष्टिमें जेसे मूलतत्व हें वे वेसे हें हीं, मनुष्यकी कल्पनासे उनको अव्यवास्थित नहीं कह सकते ओर यदि कहें तो भूल वा हठ हे. तथा मूलतत्वोंके संयोग वियोग हुये जो उनके गुण कर्म स्वभावका परिणाम आया हे (फॉर्म होते हें) वेभी कुदरतकी द्रष्टिसे व्यवस्थितही हें, मनुष्य उनको नहीं जानके अनिश्चित—अनिर्वचनीय--असत् वगेरे कहे तो उससे उनमें अव्यवस्थितपना नहीं आसकता, (८) अव्यवस्थित-

पना जिसमें प्रकाशित (ग्रहण) होता हे उसमें अव्यवस्थापना नहीं मान सकोगे ओर जो मानोगे तो आपका कथनही ग्रहण नहीं होगा. ॥ इस प्रकार सबको अव्यवस्थित कहना अपनेकोही कलंकित करना हे.

जो संप्रदायीभाववाले हें, जिनको आग्रह हे, जिनका मंतव्य सृष्टिनियमोंको नहीं सहार सकता, जो एक देशी हें, वा जो अंधभावनासे बद्ध हें, वेही स्वपक्षके बचाव वास्ते सब अव्यवस्थित कहनेको जाते हें; परंतु जो तटस्थ परीक्षक शोधक हें वे तो जिस विषयको नहीं जानते उसके संबंधमें यह कहेंगे कि " हम नहीं जानते कि क्या ओर केसा हे; " परंतु अव्यवस्थित नहीं कहेंगे. (यहां अ. ३ सू. १७७ । १७८का विवेचनभी बांचो).

अब १ मीनीटके लिये आपकाही कथन मानलेवें तो भी वोह हमारे प्रौढिवादके अनुकूल हे. अर्थात उभय पक्षोंको छोडके वा तमाम धर्म मत पंथके लेख अव्यवस्थित मानके उनसे उपेक्षा करके जितना होसके उतना अपना ओर परका जीवन सुखसे बीते एसी चेष्टा---उपाय करें, वक्ष्यमाण समष्टिभक्तिका सेवन करें, जितना व्याप्तिग्रहमें निश्चित ओर परंपरासे उपयोगी हे, उसको ग्रहण करें, ओर जो मनुष्यकी बुद्धिसे परे हे उससे उपेक्षा करके शांतिमें रहें.

यह बात ठीक हे कि वर्तमानमें बुद्धिके कौशल्यसे चालबाजी, बनावट, ओर डोल विशेष हें, तथापि जो प्राचीनोंकी वा वर्तमानकी व्यवस्थापिका (प्रवर्तिका) नीति ओर उसके फलको नहीं जानते वे सबको तिरस्कारदृष्टिसे देखते हें, यह उनकी भूल हे.

(शं.) उपरोक्त प्रौढिवादसे तुम्हारा सिद्धांत जो विलक्षणवाद उससेभी उपेक्षा होजाती हे तथा उसका खंडनभी होजाता हे ओर अ. १ में (सू. २०४ । २०५ में) तुमने आपही उसमें अपवाद जनाये हें ओर फेर उसको अपरोक्ष शांतिका हेतुभी बताते हो (आगे बांचोगे), एसे परस्पर विरोधी बात करनेका कारण क्या हे ? आश्चर्य हे !

(उ.) जेसे कोई ज्योतिषि पृथ्वीको केंद्र मानके ग्रहण बताता हे, दूसरा सूर्यको केंद्र ओर पृथिवीको गतिमान बताके ग्रहण दरसाता हे, दोनोंके ग्रहणका समय ओर माप मिलता हे. जेसे वैद्य वा हकीम कफ, पित, वायु, इन दोषोंको मानके दवाई देता हे उससे रोग निवृत्त होता हे, डाक्टर लिवर वगेरे यंत्रोंकी गति-डयूटीके फेरफारको मानके दवाई देता हे उससेभी रोग निवृत्त होता हे, अ-

र्थात उभयकी थीयरी जुदाजुदा हैं तोभी रोग निवृत्त होते हैं, ओर वे (ज्यो. वै. डा.) एक दूसरेका खंडन मंडनभी करते हैं. यही प्रकार यहां हे. यहां सार इतनाही हे कि " मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः " यह केंद्र वा निदान हे. यह व्यवहार ओर परमार्थ उभय जगह लगता हे, मनकी विषयासक्ति बंधके लिये (यहां, वहां दुःख पानेके लिये) ओर निर्विषयता याने विषयोंमें अनासक्ति वा कामना वासनाका अभाव[१] मुक्तिके लिये (यहां, वहां दुःख न हो ओर सुखी रहे इसके लिये) हे; इसलिये जिस शैली, जिस पद्धति, जिस थीयरीसे अनासक्ति प्राप्त हो[१] वोही ठीक हे, यह मतलब एकवाद (अद्वितीय ब्रह्म), वा द्विवाद (प्रकृति पुरुषवाद–अवच्छेदवाद–विशिष्टवाद), वा त्रिवाद (ईश्वर--जीव--प्रकृति अनादि अनंत), वा मायावाद, वा क्षणिकवाद, वा विलक्षणवाद वा अवभासवाद वा किसी अन्य थीयरीसे सिद्ध होता हो–जिससे इष्ट सिद्ध होता हो वोही ठीक हे; परंतु में क्या, क्यों, इतना अपरोक्ष हुये विना वोह मतलब सिद्ध नहीं होता; इसलिये थीयरीओंका खंडन मंडन करते हैं. यथा " एकमद्वितीयं ब्रह्म " के अर्थमें फेरफार करते हैं. प्रकृतिके अंश (परमाणुआदि) सजातीय हैं ओर इसलिये स्वगत भेदवालीभी हे तथा उससे विजातीय (उत्कृष्ट–विशेषधर्मवाला विजातीय) ब्रह्म हे; अतः उसमें तीनों भेद घटते हैं. जीवके सजातीय अन्यजीव हैं ओर उससे विजातीय ब्रह्म हे; अतः उसमें दोनों भेद घटते हैं. अणुचेतन होनेसे उसमें स्वगत भेद नहीं हे, ओर ब्रह्ममें तीनों भेद नहीं हैं अर्थात उस जेसा ब्रह्मचेतन नहीं, उससे उत्कृष्ट अन्य नहीं ओर उसके अंश नहीं, इसप्रकार वोह सजातीय, विजातीय ओर स्वगत भेद रहित अद्वितीय हे. दूसरेने यह अर्थ किया कि ब्रह्म जेसा, ब्रह्मसे इतर अन्य नहीं हे ओर उसमें स्वगतभेद (सावयवता) भी नहीं हे; अतः अद्वितीय हे. यहां प्रथममें विजातीयके अर्थमें ओर दूसरेमें (अद्वितीय सिद्ध करनेवाला अन्य एसे) द्वैतभावकी तकरार–खंडन मंडन हे. एवं अन्यभी अर्थ होते हैं; परंतु जो उसकी (ब्रह्म-जीव) परीक्षा करें-उसका ज्ञान होना रुप यह दवाई लें तो अवश्य उक्त रोग जाता रहेगा.

सार यह आया के उक्त (एकवादादि) थीयरी हैं–पद्धति हैं, उनको शब्दमात्रमें मानके खंडन मंडन करो तो भलेही करो, उससे कुछ प्रयोजन नहीं निकलता; परंतु येनकेन साधन करके में कोन केसा, इसका अनुभव होजाय

[१]निष्काम प्रवृत्ति. क्योंकि कर्मके विना जीवन नहीं होता.

तो इष्ट सिद्ध होसकेगा. अब चाहे वोह विलक्षणवादके खंडनसे वा द्विवादके मंडनसे वा मायावादके खंडन वा मंडनसे वा अन्य प्रकारसे प्राप्त होता हो, परंतु अनुभव होजाना जरुरी हे, इसलिये हमको विलक्षणवाद वा अन्यवाद मान्ने मनानेमें जराभी आग्रह नहीं हे; क्योंकि मनुष्यकी अपूर्णता हे; अतः उसका कोईभी पक्ष निर्दोष सिद्ध नहीं होता, यह बात तत्वदर्शनके विचारनेसे स्पष्ट जान सकते हो, तो फिर किसी पक्षका आग्रह करना व्यर्थही हे; किंतु जिस थीयरी–पद्धतिसे जनमंडलको हानी न हो ओर जिज्ञासुको विवेकख्याति होके चिद्ग्रंथीका भान होके कामना वासनाका अभाव होजाय तथा निष्काम बनजाय, वोही थीयरी वा पद्धति में ठीक मानता हुं. अद्वैत वा द्वैतके झगडेसे कुछ विशेष प्रयोजन नहीं हे. यह आपकी शंकाका उत्तर हे. ओर जो यह शंका हो कि जब यूं हे तो तत्वदर्शनमें पक्षोंका खंडन मंडन क्यों किया हे, इसका उत्तर इसी अध्याय--पेज ८९१ । ८९५में ओर दर्शनसंग्रहकी अनुभूमिकामें लिखा हे. अर्थात दूषण भूषण जानके त्याग ग्रहण करना ठीक हे; अंधपरंपरासे मानना हानीकारक हे जेसाके वर्तमानमें देखते हें. इसलिये कितनोंकमेंसे जिस पक्षमें अपवाद बताया हे उसी पक्षमें सारग्राही दृष्टिसे उसके भूषणभी दिखाये हें. (पेज ८५१ से ८९६ तक विचारो) एसेही विलक्षणवाद, मायावाद, अवभासवाद, त्रिवाद, द्विवादके संबंधमें ज्ञातव्य हे.

(शं.) जो प्रस्तुत–प्रौढीवादसे विवेकजविश्वासजाशांति (तुष्टि) होजाय तो फेर उस अधिकारीको क्या कर्तव्य हे. (उ.) शांति होनेका चिन्ह यह हे कि निष्कामता प्राप्त हो. जो एसी वृत्ति नहीं हुई हे तो अभी अभ्यास करने योग्य हे. अब जो शांति हुई हो तो 'कर्मके विना जीवन नहीं होता यह उपर कहा हे, इसलिये योग्यनिष्काम परोपकार करे, ओर कर्तव्य बुद्धि छोडके धर्म (प्राप्त डयूटी)-को पाले. इनको करनेवास्ते शरीरकी रक्षा करे. नास्तिकोंके समान, सतहितबोधक ओर अज्ञोंका शस्त्र (अंधोकी लकडी) जो शास्त्र उन शास्त्रोंपर हडताल न दे; क्योंकि उसने मानसिकशांति प्राप्त की हे, कुछ कुदरत, सत्ता वा मंडलको अपने स्वाधीन नहीं किया हे, इसलिये नीति नियम मर्यादासे वर्तना चाहिये ओर परकी उन्नतिमें अपनी व्यावहारिक उन्नति जानके लोकहितमें प्रवृत्त रहे. तथाहि उपर जो जीवनमत कहा हे उसानुसार वर्ते ओर दूसरोंको वेसा बोध दे, परंतु यह सब कुछ अहंकार ओर कर्तव्यबुद्धिको छोडके करे. जो शांति न हुई हो तो उत्तम

सकाम[१] करना चाहिये, उसका जबतब उत्तमपरिणाम आजायगा. और जो यह-भी न होसके तो नीचकर्ममें अवश्य प्रवृत्ति होगी अर्थात दुःख (ताप-क्लेश) का भोग होना पडेगा. इसलिये जिसमें उसको सुख मिले वेसा करे ॥ परंतु जो उपरोक्तपरिणाम समझनेसे पारमार्थिकशांति होचुकी हो तो उसको कोई प्रकारकी कामना नहीं रहती, यह उपर कहा हे, तो उसको चाहिये कि स्वकुटुंब, सोसाइटी, स्वनेशन, स्वराज्य, स्वदेश ओर समष्टि जनमंडलको सुख (प्रेयस) मिले, उनकी व्यावहारिक उन्नति हो, एसे उपाय ले ओर वे क्रमशः हों तो ठीक हो. पीछे तो यथादेशकालस्थिति, परिस्थिति कर्तव्य होते हें. जीवनमतमें इस प्रयत्नका बीज हे ओर समष्टिरुप ईश्वरकी भक्ति (आगे वांचोगे) इसकी शाखा हे, उनका सेवन करे. इस प्रौढिवाद लिखनेका यही उद्देश हे.

(शं.) प्रौढिवादसे जाना जासकता हे कि " मन एवं मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः " सो जो इस प्रौढिवादको न समझ सकनेसे शांति न हो तो वोह किसप्रकारकी धर्मभावना करे. (उ.) जिसमें जीवपर जवाबदारी रहे, जिससे सुखाकारी लोक नीति-मर्यादाका प्रचार रहे एसी भावना कर्तव्य हे ओर वोह समष्टिदृष्टिसे पूर्वोक्त (अ. ४) त्रिवाद हे, एसी हमारी मान्यता हे. ओर उपरके पारिग्राफमें जो कर्तव्य कहा हे सो यथाशक्ति करे. यद्यपि एक व्यक्तिकी भावना वास्ते बंधन वा अंकुश नहीं होसकता; तथापि समष्टि वास्ते तो त्रिवादही उत्तम जान पडता हे, समष्टिमें इसीका बोध लाभकारी होता हे; उसके कारण त्रिवादमें दरसाये हें ॥ १४१ ॥

उपर जो सूत्र ३१ से लेके १४१ तक--११० सूत्रोंमें जो परिणाम दिखाया हे वा जो लिखा हे सो हरकोइको स्वीकारनाही चाहिये, किंवा वही सिद्धांत हे, एसा आग्रह नहीं हे ॥ १४२ ॥ किंतु यथाअधिकार ग्रहण त्याग करनेका नियम हे ओर असत्यके त्याग करने ओर सत्यके ग्रहण करनेमें हमेशे उद्यत रहना चाहिये, यह आशय हे. यहां अमुक अधिकारीकी दृष्टिसे उसकी शांति अर्थ वर्णन हे. यदि सब धर्म, मत पंथोंकी वे बातें कि जो सबको स्वीकृत हों (यथा सत्य, अस्तेय वगेरे) उनका संग्रह कियाजाय ओर उनका यथादेशकाल स्थिति परिस्थितिके रुपमें प्रचार कियाजाय तो धर्मके झगडोंमें न उतरना पडे, धर्मद्वेषका ओर हठधर्मीका मुख काला होजाय ओर उपरोक्त परिणाम आजाये अर्थात धर्म, मत,

[१] संग्रहवादमें इसका ईशारा हे.

पंथ दुःखप्रद न हों, परोक्ष फलबोधक धर्मसे अपरोक्ष फलबोधक धर्म उत्तम (श्रद्धा विश्वासप्रद) माना जाता हे ओर जो सिद्ध परोक्ष विषय हो सो कल्पित भावना के विषयसे उत्तम गिना जाता हे, एसा ध्यानमें रहे. (सांख्ययोग-कर्म-योगका इंग्रेजी भाषामें तरजुमा हुवा हे उसमें इसका ज्यादा विस्तार हे) ॥ १४२ ॥

संगति—यद्यपि पूर्वोक्त तुष्टिवादमें उपेक्षादर्शक तथा समान परिणामसूचक अनेक बातें बताइ हें, उनमेंसे कितनीक तो उस उसके अधिकारी वास्ते लाभकारी हें ओर कोइ कोइ किसीकी दृष्टिमें सदोषभी जान पडें एसाभी मान सकते हें, तथा वर्त्तमानकी **नोरंगी** प्रजा (जो आर्य जातिके वे पुरुषके जो अपना प्राचीन धर्म नहीं जानते, अपने वर्णाश्रम धर्मसे अज्ञात हें, इंग्रेजी भाषामें रुचेपुचे पश्चिमकी नवीन रोशनीमें अंजाये हुये हें, आर्य ग्रंथोंको वा आर्य महात्माओंको हलकी दृष्टिसे देखते हें, विषय आसक्ति, विषय प्रवृत्तिही जिनका इष्ट हे. इ. सो.) की द्रष्टिमें कर्मकी प्रधानता दरसानेसे विशेष उपयोगीभी हे, तथा अधिष्ठान आधारकी सिद्धि ओर कर्म ओर यथा कर्मफल बोधनेसे नास्तिक भाव आनेमें आडभी हे तथापि उसमें कहीं कहीं खंडन मंडनका रुप आजानेसे उद्दिष्ट फल (विश्वासजा शांति) प्राप्त हानेमें संशय होजानेकी संभावना हे ओर इस अध्याय के सूत्र ४ से सू. २९ तकमें जो शांति, सुखफल दरसाये हें वे यद्यपि ठीकही हें ओर उनउनके अधिकारीको लाभप्रदभी हें तथापि कष्ट साध्य हें, इसलिये इस संग्रहगत उनसे विलक्षण तुष्टिरुप शांतिका प्रकार ओरभी लिखते हें:-

पर वैराग्यसे उसके योग्यको विलक्षण शांति (फल) ॥ १४३ ॥ सीमा सफल ओर प्रवाहकी आपत्तिसे ॥ १४४ ॥ लोकमान्य वा लोकमान्य ग्रंथ लिखित सब वा उनसे न्यूनाधिक वा उनसे अन्य प्रकारका प्राप्त हो वा न हो "तोभी क्या" एसा द्रढ निश्चय परवैराग्य ॥ १४५ ॥ बहु द्रष्ट श्रुत हुयेभी अनुपरामी उसका अधिकारी ॥ १४६ ॥ इसको उससे कामना आसक्तिका अभाव ॥ १४७ ॥ ओर निष्कामता प्राप्तिभी ॥ १४८ ॥ सर्वथा संतुष्ट ॥ १४९ ॥ यथा प्रकृति प्रवृत्ति ॥ १५० ॥

सूत्रार्थ—पर वैराग्य प्राप्त होनेके जो योग्य (अधिकारी) हे उसको पर वैराग्य प्राप्त होजानेसे उपरोक्त शांतिसे विलक्षण प्रकारकी शांतिरुप फल मिलता हे ॥ १४३ ॥ कारण के वोह इस अंतपर पहोंच जानेवाला हे अर्थात

वोह बुद्धि पूर्वक समझ लेगा के (१) जो नहीं होके हुवा सोहोकेभी न रहेगा, एसा निष्कर्ष हे. ओर एसा फल होगया बस, एसी अवधिवाला हे अर्थात सब प्रकारकी प्रवृत्ति निवृत्तिकी ओर उससे प्राप्त अप्राप्त रुप जो फल इन सबकी सीमा हे (२) ओर यदि हें तो पदार्थ मात्र सफल होते हें इसलिये वे एक उपयोगमेंसे दूसरे उपयोगमें आते रहें, एसा नैसर्गिक (स्वभाविक-अनादि अनंत) प्रवाह रहने योग्य हे याने एक स्थितिमें नहीं रह सकते ॥ इस प्रकार सीमा, सफलत्व, ओर प्रवाहकी आपत्ति होनेसे (अ. २. सू. ३६७। ३६९। ३७०। १२७ देखो) परवैराग्य (जो यूं हुवा तोभी क्या ओर यूं न हुवा तोभी क्या ओर अन्यथा हुवा तोभी क्या) को प्राप्त होजाता हे, ओर इससे उसको विलक्षण शांति हो जाती हे ॥ १४४ ॥ अब परवैराग्य ओर उसके अधिकारीके लक्षण कहते हें—

जैसा ओर जितना कुछ, सब धर्म मत पंथवालोंने वा फिलोसोफरोंने वा व्यावहारिक योग्य महान पुरुषोंने किंवा लोकमान्य हरकोई ग्रंथने, इसलोक ओर परलोक संबंधी जो वैभव, प्रेयस्, सिद्धि वा मोक्ष सुख (यहांतकके स्वयं सर्वोपरी परमेश्वर वा वीतराग बनजाना अथवा इनसेभी अधिक होजाना. इ.) माना हे वा लिखा हे (अध्याय १ तथा दर्शन संग्रहमें वर्णन हे.) सो वेसा उतना सबकुछ अथवा उससे कम ज्यादा अथवा उससे विपरीत किंवा उससे कोइ अन्य प्रकारका प्राप्त हो अथवा कुछभी प्राप्त न हो अथवा कुछभी न हो "तोभी क्या" (ततोऽपि किम्--तेनकिम्। ततः किम्। अर्थात तोभी क्या हुवा) एसा जो बुद्धिपूर्वक द्रढ निश्चय उसको **परवैराग्य** कहते हें (सो उसके अधिकारीको उक्त विवेकसे प्राप्त होजाता हे) ॥ १४५ ॥ (इस प्रसंगमें इतना लिख देना ठीक जान पडता हे अर्थात इस तत्त्वदर्शन ग्रंथमें जो कुछ पक्ष, नियम, असिद्ध विषय, सिद्ध विषय, खंडन मंडन, शांति, तुष्टि वगेरे लिखा हे वोह, ठीक हो वा ठीक न हो अथवा उससे अन्यथा हो तोभी परवैरागीको उसकी अपेक्षा नहीं हे किंतु उपेक्षाही रहती हे). ॥ १४५ ॥

जिसने अनेक धर्म मत पंथोंको वा नाना फिलोसोफीको देखा सुना हे जो विचारशील शोधक हे ओर अनेक प्रकारका तजरबेकार हे तोभी जिसको उपरामता नहीं हुइ हे याने उपरामताकी उसे अपेक्षा शेष हे, एसा पुरुष इस परवैराग्य प्राप्त होनेका अधिकारी होता हे (ओर उक्त विवेकसे परवैराग्यको प्राप्त होके विलक्षण शांति फलको पाता हे) ॥ १४६ ॥

परवैराग्य प्राप्त हुये उस अधिकारीको कोई बात (त्रिलोकीके विषय, गुण, गुणपरिणाम) की गुप्त इच्छाभी ओर किसी पदार्थमेंभी आसक्ति (मोह) नहीं होती. (इसका कारण उक्त प्रकारका सविवेक विराग हे) ॥ १४७ ॥ ओर उस अधिकारीको निष्कामताभी होजाती हे अर्थात प्रकृतिके नियमाधीन कर्म करता हे तोभी उसके फलकी इच्छा तृष्णा न करता हुवा कर्मयोगी होजाता हे. ॥१४८॥ हरेक प्रकारकी लौकिक स्थितिमें संतुष्ट रहता हे. ॥१४९॥ ओर जेसी उस विवेक प्राप्तकी प्रकृति शेष होती हे उस अनुसार उसकी प्रवृत्ति होती रहती हे ॥१५०॥

विवेचन---इस प्रसंगमें परवैराग्यका लक्षण योगशास्त्रानुसार (गुण ओर गुणोंकी तृष्णाका त्याग, इतनाही) नहीं हे किंवा जगत दुःखरूप, जड ओर नाशवान हे इसलिये उसमें अरुची इतनाही लक्षण नहीं हे; किंतु इनसे कुछ अधिक विलक्षण हे. यह वैराग्य बौद्ध पक्षानुसार क्षणिक (क्षणभंगुर द्रष्टिवाला) भी नहीं हे.

यद्यपि इस वैराग्यका लक्ष्यार्थ तो ब्रह्म वितही अनुभवता हे अर्थात जिसने ब्रह्म अविषय हुवा अपरोक्ष (स्वप्रकाश अलुत ज्योति) जाना हे ओर उस प्रकाश स्वरुपसे इतर नामरुपात्मक माया (जगत) को बाधरुप आकाशकी नीलता समान (प्रतीति कालमेंभी नहीं) पहिछाना हे. कारण के उसकी द्रष्टिमें जो उपरोक्त सत्य कार्यवाद (एकवाद, द्वेवाद, त्रिवाद,) ओर अध्यस्तवाद (भ्रमवाद,) विलक्षण वाद वगेरे) ओर प्रकृतिवाद ओर तत्व दर्शनके पक्ष--नियम--विचार खंडन मंडनादि यह सब बाधरुप हें, कोइ किसी पक्षकोभी माने वा किसीको कोइ पक्षभी प्रतीत होता हो " तोभी क्या " स्वप्नवत प्रतीत मात्र--बाधरुप (अजात) हे, एसे उसको बाधरुप समझता हे, इसलिये उसको इसमें उपेक्षा होती हे. उसमें राग, द्वेष, हर्ष, शोक नहीं होते.

परंतु जो इस दरजेपर नहीं पहोंचा हे याने जिसको मिथ्यात्वका अपरोक्ष निश्चय (बाध) नहीं हुवा हे तथापि बहुत कुछ देखा सुना हे वोह बाधके मुख्यार्थ (सब तुच्छ) समझने याने एसा परोक्ष ज्ञान होनेके योग्य होजाता हे, इसलिये " तोभी क्या " इस रमूजको समझ लेता हे ओर एसी समझ होनेसे उसको विलक्षण प्रकारकी शांति होजाती हे, इस शांतिके परिणाममें जबतब उसके लक्ष्यार्थ* पर पहोंचनेके योग्य होजायगा. इसलिये यहां इसका वर्णन किया गया हे.

*परिवर्तनात्मक, मिथ्या-प्रतीत मात्र, परमार्थतः--स्वरूपतः अजात, बाधित हुई बाधित, अतः " तोभी क्या " एसा लक्ष्य.

उपर जितने शांति--सुख ओर तुष्टि फल कहे गये वे सब परिवर्तनात्मक निवडते हैं ओर यह शांति न बदल कर आगे बढती हे जेसा के लक्ष्यार्थमें कहा हे. इसलिये इसको विलक्षण शांति कही हे.

इस परवैराग्यका बीज कोइ पूर्वके उत्तम संस्कारोंमें होता हे (परवैराग्यवाला इसबातको स्वीकारे वा न स्वीकारे इससे यहां प्रयोजन नहीं हे) याने किसीके उपदेश मात्रसे यह नहीं होता, बलके दर्शन, श्रवण, मंथन (यहही उपदेष्टा) द्वारा स्वयं होजाता हे. (शं.) एसे अधिकारी होना असंभव (उ.) नहीं. विभूषक मतमें जनाया हे के "सब ईश्वरकी तरफसे," एसा निश्चय होजाता हे. एसाही यह हे. भक्तका एसा निश्चय (भावना) होजाता हे के हमको निकामी खाली बेठे रहने वाली मुक्ति नहीं चाहिये, हमको तो जन्म जन्ममें ईश्वरकी भक्ति प्राप्त हो एसा चाहते हैं. इसीमें मजा हे. छंद.--जो मजा (आनंद) हिजर (अप्राप्त) यारमें देखा; सो (आनंद) नहीं वसल (मेल--प्राप्ति) यार में देखा. एसेही इसके अधिकारी ओर उसको इसकी प्राप्ति हो सकती हे. इसलिये आपकी शंका निर्बीज हे. ओर परवैराग्य तो सयुक्त हे, इसलिये कोई न कोई इसका अधिकारी अवश्य निकलता हे.

यह परवैराग्य अनिश्चित बाद नहीं हे कारण के निश्चित मानके परिणाम निकालता हे. इसका विवेक किसी मतपक्षका खंडन मंडन नहीं करता ओर न किसीका अनुयायी हे, कारण के सब (विरोधी, अविरोधी) को मानके नतीजे पर आता हे. जिसको यह वैराग्य प्राप्त हो गया हे, उसका हृदय शुद्ध होजाता हे.

उसका एसा निश्चय स्वाभाविक हो जाता हे के जो परिच्छिन्न (जीव वा अजीव) हो सो कारण कार्यका हेतु ओर जो अपने में दुःख सुख मानता हे उसका ज्ञान, भोक्तृत्वका हेतु होता हे १, परिच्छिनका स्वभाव हे गतिमें आना याने कर्म करना, २ कर्म विना जीवनही नहीं होसकता ३, कर्मका फल अवश्य होता हे ४, जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र हो वा न हो परंतु उसके फल भोगनेमेंतो परतंत्रता ही होती हे (कारण के फल प्रकृतिके नियमानुसार वा व्यवस्थापर होता हे), इसलिये कर्म सकाम हो वा निष्काम हो, स्वार्थमें हो वा परार्थमें हो, परंतु कर्मके फलमें इच्छा-तृष्णा न करके कर्म करता हे. संन्यासीके लिये काम्य कर्मका ओर कर्मके फलकी इच्छाकाभी त्याग होनाही चाहिये ओर गृहस्थको तो कर्मके फलकी इच्छाका त्याग कर्तव्य होता हे, इस भावनासे कर्म करनेको निष्काम कर्म ओर

कर्मयोग कहते हैं. इस पुरुषकी एसीही प्रवृति हो जाती हे अर्थात **कर्मयोगी** बनजाता हे. इसलिये यथा प्राप्तमें संतुष्ट रहता हे.

यद्यपि इस पुरुषको विधि निषेधकी लगाम नहीं लगती ओर उसकी इच्छित, अनिच्छित, परेछित प्रवृत्तिभी होती हे याने उसकी प्रवृत्तिका कोई विशेष नियम नहीं कहा जाता तथापि निषिद्धका प्रवेश उसमें नहीं होता कारण के उच्चताको प्राप्त हुवा शुद्ध हृदय होजाता हे. ज्ञानवानभी प्रकृति पर जाता हे, इस स्वाभाविक नियमानुसार यथा प्रकृति, उसकी प्रवृति होती हे.

उक्त विलक्षण शांतिके भोगनेवालेको याने "में कोन" इतना जानना तथा जगतका खास स्वरूप उसको पहेछानना बाकी रहता हे, तथापि वोह इसकी परवाह नहीं करता. कारण के पूर्वोक्त तत्व अतत्त्वका विवेकभी उसके सामने हाजीर रहता हे.

परवैराग्य होने ओर उपर लिखी हुई, वृत्ति, स्थिति होनेमें "सीमादिका" ओंडा--गुह्य विवेक कारण हे.

(शं) शब्दोंमें तो इस विवेकीकी लंबी चोडी महिमा कही गई, परंतु जब दो रोटी पेटमें न जावें तो "तोभी क्या" यह निश्चय कोन जाने कहां भाग जाता हे. इससे यह जान पडता हे के जेसे लोकोपयोगिनि **सिद्धियें** कष्ट साध्य हें इसलिये वे बंधकी हेतु, एसा कहके उनसे उपेक्षा कराते हें--उनकी निंदा करते हें, मनमें तो चाहते हें; एसेही "तोभीक्या" यह कथन मात्र हे. किंवा जेसे छींके पर रखे हुये दहीको बिल्ली नहीं पहोंच सकनसे उसे "थू--कडवी एसा छींकमें बताके दूसरी खूराकमें प्रवृत्त होती हे, वेसे अशक्तका "तोभीक्या" यह कहना वा मानना कल्पना मात्र हे, कारण के ज्ञानी, योगी, अज्ञानी वा प्रस्तुत विवेकीको जीवन कलह (प्राण पोषण) में आनाही पडता हे. (उ.) इस टूटीचार पाईकी बादशाहतका अंदाज वही करसकता हे के जो यहां पहोंचा हो. वोह आपने जेसी (उपलक, क्षुद्र) शंकाकी वेसी कभी नही करेगा. आपमें वहां पहोंचनेकी योग्यता नहीं, इसलिये अपनी कमजोरी छिपानेके लिये रोटी, सिद्धि ओर बिल्लीकी शंका कल्पते हो. उसके चित्तमें लोकवासना, शास्त्रवासना तो क्या शरीर वासनाभी नहीं होती. प्राण पोषणमें यद्यपि अनिवार्य होनेसे स्वभावतः प्रवृत्ति होती हे तथापि वोह दूसरोंसे तो हजार दरजे उत्तम होता हे ओर वोहभी उसकी निष्काम प्रवृत्ति होती हे. आर्यावर्तमें आज ९०० वर्षसे हिंदकी माताहर

गोका वध होता हे. इस दरमियानमें कितनेही मंत्र जंत्रवाले सिद्ध हुये हें--मशहूर हें परंतु वे गोवध बंद न करासके. इसलिये उनकी करामत कथन मात्र नहीं तो क्या. सिद्धि अहंकारमें फंसाती हे ओर प्रकृति विषे लय करानेमें निमित्त हे तथा मुख्य श्रेयकी प्राप्तिमें, आडभीहे इसलिये उपेक्षा कराई जाती हे; नहीं के कष्टसाध्य होनेसे. अतः आपका कुतर्क उपेक्षा के योग्य हे.

इस विलक्षण शांति प्रसंगमें ओरभी अनेक शंका समाधान हें परंतु इस विषयके अधिकारीको इतना लिखनाही बस होता हे, कारणके यह बात सेन (रंमूज) मात्र हे, समझमें आगई तो शंका समाधानमेंभी "तोभी क्या" यह भाव आ खडा होता हे याने शांतिही रहती हे. इसलिये विवाद छोडके इस प्रसंगसे उपराम होते हें. ॥ १५० ॥

संगति—यद्यपि पूर्वोक्त प्रकरणमें अशक्तने तो सांख्य योगके बलसे याने तत्त्व अतत्त्वके विवेकद्वारा जीवादि विषयका निर्णय करके शांति मानी हे, परंतु उसमें "**यदि**" "तो" पदका व्यवहार किया हे. ओर विलक्षण तुष्टिवालेने तो "कुछभी क्यों न हो" उससे विराग, एसा मानके शांति मानी हे, उसमें मुख्य हेतु यह हे के अप्राप्तकी जो प्राप्ति उसकी अप्राप्ति होती हे, "न होके हो सो न रहेगा" परंतु विचारें तो यहांभी सांख्य योगसेही शांति मानी हे. जोके उपरोक्त तमाम शांति--सुख--तुष्टि कल्पित भाव हें कारणके जिसके लिये शांति मानी हे उसका उसमें बोधही नहीं हे, (नावल याने वर विनाकी बरात, जेसी होय नहीं एसी हे). इसलिये उन शांति--सुख--तुष्टि माननेवालोंके हृदयमें---

स्वात्म बोधकी जिज्ञासा शेष ॥ १५१ ॥

(सूत्रार्थ) अपने निज स्वरूप (जो तुष्टि--शांतिका साक्षी--जिसकी शांति प्रकाश्य हे--शांतिका ज्ञाता भोक्ता) याने आत्मज्ञान होनेकी जिज्ञासा ज्ञात अज्ञात रुपसे बाकी रही हुई हे अर्थात में (इस वृत्तिका जो विषय $ सो में) कोन ओर केसा, इसके साक्षात्कार होनेकी इच्छा होती हे.

विवेचन—पामरको छोडके हरकोई (विषयी वा जिज्ञासु) जो उक्त प्रकारकी शांति--तुष्टिको प्राप्त हुवा हे उसको भोक्ता याने अपने स्वरुप अनुभवनेकी इच्छा होती हे, कारणके यदि भोक्ता अतत्व हो तो उक्त सुख शांति परिव-

$ आत्मा.

र्तनात्मक वा नाशवान मानी जाके व्यर्थ कहनी पडती है.‡ जो तत्त्वरुप हो तो प्राप्तिकी अप्राप्तिभी, इस न्यायसे संशय होजाता है, सारांश निरंकुश शांति उसके अनुभवके विना नहीं मानी जासकती ॥ यद्यपि कहा हुवा फल (विषयानंद--विद्यानंद--विवेकानंद) वोह सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है तथापि ' वोह फल होता तो है याने सुख-- शांतिरुप फल विषय होता है---इसलिये यह कामना होजाती है के उसका भोक्ता (प्रमाता--जीव) तो उन शांति तुष्टिसे विशेष महत्तावाला होना चाहिये. इसलियेभी उसके अनुभव होजानेकी अवश्य जिज्ञासा होती है---

माना के पूर्वोक्त "तत्त्व अतत्त्व विवेकसे" शोधकको तुष्टि होजाती है ओर केवल सांख्य योग (तोभी क्या) सेभी शांति होजाती है तथा "मैं हूं" इस वृत्तिका विषय जो आत्मा (अपनपा) उस अपने स्वरुपका सामान्य भानभी होरहा है ओर जीव साक्षी याने कूठस्थात्माके स्वरुपका कुछ बयान पूर्वकी अध्यायमें कियाभी है तथापि उसमेंसे अनेकोंको अपन पने (आत्मस्वरुप) का यथावत साक्षात्कार हो, एसी इच्छा--प्रवृत्ति होती है.

इस तत्वदर्शन ग्रंथमें अधिकार द्रष्टिसे ४ पद्धति (भूमिका) वाला उपदेश वा कथन है (१) **व्यवहार** (अविवेक-अज्ञान), **विचार** (आंदोलन

---

‡ इस अध्यायके सू. ४ से सू. १५२ तकमें जो अनेक प्रकारकी तुष्टि--लिखी हैं उनसे हानी ओर लाभ (उभयरुप) भी माना जासकता है. कारणके ९ तुष्टि उनको सदोषभी कहा है. (ओर शांति संबंधमें उपर कहा है.)

दोषकी कल्पना (१) नास्तिक भाव होनेकी संभावना, (२) प्रवाहमें अशक्तताका उद्भव होजाना, (३) उन्नति याने मुख्य इष्टपर पहोंचनेकी आड, (४) उन परस्परमें विरोधाभास (जगत मिथ्या, जगत सत्य, एसे, विरोधी द्रष्टि मानी है), (५) ग्रंथके लेखमें विरोधाभास (यथा--एकता ओर आत्म ज्ञानसे मोक्ष नहीं ओर हां भी कही है), (६) अपनी युक्तिसे विरोधी युक्ति बलवान मिले तो डिग जानेकी संभावना, (७) एक जगह अनेक ओर विरोधी पक्षोंका संग्रह पा लेनेसे बुद्धिमें भ्रांति होजानेकी संभावना.

लाभ (१) केसेभी मिले परंतु सब शांति--सुख चाहते हैं अतः अशक्तकोभी एक प्रकारकी शांति मिलना (यह लाभ), (२) अमुक अधिकारीके विक्षेपोंका अभाव होके एक प्रकारकी शांति मिलना. (३) नोरंगी

भाइओंको विसराम मिलना, कारणके अधिष्ठानका ओर कर्मफल मिलनेका अस्तित्व अनिवार्य बताया हे, (४) संशय ओर रुची जुदा जुदा--अनेकधा होते हें उन अपने इष्ट प्रकारको जगह जगह ढूंढना पडता हे, परंतु यहां एक जगह अनेकोंका वर्णन हे अर्थात उनमेंसे शोधकके अधिकार अनुसार सुखेन मिलजाना, (५) हठधर्मी (धर्म द्वेष) का अभाव होजाना, (६) प्राप्त शांतिके चसकेसे इसी जन्म वा पुनर्जन्ममें परम शांति (अबदल शांति--मोक्ष) प्राप्त करनेकी उत्कट जिज्ञासा होजाती हे, (७) विलक्षण शांति भोगनेवाला तो कर्मयोगी बन जानेसे मल विक्षेपरहित शुद्ध हृदय बन जाता हे अर्थात वेदांत (ज्ञानका निष्कर्ष-- अवधि) प्राप्त होनेका अधिकारी होजाता हे, (८) यदि इस ग्रंथको विचारपूर्वक अवलोकन करेगा तो सत्यकाही ग्रहण होगा अर्थात "समचेतन याने ब्रह्मचेतन एकही हे नाना चेतन नहीं हें याने ब्रह्म आत्मा एकही हे, ओर वोह अविषय हुवा स्वप्रकाश हे, तथा उसके स्वरुपमें अन्यका प्रवेश न होनेसे द्रश्यका वाधत्व हे" एसा ग्रहण होजानेसे उसके अनुभव होजाने वास्ते प्रवृत होगा.

(९) कल्पित वा व्यावहारिक शांति सो बुद्धि अवलंभवाली शांति (पीडा -रोग कालमें जेसे अफीमकी पिचकारीसे पीडा रोगकी शांति) याने लौकिक शांति (तुष्टि) कहाती हे उसको हरकोई संप्रदायी वा मजहबी पुरुष पसंद नहीं करता किंतु उसको तिरस्कार द्दष्टिसे देखे यह स्वाभाविक हे, तथापि उपरोक्त प्रकारोंमें से जो भाग (विषय) अपनी मानी संप्रदाय वा मजहब के अनुकूल देखेगा तो उससे अवश्य उसको एक प्रकारकी शांति--तुष्टि होगी याने उसकी वृति एक प्रकारकी तुष्टि (शांति) रुप परिणामको धारेगी.

इस प्रकारके दूषण भूषण कल्पे जासकते हें ॥ १५१ ॥ (शं.) यदि उक्त विषय सदोषभी था तो लिखना न चाहिये था. (उ.) मुख्य तत्व (ब्रह्म चेतन) के ज्ञान होनेमें कोइ साधन नहीं हे, कारण के वोह मन इंद्रिय प्रत्यक्षादि प्रमाण ओर युक्ति तर्कका अविषय हे तथापि उस अनुभव स्वरुपके प्रकाशमान होनेमें कर्म, उपासना ओर शुद्ध वृत्तिको क्रमशः साधन बताते हें. इसी प्रकार यहां हे याने अमुकको आगे बढनेका साधन हे, ओर वस्तुतः ब्रह्म से इतर निर्दोष कोईभी विषय नहीं हे, किंतु जड, नाशवान हें तथापि उसीके विवेक द्वारा मुख्य तत्व-- इष्टपर पहोंच जाते हें! अतःव्यर्थ नहीं हे,

फल) विवेक (निर्णयका ग्रहण) ओर अनुभव (परीक्षा परिणाम). भूमिकामेंभी बनाई हे. सत् कार्यवाद, प्रमाण, सृष्टि नियम (सफलादि नियम), भेद, अभेद, द्वैत, अद्वैत; अध्यस्तवाद, ओर जीवादि (बंध मोक्षादि) प्रसंगोंमें इन चारोंका अधिकारिओंकी द्रष्टिसे उपयोग याने कथन हुवा हे ओर अनुभव पद्धतिमें तीनोंका अपवाद (बाध) होजाता हे. वेसाही यहां फल प्रकरण हे याने यहांतक व्यवहार ओर विचार पद्धतिवाले अधिकारीको सुख शांति फलका दर्शन कहा हे, इसी कारण भोक्ता-चिद् ग्रंथी-प्रमाताके स्वरुपका विशेष वर्णन नहीं किया हे. ओर अब आगे विवेक ख्याति तथा अनुभव करने योग्य अधिकारीकी द्रष्टिसे दर्शन-फलका वर्णन होगा; तहां इनका अपवाद हो जायगा. ओर साक्षात परम शांति फलकी प्राप्ति कही जायगी.

तत्त्वदर्शन.

(अध्याय ४ के उत्तरार्द्धका आरंभ).

संगति-यहांतक ग्रंथारंभके सूत्रमें सत्य तत्त्व क्या, एसे जाननेकी जो प्रतिज्ञा कहीथी सो पूरी हुई हे.

अब उक्त तत्त्व दर्शनका प्रकार ओर फल ॥ १५२ ॥

सूत्रार्थ–इस ग्रंथके आरंभमेंही तत्त्व, श्रेय ओर श्रेय साधनमें नाना मतभेद-पक्ष दर्शनसे उनमें सत्य शोधके जाननेकी जिज्ञासा कही हे. इस सूत्रके उपर तकमें तत्व याने सत् सम चेतन प्रकाश, एकही तत्त्व हे ओर उससे इतर अतत्व याने उससे विलक्षण (सदसदसे विलक्षण) अनिर्वचनीय माया प्रकाश्य, यह सिद्ध हुवा हे. तथा तदंतर्गत मोक्ष ओर इसके साधनभी विलक्षण-अनिर्वचनीय कहे हें सारांश तत्त्वादिका विवेक-निर्णय किया गया हे. इसका मंतव्य परोक्ष ज्ञान कहा जाता हे. ओर विलक्षण बुद्धिमें अतत्त्वसे वैराग्यभी दरसाया हे. फलितार्थ ब्रह्म सत्य ओर उससे इतर सब तुच्छ-बाधरुप-मिथ्या, इतना विवेक वैराग्य उपर कहा गया हे. अब उक्त तत्त्व अतत्त्वका बोध अनुभव--दर्शन केसेहो सो प्रकार ओर उस बोधका फल, आगे कहेंगे. याने तत्वदर्शन गत तत्त्व भाग कहा गया ओर अब उसके दर्शन अंशका आरंभ करते हें.

विवेचन-(१) पूर्वमें सत्य जाननेकी जिज्ञासा होनेपर बिचार पद्धतिमें यह सिद्ध हुवा हे (दोहा) ब्रह्मात्मा एक हे, सम सत् चेतन रूप। बाध रूप सब इतरहें यह सिद्धांत अनूप ॥ १ ॥ इसका व्योरा–

विषय	अध्याय	सूत्रांक	विषय	अध्याय	सूत्रांक
ब्रह्मसिद्धि	१-	१८२	प्रकाश (ब्रह्म) प्रकाश्य, (सब द्रश्य) परस्परमें विलक्षण ओर अवाच्य	३-	५५४ से ५६२ तक
	३-	२९१-३९३ ३९६-४०१ ५६७			
जगतबाधरूप (प्रतितीकाल मेंभी नहीं)	१-	२०६-२०८। २६८	ब्रह्म आत्माकी एकता	३-	५४१
	३-	४१० से ४१६। ५८३।	माया परिमाण, देशकाल रहित. स्वप्न वत्	३-	५४२
जगत स्वप्न जैसी	३-	४२३से ५२७ तक। ५४२	मायाकी अस्ति भाति	३-	८३१
			ब्रह्मकी अस्ति भाति.		पेज.
सद् ब्रह्म तत्व एकही, अन्य उससे विलक्षण	२-	४१३। ४२१।	जीव-चिदचिद् विशिष्ट-युक्त.	३-	५५८

विषय	अध्याय	सूत्रांक.	विषय	अध्याय	सूत्रांक.
ब्रह्म ओर मायाके स्वरुप संबंधमें मौन	३-	५५४	ब्रह्म असत् नहीं किंतु सत् हे ओर माया उससे विषम याने सत् नहीं किंतु उससे विलक्षण परंतु असत् नहीं तथापि बाध रुप एसी अनिर्वचनीय.	३-	५६९ पेज ८२९
ब्रह्म ओर मायाके भेद, अभेद, संबंध वगेरे साक्षी भास्य.	३-	८३१ पेज.			
इष्ट सिद्धि (मोक्ष) का साधन ज्ञान हे	३-	५६४			
बंधमोक्ष	३-	५४७	द्वैत माया मात्र	३-	५७१

(२) व्यवहार पद्धति में जीवके लिये शांति-सुख-तुष्टि होनेका रुप दरसाया हे (क) ईश्वर विश्वास अ. १ विभूषक मत. (ख) शांति सुख-(अ. ४ सू. १ से २९ तक).

(३) अशक्त कोभी तुष्टि-अ. ४ सू. ३० से १४२ तक.

(४) विलक्षण तुष्टि-अ. ४ सू. १४३ से १५० तक. ओर व्यवहार पक्षमें ही कर्मका बोध तथा कहीं कहीं उपासना करनेकी सूचना.

(५) उक्त शांति-तुष्टि हुयेभी अपने आत्म स्वरुपके अनुभव होनेकी जिज्ञासा अ. ४। सू. १५१ ॥

अनुपम शब्दका अर्थ यहां बताना ठीक होगा, कारण के इसका बयान आवती तीसरी बुकमें होना हे. ब्रह्म माया (नाम रुप यह दोनों परस्परमें विलक्षण+ अपनी उपमां में वे आपही हें-उनकी उपमां नहीं मिलती. एक चेतन, दूसरी जड. एक अबाध्य दूसरी बाध्य. ब्रह्म चेतन सम ओर अविषय होते हुयेभी अपरोक्ष (अलुप्त ज्योति-स्वप्रकाश रुप), दूसरी नाम रुपात्मक माया परिणामी, प्रतीत होते हुयेभी नहीं (केसी विलक्षणता* अद्भुतता). ब्रह्म चेतन असंग हे तोभी नाम रुपोंका व्यवहार उसके विदून नहीं हो सकता. नाम रुपात्मक माया चेतनकी आधेय तोभी उसको स्पर्श नहीं करती. यूंहे तोभी उसकी (आकाश नीलता वत्

+दृग् दृश्यौ द्वौपदार्थौस्तः परस्पर विलक्षणौ । दृग् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्व वेदांत डिण्डिमः १ (शंकराचार्य कृत) ॥ ब्रह्मैवाहं समः शांतः ॥ शंकराचार्य कृत अपरोक्ष अनुभूति ॥ सम=एक रस, पूर्ण, हलचल विना, घन-अपरिच्छिन्न ॥ २ अयमानादिरन्तो नैसर्गिकोऽध्यासः । शारीरिक भाष्यकी भूमिका.

स्वप्नवत-शुक्ति रजत वत्) विवर्त्त होके उसको नाना नाम रुप (त्रिपुटी रुप) में दिखाती हे. कूटस्थ चेतन मुक्त तोभी मुक्त हुवा एसे ओर माया निवृत्तरुप तोभी उसकी निवृत्ति एसे कहा जाता ओर माना जाता हे. अहाहा केसा नैसर्गिक अध्यास (अन्यथा अवभास) याने अधिष्ठान चेतनसे विलक्षण ओर चेतनका अस्पर्श हुवा विवर्त्त, अपने जेसा अधिष्ठानको जनाने वाला॥ उस मायाको वा उस अध्यासरुप नाम रुपको अणु, विभु, मध्यम, वा निरवयव सावयव, वा अनादि अनंत, सादि सांत, अनादि सांत वा सादि अनंत, परिणामी अपरिणामी, सत् वा असत्, देशादि सहित, देशादि रहित, नहीं कहसकते किंतु अनिर्वचनीय--विलक्षण हे तोभी व्यवहारमें वे सब प्रकार लगा सकते हें, लगाये जाते हें. यथा स्वरुपसे परमार्थतः-वस्तुतः नहीं हे तोभी उसकी अप्रतीति--निवृति (पहाडकी नीलता वा आकाशकी नीलता समान) अधिष्ठान स्वरुप होती हे याने अप्रतीति कालमें वोह कहींभी नहीं होती ओर स्वप्न सृष्टिवत् देशादि वाली देशादि रहित, एसाभी कह सकते हें. अहाहा? केसी अचिंत्य विलक्षण शक्ति, बुद्धिकी अपेक्षासे अघटित घटना करनेमें चतुर.

इस विवर्त्तवाद--बाध रुप सिद्धांतमें यह बडी अनुपम अद्भुत रीति हे के समचेतन पूर्व समान शुद्ध असंग रहते हुये ओर माया के नाम रुप उसको स्पर्श न करते हुयेभी (मायासे उसमें जराभी विकार नहीं होते हुयेभी) वेदादि मान्य प्रमाण रुप ग्रंथ ओर वेदोक्त कर्म उपासना तथा वर्णाश्रमके धर्म--व्यवहार याने वर्णाश्रमकी व्यवस्था, सृष्टि उत्पत्ति लयका क्रम, बंध मोक्षके साधन तथा तमाम विधि निषेध, लोक रीति नीति--संक्षेपमें जीव ईश्वर ओर प्रकृति इन तीनोंकी सृष्टि दृष्टिवादकी रीतिसे यथावत व्यवस्था होजाती हे, किसी धर्म--मत--पंथ--संप्रदायका विरोध नहीं आता, किंतु सब विरोधों (द्वैत अद्वैतादि) का निवारण, सबकी एक वाकयता ओर सबका समन्वय होजाता हे. इतना होते हुयेभी मुख्य सिद्धांत (एक जीव चेतन वादका दृष्टि सृष्टिवाद) कायम रहता हे. पुनः ब्रह्म विद्यारुपी सिंह (स्वरुपाप्रवेश वा श्रुतिसिंह) आनेपर (स्वप्न सिंह के समान) स्वप्न निवृत्तिवत वा शश शृंगवत अपने सहित (अविद्या, विद्या सहित) सबका (द्रष्टा दृश्यादि भेदकाभी) बाध होजाता हे अर्थात सब कुछ हे ओर परमार्थतः ब्रह्मेतर कुछभी नहीं (अजात हे) एसा अनुपम सिद्धांत हे. इस शैली

ओर सिद्धांत दरसाने ओर अपरोक्ष करानेका मान श्रुति भक्त पू. श्री गौडपादाचार्य तथा पू. श्री शंकराचार्य कोही हे.

तथा उसी शैलीमें **ब्रह्म चेतन अचिंत्य शक्ति** (नाम रुपात्मक माया) **से विवर्त्त हवा विवर्त्तोपादान कारण होनेसे त्रिपुटी रुप** (जीवादि--जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति रुप ब्रह्मांड) में **उसी साक्षी** (द्रष्टा) **चेतनमें** (अपनेमें) **स्वतोग्रह होता हे. ओर नाम रुप के अप्रतीत कालमें अपनी महिमां** (**स्व स्वरुप) में रहता हे.**" सारांश, जेसे नीलता प्रतीत कालमेंभी आकाशही, शुक्ति रजत प्रतीत कालमेंभी शुक्तिही, **एसे त्रिपुटी प्रतीत कालमेंभी वहीसब हे** (यह सब ब्रह्मही), इस सिद्धांतकाभी बाध नहीं होता. आश्चर्य! केसा अटपटा, सरल, अनुपम अद्भुत सिद्धांत हे.

जिसमें आपही नाना रुपसे स्वतोग्रह होता हे, उसको **सो, तु, में,** इन शब्दोंमें बयान करके अनुभव कराना, एसी एसी अनेक प्रकारकी शैली हें कारण के जितनी कल्पना, कथन, श्रवण वा मंतव्य हें (यथा-द्वैत, अद्वैत, ब्रह्म एसा वेसा, माया वेसी एसी, पक्षाध्याय, नियम, विचार ओर फल, वगेरे. सत् असत्, नित्य अनित्य, उभयसे विलक्षण, अनादि सादि, अनंत सांत, अणु विभु, परिणाम, अपरिणाम, बाध-मिथ्या वगेरे) यह सब कथन मंतव्य सापेक्षहें, निरपेक्ष नहीं हें. जो केवल स्वरुप हे वोह स्वतः निरपेक्ष हे, सो कथन श्रवणमें नहीं आता. इसलिये उसके निश्चय-अनुभवार्थ अनेक शैली कल्पतेहें. इसलिये सापेक्ष कथनमें अनुचित वाद विवाद, खंडन मंडन व्यर्थ हे.

(शं.) पूर्वकी अध्यायमें माया अनादि अनंत १, ओर जगत अध्यास-भ्रम रुप नहीं २, ओर अंतःकरण चेतन युक्त जीव, गिलोवत प्रवाहसे अनादि अनंत ३, ओर ज्ञान पश्चात माया में लय-उसके अवयवोंका दूसरा उपयोग होता हे ; ४, ओर अंतःकरण वा द्रश्यकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप नहीं ५, एसा माना हे ओर यहां वेसा नही मानते. एसा क्यों ?

(उ.) यह सब द्रष्टि भेद ओर अधिकारकी अपेक्षासे कथन हे. यथा अ. ३ में आत्मा, जीव, मोक्ष को अनेकांत दरसाके एकांत बताया हे. (सू. ५४१ से देखो). स्वप्नके देशकाल माया जन्य हें तोभी उसकालमें मायाको अनादि अनंत कहा जाता हे ओर आकाशको असीम कहते हें, उपनिषदोंमें आकाशादि

ओर शब्दकी उत्पत्ति कही हे तोभी व्यवहारमें देशकालको अनादि अनंत कहाजाता हे इस द्रष्टिसे अनंत कहा हे १. अध्यास २ प्रकारके होते हें. अज्ञानादिजन्य ओर स्वाभाविक. अध्यासका मुख्य लक्षण यह हे कि उसकी निवृत्ति (बाध) होती हे ओर अध्यास कालमें अध्यास रुपसे प्रतीत नहीं होता. एसी यह जगत हे. परंतु यह भ्रम, कूठस्थ ब्रह्मको हे ऐसे मंतव्यका खंडन करने समय भ्रमरुप नहीं, इस रुपमें कहा हे. किंतु जगत स्वाभाविक अन्यथा अवभास याने अध्यासरुपहे (यह अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास हे, एसा अद्वैताचार्यश्रीभी कहते हें,) निदान बाधरुप हे एसा हे, यहांभी मायारुप अध्यासको अनादि अनंत कहा ओर आगे उसकी निवृतिभी मानी हे. इसमें क्या रहस्य समाया हुवा हे सो आगे वांचोगे.

जगतका अध्यास चिद्को नहीं हे, अध्यासको अध्यास नहीं हे, किंतु उसकी निवृति अधिष्ठान स्वरूप होची हे, यह तुर्यामें प्रसिद्ध हे. इसलिये उसका नाम अध्यास रखा हे. इसके बाधका अनुभव न हो वहां तक इसे अध्यास कहना पोपटके वाक्य वा बालकोंकी गाली समान हे. २.

सृष्टि द्रष्टिवादमें सृष्टि (अंतःकरणादि) को ईश्वर कृत माना गया हे, इसलिये अविद्या नष्ट हुये याने ज्ञान हुये पीछे ज्ञानीके अंतःकरण (प्राणादि) की अनुत्क्रांति ओर उसका घट मृतिकावत लय मायामें मानना पडता हे. इसीका नाम विदेहमुक्ति हे. ओर मायाकी निवृत्ति ब्रह्म स्वरूप मानी जाती हे. निदान इस द्रष्टिसे मायामें लय होना कहा हे. ओर अंतःकरण मध्यम हे, तिसयुक्त चेतन, जीव चेतन कहाता हे इसलिये अंतःकरणको प्रवाहसे गिलोवत कहा हे. एसा न हो तो जीवत्वमें अनादित्व सिद्ध नहीं होता. सिद्धांतमें जबके ब्रह्मसे इतर जीवादि सब मायासे माने जाते हें वहां मायाका अंश अविद्या जो सुषुप्तिमें होती हे उसका परिणाम अंतःकरण (जो सुषुप्तिमें अविद्यामें लय याने अविद्यारुप होता हे) हे सो अनादि अविद्या नाना होनेसे वेभी नाना हें. अंतःकरण ओर चेतन मिले झुले प्रमाता कहाते हें. उसकी वृत्ति (अंतःकरणकी वृत्ति) जीववृत्ति (चिद्वृत्तिभी) कहाती हे. ज्ञान हुये पीछे इस वृत्तिकी निवृत्ति अंतःकरणरुप अंतःकरणकी अविद्यारुप ओर अविद्याकी निवृत्ति अधिष्ठानरुप कहनी पडती हे. ३, ४, ५॥× जैसा वर्णन अध्यास--माया वास्ते हे वेसाही सफलादि नियमों वास्ते हे कारण के वेभी देशकालवत् माया के व्यक्त

हुये ओर प्रकाश्य हुये पीछे होते हें. इस लिये मायीक काल अध्यासकी, द्रष्टिसे अटल कहे जाते हें.×

सारांश जिस-शब्दसे, स्वरुपाप्रवेशसे, नाना जीववादकी शैली वा एक जीववादका शैलीसे वा अन्य शैलीसे आत्मा ब्रह्मरुप ओर उससे इतर सब बाधरुप (परमार्थतः अजात ओर अपरमार्थ रुपसे प्रतीति मात्र)--माया मात्र हें एसा अनुभव होजाता हो, तो उसके निषधमें आग्रह नहीं हे. कारणके अधिष्ठान अनुभव स्वरुप हे उसके प्रकाश हुये विना "जगत मिथ्या-अजात" एसा कहदेना जिज्ञासुकी इष्ट प्राप्तिमें आड होजाता हे. ओर शुद्ध स्वरुप अनुभव होनेपर नाम रुपात्मक मायाकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप हे एसा किंतु अधिष्ठानमें उसका अजात पना हे एसा स्वयं अनुभव में आजाता हे. इसलिये यथा अधिकार यथाक्रम, बोध किया जाता हे. जब तक कल्पना, में पना हे वहांतक माया-प्रकृतिको अनादि अनंत याने द्वैत कहेना मानना पडता हे इसका कारण यह हे के द्वैतमेंही उपदेश होता हे. निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप हुये पीछे माया के अत्यंताभावकीभी भावना नहीं होती तो फेर माया अनादि अनंत, नियम अटल, द्रष्टा द्रश्यका भेद, मोक्षसे आवृत्ति अनावृत्ति ओर अध्यस्तकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप, सारांश द्वैत, अद्वैत भाव होनेकी तो बातही क्या करना.+

+अध्याय १ ओर ३ में ब्रह्मसे इतर तमाम नामरुप (माया-अविद्या-अज्ञान-अध्यास याने कुल जगत) बाध रुप (प्रतीत कालमेंभी परमार्थतः नहीं) हे एसा दरसाया हे तो फेर उसकी निवृत्ति (अभाव) कहनाही वदतो व्याघात हे, नीलताकी निवृत्ति उसके अधिष्ठान पहाड स्वरुप होती हे इस समान किंवा बालकोंकी हाउकी निवृत्ति समान किंवा शश शृंगकी निवृत्ति शशके मस्तक समान हे कारण के स्वरुपतः नहीं हे. सारांश अध्यस्त-कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप, यह कहेना वा समझाना अद्वैत बोधकी द्रढता करानेके लिये एक प्रकारकी शैली हे वा व्यवहार मात्र--उपचार मात्र हे, कारणके केवलाद्वैत पहेलेही हे ओर बाधरुपकी निवृत्तिभी बाधरुप होती हे. इसलिये स्वप्न द्रष्टावत् आत्मा ब्रह्मको तटस्थ साक्षीमात्र रखके बाधरुपका (नाम रुपका) याने जीवादिका तमाम त्रिपुटीरुप व्यवहार उसी रुप उसी द्रष्टिसे देखना, कहना, सुनना, वर्तना चाहिये, तो द्वैता-द्वैतके झगडेमें उतरनेकी अपेक्षा नही रहेगी. फलित यह हे के शंकामें कहे हुये विषय इस द्रष्टिसे कहे गये हें, अतः केवलाद्वैत सिद्धांतके बाधक नहीं हें.

जबतक अज्ञान निद्रामें रहे हुये हें अर्थात जबतक ब्रह्मात्माके स्वरुपका ओर जगत (माया) के मिथ्यात्व (बाधरुप-अजात) का बोध नहीं हे. वहांतक जेसे स्वप्न सृष्टिमें वेसे (१) माया अनादि अनंत. (२) सृष्टिनियम अटल. (३) द्रष्टा द्रश्यका भेद. (४) जगतकी निवृत्ति माया (प्रकृति विशिष्ट) रुप. (५) मोक्षसे आवृत्ति. एसाही मानना पडता हे. क्योंकि इसके विना व्यवहार ओर उपदेश नहीं बनता. जब ब्रह्मात्माका स्वयं बोध हुवा ओर मायाका स्वरूप स्वतोग्रह होके अपरोक्षत्वको प्राप्त हुवा तब उन पांचोंका बाध होजाता हे (विशेष आगे कहेंगे); इतनाही नहीं किंतु त्रिपुटी मात्र के अस्तित्वका बाध होजाता हे.

ब्रह्मात्मा आधिष्ठान हे ओर साक्षी मात्र हे, इससे इतर तमाम बाधरुप. उसका बाधवत व्यवहार (मायीक प्रवृत्ति निवृत्ति) एसा ज्ञान **होनेपर कोइ शंका, विपरीत भावना नहीं होती.**

एसा बोध होने वास्ते इस फीलोसोफीमें दो शैली रखी हें.—

(१) **सृष्टि द्रष्टिवाद**. यह मध्यमाधिकारी वास्ते उत्तम शैली हे. इसमें सूक्ष्मशरीरभी (अंतःकरणादि) ईश्वरकृत सृष्टि हे, ज्ञानवानके कर्म ओर वासनाका अभाव होजानेसे उसके प्राण (सूक्ष्म शरीर) की अनुतक्रांति हे, उसकी निवृत्ति उसके उपादान (माया—प्रकृति) रुप कही जाती हे. जो के वस्तुतः यह भावभी उपचार मात्र-बाधरुप हे तोभी शैली के कायदे वश एसा कहना-मानना पडता हे.

(२) **द्रष्टि सृष्टिवाद**. इस शैलीमें अंतःकरण, अविद्याकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरुप होती हे कारण के इस शैलीमें अवस्थाओंका अन्वयव्यतिरेक हे. यह दोनों शैलियोंके भेदका रहस्य हे.

जो के उभय शैलीमें सिद्धांतका बाध वा फर्क नहीं होता तथापि शैलीके कायदे निभाने पडते हें.

संसर्गाध्यासकी निवृत्ति (आत्मामें अनात्माके धर्मोंका अध्यास) दोनों शैलिओंमें अधिष्ठान स्वरुप होती हे. अब जिसने इस रमूज-सेनको समझ लिया उसकी द्रष्टिमें स्वरुपाध्यासकी निवृत्तिभी अधिष्ठान स्वरूप होती हे, एसा हे. परंतु शैली भेदसे कथनमें (उपदेशमें) भेद कहा जाता हे.

अब यहांसे आगे याने इस चोथे अध्यायके उतरार्द्धमें उक्त वेदांत विद्या (वेदांत फीलोसोफी) का अनुभव हो एसे प्रकार जनानेका आरंभ होगा. तहां

स्वतंत्र शोधक ओर आरण्यक पद्धति, इन दो प्रकारमें बयान होगा. प्रथम उसके अधिकारीके लक्षण कहेंगे उसके अंतर्गत उक्त दोहरेमें जो सिद्धांत (तत्त्व निर्णय) कहाहे इस परोक्ष ज्ञानका स्मरण कराके इस सिद्धांतका पूर्वकी अध्यायोंमें स्पष्टीकरण नहीं है उसका स्पष्ट रुप दरसाते शंका समाधान करते हुये उस सिद्धांतका अपरोक्ष ज्ञान याने तत्त्व दर्शन हो एसे रुपमें (स्वतंत्र शोधक ओर आरण्यकके लिये) २ प्रकरण कहेंगे+

आरण्यक प्रकरणमें, जेसा उपर अनूपम पदका विवेचन किया हे वेसाही साक्षात्कार हो एसा प्रयास किया जायगा. उससे मुख्य-परम शांति प्राप्त होजायगी. याने सूत्र ४।२ के विवेचन विषे पेज ८४८ में जिन १० बातोंके जाननेसे परम शांति होती हे उनका ज्ञान होकर शांति हो जायगी एसा प्रकार कहेंगे. उसपीछे भूमिकामें वेदांत सिद्धांत संबंधि जो २२ शंका लिखी हैं उनका ओर दूसरी अनेक शंकाओंका समाधान करेंगे, उस पीछे संक्षेपमें जीवन मुक्तका व्यवहार दरसाके ग्रंथका उपसंहार होगा. ++

(आगे तीसरी बुकमें) +

(प्रयोजक).

+चोथे अध्यायका नाम फल सूचक होनेसे फलाध्याय रखा गया हे इसलिये इस वेदांत फिलोसोफीकी जुदा अध्याय नहीं करसके. कारण के इसके बीज-वृक्षका रुप पहेली अध्यायोंमें हे. अतः फलाध्यायका उत्तरार्द्ध एसा नाम रखना पडा.

स्मृति.

+अध्याय १, २ की एक पहेली बुक हे. अध्याय ३ तथा चोथे अध्यायके पूर्वार्द्ध (सू १ से २५२ तक याने पृष्ट ९८९ तक) की दूसरी बुक हे ओर चोथे अध्यायका उत्तरार्द्ध कुछ बडा हो गया हे इसलिये उसकी जुदा तीसरी बुक की गइ हे. इस प्रकार दर्शन संग्रहादिके सिवाय तत्त्वदर्शन ग्रंथके ३ भाग हैं.

शब्दकोश.

तत्त्वदर्शनके चारों अध्यायमें जो हिंदी, गुजराती भाषामें अपरिचित शब्द हैं उनमेंसे अध्याय १, २ में वेसे जो शब्दथे उनका कोश पहेले भागमें लिखा गया हे. यहां इस भाग २ में वेसे जो शब्द हें उनमेंसे जो शब्द उपरोक्त कोशमें आगये हें उनको छोडके शेष शब्दोंका कोश लिखते हें ताके पाठकको सुगमता हो.

शब्द.	शब्दका अर्थ.
अक्लिमंद	बुद्धिमान.
अकर करहा	औषधिका नाम.
अकिल	बुद्धि.
अग्रेसर	पेशरो—अगवा.
अजान	नावाकिफ.
अड्डा	पक्षिका स्थान.
अन्तर्यामी	अंतर्नियामक.
अन्तर्जामी	अंतरका जानने वाला.
अदा	पूरा करना, भाव.
अनंत	देश वा कालसे अंत रहित.
अध्यस्त	अध्यासका विषय.
अधिष्ठान	किसीका आधार.
अनुभवित	अनुभूत, अनुभवें किया हुवा.
अनोखी	विचित्र.
अपरा	ससीम—अवर.
अपन	अमे तमे.
अबद्ध	बंधन रहित.
अमावश	अमास, अमास्या.
अरब	देश विशेष.
अलातचक्र	जली हुई चमकती लकडीके घुमानेसे जोचक्र होताहे सो.
अवाडा	निंभाडो.
अहाते	घेरो, वंडो.
अहुर	देवता, ईश्वर.
अहोतव्य	न भवितव्य. न होनेवाला.
अहेलकार	राज्यका काम करनेवाला.
अस्मदादि	हम, तुम.
आकोल	फल विशेष.
आजाद	स्वतंत्र, छूटा हुवा.
आतशबाजी	दारुखाना.
आतशक	चांदी रोग.
आपादन	रजु करना.
आभासित	आभास पाया हुवा, आभासरूप.
आवक	आमद, उपज.
आसमानी	वादळीयो, नीला.
आसरे	अटकल.
इखतियार	अधिकार.
इखतियारी	अधिकार पना.
इगलाम	पुं. संबन्ध.
ईर्षा	अदेखाई.
उक्तानुसार	उपर कहे अनुसार.

उपरोक्त--उपर कहा हुवा.
उपर्युक्त--उपर कहा हुवा.
उपजावक--जिस करके उपजे.
उपान्त--अंतके पहेले.
उधइ--दीमक.
उसकेरना--उतेजन देना.
उसकेरता--उत्तेजन करता है.
एशिया--पृथ्वीका एक खंड.
ओ३म्--रक्षक. ईशका नाम.
ओम्--स्वीकार.
ओलिया--सिद्ध.
ओरा--तेजसका भाग.
कण--अणु, सूक्ष्म भाग.
कदीमी--नित्य.
कमोबेशी--न्यूनाधिकता.
करण--साधन.
कलीसा--धर्मगुरु, न्यायाधीश.
कश्फ--करामत, मनकी जानना.
कहेर--क्रोध, गुस्सा, जुलम.
कंटाला--अरुचिजेसा. दिक.
काटाफांसी--कापकूट.
कानाफूसी--चुगली चाडी, चाडी, गुप्त-भेदका कथन.
काफर--ईश्वरेतरका पूजक.
किनारा--अलगापनुं, जुदाई, पडखुं.
कायमी--द्रढता.
कारोबार--कामकाज, वहीवट.
कुतब--सिद्धेश्वर.
कुंडाला--सर्कल, दायरा.

केरेक्टर--चालचलन, चारित्र्य.
ख--आकाश.
खटमल--माकड.
खमीर--आथो, मिश्रण.
खरा--चोखा, साफ, साचा.
खरीद--वेचाता लेवां.
खातरी--विश्वास, निश्चय, परीक्षा.
खामखयाली--खोटा विचारो.
खीर--हलकूं दुधपाक.
खुदनफसी--आप स्वार्थ परायणता.
खुदी--अहंकार.
खोज--तपास. शोध.
गजब--क्रोध, आफत.
गुड्डा गुड्डी--ढींगला ढींगली.
गाले--व्यतीत किये.
गिर्द--आसपास.
गुपचुप--चुप, सुनमुन.
गो--गाय.
गेर कोम--दूसरी जाती.
गेरवाजबी--अनुचित.
गोल--लक्ष्य, इष्ट, सर्कल.
गम--बुद्धिकी पहोंच, सहनशीलता.
घमंड--दुराभिमान.
घर घूले--घोलका घोलकी.
घालमेल--गोटाळो, अनुचित मिश्रण.
चसका--टेस, रस.
चकाचूंध--सुरज देखतां आंखे अंजावुं.
चिन्तवन--स्मरण, विचार.
चिमिट--वळगवुं.

चुनाचे--निदान, उसपर.
चुस्त--दृढ.
चूहा--उंदर.
जजा--सत्कर्मका बदला.
जनादेना--ज्ञात कराना.
जबाबदारी--उत्तर दायित्व.
जंग--युद्ध.
जहूर--प्रकाश, आभास.
जाग्रत्--अवस्था विशेष.
जाग्रत--अवस्था विशेष.
जागृत--अवस्था विशेष.
जायदाद--संपत्ति.
जियाफत--प्रीति भोजन.
जिना--पर स्त्री गमन.
जिसामत--पहोळाई, कद.
जुज्व--थोडा, भाग, अवयव.
जुत्थ--समूह.
जुबां--जिह्वा, वाणी.
जूवा--जुगार.
झट--उतावळे.
झघडालु--कजीयाखोर.
टीबे--माटीना डुंगरा-टेकरा.
टुक--जराक.
टोटा--खोट.
ठेका--इजारो.
डामेटड--डाईन माइट-इंग्रेजी कोश देखो.
डोंडी--साद पाडवो.
ढकोसला--बनावटी गप्पां.
तजरबेकार--अनुभवी, परीक्षक.
तकिया--आसरो, आश्रम, ओशिकुं.
तनाजाना--तणाई जवुं.
तफसील--विगत.
तपासे--तहकी कात करे, शोधे.
तमाशा--रमत, खेल.
तमोगुण--क्रोध वा जडवृत्ति, शिथिलता.
तरमीम--सुधारो वधारो.
तवाजे--सत्कार.
ताकीद--जलदी, उतावळे करनेकी सूचना.
तादाद--संख्या.
तामील--आज्ञा अनुसार करवुं.
ताल--तळाव.
तिगुना--त्रिगुण.
तूरी--छोगुं.
तोता--पोपट.
तोबा--पाप न करनेकी प्रतिज्ञा.
थुकडवी!--छी!!!
दर्दसरी--माथाकूट, माथाफोडी.
दरजे--डीगरी, पदवी.
दरियास्थान--लुहाणाजातिकामंदिर, जलस्थान.
दानाई--बुद्धिमत्ता.
दाई--सुयाणी.
दायरे--सर्कल, कुंडाळुं.
दारू--बारुद, दवाई, शराब.
दिक्कत--कठिनाई, मुश्केली.
दिल--मन.
दीमक--उधई.

देश--आकाश, जगह, पोल, अवकाश प्रद.
दौरा-पचार, फेरी.
धीपर--बुद्धिसे अगम्य.
धातुजीवन--मध, सोगी, अने घी. शहद सुहागा घी.
नक्कारा--नगारुं.
नकार--ना.
ननु--शंका पक्ष, वादि पक्ष.
नकचूंटी-बाल उखाड चीपयुं.
नरमादा--नरनारी.
नसारा--ईश्वरनी मददसे जयकरनेवाला. याने ख्रीस्ति कोम-ईसाई.
नागवार -प्रतिकूल.
नावाकफी--अजाणपणुं.
नामी-नामांकित.
नामालूम-अज्ञात.
नीमान्ध-अर्धान्ध.
नियतत्त्व-निमायेलापणुं.
निरखा-निरीक्षण करा-देखा.
निरीह-इच्छा रहित.
निश्चयनय-परमार्थ तत्त्व, वस्तुतः
निराशा-निराश.
नेक-भलो.
नैसर्गिक-स्वभाविक.
नो-९, नवीन.
नोकायंत्र-नो (९) आदमियोंकी एक एक अंगुली लगाके चार पाई सहित आदमीको अधर उठानेकी रीति.
पचमरना-मरीमथ्या.
पट्ठे-मांसना लोचा.
परवश-पराधीन.
परवरश-पालन.
परहेज-पथ्यरक्षा, अलग होना.
परेशां-हेरान, दुर्गत.
परतः प्रमाण-वेद ईश्वरोक्त होनेसे परतः प्रमाण, वेदानुकूल जो हो सो. ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर जो ज्ञान उत्पादक सो. (अनुमानादि).
परस्थिति-दूसरेकी स्थिति.
परिस्थिति-सब तरफकी स्थिति.
पर—दूसरा, पांख, उपर, दूर.
पहेलु—अडखां पडखां.
पाना—प्राप्त होना, कुसंबन्ध.
पास—उत्तीर्ण होनां, प्राप्ति, समीप.
पुराणी—पुराण मानने वाले.
पुरवता—पाकुं.
पेरवी—कोशिश, अनुकरण.
प्लेट—टुकडा, सपाट.
प्रयोजकी—जिससे योजना हो (स्त्री)
प्रेस—मुद्रायंत्र, दबाण.
प्रेमयोग—पराभक्ति.
पोपट—तोता, शूक.
पौराणी—पुराणमाननेवाला.
पौराणिक-पुराण माननेवाला.
फना—नाश.
फफोला—फोडलो.
फरेब—छल.

फीसदी—दरसेकडे.
फेलसूफ—तत्त्ववेत्ता.
बजा रहे—कर रहा.
बदनीयत—खराब दानत.
बन्दे-दास.
बद दुआ-श्राप.
बदनीति-कुभावना.
बदन-शरीर.
बदी-बुराई.
बरफस्थान-हिमालय.
बरकत-सिद्धि.
बरबादी-खराबी.
बल्के-किंतु.
बापा-बाप.
बाबत-विषय.
बाघरूप-दिखातेभी नहीं.
बुतपरस्ती-मूर्तिपूजा.
बुलबुल-पक्षि विशेष.
बेनसीब-अभागीयो.
बेनियाज-बेपरवाह.
बेराह-कु मार्ग.
भाव परिणाम-शब्द विनाकल्पना वा भावना.
भीत (छंदमें)-भय.
भेड-गाडर.
मकर-दाव, बनावट.
मचा-तत्पर.
मतलब-आशय, स्वार्थ.
मनाता-माननेमें आता हे.
मने-वर्जन, निषेध.
मनाने-स्वीकार कराने.
मसहलत-संमत, संमति करवी, विचार.
मामला-अमुक विषय.
मित-नियमित अहारादि.
मीसरी-शाकर.
मीलान-संधि.
मुकद्दमा-केस.
मुझे-मने.
मुनहसर-आधार.
मुमकिन-संभव.
मुबारक-मंगल.
मोहताज-आधीन, गरीब, सापेक्ष.
यतीम—माबाप विनानां बाळक.
या—अथवा.
याने—अर्थात.
योजे-जोडे, गोठवे.
योजाई-जुड गई.
रजोगुण-हांसी खेल, चंचलता, विक्षेप.
रहेबर—भोमियो, गुरु.
रीस – क्रोध.
रूह—जीव, आत्मा.
रूपोश—मोढुं छिपाववुं.
रुसवाई-बदनामी, भवाडो.
रेजें किरणें, रजकण.
रोनक-शोभा.
लचक-स्थिति स्थापकता.
लानत-धिक्कार.
लावारिस-धणी विनाना.

लोलुप-लालचु.
लोलुप-लालचु.
व-अने, ओर.
वाकफी-जाणवापणुं.
वकिफ-जाणकार.
वाजबी-योग्य.
विखरके-छुटाछुटा होके.
विरला-कोईक.
शरीर—लुच्चा, काया.
शरमिंदा-रुजालु. लज्जित.
शरमिंदगी-लजापना.
शुदबुद-क प च ल, अनपढ, अभण.
संत-साधु, दोनों हाथ जोडना.
(शब्द रत्नाकर.)
सत्वगुण-शुद्ध, प्रकाश, सार, ज्ञान.
समझु—बुद्धिमान.
सम-थिर, अविकारी, पूर्ण, एकरस, अपरिणामी, निरवयव. असीम. (आकाशवत्)
सरवंट-नोकर.
शर्द-ठंड, शरद.
सलामती-सुखाकारी.
सामर्थ (सामर्थ्य) शक्ति.
सिंदूक-पेटी.
स्वीकारित-कबूल किया हुवा.
स्वीकृत-माना हुवा.
सुध-भान.
सुधारा-तरमीम, सुधारणा.
सुरता (स्वरता)-मनकी खास वृत्ति.
सेन-इशारो, भाव, सान.
सोजाक-परमीयो-प्रमेह.
हरजाई-व्यभिचारी, जगे जगे जाना.
हरेक-दरेक, प्रत्येक.
हर्फ-अक्षर.
हल-पूरा, नीकालना.
हस्ति-अस्तित्व.
हासिल मतलब-सारांश, प्राप्त प्रयोजन.
हासिल-प्राप्त.
हिन्दी प्रजा-हिंदुस्तानमें घर बांधके रहेने वाले हिंदु, मुसलमान, पारसी, खिस्ति, वगेरे.
हिंद-आयावर्त्त, इंडिया, भारतवर्ष.
हेच-तुच्छ.
हेबतनाक-भयानक.
होतव्य-होनहार, भावी.

(२) संयुक्त असंयुक्त पद्धतिवाले शब्द (भाग २).

निम्न लिखित दो दो शब्द हैं वे संयुक्त, ओर वर्तमानमें जुदा जुदा लिखनेकीभी पद्धति हे.

अनुकरण मात्र	जड पसीना	बाह्य प्रकृति	लोक अपक्ष
अन्यथा परिणाम.	जो कि	भेद भाव	विशिष्ट राजा
अति वेग	जन मंडल	भव्य पुरुष	विशेष अंश
अपरा सत्ता	तेजस प्रयोग	भाव परिणाम	सात्विकी श्रद्धा
आर्य प्रजा	तादात्म्य संबंध	मैथुन विना	स्थित प्रज्ञ
आकृति विशेष	दुःख निवृत्ति	मानसिक बल	समूह रुप
ईश्वर कृपा	दृश्य रुप	मूल स्वरुप	स्वतः सिद्ध
उस पीछे	धर्म शोधक	मनुष्य बुद्धि	संशय ही
उपादान वादि	नवीन सायंस	मोक्ष प्राप्ति	सृष्टि उत्पत्ति
उत्तम आचार	नाम मात्र	यथार्थ निर्णय	साध्य विषय
उभय विशिष्ट	निमित्त भूत	यथा शरीर	समान सत्ता
कान छेदन	पूर्व जन्म	योग्य संबंध	स्मृति सहित
ग्राहक सामग्री	प्रमाण सिद्ध	यथा आचार	हुये के

(३) द्विगामी शब्दकोश.

प्राचीन हिंदी भाषा मिश्रित होजानेसे उसमें नीचे लिखे हुये शब्द दोनों प्रकारसे इस्तेमाल (वर्तन) में आते हें. इस प्रकारके अ. ३।४में जो शब्द हें उनमेंसे जिन शब्दोंका कोश पहेली बुकमें लिखा गया हे उन शब्दोंको छोडके शेष शब्दोंका यह कोष हे.

अवद्ध	अबद्ध	अमावश	अमावस्य	एश्वर्य	ऐश्वर्य
अधिष्टान	अधिष्ठान	अंतरजामी	अंतर्यामी	औं	वों
अकेली	एकली	अंतरगत	अंतर्गत	कोइ	कोई
द्भुत	अद्भूत	आलात	अलात	कीजे	कीजिये
अनोच्छित	अनिच्छित	ई. (वगेरे)	इ. (वगेरे)	कुठस्थ	कूठस्थ
अर्ब	अरब	उलंघन	उल्लंघन	करामत	करामात
अधिको }	अधिका	उद्देशित	उद्दिष्ट	खणिज	खनिज
अधिक }	अधिक	उद्देश्य	उद्देश	खेंचाव	खिंचाव
अवतिष्ठित	अवस्थित	एमीवा	एमोवा	गोडपाद	गौडपाद

चिदाचिद	चिदचिद्
चिंतवन	चिंतवन
चंबुक	चुंबक
जाग्रत	जागृत
जर्मन	जरमन
जगत	जगत्
जोकि	जोके
तू	तु
तदरुप	तद्रूप
तूर्या	तूरीया
तदनुसार	तदअनुसार
ताराकिक	तार्किक
तरक	तर्क
तदेतर	तदितर
थिति (छंद)	स्थिति
मान्ने	मानने
मेमेरी	मेमरी
मृगतृष्णा मृगजळ	मृग तृष्णिका
मारन	मारण
मनस	मनस् (मन)
मोक्ष (स्त्री)	मोक्ष (पु.)
यथाइच्छा	यथेच्छा
रीफारमर	रीफॉरमर
रुपालंकार	रूपकालंकार
लीजे	लीजिये
लोग	लोक

लोलुप्त	लोलुप
लोकेषणा	लोकेष्णा
वांच	बांच
वादियों	वादिओं
वित	वित्
वत	वत्
बिशिष्ट	विशिष्ठ
वासनानुसार	वासना अनुसार
व्यवस्थापका	व्यवस्थापिका
वैराड	विराड
वैराट	विराट्
विभूति	विभूति
दिग	दिग्
दुखाना	दुःखाना
द्रष्टत्व	दृष्टृत्व
नैपोलियन	नेपोलियन
नो ९	नव ९
ढूंडना	ढूंढना
प्रतिष्टित	प्रतिष्ठित
प्रयोजिक	प्रयौजिक
पराकर्मी	पराक्रमी
परस्थित	परिस्थित
प्रवर्नका	प्रवर्तिका
पौराणी	पौराणिक
पुराणी	पुराणि
पुलिसमेन	पोलीसमेन
पश्चम	पश्चिम

फिरीथिंकर	फ्रिथींकर
बूनापार्ट	बोनापार्ट
बश	वश
बंबई बंमबाई	मुंबाई
विरुद्ध	विरूद्ध
बुद्ध	बुद्धि
शक्तिमान	शक्तिमत
सर्द सरद	शरद
सदासद्	सदसद्
सत्य ख्याति	सत् ख्याति
सीक्रेट डाक-टरन	सीक्रेट डाक्ट्रीन
स्विकारित (माना हुवा)	स्वीकृत
साक्षात	साक्षात्कार
सुवरण	सुवर्ण
सामर्थ	सामर्थ्य
सिबलियन	सिविलियन
सहेनशील	सहनशील
स्थाइ	स्थायि
सत्यं (छंदमें)	सत्य
स्त्रि	स्त्री
हीण	हीन
हट	हठ
हर्बर्ट	हरबर्ट
हस्पताल	हॉस्पीटाल

शुद्धिपत्र भाग २.

अध्याय ३ का शुद्धिपत्र.

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
५१५	८	२००	२२०	+
५१५	१६	८।२७३	१२।२१३	
५२१	२२	असमचीन	असमीचीन	
५२२	६	तत्र	अत्र	
५२३	२९	३१	२१	+
५२४	११	.(१२)	(१२)।	+
,,	१२	.(३१)	(२१)।	+
,,	१३	.(५५२)	(५५२)।	+
,,	१४	हे.	हे (५५५)।	+
,,	२७	प्रकृष	प्रकृष्ट	+
५२५	९	संस्कारादि (अ. २।५३५)	अ.२।२१।५५२, ५५५ ओर ५३५ इन (अ. २।५३५ ५५५ ओर ५३५ इन	+
५२७	२३	का	०	
,,	२७	असाधारण	असाधारणता	
५२८	१४	१२२	११२	+
५३०	१	३४	३०	+
५४३	१५	सीमत्व	ससीमत्व	
,,	२५	चदिये	चाहिये	
५४५	१८	परिमाण	परिणाम	+
५४६	२३	जन्य	अजन्य	+
५४८	१	२१९।६८	१३०।१७८ १७९।६६४	+

पृष्ट.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
५४८	१७	२६५	२६६।२६७	+
५५५	९	कंपोड	कंपाउन्ड	
५६०	६	अकिधरण	अधिकरण	
५६५	१९	नैयायकि	नैयायिक	
५६६	२८	मानते	मानते हें. ओर	
,,	२९	हें, ओर	०	
५७४	८	कैवल्याद्वैत	केवलाद्वैत	
५७८	४	कैवल्याद्वैत	केवलाद्वैत	
५८०	१५	कैवल्याद्वैत	केवलाद्वैत	
५८२	१२	कैवल्याद्वैत	केवलाद्वैत	
५७९	१९	मानत्व	मत्त्व	
,,	२४	असमीन	असमी	
,,	२५	६३	०	
५८२	१८	सर्व	सर्प	
,,	२९	मेंर्जई	में जनाई	
५८५	१८	स्वकांर्य	स्वकार्य	
,,	२३	अवर्णीय	अवर्णनीय	
,,	१२	).	). (उत्तर)	
५८८	२५	२७४	४७४	
		२७६	४७६	+
५८९	९	न्याय	नवीन	
		वैशेषिक	नैयायिक	
५९८	९	ईश्रर	ईश्वर	
५९९	९	१४७	०	
६०३	३	१०३	०	

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
,,	७	तकार	तकरार	
६०४	७	सू.	सू. ६०२।	+
६०५	१३	३२५	४२५	+
६०८	२	उद्बोदक	उद्बोधक	
	१०			
६०९	२३	१९१	६६८	+
६११	६	(शं.)	०	
६१३	२९	२९३।२९४	६९३। ६९४	+
		२९५।२९६	६९५।६९६	
,,	२६	व्यवार	व्यवहार	
,,	,,	तदतंरगत	तदंतर्गत	
६१७	३	अद्भत	अद्भूत	
,,	२९	अवर्णिय	अवर्णनीय	
६२०	३	निराकर	निराकार	
,,	२१	( )	०	
,,	२९	भासता	भासती	
६३०	७	पृथ्वादि	पृथ्व्यादि	
६३२	१	१६८	२६८	+
,,	१९	सू. १०८	अ. १।२६८ अ. २।२५६	+
६४०	५	दूसर	दूसरे	
६४४	१५	३३४	३३२	+
६४७	१९	४४३	२४३	+
६४८	८	प्रतिविं	प्रतिबिंब	
,,	१०	१७५	३७५	+
,,	२१	३८५	२८५।१३७	+
६४९	१	सुखबादि	सुखादि	

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
६५३	५	९	४, ९	
६५४	१२	३१९	२१९	+
,,	१९	१४०	४०१	+
६५६	२३	कोने कोन	कोन कोन	
६५८	२४	३५५	३५४	+
६५९	१६	पूर्वे	पूर्व	
६६०	३	३५५	३५४	+
,,	१८	जगतके	जगतको	
६६७	१६	३२०	३३२	+
६७१	१२	अद्वैत	द्वैत	+
,,	१९	यह	यह–स्वरुप प्रवेशवाला	
,,	९	नाकां	नाओंकां	
६७३	२	४७१	४०१	+
६७७	१६	अनसत्	नासत्	
६७९	३	५९३।५९७	६९३।६९७	+
,,	१८	२५	१२५	+
६८५	२४	उसको	उसके	
६९९	१२	सांत	अनंत	+
७०४	२२	३३२	६३२	+
७०८	१८	वाहिर	वाहिरजाति	
	,,	गोल	गोलकी	
७११	१०	को	कोंके	
,,	१५	दिक	दिके	
७१३	३	१३८	१३९	
,,	७	(द्विधा)	(अनुत्तर)	
७१४	३	नहीं	नहीं	
७१७	३४	अनानुभव	अननुभव	

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
७१८	९	बंबद	ब बंद	
७२२	२३	१९१	१९०	
,,	,,	पक्षाक्कार	पक्षकार	
७२३	१२	नहों	नहीं	
,,	१८	३८१	२६४	+
,,	२९	ग्रंथे	ग्रंथ	
७२४	२१	संव	सर्व	
७२९	१४	ससा	एसा	
७३४	२२	आरं	ओर	
७३५	१५	तमाम	तमा	
७४१	२२	चितवन	त्रितवन	
७४३	१३	प्रभाओं	प्रभावों	
७४३	२४	हे	हे,	
,,	२५	लिये,	लिये	
७४६	४	वा	वे वा	
७४७	१३	अलेमें तलो	एलिमेन्टो	
७६६	२	तिमरादि	तिमिरादि	
७६७	६	काचसो	काच सो	
७८५	१६	)सत्तावाले	सत्ता वाले)	
७८६	९	कि	कि व्यवहार कालमेंभी	
७८६	२८	विरोधो	निरोधो	

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.	
७८७	२४	आलात	अलात	
७९४	२२	स्वकी	स्वमंकी	
,,	२९	सुसेप्ति	में सुषुप्ति	
७९७	६	(जेसे	जेसे	
८१०	७	४००	४०१	
८१५	१९	तक,	तक	
		लंबान	बयान,	
		५२७	५२७ तक	
८१६	१०	४२१	३।४१०	+
,,	२७	२६२	२६८	+
८१७	७	भेदमें	भेदहोनेमें	
८१९	३	एकक	एकके	
८२०	२३	अर्थशून्य	असत्.	
८२२	२४	से	से.	
८२९	१८	यथा ताथ्य	याथातथ्य	
८२९	२६	आकाश	आकाशकी	
८३२	२	हे (	हे, पेज ९७४ देखो (	
८३६	२४	ईथर	ईश्वर	
८४०	२१	हाने	होने	
८४२	७	६४१	६५१	+
,,	,,	१६५	१६६	

अध्याय ४ पूर्वार्द्धका शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
८५१	१२	भीवाव	भाव ओर
८५३	२	वार्जत	वर्जन
,,	८	अनके	अनेक

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
,,	२५	कके	के
,,	१२	कुर्वनत्र	कुर्वन्नेवेह
,,	१५	मेधाम्	मेधाम्

पृष्ठ.	पंक्ति.	शुद्ध.	अशुद्ध.
६७१	१९	वेदोपनिषद	०
८५३	२९	स्याहं	स्याहं
८५६	१४	मिल्क	ल्मिक
८५७	२६	ईर्ष्यर	ईर्षा
८६०	३	व्यवहार	व्यवहार
,,	३३	उत्तम	अफीम
८६३	९	प्राप्त	प्राप्त
८६४	६	११	१
,, / ८६६	२१ / ८	सात्वकी	सात्विकी
८६५	२३	कारक	कार
,,	२६	अनहित	अहित
८६७	१७	(सीबीलियन)	०
,,	२४	सावंट	सेवा
८६९	१३	उद्विग्न	उद्वेग
८७१	५	तिरस्का	तिरस्कार
८७३	१३	को	का
८७७	११	द्वार	द्वारा
,,	१५	फाड	फाड
८८२	२५	प्रजन्य	पर्जन्य
८९१	१९	ऐक्यता	ऐक्य
८९३	२३	निषय	विषय
८९४	१४	केंवला	केवला
,,	२५	भावन	भावना
९०८	२२	त्मात्मक	तमात्मक
९१२	२०	अद्वैद	अद्वैत
९१७	४	फिरत	फिरते
९१८	२	मजिक	माजिक
,,	,,	नियमों	नियमों
९१९	४	सा	सां
९१९	२८	वं	व
९२०	२३	उिस	जिस
	२४	;कर	कर;
९२३	२५	निमीष	नियम
,,	२८	जहग	जगह
९२५	२०	५५०	अ. ३ । ५५०
९२७	१९	वर्तत	वर्तन
९३१	१५	तो	)तो
९३२	२०	लचका	लचक
९३६	१९	बिंवमें	बिंबके
,,	,,	बिंवके	बिंबमें
९४०	२५	आत्म	आत्मा
९४६	८	ग्लानिनी	ग्लानिर्हि
९५६	५	विल्कप	विकल्प
,,	२२	अंगम्य	अगम्य
९७५	१६	)	०
९७८	१	ले	ले ओर
,,	२	मत्त	मात
९७९	१७	१५२	१५०
९८२	२२	२६८	०
९८३	१९	यह	) यह
९८७	३	का	की

"नोटिस."

विदित हो के यह तत्त्वदर्शन ग्रंथ सन १९१६ में छपना शरु हुआथा परंतु पीछे शरीर ओर मगजकी खराबी पेदा होगई ओर उस कारण अध्याय ४ के उत्तरार्द्धमें गडबड मचगई* ओर केसरी जंगके कारण कागजोंकी गिरानी होनेपरभी इष्ट कागज नहीं मिले, इसलिये ता. १६ । २ । १९१८ को अखबारद्वारा ग्राहकोंको नोटिस दिया गया के ग्रंथ सुधरे पूरा छपनेपर इत्तला दीजावेगी. अब ऑगस्त सं. १९२१ में उसकी २ बुक तो तैयार होगई* इस वास्ते उसकी इत्तला ग्राहकोको दी गई.

जोके गत वर्षोंकी अपेक्षा वर्त्तमान कालमें कागजका डेढा भाव ओर कंपोज छपाईका दुगना भाव होरहा हे यह बात लोक प्रसिद्ध हे, इसलिये माने हुये स्टीमीटसे ज्यादे खर्च होगया हे, तोभी लोक लाभकी द्रष्टि रखके नीचे अनुसार थोडी कीमत रखी गई हे. बुकें सुन्हेरी पुठेबंद हें.

अध्याय १, २, रोयल ८ पेजी ७२ फारम.	भाग १	रु. ५)	पोष्टेज जुदा.
अध्याय ३, ओर चोथे अध्यायका पूर्वार्द्ध रोयल ८ पेजी ६३ फारम	भाग २	रु. ५)	
अध्याय ४ का उत्तरार्द्ध (छपनेवाला हे) ग्रंथ समाप्त.	भाग ३	रु. २॥)	
तत्त्वदर्शन संस्कृत सूत्रात्मक	....	.... रु. ०॥)	

इसीके दूसरे **अंतरंग भाग.**—दर्शन संग्रह, कर्मविवेक, नीति मीमांसा, तत्त्वशोधक (स्वरुप संभावना) वगेरे बडी छोटी बुक हें (पेज २२८ देखो.)

"ब्रह्म सिद्धांत" (वेदांत तत्व फिलोसोफिका ग्रंथ हे (पेज ११ देखो)

यह साधन प्राप्त होनेपर जब जब छपते जायंगे तब तब इत्तला दीजायेगी.

तत्त्वदर्शन मिलनेका ठिकाना:—

१. **नित्यानंद लाईब्रेरी.** ठे.—सेन्ड हर्स्ट रोड. गिरगाम-**मुंबाई.**

---

* भूमिकामें १८ पेज ज्यादे करने पडे. पेज ९१७ से ९२० बदले. ९७२ के पीछेके पेज रद करने पडे, दूसरे छपे.